आचार्य पूज्यपाद विरचित समाधि तंत्र पर
प्रवचन–माला

परमात्म योग

मुनि प्रणम्यसागर

मूलकृति	:	**समाधितंत्र**
कृतिकार	:	**आचार्य पूज्यपाद देव**
पद्यानुवाद	:	**आचार्य श्री विद्यासागरजी**
प्रवचनमाला	:	**परमात्म योग**
प्रवचनकार	:	**मुनि प्रणम्यसागर जी**
प्रसंग	:	**मंदसौर वर्षायोग 2015**
संयोजन एवं लेखन	:	**रश्मि मुकेश संघई**
संस्करण	:	द्वितीय 2020
आवृत्ति	:	1000 प्रतियाँ
लागत मूल्य	:	350 रूपए
प्राप्ति स्थान	:	(1) आचार्य अकलंक देव जैन विद्या शोधालय समिति 109, शिवाजी पार्क देवास रोड, उज्जैन (476010) मोः 9425092483 (2) श्री नवीन जैन, गोटेगाँव, मो.: 94258-37476
प्रकाशक	:	आचार्य अकलंक देव जैन विद्या शोधालय समिति १०६, शिवाजी पार्क देवास रोड, उज्जैन (476010) मोः 9425092483
पुण्यार्जक परिवार	:	स्वः श्रीमती लालमणि जैन की पुण्य स्मृति में, पति- श्री सुभाष चन्द जैन , पुत्र- श्री मनोज जैन-26/A जैन मिलन विहार मुजफ्फरनगर, श्री मयंक जैन- वसुन्धरा, गाजियाबाद
मुद्रक	:	श्री कामना कलर डिजीटल सोल्यूशन्स, 120 पटपडगंज इंडस्ट्रियल ऐरिया, नई दिल्ली-110092 Mo. 9654996552, www.shreekamna.com



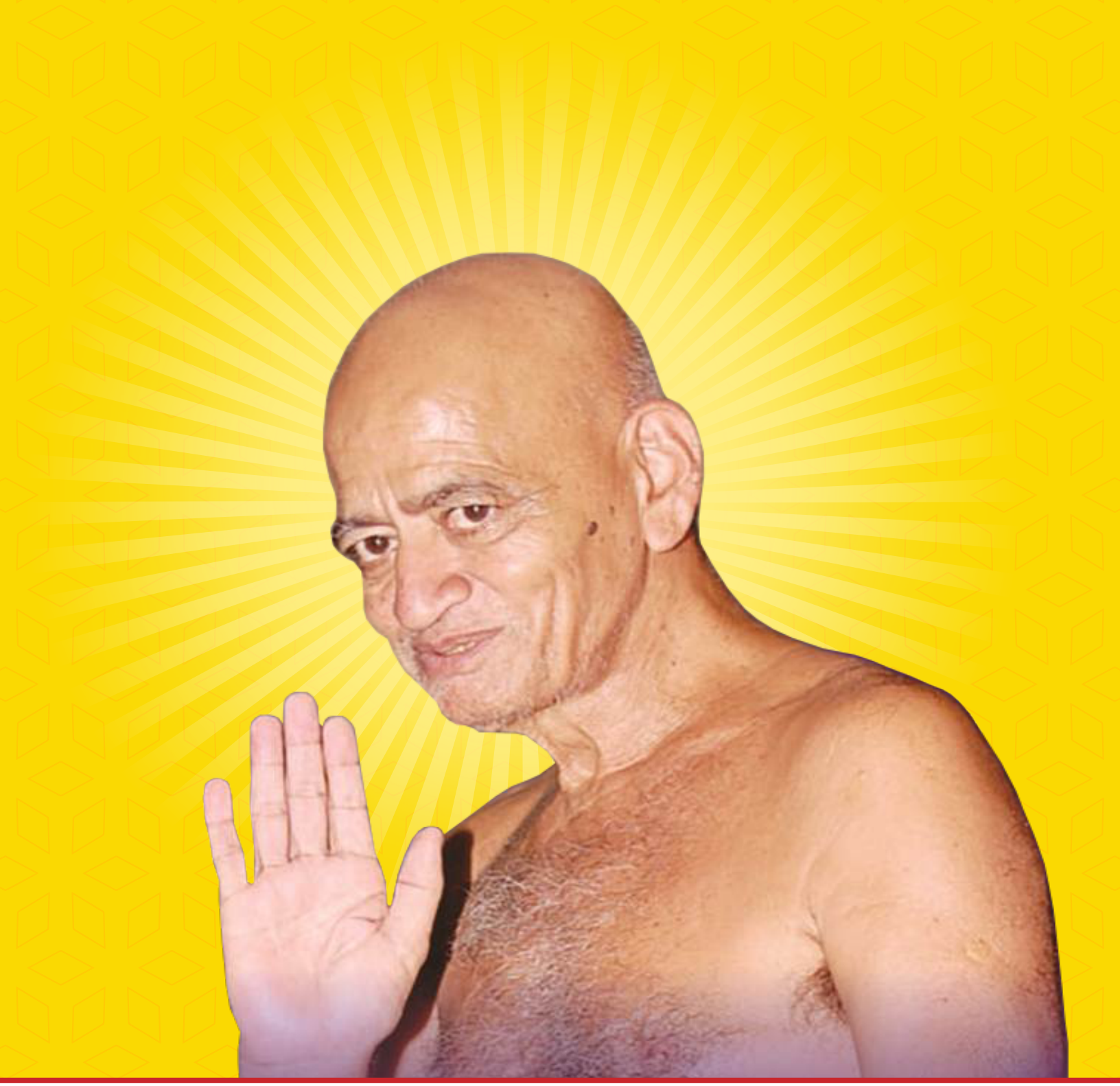


अर्हं योग प्रणेता प. पू. 108
मुनिश्री प्रणम्यसागरजी महाराज

द्वारा वर्ष 2015 के भव्य चातुर्मास महोत्सव के
दौरान निर्मित एवं प्रतिष्ठित विश्व का प्रथम

अर्हं योग जिनालय

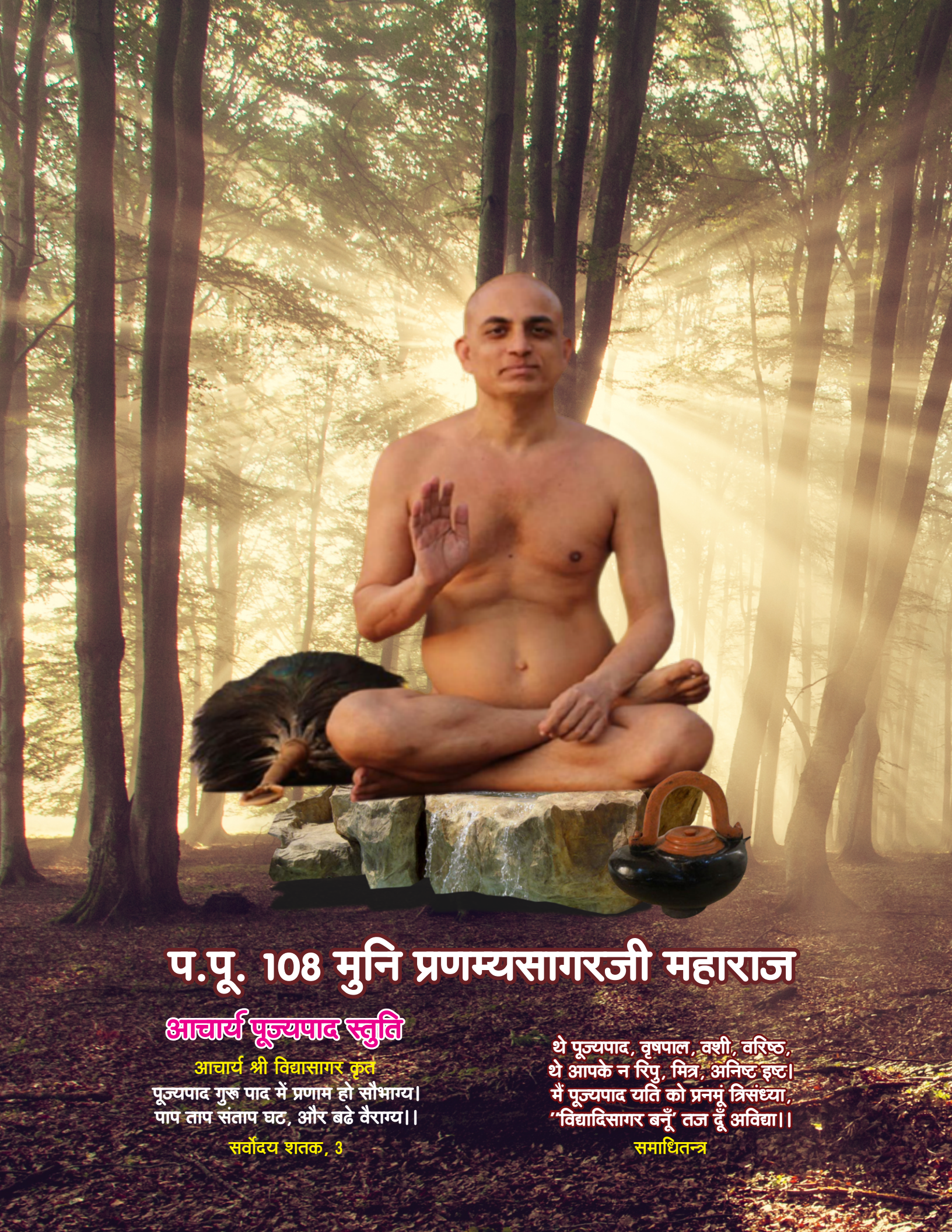
तार बंगला परिसर, मंदसौर (म.प्र.)



संत शिरोमणि प.पू.
108 आचार्य श्री विद्यासागर जी महाराज

सुर नर ऋषिवर से सदा पूजित पाद।
पूज्यपाद को नित नमूँ पाऊँ परम प्रसाद।।

इष्टोपदेश



प.पू. 108 मुनि प्रणम्यसागरजी महाराज

आचार्य पूज्यपाद स्तुति

आचार्य श्री विद्यासागर कृत

पूज्यपाद गुरू पाद में प्रणाम हो सौभाग्य।
पाप ताप संताप घट, और बढे वैराग्य।।

सर्वोदय शतक, 3

थे पूज्यपाद, वृषपाल, वशी, वरिष्ठ,
थे आपके न रिपु, मित्र, अनिष्ट इष्ट।
मैं पूज्यपाद यति को प्रनमूं त्रिसंध्या,
"विद्यादिसागर बनूँ" तज दूँ अविद्या।।

समाधितन्त्र



णमो अरिहंत मुद्रा



णमो सिद्ध मुद्रा



णमो आचार्य मुद्रा



णमो उपाध्याय मुद्रा



णमो साधु मुद्रा

पुण्यार्जक परिवार

स्वः श्रीमती लालमणि जैन की पुण्य स्मृति में
पति- श्री सुभाष चन्द जैन
पुत्र- श्री मनोज जैन- 26/A जैन मिलन विहार मुजफ्फरनगर
श्री मयंक जैन- वसुन्धरा, गाजियाबाद

Kamna
श्री कामना कलर डिजीटल सोल्यूशन्स
120, पटपडगंज इंडस्ट्रियल ऐरिया, नई दिल्ली-110092
Mo. 9654996552, www.shreekamna.com

समाधि तंत्र – शाश्वत सुख का मार्ग

समाधि का अर्थ ज्ञानी अपने अपने तरह से प्रसंगवश करते हैं। इस ग्रंथ में वे सभी अर्थ संग्रहित हो जाते हैं। समाधि का सीधा–साधा अर्थ– सम अर्थात् छोड़कर आधि–मानसिक चिंता। मानसिक चिंता को छोड़कर जो चित्त रहता है वह समाधि में है। कुछ करने की चिंता, कुछ पाने की चिंता, रोग न होने की चिंता, भयभीत मन, आकस्मिक दु:ख न आए और न जाने कितने प्रकार की चिंताएँ जिस चित्त में है वह समाधि से युक्त नहीं है। जिसने अपनी आत्मा का स्वरूप, बाह्य पदार्थों में भटकती आत्मा की हानि और परमात्मा की हानि और परमात्मा का सुख नहीं जाना वह तत्वज्ञान से विमुख है। तत्वज्ञान के बिना लोग चाहे कितने भी प्राणायाम, जप, पूजा, ध्यान आदि करें, वे भी तात्कालिक ऊपरी तौर से मन को इधर–उधर लगा के कुछ देर दु:ख को भूलने के उपाय है। ये शाश्वत उपाय नहीं है, सुख का परमानेंट परफेक्ट मार्ग नहीं है। इसीलिए नीतिकारों ने कहा है– 'तत्वज्ञान विहीनानां दु:खमेव ही शाश्वतम्।' तत्वज्ञान से रहित जीवों का दुख शाश्वत है। इसलिए समाधितंत्र के सूत्र तत्वज्ञान बढ़ाते हैं। हमें किसी विशिष्ट नामधारी परमात्मा से नहीं किंतु अपनी अंतरात्मा के उपाय से स्वयं के परमात्मा का दर्शन करना और उसे पाना ही समाधि है। उस समाधि का तंत्र, सिद्धांत, मार्ग या उपाय समाधि तंत्र है। आचार्यों ने धर्मध्यान और शुक्लध्यान को समाधि कहा है। इसलिए समाधि वह नहीं जो मरते वक्त होती है, यह वह समाधि है जो जीते जागते करना है। बुढ़ापे में मृत्युशय्या पर नहीं किंतु जवानी में यौवन के उपवन में विचरते हुए करना है। आत्मज्ञान, तत्वज्ञान, सम्यकज्ञान, विद्या, तत्वविद्या, सम्यग्बोध, धर्म, स्वभाव, चैतन्य की अनुभूति, चेतना का जागरण, चेतना का रूपांतरण, परमात्म प्रकाश का प्रदीप, परमात्म–योग प्रदीप न जाने कितने नामों से इसे कहा जा सकता है। स्वयं आचार्य पूज्यपाद ने इस ग्रंथ में कहा है– 'एष योग: समासेन प्रदीप: परमात्मन:।' अत: यह संक्षेप परमात्मा का प्रदीप योग है। योग अर्थात् जुड़ना। परमात्मा से जुड़ने के लिए दीपक की तरह मार्ग दिखाने वाला यह ग्रंथ अनुपम है। इस ग्रंथ की सबसे बड़ी विशेषता है कि इसमें कहीं भी मताग्रह, हठाग्रह या सांप्रदायिकता की बात नहीं है। कोई भी भव्य जीव इसे पा सकता है। अपने अविद्या, अज्ञानजनित, अनादिकालीन संस्कारों को तोड़ने की अनुपम विधि बताने वाला यह शास्त्र अध्यात्मविद्या की अनुपम धरोहर है। योग, ध्यान, समाधि, शुद्धोपयोग सभी एकार्थवाची हैं। सभी तीर्थंकरों ने स्वयं यही मार्ग अपनाया है। तभी तो तीसरी सदी के आचार्य श्री समन्तभद्र देव तीर्थंकर की स्तुति में कई बार इस समाधि का स्मरण करते हैं। 'समाधि तंत्र स्तदुपोपत्तये द्वयेन नैग्रन्थ्यगुणेन चायुजत' अर्थात हे अभिनंदननाथ भगवन्! आप इस समाधितंत्र की प्राप्ति के लिए बाह्य और अभ्यंतर दोनों प्रकार की निर्ग्रंथता से युक्त हुए अर्थात् आपने अंतरंग के मिथ्याबुद्धि, वेदराग, हास्यादि सभी परिग्रह और बाहर के धन, जमीन, स्त्री आदि सभी परिग्रह त्याग कर समाधि को प्राप्त किया। इस ग्रंथ पर मंदसौर चातुर्मास में प्रवचन हुए जिसमें सभी भव्य जीव आत्माभिमुख हुए और आगे भी होते रहें, इस हेतु मंगल भावना–

मुनि प्रणम्यसागर

'श्रद्धा, भक्ति और समर्पण के साथ'

मंदसौर चातुर्मास के दौरान 'समाधितंत्र' पर मुनिश्री द्वारा सरल एवं मोक्षमार्ग प्रशस्त करने वाले हृदयस्पर्शी प्रवचन सुनने का सुअवसर नगरवासियों को प्राप्त हुआ। पूज्यश्री के प्रवचनों को लिपिबद्ध करने का परम सौभाग्य जब मुझे मिला तो मानिये मेरे जीवन की दिशा ही बदल गई। प्रतिदिन प्रवचन लिख पाऊँ या नहीं पर गुरु एवं प्रभु हरवक्त स्मरण में रहते। साढ़े चार महीने के जुड़ाव के बाद जब पूज्यश्री हम सब को छोड़कर आगे बढ़ गए तब घर में गूँजती उनकी आवाज ने हमें बहुत सम्बल दिया। चातुर्मास के दौरान प्रवचन सुनना तो सुखद था पर सुनकर उसे गुनना, मंथन करना, प्रेरणा लेना भी प्रवचन लिपिबद्ध करने के माध्यम से प्रारंभ हुआ। कभी लगता कि इसमें अध्यात्म है तो कभी लगा मनोविज्ञान है किन्तु ये हम सबके जीवन का यथार्थ है।

जीवन का सही लक्ष्य निर्धारण करना हो, उचित मार्ग पकड़ना हो, स्वयं को स्फूर्तिवान बनाना हो, आत्मविश्वास जाग्रत करना हो, मन को संभालना हो तो गुरु वचन ही एकमात्र उपाय है।

मंदसौर में सवा महीने तक प्रतिदिन पूज्यश्री ने हमें ध्यान सिखाकर प्रभु के निकट पहुँचा दिया। तब ज्ञात हुआ कि प्रभु सच में हमारे अंदर ही बसते हैं। हमारे सुख–दुख स्वयं हमारे हाथ में है। अपने आपको हम स्वयं ही सुधार सकते हैं। गुरुदेव को देखकर, उन्हें सुनकर हमारे मन में ये ही भावना बलवती हुई कि–

'उच्च कुलों में पैदा होना, सुख साधन सब पा लेना
सुंदर देह भाग्य भी उत्तम, धन वैभव भी पा लेना
मोक्ष मार्ग के लायक ये सब, पुण्यफलों को ना मानूँ
भक्ति करने का मन यदि होता, पुण्यफल रहा मैं जानूँ''

(श्लोक ३ वर्द्धमान स्त्रोत)

इस कार्य के माध्यम से जिनवाणी माता की भक्ति एवं गुरुसेवा करने का परम सौभाग्य मुझे व मेरे परिवार को प्राप्त हुआ, मैं अनुगृहीत है। ऐसी भावना है कि पूज्य गुरुदेव हम सभी को इसी तरह धर्म के मार्ग में लगे रहने की प्रेरणा देते रहेंगे।

पूज्य गुरुदेव एवं गुरुदेव के गुरुदेव 'आचार्यश्री विद्यासागरजी महाराज' का आशीर्वाद सदैव हम पर बना रहे। इन्हीं भावनाओं के साथ बारम्बार नमन, वंदन।

रश्मि मुकेश संघई
मंदसौर

अनुक्रमणिका

	पृष्ठ क्र.		पृष्ठ क्र.
श्लोक १.	७	श्लोक २६.	१७८
श्लोक २.	१४	श्लोक २७.	१८२
श्लोक ३.	१७	श्लोक २८.	१९२
श्लोक ४.	२१	श्लोक २९.	२०४
श्लोक ५.	३०	श्लोक ३०.	२१३
श्लोक ६.	३५	श्लोक ३१.	२२३
श्लोक ७.	३६	श्लोक ३२.	२२४
श्लोक ८.	५१	श्लोक ३३.	२३१
श्लोक ९.	६३	श्लोक ३४.	२३९
श्लोक १०.	६७	श्लोक ३५.	२४३
श्लोक ११.	८१	श्लोक ३६.	२५१
श्लोक १२.	९१	श्लोक ३७.	२५८
श्लोक १३.	९८	श्लोक ३८.	२६०
श्लोक १४.	१०२	श्लोक ३९.	२७१
श्लोक १५.	१०७	श्लोक ४०.	२७३
श्लोक १६.	१११	श्लोक ४१.	२८१
श्लोक १७.	१२३	श्लोक ४२.	२९०
श्लोक १८.	१२७	श्लोक ४३.	२९३
श्लोक १९.	१३०	श्लोक ४४.	३०३
श्लोक २०.	१३९	श्लोक ४५.	३१७
श्लोक २१.	१४६	श्लोक ४६.	३२९
श्लोक २२.	१५१	श्लोक ४७.	३३२
श्लोक २३.	१६०	श्लोक ४८.	३४३
श्लोक २४.	१६४	श्लोक ४९.	३४६
श्लोक २५.	१७३	श्लोक ५०.	३४९

	पृष्ठ क्र.		पृष्ठ क्र.
श्लोक ५१.	३५४	श्लोक ७८.	४०७
श्लोक ५२.	३६१	श्लोक ७९.	४०८
श्लोक ५३.	३६३	श्लोक ८०.	४११
श्लोक ५४.	३६४	श्लोक ८१.	४१२
श्लोक ५५.	३६५	श्लोक ८२.	४१४
श्लोक ५६.	३६६	श्लोक ८३.	४१५
श्लोक ५७.	३६७	श्लोक ८४.	४१७
श्लोक ५८.	३६८	श्लोक ८५.	४२०
श्लोक ५९.	३७०	श्लोक ८६.	४२२
श्लोक ६०.	३७२	श्लोक ८७.	४२४
श्लोक ६१.	३७४	श्लोक ८८.	४२७
श्लोक ६२.	३७६	श्लोक ८९.	४३०
श्लोक ६३.	३८९	श्लोक ९०.	४३२
श्लोक ६४.	३८९	श्लोक ९१.	४३६
श्लोक ६५.	३७८	श्लोक ९२.	४४६
श्लोक ६६.	३७८	श्लोक ९३.	४३९
श्लोक ६७.	३८६	श्लोक ९४.	४४२
श्लोक ६८.	३८८	श्लोक ९५.	४४७
श्लोक ६९.	३८९	श्लोक ९६.	४५२
श्लोक ७०.	३९१	श्लोक ९७.	४५३
श्लोक ७१.	३९२	श्लोक ९८.	४५५
श्लोक ७२.	३९४	श्लोक ९९.	४६०
श्लोक ७३.	३९६	श्लोक १००.	४६२
श्लोक ७४.	३९८	श्लोक १०१.	४६९
श्लोक ७५.	४००	श्लोक १०२.	४७६
श्लोक ७६.	४०२	श्लोक १०३.	४८२
श्लोक ७७.	४०४	श्लोक १०४.	४८६
		श्लोक १०५.	४८८
		ध्यान	४८९

श्लोक–१

येनात्माऽबुध्यतात्मैव परत्वेनैव चापरम्।
अक्षयानन्तबोधाय तस्मै सिद्धात्मने नमः।।१।।

जो जानते अपर को अपरात्म रूप, औ आत्म को सतत वे सब आत्मरूप।
स्वामी! अमेय अविनश्वर बोध धाम, हो बार–बार उन सिद्धन को प्रणाम।।१।।

आत्म ज्ञानानुभूति

इस ग्रंथ के मंगलाचरण में सर्वप्रथम पूज्यपाद महाराज ने उस सिद्धात्मा के लिए नमस्कार किया है जिन्होंने आत्मा को आत्मा के रूप में ही जान लिया है। जिन्होंने अपनी आत्मा का अनुभव मात्र आत्मा की अनुभूति के रूप में किया है। जो पर है आत्मा से, उसे उन्होंने पर के रूप में ही देखा है। अपने आत्मतत्त्व को अपनी आत्मा के रूप में जानना और पर को पर के रूप में ही जानना, ये सिद्ध भगवान् के माध्यम से होता है। जानना और अनुभूत करना। जानने वाली जो क्रियाएँ होती हैं वे अनुभव करने के रूप में प्रयोग की जाती है। आचार्य कुंदकुंद देव ने भी अपने समयसार आदि ग्रंथों में जहाँ कहीं पर भी अपनी आत्मा को जानने की बात की है वहाँ पर आत्मानुभूति की बात की है। आत्मा को जानना तो एक ज्ञान के माध्यम से हो सकता है। मतिज्ञान श्रुतज्ञान के माध्यम से हो सकता है। उपदेश सुनकर के हम उस आत्मा के स्वरूप को माध्यम से जान सकते हैं। लेकिन यहाँ पर वो कह रहे हैं जिन्होंने आत्मा को आत्मा के रूप में जाना, उन्हें उस आत्मा की अनुभूति के समय पर न कर्म की अनुभूति होती है, न कर्म फल की अनुभूति होती है, न किसी इंद्रिय विषय की अनुभूति होती है और न ही उन्हें इस शरीर आदि नोकर्म की अनुभूति होती है। हम लोग कभी भी केवल आत्मा की अनुभूति नहीं कर सकते हैं। आत्मा की आत्मा के मुख से अनुभूति तभी होती है जब उस आत्मा में न कर्म हो और न ही नोकर्म हो। जो ज्ञानावरण,

दर्शनावरण आदि कर्म हैं और ये जो शरीर हैं वो नोकर्म कहलाता है। जब भी कभी अपनी आत्मा के बारे में थोड़ा सा भी ज्ञान होगा तो वह एक जानकारी कहलाएगा। ज्ञान में और जानकारी में बहुत अंतर होता है। जैसे जानकारियाँ अनेक प्रकार के गाइडों के माध्यम से विश्व की हम लेते रहते है लेकिन उन जानकारियों का नाम ज्ञान नहीं होता। उसी प्रकार से आत्मा की जानकारियाँ, आत्मा के बारे में सुनना, पढ़ना थोड़ा सा हमें मिलता रहता है, वस्तुत: वह आत्मा का ज्ञान नहीं होता है। उस आत्मा का ज्ञान जब अनुभूति में ढलता है तो वह **आत्मज्ञान** कहलाता है। वह आत्मज्ञान संसारी प्राणी का मुख्य रूप से गृहस्थ अवस्था में आचार्य कहते हैं कि वह सिर्फ एक श्रद्धान हो सकता है, सामान्य ज्ञान हो सकता है। आत्मा की अनुभूति अगर होगी तो वो परम योगी जो सिद्ध परमेष्ठी या अरिहंत परमेष्ठी उनको होती है अथवा उन मुनीश्वरों को होगी जो शुक्ल ध्यान आदि में लीन होते हैं। वह आत्मा की अनुभूति का एकमात्र उपाय होता है। हम जब भी आत्मा की अनुभूति लेने बैठेंगे, हमें हमेशा कर्म और नोकर्म की ही अनुभूति होगी। कभी भी हम कहीं पर भी रहें कितना ही हम आत्मा का ज्ञान कर लें लेकिन हमें आत्मा, आत्मा के रूप में ही ज्ञान में नहीं आ सकती। हमें नोकर्म की अनुभूति सतत बनी रहती है। नोकर्म का मतलब है शरीर की अनुभूति। कभी भी हम जाप देने बैठें, ध्यान में बैठें हमें वह शरीर की अनुभूति छूटती नहीं, वह केवल उन लोगों की छूट सकती है जो सतत ध्यान में लगे रहते हैं। लेकिन उसके बावजूद भी कर्म के फल की अनुभूति बनी ही रहती है। एकमात्र **जो शुद्ध आत्मा है** उसकी अनुभूति तो सिद्धालय में विराजमान उन सिद्ध परमेष्ठियों को होती है। सिद्ध भगवान् को ऐसा अनुभव मिला है कि अपनी आत्मा के अलावा किसी परद्रव्य का अनुभव नहीं होता है। हमने सुना है कि केवली भगवान् के व सिद्ध भगवान् के ज्ञान में ये पूरा लोक और अलोक प्रतिबिंबित होता है और वे हम सबके बारे में जानते हैं। उनका केवलज्ञान या दिव्यज्ञान सबके बारे में है इस संसार में जितनी भी आत्माएँ हैं या जितने भी द्रव्य हैं उन सबके बारे में जानते हैं। वे अगर सबके बारे में जानते हैं अथवा केवल अपनी आत्मा के बारे में जानते हैं तो ये थोड़ा विरोधाभास जैसा लगता है। वे भगवान् स्वयं को भी जानते हैं और पर को भी जानते हैं।

जो अनुभूति उन्हें होगी वो केवल अपने अंदर की आत्मिक सुख की होगी। दूसरे को वो जानेंगे लेकिन उसकी अनुभूति नहीं करेंगे। अगर वह सिद्ध भगवान् इस संसार के समस्त प्राणियों के दु:खों की अनुभूति करने लग जाएँ तो फिर वे अपनी आत्मा की अनुभूति कब करेंगे। इस संसार

में इतना दु:ख है कि अगर वह सबके दु:खों की अनुभूति करने लगेंगे तो वे हमसे ज्यादा दु:खी हो जाएँगे। हम अपने ही दु:ख को नहीं संभाल पा रहे हैं। हम अपने परिवार के दु:ख में इतने दु:खी हो जाते हैं तो जिनका ज्ञान इतना विशाल हो गया है कि वे दुनिया के समस्त जीवों के बारे में जानते हैं और सबके दु:खों को भी जानते हैं। अगर वे दु:ख की अनुभूति स्वयं करेंगे तो हम समझते हैं कि सिद्ध भगवान् से ज्यादा दु:खी जीव कोई नहीं होगा लेकिन ऐसा होता नहीं है। वह ज्ञान उनके अंदर इस प्रकार से हो जाता है जैसे कि दर्पण के सामने अपने आप वस्तुएँ छलकने लग जाती है। तालाब स्वच्छ हो तो अपने आप उसमें चाँद-तारे सब कुछ प्रतिबिंबित होने लग जाते हैं। जब ये आत्मा कर्म मल से स्वच्छ हो जाती है तो उस आत्मा में छह द्रव्य, अनंतानंत जीव ये सब उनके ज्ञान में प्रतिबिंबित होने लग जाते हैं। इसके लिए उन्हें कोई मेहनत नहीं करनी पड़ती है लेकिन भगवान् अपनी आत्मा के आनंद में लीन रहते हैं क्योंकि आत्मा का अनंत सुख उन्हें प्रकट हो चुका है। इसलिए हम उन सिद्ध भगवान् के लिए नमस्कार कर रहे हैं जिनके पास में अक्षय और अनंत बोध याने ज्ञान की प्राप्ति हो गई है। ऐसे उस केवलज्ञान को ही हम अनंत ज्ञान के रूप में स्वीकार करते हैं। वह अनंत पदार्थों को जानने वाला ज्ञान भी अनंतज्ञान कहलाता है। अनंत पदार्थों को देखने वाला वह दर्शन भी अनंतदर्शन कहलाता है। आचार्य कहते हैं अक्षय और अनंतज्ञान के साथ-साथ वह अनंत सुख की भी प्राप्ति हो जाती है, प्रवचनसार में आचार्य कुंदकुंद देव कहते हैं कि वह ज्ञान और सुख दोनों एक साथ इस आत्मा को प्राप्त होते हैं। अगर हमें उस केवलज्ञान की प्राप्ति हो गई तो अनंत ज्ञान के साथ-साथ अनंत सुख की भी प्राप्ति हो जाती है जिसे हम **'अनंतचतुष्टय'** बोलते हैं। अनंतदर्शन, अनंतज्ञान, अनंतसुख और अनंतवीर्य- ऐसी आत्मा की वह शक्ति जो इस अनंतज्ञान को देख सकती है। इन अनंतज्ञान के माध्यम से सभी पदार्थों को जान सकती है। वह अनंत चतुष्टय के रूप में प्राप्त हुई आत्मा की शक्ति अरिहंत परमेष्ठी में, सिद्ध परमेष्ठी में आ जाती है। इसलिए यहाँ पर जो सिद्धांतों के लिए नमस्कार किया है उसको हमने टीका में खोला है अगर यहाँ पर अरिहंतों के लिए भी नमस्कार किया है तो कोई गलत बात नहीं है। जो सिद्ध बनने ही वाले हैं उन्हें भी अनंतज्ञान व अनंत चतुष्टय की प्राप्ति हो जाती है तो अरिहंत परमेष्ठियों को भी नमस्कार कर लिया है।

सिद्ध भगवान् ने आत्मा को केवल आत्मा के रूप में ही जाना है। निश्चयनय से केवली भगवान् अपनी आत्मा को ही जानते हैं। **एक निश्चयनय होता है एक व्यवहारनय होता है।**

निश्चयनय हमें अभेद की ओर ले जाता है, व्यवहारनय हमें भेद की ओर ले जाता है। जब हमने अपनी आत्मा से भिन्न वस्तु का ध्यान किया तो वह व्यवहारनय का विषय होता है। आचार्य कुंदकुंद देव ने एक गाथा में लिखा है अगर केवली भगवान् सबको जानते और सबको देखते हैं तो यह व्यवहारनय का विषय है। व्यवहारनय को झूठा कहने वालों थोड़ा इस सच्चाई को पचाने का प्रयास करो। भगवान् ने हमको जाना, भगवान् ने हमारी पर्यायों को देखा क्योंकि भगवान् व्यवहारनय से ही सबको जान रहे हैं और व्यवहारनय से ही सबको देख रहे हैं। निश्चयनय से तो वे भगवान् केवल अपनी आत्मा को ही जानते व देखते हैं। अगर भगवान् संसार के चराचर सभी पदार्थों को वे जानते हैं, देखते हैं तो वो केवल व्यवहारनय का विषय होता है। अगर यह व्यवहारनय झूठा है तो फिर भगवान् के द्वारा बताया गया वह छह द्रव्य भी झूठा है। अगर यह व्यवहारनय एकांत से झूठा हो जाएगा तो वह भगवान् की दिव्य ध्वनि के माध्यम से जो संसार की चार गतियों का वर्णन किया जाता है नरक गति, देव गति, मनुष्य गति, तिर्यंच गति ये कौन से नय के माध्यम से भगवान् ने जाना और आपको बताया। निश्चयनय से किसी चीज की व्याख्या नहीं की जा सकती। निश्चयनय अनुभूति का विषय है वह एकमात्र आत्मा के अभेद रूप में जानने का विषय होता है। जैसे ही आत्मा के अलावा अन्य किसी विषय के बारे में हम जानते हैं अथवा उसकी व्याख्या करते हैं तो वह सब व्यवहारनय का विषय होता है। भगवान् जिस केवलज्ञान को धारण करते हैं वह भी उनके काम का नहीं। उनके काम का तो केवल आत्मज्ञान है चूँकि उन्हें अपनी आत्मानुभूति उस आत्मज्ञान से होने वाली है। केवलज्ञान से तो वे दूसरी वस्तुओं को जानते हैं। दूसरे का जानना सो व्यवहार है। वह व्यवहार अगर मिथ्या है या झूठा है तो फिर वह दिव्य ध्वनि को हम कैसे तरंगित करेंगे। भगवान् के द्वारा बताए हुए तत्व को किस रूप में स्वीकार करेंगे। भगवान् ने हमें बताया है कि किसकी परिणति किस रूप में होने वाली है। इस परिणति को तो हम स्वीकार कर लेते हैं कि भगवान् ने जैसा देखा वैसा ही होना है। जो जो देखी वीतराग ने, सो सो होये वीरा, अनहोनी कबहु न होवे, काहे होत अधीरा रे। पहले ये तो बताओ कि भगवान् ने तुम्हारी परिणति देखी या अपनी परिणति देखी। यदि तुम्हारी देखी है तो आचार्य कहते हैं व्यवहारनय से देखी और अगर तुम्हारी परिणति सही हो रही है मतलब व्यवहारनय का विषय सही है। व्यवहारनय को एकांत रूप से हम झुठला नहीं सकते हैं। आचार्य समंतभद्र जी ने, आचार्य अकलंकदेव जी ने, आचार्य विद्यानंदी महाराज ने दोनों नयों की समायोजना इस ढंग से की है कि उन्हीं के बताए

हुए न्याय शास्त्रों पर आज ये जैन दर्शन टिका हुआ हमारे पास आया है। जिस समय पर आचार्य समंतभद्र थे तब भारत में बौद्ध धर्म का अच्छा खासा प्रचार था। आचार्य अकलंक देव को धर्म की रक्षा करने के लिए अपने भाई की कुर्बानी देनी पड़ी थी। हमें सबका सम्मान करना है। जिन आचार्यों ने जैन धर्म के रक्षण के लिए अपना योगदान दिया, हमें उन सबके चरणों में नतमस्तक होकर के अपनी श्रद्धा को उनके सामने रखना पड़ेगा, तभी हम जैन दर्शन को समझ पाएँगे। बौद्ध दर्शन, सांख्य दर्शन, नैयायिक दर्शन, मीमांस दर्शन, ब्रह्म का अब्रह्म का दर्शन ऐसे अनेक दर्शन हैं जिनके सामने इस जैन दर्शन को आचार्यों ने न्याय के माध्यम से रखा है और उन्हीं ने जैन दर्शन को सुरक्षित रखा है।

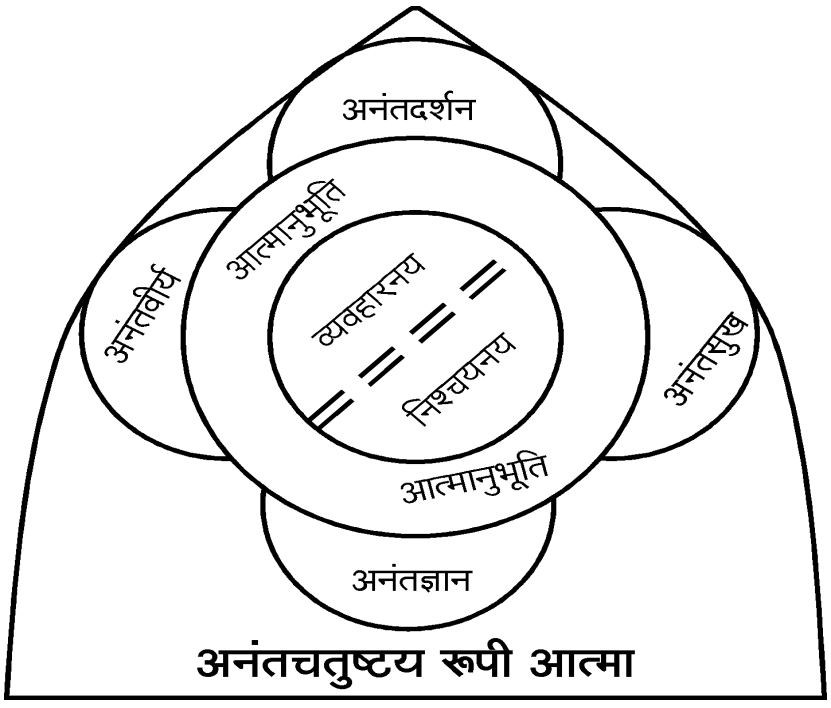
आचार्य कुंदकुंद देव के अनुसार व्यवहारनय के माध्यम से ही हम पर पदार्थों को जानते हैं और उन्हें समझ सकते हैं। पर पदार्थ का ज्ञान यथार्थ है, यह कभी भी अयथार्थ नहीं हो सकता है। अक्षय और अनंतज्ञान को धारण करने वाले सिद्ध भगवान् के चरणों में नमोस्तु करते हुए इस समाधि तंत्र ग्रंथ का प्रारंभ हो रहा है, जिन्होंने उस अक्षय अनंत सुख को भी प्राप्त कर लिया है उनको उस **अव्याबाध सुख** की भी प्राप्ति हो रही है। इन दोनों में कोई विशेष अंतर नहीं है। सिद्ध भगवान् के आठ गुणों में एक अव्याबाध गुण भी आता है। ये अरिहंत परमेष्ठी में भी होता है एवं सिद्ध परमेष्ठी में भी होता है। अव्याबाध सुख व अनंत सुख एक ही है। आचार्य कुंदकुंददेव ने पंचास्तिकाय में बताया है कि वह अरिहंत भगवान् भी अव्याबाध और अनंत सुख को प्राप्त कर लेते हैं अर्थात् अब उसे कोई भी, कभी भी, किसी भी प्रकार की बाधा नहीं होगी। जब तक शरीर रहता है तब तक बाधाएँ हमको भी आपसे हो सकती है और आपको भी हमसे हो सकती है। जब यह शरीर छूट जाता है तो केवल आत्मा ही रह जाता है और वह अदृश्य हो जाता है तो उस समय पर उस आत्मा को किसी से बाधा होती ही नहीं। उन आत्माओं को जो इस संसार में है उनको भी इनसे बाधा नहीं होती है जो सिद्ध बन जाते हैं। आप सोचेंगे कि अरिहंत परमेष्ठी को भी किसी से बाधा हो सकती है या कोई उनके लिए भी बाधा उत्पन्न कर सकता है। संसार में सब तरह के जीव हैं। मिथ्यादृष्टि भी और सम्यग्दृष्टि भी। भगवान् महावीर के सामने भी सब प्रकार के जीव रहे। सबको महावीर भगवान् अच्छे लगते हों, जरूरी नहीं है। सबको आदिनाथ भगवान् अच्छे लगे हों, जरूरी नहीं है। आदिनाथ भगवान् के ही वंश में उत्पन्न हुआ उनका ही पोता मारिची को ही आदिनाथ भगवान् पसंद नहीं आए। उसे उनका समवसरण अच्छा नहीं लगा। वो समवसरण से

उठकर चला जाता है और कहता है कोई सर्वज्ञ नहीं होता, सब बातें हैं और ये सब इन्होंने अपने मोह का विस्तार कर रखा है। कितने ही चारों ओर चंवर ढुर रहे हैं, सिद्धासन पर बैठे हैं, छत्र लटक रहे हैं, पुष्पवृष्टियाँ हो रही हैं, बारह सभाएँ लगी हुई हैं। इन सभाओं में भी अपने बेटे भरत चक्रवर्ती को भी सबसे आगे बैठा रखा है। वृषभ सेन को सबसे पहले गणधर बना दिया। उनके बेटे का बेटा। हमारा कहीं नंबर ही नहीं आया। इन सबसे उसे ईर्ष्या हो गई और वह समवसरण को छोड़कर चला गया। अरिहंत पद से भी दूसरे जीवों के मन के अंदर कलुषता आ सकती है। जब तक शरीर है दूसरे को बाधा हो सकती है। भगवान् महावीर के समय पर ऐसे भी जीव थे जो भगवान् महावीर की दिव्यवाणी का रसपान करते थे और ऐसे भी जीव थे जो उनके समवसरष में या तो जाते ही नहीं थे या जा नहीं सकते थे। ये तो हमेशा से होता आया है।

अव्याबाध माने बिना किसी बाधा के जीना। वह तब होता है जब वह आत्मा पूर्ण शुद्ध आत्मा बन जाती है। नोकर्म इस शरीर से भी रहित हो जाती है, कर्म से भी रहित हो जाती है। किसी भी प्रकार के बाधा के बिना अगर इस संसार में कोई जीने वाला है तो वह संसार के ऊपरी भाग में बैठे हुए सिद्ध भगवान् ही हैं। एक सिद्ध भगवान् की अवगाहना जितने क्षेत्र में होती है, उतने क्षेत्र में अनंत भी सिद्ध भगवान् पहुँच जाए तो वे किसी से बाधित नहीं होते क्योंकि अमूर्त रूप में आत्मा का परिणमन हो गया है। सब अपने-अपने में ही लीन रहती है। वे दूसरी आत्माओं को भी जानती हैं परंतु उन्हें किसी से कोई बाधा नहीं होती है। ऐसी ही आत्मा बनना है जिन आत्माओं के अंदर ऐसी क्षमता आ जाती है उन्हें इस संसार में कोई भी बुरा नहीं लगता, किसी को अपने से दूर नहीं हटाते। सब उनके अंदर समाहित होते चले जाते हैं, उसी को कहते हैं **परम ब्रह्म सिद्ध परमेष्ठी** सिद्ध परमात्मा।

बहुत से लोग रोजाना णमो अरिहंताणं और णमो सिद्धाणं तो पढ़ते हैं लेकिन उन्हें जानकारी नहीं होती कि णमो सिद्धाणं क्या होता है। उन्हें विश्वास नहीं होता कि क्या कोई आत्मा बिना शरीर के भी हो सकता है। लोग इतने प्रश्न करते हैं कि महाराज वहाँ बिना शरीर के कैसे आत्मा रह सकती है, वहाँ क्या करती है बोरियत नहीं होती उनको। चलो आपने चिंता तो की, कैसे ही सही। उन्हें बोरियत नहीं होती क्योंकि उनके पास में कोई बोरी-बिस्तर नहीं है। उन्हें जैसा आत्मा का स्वरूप था वैसा उन्हें प्राप्त हो गया। बाकी का जो हमें दिखाई दे रहा है यह सब पर द्रव्य है, ऊपर से चिपका है। ये जब हमसे छूटता है तो हमें कष्ट होता है। आत्मा का अपना जो सुख होता है वह उन्हें प्राप्त

हो चुका है। वह सब प्रति समय नया-नया होता है चूँकि आत्मा के प्रत्येक गुण में वो पर्याय निकलती रहती है और वे पर्याय प्रति समय नई-नई निकलती है। नई-नई पर्याय का अनुभव करने वाले सिद्ध परमात्मा ही होते हैं। हम लोग/आप लोग तो सब पुराना ही अनुभव करते हैं। यह शरीर है ६० वर्ष पुराना हो या ४० वर्ष पुराना हो, उसी से जी रहे हैं लेकिन वो सिद्ध भगवान् हमेशा-हमेशा नई-नई पर्याय की अनुभूति करते हुए नए-नए सुख का हर समय पान करते हैं। ऐसी यदि सिद्ध भगवान् के प्रति धारणा बन जाती है और णमो सिद्धाणं के जाप का आनंद आ जाता है तो समझना हमने कुछ सीखा है। वो सिद्ध भगवान् शरीर से रहित है, अष्ट कर्मों से रहित है, उनके चरणों में हमारी यहाँ से भी श्रद्धा से नमोस्तु पहुँचती है। जैसे शीशे के सामने खड़े होकर के जब अपना मुख देखते हैं ऐसे ही अनंत सिद्धों के उस निर्मल ज्ञान में हमारा झुकना, मन-वचन-काय द्वारा नमोस्तु ज्ञापन करना वो सब उनके ज्ञान में झलकता है। उस झलकन को हम अपने भी ज्ञान में देखें और उनके ज्ञान में भी देखें तब वास्तव में हमारा उन्हें द्वैत नमस्कार भी एक अद्वैत नमस्कार के रूप में हो सकता है। हम उन्हें नमोस्तु कर रहे हैं, ये उनके ज्ञान के परिणमन में है। ऐसा देखकर हमारे अंदर अपने आप निश्चिंतता आ जाती है और विशुद्धि भी उत्पन्न हो जाती है जो विशुद्धि हमें मोक्ष मार्ग में आगे बढ़ाने वाली होती है। ऐसी विशुद्धि आप सबके लिए बढ़े।



श्लोक- २

जयन्ति यस्यावदतोऽपि भारती विभूतयस्तीर्थकृतोप्यनीहितुः।
शिवाय धात्रे सुगताय विष्णवे जिनाय तस्मै सकलात्मने नमः।।२।।

सम्माननीय जिनकी वह भारती है, अत्यन्त तीर्थ–कर संपत्ति शोभती है।
धाता, महेश, शिव, सौगत नामधारी, बंदू उन्हें जिनप जो जग आर्त–हारी।।२।।

जिनेन्द्र देव नमन

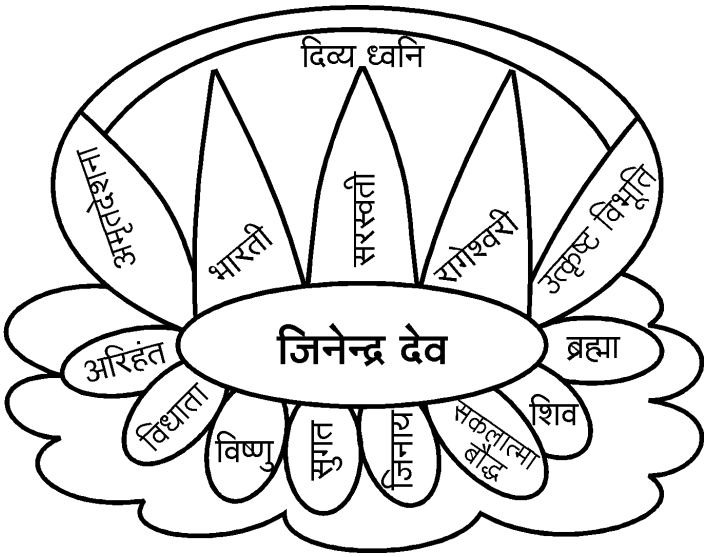
यह उपजाति छंद कहलाता है।

प्रथम श्लोक में मुख्य रूप से सिद्ध भगवान् को नमस्कार किया था अब दूसरे श्लोक में अरिहंत भगवान् को नमस्कार कर रहे हैं। भगवान् की दिव्य ध्वनि को ही भारती कहते हैं, सरस्वती अथवा बागीश्वरी भी कहते हैं और उसी को हम उत्कृष्ट विभूति के रूप में कहते हैं। वह भगवान् जिनेंद्र देव की भारती जयवंत होए। बिना बोले बिना इच्छा के तीर्थंकर की वाणी खिरती है। जो अरिहंत भगवान् हैं उन्हीं को हम शिव कहते हैं। शिव का मतलब होता है जो कल्याण कृत हो, जो मोक्ष में स्थित हो। शिवाय धात्रे- जो इस धरती का पालन करने वाले हों उन्हीं को विधाता कहा जाता है। ब्रह्म या विष्णु एवं सुगताय विशेषण वस्तुत: बौद्ध के लिए लगाते हैं। यहाँ पर आचार्य महाराज ने सभी विशेषण अरिहंत के लिए लगाए हैं। सुगत का अर्थ है जो अच्छी तरह से जानते हों। सभी पदार्थों को अच्छी तरह से जानने वाले को सुगत कहते हैं, उन्हें हमारा नमस्कार हो। विष्णु का मतलब है सभी की रक्षा करने वाले। जिनके पास में अनंत शक्ति रहती है ऐसे विष्णु भी भगवान् अरिहंत देव ही होते हैं। वे जिनाय जिन्होंने अपनी इंद्रियों और कषायों को जीत लिया है, ऐसे वे जिन अरिहंत देव ही कहलाते हैं, उनके लिए मेरा नमस्कार हो। सकल आत्मा अर्थात् जो शरीर से सहित है ऐसी उस अरिहंत आत्मा के लिए मेरा नमस्कार है। आर्हत् भाष्य में बताया

है कि भगवान् अगर बोलते नहीं हैं तो इसका मतलब क्या है? भगवान् की दिव्यवाणी अमृतपने को प्राप्त होती है और इसलिए दिव्यवाणी का पान करके लोग जन्म, जरा और मृत्यु से छूट जाते हैं। यही उस अमृत का अर्थ होता है जिसको प्राप्त करने के बाद में मृत्यु न हो। कल्याण मंदिर स्तोत्र में भगवान् की दिव्य ध्वनि के लिए ऐसा कहा गया है। वह **दिव्य ध्वनि** जो अमृतदेशना है वह भव्यजीवों के पुण्य से होती है क्योंकि भगवान् का विहार आर्यखंड में होता है, मलेच्छ खंड में नहीं होता। मलेच्छ खंड के मनुष्यों को भगवान् की दिव्य ध्वनि का पान नहीं होता है और आर्यखंड में भी कुछ विशिष्ट स्थानों पर ही भगवान् का जाना होता है। आप लोग कुछ भी सोच सकते हो कि भगवान् वहीं-वहीं क्यों जाते हैं। भगवान् महावीर का सबसे ज्यादा रहना बिहार के राजगृही में हुआ। उनका समवसरण विपुलाचल पर्वत पर सबसे ज्यादा लगा। आपको लगेगा कि भगवान् को अपने जन्म स्थान से राग होगा। वासुपूज्य भगवान् के तो पाँचों कल्याणक चंपापुरी में हुए तो आप सोचेंगे कि भगवान् को चंपापुरी से राग हुआ होगा, वहाँ बहुत अच्छा लगता होगा। यह हमारे ज्ञान में आ सकता है क्योंकि हमारा ज्ञान हमेशा-हमेशा राग और द्वेष से मिश्रित रहता है। हम हमेशा अपने ढंग से ही सोचते हैं लेकिन भगवान् के अंदर किंचित् मात्र भी राग अवशिष्ट नहीं रहा है। भगवान पूर्ण वीतराग हो चुके हैं उसके बावजूद भी उनकी चेष्टाएँ बड़ी संभली हुई है। अब आप सोचेंगे कि हे भगवान् आपकी चेष्टाएँ अचिन्त्य है जो हमारे द्वारा सोची नहीं जा सकती, हम किसी निष्कर्ष पर नहीं पहुँच पाते हैं, यही आपकी दिव्यता है। ऐसी वह दिव्य ध्वनि सबके हृदय को आनंद देने वाली है, वही सबसे बड़ी विभूति है।

आचार्य महाराज ने कहा है कि वह विभूति हमेशा-हमेशा जयवंत रहे यानी हमेशा-हमेशा वह इस धरती पर बनी रहे एवं भव्यजीवों के कल्याण के लिए प्रवृत्ति करती रहे। उस दिव्य ध्वनि को धारण करने वाले ऐसे शिव जिन्हें मोक्ष एवं कल्याण भी कहते हैं। इस कल्याण को जो प्राप्त कर लिए हैं ऐसे अरिहंत भगवान् को हम नमस्कार कर रहे हैं क्योंकि सबसे बड़े अरिहंत शिव ही हैं। धाता यानी विधाता है। लोग कहते हैं कि इस विधाता ने ही इस सृष्टि की रचना की है। सब कहते हैं तो आप भी कहते होंगे जब कष्ट आता होगा तब जरूर कहते होंगे कि क्यों मुझे यहाँ इस दुनिया में भेज दिया। आपकी भी यही धारणा रहती है कि ईश्वर ने इस सृष्टि को बनाया है, ईश्वर ने ही हमें दु:खी या सुखी बनाया है। अगर आप थोड़ा भी जैन दर्शन सिद्धांत अच्छे ढंग से पढ़े तो आपकी ये धारणाएँ टूट जायेंगी। आपका यह विचार दृढ़ हो जाना चाहिए कि इस सृष्टि

को बनाने वाला कोई भी ब्रह्मा नहीं है। ये सृष्टि अपने आप बनी हुई है और छह द्रव्यों के माध्यम से ये सृष्टि की परिकल्पना जो अरिहंत भगवान् ने अपनी दिव्य ध्वनि के माध्यम से हम लोगों तक दी है, उन छह द्रव्यों को न कोई मिटाने वाला है न कोई बनाने वाला है। भगवान् विधाता तो है लेकिन वे शांति के विधाता हैं संतति को, संसार को करने वाले नहीं हैं। जिनेंद्र भगवान् ने शांति का मार्ग बताया है। ये संतति, संसार तो अपने आप चल रहा है और इसमें रहने वाले जो जीव हैं वो अपने-अपने कर्मों के माध्यम से ही अनेक-अनेक गतियों में रहकर के उसकी पर्यायों को प्राप्त करते हैं और उस संसार का संचालन अपने आप चलता रहता है। भगवान् हमारा लेखा-जोखा करने वाले नहीं है वह हमारी ही 'सिम' में पड़ा हुआ है। मोबाइल के अंदर जो सिम रहती है उसी में सब कुछ पड़ा रहता है, उसी प्रकार से हमारी आत्मा के अंदर जो कर्म रहते हैं वो सब 'फीड' करते रहते हैं। उसी के माध्यम से इस संसार का संचालन इस आत्मा का संचालन चलता रहता है। पर हमारी मान्यता में ये बैठा है कि भगवान् ही सब कुछ करते हैं। हमें अपनी धारणाओं को थोड़ा सा परिवर्तित करना होगा क्योंकि हम सम्यक ज्ञान की आराधना कर रहे हैं। मिथ्याज्ञान हमारे अंदर कूट-कूटकर भरा है। अब हम अपने विचारों को बदलें और समझें कि 'सुगत' यानी कि जिनका ज्ञान पूरे लोक में व्याप्त है, समस्त चर-अचर का ज्ञान हो जाता है। विष्णु- अर्थात् अनंतवीर्य की जिनके अंदर प्रकटता हो जाती है, शिव भगवान्, ये सब अरिहंत देव के ही विशेषण हैं ऐसे जिनेंद्र देव को हम नमस्कार करते हैं।



श्लोक- ३

श्रुतेन लिङ्गेन यथात्मशक्ति समाहितान्तःकरणेन सम्यक्।
समीक्ष्य कैवल्यसुखस्पृहाणां विविक्तमात्मानमथाभिधास्ये।।३।।

शास्त्रानुसार निज बोध–बलानुसार, एकाग्र चित्त कर युक्तिमतानुसार।
शुद्धात्म–तत्त्व उनको कहता यहाँ मैं, जो चाहते सहज सौख्य प्रभो! सदा हैं।।३।।

यहाँ पर प्रतिज्ञा की जा रही है ग्रंथ को बनाने की। यहाँ पर उस आत्मा की चर्चा की जाएगी जो सभी द्रव्यों से पृथक् है। जो आत्मा विविक्त अर्थात् पवित्र है। इस आत्मा की इच्छा वो करते हैं जिनको केवल ज्ञान के साथ में उत्पन्न होने वाले सुख की इच्छा है। ऐसे भव्य जीवों के लिए उस विविक्त माने विशुद्ध आत्मा का हम कथन करेंगे, उस जिनवाणी के माध्यम से जो हमें आचार्य परंपरा से प्राप्त हुई है, जो सर्वज्ञ देव से साक्षात् संबंध रखती है। यह जिनवाणी परोक्ष प्रमाण के रूप में हमारे पास में है। हम अपने ज्ञान के क्षयोपशम के अनुसार अपने आत्मतत्व का विवेचन मन की एकाग्रता के साथ प्रमाद रहित होकर अच्छी तरह से सोच-समझकर करेंगे। समयसार में आचार्य कुंदकुंद देव प्रतिज्ञा कर रहे हैं कि इस ग्रंथ में एकत्व-विभक्त की चर्चा करेंगे अर्थात् वह आत्मा जो सभी पदार्थों से, कर्म से, नोकर्म से अलग हो, वह शुद्ध आत्मा हो। उसी शुद्ध आत्मा का ज्ञान देने के लिए आचार्य पूज्यपाद महाराज ने प्रतिज्ञा की है।

भक्त से भगवान

जैसे समयसार में आचार्य कुंदकुंद ने कहा है जिनको इन विषयभोगों को सुनकर के उनका परिचय करके यह लगने लगा हो कि इनको हमने अनंत बार भोगा है। उसी प्रकार से यहाँ पर आचार्य पूज्यपाद देव कह रहे हैं जिन्हें अंदर से इच्छा हो कि हमें कैवल्यसुख की एवं आत्मा के

अनंत सुख की प्राप्ति करनी है। उनके लिए ये आत्मा की कथा है और बाकी विषय भोगों की कथा तो सबके लिए सब जगह सर्वत्र सुलभ है। जैनदर्शन से शुद्ध आत्मा की कथा उन्हीं के लिए रुचती है जिन्हें उस शुद्ध आत्मतत्व से उत्पन्न हुए कैवल्यज्ञान की प्राप्ति होने के बाद में जो आत्मा का सुख होता है उसकी इच्छा हो। जैनदर्शन केवल भक्त को भक्त ही नहीं बनाए रखता। वह भक्त को भी भगवान् बनाने की एक प्रक्रिया बताता है। यह भक्त भगवान् बन जाता है जब वह भगवान् के बताए हुए मार्ग पर चलता है। यदि हम भक्त नहीं बन सकते तो कभी भगवान् नहीं बन सकते। पहले भक्त बनो फिर भगवान् बनोगे। भक्त नहीं, भगवान् बनें ये कहना गलत है। हम पहले से सिर पर खड़े हो गए, पैरों पर खड़े होना तो हमने सीखा ही नहीं। भगवान् की भक्ति करना हमने सीखा ही नहीं। जैसे ही हमें थोड़ा सा ज्ञान आया तो हम ऊँची-ऊँची बातें करने लगे। इधर आचार्य कहते हैं अपने अंदर ऐसी इच्छा तो पहले उत्पन्न करो कि हमें कब वह केवलज्ञान की प्राप्ति होगी, कौन करता है ऐसी इच्छाएँ। सबकी इच्छाएँ तो घरों से संबंधित होती है। महाराज, उसी में लगे रहते हैं। बच्चों को स्कूल भेजते हैं, घर के काम निपटाते हैं, दोपहर का खाना/चौका आदि निपटता है तो शाम की तैयारी शुरू कर देते हैं, वो निपटाकर थोड़ा टी.वी. देख लेते हैं। अब इतनी बिजी लाइफ है हमारी, अब इसमें नई भावना, नई इच्छा ये केवल सुख की इच्छा करें। घर का सुख तो मिल जाए। हमें घर का सुख तो इतना ही मिला है, इतना ही मिलेगा। जिंदगी भर कितनी भी मेहनत कर लो, कितने ही हाथ-पैर पटक लो, घर का सुख अभी जितना मिलना था उतना ही मिलेगा। जो व्यक्ति थोड़े में संतुष्ट नहीं होता है वह सब कुछ पाकर भी कभी संतुष्ट नहीं हो सकता। जो थोड़े में संतुष्ट हो जाता है वह सब कुछ पाकर के भी उतना ही संतुष्ट रहता है जितना वह थोड़े में संतुष्ट था। जो अपने पुण्य से थोड़ी दौलत, शोहरत हमें मिली है उसमें यदि हमें संतुष्टि नहीं है तो हम कितना ही भाग-दौड़ कर लें वह सुख संतुष्टि हमसे दूर भागती रहेगी। आज के जमाने में सब कुछ मिल रहा है लेकिन सुकून नहीं है। थोड़ी संतुष्टि बस उतनी ही देर रहती है जब तक आप महाराज के पास बैठ जाते हैं या उनके उपदेश सुन लेते हैं और जैसे ही आप ये सभा छोड़ते हो तो वो ही दिखाई देता है वही चौका चूल्हा और वही दुकान व मकान। यदि थोड़ी देर के लिए ही आपकी भावना परिवर्तित हो तो अच्छी बात है।

आप मन में ये भावना करना कि हे भगवान् हमें इस संसार के दु:खों से मुक्ति दिला दो, अपने ही जैसा सुख हमें प्राप्त करा दो। हम समझते नहीं कि भगवान् के पास में क्या सुख है पर

हम अच्छी भावना ही कर रहे हैं। दुनिया के तमाम सुख की इच्छाएँ हमने अनंत बार की है और उन इच्छाओं की पूर्ति भी हो चुकी है लेकिन कभी भी हमारी इच्छाओं का अभाव नहीं हुआ। हमारी वह तृष्णा, हमारा वह लोभ कभी भी पूर्ण रूप से मिट नहीं पाया। इसलिए एक बार ऐसी इच्छा करो कि बाद में कोई इच्छा करना रह ही नहीं जाए। अगर आपके अंदर ऐसी भावना कभी भी आ जाती है चुपके-चुपके ही सही अगर आपके मन में ये भाव आ रहा हो कि हे भगवान् हमें आपके जैसे ही शुद्ध, शांत, सुखी बनना है तो समझना आपके अंदर **भव्यता** का अंकुर फूट रहा है। उस भव्यता के माध्यम से आप भगवान् की राह पर चल रहे हैं। अगर आपके अंदर यह कोई इच्छा नहीं हैं, थोड़ा सा ज्ञान आ गया, उस ज्ञान को बघारने लगे, अपने मन के अंदर से विषय लोलुपता छूट नहीं रही और हम भगवान् के सामने कह रहे हैं कि भक्त नहीं भगवान् बनेंगे। पहले भक्त बनो, अगर आप अच्छे भक्त बन जाओगे तो नियम से भगवान् आपको अपने जैसा बना लेंगे क्योंकि जैन शासन में भगवान् अकेले भगवान् नहीं रहते हैं और बाकी सब भक्त बने रहेंगे। जो दुनिया में ईश्वर की परिपाटी रही है वो एक ही ईश्वर है, एक ही भगवान् है और उस एक ही भगवान् के हम सभी अंश है। हम सभी को ब्रह्म में विलीन हो जाना है ऐसा लोग मानते हैं। उस एक ब्रह्मा के अस्तित्व को नकार नहीं पाते हैं। जैन दर्शन में भगवन् कहते हैं आप हम जैसे हैं, आप भी हमारे जैसे बन सकते हो। कभी भी अपने को दीन-हीन मत बनाना और ऐसा कभी मत सोचना कि हमारे अंदर भगवान् बनने की क्षमता नहीं है। क्षमता है और वह थोड़ी-थोड़ी मन की इन्हीं अच्छी भावनाओं से अभिव्यक्त होगी। ये भावनाएँ अगर आपके अंदर बनी रहेगी तो यह ग्रंथ आपके लिए बहुत अच्छे से समझ में आएगा।

शुद्ध आत्मा की बात और वह एकत्व-विभक्त आत्मा की बात और वह परद्रव्यों से भिन्न आत्मा का स्वरूप उन्हीं के लिए अच्छा समझ में आता है जिन्हें उस स्वरूप को प्राप्त करने की भी इच्छा हो। यदि उस स्वरूप को प्राप्त करने की इच्छा नहीं है तो हम कितने ही व्याख्यान सुन लें, कुछ लाभ होने वाला नहीं है। भूख तभी मिटती है जब हम भोजन की केवल चर्चा ही न करें, उस भोजन का थोड़ा सा पान भी करें। रसगुल्ला बहुत अच्छा होता है, मीठा होता है, चाशनी में रमा होता है, उसका स्वाद क्या होता है कह नहीं सकते। कब तक उस रसगुल्ले की चर्चा करते रहोगे। कम से कम रसगुल्ला नहीं खाना आ रहा तो उसकी चाशनी ही खाने का प्रयास करो। खाई है कभी चाशनी। कभी घरों में या रिसेप्शन में यदि रसगुल्ले खत्म हो गए और आपको सिर्फ

चाशनी ही मिली तो उस चाशनी में भी आपको रसगुल्ले का स्वाद आ सकता है। रसगुल्ला जो शुद्ध आत्मा की अनुभूति होती है वो तो मुनि महाराज बनकर के ही होगी। उसके लिए आपको बहुत मेहनत करनी पड़ेगी। अगर उस रसगुल्ले को खाने वाले आपको थोड़ी सी चाशनी भी दे रहे हैं उसे भी आप अच्छे से खाने का प्रयास करना। आपको उसमें उसी रसगुल्ले का स्वाद आएगा। यदि आपने थोड़ा भी नाक-मुँह चढ़ाया कि हमें वो नहीं मिला तो ये आपका बचपना हो जाएगा, आपके हाथ से सब कुछ निकल जाएगा। आप कुछ नहीं तो इतना ही प्रयास करें कि हमारे अंदर जितनी शक्ति है उसी शक्ति से आपकी वाणी का श्रद्धान करते हुए अपनी सामर्थ्य के अनुसार उन नियम और व्रतों का पालन करते हुए भगवान् की वाणी का पान करेंगे। यही यदि हम कर लेंगे तो भी वो हमारे लिए आनंदमयी होगा।



श्लोक-४

बहिरन्तः परश्चेति त्रिधात्मा सर्वदेहिषु।
उपेयात्तत्र परमं मध्योपायाद् बहिस्त्यजेत्।।४।।

आत्मा यही त्रिविध है सब देहियों में, आदेय है परम आतम पे सबों में।
तो अन्तरात्म शिवदायक है उपेय, धिक्कार! हाय! बहिरातम निंद्य हेय।।४।।

त्रिविध आत्मा

सभी देहधारियों में, जितने भी इस संसार में जीव हैं उन सभी जीवों में तीन प्रकार की आत्मा रहती हैं। वह तीन प्रकार की आत्मा है बहिर् माने बहिर्आत्मा, अंत: माने अंतरात्मा और पर माने परम आत्मा। तीन प्रकार की आत्मा शक्ति रूप में हर एक आत्मा के अंदर विद्यमान हैं। अगर हम देखें अभव्य जीव भी इस संसार में रहते हैं और भव्य जीव भी इस संसार में रहते हैं। अभव्य जीव व भव्य जीव दोनों में तीन प्रकार की आत्मा रहती है। आचार्य कहते हैं कि अभव्य जीव में अंतरात्मा व परमात्मा का वास है। देह में तीन प्रकार की अवस्था देखी जाती है- बाल अवस्था जिसे हम शैशव अवस्था कहते हैं, यौवनावस्था जिसे युवावस्था कहते हैं और जरा: अवस्था याने कि बुढ़ापा। ये तीन प्रकार की देह की अवस्था प्रत्येक शरीरधारी की होती है। आत्मा की तीन अवस्थाओं का यहाँ पर वर्णन है। जैसे देह की ये अवस्थाएँ एक साथ नहीं होती हैं वैसे ही आत्मा की यदि एक अवस्था है तो दूसरी अवस्था उस समय नहीं रहती। हम तीन अवस्था को आत्मा की देह की पर्याय समझ सकते हैं। देह का तीन प्रकार की पर्याय के रूप में परिणमन चलता रहता है। जब बचपन की शैशव अवस्था छूट जाती है तब युवावस्था आती है। जब युवावस्था छूट जाती है तो वृद्धावस्था की पर्याय आ जाती है। देह की ये तीनों प्रकार की पर्याय हमें अनुभूत है और इनका अनुभव हमने प्रत्येक जन्म में किया है। आचार्य यहाँ पर देह की तीन अवस्थाओं की बात नहीं कर रहे हैं अपितु

देह के अंदर विराजमान वह आत्मा या परमात्मा की भी तीन प्रकार की अवस्थाएँ होती हैं उनका वर्णन किया जा रहा है। अनंतकाल से आत्मा एक ही अवस्था में रहती आई है। देह की पर्याय तो अपने आप बदलती रहती है। उसका परिणमन चलता रहता है लेकिन आत्मा की यह पर्याय अपने आप प्राप्त नहीं होती। आचार्य कहते हैं अनादिकाल से ये आत्मा बहिरात्मा अवस्था में ही रही है इसलिए इसे बहिरात्मा कहा गया है। बहिरात्मा से अंतरात्मा इसे बनना होगा, पुरुषार्थपूर्वक बनना होगा, बुद्धिपूर्वक बनना होगा। ऐसा कभी नहीं हो सकता कि अपने आप हमारी कोई काललब्धि आ जाएगी और हम अपने आप बहिरात्मा अवस्था से अंतरात्मा अवस्था में चले जाएँगे और फिर परमात्मा बन जाएँगे। अपने आप सोते-सोते, पड़े-पड़े ये अवस्थाएँ कभी भी प्राप्त नहीं होती है। यदि अपने आप ऐसा होना होता तो अनादिकाल जो अनंतकाल के रूप में हमसे बीत गया है, अभी तक हो गया होता। उस अनंतकाल में अनंत तीर्थंकर हो चुके। महाराज, भूतकाल के चौबीस तीर्थंकर ही पता है हमें। वर्तमानकाल के तुरंत पीछे जो भूतकाल है उसकी गणना हम कर लेते हैं लेकिन काल का कभी भी अंत नहीं होता। न कभी क्षेत्र का अंत हुआ है न कभी जीव आदि द्रव्यों का अंत हुआ है। जब उस भूत के पीछे भी और भूत है तो उसका हमें कोई छोर नहीं मिलेगा। जिसका कोई आदि अर्थात् प्रारंभिक अवस्था न हो उसको हम कहते हैं अनादि।

इसलिए आचार्य कहते हैं अनादिकाल से जीव इस संसार में है। उस अनादिकाल के बीच में हमारे सामने, हमारे पीछे अनंत तीर्थंकर भी जा चुके हैं और अनंत सामान्य आत्माएँ भी मोक्ष को प्राप्त हो चुकी है। हमारी काललब्धि अभी तक क्यों नहीं आई। अपने आप यदि काललब्धि को आना होता जब अनेक महापुरुष जो अनादिकाल से इस संसार में थे और हम भी हैं। जब दोनों का अनादिकाल से इस संसार में रहना हो रहा है तो एक को मोक्ष हुए, परमात्मा बने हुए अनंतकाल बीत गया और हमको अभी तक अपनी सुध नहीं आ रही है। इसका मतलब है कोई भी काल हमारे लिए हमारी आत्मा की अवस्था को परिणमन नहीं करा सकता है। हमारी आत्मा की अवस्थाएँ अगर बदलेगी तो वो हमारे पुरुषार्थ से। बहिरात्मा से अंतरात्मा बनने का हमें पुरुषार्थ करना होगा। जब अंतरात्मा बनकर हम पुरुषार्थ करेंगे तो हम परमात्मा बन सकेंगे। परमात्मा बनने में हमें भले ही कम पुरुषार्थ करना पड़े लेकिन सबसे बड़ा पुरुषार्थ हमें अभी करना होगा क्योंकि हमें जमीन से पहले उठना है। जब हम वृक्ष को बीज के रूप में बोते हैं उस समय पर उसे बहुत सुरक्षा चाहिए होती है। उस बीज के लिए उचित खाद-पानी चाहिए होता है, उर्वरा भूमि होना चाहिए और अंकुरण के बाद में जब तक वह पौधा खड़े होने लायक नहीं हो जाए तब तक हमें उसके चारों ओर सुरक्षा

करनी होती है, बाड़ी भी लगानी पड़ती है। जब हम इतने विश्वस्त हो जाते हैं कि हाँ अब ये बड़ा हो गया है, वृक्ष के रूप में बन गया है। अब यह अपना पालन स्वयं करेगा, अपना हवा-पानी स्वयं ग्रहण करता है। अगर कभी तूफान भी आ जाएगा तो उस तूफान से भी अपनी रक्षा कर लेगा लेकिन प्रारंभ में हमें उसकी देखभाल करनी होगी। आचार्य कहते हैं हम अनादिकाल से ऐसे ही बहिरात्मा बने आए हैं अब बड़ी सावधानी से अंतरात्मा बनना है। प्रयासपूर्वक, बुद्धिपूर्वक और परिणामों की संभाल करते हुए अपने भावों की सुरक्षा करते हुए ही हम बहिरात्मा से अंतरात्मा बन पाएँगे। जब हम अंतरात्मा बनने में समर्थ हो जाएँगे तो फिर परमात्मा भी बन सकते हैं। एक बार अगर इस बहिरात्मपन की अवस्था टूट जाती है, वह तब टूटती है जब आत्मा में सम्यग्दर्शन का प्रादुर्भाव होता है तब ही ये नियम हो जाता है कि ये बहिरात्मा कभी न कभी परमात्मा बन जाएगी। उसके बाद में उसकी वह काललब्धि निश्चित हो जाती है। एक बार यदि सम्यग्दर्शन हो जाता है तो वह आत्मा अर्द्धपुद्गल परिवर्तन काल से ज्यादा इस संसार में नहीं रहता तब यह फिक्सेशन हो जाता है। उससे पहले हमें बहुत पुरुषार्थ करना होगा। बहिरात्मा से अंतरात्मा बनने का, तब तक हमें विश्वस्त नहीं होना है। कभी हम यदि विश्वस्त हो गए कि हम सम्यग्दृष्टि है, हम अंतरात्मा है और हम प्रमाद में डूब गए और हमें जो सावधानी रखनी है एवं भाव करने योग्य हैं वो यदि नहीं किये तो आचार्य कहते हैं यह भ्रम भी तुम्हारे लिए मिथ्यात्व को बढ़ाने वाला हो सकता है। आत्मा की वो तीन प्रकार की अवस्थाएँ हैं उसमें जो उपेय यानी प्राप्त करने योग्य है वह परम आत्मा है। परमात्मापन हमारे लिए उपेय है जिसे हम उपादेय कहते हैं यानी कि जिसे हमें प्राप्त करने का लक्ष्य होना चाहिए वह उपेय कहलाता है। परमात्मा की प्राप्ति का उपाय बीच की स्थिति यानी अंतरात्मा है तभी हम परमात्मा बन सकते हैं इसलिए बहिरात्मपन को छोड़ दो। परम का मतलब होता है उत्कृष्ट जिसे हम सुप्रीम स्टेट बोलते हैं, सर्वोत्कृष्ट अवस्था बोलते हैं, वह केवलज्ञान की अवस्था होती है, वही परमात्म अवस्था कहलाती है। जो दूसरे भव्य जीवों के लिए कल्याण स्वरूप है इसलिए ये परमात्मा कहलाते हैं। जो दूसरे भव्य जीवों के लिए परम उपकार करने वाली ये समवसरण की विभूति ही जिनके पास में होती है ऐसे अरिहंत तीर्थंकर परमात्मा कहे जाते हैं। चौथा अर्थ परम उत्कृष्ट माता, सरस्वती माता, भगवान् जिनेंद्र देव के मुख से उत्पन्न हुई है। वह जिनेंद्रवाणी हमारे हित का अनुशासन करने वाली है इसलिए उस जिनवाणी को भी परम कहते हैं। ऐसी परम आत्मा, परम कल्याणी वाणी परम जिनेंद्र भगवान् के पास में होती है इसलिए परमात्मा के ये चार अर्थ संस्कृत की व्याख्या से हो जाते हैं। उस परम आत्मा

को हमें उपादेय रूप में मानना है। आचार्य कुंदकुंददेव ने 'मोक्षपाहुड' में भी इसी प्रकार से इन परमात्माओं का वर्णन किया है। तीन प्रकार की आत्मा- बहिरात्मा, अंतरात्मा एवं परमात्मा है। उसमें परमात्मा का ध्यान करना चाहिए और अंतरात्मा के उपाय से उस बहिरात्मपन की वृत्ति को छोड़ने का प्रयास करना चाहिए। एक ही आत्मा में ये तीनों प्रकार की दशाएँ एक साथ नहीं रह सकती हैं। जब शैशवावस्था का अभाव होगा तब यौवनावस्था की उत्पत्ति होगी उसी प्रकार से जब बहिरात्मपना का अभाव होगा तब अंतरात्मा उत्पत्ति होगी। जिस यौवन के अभाव होने पर जरावस्था यानी वृद्धावस्था आती है उसी प्रकार ये अंतरात्मा का अभाव होने पर परमात्मापने को जानना।

बहिरात्मपन की एवं अंतरात्मपन की परिभाषाएँ भिन्न-भिन्न अभिप्रायों से भिन्न-भिन्न होती है। एक सामान्य कथन होता है एक विशेष कथन होता है, आचार्यों ने हमेशा इस परिपाटी को अपनाया है। हम छहढाला में पढ़ते हैं बहिरात्मा देह और आत्मा को एक मानता है। दोनों की भिन्नता को स्वीकार नहीं करता। जो अपनी देह को ही अपनी आत्मा मानता है वह बहिरात्मा है। आचार्य कहते हैं ये बहिरात्मा का सामान्य कथन है 'कार्तिकेयानुप्रेक्षा' में आचार्य कहते हैं मिथ्यात्व से परिणत हुआ आत्मा जब तीव्र कषाय से युक्त हो जाता है तब वह जीव और देह को एक मानता है यानी कि मैं जो हूँ वह यह देह है और जो ये देह है वही मैं हूँ। उसकी 'मैं' में आत्मा नहीं है, देह है, वह देह के साथ जन्म लेता है, उसी के साथ बड़ा होता है और उसी के साथ मर जाता है। अनादिकाल से इसके अलावा उसने कुछ समझा ही नहीं, कुछ सीखा ही नहीं। उसे सीखने और समझने के लिए जिनवाणी मिली ही नहीं। देह में रहने वाला आत्मा एवं ज्ञान और दर्शन को धारण करने वाला आत्मा भिन्न तत्व है, ये देह भिन्न तत्व है। देह तो छूट जाती है लेकिन आत्मा की परिणति एवं कषाय इत्यादि भाव हमेशा-हमेशा उसके साथ में बने रहते हैं। वह इस आत्मा कोज्ञान नहीं हो पाता, बस इसी का नाम है बहिरात्मा अवस्था। उसकी आत्मा बाहर ही लगी रहती है सबसे पहला बाहरी विषय है हमारा शरीर। जो आत्मा इस शरीर के साथ ही अपना जन्म और अपना मरण मान लेता है वह बहिरात्मा कहलाता है। आचार्य कार्तिकेय महाराज ने लिखा है कि अगर वह जीव और देह को एक मान रहा है तो वह बहिरात्मा है। अंतरात्मा तीन प्रकार की होती हैं। तीनों प्रकार की अंतरात्मा जिनेंद्र भगवान् के वचनों में कुशल होते हैं अर्थात् अच्छे से समझते एवं जानते हैं, जिनवाणी का निरंतर अभ्यास करते हैं, व्यवहार और निश्चयनय के माध्यम से प्रत्येक तत्व को समझते हैं। वे जानते हैं कि जीव क्या है, शरीर क्या है? हम अगर केवल एक बार सुन लेते हैं कि जीव क्या है, देह क्या है तो उससे हमारा कल्याण नहीं हो पाता क्योंकि

हमारी धारणा में वह बात नहीं बन पाती। धारणा में बात अभ्यास से गुजरने के बाद ही बन पाती है। जब हम एक साधना से गुजरते हैं उसमें श्रद्धान पहले होता है। आचार्य कहते हैं जब हम श्रद्धान करते हैं तो सबसे पहले जीव तत्त्व आ जाता है फिर अजीव तत्त्व आता है उसके बाद ही आस्रव, बंध, संवर, निर्जरा और अंत में जाकर मोक्ष तत्त्व आता है। इन सभी पर हमें श्रद्धान करना है। यदि हम केवल जीव को द्रव्यदृष्टि से ही देखेंगे या द्रव्यात्म नय से या केवल निश्चय नय से ही देखेंगे तो वह जीव तत्त्व का पूर्ण श्रद्धान नहीं कहलाएगा क्योंकि जीव तत्त्व द्रव्य के रूप में भी है, पर्याय के रूप में और गुण के रूप में भी है। यदि हम जीव तत्त्व को केवल द्रव्य की दृष्टि से देखेंगे तो हम उसकी पर्यायों की अवहेलना कर देंगे। इस तरह हम जिनेंद्र भगवान् के वचनों की अवहेलना कर देंगे। जिनेंद्र भगवान् ने जो भी द्रव्य का कथन किया है वह निश्चय और व्यवहार, मुख्य और गौण, सामान्य और विशेष दोनों रूपों में कथन किया है। उन्होंने द्रव्य के गुण भी बताए हैं, द्रव्य की पर्याय भी बताई है। यदि केवल द्रव्यात्मक दृष्टि रखेंगे तो जैसे भगवान् है वैसे ही हम हैं। भगवान् में एवं हम में अंतर केवल पर्याय दृष्टि से ही हो सकता है। द्रव्यदृष्टि से देखने पर हम ही नहीं, निगोद के एकेंद्रिय जीव हैं वे भी शुद्ध आत्मा की क्षमता रखते हैं। द्रव्यदृष्टि हमें केवल द्रव्य की शक्ति का ज्ञान कराती है, उसकी क्षमता को बताती है। वह क्षमता तो प्रत्येक आत्मा धारण किए हुए हैं। द्रव्यदृष्टि से निगोद का एकेंद्रिय जीव भी वैसा ही शुद्ध है जैसे सिद्ध भगवान् शुद्ध है। द्रव्यसंग्रह के अनुसार शुद्ध नय से सभी द्रव्य शुद्ध हैं, अशुद्धता की परिकल्पना ही नहीं। एकेंद्रिय जीव इतना ही शुद्ध है जितने आप शुद्ध हैं और उतने ही वे मुनिराज शुद्ध हैं एवं उतने ही अरिहंत और सिद्ध शुद्ध हैं तो सब द्रव्य एक समान हो गए। द्रव्यदृष्टि से कभी भी पूज्यता का व्यवहार नहीं बन सकता। इससे कभी भी सात तत्त्वों का व्याख्यान नहीं हो सकता क्योंकि यह पर्याय दृष्टि से ही संभव है। तब आप ये मानेंगे कि जीव का अजीव के साथ में बंध हुआ है, कर्म का बंध भी हो रहा है, आस्रव भी हो रहा है। उसके कारण से हमारी ये पर्यायें बिगड़ी हुई हैं। इन पर्यायों का नाम ही संसार है तभी आपके लिए वह आस्रव व बंध की व्यवस्था बन पाएगी। द्रव्यदृष्टिसे आस्रव व बंध कुछ नहीं होते हैं, संवर और निर्जरा सब लोप हो गए, हम सीधे मोक्ष में पहुँच गए। इसका नाम तत्त्व श्रद्धान नहीं होता है। तत्त्व श्रद्धान में आस्रव, बंध, संवर, निर्जरा से सात तत्त्वों का व्याख्यान भगवान् अरिहंत देव ने किया है। मात्र जीव और अजीव का ही नहीं किया। इसलिए यहाँ कहा जा रहा है कि जो जीव और देह के भेद को जानते हैं वे तीन प्रकार के जीव हो सकते हैं। सबसे जघन्य अंतरात्मा वह कहलाती है जिसकी आत्मा में ये श्रद्धा होने लग जाती

है कि आत्मा भिन्न है व देह भिन्न है। इस भिन्नता से ही हमें मोक्ष मार्ग मिलने वाला है वह जघन्य अंतरात्मा अविरत सम्यग्दृष्टि की अवस्था कहलाती है। मध्यम अंतरात्मा वह कहलाती है जो उस अंतरात्मा के श्रद्धा गुण को और बढ़ाने के लिए कुछ व्रतों का, संयम का पालन करने लग जाते हैं जो पाँचवें गुणस्थान में रहने वाले श्रावक होते हैं। बारह व्रतों का पालन करते हैं, दो-चार आदि प्रतिमा को धारण करके उस श्रद्धान को जो बढ़ाते हैं वह मध्यम अंतरात्मा कहलाते हैं। उसी मध्यम अंतरात्मा की जो वृद्धि होती है तो उत्कृष्ट अंतरात्मा शुद्धोपयोग में लीन मुनि महाराज होते हैं, वे उत्कृष्ट अंतरात्मा कहलाते हैं। प्रमत्त व अप्रमत्त यानी छठवें-सातवें गुणस्थान में रहने वाले मुनिराज ये मध्यम अंतरात्मा है। जब वही मुनिराज ज्ञान की अवस्था में अपनी शुद्ध आत्मा का ध्यान करते हैं तो वे उत्कृष्ट अंतरात्मा हो जाते हैं, जब वे प्रवृत्ति में आ जाते हैं तो मध्यम अंतरात्मा हो जाते हैं। जहाँ पर मोह का पूर्ण रूप से क्षय हो जाता है उस बारहवें गुणस्थान की अवस्था को उत्कृष्ट अंतरात्मा की अवस्था कहा जाता है। चौथे गुणस्थान में मध्यम, छठवें-सातवें की प्रवृत्ति की अवस्था में मध्यम और निवृत्ति की अवस्था में उत्कृष्ट और सातवें गुणस्थान की उत्कृष्ट अवस्था और आठवें, नौवें, दसवें, ग्यारहवें और बारहवें तक ये सब अभी अंतरात्मा की दशाएँ हैं। वह उत्कृष्ट आत्मा की दशाएँ हैं। अभी वह परमात्मा नहीं बना, परमात्मा बनने में अभी समय है। जब परमात्मा बनेगा तो आचार्य कहते हैं उस समय में अंतरात्मा की दशाएँ छूट जाएँगी। ये आत्मा का वर्णन सामान्य पद्धति के अनुसार है। एक विशेष पद्धति मात्र श्रमणों पर लागू होती है जो नियमसार में बताई है। जिनेंद्र भगवान् के वचनों में कुशलता, सिद्धहस्तता हासिल करना बच्चों का खेल नहीं है। कोई बालबोध की वह पाठशाला नहीं है कि एक पाठ को याद कर लिया और जिंदगी भर उसी की रट लगाते रहे। आजकल ऐसे ही पाठ रटाए जा रहे हैं।

बहिरात्मा वो है जो पहले गुणस्थान में है। हम मुख्य और गौण की व्यवस्था को समझे। अब आचार्य श्रमणों के लिए कहते हैं कि हे श्रमण अगर तुम छह आवश्यकों में लीन हो– प्रतिक्रमण, सामायिक, वंदना, स्वाध्याय इत्यादि में लीन हो तो वे अंतरात्मा है। यहाँ पर गुणस्थान तो छटवाँ–सातवाँ ही रहेगा लेकिन बहिरात्मा का मतलब हो गया तुम बाहर के काम करने लगे। अंतरात्मा का मतलब केवल अपनी आत्मा संबंधी षट् आवश्यक कार्य करना है। नियमसार ग्रंथ केवल श्रमणों के लिए लिखा है। यदि बहिर्प्रवृत्तियों में रहोगे तो श्रमण नहीं कहलाओगे। मुनियों का श्रमणपना केवल इस नग्नता से संबंध नहीं रखता है बल्कि अंतरंग की क्रियाओं से संबंध रखता है। प्रतिक्रमण, स्वाध्याय, स्तुति, वंदना में जब हम परमात्मा के निकट होते हैं तब हम

वास्तव में अंतरात्मा होते हैं। आज कुछ लोग नियमसार ग्रंथ पढ़ रहे, लोगों को पढ़ा रहे हैं और व्याख्या कर रहे हैं कि भावलिंगी संत तो इस पंचमकाल में होते ही नहीं हैं। वो ये बताएँ कि क्या कुंदकुंदाचार्य, समंतभद्र आचार्य, पुष्पदंत आचार्य, भूतबलि आचार्य, पूज्यपाद आचार्य क्या चतुर्थ काल में हुए थे। ये सब पंचमकाल के आचार्य हैं और इसी पंचमकाल में आगे भी ऐसे आचार्य होंगे, जिनके माध्यम से ये धर्म पंचमकाल के अंत तक चलेगा। धर्म तब तक रहेगा जब तक एक मुनि महाराज रहेंगे। कम से कम इस कार्य क्षेत्र में इस भरत खंड में जब तक एक भी मुनि महाराज रहेंगे, तब तक ही धर्म यहाँ रहेगा। पंचमकाल के अंत में जो मुनि रहेंगे उनका नाम है वीरांगज मुनि महाराज और एक आर्यिका है, एक श्रावक है और एक श्राविका है। मुनि महाराज के साथ ही आर्यिका, श्रावक, श्राविका भी समाधि मरण कर लेंगे तब धर्म का अंत वहीं पर हो जाता है व पंचमकाल का अंत हो जाएगा। धर्म मंदिर में नहीं होता है, धर्म केवल आत्मा में होता है। मंदिर सिर्फ बना देने से धर्म अपने अंदर नहीं आ जाता है। धर्म आत्मा में पैदा करने से आता है और जिन्होंने अपनी आत्मा में धर्म उतार लिया है उनकी सेवा, उनकी भक्ति, उनके प्रति श्रद्धा भाव रखने से धर्म आता है। आचार्यों की वाणी की अगर हम अवहेलना कर रहे हैं तो समझो कि सब कुछ करके भी हम इस दुनिया से अलग नहीं हो जाएँगे। महावीर भगवान् की परंपरा से जरूर आप अलग हो सकते हो लेकिन संसार से अलग होने के लिए आपको यही देव, यही शास्त्र और इसी पंचमकाल में रहने वाले उन गुरुओं की जिनके लक्षण आचार्य समंतभद्र ने बताए हैं का आलंबन लेना होगा। मैं यह नहीं कहता कि हर निर्ग्रन्थ ही सद्गुरु होते हैं लेकिन आचार्य समंतभद्र द्वारा बताये लक्षण जिनमें प्रकट होते हैं उनके बिना कभी भी ये धर्म केवल मंदिर बनाने से नहीं चल सकता है। उन गुरुओं की छाँव में ही सबकी छाँव चल रही है। ये हमारा अभिमान भी हो सकता है कि हम उनके बिना भी जी रहे हैं। हम चतुर्थकाल के गुरुओं को नमस्कार कर रहे हैं, विदेह क्षेत्र में बैठे भगवान् को नमस्कार कर रहे हैं पर यहाँ बैठे गुरुओं को छोड़ दिया है। ये भावना हमारे लिए घातक हो सकती है। हमें ये सोचना है कि इसी पंचमकाल में कुंदकुंदाचार्य हुए हैं और ये आचार्यों की परंपरा पंचमकाल के अंत तक चलेगी। हमें गुरुओं की परिभाषा को समझकर गुरुमूढ़ता से बचते हुए गुरुओं का श्रद्धान भी करना चाहिए, तभी हमारे लिए सम्यग्दर्शन की भूमिका बनेगी। नियमसार के अगले अध्याय में कहा है कि जैसे बच्चे को पढ़ाया जाता है तो माता–पिता पहले बच्चे को हाथ पकड़कर स्कूल में ले जाते हैं, उसका मन नहीं लगता पर उसे वहीं पर दिन भर रहना है, चाहे मत पढ़ना, वहीं पर दिन भर खेलना। मेडम से कहकर आएँगे कि इसका ख्याल

रखना और देखना कहीं इधर–उधर चला न जाए। वह बच्चा पहले स्कूल जाने से कतराता है। उसको पढ़ने से डर लगता है लेकिन वह बच्चा थोड़ा बड़ा हो जाता है तो अपने आप स्कूल जाने लग जाता है। और बड़ा होने पर वह स्वयं कहता है कि अब मैं कॉलेज में पढ़ूँगा। धीरे–धीरे रुचि विकसित होने लगती है। प्रारंभ में उसके कान पकड़ने पड़ते हैं। जैसे ये अभिप्राय माता–पिता के अपने बच्चों के प्रति रहते हैं वैसे ही ये अभिप्राय आचार्यों के हम मुनिराजों के लिए रहते हैं। पहले वो कहते हैं महाव्रतों को धारण कर लो, अंतरात्मा हो जाओगे। फिर कहते हैं छह आवश्यक में लीन हो जाओ तो अंतरात्मा हो जाओगे। अब वो कहते हैं कि अंतरंग में अब तुम बिल्कुल मौन हो जाओ, शून्य हो जाओ तुम्हें केवल शुद्ध आत्मा की अनुभूति हो, उस समय पर तुम अंतरात्मा बनोगे। ये भीतर तक ले जाने की बात है। इस अभिप्राय को वो समझते हैं जो उस साधना को जी रहे हैं। आचार्य महाराज अंतरात्मा से पुन: पुन: जोड़ने के लिए अनेक प्रयास करते हैं। यह अंतरंग आत्मा में जब तक शुक्ल ध्यान की पूर्ण अवस्था नहीं आ जाती, तब तक अंतर्जल्प चलते रहते हैं। धर्मध्यान में भी बहिरात्मपन है क्योंकि आप प्रवृत्ति कर रहे हो, आप बोल रहे हो। अब यहाँ पर वे बोल रहे हैं कि आप ये बहिरात्मपन की प्रवृत्ति भी छोड़ दो। यह पहले गुणस्थान वाला बहिर्रात्मा नहीं छठवें–सातवें गुणस्थान वाला है। अब उसे स्कूल से कॉलेज और कॉलेज में स्नातक की पढ़ाई वाला बनना है। उसे पोस्ट ग्रेजुएट बनाना है। आचार्यों की वाणी को स्वयं पढ़कर नहीं समझ सकते अन्यथा कुछ भी अभिप्राय निकलकर आएँगे जिनके माध्यम से जिनवाणी की अवमानना और अवर्णवाद का दोष लगता है। आचार्य कहते हैं हमें हमेशा अध्यात्म ग्रंथ उन गुरुओं के माध्यम से पढ़ना चाहिए जो वास्तव में उस अध्यात्म में जीते हैं। ये जीवकांड, कर्मकांड के साथ–साथ समयसार आदि भी अध्यात्म ग्रंथ हैं। आचार्यों ने समाधि तंत्र आदि अध्यात्म ग्रंथ श्रावकों के लिए लिखे हैं ताकि श्रावक भी उस अंतरात्मा से जुड़े। बच्चे को अगर आगे आपको बढ़ाना है तो आप उसे प्रोत्साहित करो जो उपलब्धि उसने हासिल की है उससे आप उसका हौसला और बढ़ाओ। जिनके ज्यादा नंबर आए हैं उनसे तुलना न करें। वह नेगेटिव थिंकिंग/सोच उस बेटे के लिए भी घातक हो सकती है जो बेटा इतना ऊँचा पहुँच गया है कि आप उसके ९८ नंबर नहीं देख रहे हो। आपको ९९ नंबर वाला बालक दिख रहा है। आजकल तो प्रतिशत भी नहीं देखते, रेंक देखते हैं। मान लो ९९ वाला दूसरी रेंक में २० बच्चे हों और १०० नंबर वाले १० बच्चे हों तो माता–पिता कहते हैं देख तेरी तीसरी रेंक आई। यदि आपने उसे हतोत्साहित कर दिया तो अगली कक्षा में वह मेहनत करने से पहले बहुत बार सोचेगा कि इस पढ़ाई से हमें क्या लाभ है जिससे

न हमारे माता–पिता को प्रसन्नता है, न विद्यार्थियों में प्रसन्नता है और हमारा पूरा जीवन उसी में चला जा रहा है। इससे इतनी हतोत्साहित करने की बात होती है कि आजकल के बच्चे बहुत जल्दी सुसाइट करने लग गए हैं या घर छोड़कर भाग जाते हैं और ऐसे कदम उठा लेते हैं जिससे माता–पिता हमेशा के लिए दु:खी हो जाते हैं। बच्चों को पढ़ाना एक कुशल माता–पिता का कार्य है। वैसे ही आचार्य महाराज हम मुनिराजों को पढ़ाते हैं तो वे हमें बहुत–बहुत प्रोत्साहित करते हैं। ये गाथाएँ हमारे उत्साह में कमी नहीं लाती बल्कि और बढ़ाती हैं। बशर्ते कि लड़के को ये मालूम हो कि हम माता–पिता की दृष्टि में कुछ हैं। वो कहे कि बेटा तेरे ९८ प्रतिशत आए हैं, तू ये मत सोचना कि तेरी तीसरी रेंक आई है। तुमने जितना भी किया है वो बहुत अच्छा किया है। बिल्कुल भी अपने मन में म्लानता नहीं लाना। यह कहलाती है पॉजीटिव थिंकिंग/सोच। तुम्हारी मेहनत शाबाशी के योग्य है ऐसा अगर पिताजी कहेंगे तो उस बच्चे का आगे पढ़ने का मन बनेगा। आप यदि ये सोचते हैं कि हमने उसको शाबाशी दे दी तो उसका मन पढ़ाई का नहीं होगा तो ये आपकी गलत धारणा है। आजकल बच्चों के ऊपर पढ़ाई का इतना भार पड़ रहा है कि उनके कोर्स से ज्यादा वे अभिभावकों के व्यवहार से ज्यादा परेशान रहते हैं। बच्चे परेशान हैं कि अब मेरे पिता क्या कहेंगे, मेरी माँ क्या कहेगी। वह बच्चा अपने आप डिप्रेशन की स्थिति में चला जाएगा। इस तरह वह अंतर्रात्मा से पुन: बहिर्रात्मा बन जाएगा। उन कुंदकुंदाचार्य की दृष्टि में उस ग्रंथ को पढ़कर के भी हम ये बात समझ सकते हैं कि इस पंचमकाल में भी कितना किया जा सकता है। छठवें–सातवें गुणस्थान से ऊपर तो इस पंचमकाल में उठा ही नहीं जा सकता। शुक्ल ध्यान की भावना और विचार तो किया जा सकता है। वास्तव में वह शुक्ल ध्यान नहीं हो सकता, धर्मध्यान ही होता है। आचार्य कह रहे हैं कि यदि इस पंचमकाल में चौबीस घंटे धर्मध्यान में निकल रहे हैं तो इससे बढ़कर क्या उपलब्धि हो सकती है। उस मनुष्य पर्याय में जहाँ चारों ओर भौतिकता की चकाचौंध में आदमी धन, वैभव, कामवासना के पीछे भाग रहा है वहाँ पर इस पंचमकाल में अगर इस पर्याय के साथ में यदि छठवें–सातवें गुणस्थान में यदि धर्मध्यान हो रहा है तो हमें शाबाशी वो कुंदकुंदाचार्य दे रहे हैं, आचार्य विद्यासागर महाराज दे रहे हैं। हमें किसी की इस जगत में चिंता नहीं है। हमारा कल्याण हमारे भावों से होगा। वह भाव हम संजोकर के बैठे हैं। आप लोग अपने अंदर भी कुछ ऐसे भाव बनाएँ जो इस पर्याय को सार्थक कर सकें।

श्लोक– ५

बहिरात्मा शरीरादौ जातात्मभ्रान्तिरान्तरः।
चित्तदोषात्मविभ्रान्तिः परमात्माऽतिनिर्मलः।।५।।

मेरा शरीर, धन औ सुत राजधानी, ऐसा सदैव कहता बहिरात्म प्राणी।
रागादि से रहित हा वह अन्तरात्मा, है वंद्य, पूज्य, परमातम, निर्मलात्मा।।५।।

चित्त, दोष व आत्मा में भेदविज्ञान

बहिरात्मा अर्थात् जिसे शरीर आदि परद्रव्यों में आत्मा की भ्रांति उत्पन्न हो जाती है उसे बहिरात्मा कहते हैं। शरीर आदि जो जड़ पदार्थ है उनमें आत्मतत्व की कल्पना करना। **आत्मा** का मतलब होता है 'अपना'। जिसे हम अपना मानते हैं वह अपना नहीं होकर भी अगर हम उसे अपना मानते रहते हैं तो वह एक भ्रांति कहलाती है, उसी भ्रांति को यहाँ पर बहिरात्मा कहा गया है। शरीर अपना नहीं है। इस शरीर के साथ–साथ घर, मकान, दुकान, पत्नी, बच्चे जो कोई भी द्रव्य है, ये सब हम से भिन्न द्रव्य है। इन्हें अपना मानना और मैं इनका हूँ ऐसा मानना यह एक भ्रांति कहलाती है और इस भ्रांति में जीने वाले को आचार्यों ने यहाँ पर बहिरात्मा कहा है। पूज्यपाद महाराज ने इष्टोपदेश ने बताया है कि जब शरीर होगा तो उस शरीर को रहने के लिए गारे, मिट्टी, चूने व प्लास्टर की चार दीवारें भी होंगी, जिन्हें हम घर कहते हैं। घर हो और उसमें धन–वैभव न हो तो वो घर काहे का। घर है, धन है तो दारा यानी स्त्री होगी तभी वह गृहस्थ कहलाएगा, गृहस्वामी कहलाएगा। गृहलक्ष्मी नहीं हो तो घर की शोभा कैसे। फिर पुत्र भी होंगे और तब तक आदमी के आसपास ऐसा कुछ परिकल्प बन जाता है कि उसके कुछ मित्र भी बन जाते हैं और कुछ शत्रु भी बन जाते हैं। आचार्य पूज्यपाद महाराज ने यह संयोजना कुछ इस ढंग से बैठाई है सभी को इसमें शामिल कर लिया है। फिर वे लिखते हैं ये सभी अन्य स्वभाव वाले है। इनका

स्वभाव या परिणमन इनके अपने ऊपर आधारित है। वह घर यदि हमने बना लिया है तो समय–समय पर उसमें भी कहीं न कहीं टूट–फूट होती रहती है। वह पत्नी, पुत्र, मित्र इत्यादि भी हमने अपने मान लिए हैं या बनाए हैं उनका परिणमन भी उनके ऊपर आधारित है। हमारे लाख प्रयास करने पर भी और चाहने पर भी उनके परिणमन हमारे अनुकूल नहीं हो पाते। हम नहीं चाहते हैं कि हमारे पुत्र को कोई रोग हो, पत्नी को कोई रोग हो पर हो जाते हैं। हमारे ऊपर उनका परिणमन आधारित नहीं है न हमारा परिणमन उनके ऊपर आधारित है।

आचार्य कहते हैं अगर हम इस भेद व्यवस्था को समझ लेते हैं तो हमारे अंदर यह भाव उत्पन्न हो सकता है कि वस्तुत: हम किस भ्रांति में जी रहे हैं और वह भ्रांति हमारी कैसे दूर हो सकती है। ये सब अन्य स्वभाव वाले हैं और व्यक्ति मूढ़ होकर यानी मूर्खतापूर्वक इनको अपना मान लेता है और फिर सुखी और दु:खी होता है। ये सब आत्मा की भ्रांति है। उसमें अपनापन मानना और उसके वियोग होने पर दु:खी हो जाना। उस सामने वाले का परिणमन यदि हमारे प्रतिकूल होता है तो हम इतने दु:खी हो जाते हैं कि भूल जाते हैं कि हम तो स्वतंत्र सत्ता रखने वाले आत्मा हैं। हमारा परिणमन ही जब हमारे हाथ में नहीं है तो दूसरे का परिणमन हमारे हाथ में कैसे हो सकता है। बस यही दु:ख का मूल कारण है और यही **बहिरात्मपन** कहलाता है। आचार्यों ने इसी को कहा है कि शरीर आदि में आत्मा की भ्रांति होना। अंतरात्मा चित्त की यानी मन की चेतना से ही उत्पन्न होता है लेकिन उस मन में अनेक प्रकार के संकल्प–विकल्प और विकार भरे हुए हैं। उस चित्त में और उस चित्त में उत्पन्न होने वाले दोषों में जो आत्मा की विभ्रांति है कि मेरा मन मेरी आत्मा से भिन्न है। आत्मा का काम अलग है और मन का काम अलग है। मन में उठने वाले वो विचार भी आत्मा से भिन्न है, ये तीनों की भिन्नता जिसको समझ में आ जाती है वह **अंतरात्मा** बन जाता है क्योंकि अंतरात्मा अपनी आत्मा के लिए सोचता है और उस समय पर वह ये जानता है कि मन इस आत्मा में ही कर्म के क्षयोपशम से ही प्राप्त एक देन है। उसके पूर्व जन्म के संस्कारों के कारण से एवं इस जन्म के संस्कारों से इस आत्मा में अनेक प्रकार के राग–द्वेष, मोह, क्रोध, ईर्ष्या, मात्सर्य आदि दोष उत्पन्न होते हैं। वह अंतरात्मा इन दोषों से अपने को हटाता है यह सोचकर कि ये मेरी आत्मा का स्वभाव नहीं है। क्रोध आएगा तो वह अंतरात्मा ये सोचेगा कि हमने गलत किया। ये मेरी आत्मा का स्वभाव नहीं था। यह अभिमान करना भी मेरी आत्मा का स्वभाव नहीं है, लोभ करना भी मेरी आत्मा का स्वभाव नहीं है। ये कर्म के उदय से प्राप्त होने

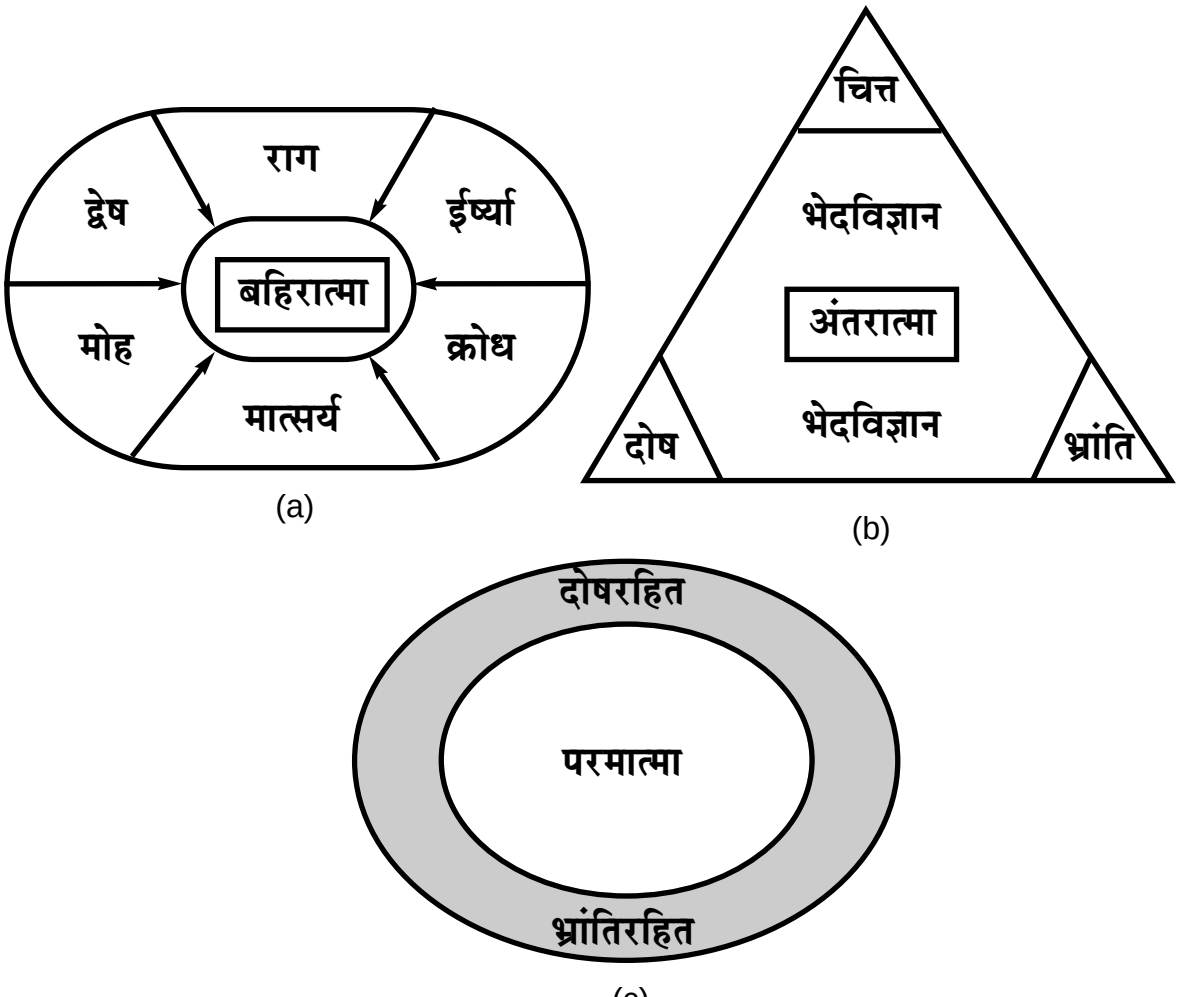
वाले विकारी भाव हैं। मेरी आत्मा का स्वभाव इन से भिन्न है।

चित्त, दोष, आत्मा इन तीनों में जो अपने आप में भेद को बनाकर रखता है, भ्रांति से रहित होता है वह अंतरात्मा कहलाता है। जो इन सब दोषों से, चित्त की भ्रांतियों से पूर्णरूप से रहित हो जाता है वह अति **निर्मल परमात्मा** कहलाता है। यहाँ पर शास्त्रों के माध्यम से बताया जा रहा है वे सम्यग्दृष्टि होते हैं, वे अंतरात्मा कहलाते हैं। चौथे गुणस्थान से वह अंतरात्मा का प्रारंभ होता है अर्थात् सम्यग्दृष्टि होना और इसका मतलब है जघन्य अंतरात्मा। वह अविरत सम्यग्दृष्टि जो जघन्य अंतरात्मा कहलाता है उसके अंदर कम से कम घर में रहते हुए भी ये श्रद्धान रहता है कि ये जितने भी घर, परिवार, मित्र, शत्रु हैं ये सब हमारे स्वभाव से भिन्न है। मैं इनसे भिन्न हूँ, ये श्रद्धान में उसके अवश्य आ जाता है तभी वह **जघन्य अंतरात्मा** कहला पाता है। अगर उसके सिद्धांत, उसकी आस्था व विश्वास में यह बात नहीं है तो वह अंतरात्मा नहीं कहला सकता है। इसे कहते हैं अध्यात्म दृष्टि से सम्यग्दृष्टि। अलग–अलग दृष्टि से सम्यग्दृष्टि की परिभाषा अलग–अलग होती है। प्रारंभ में आचार्य कहते हैं कि हमें देव, शास्त्र, गुरु के ऊपर श्रद्धान होना चाहिए। जब उन पर श्रद्धान होता है तब वह सम्यग्दर्शन की श्रद्धा की पहली भूमिका कहलाती है, जब उस भूमिका में उतरता है।

लेकिन ये भ्रांतियाँ किसको भ्रांतियाँ दिखती हैं। आदमी जहाँ जीता है जिस ढंग से जीता है वो जीवन है। मैं ऐसे ही उत्पन्न हुआ हूँ। मैं ऐसे ही जीता हूँ, मेरे जीने का ढंग यही है और वह उस ढंग से जीता रहता है। एक बार एक महिला को सिरदर्द का रोग जन्मजात था। जब से वह पैदा हुई तभी से उसको दर्द था। कभी भी उसको ये महसूस नहीं हुआ कि सिर में उसको दर्द है। जब डॉक्टरों ने उसका इलाज किया तब उसे फ्रेशनेस महसूस हुई, तब उस ३० साल में पहली बार महसूस हुआ कि मेरा सिर अलग और दर्द अलग है। उसके पहले वो ये महसूस करती रही कि मेरा सिर ऐसा ही है, वह दर्द के साथ ही उत्पन्न हुआ है। उसने कभी ये नहीं सोचा कि मेरे सिर में दर्द है, वह यही सोचती रही कि सभी ऐसे ही रहते हैं। आज सभी भ्रम के साथ ही उत्पन्न हुए और भ्रम में जीते रहते हैं। आचार्य कहते हैं कि आदमी एक जन्म के भय को यदि इतनी देर पाल सकता है तो ये तो अनादि के भ्रम है। प्रत्येक जन्म में हम जहाँ कहीं भी जन्म लिए, हमें जैसा परिवार मिला, समाज मिल गई हम उसी में तेरा-मेरा करते रहे और हमने यह भ्रम आज तक नहीं तोड़ पाया। यह अनादिकाल का, चिरकाल का भ्रम है। इस भ्रम को तोड़ने के लिए ये

जिनवाणी और इस जिनवाणी का उपदेश ही समर्थ हो सकता है। दुनिया में और कोई ऐसे उपाय नहीं हैं जो इस भ्रम को तोड़ सकें। आचार्य कहते हैं जब हम इन भ्रमों से उठ जाएँगे तब हमारे वह अंतरात्म तत्त्व उत्पन्न होगा। सम्यक दृष्टि की भूमिका दो प्रकार की होती है- एक सराग सम्यक्दर्शन और एक वीतराग सम्यक्दर्शन। सराग सम्यक्दर्शन माने राग से सहित भी जो सम्यक्दर्शन रहता है, वह आत्मा सराग सम्यक्दृष्टि कहलाता है। जब तक राग है तब तक भी यदि सम्यक्दर्शन रहेगा तो उसका नाम है सराग सम्यक्दर्शन। घर में और घर के बाहर भी अगर वह अविरत सम्यक्दृष्टि भी है तो भी उसके पास में राग तो रहता है लेकिन उसके पास ऐसी मान्यता या ऐसा ज्ञान और ऐसा श्रद्धान भी आ जाता है जो उसके लिए सम्यक्दर्शन भी बनाए रहता है लेकिन राग के सहित भूमिकाओं में होने के कारण आचार्य उसे सराग सम्यक्दृष्टि कहते हैं। सराग सम्यक्दृष्टि की भूमिका चौथे गुणस्थान से प्रारंभ होती है। १४ गुणस्थान होते हैं उसमें १०वाँ गुण स्थान है सूक्ष्म साम्पराय गुणस्थान। साम्पराय का अर्थ है कषाय और कषाय का मतलब है, वहाँ पर सूक्ष्म लोभ रह जाता है। वह सूक्ष्म लोभ या सूक्ष्म राग की परिणति भी जब तक रहती है, १०वें गुणस्थान तक, तब तक सिद्धांत ग्रंथों में उसे सराग सम्यक्दर्शन कहा जाता है। ग्यारहवें गुणस्थान का नाम है उपशमन मोह- जब मोह का पूर्ण रूप से उपशमन हो जाता है, मोह की राग की एक कणिका भी जब आत्मा में उदय को प्राप्त नहीं होती है तब उसे आचार्यों ने वीतराग सम्यक्दर्शन कहा है। ग्यारहवें गुणस्थान के बाद में आगे के सभी गुणस्थान वीतराग सम्यक्दर्शन गुणस्थान कहे जाते हैं। मुनि महाराजों में भी सराग सम्यक्दर्शन रहता है उसी का नाम वे व्यवहार सम्यक्दर्शन भी करते हैं जब तक वे सात तत्वों के बारे में सोचते हैं। जब मुनिराज आत्मा में लीन हो जाते हैं तो वे निश्चय सम्यक्दर्शन हो जाता है। सराग सम्यक्दर्शन की भूमिका चौथे से दसवें गुणस्थान तक और व्यवहार सम्यक्दर्शन चौथे से सातवें गुणस्थान तक एवं सातवें गुणस्थान से ही निश्चय सम्यक्दर्शन तब प्रारंभ तक एवं सातवें गुणस्थान से ही निश्चय सम्यक्दर्शन तब प्रारंभ होता है जब वह अपनी आत्मा का केवल श्रद्धान, ध्यान और उसी में आचरण रूप होकर के लीन हो जाता है, तब वह निश्चय सम्यक्दर्शन कहलाता है। वीतरागता का मतलब है आत्मा का अभाव हो जाना। जैसे कपड़ा गंदा है हम उसे तभी उजला कहेंगे, जब उसके अंदर हल्की से भी लालामी ना रहे, धूल झटकने से वह उजला नहीं हो जाएगा। उस कपड़े को उजला बनाने के लिए उसे बहुत बड़ी प्रोसेस (विधि) से गुजरना पड़ेगा। उसे गर्म पानी में डिटर्जेंट में

डालना पड़ेगा, धोना-रगड़ना पड़ेगा तब जाकर उसकी कालिमा दूर होती है। झटकने से जो धूल गिर जाती है उससे वीतरागता नहीं आ जाती। वीतरागता का मतलब है आत्मा के अंदर से राग का अभाव हो जाना। अगर आप उजले कपड़े को एक बार पहनकर बाजार में निकल गए और वापस आ गए। अभी एक घंटे पहले ही धुला हुआ, प्रेस किया हुआ कपड़ा था पर अब उसके अंदर गंदगी आ जाती है, धूल लग जाती है, वह उजलापन नहीं कहलाता है। जिसकी आँखों में ये उजाला देखने की क्षमता होती है। वह जानता है कि उजलापन क्या है। आचार्य कहते हैं गृहस्थ अवस्था में चौथे आदि गुणस्थानों में वह वीतराग सम्यक्दर्शन नहीं होता है। उस सम्यक्दर्शन को आचार्यों ने सराग सम्यक्दर्शन का नाम दिया है।



(a) (b) (c)

श्लोक : ६

निर्मलः केवलः शुद्धो विविक्तः प्रभुरव्ययः।
परमेष्ठी परात्मेति परमात्मेश्वरो जिनः।।६।।

जो बुद्ध, शुद्ध जिनके न शरीर साथ, अत्यंत इष्ट जिन ईश्वर विश्वनाथ।
है सिद्ध, अव्यय तथा वसु–कर्म रिक्त, है पूजनीय परमातम पूर्ण व्यक्त।।६।।

'परमात्मा'– अर्थात् जिसके अंदर से सभी प्रकार के कर्म मलों का कलंक निकल गया है वह परमात्मा कहलाता है। केवल माने असहाय माने दीन–हीन नहीं बल्कि जिसे किसी की सहायता की जरूरत ना हो। वह परमात्मा जिसकी आत्मा में अनंत शक्ति व अनंत ज्ञान उत्पन्न हो चुका है, उसे किसी भी परपदार्थ की जरूरत नहीं है उसे फिर 'केवलः' कहा जाता है। 'शुद्ध' इसलिए कहते हैं जिसके अंदर परमविशुद्धि उत्पन्न हो चुकी है इसलिए वह परमात्मा विशुद्ध कहलाता है। अनंत आत्माओं के बीच में रहकर भी जो अपनी ही आत्मा में रहा आता है उसे विविक्त कहते हैं, सबसे भिन्न वह आत्मा कहलाता है। वह प्रभु कहलाता है प्रभु अर्थात् जो सर्व समर्थ हो, जिसके पास में अनंत शक्ति हो। अव्यक्त अर्थात् जिसका कभी भी व्यय माने विनाश, उस पर्याय से विनाश नहीं होता है। परमेष्ठी– क्योंकि परम सर्वोत्कृष्ट पद में वो स्थित रहते हैं इसलिए उन्हें परमेष्ठी कहते हैं। जिसको प्राप्त करके वह आत्मा परम सर्वोत्कृष्ट हो जाती है इसलिए उनको 'परः' या उत्कृष्ट कहलाते हैं क्योंकि उनकी सन्निधि और उनके ध्यान से हम जैसी छद्मस्थ आत्मा भी उत्कृष्ट बन जाती है। वह उत्कृष्ट आत्मा जो अनंत चतुष्टय से युक्त होती है इसलिए परा उत्कृष्ट आत्मा माने विभूति वह लक्ष्मी जिनके पास में है वे परमात्मा कहलाते हैं और सभी प्रकार के ऐश्वर्य से सहित हैं अतः वे ईश्वर हैं। अगर हम इन नामों का ध्यान भी करते हैं तो भी वह परमात्मा का ध्यान हो जाता है। आत्मा के अनेक पर्यायवाची हमें ज्ञात हो तो हम उसके स्वरूप को जान लेते हैं। इन नामों की जाप या माला करना अध्यात्म में उतरने का ध्यान का एक साधन है। समयसार में कहा है जो परमार्थ स्वरूप है जो समय माने शुद्ध निश्चय आत्मस्वरूप है, जो शुद्ध है जो केवली है और जो मुनि है, ज्ञानी है उनके स्वभाव में अगर हम स्थित हो जाते हैं तो ही हमें ध्यान की प्राप्ति होती है। उसी स्वभाव का ध्यान करने से मुनिजन भी निर्वाण की प्राप्ति करते हैं।

श्लोक–७

बहिरात्मेन्द्रियद्वारै– रात्मज्ञानपराङ्मुखः।
स्फुरितः स्वात्मनो देहमात्मत्वेनाध्यवस्यति।।७।।

जो है यहाँ सतत इन्द्रिय–भोगलीन, निर्भ्रांत नित्य बहिरात्म स्वबोध हीन।
है देह को इसलिये वह आत्म मान, संसार में दुख सदा सहता महान।।७।।

मन की दशाएँ

जब आत्मा बहिरात्मपन की ओर उन्मुख होता है उस समय उसके अंदर का आत्मज्ञान सोया हुआ रहता है और आत्मज्ञान से वो विमुख होकर के केवल इंद्रिय ज्ञान में ही जीता है। शरीर का ज्ञान इंद्रियों से संबंध रखता है और वह अपने उस शरीर को जीता है, जब तक उसके लिए जीवन का अंत नहीं हो जाता। आत्मज्ञान इस इंद्रिय ज्ञान से भिन्न वस्तु है जिस समय पर इस आत्मा को इंद्रिय का ज्ञान होगा उस समय पर आत्मा का ज्ञान नहीं होगा और जिस समय पर आत्मा को आत्मज्ञान होगा, उस समय पर उसे इंद्रियों का ज्ञान नहीं होगा। आत्मा को इंद्रियातीत होकर जाना जाता है लेकिन उस इंद्रियातीत होने की स्थिति तक पहुँचने के लिए पहले उन इंद्रिय के विषयों में जो लालसा व आसक्ति है उस आसिक्त को हमें थोड़ा सा कम करना पड़ता है क्योंकि आखिर हमारा मन तो एक ही है और वही एक मन दोनों ओर एक साथ प्रवृत्ति नहीं कर सकता। हम चाहते हैं कि मन के माध्यम से हमारे आत्मा का भी कल्याण हो और हम ज्ञान को भी प्राप्त करें लेकिन हम इंद्रियों के विषयों को छोड़े बिना प्राप्त करना चाहते हैं। एक मन की ये दोनों दशायें एक साथ इसलिए नहीं हो पाती क्योंकि मन का इंटरेस्ट एक बार में एक जगह ही लगता है। आपके सामने अगर इंद्रिय के विषय आ जाएँगे तो आपका मन अपने आप ज्ञान की ओर उन्मुख नहीं हो पाएगा और आत्मज्ञान की ओर जिस समय मन उन्मुख होगा, उस समय पर मन इंद्रिय

के विषयों से विरक्त होगा। दोनों में लीनता चाहिए। जब इंद्रिय के विषयों में लीनता आती है उसे बहिरात्मा कहा जाता है और जब आत्मज्ञान में लीनता आती है तो उसे अंतरात्मा कहा जाता है लेकिन वो लीनता एक बार में एक जगह रहती है और जैसे-जैसे वो बाहर के विषयों में, कम होती जाती है, हमें आत्मज्ञान में लीनता आती है। आप सोच सकते हो कि हमें आत्मज्ञान में लीनता होने से क्या मिलेगा एवं पाँच इंद्रियाँ हैं और पाँच इंद्रियों के साथ हमारा जीवन अच्छा चल रहा है। हमें उससे हटाकर के उस आत्मा की ओर क्यों ले जाया जा रहा है? आप ये भी सोच सकते हो कि हमारे लिए क्यों ऐसा कहा जाता है कि इस देह से आसक्ति छोड़ो या इतना भरा-पूरा सुंदर सा संसार है, हमें इससे हटने के लिए क्यों कहा जा रहा है। ये सब प्रश्न आपके दिमाग में अगर आते हैं तो उसका समाधान करने के लिए ही आचार्य महाराज यहाँ कहते हैं कि हमें **अपने मूल को, अस्तित्व** को पहचानना चाहिए। अपने मूल अस्तित्व को यदि हम पहचानेंगे तो हमारी पहचान सही कहलाएगी और हमारी उस आत्म बुद्धि के साथ में जो कोई भी प्रवृत्ति होगी वो समीचीन होगी। अगर हम मूल को नहीं पहचानते हैं और केवल हम मूल को जानते हैं तो हमारा वो आत्मज्ञान सही नहीं कहलाएगा।

अगर हम मूल को नहीं जानेंगे तो उस मूल से क्या-क्या उत्पन्न हो रहा है इसका हमें ज्ञान नहीं होगा। एक छोटी सी बात आपकी समझदारी के लिए पर्याप्त हो सकती है।

एक बेटा था और वह अपनी बूढ़ी माँ की कभी-कभी सेवा कर लिया करता था। आज के पढ़े-लिखे बच्चे बूढ़े माँ-बाप को बिल्कुल अनपढ़ ही समझते हैं। कुछ दिनों से उस बूढ़ी माँ को ऐसा महसूस हो रहा था कि मेरा बेटा मुझे अनपढ़ समझ रहा है और वह अपने गर्व में इस तरीके से फूला हुआ है कि उसे इंद्रिय के विषय भोग में ही आनंद आ रहा है। आप ये मानकर रखना घर के जितने पुराने लोग होते हैं उनको उतने अच्छे अनुभव होते हैं जो अनुभव आपको जिंदगी भर किताबी ज्ञान पढ़ने से नहीं मिल सकते। घर के उन पुराने लोगों का अनुभव और उसको बाँटने का तरीका अपने आप में अलग होता है। आप किताबें पढ़-पढ़कर के डिग्रियाँ हासिल करोगे और वे अनुभव के माध्यम से सारी डिग्रियों से ऊपर तुम्हें ज्ञान दे जाएँगे, तुम्हें पता नहीं चलेगा। जो बेटे घर के माँ-बाप की अवेहलना करते हैं, उन्हें ज्ञान का भी अहंकार रहता है और उन्हें इस बात का भी अहंकार रहता है कि हम जिस दुनिया में जी रहे हैं, हम जिस शानो-शौकत में जी रहे हैं, हम जिस मस्ती में जी रहे हैं वो ज्ञान हमारे माता-पिता को तो है ही नहीं। ये तो पुराने ढर्रे के लोग

हैं और पुराने ढर्रे से जीते हैं। वो क्या कर रहे हैं ये भी माँ को मालूम है और वो क्या हो सकते हैं ये भी माँ को मालूम है लेकिन ज्ञान का अहंकार एक ऐसी चीज होती है जो दूसरे को ज्ञानी या अनुभवी मानने पर तैयार नहीं होता। जब हमारी इंद्रियाँ विकसित हो जाती हैं और उन इंद्रियों के साथ हमारा ज्ञान भी विकसित हो जाता है, उस ज्ञान को जब बाहरी पदार्थों की हवा लग जाती है तो ज्ञान इतना उड़ता है कि वह अपना मूल रूप भूल जाता है। मूल क्या है- माता-पिता भी उसके जीवन का मूल मुद्दा है। वह उनको भी भूल जाता है क्योंकि उसे उस हवा में केवल अपने उन इंद्रियों के विषयों की बात समझ में आती है जो उन इंद्रियों के विषयों को हमें प्रदान करें, उनसे हमें जो सुख मिला है वह केवल उसी का ध्यान रखता है और मूल को भूल जाता है।

माँ समझ रही थी बेटा बड़ा हो गया है। बाहर पढ़ने लिखने गया था, लौटकर के आया है। मैं बीमार हूँ, रोगी भी हूँ, असहाय भी हूँ और उसके अंदर हमारे प्रति सेवा का भाव भी नहीं, क्या करूँ। माँ के मन में विचार आया इसे कुछ थोड़ा सा अनुभव का ज्ञान दिया जाए। माँ ने कहा बेटा पढ़-लिखकर आ गया, हाँ माँ आ गया। कितने दिन की छुट्टी लेकर के आया है। बेटे ने कहा- ये ही कोई हफ्ते-१० दिन की छुट्टी लेकर के आया हूँ। माँ ने कहा बहुत अच्छी बात है, अच्छे ढंग से यहाँ पर तनावमुक्त होकर के रहो। किसी भी प्रकार की कोई चिंता न करो, हमारी सेवा की भी कोई चिंता मत करो। अगर हो जाए तो एक काम करना। बूढ़ी हो गई हूँ, बीमार हूँ बाकी तो घर का सब काम कर लेती हूँ, पर अपना एक गार्डन है उस गार्डन में रोजाना पानी दे दिया करना ताकि वो फल-फूल खिलते रहें। बेटे ने कहा- ठीक है इतना काम करने में हमें कोई दिक्कत नहीं है। हम इसके लिए टाइम निकाल लिया करेंगे। बेटा रोजाना गार्डन में जाता और वहाँ फूलों को वो पानी देकर के चला आता। एक दिन हो गया, दो दिन हो गए, तीन दिन हो गए। ४-५ दिन के बाद में माँ ने जाकर के गार्डन में देखा। बेटा पानी दे रहा था, उसी समय पर बेटे को पूछा- बेटा तू रोजाना पानी देता है फिर भी ये फूल मुरझा क्यों रहे हैं। तू रोजाना फूलों को सींचता है, पानी देता है फिर भी फूलों में कुम्लाहट क्यों आ रही है। बेटा कहता है माँ हमें क्या मालूम। माँ कहती है जब तक मैं इन फूलों को सींचती थी तब तक तो ये खूब अच्छे खिले हुए दिखाई देते थे। तूने ४-५ दिन से इनको सींचना शुरू किया और ये कुम्हलाने लगे, करता क्या है तू। माँ फूलों को पानी देता हूँ, आपने जैसा कहा वैसा ही करता हूँ। तब माँ ने कहा बताना कैसे पानी देता है। वह उन फव्वारों के माध्यम से केवल फूलों के ऊपर पानी छिड़क देता था और वह फूल

को केवल पानी से नहला देता था। जब पानी फूलों के ऊपर जाता था तो वो पानी भी भार बन जाता था। माँ ने कहा तेरी सबसे बड़ी गलती यही हो रही है। भीतर से जब तक सिंचन नहीं होगा ये फूल तब तक खिलते नहीं और तू केवल फूलों की ओर देखता है और माँ केवल मूल की ओर देखती है। तू मूल का सींचन करेगा तो फूल अपने आप खिलने लगेगा। बेटा तू पढ़-लिख तो बहुत गया लेकिन भीतरी बात समझ नहीं पाया। तुझे अभी इतना भी ज्ञान नहीं हो पाया कि हमें अगर सींचन करना है फूल का तो उसके लिए भी पानी तो जड़ों में ही डालना पड़ेगा। मिट्टी में ही देना पड़ेगा। सींचना तो मूल को ही पड़ता है। मूल हमारा अस्तित्व है और उस मूल को अगर हम सींचेंगे तो अपने आप बाहर के फल-फूल सब हमें खिले हुए दिखाई देंगे। अगर हम उस अस्तित्व को भूल जाएँगे, तो हम बाहर से कितना भी खिले हुए दिखाई दें लेकिन वो अस्तित्व की पहचान के बिना हमारी कोई पहचान यहाँ पर शाश्वत नहीं रह सकती। अस्तित्व की पहचान जरूरी है। बाहर के इंद्रिय के विषय तो फूल की तरह है और वे फूल आपको अच्छे लगते हैं। लेकिन उन फूलों का सींचन एवं विकास कैसे होता है ये अगर आपके ज्ञान में नहीं होगा तो आप रोजाना फूलों की ओर देखकर के जैसे सुबह फूलों को देखकर हमें प्रसन्नता होती है और शाम को वे जब मुरझा जाते हैं तो देखकर खिन्नता होती है। ऐसे ही हमारे जीवन में जब तक इंद्रिय के विषय आते रहते हैं तब तक हमें अच्छा लगता है और जब हमसे इंद्रिय के विषय छूटते हैं तो खिन्नता होती है। हमारा जीवन इसी तरह से रोजाना सुखमय और दु:खमय बनता रहता है। हम उस एकरूपता को कभी प्राप्त ही नहीं कर पाते जिस एकरूपता में आत्मा का अस्तित्व समाया हुआ है।

आचार्य कह रहे हैं कि अगर हम उस आत्मा के लिए, अपने अस्तित्व के लिए अगर हम प्रयत्नशील होते हैं तो हमें बाहर के इंद्रिय विषयों के प्रयत्नों में थोड़ी सी कमी लानी पड़ेगी। उसमें कमी लाए बिना हम कभी आत्मा के अस्तित्व तक पहुँच नहीं सकते हैं क्योंकि अस्तित्व की पहचान हमें स्वयं में करनी होगी। हम केवल ऊपर का जो शरीर है, इंद्रिय और इंद्रियों के लिए मिलने वाले उसको प्रसन्न करने वाले विषय है, हम केवल उन फूल और पत्तियों की ओर ध्यान देते हैं। भीतर से अगर मूल का सिंचन करना हमें आ जाएगा तो वह तुम्हारे लिए अंतरात्मा की वृत्ति बन जाएगी। आचार्यों की वाणी हमें मूल का सिंचन करना सिखाती है और मूल से हमारे अस्तित्व को बना करके ये बताएगी कि देखो अगर कभी कोई फूल टूट भी जाए, कभी कोई फूल खराब भी

दिखने लग जाए तो भी तुम ये मत समझना कि ये पूरा का पूरा पौधा या पूरा का पूरा फूल ही खराब हो गया। जब शरीर में कोई रोग होता है और उस शरीर के रोग को हम देखते हैं तो उस समय पर हमें ऐसा लगता है कि हमें केवल उस शरीर के हिस्से में दर्द है या पूरे में दर्द है। जब हमारे शरीर के किसी हिस्से में दर्द होता है तो केवल उसी स्थान पर जो आत्मा के प्रदेश है वहीं पर बेचैनी होती है या पूरी आत्मा में बेचैनी होती है? अच्छा हम आप से पूछ रहे हैं जब आपके कार की किसी भी एक साइड में काँच का टुकड़ा टूट जाता है तो उस समय पर पूरी कार को आप बेच देते हैं या केवल उतना ही काँच लगाकर आप काम कर लेते हैं। अगर आपके शरीर में पहनने वाले किसी कपड़े का कहीं से भी थोड़ा बहुत फटना हो जाता है तो आप उसको पूरा हटा देते हैं कभी रिपेयर करके भी काम में ले लेते हैं। कभी-कभार तो ले लेते होंगे। अगर आपके शरीर के अंदर ऐसी स्थिति बनती है और बाहरी चीजों के अंदर ये स्थिति बनती है तो आपको इस बात पर भी विचार करना है कि बाहर इंद्रिय के विषयों से हमारा जो संबंध है वह संबंध तो हम तोड़ भी सकते हैं और जोड़ भी सकते हैं। लेकिन शरीर से संबंध तोड़ना और शरीर से संबंध हटाना ये हमारे लिए बहुत टेढ़ी खीर होती है। बाहर के इंद्रिय के विषय को आप छोड़ सकते हैं। अगर हमारी साड़ी में एक छेद हो गया, छेद तो बहुत बाद में होता है महाराज, उससे पहले ही वो रिटायर हो जाती है। इतने ईमानदार व इतने सदुपयोगी हम कहाँ हैं कि उस साड़ी में छेद होने का इंतजार करें। अगर आपकी कार में कहीं पर थोड़ी सी पेंटिंग में कमी आ जाए तो उसको तो आपको रिपेयर कराना ही होता होगा, वो तो तुरंत नहीं बदल देते होगे। अगर आपके मोबाइल कर कवर फट जाए या थोड़ा बहुत डिफेक्ट आ जाए तो उसको भी आप पहले सुधरवाते होंगे, एकदम से ऐसे नहीं कि एक बार डिफेक्ट आया तो उसको पूरा हटा दो। कहीं ना कहीं जितने भी इंद्रिय के विषय हैं हम उनमें सुधार करके अपने लिए उसे काम में ले आते हैं और टूटने-फूटने पर, उनके अपने सामने से चले जाने से हमें ज्यादा फर्क नहीं पड़ता है क्योंकि वो हमारे पास पर्याप्त साधन एवं पर्याप्त धन रहता है और उस धन से हम उन चीजों को पुन: खरीद सकते हैं। इसलिए हमें कोई फर्क नहीं पड़ता कौन आ रहा है, कौन जा रहा है, कितना सामान घर में आ रहा है या कितना चला गया। अब कुछ चीजें ऐसी हैं जो गिनती की ही होती हैं। मान लो आपके घर में दो बच्चे हैं और एक पत्नी है। एक ही है ना पत्नी। अब पुराने जमाने की बात नहीं कर रहा हूँ, इस जमाने की बात कर रहा हूँ। कानूनन तो एक ही रहती है। इल्लीगल तो जो कर लो वो बात अलग

है।

हर घर में एक पत्नी है और दो बच्चे हैं। अब अगर कभी भी बच्चों के लिए कोई बीमारी होती है अथवा पत्नी के लिए कोई बीमारी होती है तो हमारी संवेदनाएँ कुछ उन अचेतन पदार्थों से ज्यादा उस चेतन पदार्थ में जरूर जुड़ जाती है। अपनी पत्नी, अपने परिवार, भाई, बहन आदि को और भी जो लोग हैं उनको लेकर परेशान होते होंगे और हमारी संवेदनाएँ उनमें भी ज्यादा जुड़ जाती है। लेकिन अगर हम थोड़ा सा और अपने पास तक आएँ। अगर कुछ हमारे ही शरीर में कुछ परेशानी हो जाए या खुद हमारे शरीर में रोग हो जाए और उसके साथ-साथ घर में भी किसी को रोग हो तो उस समय पर हम किस पर ध्यान देंगे। अपने घर में पत्नी पर, बेटे पर, माता-पिता पर या खुद पर। सही-सही बताना, देखो धर्म सभा में बैठे हो। सबसे पहले तो हमें हमारे शरीर से ही मतलब रहता है और अगर वह शरीर सही सलामत चल रहा है तो फिर अपने परिवार से मतलब रहता है। जब परिवार सही-सलामत चल रहा हो तो फिर घर, दुकान और परिवार और दूसरी चीजों से मतलब रहता है और इस मतलब को हम और बढ़ाते चले जाते हैं तो अनेक रिश्तेदारों, आस-पड़ोस और फ्रेंड्स आदि से भी अपना मतलब रखने लग जाते हैं, जिस समय पर हमारा शरीर ही दगा देने लग जाता है, हमारा शरीर ही हमें परेशान करने लग जाता है, उस समय पर हमें अपनी कार की, डेंटिंग की, पेंटिंग की, उसकी सर्विसिंग की ध्यान नहीं रहेगी। हमें अपने पड़ोसियों का ध्यान नहीं रहेगा। यहाँ तक कि घर के परिवार के लोगों के भी कष्ट में कोई ज्यादा फर्क नहीं पड़ेगा क्योंकि हम सबसे पहले कहेंगे हम खुद परेशानी में हैं, रोगी हैं, हम तुम्हारे लिए क्या कर सकते हैं।

आदमी का सबसे ज्यादा अगर जुड़ाव होता है तो उसका अपने ही शरीर से होता है। जब ये जुड़ाव बढ़ता चला जाता है तो इंद्रिय के विषय तो बाद में आते हैं। पहले हमारी इंद्रियाँ ही हमारे साथ में होती हैं और जब अपने शरीर में कहीं पर कोई डिफेक्ट आता है तो हम उस शरीर को कभी भी नहीं छोड़ते। शरीर के किसी अंग में रोग हो गया तो पूरे शरीर को ही मिटा डालो, छोड़ दो शरीर को, कोई ऐसा सोचता है? अगर गाड़ी का एक पहिया निकल जाएगा तो आप दूसरा पहिया लगवा लोगे, गाड़ी की आप सर्विसिंग करवा लोगे, किसी भी मशीन में, घर के टी.वी., फ्रिज में डिफेक्ट आ जाएगा, आप उसे सुधरवा करके काम में ले लोगे। उसको अलग भी कर दोगे तो कोई फर्क नहीं पड़ेगा। अगर आपके शरीर के साथ कुछ होगा और डॉक्टर ने कह

दिया कि कोई भी अंग शरीर में हम बदल सकते थे किंतु उसके बावजूद भी आपका शरीर अब आपके साथ नहीं होगा और आपके साथ वह ज्यादा सुख नहीं देगा तो उस समय पर आपकी स्थिति क्या होगी। आपको थोड़ा सा उन बातों को भी सीखना है जो हमारे जीवन में कभी भी घटित हो सकती और जिसको हमने **अंतिम लक्ष्य** समझ रखा है वो हमारा अंतिम लक्ष्य नहीं है। उसके बाद का ज्ञान हमें ऋषियों और मुनियों की वाणी से मिलता है। उसका ज्ञान ही हमें ये बताता है कि ये हमारा अस्तित्व जो हमने सोच रखा है। हमारा शरीर अगर कोई भी बीमारी से ग्रसित हो जाता है तब हम उस बीमार शरीर को छोड़ तो पाते नहीं हैं। हमें ज्यादा कुछ ज्ञान नहीं रहता है। अगर ज्ञान रहता है तो हमें अपने चित्त का, अपने मन का ज्ञान रहता है और मन भी उस समय पर शरीर के साथ लगकर के परेशान होगा क्योंकि शरीर के किसी भी अंग में रोग होगा तो मन बार-बार उस रोग के बारे में ही सोचेगा। आप इस शरीर को घर के मोबाइल की तरह या कार की तरह बदल नहीं सकते हो। आप उस शरीर के साथ रहने के लिए मजबूर हो और उस मजबूरी के साथ में शरीर आपको परेशान कर रहा है। अपने अस्तित्व के ज्ञान की अगर जानकारी नहीं है तो आपका पूरा जीवन परेशानी के साथ गुजरेगा। उसी समय वह परेशानी आपकी अगर दूर हो सकती है तो वह थोड़ी सी अध्यात्म विद्या को सीखने से ही दूर हो सकती है। कॉलेजों में जितना भी सीखा है आपने फिजिक्स, केमेस्ट्री, जूलॉजी, बाटनी कुछ भी काम नहीं आएगी उस समय पर केवल अध्यात्म विद्या ही हमारे काम में आएगी। उस अध्यात्म विद्या से अगर आप अपने चित्त को संभालेंगे तो आप उस शरीर की पीड़ा को भी जीत सकते हो। वह अध्यात्मिकता हमें ये बताएगी कि शरीर की पीड़ा हमारे अस्तित्व की पीड़ा नहीं है, हमारे मूल की पीड़ा नहीं है। शरीर की पीड़ा हमारी आत्मा की पीड़ा नहीं है। ये पीड़ा केवल तब तक है जब तक ये शरीर है। आत्मा की पीड़ा कुछ और है जो उसे हर जन्म में पीड़ित करती है।

एक समझदार इंसान हमेशा अपने लिए एक **स्थायित्व** की परिकल्पना करता है और हमेशा ये सोचता है कि हमें कुछ ऐसे स्थायी ज्ञान की प्राप्ति होती जाए। इसके माध्यम से हम ऐसे स्थायित्व को प्राप्त कर लें कि हमें इन अस्थिर चीजों में बार-बार परेशान न होना पड़े। वह सोचता है कि अगर हमें इससे पीड़ा मिलती है तो इससे कैसे निपटारा हो। ये अध्यात्म का ज्ञान हमें वही स्थायित्व का ज्ञान कराता है। जब हम अपने मूल को समझते हैं और अपने अस्तित्व की पहुँच अपने अंदर बना लेते हैं तो हमें पता पड़ेगा कि शरीर के बाद भी कोई चीज है जिसका अस्तित्व है, जो शरीर

के छूटने के बाद भी हमारे पास में रहता है उस अस्तित्व का नाम है आत्मतत्व। उस आत्मतत्व के बिना इस शरीर का अस्तित्व नहीं है। ये सब हमको जान लेना चाहिए। उस आत्मा के बिना शरीर का अस्तित्व नहीं है लेकिन शरीर के बिना आत्मा का अस्तित्व रहता है। जब शरीर के बिना भी आत्मा का अस्तित्व रहता है तो हम अपने उस आत्मा के अस्तित्व के लिए क्यों नहीं सोचते और केवल अपने इस शरीर के अस्तित्व के लिए अपने जीवन की इस यात्रा को समाप्त क्यों कर देते हैं। ये बात हमें आचार्य देव बताना चाहते हैं। हम केवल बाहरी इंद्रियों के विषयों को ग्रहण करते हैं और बाहरी इंद्रियों के विषयों का आधार जो शरीर है उसके बारे में ही विचार करते हैं लेकिन कभी उस मूल अस्तित्व की ओर नहीं सोचते। मूल अस्तित्व के बारे में सोचना ही उस मूल का सिंचन करना है। आपके उपयोग की परिणति अगर मूल की ओर चली जाती है तो शरीर की पीड़ा बहुत कुछ अपने आप कम हो जाती है। उस मूल की ओर अगर आपका दिमाग चला जाता है, ध्यान चला जाता है तो आपके शरीर की पीड़ा आपको परेशान नहीं कर पाएगी। मूल की ओर अगर ध्यान नहीं जाता है तो भी कहीं ना कहीं तो हमें अपना ध्यान लगा लेना चाहिए। ये सीख अगर आपको मिल जाएगी तो आप शरीरगत दु:खों से बच जाओगे। कई लोगों के लिए शरीर के बिना भी ज्ञान के विषयों में भी बहुत सारी रुचि रहती है। मान लो आपको सिखाया जाता है मेथेमेटिक्स, फिजिक्स, केमेस्ट्री सब कुछ लेकिन कोई भी एक विषय में आपका इंटरेस्ट इतना हो जाए कि उसमें आप बिल्कुल खो जाएँ, ऐसे खो जाएँ कि आपको अपने अस्तित्व का भी पता नहीं रहे। ऐसा जिनके साथ होता है वह या तो वैज्ञानिक बन जाता है या वीतराग विज्ञान का वैज्ञानिक बन जाता है। यह वही व्यक्ति होता है जो अपने आपको किसी ना किसी विषय में खो देना चाहता हो, इंद्रिय के विषयों को छोड़कर ज्ञान के विषयों को खोना। मैंने कभी छोटे में एक चीज पढ़ी थी। कोई ऐसा गणित का व्यक्ति था, उसकी पीठ में फोड़ा हो गया। डॉक्टर ने उससे कहा इसका ऑपरेशन करना पड़ेगा और ऑपरेशन करने के लिए तुम्हें एनेस्थिसिया का इंजेक्शन देना पड़ेगा जिससे बेहोशी आ जाती है फिर तुम्हारा ऑपरेशन कर देंगे तो उसने कहा बेहोशी के इंजेक्शन देने की जरूरत क्यों है। डॉ. बोले- इसकी पीड़ा को तुम सहन नहीं कर पाओगे। उसने पूछा कि क्यों नहीं सहन कर सकता क्योंकि तुम्हारा दिमाग इस शरीर में ही ज्यादा लगा हुआ है। उसने कहा मेरा दिमाग तो गणित के सवालों को हल करने में ज्यादा लगता है और कहीं नहीं लगता। डॉ. बोले- ऐसी बात है। डॉक्टर ने एक गणित का सवाल बोर्ड पर लिख दिया और वह

उस सवाल को हल करने में लगा। इधर डॉ. ने ऑपरेशन करना शुरू कर किया और उसका ऑपरेशन हो गया पर सवाल का हल नहीं हो पाया। डॉ. ने उसकी डेंटिंग-पेंटिंग सब कर दी और उससे कहा– 'यू आर ओके।' उसको पता नहीं पड़ा कब ऑपरेशन हो गया। अगर ज्ञान के विषय में भी हमारा मन लग जाता है, एकाग्रता आ जाती है तो भी वह हमें इंद्रिय के विषयों से बचा देती है। लेकिन हमारा किसी भी ज्ञान के विषय में इतना मन लगता ही नहीं है जितना मन वॉट्सअप पर, वेबसाइट को देखने में लगता है। आज के इस पढ़े-लिखे इंसान के लिए सबसे ज्यादा अगर भटकाव की कोई चीज है तो वो है ये इंद्रिय के विषय, ज्ञान के विषय नहीं। ज्ञान के विषय पहले के लोगों के पास में हुआ करते थे, वे तल्लीन होकर के पढ़ा करते थे। वे आगे चलकर के किसी ना किसी विषय में ऐसी महारत हासिल कर लिया करते थे कि घर के लोगों का भी नाम रोशन करते थे। अपने शहर का नाम रोशन करते थे। आज इतनी ज्यादा पढ़ाइयाँ, इतना ज्यादा पढ़ने के लिए पैसे की बर्बादियाँ और समय की बर्बादी और उसके बाद रिजल्ट देखा तो जीरो/सन्नाटा मतलब कुछ नहीं है उनके जीवन में, न कोई अनुभव है न कोई व्यवहारिक ज्ञान है, न उनको कैसे, किससे बिहेब करना, इसका ज्ञान है। छोटी-छोटी परेशानियों में इतने परेशान हो जाते हैं कि अगर सिर में दर्द होने लग जाए तो सुसाइट करने की बात सोचने लग जाते हैं। अगर डॉक्टर ने कह दिया है कि माइग्रेन या आधा सीसी हो गया है, हमेशा दर्द बना रहेगा तो वह उस दर्द को भी सहन करने की क्षमता नहीं रखता और सोचने लग जाता है कि ऐसी जिंदगी से तो बिना जिंदगी के भला हूँ। ये परेशानियाँ जो आज की शिक्षा से आ रही है। उसके लिए ये अध्यात्म का ज्ञान बहुत जरूरी है क्योंकि उन्हें अपने अस्तित्व का ज्ञान नहीं है कि हम क्या कर रहे हैं। केवल फूलों पर ध्यान हैं और फूल किससे बना है, इस बात का कोई ज्ञान नहीं है। फूलों का सिंचन हो रहा है, फूलों की ही देख भाल हो रही है और फूलों के लिए पानी दिया जा रहा है। मूल की कोई खबर नहीं है। अगर मूल का सिंचन किया जाएगा, मूल को पानी दिया जाएगा तो फूल अपने आप बनने लगेगा। फूल को फलने के लिए उसे हाथ लगाने की जरूरत नहीं पड़ती। उसके मूल में अगर सिंचन होता है तो उसमें अपने आप फूल खिलता है। दूर से देखकर भी आपको वो खिला हुआ नजर आएगा। लेकिन हमारी टेंडेसी उस फूल की तरह ही जुड़ चुकी है। जो हमें अच्छा लग रहा है वो हमारे सामने आ जाए और जितनी देर तक वो सामने रहेगा उतनी देर तक तुमको अच्छा लगेगा और जैसे ही वो सामने से हट जाएगा, हमें उस तरह बेचैनी होने लगेगी जैसे फूल के

मुरझाने से बेचैनी हो जाती है। कब तक उस फूल को संभालोगे और कब तक उस फूल की सुरक्षा करोगे। फूल तो उत्पन्न होते हैं, गिरते हैं लेकिन एक मूल के साथ में कई फूल उत्पन्न हो सकते हैं, कई फूल गिर सकते हैं। अगर आप मूल को मुरझाने से बचा लोगे तो कई फूल अपने आप उत्पन्न होकर के आपको खुश करते रहेंगे। मूल का सिंचन यानि अस्तित्व की ओर झांकना, मतलब अपनी आत्मा के स्वरूप की ओर अपने उपयोग को उन्मुख करना। ये जिस दिन से आपका प्रारंभ होगा, आपकी बहिरात्म प्रवृत्ति छूटेगी, अंतरात्म प्रवृत्ति प्रारंभ होगी। आचार्य कहते हैं बहिरात्म प्रवृत्ति क्या है? बस इंद्रियों के ये पाँच द्वार और इन्हीं द्वारों के माध्यम से वह हर एक इंद्रिय को तृप्त करने की खुराक ढूंढता रहता है और आत्मा बावली होकर के जिंदगी भर इस खुराक को ढूंढने में ही अपना समय निकाल देती है। उस आत्मा के लिए ये कभी समझ में नहीं आता कि इंद्रिय से परे भी कोई चीज है। इस इंद्रिय के परे जो चीज है वही मैं हूँ, वही मेरा अस्तित्व है। उस अस्तित्व की पहुँच अगर हमारे अंदर होगी तो वो अध्यात्म के ज्ञान से होगी। लेकिन आज का बेटा अपने माँ-बाप को भी अनपढ़ समझता है और धर्मगुरु को भी वो कुछ नहीं समझता है।

उसको अपने ज्ञान का इतना अहंकार हो जाता है कि वो अपने लिए अपने अलावा किसी को कुछ समझता ही नहीं। जो बेटा अपने घर के माँ-बाप को कुछ नहीं समझ रहा है तो वो गुरु को क्या समझेगा। गुरु को समझे बिना उसके अंदर अस्तित्व की पहचान की सीख कैसे उत्पन्न होगी क्योंकि जब तक हम गुरु के निकट आकर नहीं बैठेंगे, हमें अपने अस्तित्व का ज्ञान कभी हो ही नहीं सकता है। प्रभु के पास तो जाना नहीं, गुरु से हमेशा दूर रहना और जो हमारे लिए इंद्रिय के विषय के समर्थन कराने वाले पदार्थ हैं उनके पास रहना। यही सबसे बड़ा भटकाव आज की दुनिया का है। प्रभु से दूर रहकर भी अगर आप गुरु के पास में जाते रहोगे तो गुरु तुम्हें कभी न कभी प्रभु से मिला देंगे। प्रभु से भी दूर हो और गुरु से भी दूर हो तो आपके लिए कभी भी उन्नति का मार्ग खुला नहीं रह सकता।

कबीरदास ने एक बहुत अच्छी बात कही है-

कबीरा वे नर और हैं जो कहते गुरु ओर
प्रभु रूठे तो ठौर है गुरु रूठे नहीं ठौर

वे मनुष्य जो इस प्रकार से बोलते हैं कि हम गुरु के बिना भी ज्ञान प्राप्त कर लेंगे तो वे कभी भी गुरु के बिना प्रभु को प्राप्त नहीं कर सकते। आचार्य कहते हैं जिस समय पर इस आत्मा

के लिए ऐसे आत्मज्ञान की प्राप्ति होगी और वह आत्मा अपने ही उपयोग को उन्मुख करेगा। अपनी ही परिणति में वो अपने उपयोग को लगाएगा, उस समय पर उसकी आत्मा में ऐसी विशुद्धि उत्पन्न होती है कि वह विशुद्धि ही उसके सम्यक् दर्शन का कारण बन जाती है। एक बार यदि सम्यक् दर्शन की परिणति आत्मा में उत्पन्न हो जाती है तो वह समीचीन दृष्टि कहलाता है। **समीचीन दृष्टि** का मतलब ही है, जड़ को जड़ जानना और चेतन को चेतन जानना। जड़ से भिन्न इस चेतन के अस्तित्व को प्राप्त कर लेगा और वह चेतना का अस्तित्व हमें समझ में आ जाएगा तो वह ऐसे कई जड़ों को जो कई बार हमें मिले हैं, उनसे भी रहित करके हमें केवल अपने स्वभाव को प्राप्त करा देगा। समीचीन दृष्टि को प्राप्त करने से भी पहले हमें पाँच प्रकार की लब्धियाँ प्राप्त करनी पड़ती है। तब जाकर के इस आत्मा को सम्यक्त्व की प्राप्ति होती है। लब्धियाँ का मतलब ऐसी चीजें जो आत्मा के लिए दुर्लभ है। ऐसा हमारे ज्ञान का क्षयोपशम कहो कि हम गुरु की वाणी को सुन पाए, समझ पाए। ऐसा हमारी इंद्रियों का क्षयोपशम हो कि हमारे कान में शब्द घुस पाए उसका नाम कहलाता है क्षयोपशम लब्धि। उस क्षयोपशम को प्राप्त करने के बाद में हमारी आत्मा के अंदर ऐसी विशुद्धि बढ़े, ऐसी आत्मा के अस्तित्व को प्राप्त करने की ललक बढ़े कि हमें किसी भी प्रकार का कोई संक्लेश इस ज्ञान में न रहे और हम उस विशुद्धि के माध्यम से अपनी आत्मा में लगे हुए उन कर्मों को इस ढंग से गलाते चले जाए, उसका नाम है विशुद्धि लब्धि। हमें ऐसी विशुद्धि प्राप्त हो उसी समय पर हमें गुरु, देशना देने वाले मिल जाएँ और उनकी देशना से हमारा मन भीग जाए तब उस आत्मा को जो उपलब्धि होती है उसका नाम है देशनालब्धि। उस **देशनालब्धि** के बाद में आत्मा के अंदर ऐसे परिणाम उत्पन्न होते हैं जो परिणाम सम्यक् दर्शन के योग्य होते हैं उसको कहा जाता है प्रायोग्य लब्धि और उसके बाद में उस आत्मा के परिणाम ऐसे और बढ़ते चले जाते हैं जो परिणाम उसे अभी तक नहीं हुए। वह परिणाम जीवन में एक बार होते हैं उसका नाम होता है करण लब्धि। ऐसी ५ लब्धियों के रूढ़ होने पर आत्मा को सम्यक्दर्शन की प्राप्ति होती है। तब ये आत्मा बनता है सम्यक्दृष्टि और जिस दिन ये आत्मा सम्यक्दृष्टि बन जाता है उस दिन उसे समझ में आने लग जाता है कि हमने जितना भी जीवन अनादि का जिया है सिर्फ इस जड़ की सेवा के साथ जिया है आत्मा की कोई आराधना हमने की ही नहीं। इंद्रिय के विषय और उन इंद्रियों के विषय में वह अपनी देह को ही सब कुछ मानकर के जब चलता है तो आचार्य कहते हैं ये बहिरात्म वृत्ति है। देह के आश्रित जितना जीवन है वह बहिरात्म वृत्ति है। हमारा जीवन

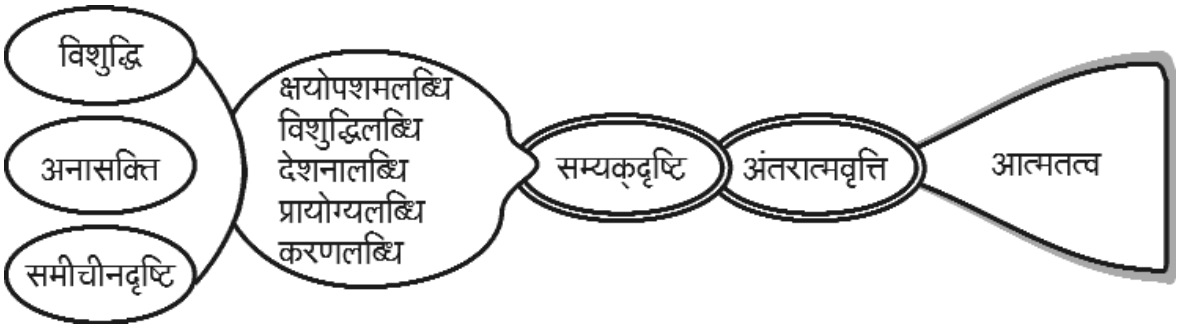
आत्मा के आश्रित है। यह देह भी किसी के आश्रित हैं देह का संबंध भी आत्मा से जुड़ा हुआ है। जब आत्मा का आश्रय ले लोगे तो बाहर शरीर के रोग तुम्हें परेशान नहीं कर पाएँगे। कई जीव आज इन रोगों से परेशान हैं और उन रोगों से तड़प-तड़प करके या तो उन्हीं के साथ मरना पड़ता है या फिर वो सुसाइट करने की सोचते हैं। छोटी-छोटी बातों पर परेशान होकर के जिंदगी से दूर भागने की कोशिश करते हैं। अध्यात्म कहता है तुम जहाँ हो वहीं ठहर जाओ। हर चीज की परिणति को देखो और अगर तुम केवल उस परिणति को देखकर के उससे आसक्ति को कम कर लोगे, केवल उसके ज्ञाता दृष्टा बनकर के उसे देखने का प्रयास करोगे तो वह चीज तुम्हारे लिए दु:ख नहीं दे पाएगी। वह भी एक पराई वस्तु की तरह तुम्हारे सामने होगी। तुम्हें कभी ऐसा लगता है कि हमारा शरीर पराया हो गया, जब लग जाएगा तो पीठ में फोड़ा भी होगा वह ऑपरेशन हो जाएगा। वह सोचता रहेगा ये शरीर हमारा नहीं है। हमारा तो ज्ञान केवल हमारा है और जो सम्यक्दृष्टि होता है, वह जानता है कि ज्ञान अगर आत्मा का स्वभाव है तो हमें अपने उपयोग को ज्ञान में लगाना है। हमें अपने आप को एकाग्र करने का मन बनाना है। उसकी इस एकाग्र परिणति से ही उसकी शरीर के प्रति आसक्ति कम होती है। इन शरीर की आसक्ति में ही जीव जी रहा है। कोई स्पर्शन इंद्रिय की आसक्ति में जी रहा है, कोई रसना इंद्रिय की आसक्ति में जी रहा है। कोई घ्राण इंद्रिय की आसक्ति में जी रहा है। कोई चक्षु इंद्रिय की आसक्ति में जी रहा है तो कोई कर्ण इंद्रिय की आसक्ति में जी रहा है। ये जितने भी वॉट्सअप हैं, जितने भी मोबाइल हैं और जो जो इंटरनेट के माध्यम से वेबसाइटों से जो कनेक्शन हैं ये सब चक्षु इंद्रिय और कर्ण इंद्रिय के प्रति आसक्ति के बहुत बड़े अपरेट्स हैं। इन चक्षु इंद्रिय व कर्ण इंद्रिय की आसक्ति के माध्यम से ही पूरा का पूरा दिमाग डिस्टर्ब होता है और उसका पूरा का पूरा जीवन बिगड़ने लग जाता है। आखिर आदमी का जीवन उसके अपने विचारों से ही चलता है। विचारों से जहाँ उसके दिमाग में वासना भर जाएगी, उसके दिमाग में कभी भी साधना की बात नहीं आएगी और वह हमेशा उन साधनों को खोजेगा जिन साधनों के माध्यम से उसकी वासना बढ़ती हो, उसका दिमाग भ्रमित होता हो और मोह की तरंगें और उछाले लेती हो, वो हमेशा ऐसे ही इन साधनों को अंगीकार करेगा। भगवान् ने जो मार्ग दिया है वो साधनों में उलझने का नहीं, साधना में सुलझने का मार्ग दिया है। हमने आज जिस प्रकार से जीवन को ढाल लिया है, वह साधनों में ढल रहा है और आत्मा का मार्ग साधना का मार्ग है। साधना में जब आत्मा का मार्ग ढलने लग जाता है तो हमें इन साधनों में भी

कोई रुचि नहीं रहती। लेकिन आज का जीव इतना ज्यादा अज्ञानता में जी रहा है कि हम चाहे स्पर्शन इंद्रिय की या चाहे रसना इंद्रिय की या घ्राण इंद्रिय की बात करें, उसे दुर्गंध भी दुर्गंध नहीं लगती। आसक्ति देखो कितनी बड़ी चीज होती है। आप सब जानते हो सिगरेट और बीड़ी का धुआं कोई ऐसा धुआं नहीं होता जिसको कि हम उसको बार-बार लेने की इच्छा करें लेकिन फिर भी जब वह धुआं कोई भी व्यक्ति सिगरेट और बीड़ी के माध्यम से खुद लेता है तो उसे वह धुआं उसे गंदा नहीं लगता। सामने वाले को वो धुआं गंदा लग सकता है लेकिन जो व्यक्ति खुद पी रहा है और खुद उसकी नाक में वो धुआं घुस रहा है, धुएँ से उसके लिए ठसका भी लग रहा है, खांसी भी हो रही है, खर्र-खर्र भी कर रहा है लेकिन फिर भी वो उसको छोड़ नहीं पा रहा है, इसका नाम कहलाता है **आसक्ति,** इसी का नाम है बहिरात्म वृत्ति। जानने के बाद भी, जानकारी देने के बाद भी, बात को बताने के बाद भी कि ये कैंसर का कारण होगा, इससे तुम्हारे फेफड़े गल जाएँगे, इससे टी.बी. हो जाएगी, हर व्यक्ति इस बात को जान रहा है लेकिन फिर भी आज का पढ़ा-लिखा इंसान सब कुछ कर रहा है। हमने सुना ये पूरी बेल्ट जब से मैं निम्बाहेड़ा से इस बेल्ट में प्रवेश किया हूँ, स्मैकची बेल्ट है। ये पूरी अफीम की, गांजा की, नशे की पूरी बेल्ट है। इसमें नीमच, मंदसौर और रतलाम भी आ जाता है। अगर इसी प्रकार के हम देश में रह रहे हैं, इसी प्रकार के व्यापारों के बीच में हम रह रहे हैं तो हमें अपने आपको बचाना बहुत जरूरी है क्योंकि एक बार इन चीजों की अगर आदमी को लत लग जाती है तो ये ऐसे मोह हैं कि उसे बार-बार उन चीजों की आवश्यकता पड़ने लग जाती है। शौक-शौक में एक बार यदि आदमी ले लेता है तो दूसरी बार उसे लेने की इच्छा हो जाती है फिर वह सब विज्ञान भूल जाता है। जितनी भी उसने फिजिक्स, केमेस्ट्री पढ़ी हो, जूलॉजी- बाटनी पढ़ी हो, कितने प्रकार से धुओं के माध्यम से हमारे हार्ट में, फेफेड़ों में कितने रोग हो सकते हैं वह सब भूल जाएगा। आसक्ति इसी का नाम है, जहाँ पर आत्मज्ञान छूट जाए और इंद्रिय ज्ञान प्रधान हो जाए। इसी का नाम है बहिरात्म वृत्ति। एक बार हमने सुना था- सिगरेट पीने वालों के लिए एक सर्वे में प्रगट हुआ है वो व्यक्ति नियम से मांसाहारी होने लग जाते हैं। उस सर्वे में वैज्ञानिक तरीके से ये बताया गया है कि सिगरेट पीने वालों को कड़वे पदार्थों का अनुभव कम होने लग जाता है। ऐसी स्थिति में जो चौके में मुनि महाराज के लिए भोजन बनता है वो उनके गले में कभी उतर ही नहीं सकता।

वो सिगरेट पीने वालों के लिए सबसे ज्यादा टेस्ट आता है, बहुत ज्यादा मिर्च-मसाले वाले

पदार्थों में, वे उन्हीं को खा पाएगा और उन मिर्च मसालों से भी उनकी तृप्ति नहीं होती है तो वो मांसाहार की ओर झुकने लग जाता है और उससे भी जब तृप्ति नहीं होती है तो वे शराब पीने की ओर झुकने लग जाते हैं। एक आदत तुम्हें कहाँ तक ले जा सकती है। एक सिगरेट की आदत मांसाहार की ओर भी ले जा सकती है, शराब की ओर भी ले जा सकती है और जब वह शराब पीने जाएगा तो होटलों में जाएगा, क्लबों में जाएगा। तो समझ लो सप्त व्यसन में लिप्त हो गया। अब उसके जीवन को कोई सुधारने वाला मिल जाए ये बहुत कठिन बात है। उसे जब अपना जीवन खुद तब सुधारने में आएगा जब उसे महसूस होने लगे कि हम किसी गलत रास्ते पर चले गए हैं और हमें केवल इतना मन बनाना है कि अब हमें लौटना है और जैसे ही हम ये मन बना लेंगे तो हमारा उस गलत रास्ते से लौटना भी हो जाएगा। आपने देखा है, सुन रहा हूँ कि आज की जैन समाज के बहुत सारे बच्चे या कोई भी पढ़ी-लिखी समाज के जो बच्चे हैं वो सब इन ऐबों में पूरे आमूलचूल से लिप्त हो रहे हैं। न तो उनके लिए स्मोकिंग बहुत बड़ी चीज रह गई है न ड्रिंकिंग बड़ी चीज रह गई, उन्हें सब प्रकार के भोजन चाहिए, सब प्रकार के ऐशो-आराम चाहिए और वे भरपूर पैसे का इस प्रकार से दुरुपयोग करते हैं। जीवन की बर्बादियाँ करने वाली जो चीज हैं वो सब बहिरात्म प्रवृत्तियाँ कहलाती हैं। ऐसी बहिरात्म प्रवृत्तियों की जिनके अंदर आदत पड़ चुकी है, उन्हें अंतरात्मा बनाना बड़ी कठिन बात है। फिर भी प्रयास चल रहा है। इस प्रयास में आपको खुद प्रयास करना है और उस प्रयास के साथ-साथ आपको अपने बच्चों तक भी पहुँचाना है क्योंकि ये प्रयास तो आपके जीवन के २५ वर्ष में काम आएँगे लेकिन आने वाली जो पीढ़ी है, उसके पास जब तब ये धर्म का ज्ञान नहीं पहुँचेगा, ये अध्यात्म का ज्ञान नहीं पहुँचेगा, तब तक वो अपने आपको कभी संभाल नहीं पाएगा। अगर वो अपने आपको नहीं संभाल पाएगा तो ध्यान रखना वो तुमको भी नहीं संभाल पाएगा। जो व्यक्ति खुद को नहीं संभाल सकता वो दुनिया में किसी को नहीं संभाल सकता। अपने घर के माता-पिता को वो क्या संभालेगा, जो खुद बिगड़ा हुआ है और अगर वह एक बार बिगड़ गया तो उसके लिए जीवन में अगर कोई अवसर मिल सकता है तो वो तभी मिल सकता है जब उसे कोई प्रेम करने वाला गुरु मिले, उसके माता-पिता मिले। लेकिन वो माता-पिता भी उसे प्रेम से प्रेरित करें, डांटे नहीं क्योंकि बेटा जब बड़ा हो जाता है तो फिर डांटने से नहीं समझता, वो अपने प्रेम की भाषा ही समझता है। जैसे उस माँ ने समझाया। भूल गए उस माँ को जो शुरू से समझाती आ रही है। जैसे उस माँ ने अपने अनुभव से समझाया

और उसी तरह से अगर आप अपने अनुभव का प्रयोग करोगे तो उन बेटों और बेटियों को भी इस प्रकार का ज्ञान दो कि वे उच्छृंखल न बन पाए और अपने जीवन को सप्त व्यसनों में लिप्त न कर पाए और वे अपने जीवन को इस अच्छे ढंग से गुजारे कि उन्हें माता-पिता की भी कीमत करना आए तथा धर्मगुरुओं की भी कीमत समझ में आए। ये अगर आपके द्वारा हो गया तो समझना कि आपने आगे आने वाली भावी पीढ़ी पर बहुत बड़ा उपकार कर लिया। अपने अस्तित्व की खोज करना हर किसी के लिए आवश्यक है क्योंकि हर आत्मा एक स्वतंत्र द्रव्य है और वह उन स्वतंत्र सत्ता के साथ जी रहा है, जिस स्वतंत्र सत्ता में यहाँ का कण-कण जी रहा है। हर किसी का कर्तव्य है कि वो ये न समझे कि मेरे घर में अगर चार लोग हैं तो घर में दो लोग तो महाराज के प्रवचन सुन रहे हैं, धर्म ध्यान कर रहे हैं और दो लोग दुकान कर रहे हैं। अगर चार लोग हैं तो चारों का अस्तित्व अलग-अलग है। हर किसी को अपने अस्तित्व की पहचान करना एवं खोज करना आना चाहिए। हर किसी को अपनी वृत्ति को अंतरात्म वृत्ति बनाना है। ये कोई न्योता नहीं है। हर आत्मा एक स्वतंत्र द्रव्य है और उसकी स्वतंत्रता का भान उसे हो जाए यही उसके जीवन की सबसे बड़ी उपलब्धि है। ऐसी उपलब्धियों के सहारे आप जियो।



श्लोक–८

नरदेहस्थमात्मान–मविद्वान् मन्यते नरम्।
तिर्यञ्चं तिर्यगङ्गस्थं सुराङ्गस्थं सुरं तथा।।८।।

धिक्कार! मानव–तन–स्थित आत्मा को ही, हैं मानते मनुज रूप सदा विमोही।
तिर्यंच देह अरु देव शरीर पाते, तिर्यंच, देव क्रमशः निज को जनाते।।८।।

आचार्य कहते हैं जो जीव इंद्रियों के माध्यम से ही अपने इंद्रिय के विषयों को ग्रहण करने में तत्पर रहता है वह बहिरात्मा होता है और उसकी वह बहिरात्म वृत्ति होती है। वह जीव अपने स्वरूप को नहीं जानता हुआ जिस शरीर को धारण करने लगता है वह उस शरीर को ही अपनी आत्मा मान लेता है। चार गतियों में ये जीव निरंतर भटकता है और वह जिस पर्याय में जाता है, जिस गति को धारण करता है उसी के अनुसार उसकी धारणा बन जाती है। जो जीव मनुष्य की देह में स्थित हो जाता है वह अपने आप को मनुष्य ही मानने लग जाता है। जो जीव तिर्यंच पर्याय को धारण कर लेता है वह अपने आपको तिर्यंच मानने लग जाता है। जो जीव कभी नारकीय पर्याय को प्राप्त कर लेता है वह अपने आपको नारकीय मानने लग जाता है और जब वह जीव कभी देव पर्याय को धारण कर लेता है तब वह अपने आपको देव ही मानने लग जाता है। पर्यायों में आत्म बुद्धि का होना यही सबसे बड़ी मूढ़ आत्मा की **मूढ़ बुद्धि** कहलाती है। जब कोई भी द्रव्य अपनी परिणतियों से गुजरता है तब उस द्रव्य की कुछ स्वाभाविक परिणतियाँ होती है कुछ व्यवहारिक परिणतियाँ होती है। जो द्रव्य व्यवहारिक परिणतियों को अपना मान लेता है वह जीव कभी भी सम्यक्त्व को प्राप्त नहीं होता।

अवस्था

आचार्य यहाँ कहते हैं तुमने शरीर को अपना मानकर के ये मान लिया कि ये शरीर तुम्हारा

है और जब ये शरीर छूटता है तब तुम्हें ऐसा एहसास होता है कि हमारा ही इस जहाँ से जाना हो रहा है। शरीर की अनेक अवस्थाएँ होती हैं- बाल्य अवस्था, यौवन अवस्था, प्रौढ़ अवस्था, वृद्धावस्था और अंतिम मृत्यु की भी अवस्था होती है। इन सब अवस्थाओं में हम अपने शरीर को ही अनेक-अनेक रूपों में देखते हैं। जब वह बालक रहता है तो वह बालक ही अपने को मानता है, जब वह थोड़ा सा युवा हो जाता है तो वह अपने आपको युवा मानने लग जाता है। मान्यता तो छूट गई। पहले मानता था कि मैं बालक हूँ फिर मानने लगा कि मैं युवा हुआ। थोड़ा और बड़ा हुआ तो प्रौढ़ बुद्धि हो जाती है तो वह मानने लगता है कि मैं प्रौढ़ हूँ और बड़ा होता है तो उसकी बुद्धि और बढ़ती है तब उसे लगने लग जाता है कि अब मैं बूढ़ा हो गया हूँ, वृद्ध हो गया हूँ। इन पर्यायों में वह **जो आत्मबुद्धि रखता** है, उस आत्म बुद्धि की एकरूपता कभी भी नहीं रहती है और वह उन पर्यायों को ही केवल अपना मान लेता है। वह ये नहीं मान पाता है कि मैं कुछ ऐसा हूँ जो हर जगह पर हर समय में रहता हूँ। वह केवल जो सामने होता है उसी को अपना मान लेता है। उसी के अनुसार उसकी धारणा बदलती चली जा रही है और वह उस शाश्वत सत्य को नहीं जान पाता जो उसके भीतर छुपा हुआ है। कोई भी व्यक्ति बालक से युवा एवं वृद्ध बनकर के छूट गया तो उसे ये ख्याल क्यों नहीं आता कि मेरा क्या छूट गया और मैं क्या हो गया। वह ये क्यों नहीं सोचता है कि मेरे अंदर युवापन की भी अनुभूति थी, अब वृद्धपन की अनुभूति हो रही है, ये बाहर की जो परिणति है, ये परिणति भले ही बदल रही हो लेकिन मैं तो वही हूँ जो पहले था। मेरा ये विकास जो निरंतर चल रहा है, वह विकास अगर हम समग्रता की दृष्टि से देखते हैं तो उस समग्रता में आपको बाहर की पर्यायों के छूटने और मिलने का तो हर्ष और विषाद हो सकता है लेकिन अगर आप उसको समग्र दृष्टि से देखो तो आपको लगेगा कि मैं वास्तव में कौन हूँ ये आपकी पहचान बन नहीं पाती।

मैं कौन हूँ

हमने बालक अवस्था में अपने आपको बालक मान लिया, युवावस्था में अपने आपको युवा मान लिया, वृद्ध अवस्था में वृद्ध मान लिया। जब युवा हुए तो युवा में ही अपने आपको युवा जैसा अपना पेशा बन गया, जैसी अपनी सर्विस लग गई उसी के अनुसार अपने आपको मान

लिया कि मैं डॉक्टर बन गया, मैं इंजीनियर बन गया, मैं लॉयर बन गया, मैं टीचर बन गया। लेकिन जो ये मैं हूँ उस ''मैं'' को आदमी पहचान नहीं पाता कि ''मैं'' कौन हूँ। अगर इस 'मैं' की तरफ थोड़ा सा आदमी ध्यान देने लग जाए कि 'मैं' जो शब्द है ये हमें क्या बताना चाह रहा है और हम इस 'मैं' के माध्यम से जो कुछ भी अपने आपको मानते हैं तब वो मानना हमारा हमेशा क्यों नहीं एक जैसा बना रहता है, हम क्यों अपने आपको अनेक रूपों में बदलते रहते हैं। जब हमने आपको बालक माना तो वो भी छूट गया। बड़े हुए तो अपने आपको बड़ा माना तो वह भी छूट गया। आखिर ये मैं के साथ में अनेक चीजें जुड़ती हैं और वह 'मैं' के साथ में हर जुड़ी हुई चीज छूटती चली जाती हैं, मैं 'मैं-मैं' ही कहता रहता हूँ। मैं अपने आपको पता तक नहीं कर पाता कि मैं कौन हूँ। यही पता यहाँ बताया जा रहा है। जब तक हमने अपनी देह को मनुष्य मानकर के अपने आपको मनुष्य ही माना तो आचार्य कहते हैं तुम कौन हो तो हर आदमी कहेगा मैं एक मनुष्य हूँ। अगर वह जैन कुल में उत्पन्न हुआ है तो वह ये भी कहेगा कि मैं जैन हूँ। वह ब्राह्मण कुल में उत्पन्न हुआ है तो वह कहेगा मैं ब्राह्मण हूँ। अनेक प्रकार के कुलों में उत्पन्न होने के साथ में उसकी पहचान भी अनेक प्रकार से बनती चली जाती है। जब हम सब प्रकार के कुलों के व्यक्तियों को इकट्ठा कर लें और समूह से पूछा जाए और वे जब ये कहे कि मैं मनुष्य हूँ तब वहाँ पर जाति के भेद छूट गए और अपने आप एक **अखंडता** का सूत्र बनने लग जाता है। एक उसका स्वरूप निर्धारित हो जाता है और जब हम अपने आपको शक्तिशाली महसूस करने लगेंगे या खुशी महसूस करेंगे तो हम उस अखंडता को ध्यान में रखकर ही करेंगे। हर व्यक्ति को धर्मप्रेम और देशप्रेम इसलिए करना सिखाया जाता है कि वो जिस धर्म में रहे उन लोगों के साथ उसका प्रेम बना रहे और देशप्रेम करना इसलिए सिखाया जाता है कि अगर देश से प्रेम करेगा तो देश के हर व्यक्ति से, हर संप्रदाय से उसका प्रेम होगा। जैसे ही हम देश प्रेम की बात करते हैं, हमारे अंदर अपने आप अखंडता का भाव आ जाता है कि हम सब एक देश के वासी हैं हम सब भारतीय हैं। जब हम केवल राजकीय बात करते हैं तो भी हमारे अंदर ये भाव आ जाता है कि हम सब मध्यप्रदेश के लोग हैं लेकिन उस अखंडता में थोड़ी सी कमी आ जाती है। जब हम और नीचे आकर के बात करते हैं कि हम मध्यप्रदेश के मंदसौर जिले में रहने वाले हैं तो फिर हमें केवल मंदसौर ही दिखाई देता है, दूसरा कुछ दिखाई नहीं देता। हमारी उस अखंडता में थोड़ी सी और कमी आ जाती है। जब हम केवल ये बात करते हैं कि मंदसौर में भी केवल एक ही कॉलोनी के

हैं, एक ही चौराहे के हैं तो हमारी अखंडता में और कमी आ जाती है। जब हम उस अखंडता को साथ में और बाँटते चले जाते हैं और हम कहने लग जाते हैं कि इस कॉलोनी के केवल हम इस घर में रहने वाले हैं तो हम और दुनिया से छूट जाते हैं, अखंडता से छूट जाते हैं और हम केवल एक जो अपना सभी के साथ अस्तित्व है, उतना ही अपने आपको समझ पाते हैं और बना पाते हैं। जैसे-जैसे हमें अपनी अखंडता का ज्ञान होता है, हमारा दिमाग विस्तृत होता है और हमारे दिमाग के अंदर सुख और समत्व की भावना बढ़ती चली जाती है। अखंडता में ही सुख और अखंडता में ही समता समाई है। अखंडता की कल्पना वो ही कर पाएगा जिसके अंदर सम्यक्त्व की भावना होगी।

जो सबके प्रति सद्भाव रखेगा, सबके प्रति मैत्री भाव रखेगा वही व्यक्ति कह पाएगा कि मैं भारत देश का हूँ हम सब भारतवासी हैं। वही व्यक्ति कह पाएगा हम सब मनुष्य है और वही व्यक्ति जब अपनी ही पर्यायों को देखेगा- बाल, युवा, वृद्ध इन पर्यायों में भी जब उसे अखंडता का ज्ञान हो जाएगा तो वह अपने आपको टूटता हुआ महसूस नहीं करेगा। वह अपने आपको अखंड महसूस करेगा।

राम

आज हर आदमी भीतर से टूटा हुआ क्यों दिखाई देता है जैसे कि वह कुछ है ही नहीं। एक बार सुन रहा था आदमी जीता है तो इसलिए जी रहा है मानो उसे जीना पड़ रहा है और आदमी मरता है तब भी इसलिए मरना पड़ता है कि मानो वह मरना नहीं चाहता लेकिन मरना पड़ रहा है। न आदमी अच्छे ढंग से जी पा रहा है न आदमी अच्छे ढंग से मर पा रहा है। ये जीने और मरने की जो कड़ी है ये कभी टूटती है, कभी जुड़ती है। इस टूटन व जुड़न से जब तक अपनी अखंडता का ज्ञान नहीं होता तब तक हम दु:खी होते रहते हैं क्योंकि हम टुकड़ों में जीते हैं। टुकड़ों में जीने की जो कड़ी है उस कड़ी को जब हम ध्यान में रखेंगे तो हम उन टुकड़ों के साथ भी आनंद ले पाएँगे। जब हम टुकड़ों की उन कड़ी को भूल जाते हैं तो हमारी केवल टुकड़ों की ओर दृष्टि रह जाती है। आप सब लोग अपने गले में एक हार पहनते हो और हार के अंदर अनेक मोती होते हैं, कोई भी धातु के पीस हो सकते हैं लेकिन उसके भीतर उसे जोड़े रखने का एक तार भी पिरोया हुआ रहता है। आपको जब भी कोई हार दिखाई देता है उसके भीतर का तार/धागा आपको

दिखाई नहीं देता। आपको ऊपर का वह चाँदी का, मोती का या सोने आदि की जो लड़ियाँ हैं, वो लड़ियाँ आपको दिखाई देती है। हर आत्मा की दृष्टि ऐसी ही बनी हुई है। इस अध्यात्म ज्ञान के माध्यम से हमें ये ऋषि मुनि वो ज्ञान कराना चाहते हैं कि तुम ऊपर की लड़ियों को देख रहे हो, ये तो अच्छी बात है लेकिन ये भी तो ध्यान रखो कि वे लड़ियाँ अगर किसी में पिरोई गई है तो वो भी कोई चीज है। वो भीतर एक तार में वह सब लड़ियाँ पिरोई हुई हैं। उसकी ओर दृष्टि नहीं जाने के कारण से हम केवल उस हार की एक-एक लड़ी को देखकर खुश हो लेते हैं। अगर वह लड़ी टूट जाती है तो हम दु:खी हो जाते है। हमारा शरीर एक खिलौने की तरह है और खिलौने में जिस ढंग से चाबी भर दी जाती है, वह खिलौना उतना ही चलता है। कभी-कभी चाबी तो भरी रहती है लेकिन बीच में वह डिफेक्टेड हो जाता है। उसी तरह से हमारा शरीर जितनी हम चाबी भरके अपने पूर्व जन्म से लाए हैं वह खिलौना/शरीर उतना ही चलेगा। आप लोग बोलते हो, ''जितनी चाबी भरी राम ने उतना चले खिलौना।'' चाबी तो भरी है लेकिन राम ने भरी है या आत्माराम ने। राम हर व्यक्ति के अंदर है। हम यदि एक व्यक्ति को राम कह देते हैं तो हम अपने आत्माराम को भूल जाते हैं। राम का मतलब है जो अपने ही द्रव्य, अपने ही पर्यायों में रमण करे, ''रमते इति राम।'' हर आत्मा अपने ही द्रव्य में अपने ही पर्यायों में रमण कर रहा है। हर आत्मा अपने आप में राम है इसलिए उसे आत्माराम कहा जाता है।

जो काले शरीर को लेकर के उत्पन्न हो गया उसे कालूराम कहने लगे हैं जो गोरे शरीर के साथ उत्पन्न हो गया उसे गोरूराम कहने लगे लेकिन वह भी ऊपर की कड़ी है। उसके अस्तित्व का जब तक ज्ञान नहीं होता तब तक हम केवल उस पार की कड़ी से ही हर पर विश्वास करते रहते हैं। आचार्य कहते हैं तुम ये हर्ष–विषाद की परंपराएँ तोड़ दो। तुम अपने आपको इस रूप में ढाल दो कि तुम्हारे सामने कुछ भी होता रहे और तुम बिल्कुल उसके निकट रहते हुए भी उसको देखते रहो लेकिन उससे परेशान नहीं हो। जो भी हमारे सामने अवस्थाएँ आ रही हैं, वो सब अवस्थाएँ उस आत्माराम की देन है। उस आत्माराम ने स्वयं अपने ही कर्मों के कारण से पूर्व जन्म में अपने ही कर्म से ऐसे बंध किए हैं, ऐसी चाबी भर ली है कि वही चाबी अब काम में आ रही है।

साँसों की चाबी से चलता तेरा देह खिलौना
बच्चों सा ये खेल तुझे ही लगता सदा सलोना

समय मिला न आत्म ध्यान का, अब मृत्यु आई
अरिहंतों की प्रतिमाओं का ध्यान धरो भाई
कोई भी न करे जिसे वो काम करो भाई

पर्याय

महाराज यहाँ तो हम बिल्कुल निश्चिंत बैठते हैं। एक घंटे बिल्कुल टेंशनलेस। ऐसा लगता है हम स्वर्ग में बैठे हैं। ये जो निश्चिंतता हमारे अंदर आती है वो ज्ञान से आती है, वो ज्ञान हमें समूची पर्यायों का, द्रव्य का ज्ञान कराता है और जब उन सब परिणतियों के साथ में मिलकर के चलते हैं तो हमारे अंतरंग में ऐसा ज्ञान प्रस्फुटित होता है कि हम अखंडता को जानने लग जाते हैं। पर्यायों को जानना खंडता को जानना है और द्रव्य को जानना अखंड स्वरूप को जानना है। पर्यायों का ज्ञान हमें हमेशा से रहा। हमें मालूम है कि हम बालक बने या हम युवा हो गए या हम रूग्ण हो गए या हम बूढ़े हो गए लेकिन उसके भीतर की एक कड़ी, जो कड़ी हमें जोड़े हुए हैं, बाल अवस्था से लेकर उस अंतिम मृत्यु अवस्था तक उस कड़ी की ओर हमारा ध्यान नहीं जाता। वह कड़ी उसी तरह से पिरोई हुई है जैसे मोतियों के हार में वह भीतर पड़ा तार पिरोया हुआ है। उस तार की ओर आपकी दृष्टि ले जाने का प्रयास यहाँ किया जा रहा है क्योंकि तार की ओर देखना, अपने द्रव्य को अपने स्वरूप को देखना है। बाहर की ओर देखना ये अपनी पर्यायों की ओर देखना है और पर्यायों को देखकर के अगर आपने उसमें द्रव्य की कल्पना कर ली तो ये आपकी मूढ़ बुद्धि हो गई और अगर आपने पर्याय को पर्याय और द्रव्य को द्रव्य समझा तो ये आपकी सम्यक् दृष्टि हो गई। आपको समीचीन दृष्टि दिलाने का प्रयास किया जा रहा है। जब हम मनुष्य थे तो मनुष्य हैं और अगर मनुष्य ही रहेंगे तो उस मनुष्य के रूप में जीने वाला जो 'मैं' होता है जो हमेशा कहता है 'मैं' मनुष्य हूँ, मैं बाल हूँ, मैं योगी हूँ, मैं रोगी हूँ उस 'मैं' को थोड़ा सा पहचानो।

आचार्य कहते हैं पर्याय हमेशा छूटती है और नई उत्पन्न होती है लेकिन द्रव्य हमेशा शाश्वत रहता है। द्रव्य अखंड होता है और उस अखंडता की ओर हमारी दृष्टि जाती है तो हम अपने आपको एकरूप अखंड महसूस करेंगे। जहाँ पर हमें एकरूपता महसूस होने लग जाती है हमारा

पूरा जीवन हमें अच्छा लगने लगेगा। तुमने अपना बचपन भुला दिया और आगे आने वाला जो बुढ़ापा है वह याद है कि नहीं। महाराज, बचपना याद करके भी डर लगता है और बुढ़ापा याद करने में भी डर लगता है क्योंकि हमने अपना बचपन अपनी अज्ञानता के साथ गुजारा, अपनी नादानी के साथ गुजारा और आने वाला जो बुढ़ापा है उसको देखकर के भी हमें डर लगता है। जब हम देखते हैं कि कोई बूढ़ी माँ जिसकी कमर झुककर बिल्कुल जमीन को छूने वाली है फिर भी वो अपनी जिंदगी निकाल रही है। ऐसा आशीर्वाद दो कि हमारी कमर कभी झुके नहीं।

आशीर्वाद लेना है, सीधे बैठना सीख लो। अगर कमर सीधी करके भी बैठना सीख गए तो भी तुम कमर के बहुत सारे रोगों से मुक्ति पा जाओगे और अगर कमर सीधी रहेगी तो तुम्हारे जीवन की हर चीज सीधी बनी रहेगी। अगर तुम्हारी कमर ज्यादा या तो पीछे झुक गई या आगे झुक गई तो समझ लेना तुम अपनी सामान्य अवस्था से हट गए। जब आदमी के पास में धन आ जाता है, लक्ष्मी आ जाती है तो उसका सीना बाहर आ जाता है और कमर पीछे हो जाती है।

जब वह धन विहीन हो जाता है। दरिद्रता के साथ उसको जीवन जीना पड़ता है उस समय पर उसका सीना झुक जाता है और उसकी कमर आगे की ओर आ जाती है। इस धन लक्ष्मी का गर्व भी आपके लिए एक अज्ञान होता है। इस धन को दौलत के रूप में कहा जाता है और दौलत का मतलब है- जो दो लातें मारे आदमी के जीवन में उसका नाम है **दौलत।**'' जब आते समय लात मारती है तो आदमी का सीना आगे बढ़ जाता है और जब जाते समय लात मारती है तो आदमी का सीना झुक जाता है, कमर भी उसकी टूट जाती है। उस दौलत के पीछे दुनिया पड़ी हुई है। हमारी उस परिणति में भी हमारा स्वरूप नहीं है, जिस परिणति में हम अपना सीना तान लेते हैं या सीना अपना झुका लेते हैं। हमें एक रूप में रहना सीखना है। एकरूपता तब आएगी जब आपको ये पता पड़े कि ये चीजें क्षणिक है। इनके माध्यम से आप अपने आपको सुखी या दु:खी मान लेते हैं। उस क्षणिक के साथ में जो शाश्वत रूप में जो कड़ी जुड़ी हुई है उस कड़ी को अगर हम ध्यान में रखें तो हमें इन क्षणिकाओं में हर्ष और विषाद उत्पन्न नहीं होगा।

स्वर्ग–नरक

हम अपने आपको जब अखंड रूप में स्वीकार करेंगे तो हमें समूचा जीवन अच्छा लगेगा। हमें जीना भी अच्छा लगेगा और मरना भी। अभी हमें जीना भी आनंद नहीं दे रहा है और मरना भी आनंद नहीं दे रहा। मरने में आनंद तो उसी को आएगा जिसको जीने में आनंद आया हो।

जिसका जीना मुश्किल से हो रहा है, तड़प-तड़प कर के हो रहा है, अपनी उम्र गुजार करने के लिए हो रहा है, उसे मरने में भी कोई आनंद नहीं आता और फिर उसे परलोक में भी कोई दुनिया मिलेगी तो उसमें भी कोई आनंद नहीं आएगा क्योंकि आनंद हर समय की चीज है। नरक में जीव जाते हैं, स्वर्ग में भी जीव जाते हैं। कई लोग सोचते हैं महाराज इस नरक और स्वर्ग को किसने देखा। ये तो सब शास्त्रों की कल्पनाएँ हैं, नरक व स्वर्ग जो कुछ भी है सब इस पृथ्वी पर ही है। देखा जाए तो वास्तव में सब कुछ यही है और जो यहाँ पर है वही नरक व स्वर्ग हमें आगे के लिए प्रेरित करता है।

यहाँ पर भी हमारे भावों में भी नरक-स्वर्ग है। जब यहाँ पर हमारे भावों की पूर्ति नहीं हो पाती है तो वहाँ नरक-स्वर्ग में जाकर हमारे भावों की पूर्ति होती है। आज मान लो कोई भी व्यक्ति पाप करता है, किसी व्यक्ति ने अपने जीवन में खूब पाप किए थे, हिंसा करी, खूब परस्त्री सेवन किया, खूब शराब पी, खूब मांसाहार किया। सब कुछ करने के बाद वह मर गया क्योंकि मरना तो सबको है। एक व्यक्ति वह है जिसने अपने जीवन में कोई भी पाप नहीं किया, धर्म करता रहा, कर्म करता रहा है और धर्म करके वह मर गया। हम आपसे पूछना चाहते हैं जिस व्यक्ति ने अपने जीवन में खूब हत्याएँ की, पाप किए और खूब हिंसाएँ की, दूसरों को खूब पीड़ित किया, सताया, उसके लिए उसको क्या फल मिला। अगर आप ये कहो कि नरक और स्वर्ग कोई चीज नहीं है तो हम आपसे एक प्रश्न करते हैं कि फिर आदमी को पाप-पुण्य, धर्म-अधर्म करने की जरूरत ही क्या है। चाहे आप पाप करो या पुण्य करो। एक आदमी को पाप में खुशी मिल रही है, एक आदमी को पुण्य में खुशी मिल रही है, वो अपनी मानसिकता की बात है। व्यक्ति कह सकता है आपको मंदिर जाने में खुशी मिल रही है, हमें शराब पीने में खुशी मिल रही है, आपको इससे मतलब क्या है। वह नरक और स्वर्ग के अस्तित्व पर प्रश्न उठाता है तब आप अपनी बुद्धि से थोड़ा सोचने का प्रयास करें। जिस आदमी ने यहाँ पर पाप के साथ जीवन जिया है, जिंदगी भर उसने हिंसाएँ की, हत्याएँ कीं, आतंक फैलाया उसके बावजूद भी तो उसका मरण ही तो हुआ। मरना तो सबको है। मरना ही अगर उसके लिए कर्म का फल मिलना है तो वह तो सबको मिलता है। अच्छा काम करने वाला भी मर रहा है, बुरे काम करने वाला भी मरेगा और आप देखोगे जो ज्यादा पाप कर रहा है, उससे आपको लगेगा कि ये ज्यादा खुश है, ज्यादा शोहरत है, धन वैभव है। जो धर्म किए जा रहा है वह बेचारा परेशान सा है, आगे भी परेशान ही दिखाई दे रहा है।

धर्म करना और अधर्म करना, पाप करना और पुण्य करना अगर ये केवल हमारी मानसिकता है और कोई इन मानसिकताओं में किसी भी मानसिकता के साथ जिये, जीवन का अंत तो यहीं पर हो जाना है और उसके बाद में नरक-स्वर्ग जैसी कोई चीज नहीं है तो आपकी बुद्धि में, आपके मस्तिष्क में अगर ज्ञान होगा तो आपके मन में ये भी एक प्रश्न आना चाहिए, ये विचार आना

चाहिए कि आखिर मरने के बाद में इस आत्मा को क्या फल मिला और मरना ही अगर सबके लिए अंतिम कर्म का फल है तो फिर कोई भी दुनिया में पाप करना नहीं छोड़ेगा। हर आदमी पाप में ही प्रवृत्ति करके मरना चाहेगा क्योंकि जो है उसको भोग लो, उसके बाद में पता नहीं मिले कि नहीं मिले। कर्म जो उसने यहाँ बांधा उसका फल अभी मिला कि नहीं मिला। मान लो बहुत बड़ा कसाई है, कसाइखाने में काटना ही रहता है, हमेशा जीवों को मारता ही रहता है, हमेशा असत्य बोलता ही रहता है, व्यसनों में लिप्त ही रहता है लेकिन मर गया। मरने भर से उसको मुक्ति नहीं मिलती। अगर मरना ही जीवन का अंतिम सत्य है तो कोई भी व्यक्ति मरने से डरता नहीं है और आजकल तो लोग मरने के लिए बहुत तैयार हैं। वह अपनी जिंदगी में कभी भी मरने जा सकते हैं, अकाल मरण कर जाते हैं, आत्महत्या कर लेते हैं। आपको ये सोचना है कि मरने के बाद भी कुछ जीवन रहता है। जिस व्यक्ति को अपने उस अस्तित्व की बात याद आती है कि मरने के बाद भी मैं रहूँगा और यहाँ पर जन्म लेने से पहले भी मैं कहीं से मरकर के आया हूँ तो आप को उस अस्तित्व के माध्यम से ही ज्ञान होगा कि मरने के बाद इसको कहीं न कहीं जाना है। जिस व्यक्ति ने अपने जीवन में पाप किए हैं उस पाप का फल उसे इस जीवन में तो मिला ही नहीं। वो तो जो पिछला पुण्य करके आया था, उस पुण्य को भोगता रहा और उस पुण्य को पाप में कन्वर्ट करता रहा और अंतिम समय में उसका मरण भी हो गया तो मरने मात्र से उसको कौनसी सजा मिल गई। आप तो सोचते ही रह गये कि इसको तो सजा मिली ही नहीं, पाप का कोई फल मिला ही नहीं, न जेल हुई, न कुछ हुआ। आप चाह रहे थे कि इसके पापों का फल इसे मिले। आपको कुछ विश्वास हो रहा है, बुद्धि में कुछ उतर रहा है वो जो पाप किए हैं, उस पाप का फल भोगने के लिए वो जहाँ जाएगा, उसी का नाम है नरक। अगर वो नरक नहीं होंगे तो कोई भी आदमी पाप करने से डरेगा नहीं।

जिसने यहाँ पर धर्म किया है उसको भी मरना है जो व्रत, तप, संयम अंगीकार कर रहा उसको भी मरना है और वह सब सात्विकता से जीवन जी रहा है उसको भी मरना है तो वो क्यों व्रत-तप करके अपनी आत्मा को परेशान करे और देह को सुखाए क्योंकि मरना तो सबको ही है। मरने के बाद कोई अस्तित्व नहीं आत्मा का तो आप नास्तिक हैं, आस्तिक नहीं हैं। **आस्तिक** उसी को कहते हैं जो आत्मा का अस्तित्व हमेशा स्वीकार करता हो। जो आत्मा का अस्तित्व केवल इसी पर्याय में स्वीकार करे और उसके बाद में न जीवन है न जीवन था, ऐसा जो मानेगा तो वह

नास्तिक कहलाएगा। आस्तिक का मतलब है अपना अस्तित्व हमेशा बनाए रखना और हमेशा उस अस्तित्व को स्वीकारना। आखिर उस धर्म करने वाले व्यक्ति को भी अगर उसके धर्म का फल मिलेगा तो क्या इतना ही फल मिला। व्रत, तप, उपवास जितने भी थे सब किए और जितना भी मजे वाले काम थे उन्हें नहीं किया और वह भी मर गया। अगर कोई आज के हिसाब का पढ़ा-लिखा आदमी होगा वो कहेगा बेचारा फालतू में मर गया, वह जीवन का आनंद भी नहीं ले पाया। आपको ये भी सोचना है, ये जो जीवन है, वो तो कुछ नहीं, ये तो सागर में छोटी सी जल की बूँद की तरह एक पर्याय है। २०-२५ साल- ६० साल- ८० साल। इससे ज्यादा भगवान् किसी को उम्र दे ही नहीं क्योंकि आदमी इतने में इतना परेशान हो जाता है कि वो कभी नहीं चाहता कि महाराज मैं १०० बरस से ज्यादा जिऊँ। अगर इस उम्र में ही सब कुछ हमारे लिए आ गया, इस उम्र के बाद कुछ नहीं है तो इसका मतलब है आपको अभी अपने अस्तित्व का ज्ञान नहीं है। ये नरक और स्वर्ग इसलिए है कि उसको मरने के बाद अगर कोई फल मिलेगा अपने कर्मों का तो वो नरक या स्वर्ग में ही जाकर के मिलेगा। जो यहाँ पर धर्म कर रहा है या पाप कर रहा है उसको अपने पापी जीवन में उसका फल नहीं मिला। सब कुछ उसके पास था, अंत में उसको किसी ने एक गोली मार दी, मर गया। नरक में जाने के बाद उसको कर्मों का फल मिलेगा, जो कर्म उसने यहाँ किए। अब वो नरक और स्वर्ग आपको अपने सेटेलाइट से नहीं दिख सकते। जो विज्ञान ये सेटेलाइट बना रहा है वह सेटेलाइट को कहीं भी रख दे, छोड़ दे, स्थापित कर दे लेकिन उनसे वो नरक और स्वर्ग नहीं दिख सकते क्योंकि वो भी एक मशीन है। उनमें भी लेंस है और उन लेंसों की एक क्षमता है जो कभी भी आत्मा की क्षमता से बड़ी नहीं हो सकती क्योंकि वो पौद्गलिक चीजें हैं। उसमें मैटर है उसका जो ज्ञान है, उसकी जो क्षमता है वो आत्मा के सूक्ष्म विज्ञान से कभी भी पार नहीं जा सकती। इसलिए कुछ मेकेनिज्म हैं जो दिखाई नहीं देता है। उस 'है' को हम स्वीकार कर लेंगे तो ये हमारा सम्यग्दृष्टिपना होगा, यही हमारा प्रबुद्धपना होगा, हमारी मूढ़ता हमसे छूट जाएगी।

सबसे बड़ी मूढ़ता यही है कि हम अपने अस्तित्व को यहाँ के बराबर बनाकर के नहीं रखते। आपको विश्वास करना है नरक भी है और स्वर्ग भी है क्योंकि जिस वस्तु का नाम होता है उस वस्तु का यथार्थ स्वरूप भी होता है। दुनिया में ऐसी कोई चीज नहीं है जिसका केवल नाम तो हो लेकिन उसका अस्तित्व न हो। ऐसी कोई चीज दुनिया में नहीं होती। अगर नरक है तो उसकी कहीं

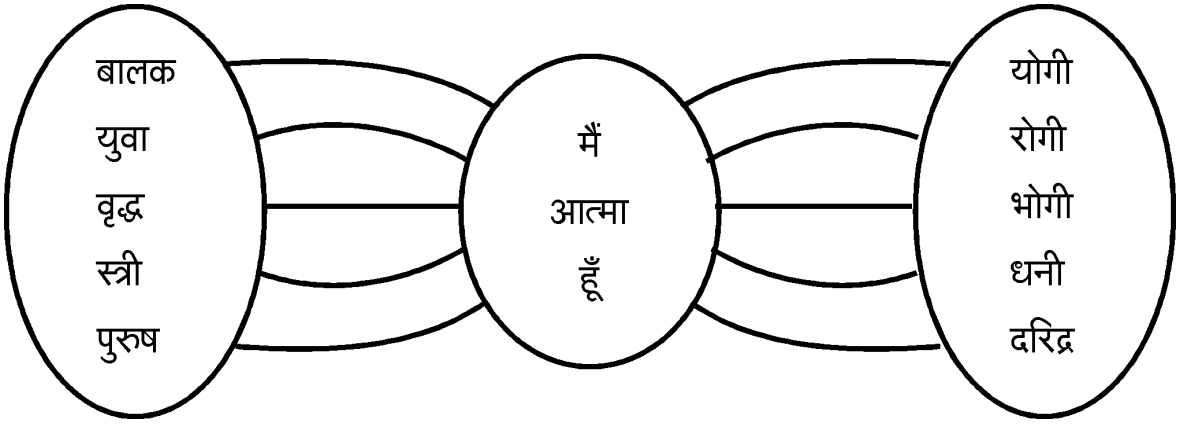
जगह है और स्वर्ग यदि नाम है तो उसकी भी कहीं जगह है। सब धर्म में ये माना जाता है। आप सब भी जानते हो अगर कोई अच्छा काम करता है तो हम कह देते हैं कि भइया ये स्वर्गवासी हो गया। अगर कोई बुरा काम करता है तो हम कह देते हैं कि इससे तो अच्छा तू जहन्नुम में चला जाता। इसी अस्तित्व को जब हम स्वीकार करेंगे तभी हमें वर्तमान में कुछ अच्छा करने का मन बनेगा। यदि हम ये सोच लेंगे कि मरना तो सबको ही है अच्छे खा पीकर, मौज करके मरो, चाहे अच्छा धर्म करके मरो। मरना ही हमारे जीवन का अंतिम लक्ष्य नहीं है। उसके पीछे आत्मा का अस्तित्व जुड़ा हुआ है।

आत्मा

''वह आत्मा है जो अनंत-अनंत बुद्धि, अनंत-अनंत ध्यान को धारण करने वाली है। यही वह आत्मा है जो अनंतानंत शक्ति अपने अंदर धारण किए हुए है। ये ज्ञान और शक्ति ये दो चीजों का स्त्रोत अगर कहीं है तो हमारी आत्मा में है, शरीर में नहीं है। शरीर तो ज्ञान और शक्ति को प्रकट करने के एक माध्यम होते हैं। वस्तुत: ज्ञान और शक्ति का वास्तविक स्त्रोत हमारी आत्मा में होता है।

आचार्य कहते हैं हमारी आत्मा में छोटी-मोटी शक्तियाँ नहीं है। इतनी शक्तियाँ हैं, अनंत-अनंत ज्ञान की शक्तियाँ पड़ी हैं और हमारे अंदर अनंत-अनंत सुख और शांति की शक्तियाँ पड़ी हैं। ये अनंतानंत ज्ञान और शक्ति के रूप में मैं आत्मा हूँ। ये आपके दिमाग में आपके ज्ञान में अगर आएगा तो आप ये छोटी-छोटी बातों में लड़ना-झगड़ना, छोटी-छोटी बातों में दु:खी-सुखी होना, ये सब भूल जाएँगे। आपके लिए केवल ये ज्ञान होना चाहिए कि आत्मा का अस्तित्व तो बहुत विराट है। इतना विराट है कि उस अस्तित्व में अनंत पर्याय निकल गई और हमने अभी ध्यान नहीं दिया तो और आगे हम अनंत बार इन्हीं चार गतियों में घूमते रहेंगे स्वर्ग, नरक, मनुष्य और तिर्यंच। तिर्यंच में वो सब पर्याय आ जाती हैं चाहे वह पशु–पक्षी हो, कीड़े-मकोड़े हो, छोटे-छोटे जीव हो, उड़ने वाले हो, चलने वाले हो। वे सब तिर्यंच पर्याय के अंतर्गत आ जाते हैं। मनुष्य तो आप जीते-जागते सब कुछ समझते ही हो, अब जो नहीं दिख रहा है आप उसके लिए समझ लेना। यहाँ पर जो सद्दाम हुसैन, लादेन जैसे लोग हुए जिन्होंने जिंदगी में पाप के अलावा कुछ नहीं किया। जो महावीर-बुद्ध जैसे लोग हुए या जो यहाँ पर अच्छे धर्म करने वाले लोग हुए, उनको

मरने के बाद में जाने को कहाँ मिलेगा, उनके लिए दो गतियाँ हैं स्वर्ग या मोक्ष। जो पाप करते हैं उनके लिए गतियाँ हैं नरक की व तिर्यंच की। जिनका पाप व पुण्य बेलेंस में रहता है उनके लिए मिलती है ये मनुष्य योनि। उन्हें यहाँ पर आकर के अवसर मिला है सोच लो, पहले तो तुम दोनों का थोड़ा बेलेंस बनाकर आए हो, अब वो बेलेंस कहीं गड़बड़ तो नहीं हो रहा है। मोबाइल में जब तक बेलेंस पड़ा है तभी तक मोबाइल काम का है अन्यथा डिबिया हो जाएगा। अपने आप नेट कनेक्शन छूट जाता है, मेसेज रुक जाएँगे। जब तक आप उस कंपनी से अपना बेलेंस द्वारा कनेक्शन जोड़े रखोगे, तब तक उसकी कीमत है। जिस दिन बेलेंस डालना भूल गए, वे नहीं भूलेंगे और आप का सिस्टम सुन्न हो जाएगा। ऐसा इसलिए होता है कि हमारा हर सिस्टम कहीं न कहीं, किसी न किसी सुप्रीमो पॉवर से जुड़ा होता है और हमारा जो जीव जब तक चल रहा है वह भी किसी सुप्रीम पॉवर से जुड़ा है। अच्छे कर्म करके अपना बेलेंस बढ़ाते रहिये और सुप्रीम पॉवर से सीधे जुड़ने की कोशिश करते रहो।



श्लोक–९

नारकं नारकाङ्गस्थं न स्वयं तत्त्वतस्तथा।
अनन्तानन्तधीशक्तिः स्वसंवेद्योऽचलस्थितिः।।९।।

लेते जहाँ नरक में जब जन्म भी है, तो मानते स्वयम् को तब नारकी है।
आत्मा प्रभो! परम निश्चय से न ऐसा, विज्ञान पूर्ण, निजगम्य अहो! हमेशा।।९।।

हर आत्मा के अंदर अनंत ज्ञान है, अनंत शक्ति संपन्न वह आत्मा है लेकिन कोई भी अपने आपको महसूस करने के लिए तैयार नहीं है। कोई भी ये सोचने, समझने के लिए तैयार नहीं है। 'मैं कौन हूँ', 'मेरा अस्तित्व क्या है', 'मैं अंनतज्ञान, अनंतशक्ति संपन्न आत्मा हूँ।' ये जो आत्मा सोच लेगा उसे अपनी इन पर्यायों में कभी कोई दु:ख और सुख की कल्पना होगी ही नहीं। वह उन छोटी-छोटी बातों को कभी भी माइंड करके परेशान नहीं होगा। वह अपने मन में हमेशा ही सोचेगा कि अगर आज दु:ख है तो ये दु:ख हमारी कल्पना है क्योंकि सुख हमारा अस्तित्व है। अगर हमारे अंदर अज्ञानता का दु:ख है वो भी हमारे लिए कल्पना है क्योंकि ज्ञान हमारे अस्तित्व में बैठा है। हमें अपने उस अस्तित्व को देखना है, ज्ञान स्वभाव को देखना है, सुख स्वभाव को देखना है, अपने आपको महसूस करो कि मैं ज्ञान और सुख से भरा हुआ हूँ। तुम केवल झूठ-मूठ भी अपने आपको महसूस करने लग जाओगे, तुम्हें लगेगा अपने अंदर से अज्ञान चला जा रहा है और दु:ख दूर होते जा रहे हैं। हमें किसी भी चीज से दु:खी होने की जरूरत ही नहीं है क्योंकि आत्मा सुख और ज्ञान से भरा हुआ है। आदमी इसके अलावा कुछ चाहता ही क्या है। कभी भगवान् से प्रार्थना करते हो,

'हे प्रभो आनंददाता ज्ञान हमको दीजिए।'

हम अगर प्रभु से भी माँगते हैं तो ज्ञान माँगते हैं। हे प्रभु हमें ऐसा ज्ञान दो, शक्ति दो, जिसके कारण से हम कभी दुर्बल न महसूस करें और हमारे मन में कभी भी ऐसी दुर्बलताएँ न आएँ कि हम टूट गए। महाराज, हमारी जिंदगी में कुछ बचा ही नहीं है। हमारा एक घर था वो भी चला गया, एक पत्नी थी वो भी तलाक देकर के चली गई। छोटा सा बच्चा था वो भी मरण को प्राप्त

हो गया। महाराज मैं बिल्कुल मिट चुका हूँ, मेरे पास कुछ नहीं है। ये शास्त्र पढ़ोगे तो मिटते-मिटते भी उठ जाओगे। मरते-मरते भी जीने की तमन्ना जाग्रत हो जाएगी। मरते-मरते भी कुछ करने का भाव हो जाएगा। हमारा जीवन केवल हमसे जुड़ा है। दूसरों का जीवन दूसरों से जुड़ा है। हम अगर केवल अपने ही जीवन के अपने ही अस्तित्व के बारे में विचार कर लेंगे तो हमें कभी भी मरने की चाहत उत्पन्न नहीं होगी। जो आदमी ऐसे मरते-मरते जीने की बात करने लग जाता है तो वो जिंदगी में कुछ नया कर जाता है। आपने देखा होगा, दुनिया में हर उठा हुआ व्यक्ति, हर सफल व्यक्ति पहले बहुत टूटता है और टूटने के बाद में जब वो अपने आप की अनंतज्ञान और अनंत शक्ति को जिस दिन से महसूस करने लग जाता है, उसी दिन से वह ऐसा उठता है कि सारी दुनिया में छा जाता है। चाहे वो कोई भी लेखक हो, कोई भी वैज्ञानिक हो, कोई भी बड़े से बड़ा राष्ट्रपति हो, मंत्री रहा हो, चाहे वह किसी भी व्यापार में सफलता प्राप्त किया हो, चाहे वह गायक हो, एक्टर हो, कोई भी हो, आप किसी के भी जीवन को देख लेना- आदमी टूटने के बाद बना है। लेकिन वह तब बना है जब उसे ज्ञान आ गया कि ये ही सब कुछ नहीं है।

स्वसंवेदना

जगजीतसिंह सब परिचित हैं, उसकी गजलें फेमस हैं। उस आदमी के जीवन में सबसे बड़ी ट्रेजडी घटित हुई कि उसका जीता जागता जवान बेटा उसकी आँखों के सामने एक्सीडेंट होकर मरण को प्राप्त हुआ, एक ही बेटा था। बेटे के मर जाने के बाद उसे लगा मेरी जिंदगी में अंधेरा छा गया, कुछ बचा ही नहीं है। वो अंदर से टूट गया, जीने की कोई इच्छा ही नहीं बची। लेकिन उसे ज्ञात हुआ आखिर हमें जीना तो है, सुसाइड नहीं करना है। जीवन जीने के लिए इसके अलावा भी कुछ है, मन है। हमारे अंदर ऐसी चीजें हैं, जिन चीजों को हम पहचान नहीं पाते हैं। मोह के कारण से वो चीजें कभी उभर कर नहीं आ पाती हैं। उसने अपने गाने के शौक को जिंदा रखा। उसने थोड़ा-थोड़ा सा गाना शुरू किया। गाते-गाते वह इतना फोकस हो गया कि वह बड़ी-बड़ी फिल्मों में दुनिया के नंबर एक गायकों में उसका नाम आने लग गया। ये आदमी के अंदर की जो एक टूटी हुई चीज है वह तब जुड़ती है जब वह अपने भीतर देखते हैं। हमारे अंदर का स्रोत अभी मरा नहीं है। अपनी आत्मा को जब तक जिंदा रखोगे तो हमेशा ये ज्ञान और शक्तियाँ तुमको मिलती रहेंगी। बाहर की परिस्थितियों में रहकर के जो व्यक्ति अपने आपको टूटा हुआ महसूस करता है वह कभी भी उन परिस्थितियों से ऊपर नहीं उठ सकता। ऊपर वही उठ सकता है जो

अपने आपको महसूस करे। मैं तो कभी मर नहीं सकता, मेरा कभी कोई विनाश कर नहीं सकता, मेरा कभी भी बुरा हो नहीं सकता। मुझे दुनिया की कोई भी ताकत दु:खी कर नहीं सकती क्योंकि मैं सुख और ज्ञान का भरा हुआ अनंत स्रोत हूँ। हमें उस रूप की ओर देखना है, उस स्वरूप का संवेदन करना है। उसका संवेदन तुम्हारी पत्नी नहीं करेगी, तुम्हारे बेटे नहीं करेंगे, स्वयं को करना होगा। आत्मा को स्वयं में महसूस करना होगा **''स्वसंवेदन''।** आत्मा केवल अपने ही द्वारा संवेदन में आने योग्य है और वह आत्मा आज तक चलायमान नहीं हुई। कितने ही भव्य विस्फोट के बीच में डाल दो आत्मा कभी भी टूटती नहीं है। अग्नि में डालने पर आत्मा कभी भी जलती नहीं है। पानी में डाल दो, आत्मा कभी भी गलती नहीं है। यह दुनिया का हर व्यक्ति जानता है।

आत्मा का अस्तित्व हर किसी को पढ़ाया जाता था लेकिन आज किसी भी स्कूल-कॉलेज में आत्मा का अस्तित्व नहीं पढ़ाया जाता। पहले जब बचपन में पढ़ा करता था कि ''आत्मा कभी भी शस्त्रों से छिन्न-भिन्न नहीं होती। आत्मा को कभी भी कोई अग्नि जला नहीं सकती, उस आत्मा को कभी कोई पानी गला नहीं सकता, हवा उसको सुखा नहीं सकती''। उसका नाम है- आत्मतत्व एवं उसकी अचल स्थिति, यही आचार्य कह रहे हैं। आत्मा की अचल स्थिति को हम महसूस करें तो ये शरीर की जितनी भी अवस्थाएँ हैं इन कड़ियों में, हम अपने आपको 'मैं' मानकर के पर्यायों से जुड़ जाते हैं। हम पर्यायों से हटकर के द्रव्य की ओर जुड़ेंगे। द्रव्य का मतलब है अपने आत्म द्रव्य की ओर जुड़ना। हमेशा जब आपके मन में कोई चलायमान स्थिति बनती है आप इस लाइन को दोहराएँ ये लाइनें अध्यात्म मंत्र कहलाती है। मंत्र और कोई चीज नहीं होती। मन में बार-बार मनन चलता रहता है वह मनन किया हुआ शब्द ही मंत्र बन जाता है, उसे ही ब्रह्म कहा जाता है। उस शब्द के अंदर इतनी क्षमता आ जाती है कि वह ब्रह्मा की तरह हमारी रक्षा करने वाला हो जाता है, हमें शक्ति और ज्ञान देने वाला हो जाता है। हमेशा प्रार्थना करें, हे भगवन् जो हमारे लिए अनंतानंत बुद्धि व शक्ति है, हमें इसी का ही अनुभव हो। इसी शक्ति को जब हम अनुभव में लाएँगे तो हमारे अंदर अपने आप ये छोटे-मोटे दु:ख जो शरीर की पीड़ा के हो, संयोग-वियोग के हो सब दु:खों से हम मुक्ति पा लेंगे ये उसका शाश्वत सिद्धांत है और बाकी जितने भी आप दु:ख दूर करने के तरीके अपनाते हो, ये कुछ भी शाश्वत नहीं है, ये सब तात्कालिक हैं। क्या करोगे, थोड़ा सा दु:ख हुआ, घर से बाहर गार्डन में घूमने के लिए चले गए। उस गार्डन में भी जब तक आपको लोग बैठे हुए मिलेंगे, तब तक तुम उस गार्डन में भी बैठने की इच्छा करोगे। वहाँ तुमने देखा कि यहाँ कोई नहीं है, मैं अकेला ही आया हूँ तो तुम सोचोगे कि दुनिया में मैं ही बेवकूफ

हूँ, चलो सड़क पर। गार्डन भी तुम्हें तब तक सुख देगा जब तक तुम्हारे मन में ये भाव है कि मुझे यहाँ बैठना है। जैसे ही तुम दुनिया को देखने लग जाओगे वो गार्डन भी तुमसे छूट जाएगा, उसमें भी तुम्हें सुख नहीं मिलेगा। तुम फिर कहीं भटकते हुए किसी टॉकीज में चले जाओगे कि चलो आज ३ घंटे कोई नई फिल्म देखकर के आएँ, मूड फ्रेश कर आएँ। जैसे ही टॉकीज से बाहर निकले। अब घर और ऑफिस में ही जाना पड़ेगा। ऐसे बहानों से बचने वाला कभी भी उन बहानों से मुक्ति नहीं पा सकता और कभी भी उस दुःख से स्थायी मुक्ति नहीं पा सकता। उस दुःख से बचने के लिए हमें सही चीज को स्वीकार करने की जरूरत है। आचार्य कहते हैं अपनी आत्मा को स्वीकार करो कि मैं आत्मा हूँ। रोजाना इस मंत्र को पढ़ो-

''अनंतानन्तधीशशक्तिः स्वसंवेद्योऽचलस्थितिः''

ये ऐसे अध्यात्म मंत्र है जो अपने आप समाधान देंगे, आपको सब चिंताओं से मुक्त करेंगे और आपको लगेगा हमारा ज्ञान और हमारी शक्ति निरंतर बढ़ती जा रही है। जिसके अंदर का ज्ञान व शक्ति दोनों बढ़ती चली जाए समझ लेना वो आदमी जी रहा है। मनुष्य के रूप में जी रहा है और देवता बनने वाला है। उस ज्ञान और उस शक्ति में से एक भी चीज की कमी हो जाए, आपको महसूस होने लगे अब मैं शक्तिशाली नहीं रहा, अब मेरा बुढ़ापा आ गया, मैं मरने वाला हूँ, आपकी शक्ति की कमी महसूस होने लगे तो आप इसी मंत्र को जपना, आपको शक्ति मिलेगी, आपको मरने में भी अच्छा लगेगा और वर्तमान में जीने में भी अच्छा लगेगा। हमेशा हर आदमी को अच्छे ढंग से जीना सीखना चाहिए। अच्छे ढंग से जीने के लिए उसे अच्छे से अंदर की भावनाएँ बनाकर के रखना चाहिए। वो भावनाएँ जो हमारे अस्तित्व से जोड़े, आत्मा से जोड़े, उन भावनाओं को हम हमेशा ध्यान में रखें। वो भावनाएँ अनंतानंत शक्ति- 'स्वसंवेद्यो अचल स्थितिः', ये बात याद करके जाना, इसको गुनगुना। दिन में १० बार, ५ बार चलते-फिरते इस वाक्य को गुनगुनाओगे, आपको अपने अंदर से ही ज्ञान और शक्ति का स्त्रोत फूटता हुआ मिलेगा। फिर कल आकर के हमको बताना कि महाराज आज हमने आपका दिया हुआ होमवर्क किया था। बड़ा अच्छा लगा। जब तक हमारे मोबाइल में, हमारे दिमाग में दूसरी नई फीडिंग नहीं होती है तब तक उस पुरानी फीडिंग से ही काम चलाओ। उसी को तो कम से कम रिमाइंड किया करो और वही चीज अगर आपके दिमाग में बनी रहेगी तो आपको बहुत अच्छा आनंद आएगा। आपको लगेगा कि वास्तव में हमें जीवन जीने का ये आनंद अब प्राप्त हुआ है। इससे पहले तो हम यूँ ही जी रहे थे क्योंकि साँसें चल रही थीं। हमें साँसों से नहीं जीना, हमें विश्वासों से जीना है।

श्लोक १०

स्वदेहसदृशं दृष्ट्वा परदेहमचेतनम्।
परात्माधिष्ठितं मूढः परत्वेनाध्यवस्यति।।१०।।

जो पुद्गलात्मक तथा पर देह को ही, स्वामी! निजीय तन सादृश जान मोही।
है मानता भ्रमित हो यह 'अन्य आत्मा' प्रायः अतः दुरित ही करता दुरात्मा।।१०।।

आचार्य कहते हैं जिस तरह से बहिरात्मा जीव/अज्ञानी जीव जब तक अपनी आत्मा को नहीं जानता तब तक वह अपने शरीर को भी अपनी आत्मा ही मानता है। उसी तरह से वह जिस किसी भी जीव को इस संसार में देखता है, उसकी अचेतन अवस्था को भी वह देखकर के भी वह उसे चेतन ही मानता है क्योंकि जो स्वयं को आत्मा के रूप में नहीं जानता, वह दूसरे को भी आत्मा के रूप में न देख सकता है, न जान सकता है। जैसी दृष्टि स्वयं के अंदर होती है वैसी हमें सृष्टि में हर वस्तु दिखाई देती है। अगर हम अपने आपको जानते हैं तो हम दूसरे को भी उसी रूप में जान सकेंगे– जैसा हम अपने लिए महसूस करते हैं। अगर हम अपने अंदर देह और आत्मा का सही ज्ञान रखते हैं तो हम दूसरे की देह को देखकर भी यही ज्ञान रखेंगे कि इस देह के अंदर भी आत्मा है। अगर हम केवल अपनी आत्मा और देह के बीच में अंतर नहीं मानते तो हम अपनी देह को ही आत्मा मानते हैं और दूसरे देहधारियों को देखकर हम उन्हें भी यह समझेंगे कि ये भी केवल शरीर से सहित है। इनके अंदर आत्मा जैसी कोई चीज नहीं है। यह बात अपने आप में बड़ी विचित्र है और थोड़ी कठिन भी है। जब तक इस जीव को अपने ही जीवत्व में श्रद्धान नहीं होता, जब तक इस आत्मा को अपने ही आत्मतत्त्व का श्रद्धान नहीं होता, तब तक यह किसी को भी आत्मा के रूप में स्वीकार नहीं पाता है। दुनिया में बहुत सारे लोग आपको ऐसे दिखेंगे जिन्हें आत्मा पर या आत्मतत्त्व पर कोई श्रद्धान नहीं है, जो चलते-फिरते जीवों को देखकर भी उन्हें जीव नहीं मानते और सोचते हैं कि ये तो प्रकृति की देन है। ये हमारे लिए जिस ढंग से भी भोग में

उपभोग में आ सकें हमें कर लेना चाहिए। जिस विकास की दौड़ में ये दुनिया दौड़ रही है, उन विकासशील देशों में अमेरिका, चीन, जापान आदि जगहों पर लोगों की अधिकतर ये धारणा रहती है कि हम जैसे दिखने वाले मनुष्य ही केवल जीव हैं इन्हीं के अंदर जीव होता है, आत्मा होती है। बाकी के जितने भी पशु, पक्षी होते हैं इनमें कोई आत्मा जैसी चीज नहीं होती और इनमें कोई **जीवत्व** नहीं होता। ये बहुत बड़ी धारणा उन विकासशील देशों में फैली हुई है जिनका आप आज अनुसरण करने जा रहे हैं। इस भारत देश में हमेशा ये धारणा रही है कि यहाँ पर कण-कण के अंदर जीवत्व विद्यमान है और उस जीवत्व की पहचान के लिए यहाँ अध्यात्म का ज्ञान दिया जाता है। जहाँ पर केवल मनुष्यों के अलावा किसी को जीव नहीं माना जाता तथा पशु-पक्षियों को देखकर ऐसा भाव ही नहीं उत्पन्न होता कि ये भी हमारी तरह प्राणी है। अनेक विद्वानों को विविध प्रकार की पुस्तकें लिखनी पड़ती है– जिसमें ये ही समझाइश दी जाती है कि पानी में रहने वाले मछली-मेंढक आदि भी जीव होते हैं। हमारे आसपास रहने वाले कुत्ता, गाय, पशु आदि भी हमारी तरह जीव होते हैं। उनके अंदर भी संवेदना होती है और ऐसा ज्ञान होता है जिससे वे हमारी सहायता भी करते हैं, हमारी रक्षा भी करते हैं। ये उनके सामने प्रूफ करना पड़ता है, तब उनकी मान्यता में थोड़ा सा बैठता है कि हाँ इनके अंदर भी कोई जीवत्व हो सकता है। नहीं तो वे उन जीवों को मारकर के भोजन आदि में काम में लाते हैं, उससे अपना जीवन चलाते हैं। इस अज्ञानता का दिग्दर्शन ही यहाँ पर कराया जा रहा है।

जब हम वस्तु के स्वभाव को समझते हैं, जब हम अपनी आत्मा और अपनी देह के बीच के अंतर को समझ लेते हैं और जब हम अपने आप में भी ये महसूस करने लग जाते हैं कि देह तो हैं लेकिन हम देह के भीतर रहने वाले आत्म तत्व हैं। जैसे हमारी देह के अंदर आत्मा रहती है ऐसा ही कोई भी जीव हमें चलता फिरता दिखाई दे जो हमें किसी भी प्रकार की प्रतिक्रिया करता दिखाई दे, वह भी हमारे लिए जीव है। जब हम उसको भी अपनी तरह प्राणी मानते हैं, जीवात्मा मानते हैं तो अपने आप आदमी के अंदर उस जीव को बचाने के, उसकी रक्षा के, दया के भाव उत्पन्न हो जाते हैं। जीव की दया का भाव तभी उत्पन्न होगा जब हम अपनी आत्मा को और शरीर को भिन्न मानेंगे एवं ये समझ लें कि ये दूसरे जीव भी हमारी तरह ही जीना चाहते हैं। जैसे हमें अपना मरण पसंद नहीं है, हमें अपने मरण से बचाव करना होता है। ऐसा दूसरे जीव भी मरण से बचना चाहते हैं। ये ज्ञान जब आत्मा में उतरता है तो उस आत्मा में से मूढ़ता चली जाती है

और उसे आत्मज्ञान की प्राप्ति हो जाती है। इसलिए धर्म की शुरुआत जब भी होती है, इस आत्मतत्त्व को समझने से होती है। जो आत्मतत्त्व समझेगा वो धर्म समझेगा, जो धर्म समझेगा, वो दूसरों की रक्षा करेगा और जिसके अंदर दूसरों की रक्षा करने का भाव आएगा, वह दूसरे के भी तत्त्व को उतना ही बहुमान देगा जितना वह अपने तत्त्व को बहुमान देता है। अपने आत्मतत्त्व की जिसे खबर आ जाती है वह दूसरे के आत्मतत्त्व का घात नहीं करता। वह सोचता है कि इसके अंदर भी हमारी तरह प्राण है। हमारे शरीर से इसके शरीर का घात न हो जाए, इसी का नाम है 'दया धर्म'।

अगर हम कहें जीव आदि तत्त्वों का ज्ञान हमारे लिए अध्यात्म ज्ञान है तो **दया धर्म** उसका एक प्रेक्टिकल ज्ञान है। धर्म का अगर कोई प्रयोगात्मक रूप है तो वह दया भाव है। धर्म का कोई चिंतनात्मक रूप है तो वह आत्मतत्त्व का चिंतन है। उस प्रयोगात्मक रूप को अगर हम ध्यान में रखेंगे तो हम आत्मतत्त्व का भी सही ढंग से चिंतन कर सकेंगे। आज व्यक्ति के लिए दया धर्म छूटता चला जा रहा है और वह आत्मतत्त्व की भी उस ढंग से खबर नहीं रखता जैसी उसे खबर रखनी चाहिए। सभी ऋषियों व मुनियों ने एक स्वर में कहा 'धम्मो दया विशुद्धो' धर्म का मूल दया है। धर्मस्स मूलं दया। जहाँ पर धर्म है उसकी जड़ उसका मूल उसके अंदर दया उद्‌भव होगी और वह दया तब उद्‌भूत होगी। जब हम ये जानने लग जाएँगे कि जैसे दूसरों के अंदर आत्मा है वैसे ही हमारे अंदर आत्मा है और ये केवल शरीर नहीं है, शरीर के भीतर भी आत्मा है और ये ज्ञान जिसके अंदर आ जाएगा तो वह पशुओं को पक्षियों को, देखकर के दया का भाव अवश्य रखेगा क्योंकि उसे मालूम है ये पशु-पक्षी भी उसी आत्मा को धारण किए है जिस आत्मा को हम धारण करते हैं। जैसी आत्मा की क्रिया हमारे शरीर में होती है वैसी ही आत्मा की क्रियाएँ उनके शरीर में होती है। जैसे हम भोजन करते हैं, अपने परिवार की रक्षा करते हैं, परिवार का ध्यान रखते हैं वैसे ही उन पशुओं और पक्षियों का भी परिवार होता है उनका भी जीवन होता है। उनके अंदर भी वही संवेदनाएँ होती है जो हमारे अंदर होती है। ये ज्ञान हमें इस अध्यात्म ज्ञान के साथ अपने आप हो जाता है। हमें उन अमेरिकी-जापानी वैज्ञानिकों को देखकर इसलिए तरस आता है कि इतनी बड़ी-बड़ी खोजें करने के बाद भी ये आत्मज्ञान से शून्य रहते हैं। इन्हें मछलियों में, मगरमच्छों में, मेंढकों में, गायों में, बैलों में आत्मा है, वे जीव है, इस बात की खबर नहीं रहती। इस बात का इन्हें श्रद्धान नहीं रहता इसलिए इनको पशु-पक्षी को मारने में, काटने में कभी कोई दर्द नहीं

होता। अगर आत्मा को ये समझने लग जाए तो उसे किसी के मरण को देखकर कभी भी चेतना जाग्रत हो सकती है। एक घटना शास्त्रों में लिखी है–

एक राजा दीक्षित होकर के जंगल में जाकर के तपस्या करने लग गया। उस राजा के अंदर आत्म ज्ञान की प्राप्ति हो जाने से वह गुफा में बैठकर केवल आत्म ध्यान करता रहता। जंगल में मुनि महाराज/साधु अकेले रह जाते हैं और आते-जाते लोगों को पता नहीं पड़ता कि यहाँ पर मुनि महाराज अकेले बैठे होंगे। ऐसा भी होता है कि जंगल में वृक्षों के घर्षण से ही उनमें आग लग जाती है जिसे दावानल कहा जाता है। उस आग के कारण से पूरा का पूरा जंगल जल जाता है। जहाँ पर वे मुनिराज बैठे थे, वहाँ पर भी वह आग पहुँच गई और वे उसमें जलने लगे। कोई बचाने वाला नहीं है। उस आग में जलते हुए उन्हें किसी भी प्रकार की तड़पन नहीं है क्योंकि उन्हें मालूम है आग में मेरा शरीर जल सकता है, मेरी आत्मा कभी नहीं जल सकती।

आपको आत्मतत्त्व का श्रद्धान होना ही पसीना ला देगा। अगर आप से कहा जाए कि अपने सिर के दो बाल खींचकर के सामने रख दो तो आप अपने सिर के बाल नहीं खींच पाओगे पर अपने शत्रु के सिर के बाल जरूर खींच लोगे। दूसरों के बाल पकड़ के तो उसे पीट दोगे पर अपने स्वयं के बाल खींचोगे तो पता पड़ेगा कि शरीर अलग होता है और आत्मा अलग होती है। ये हम सुनते तो बहुत आए हैं पर इसका अनुभव तभी होता है जब हम शरीर से भिन्न आत्मा की अनुभूति का कोई काम कर लेते हैं। जब मुनि महाराज केशलोंच करते हैं, शरीर से तपते हैं तो वे उस समय पर केवल शरीर को नहीं तपाते, उसके साथ उनके अंदर आत्मा का ज्ञान भी रहता है। वे देखते हैं ये दर्द तो शरीर का शरीर में हो रहा है और उस समय पर वे अपनी आत्मा में इतने निश्चल रहते हैं कि अपने शरीर के बालों को अपने हाथ से भी तोड़ लेते हैं, मूंछ व दाढ़ी के बाल भी तोड़ लेते हैं लेकिन फिर भी कभी वो उफ नहीं करते, तड़पते नहीं, बिलखते नहीं, चिल्लाते नहीं। क्यों होता है ऐसा। हम तो सुनते हैं महाराज कि आत्मा अलग है, शरीर अलग है। हमारा स्वरूप इतना सहज है जितना सिद्धों का सहज है लेकिन उस सहज स्वरूप की उपलब्धि इतनी सहजता से होने लग जाए कि हम सहजता से अपने शरीर को अगर कोई कष्ट दे या शरीर के बाल भी हम अपनी सहजता से उखाड़ ले और हम बिल्कुल सहज बने रहे तो समझना कि उस सहज आत्मा का स्रोत अपने अंदर से फूट रहा है। वह सहजता हमारी बहुत जल्दी असहजता में बदल जाती है क्योंकि अभी हमें श्रद्धान इतना नहीं हो पाया। जो श्रद्धान हमारे लिए उस अनुभूति

में ढाल दे जिस अनुभूति में बाहर कुछ भी होता रहे, न हमें किसी से कुछ लेना है न किसी को कुछ देना।

वह मुनि महाराज गुफा में बैठे हैं, आग लगने लगी और शरीर जलने लगा और वे सोच रहे हैं कि आत्मा कभी जल नहीं सकती। इस आत्मा को कभी अग्नि जला नहीं सकती, आज ये अग्नि हमारे पास तक पहुँची है तो बहुत अच्छी बात है। जिस भेद ज्ञान के बारे में हम सुनते थे, जिस भेद ज्ञान का श्रद्धान करने के बाद आज हमने जिस रूप को प्राप्त किया था, उस भेद ज्ञान की आज हमें अनुभूति होगी क्योंकि आचार्यों ने लिखा है भेद का जहाँ ज्ञान होने के बाद में भेद का विज्ञान होने लगे, उसे सिद्धत्व की प्राप्ति में बहुत देर नहीं लगती। एक तो भेद का ज्ञान हो जाना और एक भेद होने पर आत्मा का विज्ञान यानि केवल ज्ञान मात्र होते रहना। उस भेद विज्ञान से ही सभी को सिद्धि की प्राप्ति होती है आत्मा और शरीर की भिन्नता का दृढ़ श्रद्धान और दृढ़ ज्ञान होना भेद विज्ञान कहलाता है।

आचार्य कहते हैं जितने भी जीव इस जन्म में **भेद विज्ञान** को प्राप्त किए, वे सब इस दुनिया में टिकते नहीं, सब सिद्ध बन जाते। जिन्होंने भेद विज्ञान प्राप्त किया वे सब सिद्ध बनने ही वाले हैं या बन गए। जिनके अंदर ये भेद ज्ञान नहीं है, वो अभी भी बंधे पड़े हैं और आगे भी बंधे रहेंगे। जितने भी जीव हैं यहाँ पर इस शरीर से बंधे हुए दिखाई देंगे। मोह के कारण से अपने परिवार, अपने घर, अपने शरीर से बंधे हुए दिखाई दे रहे हैं वे सब इस भेद विज्ञान के अभाव में बंधे दिखाई दे रहे हैं। भेद विज्ञान होने पर ज्यादा देर नहीं लगती है। मोक्ष महल की प्रथम सीढ़ी इस भेद विज्ञान से शुरू होती है। जब व्यक्ति उस मोक्ष महल की सीढ़ी पर कदम रख लेता है, तो वह सीढ़ी पर खड़ा या बैठा नहीं रहेगा, इंतजार नहीं करेगा। आपने कभी देखा कोई व्यक्ति जिंदगी भर किसी सीढ़ी पर खड़ा या बैठा रहता हो और देखता रहता हो- भैया, हममें ताकत नहीं है दूसरी सीढ़ी पर चढ़ने की, हमें उठाकर के ऊपर रख दो। भेद विज्ञान होने के बाद में जब आत्मा के अंदर इस प्रकार से आत्मतत्त्व उपलब्ध होता है, उसे अपनी आत्मा और शरीर का श्रद्धान बनता है तो वह मोक्ष महल की पहली सीढ़ी पर भी कदम रख लेता है और आगे की सीढ़ियों पर चलता चला जाता है। बहुत देर तक किसी सीढ़ी पर खड़ा नहीं रहा जाता। अगर हम जिंदगी भर बहुत देर तक एक ही सीढ़ी पर बैठे रहे तो इसका मतलब है कि तुम्हारे पास सीढ़ी भी नहीं है। तुम्हें ये भ्रम हो गया कि हम मोक्ष महल की सीढ़ी पर बैठे हैं। अभी आप संसार की सीढ़ी पर ही बैठे

हो। वह भेद विज्ञान होने के बाद में आत्मा के अंदर ऐसी श्रद्धा की परिणति बनती है कि वह अपने उस तत्त्व की प्राप्ति के लिए उछलता है, उसे चेतना की हिलोरे इस ढंग से सुनाई पड़ती है कि वह उन हिलोरों को ही सुनता रहता है और वह अपने आप में इतना आनंदित होता है कि बाहर से अगर उसका शरीर जल जाए, कोई उसके शरीर को नोंच दे, खुद अपने हाथ से भी अपने बाल निकालने पड़ते हैं और उसे किसी भी प्रकार का इस शरीर से तप करना पड़े तो वो कभी खिन्न नहीं होता क्योंकि उसे मालूम है कि इस आत्मतत्त्व के अंदर वो अग्नि कभी प्रविष्ट नहीं हो सकती है। आत्मतत्त्व के अंदर तो केवल ध्यान की अग्नि ही प्रविष्ट होती है। जैसे-जैसे वो अग्नि जल रही है वैसे-वैसे ध्यान की अग्नि भी भीतर सुलगती चली जा रही है। चित्त की एकाग्रता बढ़ती चली जा रही है और इन मुनि महाराज का शरीर जल गया, उनके प्राण निकल गए। वे स्वर्ग में देव बन गए।

जरूरी नहीं है एक बार किसी के ऊपर यदि ऐसा उपसर्ग हो जाए या इस प्रकार का आत्म ध्यान उत्पन्न हो जाए तो एक ही भव में केवलज्ञान और मोक्ष को प्राप्त हो जाए। हो जाएगा, एक भव या दो भव या तीन भव लगेंगे लेकिन उसको हो जाएगा। जब तक नहीं होता तब तक वह देव पर्याय में आनंदित होकर के रहता है। उन मुनिराज के देव पर्याय में पहुँचने के बाद में जहाँ जंगल में आग लगी थी वहाँ भी एक भील रहता था (भील प्रजाति को किसी भी प्रकार के भक्ष्य-अभक्ष्य का ज्ञान नहीं होता) ऐसा एक भील घूमते-घूमते उस स्थान पर पहुँच गया और उसने देखा कि अरे यहाँ पर एक अधजला शरीर पड़ा है किसी मनुष्य का। उस जले शरीर को देखकर उसके अंदर ऐसा दया का भाव उत्पन्न हो गया कि वह अपने आप में पश्चाताप करने लगा कि हमारे इतने पास में एक साधु/कोई व्यक्ति बैठा था और हमें पता नहीं पड़ा और वह जल गया। काश, हम इसको बचा लेते। इसने चिल्लाया नहीं, कोई भी खबर नहीं दी। वह अपने मन में, पश्चाताप के भावों से भर गया और सोच रहा है मेरे द्वारा बहुत बड़ी गलती हो गई।

देखो, जीव आत्माओं का परिणमन भीतर से भी बदलता है और कभी-कभी बाहर से भी बदलता है। जहाँ धर्म उत्पन्न होता है तो धर्म के चिंतनात्मक पहलू और प्रयोगात्मक पहलू दोनों भिन्न नहीं होते। बाहर की दया से भी आत्म तत्त्व की प्राप्ति होती है और आत्म तत्त्व की प्राप्ति होने पर भी दया उत्पन्न होती है। एक तो वो ज्ञानी जो आत्म ज्ञान करने बैठे, जल गए, चिल्लाये

नहीं, किसी को सहायता के लिए बुलाया नहीं और एक वो अज्ञानी सोच रहा कि मैं इतने पास में बैठा रहा और मुझे पता नहीं पड़ा। वह जब पश्चाताप से भर जाता है तो उसी समय पर, वही देव पर्याय से उतरकर वह जीव आ जाता है और उस भील को संबोधन दे देता है। ''तुम्हें अपनी अज्ञानता पर इतना पछतावा करने की कोई जरूरत नहीं है, ये तो मेरी साधना थी जिसके कारण से हमने किसी को बुलाया नहीं, कुछ नहीं कहा। लेकिन अगर तुम्हारे अंदर इस शरीर को देखकर ये ध्यान आ रहा हो कि ये जीव तड़प कर मर गया होगा तो वह जीव मैं ही हूँ जो आज तुम्हारे सामने देव के रूप में खड़ा हूँ। लेकिन तुम्हारे अंदर का ये जो दया भाव है, ये दया भाव बरकरार रहना चाहिए। इस दया भाव के कारण से जो तुमने पाप किए हैं, वो कम हो जाएँगे और तुम अगर कुछ नहीं कर सको तो केवल इतना ही कर लेना कि जंगल में रहने वाले किसी भी वन्यप्राणी को अब बिना वजह मारोगे नहीं। इतना समझाकर वह देव चला गया क्योंकि तत्त्व का व आत्मा का ज्ञान हर किसी को डायरेक्ट नहीं दिया जाता है। उनमें थोड़ी सी योग्यता देखी जाती है। भील को अगर समाधि तंत्र या आत्मा का ज्ञान या भेद विज्ञान समझाएँगे तो उसे कुछ समझ में नहीं आएगा लेकिन तुम जैन लोगों को या जो ब्रह्म की उपासना करने वालों को अगर ये अध्यात्म का ज्ञान दिया जाएगा तो वे उसको समझ लेंगे। जो कोई भी उस ब्रह्म आत्मा को जानता है, आत्माराम को जानता है, आत्म की आराधना करना जानता है, व्यक्ति की चेतना को जानता है वह अध्यात्म समझता है। इस चेतना के ऊपर बड़े-बड़े उपनिषद लिखे हुए हैं, बड़े-बड़े अध्यात्म के ग्रंथ लिखे हुए हैं। अनेक प्रकार के उपनिषदों में शुद्ध चैतन्य तत्त्व का ज्ञान या ब्रह्म तत्त्व का ज्ञान आपको पढ़ने मिल जाएगा। इसी ब्रह्म तत्त्व की उपासना कई जीव कई ढंग से किया करते हैं।

वह देव केवल उस जीव को इतना ही बता करके चला गया, तुम किसी वन्यप्राणी को मत मारना, तुम्हारा कल्याण हो जाएगा। उस जीव ने इतनी सी बात मान ली, पहले किये पापों के कारण से उसे तिर्यंच आयु का बंध हो चुका है। अब उसे पश्चाताप हो रहा है कि मैंने कितने जीवों को मारा, कितनों का मांस खाया है, कितने जीवों को हमने तड़पाया है। उस पश्चाताप के कारण से उसके मन के अंदर धर्म तो उतर रहा है लेकिन मिलेगा वो जो पहले कर्मबंध किया है वह आगे का जीवन दया भाव के साथ जीता है। उस तिर्यंच आयु का बंध होने के कारण वह भील अगली पर्याय में तिर्यंच बनता है। वह जंगल में विशिष्टता के

साथ एक सफेद हाथी के रूप में जन्म लेता है। जो पुण्यवान् जीव होते हैं, विशेष धर्म किए जीव होते हैं वे माँगलिक माने जाते हैं वो सफेद हाथी हुआ करते हैं। उस हाथी की पर्याय में उस भील का जन्म हुआ। आप बहुत अच्छे ढंग से इस गणित को लगा सकते हो कि उसका हाथी की पर्याय में जन्म क्यों हुआ था। तिर्यंच की आयु का बंध होने के बाद में तिर्यंच की अनेक पर्याय होती है। वह मगरमच्छ भी बन सकता था, वह सिंह भी बन सकता था, वह जंगल का कुत्ता भी बन सकता है। वह कोई भी और पशु भी बन सकता था लेकिन वो हाथी बना क्योंकि पिछले जन्म में उसने अपने अंदर वह दया भाव धारण कर लिया था, जिस दया भाव के कारण से उसने दूसरे जीवों को मारना छोड़ दिया था। दूसरे जीवों को मारने के उस परिणाम के अभाव के कारण उसके अंदर परिणति तो बदली लेकिन जो पहले से तिर्यंच आयु का बंध हो चुका था तो वो तिर्यंच तो बनना था। वह ऐसा शाकाहारी तिर्यंच बना कि अगले जन्म में भी वह मांस खाने का भाव नहीं कर सकता, किसी को मारने का भाव नहीं कर सकता। ये परिणतियाँ भी आदमी को ऐसे ही प्राप्त होती है। कर्म के उदय से जो जीव अगर मांसाहारी दिखाई देते हैं तो वे पिछले जन्म में भी मांस खाने वाले होते हैं। जो जीव शाकाहारी होते हैं वे पिछले जन्म में भी शाकाहारी होते हैं और जिनके अंदर दया का भाव आ जाता है तो उनकी परिणति कैसी बदलती है।

देखो, धर्म कैसे शुरू हो जाता है, कहाँ शुरू हो जाता है, कब शुरू हो जाता है, पता नहीं पड़ता। कभी ये मत सोचना, धर्म केवल हमारे लिए है। भगवान् महावीर ने जो धर्म बताया है, वो धर्म हर उस चैतन्य प्राणी के लिए है जिसके भीतर चेतना है। वह कोई भी प्राणी इस धर्म को सुनकर कभी भी अपने अंदर वह धर्म अंगीकार कर सकता है। कितना ही गरीब से गरीब व्यक्ति हो, छोटे से छोटा आदमी हो, भिखारी हो, कोई भी व्यक्ति हो वह अपनी आत्मा को कभी भी उन्नत बना सकता है। प्राणी मात्र के लिए, जिस जगत के लिए महावीर स्वामी ने धर्म की देशना दी उसमें ऐसा मत समझना कि जैन सोसायटी के लोग ही यहाँ पर आते हैं तो जैन धर्म उन्हीं का है। जो लोग आएँगे, उन्हीं को सुनाया जाएगा पर धर्म तो सबके लिए है। आप भी अपने अंदर ये ध्यान रखना। आप सभी के प्रति दया भाव रखना, चाहे वो जैन हो, अजैन हो धर्म सबके लिए होता है। धर्म का मूल तत्त्व चेतना से जुड़ा होता है, वह किसी जाति से नहीं जुड़ा रहता। वह किसी बाहरी आडम्बरों से नहीं होता, उसकी साधना उसी रूप में होती है।

दया धर्म का मूल है। उसी तरह धर्म की शुरुआत एक भील के अंदर भी हो गई। दया धर्म के पालन से ऐसा सुंदर हाथी बन गया कि राजा ने उसे अपने राज महल में बुला लिया। वह हाथी दूसरे जीवों के प्रति भी इतना दया भाव रखता कि वह किसी को अगर कभी मारते हुए देखता तो अपने सूंड से, अपनी शक्ति से, अपने बल से उसे बचा भी लेता। एक बार जो संस्कार आत्मा के अंदर पड़ जाते हैं, वह संस्कार जन्म-जन्म तक काम आता रहता है। हिंसा के संस्कार जन्मों-जन्मों तक चलते हैं तो दया और करुणा के संस्कार भी जन्मों तक चलते रहते हैं और काम आते हैं। वह हाथी राजमहल में रह रहा था पर तभी तक रह पाया जब तक वह राजा की सवारी के काम आ रहा था।

जब वह बूढ़ा हो गया तो राजा ने उसे राजमहल से जंगल में पहुँचा दिया। हर आदमी दुनिया में जब तक स्वार्थ सधता है तभी तक काम लेता है, तभी तक दूसरे के साथ रहता है। स्वार्थ के साथ ही ये दुनिया चलती है। वह हाथी फिर जंगल में पहुँच गया। संयोग की बात उस जंगल में आग लग गई और वन्य प्राणी तड़पने लगे। उस जंगल में अन्य प्राणी के साथ वह हाथी भी है। उस हाथी ने अन्य प्राणियों को जितना हो सकता था ले जाकर- ले जाकर बाहर किया। दौड़-दौड़ करके उसने छोटे-छोटे प्राणियों को अपनी सूंड में फंसा-फंसाकर के बाहर किया और एक स्थिति ऐसी आ गई कि उसके अंदर अब कुछ क्षमता नहीं रही। देखो पशुओं के अंदर दया का, करुणा का भाव, आत्म तत्त्व का भाव कैसा होता है। जिसके अंदर अपने जैसी आत्मा, दूसरों के अंदर भी है ये ज्ञान आ जाएगा, वह व्यक्ति दूसरे जीवों के प्रति समभाव से भर जाएगा। दया भाव से भर जाएगा, करुणा से भरेगा। उसका हृदय दूसरों के दु:ख को देखकर द्रवित हो जाएगा। वह हमेशा प्रयास करेगा कि उसके दु:ख कैसे दूर करें। एक जंगल में रहने वाला वह हाथी सब जीवों को बाहर निकाल रहा है पर बूढ़ा है, थक गया बेचारा। क्या करता खुद जंगल में उस स्थान पर खड़ा हो गया जहाँ आग नहीं पहुँचे पर वह आग धीरे-धीरे उसके पास तक पहुँच गई। जिस समय पर वह जंगल में जहाँ खड़ा था, तभी उसने देखा कि एक खरगोश दौड़ता हुए चला आ रहा है। वह खरगोश आकर उसके पैर के पास खड़ा हो गया, चारों तरफ आग है। हाथी ने जैसे ही टांग उठाई, उसी समय पर वह खरगोश उसके नीचे जाकर बैठ गया। अब हाथी सोचता है क्या किया जाए। बाहर की तपन से बचने के लिए वह खरगोश पैर के नीचे आ गया है, यदि हमने अपना पैर नीचे रख दिया तब तो ये गया। वह हाथी उसी एक पैर को उठाए खड़ा रहा। अग्नि भी वहाँ

तक आ गई, हाथी उसी तरह खड़ा-खड़ा जल गया, वह खरगोश भी जल गया। उस हाथी ने मरते समय तक जब तक उसके प्राण रहे, खरगोश के ऊपर पैर नहीं रखा। जब उसके खरगोश के प्रति इतने दया भाव आ गए, तब वह मरकर उसी पर्याय से देव बना। कहाँ भील, कहाँ हाथी, कहाँ वह देवत्व की परिणति। यह केवल उस धर्म का परिणाम है जिस धर्म को हम यहाँ सीख रहे हैं। लेकिन सीखने के बाद जब तक हम इस धर्म का प्रेक्टिकल नहीं करते, तब तक उस धर्म की परिणति हमारे अंदर दृढ़ नहीं होती।

उस दया धर्म को भी हम तभी समझ पाएँगे जब हम इस आत्मतत्त्व को समझेंगे। आत्म तत्त्व समझने के बाद वह जीव कभी दूसरे के लिए घात का कारण नहीं बनता, दूसरों के प्रति दया भाव रखता है। इसलिए धर्मस्य मूलं दया- ये हमेशा याद रखना। धर्म का मूल दया से शुरू होता है और अध्यात्म का मूल शरीर व आत्मा के ज्ञान से शुरू होता लेकिन दोनों में कोई अंतर नहीं है। उस हाथी को भी ज्ञान हो गया, आत्मा क्या है, शरीर क्या है। कहने की जरूरत नहीं है, उसे अध्यात्म शास्त्रों को पढ़ाने की जरूरत नहीं है। हम अध्यात्म शास्त्रों को पढ़ने के बाद भी ऐसी दया का प्रेक्टिकल नहीं दिखा पाते हैं जो दया वह आत्मा अपने आप अपने अंदर धारण कर लेता है और दया भाव से उस जीव का सुधार प्रारंभ हो जाता है। दया की संवेदनाएँ जब हमारे अंदर आ जाती है तब वहीं से हम दूसरे जीव का महत्त्व समझने लग जाते हैं। हमारे अंदर दया की संवेदनाएँ बहुत घटती चली जा रही है। दूसरों के जीवत्व का महत्त्व हमारे अंदर नहीं है और अपने भी जीवत्व का महत्त्व हमें समझ में नहीं आता। कोई भी व्यक्ति अगर दु:खी दिखाई देता है तो वह अपने दु:ख के लिए तो रोता है लेकिन कभी ये नहीं सोचता कि ये दु:ख इसको भी है और ये तो अपने दु:खों को दूर कर नहीं सकता, हम तो फिर भी ये दु:ख दूर कर सकते हैं। मान लो आपको कोई रोग हो गया, बुखार आ गया, आप तुरंत डॉक्टर के पास चले जाते हो, हजारों रुपए की दवाइयाँ ले आओगे, टेस्ट करवा लोगे और इंजेक्शन लगवा लोगे। ऐसे भी जीव हैं इस दुनिया में जिन्हें बुखार आने के बाद में एक गोली भी खाने को नहीं मिलती। अगर वह अपने आप ठीक हो जाएँ तो ठीक नहीं तो कई बार यह बुखार ही उनके मरण का कारण बन जाता है। उन जीवों के बारे में सोचने में आता है, नहीं आता। इसी कारण धर्म हमारे अंदर उतरता नहीं है। धर्म जब उतरेगा जब हम दूसरे के प्रति संवेदनाओं से भर जाएँ। जितनी हम अपनी आत्मा की संवेदना की चिंता करते हैं और आत्म तत्त्व की परिणति की चिंता करते हैं, उतनी ही चिंता हमें दूसरों की भी अगर

होगी तो तीर्थंकर नामकर्म प्रकृति का बंध इसी दया धर्म के भाव से, करुणा के भाव से होता है। वही जीव जब अवतार लेता है तब प्राणी मात्र के कल्याण का कारण बन जाता हैं। ऐसे ही तीर्थंकरों में एक तीर्थंकर महावीर स्वामी थे। उन्होंने शेर की पर्याय में शेर होकर भी हिंसा करना छोड़ दिया, एक मुनि महाराज का उपदेश सुनकर। शेर की पर्याय में भोजन मांस ही होता है लेकिन फिर भी उसने मांसाहारी भोजन को करना छोड़ दिया क्योंकि जब धर्म उतर कर आ जाता है तो वह धार्मिक अपने कष्ट नहीं देखता।

धार्मिक प्राणी ये देखता है कि मेरे द्वारा दूसरे को कष्ट नहीं हो जाए। ये धर्म की सबसे बड़ी पहचान है। धार्मिक व्यक्ति अपने कष्ट को नहीं गिनता वह दूसरे के कष्ट को गिनता है और जो पापी होता है वह दूसरे के कष्ट को कष्ट नहीं गिनता और वह अपने ही कष्ट को कष्ट गिनता है। ये बहुत बड़ी परिणति है- धर्मात्मा की और अधर्मात्मा की एवं पाप आत्मा की और पुण्य आत्मा की। पापी जीव हमेशा दूसरों को कष्ट में डालकर भी खुश हो लेगा और धर्मात्मा जीव हमेशा अपने आपको कष्ट में डाल देगा लेकिन दूसरों की रक्षा करेगा, खुश हो लेगा। उसकी खुशी दूसरों की रक्षा में होती है, दूसरों के प्रति दया भाव रखने में होती है। अधार्मिक की खुशी दूसरों को कष्ट पहुँचाने के बाद, कष्ट में डालने के बाद भी खुश बने रहने की होती है। दूसरे यदि हमारे कारणों से कष्ट में चले गए और हम अगर खुश हो रहे हैं तो समझ लेना हमारे अंदर बहुत बड़ा पाप का उदय चल रहा है, उस हास्य के साथ भी और उस परिणाम के साथ भी हमारे अंदर बहुत बड़ी पाप की परिणति चल रही है और उस पाप की परिणति को बदलने के लिए इस जन्म में पुरुषार्थ नहीं करेंगे तो किसी भी जन्म में हमारे लिए पुरुषार्थ हो पाए ये बहुत मुश्किल पड़ेगा। हर व्यक्ति को अपना जीवन अच्छा बनाने के लिए सबसे पहले ये ही ध्यान रखना चाहिए कि हम अपने लिए दूसरों को कष्ट में न डालें। हम अपने लिए दूसरों की मृत्यु का कारण न बनें। जब आदमी के पास में सत्ता, दौलत व शोहरत रहती है तो वो दूसरों के ऊपर कोई न कोई केस लगाकर जेल में पहुँचा देता है। उसके ऊपर उल्टे आरोप लगाकर उसे बंदी बना देता है। ये परिणति हमारी उस कषाय परिणाम के कारण से और दया परिणाम के अभाव से होती है। मात्र दो फीट की जमीन के लिए इतनी बड़ी–बड़ी लड़ाइयाँ हो जाती हैं कि एक–दूसरे के ऊपर तलवार चल जाती है, कटार–चाकू चल जाते हैं। ये परिणति इसी अज्ञानता के कारण से होती है। जो व्यक्ति अपने अंदर दयाभाव रखता है, आत्मतत्त्व की महत्ता समझता है, वह जड़ तत्त्व को कभी महत्त्व नहीं देता। जमीन जड़

है, आत्मा चेतन तत्त्व है। उस जड़ के लिए किसी की चेतना को मिटाना और उसके जीवन को हमेशा के लिए समाप्त कर देना, ये कभी भी धार्मिक व्यक्ति के मन में भाव नहीं आएगा। धार्मिक व्यक्ति हमेशा सोचेगा ये जड़ है, दो फीट जमीन अगर हमारी हो गई या दो फीट जमीन उसकी ओर चली गई, कोई फर्क नहीं पड़ेगा लेकिन हमें इसके कारण से दूसरे को नहीं मारना न केस लगाना, दूसरे को जिंदगी भर के लिए परेशानी में नहीं डालना है। ऐसे परिणाम वो जीव कभी नहीं करेगा जिसके अंदर से धर्म उतर कर आएगा, चाहे वो धर्म आत्मतत्त्व के चिंतन के रूप में हो या दया धर्म के भाव में हो। ऐसी परिणतियाँ जब आदमी की बनने लग जाएगी कि वो जड़ तत्त्व को जड़ समझने लगे और चेतना को चेतना का महत्त्व देने लगे तो वह कभी भी दूसरे के लिए परेशानी का कारण नहीं बनेगा, वहीं से उसका जीवन अच्छा होना शुरू हो जाएगा। एक हाथी का जीवन जब अच्छा हो सकता है, किसी के प्रति दया के भाव रखने से तो क्या हम मनुष्यों का जीवन अच्छा नहीं हो सकता। कई बार व्यक्ति क्रोध के कारण किसी की अनाधिकार चेष्टा करता है तो वह धार्मिक व्यक्ति उसके लिए सौंप देता है। चल ठीक है भाई तुम कहीं पर जाकर केस मत कर, लड़ मत, तुझे अगर दो गज जमीन चाहिए तो ले ले लेकिन मुझसे बैर मत बाँध, खुश रह। अगर मेरे पुण्य में होगी तो मुझे दो नहीं तीस फीट जगह कहीं ओर मिल जाएगी। मेरे पुण्य की होगी तो वह कहीं जाने वाली नहीं है, वह तुमको लौट करके मिल जाएगी। अगर वह तुम्हारी नहीं है तो वह कभी भी तुम्हारे पास में रहने वाली नहीं है।

इतना संतोष, इतना आत्म ज्ञान जिसके अंदर आ गया हो, वह अपना जीवन घर में रहकर भी अच्छा बनाने लग जाता है। घर में रह कर भी उसके परिणाम इतने अच्छे बनने लग जाते हैं कि वह कभी किसी के लिए बुरा नहीं सोचता, किसी के लिए बुरा नहीं करता और यही परिणाम जब अंदर उत्पन्न होता है तो यही से धर्म की शुरुआत होती है।

धर्म का विषय

हम बहुत बड़ी–बड़ी बातें सुनने के बाद भी, आत्मतत्त्व की बड़ी–बड़ी चर्चा करने के बाद भी ऐसे निकृष्ट परिणाम करते हुए, देखते हुए मिलते हैं कि हमें सोचने में आता है कि एक तरफ आदमी धर्म का आडम्बर भी ओढ़ता है। दूसरी तरफ वो अपनी कषायों को बढ़ाता चला

जाता है। वह कषायों की वृद्धि यदि हमें समझ में नहीं आती तो इसका मतलब है हमें कुछ समझ में ही नहीं आता। धर्म केवल चर्चा का विषय नहीं है, धर्म आचरण का विषय है, चर्या का विषय है। वह धर्म की चर्या हमारे अंदर उतरने लगे, हम भीतर से भीगने लग जाएँ, उस दिन ये बाहर का भीगना भी हमारे लिए सार्थक हो जाएगा। बाहर से तो बहुत बार आदमी भीग जाता है लेकिन भीतर से भीगना बहुत कम हो पाता है। धर्म का भीतर से उतरना बहुत कम हो पाता है। वह तभी उतरता है जब हमें इस प्रकार का सत्संग मिलता है, कोई हमें भगवान् जिनेंद्र देव की वाणी सुनाता है। सुनते–सुनते भी अगर क्षण भर के लिए परिणति बन जाती है कि हमें भी ऐसा ही दया का भाव करना है तो वह क्षण भर का परिणाम भी तुम्हारी इस कायाकल्प के लिए पर्याप्त हो जाता है। वह क्षण भर का परिणाम भी हमारे अंदर उस आत्मतत्त्व के निकट लाने के लिए पर्याप्त हो जाता है। इसलिए हमेशा प्रयास करो हम अपनी आत्मा को निर्मल बनाएँ, अपने परिणामों को दया धर्म से भिगोकर के रखें। हमेशा दूसरों के बारे में अच्छा सोचें, अच्छा करें और दूसरों के प्रति हमेशा सद्भावना रखें। अगर ये हमारे अंदर साथ–साथ चलेगा तो धर्म हमें बहुत ऊँचाई तक ले जाएगा। जब एक हाथी भी स्वर्ग तक पहुँच सकता है तो गृहस्थ क्यों नहीं पहुँच सकता, जिनके परिणाम अच्छे होते हैं वे नियम से उच्च गति को प्राप्त होते हैं, रखना तो परिणाम ही अच्छा है। बाहर का दिखावा कुछ भी हो सकता है। आप भले ही पूजा करने आओ, दर्शन करने आओ, प्रवचन सुनने आओ, ये एक सामूहिक धर्म हो सकता है लेकिन व्यक्तिगत धर्म तो आपके अंदर अपने व्यक्तिगत परिणाम से जुड़ा रहता है और वह व्यक्तिगत धर्म तो आपको तब पता पड़ेगा जब आप यहाँ से उठकर के जाओगे। यहाँ तो सब धार्मिक समझ में आ रहे हमको। उस व्यक्तिगत धर्म की पहचान तो तब होगी, जब आप यहाँ से अपने घर में जाओगे, अपने दफ्तर में, व्यापार में जाओगे उस समय पर आपकी आत्मा क्या बोलेगी, आपका मन क्या बोलेगा, उस समय आप अपने मन की आवाज सुनना। तब आपको समझ में आएगा कि अगर आज हम अच्छी बात प्रवचन में सुनकर आएँ हैं तो हे भोले आत्मन्, कम से कम आज के लिए तो उसे अंगीकार कर लें, आज तो अनुसरण कर लें, चल कल की कल देखी जाएगी। अगर आज अच्छा फील हो तो कल तुझे फिर वह भावना उत्पन्न हो सकती है कि जो हमने कल अच्छा किया था वो भाव हम फिर आज कर लें। ये परिणाम तुझे आज और उत्तरोत्तर प्रगति को प्राप्त होगा। जिस दिन तुम किसी दूसरे की थोड़ी सी सहायता कर दो, किसी अनाथ के लिए कभी सहायक बन जाओ, किसी रोगी को यदि पैसे की जरूरत हो तो थोड़ा पैसा दे दो और उसका वो रोग ठीक हो जाए, वह आपके समक्ष कभी आ जाए तो वो इंसान के रूप में भी आपको अपना देवता मानेगा। उस इंसान के अंदर भी देवत्व तभी उतरता है जब वह दूसरों

के प्रति अच्छी भावनाएँ, अच्छी सद्भावनाएँ रखता है। उस पशु के अंदर भी इतना ज्ञान होता है वो भी दयाधर्म का पालन कर लेता है परंतु आज का आदमी क्रूर होता चला जा रहा है, संवेदनाएँ मरती चली जा रही है। दया धर्म की परिणति दूर–दूर तक दिखाई नहीं दे रही है। बड़े–बड़े कत्ल और बड़ी–बड़ी हिंसाएँ यहाँ तक कि अपने ही परिवार के लोगों की आदमी हिंसा करने से नहीं चूकता।

अगर ये परिणति निरंतर बढ़ती रही तो धर्म का ह्रास निरंतर होता चला जाएगा। जब तक ये परिणति संभली रहेगी तब तक इस दुनिया में धर्म रहेगा तब तक ही आपको इस धरती पर संत दिखाई देंगे और तभी तक आपको ये सदुपदेश सुनने को मिलेंगे। जिस दिन ये धर्म का भाव निकल जाएगा, यहाँ पर वीरान के अलावा कुछ नहीं होगा, आदमी तो होंगे लेकिन उनमें आत्मीयता नहीं होगी, इंसान तो होंगे लेकिन उनमें इंसानियत नहीं होगी। उस इंसानियत को हम बनाकर के रखेंगे तो किसी न किसी दिन हम देवत्व को भी प्राप्त कर लेंगे, जो देवत्व हमारे भीतर छुपा है, परमात्मा के रूप में। भगवान् कहते हैं हम इस दया धर्म का पालन करके भगवान् बने हैं, तुम भी ऐसा ही परिणाम करो। शेर की पर्याय में, हाथी की पर्याय में जब दया धर्म उत्पन्न होता है तो मनुष्य की पर्याय में वो दया धर्म क्यों उत्पन्न नहीं होता। हम दूसरों के भी काम आएँ, ऐसा न सोचे कि हम केवल अपने ही काम आते रहे और अपना काम बनाएँ, दूसरों का अहित करते चले जाए, ये परिणाम आपके लिए बहुत बड़ा अधर्म का परिणाम होगा। अपने आत्म तत्त्व की खबर सबको होना चाहिए और दूसरे के आत्म तत्त्व की भी खबर भी उतनी ही होनी चाहिए। अगर दूसरे के लिए अच्छा सोचेंगे तो अपने आप अपने लिए अच्छा होने वाला है और अगर हम दूसरे के लिए बुरा सोचें और अपने लिए अच्छा सोचें तो ये बहुत बड़ा मायाचार का भाव है। मायाचारी मतलब फ्रॉड सबसे ज्यादा छल का भाव ये ही होता है कि दूसरों के सामने हम अपने लिए पूजा करते हैं, धार्मिक बनकर के खड़े हो जाते हैं, जब उसको नीचा गिराने की या मिटाने की बात आती है तब हम दांव–पेंच चलाकर के उसको मिटाने में कसर नहीं छोड़ते। हम अपनी आत्मा को थोड़ा सा पवित्र बनाने के लिए दया धर्म का पालन करने लग जाएँ तो हम बहिरात्मा से अंतरात्मा बन जाएँगे और जब अंतरात्मा बन जाएँगे तो परमात्मा बनने में देर नहीं लगेगी। बहिरात्मा व्यक्ति दूसरे की आत्मा को आत्मा जानता ही नहीं। जो अंतरात्मा होता है तो वह अपने शरीर में भी अपनी आत्मा देखता है और दूसरे के शरीर में भी उसकी आत्मा देखता है। आपको अपनी आत्मा। दिखेगी, अगर लगातार सुनते रहोगे ऐसे तो एक दिन वह आएगा जब समाधि तंत्र पूरा होने से पहले तुम्हें आत्मा दिखाई देगी।

श्लोक–११

स्वपराध्यवसायेन देहेष्वविदितात्मनाम्।
वर्तते विभ्रमः पुंसां पुत्रभार्यादिगोचरः।।११।।

जो आत्मबोध परिशून्य सदा रहा है, संपत्ति से मुदित तोषित हो रहा है।
मेरी खरी मृगदृगी ललना यहाँ है, ऐसा विचार उसका भ्रम–पूर्ण, हा! है।।११।।

जो जीव अपने आत्मतत्त्व को नहीं जानते और अपनी देह को ही अपनी आत्मा मानते हैं, उन जीवों के लिए जैसा स्व अध्यवसाय होता है वैसा ही उनका अध्यवसाय परजीवों के प्रति भी होता है। अध्यवसाय भावों को कहते हैं, उस परिणाम को कहते हैं जो परिणाम कर्म के उदय से होता है। मोह के कारण से अपनी आत्मा में जो परिणाम उत्पन्न होता है वह परिणाम ही **अध्यवसाय** कहलाता है। जैसा अध्यवसाय भाव स्व के अंदर स्व के लिए होता है वैसा ही पर के साथ भी उत्पन्न हो जाता है। जो देह में ही आत्मा को मानते हैं, आत्मा की अलग से कोई पहचान नहीं रखते, उनके लिए विभ्रम भाव बना रहता है, उसका कारण वह स्वअध्यवसाय है।

सामान्य जीवों का जो जीवन चलता है वह उसका आत्मतत्त्व की प्रवृत्ति से विमुख होकर के बहिरात्म के साथ ही चलता है। हर कोई व्यक्ति अपनी पत्नी/स्त्री, भाई, माता-पिता आदि के संबंध में जो विचार करता है, वह विचार उसका बहिर्मुखी वृत्ति से भी जुड़ सकता है और अंतर्मुखी वृत्ति से भी। व्यवहार में जिन्हें हम माता-पिता, स्त्री, भाई-बहन आदि के रूप में स्वीकार करते हैं, वे व्यवहार में व्यवहार की तरह ही रहते हैं लेकिन अज्ञानी जीव का उनके प्रति झुकाव अलग रूप में होता है व ज्ञानी का अलग रूप में। अज्ञानी जीव को ये भाव आयेगा कि जिस तरह से मेरा शरीर ही मेरी आत्मा है इसी तरह माता-पिता, स्त्री, पुत्र आदि का शरीर भी इनकी आत्मा के रूप में ही है। वह उन्हें इस दृष्टि से नहीं देखेगा कि इन जीवों का परिणमन इन जीवों की परिणति के अनुसार चल रहा है और हमारे जीव का परिणमन हमारे अनुसार चल रहा है। ये ज्ञान उस जीव

को मोह से रहित होने पर आएगा। जब तक मोह के सहित होता है तब तक उसे दूसरे जीव के परिणमन के साथ नहीं देखता है, यह स्त्री, पुत्र हमारे अधिकार में है और जैसा हम चाहेंगे वैसा ही इन जीवों का परिणमन होगा और वह मानता है कि ये स्त्री, पुत्र आदि हमारे लिए सुख के कारण हैं। ज्ञानी जीव समझता है कि ये हमारे सुख के लिए हमेशा कारण नहीं है। उसके सुख का कारण उसका अपना ज्ञान भाव है।

अज्ञानी जीव मानता है कि जितनी भी परपरिणतियाँ हैं, उन्हीं से हमें सुख मिलता है। परपरिणति का कारण आत्मा का मोह भाव है, इसलिए उसे परपरिणति में ही आनंद आता है, उसे ही अपना मानता है। जितना ज्यादा वह परपरिणति आदि से जुड़ता चला जाता है, उतना ही वह स्वयं को सुखी मानता है। किसी के पास एक भी पुत्र नहीं है तो वो दु:खी है। किसी के पास पुत्र है तो वो सुखी है। यदि दूसरी संतान पुत्री हो जाए और यदि इच्छा पुत्र की है तो भी वो दु:खी हो जाता है। यदि किसी को चार पुत्र हो जाएँ तो वो अपने आपको समृद्धशाली समझता है। उसकी सारी इच्छाएँ उन सब परपरिणति के साथ जुड़ती चली जाती हैं। उसका सारा सुख 'पर' पर निर्भर करता है, **'स्व'** पर कभी नहीं निर्भर करता। वह कभी विचार नहीं करता कि हमारा सुख इनके अभाव में भी हो सकता है और हमारा दु:ख इनके सद्भाव में भी हो सकता है। वह दु:ख में भी सुख की कल्पना कर लेता है। जब बेटा बड़ा होता है, ये माता-पिता उसका पालन करते हैं, उसमें कितना दु:ख होता है, ये माता-पिता ही जानते हैं। छोटा बेटा बात-बात पर रोता है, नाराज होता है। माँ के कथन का उल्टा ही करता है फिर भी माता-पिता उससे सुखी रहते हैं। माता-पिता को उससे दु:खी होते हुए भी उसे दु:ख नहीं मानते। माँ ने बेटे को नहलाकर तैयार किया और कहा, बेटा बाहर मत जाना, कपड़े गंदे मत करना, मिट्टी में मत खेलना पर बेटा ये सब करके आ जाएगा। माँ उसे डाँटेंगी, थप्पड़ लगा भी देगी पर फिर भी उससे प्यार करेगी।

ये परिणति है जिससे हम दु:ख को भी सुख मानकर चलते हैं और हमें हमेशा दु:ख में ही सुख की कल्पना रहती है। हम जिससे भी संबंध बनाते हैं वो हमेशा सुख के कारण नहीं रहते हैं। हमें बीच-बीच में दु:ख मिश्रित सुख मिलता रहता है। सुख की कल्पना में आदमी जीता रहता है। अगर उसमें एकांत रूप से भी कल्पना कर ली जाती है कि हमारा सुख इन पिता-पुत्र, भाई-बहन, स्त्री आदि में ही है तो वह सुख उसके लिए एकांत रूप से दु:ख का कारण बन जाता है। वही उसका **विभ्रम** कहलाता है। जहाँ पर मन में भ्रम पैदा होगा वहीं पर हमारी आत्मा में संशय पैदा

होगा और वहाँ पर मोह जरूर रहेगा। तीन चीजें हैं संशय, विभ्रम और मोह। जहाँ पर भ्रम है वहीं पर संशय है, जहाँ दोनों हो गए वहाँ मोह की परिणति चल रही है।

अमृतचंदजी महाराज ने समयसार ग्रंथ में लिखा है, अज्ञान की परिणति हर आत्मा के अंदर निरंतर चल रही है। अज्ञान से और मोह से इस आत्मा को कुछ ऐसे विभ्रम उत्पन्न होते हैं जैसे आपने कोई **मृग मरीचिका** देखी हो। मृगमरीचिका जानते हो, अगर आप राजस्थान में गए हो, धूप में यदि रेगिस्तान को देखें या फोरलेन सड़कों पर जब धूप पड़ती हो तब सड़क पर दूर पानी दिखाई देता है, जबकि पास जाने पर नहीं होता है। यही मृगमरीचिका है। इस मृगमरीचिका का संबंध धूप से होता है।

भ्रम हमेशा आत्मा में रह सकता है और भ्रम अंधेरे में या प्रकाश में भी हो सकता है। अंधकार में यदि आप किसी कमरे में प्रवेश कर रहे हो और यदि एक रस्सी वहाँ पर पड़ी हुई दिख जाए या पैरों में पड़ जाए तो आप एकदम से चौंक जाएँगे कि ये क्या है, आपको साँप की कल्पना भी हो सकती है। अंधेरे व उजाले दोनों में भ्रम उत्पन्न होता है क्योंकि भ्रम हमारी बुद्धि में बहुत गहराई में बैठा है। आचार्य कहते हैं जिस प्रकार से भ्रम हमें दिखाई नहीं देता जो अलग प्रतिभासित हो रहा है उसी तरह से भ्रम के कारण से स्त्री में सुख है, पुत्र में, घर-परिवार में सुख है ये सब हमें भ्रम के कारण से समझ में आता है वस्तुत: वहाँ पर सुख के बजाए दु:ख ही रहता है। रस्सी को अच्छे से टटोलने में आपको पता पड़ेगा कि वह साँप नहीं है, रस्सी है और जहाँ पर दूर पानी दिखाई देता है वहाँ पर देखोगे कि पानी नहीं है, सड़क ही दिखाई देगी। उसी तरह से जब-जब हमारे संबंध बनते हैं, हम उन संबंधों में भ्रम के साथ रहते हैं तो हमें ऐसा ही लगता है ये हमारे लिए सुख के कारण हैं पर अंततोगत्वा हम भ्रम में पड़े रहते हैं पर वे दु:ख के ही कारण होते हैं। आत्मा में तीनों प्रकार की परिणतियाँ–संशय, भ्रम और मोह चल रहा होता है। यह किसी भी रूप में हो सकता है।

श्रेणिक राजा

श्रेष्ठी राजा श्रेणिक का नाम सुना है। वे हमेशा भगवान् महावीर के दर्शन, पूजन, वंदन करने के लिए जाते थे परंतु उनके अंदर भी कई प्रकार के भ्रम पड़े रहते थे। एक भ्रम उनके अंदर तब उत्पन्न हुआ जब वे अपनी पत्नी चेलना के साथ वनविहार कर रहे थे। सुबह से शाम तक प्रकृति का आनंद लेने के बाद वे लौटने लगे तो रानी चेलना को दिगम्बर मुनि महाराज दूर बैठे दिखाई

दिए पर वह राजा के साथ मुनि की चर्चा किए बगैर लौट आई। अपने कमरे में आने के बाद रानी को लगा कि अपने कमरे में कुछ भी ठंड नहीं है और बाहर कितनी ठंड पड़ रही है। रानी के मुँह से निकल गया हाय उनका क्या होता होगा! राजा ने सुना और सोचा कि रानी किसकी चिंता कर रही है। उसका दिमाग घूम गया, उसे लगा कि ये इतनी चिंता किसकी कर रही है। कहीं ऐसा तो नहीं ये किसी परपुरुष में आसक्त हो गई है। ऐसा सोचते-सोचते उसके मन में भ्रम पैदा हो गया और उस रात उसको नींद नहीं आई। अगर तुम भी होते तो तुम्हें भी नींद नहीं आती क्योंकि वो प्रकृति ऐसी है। जिस पर अगर विश्वास है उस पर यदि संदेह हो गया तो सामने कितने भी हेलोजन हो, आँखों में अंधेरा ही रहेगा। जिस पर हमने विश्वास किया है, उसमें यदि हमें ठेस लगने लग जाए और जिससे हमारे इष्ट संबंध हैं, उन संबंधों के बीच में अगर कोई दूसरा आ जाए तो समझ लो उस परिवार की शांति हमेशा के लिए चली गई। राजा का दिमाग खराब होने लगा। भ्रम के कारण से अनेक विचार आने लगे। वह सोचने लगा कि अपनी इस परिणति को किसको बताएँ, किससे साझा करें। रानी से पूछ नहीं सकते क्योंकि वो भी अच्छी बात नहीं है। किसी ओर से पूछने में लग रहा है कि क्या सोचेगा वो कि राजमहल में भी ऐसा होता है। दो–तीन दिन ये विचार करते-करते वह थक गया। फिर उसने मंत्री को बुलाकर आदेश दिया कि जिस राजमहल में रानी रहती है उस राजमहल को रानी के साथ जला डालो।

मंत्री आदेश सुनकर सोचने लगा कि इस आदेश का पालन कैसे करेंगे लेकिन उसके दिमाग में एक बात आ गई कि जरूर राजा के मन के अंदर कुछ न कुछ बात है, वो राजा हमें बताएगा नहीं, हमें रानी से पूछना पड़ेगा। अब रानी को पता ही नहीं कि राजा ने क्या कहा। वह मंत्री रानी चेलना के पास गया और कहने लगा कि महारानी आज राजा का बड़ा विचित्र आदेश मिला है और हम आपसे पूछना चाहते हैं कि इस आदेश की वजह क्या है। कहीं राजा और आपके बीच में कोई घटना तो घटित नहीं हो गई। कोई अनबन या कुछ और तो नहीं हो गया। रानी ने कहा तुम्हें अपनी मर्यादा में रहना चाहिए। उतने ही प्रश्न करने चाहिए जितने तुम्हारी योग्यता में है। राजा ने क्या आदेश दिया है उसको बताओ और क्या करना है वो काम करो। मंत्री की हिम्मत नहीं पड़ी कि वह रानी को बता दे कि राजा ने क्या आदेश दिया है। वह सोचकर चला जाता है कि राजा को कभी अपनी गलती का अहसास होगा। तभी उसी समय पर एक संदेश आता है कि विपुलाचल पर्वत पर भगवान् महावीर का समवसरण आया है। राजा श्रेणिक वहाँ जाने की तैयारी

में लग जाता है। वह मंत्री से भी कहता है वहाँ चलने के लिए। मंत्री सोचता है चलो बहाना मिल गया इस कार्य को टालने का। वे सब वहाँ जाते हैं, भगवान् के दर्शन कर आह्लादित होते हैं। सोचो आप एक मनुष्य की आँखें इतनी सफल कभी हो नहीं सकती।

सोचो आप, सम्यक्दृष्टि राजा श्रेणिक वह ३४ अतिशय के साथ जब गंधकुटी में सिंहासन पर विराजे भगवान् के दर्शन करता होगा तो कितना उसके अंदर आह्लाद उत्पन्न होता होगा। हे जिनेंद्र भगवान् आपका आज साक्षात् दर्शन करने से हमारा आज शरीर व नेत्र सफल हो गए। उसके सामने कोई भी और दूसरी चीज नहीं आनी चाहिए लेकिन आदमी के मन में जो बसा रहता है वह कभी भूलता नहीं है। भगवान् की भक्ति करके उसके मन में वही पहला प्रश्न आया। आखिर मन की बात किससे पूछें। मन की बात अपने पड़ोसी, दोस्त, रिश्तेदारों से मत पूछा करो क्योंकि वे आपके मन के संशय को सुनकर के दूर नहीं कर पाएँगे। पहले के लोग अपने मन की व्यथा अपने बराबर वालों से साझा नहीं करते थे। ये नीति थी। रहीमदास के नीति में पढ़ा था-

'रहिमन निज मन की व्यथा मन ही राखो कोय
सुन इठ लेहे लोग सब, बांट न लेहे कोई'

अपने मन की व्यथा अपने मन में रखो क्योंकि दूसरे लोग सुनकर सब लोग इठलाएँगे कि हाँ, ऐसा तो होता ही है, हमारे साथ भी ऐसा हो चुका है, अरे दुनिया में ऐसा चलता ही रहता है। आज कल ऐसा कहते हैं कि भैया अपने मन के अंदर जो भरा है वो दूसरों से साझा कर लो, दूसरे के सर पर डाल दो। सामने वाले के अंदर भी उतनी क्षमता होनी चाहिए कि वो अपना दु:ख जो पहले से लिए हुए है उसे लिए रहे और हमारा दु:ख भी उसमें जोड़ ले और उसकी संवेदनाएँ हमारे साथ में आ जाएँ, वो असंभव होता है। ये हमारे मन की परंपरा होती है कि हम अपने मन में सोच लेते हैं कि सामने वाले को कहने से हमारा दु:ख दूर हो जाएगा लेकिन सही व्यक्ति वो होता है जिसके अंदर छोटी-छोटी बातों को सहन करने की क्षमता होती है। आपकी कोई भी बात बहुत बड़ी नहीं होती है पर वो आपको बड़ी लगती है। ये भी किसी भ्रम के कारण से होता है।

घर की कोई भी बात चाहे पति से या बच्चों से संबंधित होती है जब हम दूसरों से कहते हैं और दूसरों के जरिये जब वह वापस घर पर पहुँचती है तो उन्हें और बुरा लगता है। ये हमारी आपस की बात उसके पास पहुँची कैसे। उसने हमको इस प्रकार से सुझाव देने सोचा कैसे। आज के नए बेटे-बहुओं आदि के अंदर सहनशीलता की बहुत कमी होती चली जा रही है। किसी भी

छोटी सी बात को सहन नहीं कर पाते और कोई छोटी सी बात भी कर देता है तो हम उसे बहुत बड़े रूप में ले लेते हैं। एक बेटी शादी होकर ससुराल जाती है तो २-३ दिन में ही मायके फोन आ जाता है कि ये लोग हमसे काम करवाते हैं, रोटी बनवाते हैं, कपड़े-बर्तन धुलवाते हैं, हमें नहीं करना ये सब काम। हमसे नहीं होता। हम तो कंपनी में सर्विस कर रहे थे, वहीं अच्छे थे। हमें यहाँ नहीं रहना।

पिताजी-भाई दौड़े आए, मेरी बेटी, बहन के साथ ऐसा बर्ताव। इसलिए तुम्हें इतना दहेज दिया था। पर उस बेटी से कुछ नहीं कहते कि बेटी तेरा क्या कर्तव्य है। इतना उससे मोह तथा भ्रम बढ़ा रहता है कि उसे अपने घर में ले आएँगे पर उसे ये नहीं सिखाएँगे कि बेटी तेरा घर ये भी है। अब बेचारा पति चक्कर लगा रहा है कि क्या हो गया। वो तो सर्विस पर गया था पर घर में सब खेल खराब हो गया। वह किससे पूछे- माँ से पूछे तो कुछ नहीं हुआ, पिता ने कहा कुछ नहीं हुआ पर बीवी तो घर चली गई अपने, वो परेशान है। वो फोन करता है तो बीवी बात नहीं करती, कहती मेरे भाई से, पापा से बात करो। अब ससुर व साला उसे डाँट रहे कि मेरी बहन उस घर में नहीं जाएगी और वो जाना नहीं चाहती। शादी अब दो दिन का खेल हो गया। इतनी तैयारी की पहले से, सब २ दिन में निपट गया। अब ये भ्रम क्यों क्योंकि इतनी सहनशीलता की कमी हो गई है कि हमें अपने ही घर में जिनको अपने माता-पिता के रूप में स्वीकार किया है, उनकी दो बात सुनना नहीं चाहते।

उस पिता को, उस भाई को ये सोचना चाहिए कि जिस घर में हमने अपनी बेटी को पहुँचाया है, हम उसको उसी ढंग से सिखाएँ कि बेटी अब तुझे यहीं पर अपने माता-पिता के साथ रहता है, छोटी-छोटी बातों को सहन करना सीख। अभी तक तूने कंपनी में जॉब की है, अब यहाँ पर इस घर में अच्छे ढंग से रहना ही तेरी सबसे बड़ी जॉब है। अब वहाँ वह कैसे रहे, कैसे ढले, किन-किन चीजों के साथ एडजेस्ट करना है ये ज्ञान अगर घर के ही लोगों ने नहीं दिया तो छोटी-सी बात पर तलाक होने में देर नहीं लगती। दोनों हमेशा के लिए परेशान हो गए लेकिन फिर भी दोनों को पता नहीं कौनसी खुशी मिलती है अलग रहने में। छोटी-छोटी बातों में जो मन में सहिष्णुता की कमी देखी जा रही है वही आज की बड़ी समस्या बन रही है। जो छोटी-छोटी बातों को जीवन में सहन नहीं कर सकता वो कभी जीवन में बड़ा नहीं बन सकता, कभी सफल नहीं हो सकता। कोई भी बात परिवार में, समाज में बड़ी नहीं होती, हम उसे बना लेते हैं, दूसरे से कहकर। जब

वह दूसरे के मुँह से निकलेंगी तो वह उतनी नहीं बल्कि बड़ी बनकर निकलेगी। जब वह चार आदमी के पास होकर घर तक वापस आएगी तब तक तो इतनी बड़ी हो जाती है कि ऐसी तो कोई बात ही नहीं थी। हर घर में हर समाज में यही हो रहा है। सबसे समझदारी की बात होती है अपने दु:ख को पी जाना और सहन कर लेना और ये सोचना कि दु:ख को सहन करना ही अपनी क्षमता को बढ़ाना है। उसको पॉजिटिव वे में लेना और सोचना कि इस दु:ख को सहन करेंगे तो आगे सुख मिलेगा। इसलिए आप पहले के लोगों की बनाई नीतियों पर अमल करें।

जब बात ज्यादा बड़ी हो जाए, सहनशक्ति से परे हो जाए तभी आचार्य कहते हैं कि अपने अंदर का दु:ख, पीड़ा यदि सहनशक्ति से ज्यादा आपको लग रही है तो आप भगवान् के सामने पहुँच जाओ और दु:खहरण विनती पढ़ो। जब बचपन में हमें परिवार के लोग शाम को मंदिर ले जाते थे और दु:खहरण विनती पढ़ते तब लगता था कि हम अपने सब दु:ख भगवान् से कह रहे हैं और भगवान् के सामने रो रहे हैं। आप अपने दु:ख को कैसे कहोगे, जो उसमें लिखा है उसी को लेकर आप भगवान् से विनती करो, सीधा साधा अपने दु:ख का रोना मत रो क्योंकि बगल में बैठा व्यक्ति सुन लेगा। उसमें लिखा ही बोलो और विनती करो, बहुत अच्छी तरकीब बता रहा हूँ। जब उसमें उनका दु:ख बीच-बीच में आ जाता है तो आपको लगता है कि हे प्रभु जब आपने इनका संकट उबारा तो हमें क्यों नहीं उबारा। जब अप्रत्यक्ष आप अपने दु:ख को रखोगे तो आपका भी दु:ख का हरण हो जाएगा। किसी को पता नहीं पड़ेगा कि आपने कौन दु:ख की विनती कर ली क्योंकि आपका कोई भी दु:ख उन दु:खों से ज्यादा नहीं है जो उसमें लिखे हैं। हर लाइन में किसी न किसी का दुखड़ा है और यदि उसमें आपकी दृष्टि चली जाएगी तो आपको लगेगा कि इसके सामने हमें क्या दु:ख है। जब इन्होंने इतने दु:ख सहे और इनके दु:ख को प्रभु ने उबारा तो हमारे संकट भी आप ही उबारोगे। भगवान् के सामने **दु:खहरण विनती** पढ़ो या कमरे में, पार्क में, अकेले में पढ़ लेना ज्यादा अच्छा है, बजाए अपनी सहेली को, अपने मित्र को बताना कि हमारे घर में ये चल रहा है। ये सीख लेने पर घर की सुख-शांति घर में रहेगी, दु:ख का रूप नहीं लेगी। अपने दु:ख को रोने के लिए हमें सिर्फ और सिर्फ प्रभु के पास जाना है।

प्रभु में इतनी शक्ति है कि वो तुम्हारा दु:ख किसी दूसरे से नहीं कहेंगे और तुम्हें इतना धैर्य व साहस देंगे जिसके कारण तुम सही रास्ते पर चलोगे। उनके सामने अपने दु:ख रखो जो दुखों से दूर है। इसलिए अपने पापों को प्रभु से कहा जाता है क्योंकि उनका इससे कोई लेना-देना नहीं

है। अपने मन का दु:ख तीन लोक के नाथ को सुना आओ और घर में शांति से बैठ जाओ और सोचो कि हमें उस दु:ख की चिंता करने की कोई जरूरत नहीं है। इतना विश्वास और भक्तिभाव भगवान् व गुरु के प्रति रखो तो आपका दु:ख भी दूर हो जाएगा। राजा श्रेणिक ने अपना दु:ख किसी से कहा नहीं क्योंकि वो सोचेगा कि ये कैसे अपनी पत्नी के बारे में ऐसा सोच रहे हैं। पत्नी रात में ठंड में कह रही है हाय! उनका क्या होगा। श्रेणिक के दिमाग में यही चल रहा है कि इसका पति परमेश्वर सामने बैठा है और ये किसकी चिंता कर रही है, मेरी तो कर नहीं रही। उसका भाग्य अच्छा था तो समवसरण में साक्षात् अरिहंत भगवान् महावीर के दर्शन करके आह्लादित हो गया। थोड़ी देर के लिए भाव परिवर्तित हो गए, फिर उसके मन में प्रश्न आया कि हमें भगवान् से कुछ पूछना है। तो क्या पूछें... कर्म कितने होते हैं, मोक्ष मार्ग कैसे मिलता है... ये भी तब पूछा जाता है जब मन में कोई भ्रम, संशय व मोह नहीं रहता। जब ये नहीं हो तभी मन में तत्त्वज्ञान की परिणति आती है, तभी ऐसे विचार आते हैं कि हम मोक्ष मार्ग की परिणति अनुसार अपने भावों को ढालें, मोक्ष मार्ग के बारे में पूछे, तत्त्वचर्चा करें, आत्मतत्त्व की उपलब्धि व अनुभूति कैसे होती है, जानने की कोशिश करें।

मन में निश्चिंतता होगी, उसी मन में तत्त्व की चिंता होगी। जो मन मोह व आसक्ति में पड़ा है, भ्रम में, संशय में पड़ा है उस मन में तत्त्व की चिंता भी नहीं ठहरती है। राजा श्रेणिक, श्रावक श्रेष्ठी (सम्यक्दृष्टि) समवसरण में बैठा है प्रश्न पूछने, भगवान् से ही अपनी बात कहता है, परमेष्ठी से कहता है। डायरेक्ट पूछ नहीं सकता तो वह कहता है भगवान् मेरी पत्नी के मन का भ्रम कब दूर होगा और उसके भ्रम का कारण क्या है। वह अपने मन का भ्रम कब और कैसे दूर होगा नहीं पूछ रहा। कोई ये नहीं मानना चाहता कि वह भी भ्रम में है। भगवान् से पूछ लिया, उनके पास तो पाँच ज्ञान में सबसे बड़ा केवलज्ञान है ही। भगवान् उसे बताते हैं कि भ्रम उसके अंदर नहीं, तेरे अंदर है। जब राजमहल की खिड़की से उसने देखा कि इतनी शीत पड़ रही है। सारे पक्षी अपने घोसलों में दुबके हैं, पशु ठिठुर रहे थे तो उसके मन में विचार आया कि जिस मुनि महाराज को देखकर मैं आज आई हूँ वो तो उसी जंगल में वैसे ही बैठे होंगे, उनका क्या हो रहा होगा। वो उन मुनि महाराज के बारे में सोच रही है, पगले! तू क्या सोच रहा है। ये चिंता होती है सम्यक्दृष्टि जीवों को। उस समय राजा श्रेणिक को सम्यक्दर्शन हो न हो पर रानी चेलना को शुरू से ही था। राजा श्रेणिक को सम्यक्त्व की प्राप्ति रानी चेलना के कारण ही हुई, जिसके

अंदर धर्म होता है वह धर्मानुरागी हमेशा रहता है। वह हमेशा सोचेगा, चिंतन करेगा। धार्मिक व्यक्ति अपने मोह की चिंता नहीं करेगा, वह धर्मात्माओं की चिंता करता है। धर्म निर्ग्रंथ मुनियों के कारण से चल रहा है और धर्मात्मा के अंदर उनकी चिंता हमेशा रहती है। ऐसा नहीं कि हम आए, दर्शन किए, प्रवचन सुने और चले गए। बाद में कोई चिंता ही नहीं, अपन तो ए.सी. में पड़े हैं, महाराज को मच्छर काट रहे हैं पर कोई चिंता ही नहीं। ये चिंताएँ उन धार्मिक जीव के अंदर रहती है। वो ये सोचता है कि वो किस ढंग से अपनी सहनशक्ति को बढ़ाते हुए अपने रत्नत्रय की आराधना करते हैं, ये चिंता करने में ही उसके अंदर विकल्प आता है, ये विकल्प ही उसका धर्म ध्यान कहलाता है। श्रावक का धर्मध्यान क्या है- देव, शास्त्र और गुरु की चिंता करना। श्रावक का यही धर्म है कि सोचें- भगवान् कहाँ बैठे हैं, कहीं उनके ऊपर पानी तो नहीं चू रहा है। जिन गुरुओं की हम आराधना करते हैं उनके लिए कहीं कोई उपसर्ग तो नहीं हो रहा, यही श्रावक का धर्मध्यान है और ये धर्मध्यान जहाँ पर होगा, उसे आत्मतत्त्व की चिंता भी बनी रहेगी।

आचार्य कहते हैं मोह अगर कम होगा तो भ्रम कम होगा और भ्रम कम होगा तो संशय कम होगा। जहाँ संशय, भ्रम, मोह कम होगा तभी अपनी आत्मा को देखना होगा। इन तत्त्वों के प्रति जब हमारी चिंता जाएगी तो आत्मतत्त्व के प्रति भी हमारी चिंता जाएगी। इसलिए आचार्यों ने कहा कि देव, शास्त्र व गुरु इन तीन तत्त्वों को ही जानों। पहले इन तीन तत्त्वों का श्रद्धान करो, सात तत्त्वों का श्रद्धान बाद में हो जाएगा। आत्मतत्त्व का अपने आप हो जाएगा। यदि इन तीन तत्त्वों के प्रति हमारी उल्टी बुद्धि हो गई तो क्या होगा। जिस औषधि से हमारा रोग जाना था उस औषधि से ही हमें भ्रम पैदा हो गया, उसका सेवन नहीं करेंगे तो रोग कैसे दूर होगा। जिसकी श्रद्धा की परिणति से आत्मा में सम्यक्त्व उत्पन्न होना है और उसी के प्रति हमारा संशय, भ्रम और मोह है तो आपको कभी भी सम्यक्त्व की प्राप्ति होने वाली नहीं। इस विभ्रम को दूर करने के लिए आचार्य कहते हैं कि तुम बिल्कुल नि:शंकित हो जाओ, देव, शास्त्र और गुरु के विषय में। यदि तुम्हें देव, शास्त्र, गुरु की सही पहचान आती है तो एक बार सही परीक्षा करके नि:शंकित हो जाओ।

बिना **देव, शास्त्र, गुरु** के प्रति श्रद्धा के कभी सम्यक्त्व की प्राप्ति नहीं होगी। गुरु के विषय में भी यथार्थ श्रद्धा होना। यथार्थ ज्ञान से ही यथार्थ श्रद्धा होगी। हमें यह ज्ञान नहीं रहता कि गुरु का स्वरूप क्या है। कुछ लोग कहते हैं कि पंचमकाल में गुरु होते नहीं और गुरु तो शहरों में रहते नहीं उन्हें जंगल में रहना होता है। उन्हें ये पता नहीं है कि चौथे काल में गुरु जंगल में रहते थे

और ऐसे भी गुरु होते थे जो मंदिर में, घर में भी रह जाते थे लेकिन गुरु का ये स्वरूप नहीं है कि जंगल में रहना या घर में रहना या मंदिर में रहना। आचार्य कहते हैं जो विषयों की आशा से तथा आरंभ एवं परिग्रह से रहित हो, ऐसा गुरु चाहे जंगल में रहे, चाहे आपके घर में आकर मंगल करे कोई फर्क नहीं पड़ने वाला क्योंकि उसका सम्यक्त्व उसकी आत्मा से संबंध रखता है। हमें स्वरूप मालूम होना चाहिए कि जंगल में रहने का मतलब है– उत्कृष्ट उत्तम तप का पालन करना। वे जंगल में रहते हैं जिनके लिए वज्र वृषभ नाराज उत्तम संहनन आदि हो। जिनके लिए रात भर भी वर्षा हो जाए तो शरीर में कोई प्रभाव नहीं पड़े, न बुखार हो न खाँसी आए। अब आज का संहनन है कि यदि एक घंटे की वर्षा में आदमी बैठ जाए तो उसे निमोनिया हो जाए। यदि इस संहनन के साथ वह रत्नत्रय की आराधना कर रहा है तो हमें ये सोचना चाहिए कि वह रत्नत्रय की आराधना कर रहा है बाकी तो एक्स्ट्रा चीजें हैं कि जंगल में, गुफा में रहना चाहिए। इसका संबंध मूलगुणों से नहीं है। लेकिन भ्रम पैदा हो जाता है जब कोई कह देता है तो बात छोटी से बड़ी होने में देर नहीं लगती। जैसे पंचमकाल में गुरु होते नहीं। यदि आपके मन में भी ऐसी बात है तो देव का, शास्त्र का, गुरु का स्वरूप क्या है ये आपको ज्ञान नहीं है। स्वरूप में २८ मूलगुण आते हैं, विषयादि परिग्रह त्याग आता है, बाकी सब तो एक्स्ट्रा चले आ रहे हैं, हो जाए तो ठीक न हो पाए तो ठीक। यदि देव, शास्त्र, गुरु के प्रति भ्रम बना है तो कभी भी आपका मोह छूटने वाला नहीं है इसलिए पहले देव, शास्त्र, गुरु से संशय, विभ्रम व मोह का त्याग कर लो तो अपने आप आपको सात तत्त्व का सही ज्ञान हो जाएगा, आत्मतत्त्व का भी ज्ञान हो जाएगा।

भगवान् महावीर स्वामी श्रेणिक से कहते हैं पगले तू उस चेलना के लिए सोच रहा है जो राजा के साथ सोती है अरे वो तो मुनि महाराज का स्मरण करके सोती है कि उन मुनि महाराज के लिए कैसे वह शीत में रात कट रही होगी। हम तो यहाँ महलों में सो रहे हैं। ऐसा धार्मिक भाव रखने वाली से तू भ्रम कर रहा है। तेरे मन में उसके लिए बुरी भावना आ गई, कम से कम अपनी पत्नी पर तो विश्वास रखना सीख। यदि विभ्रम उत्पन्न हुआ था तो अपनी पत्नी से ही पूछ लेते, बात वहीं के वहीं खत्म हो जाती। राजा श्रेणिक का जब ये भ्रम दूर हुआ, उसके बाद उसे क्षायिक सम्यक्त्व की प्राप्ति हुई। उसके बाद उसका मन विशुद्धि से भरा।

श्लोक–१२

अविद्यासंज्ञितस्तस्मात् संस्कारो जायते दृढः।
येन लोकोऽङ्गमेव स्वं पुनरप्यभिमन्यते।।१२।।

मिथ्यात्व–जन्य उसकी इस भावना से, अज्ञान तीव्र बढ़ता, सुख हो कहाँ से?
तो देह को 'निज' सदा वह मानता है, औ! आत्म को वह कदापि न जानता है।।१२।।

भ्रम बुद्धि से अविद्या नाम का संस्कार मजबूत हो जाता है जिससे यह जीव शरीर को पुनः पुनः अपना मानता है। परमार्थ को नहीं समझने के कारण संयोग संबंध होने से सभी संबंधीजन के प्रति राग व द्वेष के भाव कर लेता है क्योंकि चिरकाल तक रहने वाली बुद्धि **संस्कार** कहलाती है। संस्कार युक्त ज्ञान के अनुरूप ही सभी प्राणी की श्रद्धा होती है और श्रद्धानुसार ही उसे अनुभूति होती है। पार्श्वनाथ भगवान् के जीवन चरित्र को देखें।

जिन भगवान् ने अपने इस मोक्ष कल्याणक को प्राप्त करने के लिए कई भव लगा दिए, फिर भी भगवान् सर्वज्ञ देव की वाणी से उनके पिछले दस भवों का थोड़ा सा विवरण मिलता है। उस विवरण में कथा जो प्रथम भव से शुरू होती है तो हम देखते हैं जिस पूर्व भव में वे एक राजा के मंत्री थे, उनको वह मंत्री पद भी उनके पिता के द्वारा राजा के माध्यम से दिलाया गया। भगवान् पार्श्वनाथ के दस भव पूर्व की जहाँ से बात शुरू होती है, उनका नाम मरुभूति था, उनका एक भाई था कमठ। वह दस भव पूर्व का भाई था। आज तक हम उसको कमठ के रूप में याद करते हैं। जिस पर्याय में वे भगवान् पार्श्वनाथ हुए उसी पर्याय में वह कमठ का जीव भी रहा और उसी ने उन पर उपसर्ग किए, उपद्रव किए। वस्तुतः देखा जाए तो वह उपद्रव उस कमठ ने नहीं किए, इस पर्याय में भगवान् के ऊपर उपसर्ग करने वाला वह ज्योतिष देव था जो कमठ का जीव था पर उस कमठ का नाम इतना फेमस हो गया कि वह दस भव बाद भी कमठ था और आज भी कमठ ही कहते हैं। कभी-कभी लगता

है हीरो से ज्यादा विलेन फेसम हो जाता है। भगवान् की कथा वहाँ शुरू होती है। दो भाइयों के रूप में, दोनों के बीच में प्रेम है लेकिन एक भाई जैसा उसके नाम के पीछे 'ठ' लगा है। कमठ का अर्थ होता है कि जिसके अंदर थोड़ी षठता ज्यादा रहती है। षठ यानि जड़ता यानि मूर्खता ज्यादा होती है। कमठ के रूप में वह मूर्खता उस रूप में दिखाई देती है, जब अपने भाई के साथ रहता है, भाई मरुभूति उस समय पर भी नीति निपुण है, ज्ञानी है और सद्चरित्र को धारण करने वाला है लेकिन भाई उतना ही विपरीत है। जितना मरुभूति सीधा है उतना ही भाई कमठ दुर्जन है। एक ही पिता के दो पुत्र और दोनों पुत्रों के बीच का वह व्यवहार जिसे देखकर के, सुनकर के ऐसा लगता है कि कभी भी एक अच्छे परिवार के अंदर दुष्ट पुत्र उत्पन्न नहीं होते होंगे लेकिन हुए। आप सब उस बात से परिचित हैं।

दुर्जन का व्यवहार व स्वभाव

राजा के मंत्री को किसी कारण से वैराग्य हो गया तो वह घर छोड़कर के चला गया। राजा ने सोचा कि मंत्री तो चला गया, उसके दो पुत्रों में से किसी को अपना मंत्री बना लिया जाए। दोनों पुत्रों की बुद्धि की राजा ने परीक्षा ली तो देखा कि मरुभूति बहुत होशियार है। राजा ने मरुभूति को अपना मंत्री बना लिया। कमठ को बुरा लगा कि मुझे मंत्री नहीं बनाया और मरुभूति को बना लिया। कमठ को जब बुरा लगा तो कोई बात नहीं पर बात इस बात की है कि अंदर के जो गुण दोष होते हैं, उनकी परीक्षा जब आदमी स्वयं नहीं कर पाता है तो वही उसके लिए सबसे बड़ा खतरा बन जाता है। दुर्जन की सबसे बड़ी पहचान ये होती है कि वह गुणों को भी दोष के रूप में देखता है, अच्छे काम को बुरे के रूप में व अपने से अच्छा व्यवहार करने वालों को भी अपना शत्रु समझता है। अगर आपको सज्जन व दुर्जन की सही पहचान करनी हो तो आप गहराई के साथ मरुभूति व कमठ के चरित्र को पढ़ना व दोनों की वृत्तियों को देखना, जिसके माध्यम से आपको पता पड़ेगा कि आदमी के अंदर अगर दुर्जनता के गुण हैं तो वो उनको स्वीकार नहीं कर पाता। जब वह अपने ही दुर्गुण स्वीकार नहीं कर पाता तो वो सामने वाले गुणवान् के गुण भी नहीं देखता है। आचार्यों ने दुर्जन से बचने के लिए हमेशा कहा है कि कभी भी दुर्जन की संगति मत करना। सभी शास्त्रों व पुराणों में दोनों

के लक्षण बताए हैं और दुर्जन के लक्षण में बताया कि दुर्जन सर्प के समान होता है अगर आप उसे दूध भी पिलाएँ तो भी उसका जहर ही बनता है, अमृत नहीं बनता। उसी तरह दुर्जन को अगर पाले-पोसे तो उसमें दुर्गुणताएँ बढ़ती हैं और उसे दूर करने पर वह बैर बांध लेता है। जैसे सर्प का घर में रहना कठिन होता है। वैसे ही दुष्ट पुरुष का घर में रहना कठिन होता है। ऐसे अवगुण उनके पूर्व जन्म के कुछ संस्कारों के कारण होते हैं। पूर्व जन्म से ऐसे दुर्बुद्धि, पाप लेकर आते हैं जिसके कारण से समझाने पर भी समझ नहीं आता और उन्हें मजा इसी में आता है कि वे दूसरों का काम बिगाड़े, दुर्व्यवहार करें व परेशान करने में आनंद आएगा। हो सकता है आप लोगों के घरों में भी ऐसा कोई व्यक्ति हो, भगवान् करे न हो लेकिन अगर कहीं कभी हो जाता है तो वह बड़ा मुश्किल हो जाता है। दुर्जन व सर्प के स्वभाव को बदला नहीं जा सकता। सर्प का विष वह जो कुछ भी खाता है उससे बढ़ता चला जाता है। वैसे ही दुर्जन के दुर्गुण बढ़ते चले जाते हैं। आचार्यों ने दुर्जन से बचने को कहा पर जब घर में भाई ही हो तो कैसे बचा जा सकता है। एक तरफ मरुभूति है जो सज्जनता की मूर्ति है और एक तरफ कमठ है जो षठता की मूर्ति है और उन दोनों के बीच में घर चल रहा है, सब अच्छे से रह रहे हैं। मरुभूति को कई बार परेशानी भी होती है पर वह सोचता है कि कोई बात नहीं। जैसा भी है अपना भाई है अत: वह निर्वाह करता है। एक बार राजकीय कार्य से उसे बाहर जाना पड़ता है। घर में केवल उसकी सुंदर सी पत्नी थी एवं कमठ था। कमठ की पत्नी उसी समय पर मायके चली गई थी।

मरुभूति की पत्नी प्रात: उठती है, धर्मध्यान करती है, पूजन हेतु सामग्री सजाती है तभी कमठ उसे देखता है तो उसके मन में अपनी भाभी के लिए दुर्विचार आता है कि इसके बिना तो मेरा जीवन व्यर्थ है। जब आदमी की बुद्धि बिगड़ती है तो उसे फिर कुछ भी दिखाई नहीं देता, न सगे संबंधी दिखाई देते हैं न परिवार दिखाई देता है। आचार्य कहते हैं कि सबसे बड़ी चीज है अपनी बुद्धि सही सलामत रहे। जहाँ आदमी के अंदर की भावना बिगड़ने लग जाये, उसके ऊपर वासना हावी होने लगे वहीं से उसका जीवन मिटने लग जाता है। आज का किया हुआ विचार कभी न कभी जीवन में परिलक्षित होता है और वह विचार ही हमारा भविष्य बन जाता है, आपको नरक के चार द्वार बताए थे, दूसरे द्वार से गुजरने का कमठ ने मन बनाया और वह कर लिया। जब राजा को पता चला तो राजा ने दंड देने का प्रावधान किया कि ऐसे

दुष्ट पुरुष को अपने राज्य में, अपने शहर में रखना ही नहीं चाहिए। राजा ने उसको घर से बाहर निकाला व पूरे नगर में इस तरह घुमाया कि लोग देखें और उस बदनामी को झेलें व ऐसे कार्य करने के कभी भाव ही न करें। गधे पर बैठाकर, मुँह काला करके, गले में जूते-चप्पल पहनाते हुए और जितनी बुरी हालत हो सकती है वो सब हालत करते हुए यहाँ तक कि मुँह में गोबर भी ठूंसा जा रहा है। मंत्री मरुभूति को जब पता चला कि राजा ने इस तरह की आज्ञा दी है तो उसने राजा से कहा कि मेरे घर में यदि कुछ गलत हुआ भी है तो आप कमठ को माफ कर दो व राज्य में उसे रहने दो। राजा ने मरुभूति से कहा कि यदि हम इसको क्षमा करेंगे तो दूसरे लोग भी अपराध करते रहेंगे। राजा का काम अपराधी को दंड देना है। अरविंद राजा ने कमठ को राज्य से बाहर निकाल दिया।

वह कमठ इधर-उधर घूमता रहा। घूमते-घूमते वह ऐसी जगह पर पहुँचा। जहाँ पर लोग अनेक प्रकार की अज्ञानता के साथ में तपस्या कर रहे थे। उसने सोचा कि इनकी तरह हम भी कुछ करके देखें। एक भारी भरकम शिला अपने हाथ में धारण कर वह खड़ा हो गया। जब आदमी को आत्मज्ञान नहीं होता है तो वह केवल शरीर को तपाने का नाम ही तपस्या समझता है। अज्ञानता के साथ तपस्या चलती है तो उसकी अंतरंग परिणति में कोई बदलाव नहीं आता है। सम्यग्ज्ञान के साथ किए जाने वाले तप-ध्यान से ही अंतरंग परिणति में बदलाव आता है। उसी के माध्यम से कर्मों का भार हल्का होता है। अज्ञान के साथ करने वाली तपस्या से कर्मों का भार बढ़ता ही जाता है। दूसरे तपस्वियों को लेकर उनके मन में विचार आ गया कि इन्हें लोग तपस्वी समझ कर पूजते हैं, अनेक भेंटें आदि चढ़ाते हैं, सम्मान देते हैं। मैं बहुत समय से अपमान झेलता आ रहा हूँ अब यदि सम्मान मिलेगा तो तपस्या करने से ही मिलेगा। भारी भरकम शिला के साथ वह धूप में खड़ा है, न भूख की चिंता, न प्यास की चिंता है। बस एक भाव रहता है कि लोग कहे देखो कितना बड़ा तपस्वी है। ये भी एक बहुत बड़ी प्यास है। इस प्यास के मारे वह अपनी शारीरिक भूख-प्यास को भी नहीं देख रहा है। उसे इतना सुख मिल रहा है क्योंकि अभी तक तो वो अपमान का बोझ झेलता रहा था। वह सोच रहा है पानी भी नहीं पीयूँगा, भोजन भी नहीं करूँगा, लोग कह रहे हैं देखो कितना बड़ा तपस्वी है। इतनी भारी शिला उठाकर तपस्या कर रहा है। यह सुन-सुनकर ही उसके अंदर भूख-प्यास की बाधा चली आ रही है। ऐसे समय पर ही मरुभूति भाई को ढूँढता-ढूँढता आता है। कहते हैं **अति**

सर्वत्र वर्जयेत्। अति स्नेह व प्रेम कभी-कभी बहुत घातक सिद्ध होता है क्योंकि उसमें वह अपने विवेक को खो देता है। भले ही वह सज्जन हो लेकिन अति स्नेह के कारण से वह भूल रहा है कि उसके भाई ने कितना बड़ा दुर्जनता का व्यवहार किया। उसने अपने घर में अपनी ही बहू के साथ में अन्याय किया, दुर्व्यवहार किया परंतु फिर भी उसका भाई के प्रति मोह नहीं जा रहा। मरुभूति ढूँढते हुए कमठ के पास पहुँचता है, जहाँ वह शिला लेकर खड़ा है। एक तरफ वह दुर्जनता की तस्वीर है और दूसरी तरफ सज्जनता की मूर्ति है। कई जगह सज्जन व दुर्जन के लक्षण आते हैं उनमें एक लक्षण ये भी है कि अगर आप दर्पण को क्षार से भी मलोगे, क्षार अर्थात् नींबू, सोड़ा, रीठा कोई भी तीखा पदार्थ पर वह दर्पण तो उज्जवल ही बनेगा। सज्जन व्यक्ति का यह स्वभाव है कि वह दुर्जन के द्वारा दु:ख पाने पर भी अपनी सज्जनता नहीं छोड़ता है, अपने अंदर की गुणवत्ता को वह और बढ़ाता चला जाता है। आप लोगों के अंदर भी सज्जनता का भाव तो रहता है परंतु इस तरह का नहीं रहता है। जब आपके सामने दुर्जन आता है तो आप सोच लेते हो, हम किसी से कम नहीं। आप थोड़ा सा ये ध्यान रखना कि उस दुर्जन को जब बाधा पहुँचाएँ, जब वह बाधा बन रहा हो। कभी-कभी ऐसा भी होता है कि उस दुर्जन के कारण से हमारे मन में अपने आप ही ऐसी परिणति आती है कि छोटी-मोटी बातों के कारण से वो हमें जितना दु:ख न दे पाए। हम उससे ज्यादा दु:ख दे देते हैं। हो सकता है उसने आपको एक गाली दे दी, चांटा मार दिया और आपने उस पर ऐसे औजार से वार कर दिया कि उसका हमेशा के लिए जीवन समाप्त हो गया। इतना तो आपको सहन करना सीखना है, अगर आपको सज्जन बनना है। भगवान् महावीर स्वामी ने जीने के व मरने के बहुत अच्छे तरीके बताए लेकिन हमें न जीने का तरीका आता है न मरने का तरीका आता है। महावीर स्वामी ने कहा है कि कभी-कभी अज्ञानता से कोई हमारे साथ दुर्व्यवहार करें तो पहले उसे थोड़ा सहन करो। प्रारंभ में ही यदि आप रिएक्ट करोगे तो आपके लिए वह घातक सिद्ध होगा।

आचार्यों ने कहा है कि हमारे लिए विरोधी हिंसा का त्याग नहीं है लेकिन विरोधी हिंसा पर भी कब उतरना जब हमें ये लगने लगे कि इससे हमारी जान जा सकती है। श्रावक को जब ये लगने लगे कि ये हम पर जान लेवा हमला कर रहा है, हमें स्वयं को बचाना है तब यदि आप कोई विरोधी कार्य भी कर दोगे, हिंसा भी हो जाएगी तो वो आपके लिए क्षम्य होगी। छोटी-मोटी

बात पर इस तरह का कार्य आपकी अज्ञानता कहलाएगी। थोड़ा सा सहन करना जब हम सीखेंगे तो हमारे अंदर की वह सज्जनता बढ़ती है और आत्मा की वह उज्जवलता व निर्मलता भी बढ़ती है। अपनी आत्मा भी उस शीशे की तरह निर्मल है, शुद्ध है लेकिन उस पर कर्मों की बहुत धूल छिपी है। इस धूल को छुड़ाने के लिए अगर सामने कोई ऐसी बात आ जाती है तो उस समय पर यदि हम क्षमा भाव रखते हैं, बहुत जल्दी गुस्सा नहीं करते हैं तो भी हमारी वह धूल उससे हट जाती है। उसी धूल को हटाने के लिए आपको हमेशा सोचना चाहिए कि हमारी आत्मा में निर्मलता कैसे बने। आपके दिमाग की नेगेटिव थिंकिंग कि ये हमारा शत्रु है, उसको भी पॉजीटिव बनाना है। इसके लिए जितनी सहनशक्ति है उससे काम लो, आज वह सहनशक्ति जितनी है अगले जन्म में वह और बढ़कर के मिलेगी, ये आपको पार्श्वनाथ भगवान् से सीखना है। पार्श्वनाथ भगवान् एकदम से पार्श्वनाथ नहीं बन गए। ये वह अवतार की प्रक्रिया नहीं है कि कोई भी अवतरित हुआ और उसने अपनी भगवत्ता का रूप दिखाया और चला गया। जन्मों-जन्मों तक ऐसी सज्जनता की साधना की जाती है, **समता की साधना** की जाती है तब जाकर वह परिणति उत्पन्न होती है कि बड़े-से-बड़ा दुष्ट भी अपने चरणों में झुक जाता है और अपनी हार मान लेता है।

दस भव तक जिसने बैर किया, पीड़ाएँ देकर मनमानी
फिर स्वयं कमठ ही उन चरणों में, झुक गया वह अभिमानी।

पार्श्वनाथ की जन्म–जन्म की तपस्या के कारण झुक गया। मूर्खता के कारण से कमठ के अंदर बैर भाव बढ़ने लगा। दो भाई हैं, एक सामने खड़ा है शिला लेकर के और दूसरा बैठा है उसके चरण में। अरे भाई, तूने कौनसा रूप अपना लिया, अब तुम वापस घर पर चलो। तुझे घर में पहले जैसी इज्जत और सब कुछ मिलेगा।

आर्त माने होता है ''दु:ख''। अंत-अंत में किसी के दु:ख को लेकर के नहीं मरना। हम अपने सुख के साथ में मरें। अपनी आत्मा के लिए, अपने ज्ञान–दर्शन के लिए, अपने चारित्र के लिए हमारा मरण हो, इतना आप ध्यान रखना अन्यथा तिर्यंच बनेंगे। आदमी को केवल उतने ही ज्ञान की जरूरत है जितने ज्ञान से उसके मरण की अंतिम परिणति सुधर जाए तभी आगे अच्छी परिणति भी बनेगी। यदि अंतिम परिणति बिगड़ गई तो ये मत सोचना कि ये आपकी पूजा, दान, तप, त्याग आदि कुछ काम नहीं आएगा। सब काम आएगा लेकिन अंत समय में अच्छे भाव रहेंगे तो वह अच्छी पर्याय के लिए काम आएगा। यदि अंत समय में अच्छे भाव नहीं रहे तो वह हाथी

बना, जंगल का राजा कहलाएगा। यदि पुण्य नहीं होगा, धर्म नहीं होगा तो ऐसे जीव कुत्ते-बिल्ली के रूप में उत्पन्न हो जाते हैं। ये सब पर्याय अपनी ही बनाई हुई है। हमें ये ध्यान रखना है हर आत्मा का जन्म किसी भी पर्याय में हो सकता है। इसलिए मन में अच्छे भाव बनाकर रखो, मन को ताकतवर बनाओ, कभी भी दुर्बल मत होने दो। महाराज, अब तो मन नहीं लगता, जी टूट गया है। अब तो जीने की तमन्ना नहीं रही है। यदि ऐसे दुर्बल मन के साथ मरण होगा तो समझना आर्तध्यान के साथ मरण हुआ।

अपना क्रोध छोड़ दो, मान जाओ पर शठ अपनी शठता छोड़ नहीं सकता। स्वभाव जन्म से होता है। जिनको बहुत क्रोध आता है उन्हें स्वयं ही सोचकर अपना क्रोध शांत करना होगा। कमठ में इतनी शत्रुता/शठता भरी है कि उसे ये नहीं दिख रहा कि मेरा भाई मेरे चरणों में बैठा है और प्रार्थना कर रहा है, क्षमा माँग रहा है। उसके दिमाग में ये सोच बन चुकी है कि इसी भाई के कारण से आज मेरा ये हाल हुआ, अगर ये चाहता तो राजा से कहकर के मेरे उस दंड को माफ करा सकता था। ऐसी गलतफहमी उसके अंदर बैठी है और गलतफहमियाँ उनके अंदर ज्यादा होती है जो क्रोध भाव को धारण करते हैं क्योंकि क्रोध एक **नेगेटिव फेक्टर** है। क्रोधी व्यक्ति किसी के लिए भी गलतफहमी पाल लेता है और थोड़ा सा भी उसका कहीं अपमान होगा तो वो बहुत जल्दी सोच लेगा कि ये मेरा दुश्मन है ही, वो ऐसी गलत धारणा को छोड़ नहीं पाता है। क्रोध के साथ में और भी जितने नेगेटिव इमोशन होते हैं वो सब भी उसके साथ में जुड़ते चले जाते हैं। क्रोध करने वाला व्यक्ति शंकालु/भयभीत होता है। गलतफहमियों में जीने वाला होता है। जो व्यक्ति इस बात को समझ लेता है वह अपने अंदर के क्रोध पर काबू पाना शुरू कर देता है। क्रोध यदि बना रहेगा तो आपके अंदर अपने परिवार, भाई-बहन, चाचा-ताऊ के प्रति गलतफहमियाँ हो सकती हैं। धीरे-धीरे वे शत्रुता का रूप ले सकती हैं। एक भाई दूसरे से शत्रुता रख रहा है, उसे ये नहीं नजर आ रहा कि वो सामने बैठा है, मुझे वापस लेने आया है, मुझे क्षमा कर रहा है। वह गुस्सा करके उसके ऊपर ही वह शिला पटक देता है। उस मरुभूति का वहीं पर देहांत हो गया। मरने के बाद उसे हाथी की पर्याय मिली। यह पुनर्जन्म का विज्ञान है, इसे आज वैज्ञानिक भी मानने लगे हैं। आदमी के मरने के समय पर जैसे भाव होंगे उसके अनुसार ही उसके आगे का जन्म होगा।

श्लोक–१३

देहे स्वबुद्धिरात्मानं युनक्त्येतेन निश्चयात्।
स्वात्मन्येवात्मधीस्तस्माद्वियोजयति देहिनम्।।१३।।

मिथ्यात्व भाव वश हो वह मूढ़ जीव, है आत्म–बुद्धि रखता तन में सदीव।
माता, पिता, सुत, सुता वनिता व भ्राता, ये हैं यहाँ 'मम' सभी इस भांति गाता।।१३।।

जो व्यक्ति शरीर में आत्मबुद्धि रखता है वह अपनी आत्मा को देह से बाँध लेता है। मोहवश वह अपने व दूसरों के शरीरों में मित्र, भाई, पुत्र, स्त्री, माता–पिता की कल्पना करता रहता है और राग–द्वेष भाव के कारण दु:खी रहता है। पूर्व–पूर्व जन्म में इस मेरे–तेरे पन का खूब अभ्यास हो जाने से वही संस्कार अगले जन्म में अपने आप उत्पन्न हो जाते हैं।

पूर्व कर्मों के फल

आचार्यों ने कहा है कि जिसके अंत समय में आर्तध्यान की परिणति होगी वह नियम से तिर्यंच बनेगा। आपने मेरी भावना तो पढ़ी होगी। इष्ट वियोग अनिष्ट योग में सहनशीलता दिखलावे....। जब हमारा किसी इष्ट से वियोग हो जाता है या अनिष्ट का संयोग हो जाता है। हमारे मन में यही भाव चलता रहता है कि वह मुझे कब मिलेगा, इस मिलने-मिलने के चक्कर में यदि आपका मरण हो गया तो नियम से तिर्यंच आयु में जन्म होगा। आर्तध्यान से मरण होने पर भी सज्जनता का भाव कि मेरा भाई घर छोड़कर चला गया, दूर हो गया है और भाई ने ही मार डाला, वो हाथी बन गया। सुन लो, समझ लो इन दृष्टांतों को अच्छे से दिमाग में रख लो। किसके लिए जीना है, हमें उसके लिए जीना है लेकिन मरना किसके लिए है। जीने के लिए हम किसी के साथ जी लें पर जिंदगी में एक बात ध्यान रखना कि मरना तो अपने लिए मरना। अपने लिए मरोगे तो धर्मध्यान के साथ मरना आएगा, वो समाधि मरण कहलाएगा। दूसरे के लिए मरोगे तो आर्तध्यान के साथ

मरोगे व संसार के लिए मरोगे। आदमी आज इतना नहीं समझ पा रहा है कि समाधि मरण क्या होता है। सिर्फ इतनी सी बात का नाम समाधिमरण है कि अपने लिए मरना। जब तक हम दूसरों के लिए मरेंगे तो हमें ऐसे ही संबंध मिलते रहेंगे, जिसके कारण हमें दूसरों की ही चाहत बनी रहेगी और संसार बढ़ता रहेगा। कितने लोग तड़प-तड़पकर मर जाते हैं किसी के प्रेम में, प्यार में। एक-दूसरे के साथ मर जाते हैं या उनकी हत्या कर दी जाती है क्योंकि दूसरे उन्हें साथ देखना नहीं चाहते। ऐसे मरने वाले लोग सब तिर्यंच परिवार में उत्पन्न होंगे। जब तुम्हें गली में कुत्ता-कुतिया दिखाई देती है तो ध्यान रखना ये पूर्व जन्म के प्रेमी हैं। कुछ पुण्य होगा तो हाथी बन जाएगा।

मरुभूति के अंदर सज्जनता थी, कुछ अच्छे भाव थे इसलिए सल्लगी वन में बहुत बड़ा मदमस्त हाथी बना। जंगल में जितने भी हाथी थे, सब उसको अपना सरदार मानते थे। पुण्य है तो कहीं न कहीं फलेगा। पुण्य होगा तो सिंह/शेर/हाथी बनोगे अन्यथा कुत्ता/बिल्ली आदि बनोगे। मरते समय जो भाव होंगे वैसा जन्म मिलेगा ये भगवान् महावीर ने बहुत बड़ा विज्ञान बताया है। उससे हमेशा जाग्रति रहेगी, जियो किसी के लिए भी पर मरो तो **अपने लिए मरो।** ये सूत्र ध्यान रखना। जिस दिन तुम अपने लिए मरना सीख गए समझ लेना आगे जन्म–मरण की संगति अपने आप अब कम होने वाली है। वह पार्श्वनाथ भगवान् का जीव अभी अपने लिए नहीं मरा। भाई के लिए मरा तो हाथी बन गया। मरुभूति की पत्नी उसके वियोग में तड़प के मर गई तो वो भी उसी जंगल में हथिनी बन गई। ये संसार बहुत खुली किताब है। जैसे परिणाम करोगे वैसे ही परिणतियाँ मिलती हैं और परिणतियाँ हम भोग कर आए हैं। आज हम उन परिणतियों पर अपने घूंघट डालते हैं क्योंकि हमें अज्ञानता पसंद है। हमें सही भावों से जीने में आज भी हिम्मत नहीं पड़ती। हम उन परिणतियों को भी सामने देखकर सुनना/ समझना नहीं चाहते। कौन किस रूप में कहाँ से निकलकर कहाँ आ गया। गाय, भैंस, ऊँट, बकरी ये सब जीव कहाँ से आ रहे हैं। ये सब जीव जो अपने जीवन में किसी से प्रेम के कारण, दु:ख के कारण तड़प कर मरते हैं उन्हें तिर्यंच पर्याय मिलती है। मरुभूति को भ्रात स्नेह की वजह से तिर्यंच/हाथी पर्याय मिली और उसकी पत्नी को पति स्नेह में तड़प कर मरने से हथिनी पर्याय मिली। अपने ये कर्म वहीं ले जाएँगे, तुम जिसको चाहोगे। ये आत्मा के साथ में कर्मों का ऐसा संयोग है। हमारे कर्म हमें उसी जगह पर ले जाएँगे जहाँ हमारी आसक्ति बनी हुई है व तृष्णा भाव रखे हैं। वे दोनों पहले मंत्री और मंत्राणी के रूप में रह रहे थे।

अब हाथी और हथिनी के रूप में रहने लगे। पुराना जन्म कुछ याद नहीं रहता। जिस जन्म में रहते हैं उसी में वह मदमस्त रहता है। वह हाथी भी पूरे जंगल में चर्चा का विषय है।

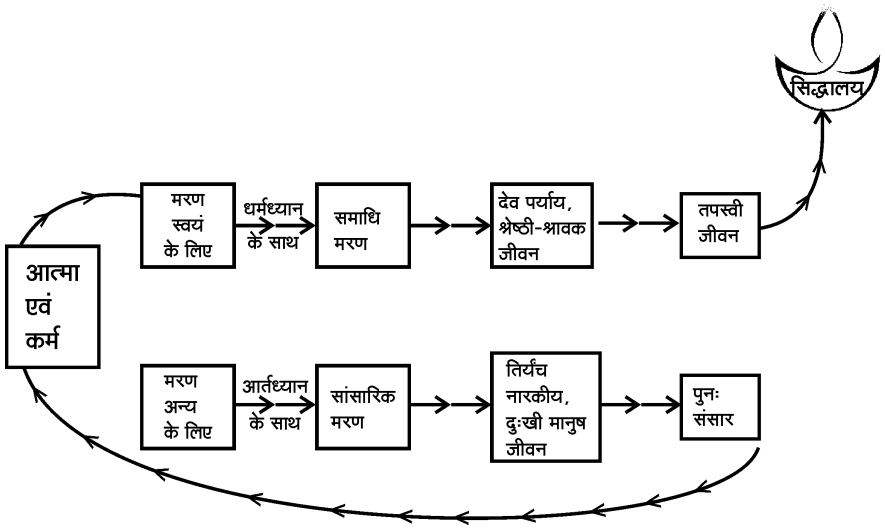
इधर राजा अरविंद को एक मुनि महाराज के दर्शन होते हैं। वह मुनि महाराज से कहता है कि आप तो अंतर्यामी हो। एक बात मेरे मन में बहुत समय से चल रही है। मेरा मंत्री था मरुभूति, वह अचानक कहीं चला गया, उसकी कोई खबर नहीं है। अगर हमें किसी भव्य आत्मा की किसी भी रूप में चिंता है तो वह तुम्हारे लिए कल्याण का कारण है। मुनि महाराज अपने अवधिज्ञान से बताते हैं कि उस को तो उसके भाई ने मार डाला, वह हाथी बनकर जंगल में घूम रहा है। वह हैरान हो गया, ऐसा भी हो जाता है। आदमी मरकर के हाथी भी बन सकता है। राजा अरविंद मुनि महाराज के पास से चला गया पर भीतर ही भीतर उसके मन में बात चलती रही कि क्या आदमी हाथी बन जाता है।

तुम्हें जैन होकर भी इतना विश्वास नहीं होगा जितना कोई अजैन कर लेगा क्योंकि आत्मा के परिणामों को किसी ने बाँधकर नहीं रखा है। उसके मन में भी वैराग्य कभी न कभी घटित हो सकता है। वह राजा एकाग्रता से चिंतन कर रहा है। उसके मन में धूप-छांव, धूप-छांव चल रही थी। एक दिन वह अपने महल के अंदर खड़ा बादलों की ओर देख रहा था। बादलों को देखने में आपको अजीबोगरीब आकृतियाँ देखने को मिलेगी। उसमें कभी मंदिर, पहाड़- शिखरजी/गिरनार के पहाड़ हो, ऐसा लगता है। राजा को बादलों में एक आकृति दिखाई दी। महलनुमा मंदिर जैसा बना दिखा तो उसने सोचा कि हम इसे नोट कर लें तो वह कागज आदि लेने नीचे गया और ऊपर वापस आया तो वो बादल वहाँ थे ही नहीं, चले गए। कौन ले गया, हवा उन्हें उड़ा ले गई। वो बादल देखते-देखते ही विलीन हो गए और उनके मन में ऐसा विचार आया कि अरे देखते-देखते हमारे सपने उड़ गए, हमारा जीवन भी ऐसा ही चला जा रहा है। देखते–देखते हमारे सामने से मंत्री चला गया, उसकी पत्नी चली गई। ऐसे ही हम भी चले जाएँगे। कौन हमें जानने वाला होगा और उसके मन में वैराग्य भाव उत्पन्न हो गया। वह घर छोड़कर उन्हीं मुनि महाराज के पास जाकर दीक्षा ग्रहण कर ली। वह कमठ जैसा तपस्वी नहीं बना। वह ज्ञान पूर्वक सम्यक्दर्शन के साथ मुनि महाराज से दीक्षा धारण कर तपस्या/ध्यान करने लगा और उनके अंदर भी अपने ज्ञानावरण कर्म का क्षयोपशम हुआ और उन्हें भी अवधिज्ञान की प्राप्ति हो गई।

ये तय कर लो कि हमें आर्तध्यान के साथ नहीं मरना। (कुछ हो या ना हो) स्वयं के सुख

के साथ मरना है। मरण समय पर जो साधु या श्रावक **समाधिमरण** लेता है, वह कुछ भी नहीं खाता-पीता है परंतु उसका मन इतना स्ट्रांग होता है कि कोई उसे दु:खी नहीं कर सकता। इतना स्ट्रांग जब हमारा मन बनेगा तो हमारे अगले जन्म की तैयारी भी अच्छी होगी। इसलिए एक भावना करो-

कुछ हो या ना हो, मेरा मन दुर्बल ना हो
प्रेम भाव से क्षमा भाव से, समतामय मेरा स्वभाव हो
गुणीजनों के दर्शन से नित, मंगल मंगल हो
कुछ हो या ना हो, मेरे मन में घृणा ना हो
कुछ हो या...
जो भी मिला है मुझको जग में, निर्मल-निर्मल लगा है मन में-२
काम रहित जो, क्रोध रहित जो, ऐसे गुरु की भक्ति नित हो
कुछ हो या ना हो, मन गुरु निंदक ना हो
कुछ हो या...
मोक्ष मिलेगा मिलता रहेगा, धर्म पलेगा फलता रहेगा-२
अहंकार तज, कुटिल भाव तज, मन तुम सरल रहो
कुछ हो या ना हो, मेरे मन में छल ना हो
कुछ हो या...



श्लोक–१४

देहेष्वात्मधिया जाताः पुत्रभार्यादिकल्पनाः।
सम्पत्तिमात्मनस्ताभिर्मन्यते हा हतं जगत्।।१४।।

आभूषणादिक जड़ात्मक नश्यमान, मोही इन्हें स्वयम के सुख हेतु मान।
उत्कृष्ट स्वीय मणि को वह व्यर्थ खोता, लो! कांच में रम रहा, दुख बीज बोता।।१४।।

भगवान् केवली की देशना चार अनुयोगों के माध्यम से हम लोगों को ज्ञान में आती है। **चार अनुयोगों** में जीव तत्त्व आदि को इस ढंग से संजोया है कि हम अगर किसी भी अनुयोग को पढ़ें तो हमारे अंदर चेतना जाग्रत होती है। चाहे वह प्रथमानुयोग हो या करणानुयोग या चरणानुयोग हो या द्रव्यानुयोग हो। ये चार अनुयोग चार वेद कहलाते हैं। इन्हें हम चतुर्वेद के नाम से जानते हैं। जैन दर्शन में चार वेद इन चार अनुयोगों को कहा जाता है। उन अनुयोगों के माध्यम से जो हमें ज्ञान प्राप्त होता है वो ज्ञान सम्यक्त्व की उत्पत्ति भी करता है और प्राप्त सम्यक्त्व की वृद्धि भी कराता है। सम्यग्ज्ञान के माध्यम से ही आत्मा के अंदर उसके गुणों की विशुद्धि होती है। सम्यग्ज्ञान जैसे-जैसे बढ़ता है, वैसे-वैसे हमारी आत्मा पवित्र होती जाती हैं। आत्मा की पवित्रता उन कर्मों की धूलि के हटने के कारण से होती है और कर्मों की धूलि का हटना आत्मा के अंदर उठने वाले पवि त्र भावों से होता है। उस पवित्रता को निरंतर बनाए रखने के लिए एवं उसको अपने अंदर उत्पन्न करने के लिए कभी-कभी हमें अनेक संयोगों की भी आवश्यकता पड़ती है। प्रभु के दर्शन से हमारे अंदर पवित्रता आती है और फिर हमें अपने आप में ज्ञान में लगने लग जाता है। जैसे ही हम प्रभु का दर्शन करते हैं। एक-एक स्तुति का स्वर अपने आप मुखरित होने लग जाते हैं।

प्रभु पतित पावन मैं अपावन चरण आयो शरण जी, यो विरद आप निहार स्वामी मेट जामन मरण जी। जैसे ही ये स्वर मुखरित होते हैं, हमारी दृष्टि में सब कुछ आने लग जाता है। प्रभु क्या है और हम क्या हैं ये भी दिखने लग जाता है। जो भी कहा जाए उसका हमें अर्थ मालूम होता है

तो भीतर से, अंतर्चेतना से जाग्रति उत्पन्न होती है कि हम क्या है और हमें क्या होना है। प्रभु आप पतित पावन हैं, इसके दो अर्थ होते हैं– आप पतितों को पावन करने वाले हैं या प्रभु आप भी पतित से ही पावन बने हैं। भगवान् भी कहीं ऊपर से उतरकर पावन रूप में ही आए हैं क्या?नहीं, वो इसी धरती पर रहकर के, हम जैसे इंसानों की तरह रहकर के पतित से उन्होंने अपना जीवन पावन बनाया और पतन से उत्थान की ओर जाने का मार्ग हर तीर्थंकरों ने हमें दिखाया। इसलिए भक्त भगवान् को देखकर ये भावना करता है कि प्रभु आप पतित से पावन हुए। मैं तो आज भी अपावन हूँ। प्रभु आप कभी पतित थे, कभी अपावन थे, आपका 'पास्ट' कभी 'इंप्योर' था, पर आज तो आप **'प्योर'** हो गए। हमारा तो वर्तमान समय अपवित्र है, 'इंप्योर' है। पर हम हमेशा अपावन क्यों रहेंगे। भक्त हमेशा इस प्रक्रिया से गुजरता है कि उसे कभी न कभी, किसी न किसी की शरण में जाना ही पड़ता है। जितने भी तीर्थंकर बने उन्हें भी इस प्रकार से भगवान् की शरण मिली। उनका जीवन भी धीरे-धीरे ही पावन हुआ। एकदम से किसी भी अंतरात्मा की धूलि कभी भी साफ नहीं हो सकती। एकदम से कोई मोक्षमार्ग पर चलने भी नहीं लगता। धीरे-धीरे पुरुषार्थ बढ़ता है, आत्मा की पवित्रता बढ़ती है और हमें मोक्ष मार्ग की प्राप्ति होती है। जितने भी तीर्थंकर आज तक हुए हैं जिनका कल्याणक हम मना रहे हैं, वे भी कभी बहुत पतित थे।

रत्नत्रय धर्म की उपासना

भाई कमठ के हाथों मरुभूति देहांत हो गया। मरकर अगली पर्याय में वे हाथी बने और जंगल में घूम रहे हैं। कोई भी नहीं जान रहा कि अगले ८-९ जन्म के बाद वे तीर्थंकर बनने वाले हैं। पूरे वन में वह हाथी ऐसे घूम रहा है जहाँ से निकलता है वहीं के वृक्षों को तहस-नहस कर देता है, बर्बाद कर देता है क्योंकि बहुत मद उसके अंदर है। पूरे जंगल में लोग उसको जानते हैं और खलबली मची हुई है। राजा अरविंद को वैराग्य हो गया, दीक्षित होकर वे मुनि महाराज के रूप में अकेले भ्रमण करते-करते वे एक बार सम्मेद शिखर की यात्रा करने जा रहे थे। साथ में अनेक श्रावक लोग हैं, जो महाराज को यात्रा करा रहे हैं व स्वयं भी कर रहे हैं। ये चतुर्थ काल के ८-९ भव पहले की बात है। सृष्टि अनादि से चल रही है और इसी में हर जीव का परिणमन चलता रहता है। राजा अरविंद मुनि रूप में विहार कर रहे हैं, जंगल, गाँव आदि को पार कर रहे हैं। पहले

भी श्रावक मुनियों को यात्रा कराते थे, उनकी यात्रा में सहयोगी बनना बहुत पुण्य का काम है। साथ में यात्रा करना और बड़े पुण्य का काम है। धर्म की वृद्धि तब होती है जब हमारे साथ में कोई धार्मिक भी होता है। आप कभी किसी मुनि महाराज को यात्रा कराना, किसी तीर्थ तक ले जाना, उनके साथ यात्रा करने पर आपको लगेगा कि आपने अपने जीवन में कोई बहुत बड़ी उपलब्धि हासिल की है। हमने रत्नत्रय धर्म की साक्षात् उपासना कर ली, भले ही हम उसे अपनी आत्मा में धारण नहीं कर पाए हो। इससे आपके अंदर जरूर रत्नत्रय की भावना उत्पन्न होगी। अभी आपकी आत्मा के गुण, कर्मो की धूलि में दबे हुए हैं। सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र। इन गुणों की उपासना के लिए हमें कभी न कभी, किसी न किसी रूप में संयोग प्राप्त करना होगा। वह संयोग हमें किसी भी रूप में मिल जाए। जितना ज्यादा तुम मुनि महाराज के चरणों में बैठोगे, साथ में रहोगे, उतनी ज्यादा तुम्हारी कर्म धूलि समाप्त होगी, आत्मा में पवित्रता आएगी और जितने ज्यादा परिवार व गृहस्थी को समय दोगे उतने ही ज्यादा कर्म के बंध बढ़ते जाएँगे व आत्मा अपवित्र होगी। आत्मा को शुद्ध करने के लिए गुरुओं के सान्निध्य की बहुत आवश्यकता रहेगी और बुद्धिमान श्रावक ऐसे संयोगों की हमेशा चाह करता है। हर श्रावक के अंदर ये भाव रहता है कि मैं जो कमा रहा हूँ, अर्जित कर रहा हूँ, इसका धर्म में कहीं न कहीं उपयोग हो जाए, धार्मिक कार्य में लग जाए और जो न्याय से कमाता है उस श्रावक के अंदर हमेशा ये भावना रहती है कि हमारी रोजाना की आमदनी में से कुछ न कुछ प्रतिशत धर्म के लिए व धर्म के काम में आ जाए।

ऐसी भावना रखने वाला धार्मिक व्यक्ति है वह जानता है धर्म क्या है, कहाँ होता है, किससे साथ होता है और वह कैसे प्राप्त किया जाता है। ऐसा अनादिकाल से चला आ रहा है, चतुर्थ काल से पहले भी जब इस धरती पर कोई काल चल रहा होगा, उस समय पर भी इस प्रकार से लोग मुनि महाराज के सामने उनके दर्शन करने के लिए जाते हैं, यात्रा कराते हैं, स्वयं करते हैं। ऐसे ही मुनि अरविंद के साथ लोग जा रहे हैं और उस जंगल से गुजर रहे हैं। संयोग कभी-कभी बन जाते हैं और उन संयोगों में कुछ न कुछ पूर्व पर्याय का ऐसा लेन-देन रहता है, व्यवहार रहता है जिसके कारण से वो कदम भी उसी ओर जाते हैं। आप ये नहीं समझना कि मुनि महाराज मंदसौर में आ गए। कहीं अचानक से, कहीं से आ गए। महाराज का जन्म कहीं ओर हुआ था, दीक्षा कहीं ओर हुई थी और आ गए मंदसौर। ध्यान रखना कि कहीं न कहीं तुम्हारे साथ भी अपना कोई न कोई संबंध रहा होगा और हमारा भी तुमसे कोई संबंध रहा होगा। वह लेन-देन व व्यवहार किसी

रूप में रहा होगा, तभी तुम्हारे अंदर ये भक्ति भावना बनी और हमारे अंदर भी यह भाव बना कि हमें यहाँ रुककर धर्मध्यान करना है व कराना है।

इस पंचम काल में मुनि महाराज धर्मध्यान करते भी है और कराते भी है।

श्रावक ऐसा होना भी चाहिए कि वह मुनि महाराज के अनुसार चलने को तैयार हो। ऐसे श्रावक का दो-चार भव में कल्याण निश्चित है, मोक्षमार्ग अपने आप बनता चला जाएगा।

उसी जंगल में मुनि महाराज, श्रावक व मद से भरा हाथी है। चारों ओर खलबली मची हुई है। हाथी तहस-नहस करते हुए आ रहा है और सब श्रावक इधर-उधर भाग रहे हैं डर के मारे। परंतु मुनि महाराज एक वृक्ष के नीचे एक शिला पर बैठे हुए हैं ध्यान लगाकर। वह हाथी मुनि महाराज के सामने आ गया और मुनि महाराज को देखकर उसका मन हुआ कि उन्हें भी उठाकर फेंक दे, पूरा भाव कर लिया और जैसे ही उसने अपनी सूंड मुनि महाराज को उठाने के लिए लगाता है उसकी आँखें मुनि महाराज के सीने पर पड़ती है। उस सीने पर एक श्रीवत्स का चिह्न होता है, उसे देखकर वह सोचने लग जाता है कि इन्हें हमने कहीं देखा है और ये विचार आते ही उसे जाति स्मरण हो जाता है। पूर्व भव की वह पर्याय याद आ जाती है। अपने परिचित हैं, ये राजा अरविंद हैं जिनके नेतृत्व में हम मंत्री पद को संभालते थे। इनका हमारे ऊपर बड़ा उपकार है और हमें भी इनसे बहुत प्रेम था। जाति स्मरण होते ही वह पागल सा हाथी एकदम शांत होकर बैठ गया और आँखों से अश्रुधारा बह निकली। सब सोच रहे थे कि वह मुनि महाराज को मार देगा पर वह उनके चरणों में बैठ गया। मुनि महाराज का ध्यान टूटता है, हाथी को अपने पास देखते हैं तो सोचते हैं कि ये अभी तक उधम मचा रहा था अब शांत होकर कैसे बैठ गया। **अवधिज्ञान** से वे देखते हैं कि ये वही हाथी है जो पहले मरुभूति था, अब हाथी बन गया है। उन्होंने अपने अवधिज्ञान से जान लिया कि आत्मा भव्य है लेकिन अपने भाई के मोह के कारण, उस दु:ख के कारण मरने से ये हाथी बना है। उसे देखकर उनके मन में दया/करुणा उत्पन्न हो गई। पंचेन्द्रिय जीव है, मन सहित है, उसके अंदर भी सब प्रकार का ज्ञान हो गया, उनमें भी विचार करने की क्षमता होती है। वह बार-बार अपनी सूंड पटक-पटककर उन मुनि महाराज के चरणों में लोट रहा है। पहले उसकी आँखों से मद झड़ा करता था अब आंसु बह रहे हैं। वह कुछ कह नहीं सकता पर बार-बार सूंड पटककर कुछ कह रहा है, नमोस्तु भी कर रहा हो, चाह रहा है मुनि महाराज कुछ तो कहो। मुनि महाराज उसके भावों को समझकर कहते हैं।

गजराज तूने क्या किया। तू कितना अच्छा था, सज्जन था, आज तेरी ये हालत (दुर्गति) हो गई, जानता है जब तेरा मरण हुआ, तेरे भाई ने तुझ पर पत्थर फेंका, दु:ख से मरा। तेरे भाई ने तुझे कुछ नहीं दिया, तेरे ही कर्म तुझे सब कुछ दे रहे हैं। अपने उन कर्मो को तू आज भी संभाल सकता है। देख, दुनिया में कोई किसी का सगा नहीं है। तेरी पत्नी तेरे दु:ख के कारण से मरी, आज हथिनी बनी है, तेरे पीछे घूम रही है। इस संसार में आदमी मनुष्य से तिर्यंच बन जाता है और तिर्यंच से मनुष्य बन जाता है। हर व्यक्ति कर्म के कारण से अपनी पर्याय को बदलता रहता है। तू विचार कर, आज तेरे पास में थोड़ा सा ज्ञान है। इस पर्याय में भी तू अपनी परिणति को सुधार सकता है, ऐसे कर्म कर सकता है जो मनुष्य पर्याय में किए जा सकते हैं जो तू पिछली मनुष्य पर्याय में नहीं कर पाया तेरा अकाल मरण हुआ था। मुनि महाराज ने उसे समझाया देख आज से अपने मन में विचार कर लें। पंच परमेष्ठी का हम स्मरण करेंगे। पाँचों परमेष्ठी के लिए श्रद्धा रखते हुए किसी भी जीव को सताएँगे नहीं, मारेंगे नहीं, यहाँ तक ये जो वृक्ष है ये एकेंद्रिय जीव हैं इनको भी उखाड़ेंगे नहीं। हम अपनी शक्ति का दुरुपयोग नहीं करेंगे। वह सब बात सुन रहा है ध्यान से, मानो उसके अंदर **क्षयोपशम लब्धि, विशुद्धलब्धि, देशनालब्धि** सब एक साथ प्रकट हो गई। इन सब लब्धियों को प्राप्त करके वह अपने अंदर से सम्यक् भावों को भी प्राप्त कर लेता है। हाथी की पर्याय में उसे सम्यग्दर्शन मुनि महाराज के चरणों में हो जाता है। महाराज ने कहा कि अणुव्रतों का पालन भी करना है। किसी को मारना नहीं, किसी के साथ छल-कपट करना नहीं, किसी की कोई चीज उठाकर के ले जाना नहीं, अपने पास में कुछ भी रखना नहीं, अपनी हथिनी को छोड़कर किसी दूसरी हथिनी से संबंध रखना नहीं। सब सुना उसने। मुनि महाराज द्वारा दिए गए ५ अणुव्रतों के पालन का उसका मन तुरंत हो गया, कोई उसने ढील नहीं की। जब आत्मा में काललब्धि की परिणति उत्पन्न होती है और काललब्धि निकट आ जाती है तब आदमी सब कुछ समर्पण के साथ स्वीकार कर लेता है। जब तक काललब्धि नहीं आती, तब तक आदमी अहंकार में सर उठाकर इधर उधर घूमता है, गुरुओं की बात का भी तिरस्कार कर लेता है। उनका अनादर कर देता है क्योंकि संसार अभी बहुत बड़ा हुआ रहता है। वह संसार जिस पर्याय में घट जाए, उसी पर्याय में अगर हमें ऐसे सान्निध्य मिल जाए तो उसी समय में देशना लब्धि करण लब्धि में ढल जाती है, उनमें दर्शन की पात्रता आ जाती है, वह संसार घटकर के चुल्लू भर रह जाता है। वह हाथी की पर्याय में घटित हो रहा है।

श्लोक–१५

मूलं संसारदुःखस्य देह एवात्मधीस्ततः।
त्यक्त्वैनां प्रविशेदन्त–र्बहिरव्यापृतेन्द्रियः।।१५।।

संसार का प्रथम कारण देह–नेह, है रुद्ध हाय! जिससे यह बोध गेह।
व्यापार–त्यागद्रुत इन्द्रिय–ग्राम कारे, हो आत्म में रत अतः यदि लोग सारे।।१५।।

कर्म विपाक के कारण जिसमें जीव निरंतर भ्रमण करता है वह संसार है। इस संसार में जन्म, जरा, मृत्यु आदि सैकड़ों दु:ख है। अपने आत्मस्वरूप को भूलकर विषयों में, रागद्वेष से स्वयं को डुबोकर मैंने क्या कर लिया। अपने पूर्व जन्म की याद कर के, मुनिराज से संबोधन प्राप्त कर वह हाथी मुनिराज के सामने बैठा रो रहा है, इतना रो लिया, इतना रो लिया मानो उसने अपने पूर्व जन्म के अनेक भव के कर्म रज को धो लिया। अब वह मुनि महाराज के पास सूंड उठा-उठाकर के कह रहा है कि महाराज आपने हमें हित का जो उपदेश दिया है वह हमें पूरा का पूरा स्वीकार है। मुनि महाराज शिला पर बैठे हैं, वह मुनि महाराज के तीन चक्कर लगाकर के बैठता है। मुनि महाराज उसको आशीर्वाद देते हैं। सम्यक्दर्शन, सम्यग्ज्ञान व सम्यक्चारित्र की बात उसको समझाकर विहार कर गए। अकेला जंगल में अब वह किसी भी प्राणी की हिंसा नहीं करता। महाराज ने कहा था कि अपनी स्त्री के सिवाय किसी को भी नहीं देखना। पर अब वह सोचता है कि अपनी स्त्री को भी क्या देखना, वह उससे भी संबंध छोड़ देता है। कोई उसके अंदर परिग्रह का भाव नहीं, किसी भी जीव को सताना नहीं, ऐसा गऊ पशु के समान सज्जन होकर के रहता है। अगर कहीं सूखे पत्ते मिल जाते हैं तो उनको खा लेता है। पानी बह रहा हो तो बहते हुए शुद्ध पानी को पी लेता है। जहाँ पर दिखाई पड़े कि जीव पड़े हैं, पत्ते पड़े हैं तो उन पर अपना पैर नहीं रखता है, कीचड़ पर पैर नहीं डालता क्योंकि उसे पता है उसमें अनेक त्रस जीव हो सकते हैं। वह अपना पूरा जीवन इसी तरह निकालता है। अब हाथी जैसा शरीर और खाने के लिए सूखे-सूखे पत्ते वो

भी कोई लाकर दे देता है व थोड़ा सा पानी पीकर अपना जीवन चला रहा है। उसकी काया धीरे-धीरे ढीली पड़ गई। हाथी को खाने को न मिले तो क्या होगा, वह शिथिल हो गया। दिन में एक बार सूखे पत्ते खाता, शाम को केवल पानी पीता है।

एक बार उसे प्यास लगी। वह कमजोर हो चुका था, शाम को पानी पीने उसे कोई तालाब नहीं मिला। उसके साथ रहने वाले दूसरे हाथी व उनके बच्चे उसके लिए पानी सूंड में भरकर ला लाकर दे देते हैं। जीव अनेक प्रकार से सेवा कर लेते हैं व सेवा का पुण्य कमा लेते हैं। एक व्रती की सेवा करने से भी उतना पुण्य मिलता है कि अनुमोदना व सेवा के द्वारा आपको स्वर्ग की प्राप्ति हो सकती है। उस तिर्यंच पर्याय में हाथी का परिवार, उसके बच्चे सब उसके व्रतों में सहायक बन रहे है। अंत में जब उससे चला नहीं जा रहा तब वह खिसकते-खिसकते नदी के पास आ जाता है और पानी पीने नदी के किनारे उतरा तो दलदल में उसका पैर फंस गया। हाथी दुर्बल हो चुका था, फंसे पैर को निकाल नहीं पा रहा, उसके अंदर शक्ति नहीं बची। वह वहीं खड़ा रह गया, उसे लगा अब हमारा यहाँ से निकलना मुश्किल है। उसी समय पर वह कमठ का जीव जो मरकर के बना था, जहरीला सर्प। दुष्ट लोग ऐसी ही पर्यायों में जन्म लेते हैं। पहले भी सर्प की तरह जीवन जीते थे, दूसरों को मारते हैं, डंसते हैं, फुंफकारते हैं, जहर देते हैं और बाद में भी वह इसी प्रकार की पर्याय में उत्पन्न होते हैं। कमठ का जीव सर्प की पर्याय में उत्पन्न हुआ और सब संयोग मिल जाते हैं। कहीं भी होगा, अपना अपने पड़ोस में ही जन्म होगा। स्नेही होगा, रागी होगा, तुम्हारा पूर्व जन्म का मित्र भी होगा तो वो भी तुम्हें कहीं न कहीं मिल जाएगा क्योंकि कर्मों के कारण से वह जीव उन्हीं स्थानों पर जाकर के उत्पन्न होते हैं, जहाँ पर शत्रुता/मित्रता किसी भी रूप में हो सकती है। रागी या द्वेषी किसी भी प्रकार की परिणति हो सकती है।

समाधिमरण क्या है?

उसी जंगल में उस हाथी को वो राजा अरविंद मुनि महाराज के रूप में मिल गए और उससे उन्होंने धर्म ध्यान प्राप्त कर लिया, सम्यक्दर्शन प्राप्त कर लिया। उसी जंगल में शत्रु सर्प के रूप में मिल गया। जिनसे अपनने अपना संबंध बनाया है, उन संबंधों को भी भोगना पड़ता है। जो कर्म अपनने बाँधे हैं उन कर्मों का फल भी भोगना पड़ता है। अगर हम कर्म समता के साथ भोग लेते हैं तो वे कर्म उतना ही फल देकर के, उद्विग्न हो जाते हैं, उद्वेलित हो जाते हैं, डर जाते हैं। जब

हम उन कर्मो के साथ अपने मन को परेशान कर लेते हैं तो आचार्य कहते हैं कि वो कर्म फिर बंध जाते हैं फिर हमारे लिए परेशानी का कारण बन जाते हैं। ऐसी ही परिणति कुछ हाथी के अंदर आ गई। वह हाथी भी विचार कर रहा है कि मैं यहाँ फंस गया। उस समय में वह सर्प भी उसी दलदल में हाथी के पास आ गया और हाथी को देखकर उसके अंदर अपने आप क्रोध उत्पन्न हो गया। पूर्व जन्म का बैर होता है तो वह देखकर ही मारने का भाव हो जाता है। सर्प ने उसी समय पर उसे डंस लिया। वह दुर्बल हाथी सोचने लगा कि पहले ही गड्ढे में फंसा था, अब सर्प ने और डंस लिया तो उसने मन में विचार कर लिया कि मेरे चारों प्रकार के आहार का त्याग और वह णमोकार मंत्र पढ़ने लगा। मुनि महाराज उसको सब कुछ समझा के गए थे। वह उस शरीर को छोड़ने के लिए तत्पर हो गया, इसी का नाम है समाधिमरण। तुम्हें अभी ये ही नहीं मालूम कि मनुष्य कैसे समाधिमरण करते हैं। ये ध्यान रखना कि तिर्यंच भी समाधिमरण करते हैं। पशुओं का समाधिमरण इसी प्रकार से होता है। जब लगे कि हमारी मौत हमारे सामने खड़ी है। मृत्यु अब टल नहीं सकती है, उस समय पर अपने मन में इस शरीर को जो आहार देते थे उसका त्याग करके केवल पंच परमेष्ठी का ध्यान करें, वे ही हमारे शरण हैं। हमारा ज्ञान आत्मा का, हमारा दर्शन व चारित्र ही हमारे लिए शरण है और ऐसी भावना जब आ जाती है तो उसी को समाधिमरण कहते हैं। अजैन कहें तो कहें, जैन भी नहीं जानते कि समाधिमरण क्या कहलाता है। समाधिमरण वह चीज है जिस समय पर तुम्हें मौत दिखाई दे रही हो, तुम उस मौत को भूल जाओ और अपनी आत्मा के गुणों में, पंच परमेष्ठी के गुणों में रम जाओ जैसे ही अपने सामने भयंकर चीज या डरावना पशु दिखाई दे, उस समय पर अपनी आँखें बंद कर लो तो तुम्हारे अंदर भय कम हो जाएगा, तुम उससे बच जाओगे। ऐसे ही मौत तुम्हारे सामने आए तो तुम अपनी आँख बंद करके पंच परमेष्ठी की आराधना कर लेना, जो सामने हो जाए उसको बस देखते रहना, अगर तुम्हारा उस समय पर मरण भी हो गया तो तुम्हारा समाधिमरण कहलाएगा। बस इसी का नाम है समाधिमरण। ये इच्छामृत्यु नहीं है कि हम किसी नदी में जाकर के कूद पड़ें और मर जाएँ। अग्नि में कूदे और मर जाएँ, गड्ढे में कूदे और मर जाएँ। ये समाधिमरण नहीं है। समाधिमरण अक्ल के साथ होता है। ये सब प्रक्रियाएँ अज्ञान के साथ होती है। समाधिमरण में श्रावक के अंदर शांतभाव उत्पन्न होता है। अब अगर शत्रु ने मार भी दिया, हमारा गला काट भी दिया, हमें डस भी लिया, अब हमारे लिए कोई उपचार नहीं है।

मुनि महाराज की जब दीक्षा होती है तब आचार्य सबसे पहले यही पढ़ाते हैं कि बेटा अगर जिंदगी चले तो चलाना, जिस दिन तुम्हें लगे कि जिंदगी बस आज ही समाप्त होने वाली है, तब कोई विकल्प नहीं करना, केवल ये एक गाथा याद रखना। ये मूलाचार की संक्षिप्त गाथा है कि ज्ञान ही मेरा शरण है, दर्शन ही मेरा शरण है, चारित्र ही मेरा शरण है, संयम ही मेरा शरण है और हे भगवान् महावीर तुम मेरे शरण हो क्योंकि तुम्हारे तीर्थ में हमने ये मुनि दीक्षा धारण की है। ऐसी शरण की भावना आते ही दुनिया तेरे लिए अपने आप ही अशरण हो जाएगी। उस अशरण में जो तूने शरण की कल्पना कर रखी है, यही तो तेरा अज्ञान है। ये शरण को प्राप्त कर लेने का नाम ही समाधिमरण है। ऐसे समाधिमरण को पशु भी अंगीकार करते हैं। बिना समाधिमरण के कभी किसी का मोक्ष नहीं होगा, केवलज्ञान प्राप्त नहीं होगा। ऐसे उस समाधिमरण को हाथी की पर्याय में उस जीव ने प्राप्त कर लिया। मरुभूति का वही जीव आगे चलकर के पार्श्वनाथ बनने वाला है। उसी की यात्रा यहाँ से शुरू होती है पार्श्वनाथ बनने की। मरण के बाद वह स्वर्ग में जाकर उत्पन्न होता है जिसे सहस्त्रार स्वर्ग कहते हैं।

भाई के मोह में मरा तो हाथी बना और मुनि महाराज के कहने से मरा तो १२वें स्वर्ग में देव हो गया। विचार करना कौन हमारे लिए हितैषी है और कौन द्वेषी है, कौन इस आत्मा का हित करने वाले हैं जिनके कारण से हम अपना पूरा जीवन खपाते हैं, अंत-अंत में वो कोई भी हमारे साथ नहीं होते। यदि तुम्हारा मोह उनसे जुड़ा रहा तो मरण बिगड़ जाएगा और यदि मरण बिगड़ा तो अगला जन्म भी बिगड़ जाएगा। इसलिए मरने से पहले एक जीने की कला सीखना कि हम भीतर से निर्मोह होकर के जीना सीखें। मरने से पहले सावधान रहना कैसे सीखें, मरने से पहले इस शरीर के प्रति अनुराग का त्याग करना कैसे सीखें। इस शरीर में तृष्णा के कारण रोज जो हम आहार-पानी लेते हैं, उसको छोड़ना कैसे सीखें। ये सब साधना करने के लिए तैयार रहता है। बाकी सब हमने अनादिकाल से किया है लेकिन धर्म की आराधना करने का सुअवसर हमें बहुत कम मिलता है। मन में ये भावना रखना कि देखो ये पार्श्वनाथ भगवान् इसी प्रकार से पतित से पावन बने और आज हम उन्हीं से विनती कर रहे हैं 'चरण आयो शरण जी', जो कभी हाथी की पर्याय में थे। आज हम उन्हीं से विनती कर रहे हैं जो कभी मरुभूति की पर्याय में थे लेकिन आज वे पार्श्वनाथ बन चुके हैं। उनकी पूरी कथा १० भव की है। कम से कम एक बार तो साल में पढ़ लिया करो, जैसे रामकथा पढ़ते हैं वैसे पार्श्वनाथ कथा पढ़ना चाहिए।

श्लोक–१६

मत्तश्च्युत्वेन्द्रियद्वारैः पतितो विषयेष्वहम्।
तान् प्रपद्याऽहमिति मां पुरा वेद न तत्त्वतः।।१६।।

मैंने स्वभाव तज के निज भोग लीन, संसार में दुख सहा, वृष–बोध हीन।
मैं 'आत्म' हूँ न पहले इस भाँति जाना, पै सर्वथा विषय को सुख हेतु माना।।१६।।

आचार्य कहते हैं जैसे ही अंतरात्मा की परिणति शुरू होती है वैसे ही अंतरात्मा विचार करता है कि मैंने जिन परिवार में, जिन स्त्री, पुत्र, मित्रों के साथ रहकर और जिन इंद्रिय के विषयों को प्राप्त करके उनसे सुख प्राप्त किया था, सुख प्राप्त करने की एक प्रवीण इच्छा अपने अंदर उत्पन्न हुई थी, वह इच्छा हमारी मिथ्या थी और उस इच्छा के साथ में हमने अपना जो जीवन व्यतीत किया वह अज्ञान के साथ व्यतीत किया। जो वह अपनी उन इच्छाओं को मोड़कर के, इच्छाओं को छोड़कर के अपने आत्म स्वभाव की थोड़ी सी अनुभूति करता है उसे वह आनंद आता है। वह सोचने लग जाता है कि हमारा अभी तक का जीवन अज्ञान से गुजरा और जिस प्रकार की उसकी अनुभूति है वह बाहर आने पर उसे यह अहसास कराती है कि तुझे अगर बाहर भी आना पड़ा, अपने स्वभाव को भूलकर के अगर इंद्रिय के विषयों में भी लीन होना पड़ा तो ये मानकर चलना कि इंद्रिय के विषयों का जो सुख है वह सुखाभास है। यदि इस सुखाभास को अगर तूने सुख माना है तो वो तेरा अज्ञान है और उस अज्ञान को छोड़ने का पुरुषार्थ करना। जब तक हम उस आत्मा के, उस द्रव्य के स्वभाव को उसके मूल स्वरूप को नहीं जानते, तब तक हमें आनंद आता है उसकी अनेक प्रकार की पर्याय में। जो हमारे सामने दिखने में आता है हमेशा वह उस द्रव्य की पर्याय रहती है क्योंकि द्रव्य का स्वभाव कभी नहीं दिखाई देता। परिणति में हमें हमेशा आनंद आया है और वह ही हमें हमेशा लुभाती है, पर्याय नहीं। हर व्यक्ति अपने जीवन को पर्याय के समान संवारने में ही लगता है और पर्याय के माध्यम से ही अपने अंदर खुशी उत्पन्न करता है जो

पर्याय उसके साथ में हमेशा नहीं रहती, क्षणिक होती है। हमारी अनेक प्रकार की आत्मा की पर्याय है और पर्यायों के भीतर भी पर्याय है।

आपको पहले बताया गया था कि नरक गति, देव गति, मनुष्य गति, तिर्यंच गति में यह आत्मा भ्रमण कर रहा है कि गति भी एक पर्याय है। मनुष्य गति भी एक पर्याय है और उसकी पर्याय है- वृद्ध होना, बालक होना, युवा होना। अपने मन में उसने माना कि मेरे अंदर अमीरपन आया, कभी गरीबपन आया, ये भी उसकी पर्याय है। कुछ उसकी भावात्मक है, कुछ उसकी द्रव्यात्मक है। उन पर्यायों की स्थिति कैसी है? यह आप उस दृश्य को देखकर के समझ सकते हैं कि आप कभी किसी एक तालाब के किनारे खड़े थे। आपने उस तालाब को देखने का प्रयास किया। तालाब के पास पहुँचकर आपके मन में चंचलता उत्पन्न होती है कि देखो हम तालाब के किनारे आए हैं और शांत तालाब हमें अच्छा नहीं लगता। जिसमें हिलोरे न हो, पानी बिल्कुल साफ हो, वो हमें अच्छा नहीं लगता तो हमारे मन में आता है एक कंकड़ छोड़ दें या पत्थर फेंक दें। हम पत्थर को इस ढंग से तालाब में फेंकते हैं कि वह दो-चार जगह टपके खाता हुआ दूर तक पहुँच जाए। सब कर चुके हैं। महाराज, क्यों बचपन की बातें याद दिला रहे। ये जो मन के अंदर की चंचलता और उस चंचलता से हमें बाहर की चंचलता अच्छी लगती है। मन के अंदर का वह अस्थिर स्वभाव जिसके कारण से हमें पर्याय में ही आनंद आता है, हम उस परिणति को बदलते हुए देखना चाहते हैं। उसमें हम जब पत्थर फेंकते हैं तो उसके बाद ठहरा हुआ शांत जल तरंगायित हो जाता है और उसकी लहरें पत्थर के स्थान से चारों ओर घूमती-घूमती हमें दिखाई देती है, उतना ही आपको आनंद आता है। एक पत्थर जब चार जगह टकराता हुआ जाता है तो उतनी ज्यादा लहरें पैदा करता है। आपको ये स्टाइल नहीं आती हो तो अब सीख सकते हो। अब आपको उन पर्यायों में उलझने की जरूरत नहीं है, अब हमें द्रव्य के स्वभाव में देखने की जरूरत है। अभी तक हम पर्याय में आनंद मानते थे। हमें द्रव्य के स्वभाव में कभी आनंद नहीं आया। इसलिए आचार्य कहते हैं कि जब हम पंचेंद्रिय विषयों के बाहर एकमेक हो जाते हैं तो उस समय पर अगर आपके अंदर ये परिणति आ जाती है कि मैं विषयों में लीन रहा और हे भगवन् इन विषयों में घिरे रहने के कारण अनादिकाल से मैंने अपनी आत्मा को नहीं जाना। ये अगर उसके अंदर आत्मानुभूति होने लग जाती है फिर उसे अपने अंदर में पश्चाताप होने लग जाता है।

केंद्र व परिधि

इस आत्मा के सबसे बड़े शत्रु अगर हैं तो वो ये पाँच इंद्रियों के विषय हैं। यही उसे अनुभूति होती है कि इन पाँच इंद्रियों के विषय की वजह से हमने अपने आपको नहीं जाना, स्वभाव को नहीं जाना, वहीं से अपनी अंतरात्मा का अपने अंदर जागरूक भाव होने लग जाता है। ज्ञान की लहरें फूटने लगती है और प्रकाश उत्पन्न होता है जो हमें अंधकार से अपनी आत्मा की ओर ले जाता है। मोह अंधकार है और ज्ञान प्रकाश है। उस मोह के अंधकार से ज्ञान के प्रकाश की ओर आने के लिए आपके अंदर उन विषयों से रहित होने पर ही उस आत्मा का ज्ञान होगा और जिसको एक बार उस आत्मा में डुबकी लगाने का आनंद आ जाता है तो वह बाहर आकर के पश्चाताप करता है। वह विचार करता है कि हमने अपने स्वभाव को भूलकर के जो विभाव में परिणमन किया वह विभाव हमारा अनादिकाल से रहा है, पर्यायों को हमने अनादिकाल से अपना माना है, द्रव्य को हमने कभी अपना नहीं माना। पर्यायों में आनंद आया, द्रव्य में नहीं और जो व्यक्ति द्रव्य और पर्याय दोनों को जान लेता है तो वह अपना जीवन संतुलित ढंग से जीने लग जाता है। वह उसे स्वयं के स्वभाव की ओर उन्मुख होने में आनंद आने लग जाता है।

एक केंद्र होता है और एक परिधि होती है। केंद्र के माध्यम से ही परिधि बनती है, बिना केंद्र के कोई परिधि नहीं होती और परिधि है तो केंद्र जरूर होता है। इस उदाहरण से समझे– पर्याय का मतलब है परिधि जिस पर आप घूमते रहते हैं। द्रव्य का मतलब है केंद्र बिंदु जो उस परिधि के भीतर समाया हुआ है, उस परिधि के आसपास ही रहता है, उसका केंद्र ही होता है। जैसे 'प्रकार' को टिकाकर ही गोला बनाया जाता है वो ही उसका केंद्र होता है, वह परिधि बन जाती है। हम हमेशा परिधि को तो देखते हैं पर केंद्र को कभी नहीं देखते। आत्मा इन सब पर्यायों का केंद्र बिंदु है। जितने भी भाव इस आत्मा में आते हैं उनका केंद्र बिंदु आत्मा है, चाहे हिंसा के हो, झूठ के हो, कुशील के हो। जितने भी भाव इस आत्मा में आते हैं उनका लहराना/दिखना वैसा ही है जैसा वो तालाब में लहरों की पर्याय है जो अभी तालाब में प्रकट नहीं हुई थी लेकिन आपने पत्थर डाला, पर्यायें दिखने लगी। जैसे ही आपके सामने इंद्रिय के विषय आए, वैसे ही आपके अंदर की परिणति बदलने लगी। जैसे ही आपकी तरफ ये कैमरा घूम गया वैसे ही आपका शरीर एलर्ट हो जाएगा कि फोटो अच्छी आनी चाहिए। जैसे ही हमारे सामने कोई चमकाने वाला

आता है, हम तुरंत चमकने लग जाते हैं। वैसे ही हमारी परिणति एकदम से उसी के अनुसार हो जाती है। आपके मन में कभी भी ये भाव नहीं आता कि हम जैसे हैं वैसे ही रहें। जब आप फोटो खिंचाने जाते हैं तो अलग से कितना मेकअप करके जाते हैं, रिसेप्शन में जाना हो वहाँ वीडियोग्राफी हो रही हो तो आप सजधज के बन-ठन के जाओगे। जब आप अपने घर में रहोगे तो आप ऐसे ही घूमते फिरते रहोगे। हमारे रहने के तरीकों में भी जब आनंद अलग-अलग ढंग से आने लग जाता है। ये सब मन की चंचलता के कारण से आता है और हर आदमी के अंदर इन्हीं मन की चंचलता से पर्यायों की चंचलता में ही आनंद आता है। हर व्यक्ति को जितना ज्यादा पहनने-ओढ़ने, खाने-पीने में आनंद आता है, वह उसकी इन्हीं परिणतियों के कारण आता है।

आप देखोगे कि गेहूँ का आटा एक ही है परंतु उसकी भी कितनी पर्यायें बन जाती हैं। उसी आटे की रोटी बनी, शादी में पराठा बनता है तो आपके भाव बढ़ जाते हैं और पूड़ी बन जाती है तो आपके भावों में और परिवर्तन आ जाता है, उसी आटे के जब गोल-गोल छोटे-छोटे पानी बताशे बन जाते हैं जब आप और प्रसन्न हो उठते हैं। एक ही द्रव्य के कितनी पर्यायें बनती हैं और हमें अच्छा लगता है, उसके बाहरी पर्यायों में ही आनंद आता है। उसके केंद्र में दृष्टि हमारी कभी नहीं जाती, न किसी की भी परिधि से दूर दृष्टि जाती, न जीव की ओर न अजीव की ओर। दृष्टि में सिर्फ पर्यायें होती हैं, उसके ऊपर की परिणति कभी नहीं होती। हम अगर आज खुश हैं तो अपनी पर्याय से खुश हैं, अपनी वृद्धावस्था से खुश हैं, अपनी युवावस्था से खुश थे, जब बचपना था तब बचपने से खुश थे। पर हम अपने द्रव्य रूप से कभी खुश नहीं थे, पहले बाल थे, फिर युवा हुए, फिर वृद्ध, पर हम तो वो ही हैं। जब तक द्रव्य की ओर परिणमन नहीं होता, झुकाव नहीं होता तब तक वो विषय हमसे छूटते नहीं। आचार्य परमेष्ठी, चाहे वो आचार्य कुंदकुंद देव समयसार में हो या आचार्य पूज्यपाद महाराज समाधितंत्र में हो, हमें उसी ओर ले जाया जा रहा है कि हम अपने स्वभाव की ओर आए, विभाव की ओर भटकते-भटकते तो बहुत समय हो गया है। उस स्वभाव की ओर आने के लिए हमें कुछ आलंबन लेने पड़ते हैं लेकिन हमें देखना तो उस स्वभाव की ओर ही है जिधर हमें ले जाया जा रहा है। ये भाषा, ज्ञान, भाव हमें उस परिणति की ओर ले जाते हैं जिस ओर जाने का हमने कभी पुरुषार्थ नहीं किया।

जीव–अजीव

आचार्य कुंदकुंद देव भी 'समयसार' में इसी प्रकार परिणति के लिए कहते हैं कि अगर हम इस परमार्थ का उपदेश भी देंगे तो हमें व्यवहार का सहारा लेना पड़ेगा। उस परमार्थ पर हमें अपने आपको पहुँचाने के लिए, व्यवहार के बिना कहीं भी परमार्थ का उपदेश संभव नहीं है और व्यवहार ज्ञान के बिना कभी भी परमार्थ का ज्ञान होना भी संभव नहीं है। अगर भाषा का आलबंन लिया जाता है तो भी व्यवहार ज्ञान है और अगर भावों का आलंबन लिया जाता है तो भी व्यवहार ज्ञान है। इसके माध्यम से ही हमें बताया जाता है कि जीव क्या है, अजीव क्या है। जब छोटा बच्चा होता है तो हम उसे बताते हैं देखो जो चलता-फिरता रहता है वह जीव होता है। जो एक स्थान पर रहता है तो अजीव होता है। जब बच्चा थोड़ा बड़ा हो जाता है तो कहता है मम्मी ये रेलगाड़ी तो चलती है, मोटरसाइकिल, कार तो चलती है तो मम्मी सिखाती है बेटा, वो चलती नहीं उसको चलाया जाता है। अब नई परिभाषा है जो क्रिया करे, देखे, जाने उसका नाम जीव है और जिसमें देखने जानने की क्षमता नहीं होती उसका नाम अजीव है। अब कोई प्रश्न करें कि ये देखने जानने की क्षमता तो इन वीडियो कैमरों में कैद हो रहा है लेकिन फिर भी इनके अंदर जीवत्व नहीं है, ये केवल स्टेचू की तरह खड़ा रहता है। जब तक व्यक्ति इनको ऑपरेट करेगा तब तक ये काम करेंगे, जैसे ही इनका संपर्क काट दिया जाएगा, इनका सिस्टम छूट जाएगा इसलिए ये अजीव है। जीव वो है जो कभी भी अपने ज्ञान दर्शन स्वभाव से च्युत न हुआ हो और जिसके अंदर हमेशा देखने- जानने की क्रिया बनी रहती हो उसका नाम जीव है। फिर और ऊपर देखें तो आचार्य कहते हैं ये एक इंद्रिय जीव है। ये दो इंद्रिय जीव है, ये पंचेंद्रिय जीव है और फिर वो बताते हैं कि ये मनुष्य जीव है, ये तिर्यंच जीव है। फिर बताते हैं कि हम जिस परिवार में रह रहे हैं वे सब परिवार के लोग भी जीव हैं। ये जीव की पर्याय और विस्तार बढ़ता चला जा रहा है और इन सबके बीच में भी हमें जीवत्व दिखाई दे रहा है। लेकिन जब तक हम उस परमार्थ से जीव क्या है ये नहीं जानेंगे तब तक हमारे लिए जीव का सही ज्ञान नहीं होगा और परमार्थ से उस जीव को बताने के लिए भी हमें किसी व्यवहार का सहारा लेना पड़ता है क्योंकि हम किसी भी जीव को हाथ में रखकर नहीं बता सकते कि ये जीव है। हमें जब भी बताना होगा इसी ढंग से बताना होगा कि तुम्हारे अंदर ये विचार पैदा हो रहे हैं वे जीवात्मा के विचार हैं और तुम जो ये शरीर के रूप में

दिखाई दे रहे हो, ये उस जीवात्मा से भिन्न शरीर हैं। जो विचार है वो जीव है। जब आप और बड़े हो जाओगे तो ये परिभाषा भी गलत हो जाएगी। तब आपसे कहा जाएगा विचार जब-तक चलते रहे तब-तक भी आप जीव नहीं हो। व्यक्ति जब विचार शून्य हो जाता है, केवल अपनी आत्मा में स्थित हो जाता है तब उसे जीवत्व की अनुभूति होती है। वहाँ पहुँचने के लिए हमें कई प्रकार के व्यवहार का सहारा लेना पड़ता है।

आचार्य कुंदकुंददेव कहते हैं परमार्थ तक हम कभी व्यवहार के बिना पहुँच नहीं सकते। परमार्थ का उपदेश भी अगर व्यवहार के बिना संभव नहीं है तो उस परमार्थ तक पहुँचना तो व्यवहार के बिना संभव ही नहीं है। परमार्थ तक पहुँचने के लिए किया जाने वाला व्यवहार समीचीन होता है और उस व्यवहार की दिशा भी अपने ढंग से अलग निर्धारित होती है और उस दिशा से अगर आप चलेंगे तो आप परमार्थ तक पहुँचेंगे। पर्यायों का मोह छोड़ो, द्रव्य की ओर दृष्टि रखो और परमार्थ की ओर अपनी गति बढ़ाने के लिए उस व्यवहार के मार्ग की ओर चलने का प्रयास करो जो मार्ग भगवान् महावीर ने क्रिया रूप में बताया है क्योंकि क्रिया में ही चलना होता है। क्रिया रहित होकर के कभी भी आप किसी मार्ग पर चल नहीं सकते। जितना भी व्यवहार के माध्यम से हमें अष्टमूल गुणों को धारण करना, पानी छानकर पीना, प्रतिदिन भगवान् के दर्शन करना, पूजन करना, रात में भोजन नहीं करना, ये भी जो हमारी क्रियाएँ हैं, ये सब हमें उस परमार्थ की ओर ले जाती है और ये सब व्यवहार क्रियाओं को भगवान् ने धर्म कहा है। अगर ये धर्म नहीं होगा तो संसार में मानव का जीवन चल ही नहीं पाएगा, ये धर्म नहीं होगा तो फिर धर्म किसी चीज का नाम नहीं रह जाएगा।

धर्म धर्म सब कोई कहे, धर्म ना जाने कोय
जन्म मरण जाने बिना, धर्म कहा से होय

धर्म का अर्थ यही है कि हम उन क्रियाओं के माध्यम से उस मर्म की ओर चलें जो अंदर छिपा रहता है। उन क्रियाओं के माध्यम से हम उस ओर गति करें जिस ओर हमारी अनादिकाल से गति नहीं हुई है। भगवान् की पूजा करने से ही हम आत्मोन्मुखी होते हैं, भगवान् के दर्शन से भी आत्मोन्मुखी होते हैं। अनेक प्रकार की बाहरी क्रियाएँ करते हैं, उनसे भी आत्मोन्मुखी होते हैं। ये सब क्रियाएँ ही परमार्थ तक ले जाने वाली क्रिया है। यदि आपने ऐसी कोई क्रिया नहीं की तो आप कभी भी परमार्थ को प्राप्त नहीं कर पाओगे। आपने निर्णय कर लिया कि हमें यहाँ से मुंबई

जाना है और आप अपने घर से बाहर निकलना नहीं चाहते, आप अपने घर में ही बैठे हो, बस आप कह रहे हो इसे मुंबई पहुँचना है, हमें मुंबई पहुँचना है। आपके लिए निर्णय हो गया कि आपको सम्मेद शिखर जाना है पर आपको घर से बाहर नहीं निकलना है। जब तक आप घर से बाहर निकलने की क्रिया नहीं करोगे तो कैसे पहुँचेंगे। आज कल तो पहले रिजर्वेशन कराना पड़ता है, बिना उसके आप कहाँ भटकते फिरोगे। चाहे आप प्लेटफार्म पर जाकर कराओ, चाहे घर में बैठे-बैठे कराओ, पर कराना तो पड़ेगा। जब आप रिजर्वेशन की टिकिट लेकर के चलोगे तो आपके लिए जो मार्ग तय करने में आएगा वह सारा का सारा मार्ग आपका व्यवहार मार्ग कहलाएगा। उस व्यवहार को अंगीकार किए बिना कभी भी आप मुंबई नहीं पहुँच सकते हो और अगर आप बीच में कहीं रुक भी गए तो वो आपकी गलती कहलाएगी, आपकी कमी कहलाएगी। हो सकता है आपने मन बनाया हो मुंबई जाने का लेकिन आपने बीच में और भी स्टापेज बना लिए। आपने सोचा कि रुक-रुककर चलेंगे, सब जगह घूमते हुए चलेंगे तो भी आप मुंबई पहुँच पाओगे क्योंकि आपके मन में है कि हमें मुंबई होकर के आना है। जो लक्ष्य आपने बनाया वो आपके लिए आपका निर्णय है, निश्चय नहीं है। निश्चय वो है जहाँ पर पहुँचने के बाद हमें कोई विकल्प नहीं रहे और उससे पहले जो हमें हो रहा है वह निश्चय का ज्ञान हो रहा है उसको हम निश्चय मानने की भूल कर देते हैं। निश्चय का आपने ज्ञान कर लिया कि हमें मुंबई जाना है वहाँ पहुँचकर हम जो अनुभूति करेंगे वो हमारी निश्चय की अनुभूति होगी। मुंबई में भी जिस स्थान पर आपको पहुँचना है वहाँ पहुँचने के पहले तक सब व्यवहार है वो भी मुंबई का निश्चय मोक्ष मार्ग कहलाएगा। एक व्यवहार मोक्ष मार्ग जो आपके घर से मुंबई स्टेशन तक शुरू होगा और एक निश्चय मोक्ष मार्ग जो मुंबई स्टेशन से जहाँ आपको जाना है वहाँ तक–जब आप अपने उस रूम तक पहुँच गए, वहाँ पूर्ण निश्चिंत होकर के बैठ गए, सो गए तो आप निश्चय में खो गए। आप निश्चय पर नहीं पहुँच पा रहे हो तो इसका मतलब है कि आपने कोई भी रिजर्वेशन नहीं कराया, कोई टिकट प्राप्त नहीं की।

उस व्यवहार के माध्यम से आचार्य कुंदकुंददेव कहते हैं कि हम उस परमार्थ के निश्चय तक पहुँच पाते हैं और उस व्यवहार की क्रिया को अगर हम समीचीन ढंग से करेंगे, अपने घर का मोह छोड़कर के हम घर से बाहर निकलेंगे तभी हमें दूसरी जगहों पर जाने को मिलेगा। ऐसे ही जब हम बढ़ते जाएँगे, विषयों का मोह छोड़कर, जब हम अपनी आत्मा की ओर जाने की कोशिश करेंगे, तभी हमें आत्मा की ओर आने को मिलेगा। कभी-कभी तो ऐसा भी होता है कि हमारा

निश्चय या निर्णय नहीं भी हो तब भी हम मुंबई घूम कर के आ जाते हैं। कई बार हमें हमारे पिताजी ले जाते हैं, घर के लोग ले जाते हैं और हम घूम-फिर के आ जाते हैं। ऐसा उन जीवों के साथ होता है जो जीव बड़े निर्मल परिणामी होते हैं। जिन जीवों के अंदर इतने निर्मल परिणाम होते हैं कि वो गुरुओं की बात को, परमेष्ठी की बात को सुनकर के उनके अनुसार चलने लग जाते हैं, कुछ भी विचार नहीं करते। गुरुजी कहते हैं चलो तो वे चलने लग जाते हैं। गुरुजी ने कहा बैठ जाओ तो बैठ गए, उन्होंने कहा पूजा करो तो पूजा कर ली। गुरुजी के निर्देश के अनुसार वे काम करने लगते हैं तो वे गुरुजी के हाथ पकड़कर उनके साथ चलकर वहाँ पहुँचते हैं जहाँ गुरु उन्हें ले जाता है। गुरु तुम्हें हमेशा अपनी अंतरात्मा की ओर लेकर के आएगा। गुरु तुम्हें अपनी अंतरात्मा में डूबने की तरकीब बताएगा और उस अंतरात्मा से परमात्मा बनाने की तरकीब बताएगा। अगर तुम गुरु की बात को मानते चलोगे तो अंतरात्मा से परमात्मा बनने में देर नहीं लगेगी। अगर तुम गुरु के सहारे को छोड़कर के रख दोगे तो तुम्हें कभी भी मार्ग मिलने वाला नहीं। गुरु के बिना हमें कोई मार्ग बताने वाला नहीं और अगर हम गुरु का हाथ भी न पकड़े और गुरु के बताए अनुसार भी न चले तो हमें कभी भी उस मार्ग के ऊपर चलने की अनुभूति नहीं हो सकती। कई बार ऐसा होता है जिसको चलने की इच्छा नहीं भी होती है उसको भी गुरु चला देते हैं और उसे भी मोक्ष मार्ग मिल जाता है।

वारिषेण मुनिराज

एक बार वारिषेण महाराज किसी शहर में आहार करने के लिए गए और आहार करने के बाद में जब लौट रहे थे तो एक व्यक्ति हाथ में कमंडल लेकर के चलने लगा, वह मुनि महाराज को उनके आश्रम तक पहुँचाने जाने लगा। चलते-चलते थोड़ी देर हो गई क्योंकि जंगल दूर था। अब उसे ऐसा लगा कि महाराज से कैसे कहें कि महाराज ये लो कमंडल, मैं वापस जा रहा। उसके मन में विचार आया तो वो महाराज से कहने लगा कि महाराज ये जो पेड़ दिखाई दे रहा है, ये तो गाँव से बाहर का पेड़ है, ऐसा लगता है अपन गाँव से बाहर आ गए। महाराज उसकी सुन भी लेते हैं और सुनकर के अनसुनी भी कर देते हैं और सोचते हैं चलने दो, इसको अभी अपने साथ। महाराज कहते हैं हाँ दिखाई दे रहा है ये गाँव के बाहर का पेड़ है। अब क्या करना। वह व्यक्ति

समझ नहीं पा रहा कि वो महाराज को समझाना चाह रहा है और महाराज समझ नहीं पा रहे। महाराज चुपचाप चलते चले जा रहे हैं और वह भी उनके साथ चलता चला जा रहा है। सोच रहा है कि अभी उनका स्थान आने वाला है। ऐसा करते-करते वह उनके आश्रम स्थान तक पहुँच गया। वहाँ पहुँचने के बाद मुनि महाराज ने उससे कहा-कहाँ जा रहे हो। उसने कहा- वापस अपने घर। क्या करोगे वापस जाकर, देखो ये कितना सुंदर वन है और वन में कितनी शांति है। चारों ओर इस प्रकृति के नजारों को देखते रहो और अपने अंदर आज ऐसा परिणाम महसूस करो। देखो जो सुख और शांति इस एकांत में है, वो कहीं नहीं है। कुछ ज्यादा करने की जरूरत नहीं है। तुम जहाँ जा रहे हो वहाँ पर केवल आपदाएँ हैं, घटनाएँ हैं यहाँ पर परम शांति है। अगर तुम ऐसा ही रूप धारण कर लोगे तो तुम्हें वो आत्मा की अनुभूति होगी जो तुम्हें कभी नहीं हुई।

उस व्यक्ति को मुनि महाराज ने इतना सा उपदेश दिया और उसका दिमाग बदल गया। ऐसा बदला कि वो मुनि महाराज से कहने लगा कि जिस सुख और शांति की अनुभूति आपको हो रही है, आप उस अनुभूति का मार्ग बताओ और आप जो कहोगे हम वैसे ही करेंगे। मुनि महाराज के निर्देशन में उस व्यक्ति ने उसी समय पर दिगम्बर दीक्षा धारण कर ली और ध्यान करने बैठ गया। गुरु के पास रहा और कुछ दिन रहने के बाद में उसका मन फिर चंचल हो गया। उसे फिर अपनी पत्नी की याद आने लगी और अत्यधिक आने लगी। अब वो महाराज से कह भी नहीं पा रहा और मन कहीं ओर लग रहा है। अब मुनि महाराज ने समझ लिया और उन्हें पता लग गया कि इसकी पत्नी कानी है (एक आँख से दिखाई नहीं देता)। उस कानी पत्नी में उसका मन लग रहा है। अब जिम्मेदारी किसकी? जिन गुरु ने उसे दीक्षा दी है। गुरु ने सोचा कि इसका स्थितिकरण करना है, सन्मार्ग पर लगाना है तो क्या करूँ।

गुरु उसको वहाँ लेकर के गए, जहाँ पर वो पहले रहा करते थे। वो शहर के बहुत बड़े राजा थे, उनकी बत्तीस रानियाँ थीं। वे उसी घर में ले गए और वहाँ उन्होंने अपनी माँ से कहा कि जितनी भी इस घर में स्त्रियाँ हैं उनको सामने ले आओ। वे सब स्त्रियाँ सामने आ गईं। माँ ने सोचा कि ये बेटे को क्या हो गया, ये तो बहुत पहले घर छोड़कर चला गया था, आज इसे स्त्रियों की क्यों याद आ गई। सब स्त्रियाँ सामने आ गईं फिर उन्हें दिखाकर मुनि महाराज ने कहा कि ये जितनी भी स्त्रियाँ यहाँ हैं ये सब पहले किसी की पत्नी रही हैं और जिसकी वे पत्नी रही हैं वो आज तुम्हारा गुरु है।

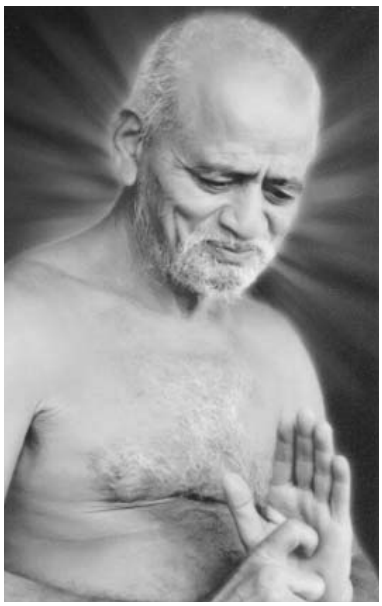
जैसे ही उसने इतना देखा और सुना, उसका आकर्षण छूट गया और वह सोचने लगा कि मैं तो एक कानी पत्नी के लिए परेशान होने लगा था, ये तो इतनी सुंदर-सुंदर पत्नियाँ छोड़कर के आए हैं और वह पुन: मोक्षमार्ग पर स्थित हो गया। गुरु के साथ वापस गया और रहने लगा और इतना ध्यान किया कि गुरु से पहले वह आत्मध्यान कर के वह स्वर्ग को प्राप्त हो गया। आज भी वह सम्यगदृष्टि बनके स्वर्ग में भी धर्म-आराधना में लगा है, जिसमें उस गुरु ने उसको लगा दिया है। कई बार गुरु के माध्यम से हमें मार्ग मिलता है। यदि गुरु हमें अपने हिसाब से चलाने लग जाए और हम उसके हिसाब से चलने लग जाएँ तो तुम्हें भी टिकिट अलग से खरीदने की जरूरत नहीं है। अपने आप तुम्हें टिकिट मिल जाएगी, रिजर्वेशन तुम्हारा पक्का है। बस मन बना लो, आगे पीछे नहीं देखने का। मन बना लो कि हमें गुरु के साथ में रहना है, चलना है और यदि रहने को मिल जाए तो पीछे नहीं रहना। चातुर्मास में एक समय आने वाला है जब १० दिन तुम्हें गुरु के साथ रहने को मिल सकता है। तब सारी चिंता गुरु करेगा तुम्हें क्या खाना, कहाँ सोना, कहाँ रहना, क्या करना। एक इतना समर्पण तब तुम्हें पता पड़ने लगेगा कि गुरु के साथ रहने में कितना आनंद आता है और विषयों से दूर रहकर के आत्मा की साधना करने में कितना आनंद आता है।

समकित सावन

कुंदकुंद और पूज्यपाद जैसे महाराज हमें अनेक प्रकार से ज्ञान दे रहे हैं और गुरु के माध्यम से जो ज्ञान मिलता है, वह आनंद आता है। आपने कई बार सावन के झूले झूले होंगे, ये भी एक सावन चल रहा है। सावन के महीने में भी आपको सावन के झूले में भी वो आनंद नहीं आता होगा जो आपको इस प्रकार के व्यवहार और निश्चय के झूले में आएगा। वह आनंद अगर आपके अंदर आता है तो आप मान लो कि आपका सावन सार्थक हो रहा है। बाहर की हरियाली तो हमारे लिए केवल आँखों को आनंद दे पाती है क्योंकि भीतर आत्मा की हरियाली का यदि हमें ज्ञान हो जाता है तो वो हमारी आँखों को नहीं, हमारे ज्ञान को आनंद देती है। ज्ञान हमारे साथ में हमेशा रहता है। इसी ज्ञानामृत की हम बात करते हैं उसमें आनंद लेते हैं तो हमारा सावन सार्थक है। आप भी सावन के झूले में झूलते हों और मुनि महाराज भी।

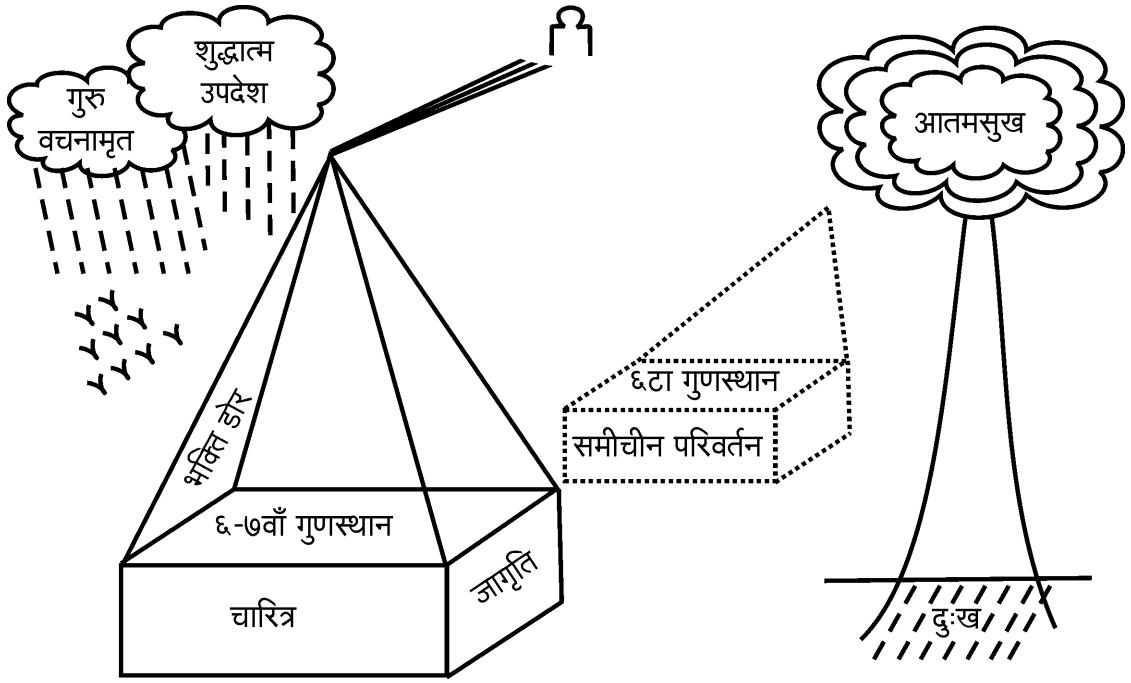
मुनि महाराज जिस झूले में झूलते हैं उसे कहते हैं ६वाँ-७वाँ गुण स्थान और उन्होंने अपनी डोर डाल रखी है सिद्धशिला पर, वहाँ से उनके लिए हिलौरे मिलती हैं और हिलाने वाला कौन है। वे गुरु महाराज हैं जो हमें हिलौरे देकर के और ऊपर-ऊपर बढ़ाने का प्रयास करते हैं। ये महीना भले चला जाए पर भीतर का सावन कभी भी सूखता नहीं है। ऐसा समकित सावन हमेशा हमारे अंदर रहता है। समकित माने- जिसमें आत्मा का समीचीन परिवर्तन हो, जिसमें आत्मा की वह सम्यक्त्व की परिणति जाग्रत हो और उस समकित सावन में हमेशा मुनि महाराज रहते हैं। आपको वह समकित सावन कैसा होता है, इस बात का भी थोड़ा सा ज्ञान होना चाहिए। उसके लिए हमने कभी अपने मन के भावों को कुछ शब्दों में पिरोया था, नरसिंहपुर में जब चातुर्मास चल रहा था।

अब मोहे समकित सावन भायो-२
इस सावन से गुरु भक्ति में-२ मेरा मन सुख पायो।
अब मोहे...
सिद्धशिला की छत पर मैंने-२ भक्ति डोर लटकायो
ता पर चारित तखती रखकर, बैठ भावना गायो।
अब मोहे...
शुद्धातम उपदेश धनाधन रिमझिम निर्जर छायो
छठ-सातें गुण ठाण बिठाकर, गुरु ने मोहि सुलायो।
अब मोहे...
आतम सुख हरियाली निरखत, चहुंगति दुक्ख भुलायो
पी-पीकर गुरु के वचनामृत चातक सम हरषायो।
अब मोहे....
सावन मास सुवास सदा ही, तार तुषार हटायो
गुरु उपकार कहयो नहीं जाये, ज्ञायक भाव सुहायो।
अब मोहे....



ये सावन उस समय का सावन है, जब २००७ में उनसे अलग संघ में विहार कराकर के सम्मेद शिखर की यात्रा के लिए प्रस्थान किया। ३ साल बाद आचार्य महाराज के पुनः दर्शन किए २०१० में। उन्होंने पुनः संघ से बाहर धर्मप्रभावना करने भेजा। २०१० के बाद पहला चातुर्मास

गुरु से दूर रहकर नरसिंहपुर में चल रहा था तो इस सावन के महीने में गुरु की याद आई, तब यह भजन लिखा था। जब मन के अंदर ज्ञायक भाव प्रदान करने वाले गुरु याद आते हैं तब मन में अपने आप ऐसे भाव याद आ जाते हैं कि हम गुरु से ही जुड़े हैं, सिद्धों से ही जुड़े हैं और अपनी आत्मा से भी जुड़े हैं और इनको जोड़े रखने की केवल एक ही डोर हमारे पास में है वो है भक्ति डोर। इसलिए हमेशा अपने मन में गुरु के प्रति भक्ति का भाव रखना। हम तो गुरु से दूर रहकर भी गुरु के प्रति भक्ति भाव से जुड़े रहते हैं। अगर आपके पास गुरु है और फिर भी आप उनसे दूर हैं तो इसका मतलब है कि आपको अभी भक्ति करना नहीं आती, गुरु की भक्ति का आनंद नहीं आता और आपको अभी गुरु के स्वरूप में मग्न होने का और गुरु का स्वरूप समझने का भी भाव नहीं आता। कहीं आपके अंदर का कोई अवसाद इस प्रकार के अवसर से आपको दूर न कर दें। कहीं आपके मन की कोई मलीनता आपको इस आनंद से दूर न कर दें। इस प्रकार की भावना अपने मन में करना और हमेशा ये सोचना कि भगवान् हमें इस दुनिया से कुछ मिले या न मिले लेकिन देव-शास्त्र और गुरु हमेशा हमारी आँखों के सामने रहे।



श्लोक–१७

एवं त्यक्त्वा बहिर्वाचं त्यजेदन्तरशेषतः।
एष योगः समासेन प्रदीपः परमात्मनः।।१७।।

जो अंतरंग बहिरंग निसंग नंगा, होता नितांत उसका वह योग चंगा।
उत्कृष्ट आतम प्रकाशक योग–दीप, धारो इसे, शिव लसे, फलतः समीप।।१७।।

आचार्य कहते हैं पुत्र, मित्र, भार्या आदि की कल्पना और इंद्रिय के विषयों में इस जीवआत्मा की आसक्ति के कारण हमारी आत्मा के अंदर ऐसे संस्कार पड़ जाते हैं कि हमें उन विकल्पों की याद सदैव बनी रहती है। अगर आपको इंद्रिय के विषयों से हटकर के अपनी आत्मा की ओर आना है, उसकी निकटता को प्राप्त करना है तो आपको सबसे पहले कुछ छोड़ना पड़ेगा। आचार्य महाराज न किसी का घर छुड़ाते हैं न कोई संबंध छुड़ाते हैं। वो कहते हैं कि पहले तुम बाह्य जगत से अपना बोलना छोड़ दो अन्यथा अंतर्जगत में तुम्हारी आवाज पहुँचेगी नहीं। बाहरी जगत के साथ जब तक तुम्हारा बोलना रहेगा तब तक तुम्हारा बाहरी जगत से संबंध रहेगा क्योंकि आदमी के पास संबंध बनाने की सबसे बड़ी चीज है वचन प्रणाली, जिसके माध्यम से वह किसी से भी संबंध बना सकता है। जहाँ आपकी किसी अपरिचित से भी बोलचाल शुरू हो जाएगी तो समझ लेना कि आपका उससे संबंध बन गया। इसी बोलचाल से जब संबंध बनने लग जाते हैं तो आचार्य कहते हैं कि चित्त में ऐसा विभ्रम होता है कि उसके नहीं होने पर भी वह हमें याद आता है। संस्कार ऐसा पड़ सकता है कि बाद में भी आपके अंदर वह संबंध और प्रगाढ़ बनाने की इच्छा हो जाए। इन सब संबंधों की शुरुआत जो होती है वो अपने बोलने से होती है।

वचनों पर नियंत्रण

आजकल सबसे ज्यादा बीमारी बोलने की बीमारी है। कई लोगों को बोलने की बहुत भावना रहती है और चाह रहती है कि हमें कोई सुनने वाला मिल जाए। बोलने की वह क्रिया जो भीतर

से उत्पन्न होती है और हमारे भावों तक आकर रुक जाती है और आगे नहीं बढ़ पाती तो एक घुटन भी होने लगती है। खासतौर पर जो कवियों की उपाधि प्राप्त कर लेते हैं उनके लिए ये बड़ी समस्या हो जाती है।

इसलिए सबसे पहले अगर आप किसी भी चीज पर नियंत्रण पाना चाहते हैं तो अपने वचनों पर नियंत्रण करो। काय की चेष्टा पर नियंत्रण हो जाएगा, मन पर भी नियंत्रण हो जाएगा। मन और काय पर नियंत्रण पाने के लिए अपने वचनों पर नियंत्रण कर लो। जितना ज्यादा आप कम बोलने का प्रयास करेंगे उतने ही ज्यादा आप अपने चारित्र में निष्ठ कहलाएँगे। आप देखना जो व्यक्ति अधिक बोलता है, बिना वजह बोलता है, जरूरत से ज्यादा बोलता है, हर किसी से अपना संबंध बनाने के लिए तैयार रहता है वह व्यक्ति चारित्र निष्ठता में हल्का रहता है। जिस व्यक्ति के अंदर चारित्र की भावना होती है, वह व्यक्ति अपने आप में रहता है। जो अपने आप में रहता है उसके अंदर बोलने की बहुत कम भावना रहती है। ये बोलने की प्रणाली आदमी के व्यक्तित्व को बताने वाली रहती है। कुछ व्यक्ति बातूनी नेचर के होते हैं जो कहीं भी, किसी भी शहर में पहुँच जाए, बातचीत शुरू करके, कहानी किस्से सुनाकर किसी को भी अपना बना लेते हैं। उनकी भीतर ये कमी रहती है कि बहुत जल्दी यदि उन्हें ऐसा माहौल न मिले तो वे परेशान भी हो जाते हैं। वे अकेले बैठ नहीं सकते, अकेले रह नहीं सकते। आज के युग में हम मोबाइल के माध्यम से व्यर्थ की बातें, समाचार, घटनाएँ जबरदस्ती पूछते रहते हैं। मोबाइल से संबंध कम करना होगा। हाँ/ना एवं स्पष्ट उत्तरों में अपनी बात समाप्त करना होगी। आपके अंदर उठने वाले संकल्प-विकल्प से मन अशांत रहता है उसका कारण है, दूसरों से ज्यादा जुड़ना। मोबाइल से व्यक्ति दूर-पास सब जगह सबसे जुड़ा रहता है।

तीर्थयात्रा में भी वह धर्मध्यान का जो सौभाग्य मिला उसे मोबाइल के माध्यम से चिंताओं और विकल्पों में खो देता है। पहले के लोग जब तीर्थयात्रा पर जाते थे तो वापस आने पर ही परिवार के लोगों से मिलते थे। आठ दिन यात्री भी निश्चिंत व घर वाले भी निश्चिंत रहते थे। आज कल यहाँ से निकलते ही हर स्टेशन पर, हर घंटे फोन लगाकर जानकारी देते-लेते रहते हैं, बिना वजह की चिंता जिनमें कोई सार नहीं निकलता। खुद भी विकल्प में रहना और दूसरे को भी विकल्प में डालना। हमारे मन के अंदर ऐसी अगर आदतें बन जाती हैं तो इनसे निपटारा पाना बड़ा कठिन हो जाता है। आप मोबाइल पर बातचीत का नियंत्रण रखें। फालतू बातें न करो। इसलिए आचार्य कहते हैं कि बाहर से नाता तोड़ो। जब आप शांत होकर बैठोगे तब भी आपके मन में

बहुत विचार आएँगे। आप अपने लिए कभी वह समय निकालने की सोचना कि आप आँख बंद करके बैठे हो और हमारे अंदर कोई भी वचन न उठे, कोई भी शब्द न निकले, विचारों से रहित होकर के एक मिनट भी बैठ जाए तो आप देख लेना आप एक मिनट भी शांत नहीं बैठ पाओगे। तुरंत विकल्प होगा क्योंकि आपने बाहरी वचनालाप लिया है। इसलिए सबसे पहले अपनी आत्मा को शांत करने के लिए एक योग करो। जैन दर्शन में बीसों प्रकार के योग लिखे हैं, उनमें से यह भी एक है जिसे वचन योग कहा जाता है कि बाहरी लोगों से कम से कम बोलो। अपने घर के, परिवार के लोगों से बातचीत करो। वह भी सीमित, जितना काम है उतनी। यही जब आदत बन जाएगी तो आपका मन शांत हो जाएगा। आप जब अशांत होते हो जब आप जरूरत से ज्यादा बोल जाते हो। अगर कभी किसी से झगड़ा बढ़ता है या कलह बढ़ती है उसका सबसे बड़ा कारण है आपका बोलना। सामने वाला बोल रहा है आप केवल उसकी सुन लो। अपने मन में इतनी खलबली तब नहीं होगी जब आप उसको बोलकर, जवाब देकर और फिर जवाब पाकर जो प्रक्रिया बढ़ जाती है उससे कलह व झगड़े बढ़ जाते हैं, खलबली बढ़ जाती है। ये अध्यात्म हमें भीतर से शांत होना सिखाता है। जब आदमी भीतर से शांत होगा तो बाहर अपने आप शांति आने लग जाएगी। अध्यात्म के योग के साथ में जो व्यक्ति जीवन जीता है उसका जीवन अपने आप अच्छा बनता चला जाता है। इससे घर व परिवार में भी सुख और शांति महसूस होगी। अगर कोई हमसे ज्यादा जवाब-सवाल भी करे तो भी हमें उससे सवाल-जवाब नहीं करना और अगर कोई हमें ज्यादा कुछ सुनाए भी तो हमें तुरंत उसको रिप्लाय देकर के ज्यादा नहीं सुनाना। हमें कम बोलना और जरूरत पड़े तो बिल्कुल ना के बराबर। ऐसा अगर आपका नेचर बन जाएगा तो घर में कभी भी आपका कलह बढ़ेगा नहीं। कलह तभी बढ़ता है जब आप भी उसके साथ में प्रत्युत्तर देने लग जाते हो, मुँहतोड़ जवाब देते हो।

ये एक गलत आदत है। जब व्यक्ति अध्यात्मिक होने लग जाता है, शांत होने लग जाता है तो वह किसी को भी ऐसे जवाब नहीं देता। दूसरे की बात सुनकर के शांत रह जाना अपने आप में बहुत बड़ी योग साधना है और यदि इस योग साधना की परिणति आप में शुरू हो जाए तो आपको अपने घर में भी शांति लगेगी। सामने वाला कब तक बोलेगा, वो देख लेता है कि कोई जवाब नहीं मिल रहा तो वो अपने आप शांत हो जाता है। आप चाहते हो कि सामने वाला कम बोले तो स्वयं को कम बोलना होगा। आपका अधिकार आपके दिमाग पर है, आपके ऊपर है। आपका अधिकार किसी दूसरे के ऊपर ज्यादा नहीं है, थोड़ा हो सकता है। ज्यादा अधिकार जमाओगे

तो बात बिगड़ती जाती है, हो सकता है हमेशा के लिए संबंध तोड़ने की नौबत आ जाए। लंबे समय तक जो मोबाइल व फेसबुक में चेटिंग करते हैं वो चीटिंग के पात्र बन जाते हैं। आचार्य कह रहे हैं कि यदि तुम्हें अध्यात्म की ओर झुकना है तो तुम्हें सब कुछ मिलेगा, भीतर से साम्यता हो, समता का भाव आए, साम्य रस की परिणति हो और वो परिणाम भीतर से उत्पन्न होगा तो आपका बाहरी स्वास्थ्य भी अच्छा बना रहेगा। बाहरी स्वास्थ्य और अंतरंग स्वास्थ्य ये दोनों एक-दूसरे से जुड़ी हुई चीजें हैं। स्व में स्थित होना मतलब उसे पर की चिंताओं में नहीं उलझना। जो दूसरे की चिंताओं में नहीं उलझता और साम्य भाव रखता हो और हमेशा मानसिक विकल्पों से दूर रहता हो उसका नाम है समाधि। उसी का नाम है योग और उसी का नाम है चिंता का रुक जाना, चिंता निरोध। अपने अंदर ऐसी प्रवृत्ति उत्पन्न करो कि जो सामने आए वह हम कर लें, अपना कर्तव्य कर लें और कर्तव्य करने के आगे-पीछे हमें कोई चिंता की जरूरत न पड़े कि क्या होगा। सबसे बड़ी चिंता का सूत्र है जिसके मन में इस बात का डर बना रहता है कि उस समय क्या होगा। व्यक्ति करने के लिए कुछ जा रहा है, कहीं पर कोई कार्य करना है पर पहले से अगर वह डर जाता है कि क्या होगा, कैसे होगा, क्या पता, वहाँ कैसे लोग होंगे, इस प्रकार की चिंता करने वाला व्यक्ति कभी भी अच्छे काम नहीं कर पाता व अच्छे ढंग से भी नहीं कर पाता क्योंकि उसका समय चिंताओं में उलझ जाता है। बड़ी-बड़ी एक्जाम देने वाले लोग इंटरव्यू में इसलिए रह जाते हैं। आपकी तात्कालिक परिस्थिति से गुजरने की क्षमता, बिहेव करने की क्षमता कैसी है वो इंटरव्यू में जाना जाता है। आपसे ऐसे प्रश्न पूछे जाते हैं कि आप समझ नहीं पाते। तत्काल निर्णय लेने की क्षमता देखने का नाम ही इंटरव्यू कहलाता है। उस समय पर आप कितने चिंता में हैं, कितने भयभीत हैं और इस वजह से अच्छा परफोरमेंस नहीं दे पाते। पहले से अभ्यास नहीं होता कि चिंता से कैसे बचा जाए।

चिंताओं से मुक्त रहने का जो अभ्यास है वो योग अभ्यास है। आप बाहर के लोगों से कम जुड़ने का प्रयास करें, शांत होकर बैठें व अपने मन में खुद सोचें कि हमें दो मिनट तक कोई भी बात सोचनी नहीं है। २ मिनट तक किसी भी वचन का कोई भी उद्भव करना नहीं है। कोई शब्द नहीं उत्पन्न होने देना है। आपके लिए बहुत कठिन होगा, आप बैठ नहीं सकते। बैठने के लिए अध्यात्म के कुछ सूत्र आपको लागू करने पड़ेंगे, लोग दिखते हैं। प्रकृति दिखती है, दुनिया दिखती है। उस दुनिया को देखकर भी हमारे अंदर विकल्प नहीं आए ये प्रयास हम कर सकते हैं।

श्लोक–१८

यन्मया दृश्यते रूपं तन्न जानाति सर्वथा।
जानन्न दृश्यते रूपं ततः केन ब्रवीम्यहम्।।१८।।

जो भी मुझे नयन गोचर हो रहा है, ना जानता वह कभी जड़ तो रहा है।
जो जानता वह न इन्द्रियगम्य आत्मा, बोले तदा किसलिये किस संग आत्मा।।१८।।

आचार्य महाराज इस श्लोक को प्रतिदिन दोहराते हैं और इसके माध्यम से स्वस्थ होते हैं व अपनी आत्मा में लीन होते हैं। बाहरी लोगों से मुक्त होने का उपाय है हमारा चिंतन। पूरे विश्व को देखने के बाद, सबसे मिलने के बाद, सबसे बात करने के बाद आप ये विचार करना कि मुझे जो भी नयनगोचर हो रहा है, जो भी मेरी दृष्टि में आ रहा है, जो भी दिख रहा है वह सब जड़ है, चेतन नहीं है। जो हमें दिखने में नहीं आ रहा है, जो हम जान रहे हैं, जो देखने वाला है वह चेतन है। जो दिख रहा है वह अचेतन है और जो देखने वाला है वो चेतन है। आप कहोगे महाराज हम तो चेतन हैं। आप अचेतन कैसे कह रहे तो आप नहीं दिख रहे आपका शरीर दिख रहा है, शरीर जड़ है। आप जो हैं, आपको किसी दूसरे की आँख से नहीं देखा जा सकता, कोई भी दूसरा आपको अपनी आँखों से देख नहीं सकता। मैं देख रहा हूँ, मैं जान रहा हूँ, मैं चेतन हूँ और जब मुझे ये दिखाई देने लग जाता है कि मुझे चेतन दिखाई नहीं दे रहा है तो अचेतन से कब तक बात करूँ और क्यों बात करूँ, ऐसा जिस दिन आपके मन में विचार आने लगेगा, आपका मन स्वस्थ्य होने लगेगा। शरीर की स्वस्थता के साथ-साथ मन की स्वस्थता का भी योग सीखो और वह योग आपको समाधि तंत्र के माध्यम से सिखाया जा रहा है। जैसे ही आपका मन अशांत हो, दिन भर के थके हुए भी हों, परेशान हो तो आप अपने मन में एक विचार लाओ कि दुनिया में जितना भी हमें दिखने में आ रहा है सब अचेतन है, जड़ है, सेंसलेस है और जो हम हैं वो केवल सेंसेटिव है, सेंस है वही चेतन है और वही आत्मा है। आपको लगेगा कि दुनिया एक अलग

पागलपन की हवा में दौड़ रही है, हम केवल स्थायी रूप में दुनिया को पागलपन की हवा में दौड़ते हुए देख रहे हैं। जैसे ही आपके मन में ये भाव आएगा, आप अपने आप में स्थिर हो जाओगे। आपका मन कितने भी विकल्पों में पड़ा हो, उसे शक्ति मिलेगी, शांति मिलेगी। आप जिससे भी संबंध कर रहे हो वो सब अचेतन भावों के साथ संबंध होता है, अचेतन शरीर के साथ संबंध होता है। आपका सीधा चेतन से जुड़ाव तब होगा जब आप अपनी चेतना से जुड़ जाओगे। जैसे ही आप अपने आपको चेतन देखोगे तो सारे के सारे लोग अपने आप स्थिर रूप में दिखाई देंगे जो आपके लिए परेशानी का कारण बन रहे हैं। एक तरफ सारा संसार और एक तरफ हमारी आत्मा इसलिए कहा जाता है कि जैसे ही तुमने अपनी आत्मा को जाना, तुमने सबको जान लिया। सबसे उठने वाले जो विकल्प हैं वो एक ढेर में डाल दो, वे सब जड़ हैं, अचेतन हैं, इस चेतन आत्मा का जड़ के साथ में संबंध नहीं हो सकता और जब कोई संबंध नहीं होता तो आदमी ध्यान में गहरा उतरने लग जाता है।

ध्यानगामी

कई लोग पूछते हैं कि महाराज हमें ध्यान करना बताओ, क्या ध्यान करें, किसका ध्यान करें, ये ध्यान की प्रारंभिक भूमिका है। पहले वचनों को बोलना छोड़ो, दूसरों से संबंध तोड़कर के अपने मन में ये चिंतन लाकर के बैठो कि ये सारा संसार जड़ है, ये मुझे कभी भी न देख सकता है न समझ सकता है। मैं चेतन हूँ और मैं चेतन इस संसार को तभी समझ सकता हूँ जब मैं स्वयं को चेतन अनुभव करूँ। इस प्रकार की जैसे ही आपके मन में मनोवृत्ति आएगी, आप ध्यान में उतरने लग जाएँगे। ये ध्यान में उतरने की सीढ़ी है। सारा संसार जड़ है, मैं चेतन हूँ। मैं चेतन होकर दूसरे जड़ संसार से क्यों बोलूँ, बात करूँ। आप शांत बैठने का प्रयास करो, आपका मन अपने आप ध्यानगामी होने लगेगा। ये सबसे बड़ी पद्धति है ध्यान में उतरने की, मौन हो जाना। ध्यान की शुरुआत यहीं से होती है। आचार्यों ने कहा है कि हमें कम से कम उस समय पर मौन होना चाहिए जब हम भोजन करते हैं। आपको पहले बताया था कि भोजन करने से पहले ९ बार णमोकार मंत्र बोलना और बाद में भी। **भोजन करना भी एक योग है,** भोजन बनाना भी एक योग है, भोजन को पचाना भी एक योग है। इस योग की चर्चा भी आपको जैन दर्शन में मिलेगी। आहार योग। कई प्रकार के योग होते हैं। आपने तो केवल एक प्राणायाम योग ही सुना है- पंच

समिति योग, त्रिगुप्ति योग, लेश्या योग, ध्यान योग, अध्यात्म योग, मंत्र योग, जाप योग, कायोत्सर्ग योग, पद्मासन योग, प्रतिमायोग, आहार आदि योग। ये अनेक प्रकार के योग हैं, पूरा जैन दर्शन योगमय है। आप यदि जैन दर्शन को समझोगे तो योगी बनते चले जाओगे। ये योग उतने नहीं है जितना हमें सिखाया जा रहा है, ये योग मन और आत्मा से भी जुड़ा हुआ होता है। उसी योग साधना में आपके लिए अगर कुछ एप्लीकेबल कोई चीज है तो वह आपके भोजन के साथ है क्योंकि हम जो भोजन करते हैं उसका ही प्रभाव हमारे दिमाग में पड़ता है और दिन में हमें जो भी विचार आएँगे वो हमारे भोजन के अनुरूप आएँगे।

आचार्यों ने कहा है कि अगर आपको अपना मन शांत रखना है तो भोजन से पहले ९ बार णमोकार मंत्र पढ़ो और सब विकल्प छोड़कर के शांति के साथ भोजन करो तो भीतर भी शांत परिणमन होगा और यदि हड़बड़ी के साथ भोजन करोगे तो मन कभी भी शांत नहीं होगा। पहले के लोग शुद्ध वस्त्र पहनकर चौके में बैठकर शांत भाव से भोजन करते थे। आज आप लोग डाइनिंग टेबल पर पैर लटकाकर, टीवी देखकर, गाने सुनकर, मोबाइल कान में लगाकर भोजन करते हो तो वो अशांति का कारण होता है, भोजन तो कम से कम शांति से करना सीखो। मौनपूर्वक किया भोजन आपके शरीर में लगेगा, स्वास्थ्यवर्धक होगा। हड़बड़ाहट में भोजन करने वालों का डायजेशन हमेशा गड़बड़ मिलेगा। आप भी सुधरो, आपको देखकर के घर के बच्चे अपने आप सुधर जाएँगे। पालथी मारकर बैठकर, सुखासन में भोजन करने से जो जठराग्नि होती है वह सही ढंग से ऊपर उठती है, उसकी क्षमता बढ़ती है और जब आप पैर लटकाकर के भोजन करते हैं तब हमारा आसन इतना गलत होता है कि पैरों में खून रहता है। खून न शरीर में रहता है न पेट में रहता है न दिमाग में रहता है। भोजन के समय पर खून का सर्कुलेशन बराबर होना चाहिए और उस समय पर पेट में सबसे ज्यादा खून की जरूरत होती है। पूरी बॉडी वहीं से खून को खींचती है परन्तु पैर लटकाने से सही प्रवाह नहीं बन पाता। डायजेशन, जठराग्नि सब सही बनी रहेगी अगर मूलाधार चक्र सही बनेगा तो रोगों से मुक्ति मिलेगी, स्वास्थ्य अच्छा बनेगा। ये जो योग साधना है उसमें साधनों के जितने भी आयाम बताए जा रहे हैं उन्हें हमें अपनाना है और अपने जीवन को अच्छा बनाना है। अपना अंतर्मन अच्छा होना अर्थात् भीतर व बाहर से बिल्कुल खाली होना। जो भीतर बाहर नग्न है वो ही भीतर से आनंद में है और उन्हीं के द्वारा इस प्रकार के योग की पद्धति बताई गई है। आप भी अपनाएँगे तो आपको लाभ होगा।

श्लोक–१९

यत्परैः प्रतिपाद्योऽहं यत्परान् प्रतिपादये।
उन्मत्तचेष्टितं तन्मे यदहं निर्विकल्पकः।।१९।।

मैं योग्य शिष्य दल को नित हूँ पढ़ाता, या ज्ञान को सुगुरु से सहसा बढ़ाता।
उन्मत्त–सी यह यहाँ मम मात्र चेष्टा, मैं निर्विकल्प, मम निश्चय से न चेष्टा।।१९।।

जब जीव स्वरूप को जान लेता है, जड़ और चेतन को समझने लग जाता है और मौन हो जाता है तो वह बहुत देर तक मौन रह नहीं पाता क्योंकि उसके भीतर अंतर विचारों का जो सिलसिला चलता है वह रुक नहीं पाता। उसके अंतरंग से जो विकल्पों की तरंगें उठती है वो रुक नहीं पाती और वह जीव कुछ न कुछ सोचने लग जाता है। अपनी-अपनी चेतना के अनुसार उसके सोचने की वृत्तियाँ बनती हैं। जो व्यक्ति जिस विषय में, जिस भूमिका में रह रहा है वह उस भूमिका के अनुसार सोचने लग जाता है। उसकी इच्छानुसार उसके मन में विचार भी आने लग जाते हैं। आचार्य कहते हैं कि इन विचारों को तुम रोको, थामो। यहाँ पर मोक्ष मार्ग का प्रसंग चल रहा है गुरुजन है, आचार्य परमेष्ठी है, उपाध्याय जी है, साधु परमेष्ठी है, वे भी अंतर्ध्यान करते हैं, उनके मन में भी **विकल्प** आ सकते हैं। गुरु को ये विकल्प हो सकता है कि यदि उनसे बढ़कर कोई गुरु हो तो हम इनसे कुछ और सीखें। उनके सामने कोई सिखाने वाले हो, सीखने वाले हो तो उसके मन में ये भी विचार आ जाता है कि हम इन्हें कुछ सिखा दें। ये भी एक अंतर्मन का विकल्प है और आचार्य कहते हैं कि इसको भी तुम रोको क्योंकि ये विकल्प तुम्हें निर्विकल्प नहीं होने देता।

आत्मशरण

ये अध्यात्म की गहराइयों की बात है कि जिस गहराई में पहले किसी शिष्य ने किसी को

अपना गुरु बनाकर उनसे अध्यात्म के सूत्र सीखे हो और उनका प्रयोग करते हुए वह जब बैठ जाता है तो उसे कभी-कभी गुरु की याद आने लग जाती है वह सोचता है कि हमें कोई गुरु और सिखा दें। आचार्य कहते हैं कि गुरु का भी आलंबन छोड़ना पड़ता है और गुरु को भी भूलना पड़ता है क्योंकि जब तक तुम किसी भी पर को याद रखोगे तब तक तुम स्व के पास में आ नहीं पाओगे। गुरु की शरण को भी छोड़ना पड़ता है और गुरु के आलंबन को भी छोड़ना पड़ता है और गुरु के ध्यान को भी छोड़ना पड़ता है। सबको छोड़ना पड़ता है, जो विचार हमें अपने से दूर हटा दे उन सब विचारों को छोड़ना पड़ता है लेकिन वो विचार छोड़ने से पहले ये भी विचार करना कि उस विचार को छोड़ने के बाद में हमारे अंदर कोई दूसरा विचार न आए। गुरु का विचार व ध्यान छूटे तो उसके बाद बस केवल अपना ही विचार व ध्यान आए न कि दुनिया के रागी–असंयमी लोगों का ध्यान आने लग जाये। गुरु का ध्यान **प्रशस्त ध्यान** है लेकिन वह निर्विकल्प नहीं है, विकल्प सहित है और जब वह ध्यान भी छूटे तो उस समय पर हमारे अंदर कोई अप्रशस्त ध्यान नहीं आए और निर्विकल्प ध्यान में हमारी प्रवृत्ति हो जाए तो आचार्य कहते हैं वह ध्यान भी तुम छोड़ देना। अरिहंत की शरण भी छोड़ देना, सिद्ध की, आचार्य की, उपाध्याय और साधु की शरण भी छोड़ देना। इतनी बड़ी बात कहने की हिम्मत केवल इस जैन दर्शन में है।

जिस जैन दर्शन में हमें ये बताया जाता है कि पंच परमेष्ठी हमारे शरण है उसी जैन दर्शन में आचार्य कहते हैं कि तुम इन सबकी शरण को भी छोड़ दो, इनके भी विकल्प छोड़ दो अगर तुम्हारे अंदर इतनी हिम्मत आ गई हो कि तुम अपनी आत्मा में लीन हो सकते हो तो तुम पहले अपनी आत्मा में लीन हो जाओ। किसी के लिए कोई अपराध नहीं होगा लेकिन शर्त एक ही है कि इन शरणों को छोड़ने के बाद में आत्मा की शरण में जाना अन्य किसी विकल्प या परिवार के ध्यान में मत चले जाना। **आत्मशरण** में आने पर आप सोच सकते हो कि मैं किसी के द्वारा समझाया जाऊँ या कोई मुझे थोड़ा सा और बताए। ध्यान लग नहीं रहा है, वो लगेगा कैसे। जैसे ही आप ध्यान लगाने में बैठोगे आप सोचने लगोगे, विधि जब तक याद करोगे, तब तक ध्यान लगेगा नहीं क्योंकि उसका नाम ध्यान है नहीं। जब आपके दिमाग से वह विधि भी छूट जाए और आपको केवल निर्विचार की वह स्थिति बने जिसमें कोई विचार ही न रहे कि ध्यान कैसे लगाया जाता है। निर्विचार, निर्विकल्प ही ध्यान कहलाता है बाकी तो सब चिंतन है, वह ध्यान से पूर्व की एक तैयारी है। जैसे आप नींद लेने से पहले भी तैयारी करते हो।

ध्यान भी एक गहरी निद्रा है और निद्रा भी एक गहरा ध्यान है। ध्यान में भी वही होता है जो निद्रा में होता है। ध्यान एक जाग्रत निद्रा है और निद्रा एक अंधकार का ध्यान है। ध्यान से हमारे अंदर एक ऐसी प्रवृत्ति उत्पन्न होती है कि उसमें केवल एक स्वसंवेदन होता है और उस निर्विचार स्थिति में भी आनंद आता है और स्थिति को अगर आप समझना चाहो तो आप अपनी निद्रा की स्थिति से उसको समझ सकते हो। नींद लेने से पहले आप अपना बिस्तर लगाते हों, तकिया-चादर आदि जमाते हो और बाधाओं की चीजें हटाते हों, एसी, पंखा चालू करते हों और आप लेट जाते हो और कुछ देर सोचते हो कि नींद आ जाए, नींद आ जाए पर जब तक सोचते हो तब तक नींद नहीं आती। सोचना बंद हुआ और नींद आ जाती है। अगर बहुत देर तक नींद नहीं आए तो आपको आकुलता होने लग जाती है, इसी तरह से ध्यान की स्थिति में होता है। जब कोई साधक ध्यान में उतरता है तो वह ध्यान करना चाहता है, पर ध्यान नहीं होने पर उसे भी बेचैनी होने लग जाती है कि ये चिंतन करते-करते हमने अपने दिमाग को और गर्म कर लिया। ध्यान हमारे लिए सिरदर्द हो गया। ध्यान में तो शांति मिलनी चाहिए थी, निर्विचारता व निर्विकल्पता आनी चाहिए थी वो नहीं आ पा रही है तो उससे पूर्व में यदि ये विकल्प आ जाए कि अब हमें कोई ध्यान करना सिखा दे। उधर वह व्यक्ति उठे और किसी से कहे कि मुझे नींद लेना सिखा दो, मुझे नींद नहीं आ रही है। अब नींद कैसे लें ये कोई कैसे सिखाए। आप यही कहोगे कि भैया तू लेट जा, बिल्कुल निश्चिंत हो जा, तुझे नींद आ जाएगी। निद्रा का और चिंता का विरोधी भाव है। इसी तरह जब कोई ध्यान में उतरता है तो उससे कहा जाता है कि तू निर्विचार हो जा, तुझे ध्यान लग जाएगा। यदि वह इधर-उधर भटकेगा, दूसरों से पूछेगा तो उसकी नींद उड़ जाएगी और ध्यान से भी वह दूर हो जाएगा। नींद के लिए जो करना होता है वही आपको ध्यान के लिए करना होता है। जैसे आप लेटे रहो तो नींद जब आनी होगी तब लग जाएगी, उसी तरह आप बैठे रहो, भाव करते रहो ध्यान लग जाएगा। ध्यान के लिए आप अपना एक लक्ष्य बनाकर के बैठो कि मुझे आज अपना संवेदन करना है। आचार्य कहते हैं कि तुम ये भी मत सोचो कि तुम्हें पंच परमेष्ठी का ध्यान करना है, तुम केवल ये विकल्प करो कि जो है हमें केवल उसी की अनुभूति करना है और उस अनुभूति में जब भी कोई विचार उठे तो उस विचार को केवल रोकना है। तब आपको क्षण-क्षण में ऐसी स्थिति बनेगी जैसे कभी नींद आती है, टूट जाती है उसी तरह थोड़ी देर के लिए ध्यान लग जाता है फिर छूट जाता है और कभी ऐसी गहरी निद्रा हो जाती है कि आपको

पता नहीं पड़ता कि आप कब सोए थे और कब छह घंटे हो गए और उसके बाद आपकी आँख खुली।

ऐसी निद्रा की तरह जब ध्यान की मुद्रा बन जाती है तो उस समय पर भी एक अंतर्मुहूर्त ही लगता है। साधक को अपने आप में स्थिर होने के लिए और उसे केवलज्ञान की प्राप्ति हो जाती है। एक अंतर्मुहूर्त का ध्यान हमें केवलज्ञान दिला देता है। इससे ज्यादा हमें कुछ नहीं करना पड़ता और उस ध्यान की स्थिति तक पहुँचने के लिए आचार्य कहते हैं आप विकल्प करना छोड़ दो। एक सूत्र है- द्वंद से रहित हो जाओगे, वहीं पर तुम अध्यात्मिक हो जाओगे। द्वंद माने झगड़ा–कलह नहीं बल्कि दो के पर्यायवाची शब्दों में द्वंद भी एक शब्द आता है। द्वंद माने दो। जब तक अपने आपको दो के रूप में मानोगे तब तक तुम ध्यान में, अध्यात्म में उतर नहीं सकोगे। अध्यात्म अकेला होता है और अध्यात्म में उतरने वाला व्यक्ति अकेला ही चलता है। आध्यात्मिक व्यक्ति किसी की सहायता नहीं लेता, सहारा नहीं लेता। जहाँ पर सहारा लेने की बात आ जाती है वहाँ पर अध्यात्म छूट जाता है। आपको कितना कुछ छोड़ना पड़ेगा, किसी की सहायता नहीं लेना पड़ेगी, अकेले रह जाओगे तब आपके अंदर अध्यात्म आएगा। अध्यात्म की प्रवृत्ति के लिए निर्ग्रंथ व्यक्ति होना चाहिए।

एक साधु के पास में आप जैसा एक शिष्य पहुँच गया, कहने लगा महाराज आप बहुत ध्यान की बातें बताते हैं, अनेक प्रकार से ध्यान लगाने की तरकीब सुनाते हैं, हमें भी बता दो कि ध्यान कैसे लगाया जाता है। साधु ने उससे कहा तेरा ध्यान लग जाएगा, तू थोड़ी सी खोज कर। क्या खोज करूँ। ऐसे शब्द की खोज कर जो एक हाथ से उत्पन्न होता हो। **एक हाथ का शब्द** लेकर के आ। वह शिष्य एक हाथ के शब्द की खोज करने के लिए निकल गया, ढूंढता रहा, एक हाथ का शब्द कहाँ मिलेगा। सोचता रहा गुरु ने हमें मूर्ख तो नहीं बना दिया लेकिन गुरु ने कहा है तो खोजकर के ही लौटना है। सोचते-सोचते वो जंगल की ओर चला गया और बैठ गया। अंधेरा हो गया तो उस समय पर सनसनाहट की आवाज आई। वृक्षों के सनसनाहट की आवाज आई तो उसने कहा गुरु के प्रश्न का उत्तर मिल गया। दौड़ता हुआ गुरु के पास गया और कहने लगा गुरुजी आपके प्रश्न का समाधान मिल गया। एक हाथ का शब्द मिल गया। जब मैं वृक्ष के नीचे बैठा था, वहाँ पर कोई हाथ नहीं चला रहा था लेकिन शब्द आ रहे थे, जा रहे थे, उस शब्द में हमने समझ लिया कि ये एक हाथ का शब्द है। गुरुजी कहते हैं ऐसा हो ही नहीं सकता क्योंकि

वहाँ पर पत्तों से पत्ते रगड़ते हैं, वृक्ष से वृक्ष रगड़ते हैं और हवा जब वृक्षों से टकराती है तब वह शब्द के रूप में सुनाई पड़ता है। वो एक हाथ का शब्द नहीं है जा फिर से पता लगा। वो फिर से चला गया और घूमते-घूमते नदी के किनारे पहुँच गया। थोड़ी देर नदी किनारे बैठने के बाद उसे लगा कि नदी में से आवाज आ रही है, कल-कल की ध्वनि आ रही है और उस ध्वनि को सुनकर उसे लगा कि ये हमारा उत्तर मिल गया। फिर जाकर वह गुरु को बताता है कि नदी से शब्द उत्पन्न हो रहा था, बिना किसी सहारे के, अपने आप आवाज सुनाई पड़ रही थी। यही एक हाथ का शब्द है। गुरुजी ने कहा ये भी सही नहीं है क्योंकि वहाँ पर लहरों से लहरें टकराती हैं और टकराने का शब्द दो से ही उत्पन्न होता है। जल से जल टकराता है, लहरों से लहरें टकराती हैं वो भी दो से उत्पन्न हुआ शब्द है। तुम एक हाथ का शब्द लेकर के आओ। वह शिष्य सीखना चाहता था तो वो फिर से चला गया, एकांत स्थान में जाकर बैठ गया और उसने सोच लिया अब मुझे बाहर की कोई आवाज नहीं सुनना क्योंकि बाहर की कोई भी आवाज हो द्वंद से उत्पन्न होती है और बाहर का हर शब्द द्वंद के साथ रहता है। अब तो हमें हवा भी नहीं सुनना, वृक्ष, नदी की आवाज नहीं सुनना। हमें अब कुछ नहीं सुनना और वह जाकर के इस ढंग से बैठ गया कि बैठने के बाद में उसके अंदर से एक विचार उत्पन्न हुआ और उस विचार में वह इतना खोया कि उसे पता भी नहीं चला कि वह कब यहाँ पर आया था और यहाँ बैठे-बैठे हमें कितने घंटे हो गए। उसके बाद में जब वह गुरु के पास गया तो उसने कहा कि गुरुजी हमें आज एक हाथ का शब्द मिल गया। गुरु ने पूछा क्या मिल गया? आज हमारे अंदर से ऐसी परिणति उत्पन्न हो गई कि हम बिना कारण के एक घंटे तक शून्य में बैठे रहे और हमें पता नहीं पड़ा हमारा एक घंटा कैसे निकल गया। हमारे अंदर कोई भी विचार नहीं आया तब गुरु ने कहा इसी का नाम है **शब्दातीत और विचारातीत ध्यान,** यही तेरे लिए निर्विचार ध्यान की परिणति है, वो तुझे कहीं बाहर नहीं मिलेगा।

बाहर का एकांत भी भीतर के एकांत के लिए सहायक बने तो वो बाहर का एकांत है, नहीं तो आपका मन किसी भी नदी के किनारे पर जाकर के उलझ जाता है, उस नदी की तरंगों को देखने में। आपका मन किसी भी गार्डन में जाकर के उलझ जाता है उन फूलों की खुशबू लेने के लिए। आपका मन किसी भी पहाड़ी पर जाकर उलझ जाता है पूरा का पूरा एक दृश्य लेने में, आप वहाँ जाकर के भी मोबाइल से फोटो खींचने लग जाते हो। उस पहाड़ी पर जाकर के भी आपको अपने अस्तित्व की याद नहीं आती। ऐसा कोई व्यक्ति है जब वो एक निर्जन स्थान पर

जाए और वहाँ जाकर वह केवल शांति से बैठ जाए। आप सम्मेद शिखर जाते हो, भागते–भागते ही चढ़ते हो, भागकर ही उतरते हो और नीचे आकर ऐसे गिर पड़ते हो कि फिर एक साल बाद जाने का मन बनाते हो। लेकिन उस भागने की स्थिति में ठहरने की स्थिति क्यों नहीं बनती क्योंकि आपके अंदर वो विचार ही नहीं है कि ठहरने में क्या आनंद है और ठहरने से हमें क्या मिलेगा। आप दौड़ने में विश्वास करते हो आपके अंदर ऐसी वृत्ति बनी हुई है कि बस चलो, चलो, जल्दी आओ जल्दी चलो। उसके अलावा आपके मन में कोई विचार नहीं रहता। आप सम्मेद शिखर जाते हो और जिन टोकों से भगवान् को मोक्ष हुआ जहाँ भगवान् सिद्ध बने उन टोकों पर आपको कभी भी ऐसा मन हुआ कि यहाँ पर हम ५ मिनट बैठ जाएँ और थोड़ा सा विचार करें १० सेकंड के लिए उनका ध्यान करें कि वे इसी स्थान से ठीक ऊपर सिद्ध अवस्था में विराजमान हैं। हम उनकी आत्मा का थोड़ा सा ध्यान कर लें, हमें उनकी निर्विचार परिणति को लेना है। आपके मन में कुछ भी नहीं रहता, जाना, चावल चढ़ाना। संघ लेकर जाना तो ये ही सोचते रहना कौन हमसे आगे निकल गया और कौन पीछे रह गया। यात्रा का आनंद तो अकेले में ही होता है। अध्यात्म का आनंद भी अकेले में ही होता है।

जब हम पहली बार सम्मेद शिखर की यात्रा करने के लिए गए थे, तब हम मुनि अवस्था में ही सर्वप्रथम यात्रा की थी। हम चार महाराज थे व प्रमाणसागरजी महाराज को भी हमने वहीं पर बुला लिया कि हम नहीं जानते कैसे यात्रा होगी तो आपको ही करानी है, वो भी आ गए व एक आर्यिका संघ था। अब देखो, इतना सारा परिवार हो गया। उस परिवार की थोड़ी सी अनुभूति बताते हैं। ठीक ६ बजे उजाला होने पर निकल गए। ७.३० बजे चोपड़ा कुंड पहुँच गए, वहाँ बहुत भीड़ थी। १ जनवरी का दिन था। दर्शन करके चलने को हुए तो महाराज कहते हैं रुक जाओ। आर्यिका माताओं को लेकर आए हैं तो उनको साथ लेकर चलना पड़ेगा। उनको साथ लेने के लिए एक घंटा वहाँ पर रुकना पड़ा। फिर उनके साथ धीरे-धीरे चलना पड़ा। महाराज ने कहा कि बहुत भीड़ है तो अपन उल्टी यात्रा करते हैं पहले पार्श्वनाथ टोंक पर दर्शन करेंगे। यात्रा पार्श्वनाथ टोंक से प्रारंभ की। लोग हमें आते हुए मिलते थे। चलते-चलते लगभग १२ बजे तक मुनिसुव्रतनाथ भगवान् की टोंक पर आ गए और सामायिक का समय हो गया तो सब महाराजों ने अपना-अपना स्थान चुन लिया। मुनिसुव्रतनाथ भगवान् की टोंक के पीछे एक शिला आज भी आपको मिलेगी, अपन उस पर सामायिक करने के लिए बैठ गए और एक घंटा निर्विचार स्थिति में निकल गया

व इतनी अच्छी सामायिक आज तक कभी हो नहीं पाई। १.३० बजे तक पूरी यात्रा हो गई और ३ बजे तक नीचे आ गए। भावना उपवास के साथ वंदना करके की थी सो हो गई। फिर तय हुआ कि एक वंदना सबके साथ हो गई और एक स्वतंत्र रूप से करेंगे। १ महीना रुकना हुआ और २१ वंदना करके आया व ३ वंदना डबल-डबल की। पार्श्वनाथ टोंक तक गए और २४ टोंक पर वापस एक चक्कर लगाया, जहाँ कहीं पर भी १२ बज जाते थे, अपने आप सामायिक के लिए बैठ जाते थे। वहाँ पर आत्मध्यान की अनुभूति एकांत में होती है वो आनंद आपको कहीं दूसरी जगह आ नहीं सकता। ऐसी जगहों पर जाकर थोड़ा सा आत्मा का आनंद लिया करो। इस तरह की यात्रा का महत्त्व तब है जब विचार करो कि मैं निर्विकल्प हूँ। मैं कौन हूँ? मेरा स्वभाव क्या है? कैसा है? मैं निर्विकल्प हूँ। मेरे स्वभाव में विकल्प नहीं है जो विकल्प उठ रहा है, वह मेरे चित्त का दोष है। ये जितने भी चित्त के विकल्प हैं, इनको हटाते जाओ, छोड़ते जाओ, उनको मारना नहीं।

लोग कहते हैं अपने मन को मार लो, समाप्त कर लो पर आचार्य कहते हैं नहीं मारने का नाम धर्म में कहीं है ही नहीं, किसी को भी मत मारो। अपने चित्त को/मन को भी मत मारो क्योंकि मारने में तो हिंसा हो जाएगी, उसको दूर कर दो, अपने से उस विचार को दूर कर दो। उसे हटाने के लिए दूसरा विचार ले आओ। लोग कहते हैं कि जैन धर्म में तो इंद्रियों का दमन किया जाता है, मन को मारा जाता है, इस पीड़ा को हम कैसे सहन कर सकते हैं। हम जैन धर्म को नहीं मानते। ये उनकी अज्ञानता है। **दमन** करने का मतलब है मदद का अभाव कर देना। जो इंद्रियों का मद है उसका उल्टा करें तो दम हो जाएगा। मद से रहित जैसे ही इंद्रिया हो गई वे दमित हो गई। उनको मारना नहीं पड़ता। दमन देखना हो तो कुंभ के मेले में साधुओं द्वारा किए गए उपाय के रूप में देख सकते हैं, पर यहाँ दमन का अर्थ इंद्रियों की वृत्ति को रोकना है यानि इंद्रिय निरोध व्रत कहा जाता है। वृत्तियों को रोकने के लिए दमन की आवश्यकता नहीं है। उनके मद को समाप्त करना और भाव को/विचार को बदल देना। मन के अंदर अगर विचार आए तो उस विचार को सद्विचार से हटा दो इसी का नाम है अपने चित्त/मन का दमन हो जाना और इसमें आपको कोई पीड़ा नहीं होगी, आनंद होता है यदि सही ढंग से किया गया हो। इसलिए आपको दिगम्बर जैन साधु कभी भी अपनी इंद्रिय पर कोई ताला लगाए नहीं मिलेगा, बाहर से किसी कपड़े, रस्सी आदि का प्रयोग करते नहीं मिलेगा क्योंकि वह भीतर से इस प्रकार के विचारों के साथ जीता है कि उसे

इंद्रियों का मद नष्ट करके उनके दमन करने के लिए कोई बाहरी उपचार की आवश्यकता नहीं है। आचार्यों ने कहा है अपने मन के विचारों को सद्विचारों से दूर कर दो। आप किसी भी रूप में हिंसात्मक शब्दों का प्रयोग मत करो। आपको लगता है कि दमन में हिंसा है, पर दमन में अहिंसा है। इसमें कोई पीड़ा नहीं होती। आप जब सद्विचार या प्रकाश के माध्यम से अंधकार को हटा दोगे तो कोई दिक्कत नहीं आएगी और अगर आप अंधकार को लट्ठ मारते-मारते हटाओगे/भगाओगे तो आप परेशान हो जाओगे।

आचार्य कहते हैं कि **अहिंसात्मक वृत्ति और आध्यात्मिक वृत्ति** दोनों एक चीजें हैं। शांति पाठ, दर्शन, पूजन आदि से आपको बहुत ज्यादा लाभ मिलता है पर आप ये सब करना ही नहीं चाहते। ये सब आपके कर्तव्य हैं, इनसे विमुख होना आपकी बहुत बड़ी कमजोरी है। आप ये सब कर रहे हो पर आपको लगता है कि आपको लाभ नहीं मिल रहा तो आप मानो कि लाभ कहकर नहीं मिलता, बस अपने आप मिल जाता है वह खुद अनुभूति में आएगा। हर जैन व्यक्ति का कर्तव्य होता है भगवान् के चरण का प्रतिदिन स्पर्श करना। शुद्ध वस्त्रों में एक बार भी भगवान् के चरण स्पर्श कर लेंगे तो इतनी शक्ति, इतनी ऊर्जा मिल जाएगी कि दिन आराम से कट सकता है। जब प्रतिदिन अभिषेक की प्रवृत्ति हो जाएगी तो यदि किसी दिन आपने अभिषेक नहीं किया तो आपको अच्छा नहीं लगेगा। वो आपका सबसे अच्छा दिन होगा जब ये भावना आपके अंदर आएगी। ऐसी मानसिक प्रवृत्तियों से हम अपने विचारों को अच्छा बना सकते हैं। शांतिधारा में एक शब्द आता है छिंद–छिंद, भिन्द–भिन्द, छेदन कर दो और भेदन कर दो तो लोगों का ये कहना हुआ कि जैसे अपन किसी चीज को काट रहे हैं, भेद रहे हैं। इस तरह के शब्दों से भी हमारे अंदर हिंसात्मक परिणति होती है। उसी विचार को लेकर के शांतिधारा को एक-दूसरे रूप में परिवर्तित करके प्रस्तुत किया है तो इनकी जगह अपहर–अपहर बोले माने दूर हटना। मुझसे ये रोग दूर हो, व्याधियाँ दूर हो, अशांति दूर हो। इन अहिंसात्मक शब्दों के साथ हम शांतिधारा करें, शांतिवाचक शब्दों से। अपने मुँह से हमेशा अच्छे शब्द ही निकलें व उन अर्थों की ओर जाए जो हम दूसरों को बता रहे हैं। कभी-कभी चौके में भी ऐसा हो जाता है कि ग्लानि का भाव न हो। लौकी को बना दो, सुधारने का मतलब बनी हुई चीज को बिगाड़ते हो। वचन शुद्धि में ये शुद्धि आ जाती है। हाथों में पहनी चीजों को उतनी देर के लिए उतार देना चाहिए, ये कायशुद्धि है। धागा कपड़े का होता है, बहुत दिन का बंधा धागा अपने आप में गंदा हो जाता है, उसमें संमूर्च्छन जीवों की

उत्पत्ति हो जाती है, विधान के समाप्त होते ही धागे को छोड़ दें। कायशुद्धि मतलब शरीर भी शुद्ध हो, अपने कपड़े भी धुले शुद्ध हो, मंदिर के कपड़े भी नहीं पहनना, नए वस्त्र विशेष अनुष्ठान के लिए हो। अंगूठी, घड़ी आदि भी उतार दे, पसीना भरता है। मन शुद्ध रहे, वचन शुद्ध रहे और काया व वस्त्र शुद्ध रहे तो समझना **मन शुद्धि, वचन शुद्धि, काय शुद्धि,** नहीं तो काहे की शुद्धि। आपको ये समझना भी है और दूसरे को समझाना भी है। जब ध्यान करो उस समय पर ये विकल्प करो कि हमें किसी को समझना है या नहीं समझना। हम जो भी प्रवृत्ति करें उस प्रवृत्ति का हमें आनंद आना चाहिए और उसका हमें ज्ञान होना चाहिए। मुनि महाराज की भक्ति के लिए दूसरी समाज को पाबंदी नहीं है तो जैनियों को क्यों होगी। सबसे बड़ी भक्ति होती कि हम ये भावना करें कि मुनि महाराज के चरण आज हमारे घर पर पड़ जाएँ। भगवान् के मोक्ष कल्याणक के दिन मुनि महाराज के चरण हमारे घर पर पड़ जाएँ। रक्षाबंधन पर चरण पड़ जाएँ। भक्ति करने से बड़े-बड़े अभिशाप, ग्रहों की बाधाएँ, विघ्न दूर होते हैं अगर हमने वह भक्ति सच्चे मन से, सच्ची विधि से की हो। यदि हम वही काम एक बंधक के तौर पर करते हैं या किसी व्यवस्था के तौर पर करते हैं तो उसमें अपने अंदर भक्ति के भाव नहीं फूटते, केवल एक कार्य हो जाता है पर आनंद नहीं आता। हमें आनंद देना भी आता है और लेना भी आता है। आप लेने की भावना रखो। शबरी ने १२ साल तपस्या की राम आएँगे, राम आएँगे और जिस दिन राम आते हैं उस दिन ही उसके सारे अभिशाप समाप्त हो जाते हैं। आप १२ दिन तक ये भाव कर लो कि राम आएँगे, राम आएँगे। आपके मन में इतनी अधीरता रहती है कि हमने जिस दिन जो इच्छा की, वह उसी दिन पूरी हो जाए। अपनी भक्ति को बढ़ाने के लिए ऐसे ही प्रसंगों को ध्यान में रखो कि ऐसी भक्ति शबरी ने, चंदना ने की। अकेली थी पर भगवान् महावीर उसके सामने जाकर खड़े हो गए, सारे बंधन टूट गए। व्यवस्थाओं की जरूरत ज्यादा नहीं रहती है, भक्ति भाव से बहो। भक्तिभाव का आनंद आपके लिए स्थायी होगा। नवधा भक्ति करने के जब भी भाव हो तो हम उसे अंजाम दे सकें, ऐसी भावना सब जगह, सब लोगों के अंदर रहेगी तो लगेगा मंदसौर में चातुर्मास हो रहा है।

श्लोक– २०

यदग्राह्यं न गृह्णाति गृहीतं नैव मुञ्चति।
जानाति सर्वथा सर्वं तत्स्वसंवेद्यमस्म्यहम्।।२०।।

चैतन्य को पर कभी तजता नहीं है, अग्राह्य को ग्रहण भी करता नहीं है।
जो जानता निखिल को निज ज्ञान से ही, विज्ञान पूर्ण वह चेतन जीव, 'मैं' ही।।२०।।

भेद–विज्ञान

आचार्य कहते हैं इस जीव का जो स्वरूप है, इस जीव की जो अवस्थाएँ हैं उन सब अवस्थाओं में उसका स्वरूप कभी भी उससे छूटता नहीं है। जिस आत्मा ने अनादिकाल से इस संसार में रहते हुए भी अनेक पदार्थों को ग्रहण किया है और उन अनेक पदार्थों को छोड़ा भी है। लेकिन यह आत्मा कभी भी जो ग्रहण करने योग्य नहीं है उसको ये ग्रहण नहीं करता और जो इस आत्मा का है उसको ये कभी छोड़ता नहीं है। आपने अभी जितने भी संयोगगत पदार्थ है उनका सभी का ग्रहण किया है। इस संयोगगत पदार्थ में ऐसे भी पदार्थ है जो अपने शरीर से दूर होते हैं अपने शरीर से भिन्न होते हैं और उन्हें हम भिन्न के रूप में ही जानते हैं। उन पदार्थों में जो भी अपने परिवारजन आदि अपने से भिन्न पदार्थ है उनको भी हम अपना मानकर ग्रहण करते हैं। इसी के साथ-साथ जो अपना शरीर है उस शरीर के साथ रहने वाले जो भाव हैं उनको भी हम अपना मानकर ग्रहण करते हैं। उस ग्रहण करने के साथ अपने अंदर ये ज्ञान नहीं रहता कि हम किस भेद विज्ञान के साथ इन पदार्थों को ग्रहण करें। जब थोड़ा सा ज्ञान उत्पन्न होता है उस ज्ञान में इन पदार्थों की भिन्न-भिन्न प्रतिभासता उत्पन्न होने लग जाती है। उन प्रतिभासता में ये भी प्रतिभासित होता है कि कौन सी वस्तु हमारे लिए अग्राह्य है और कौन सी वस्तु ग्राह्य है। **ग्राह्य** का अर्थ होता है ग्रहण करने योग्य और **अग्राह्य** का अर्थ होता है जो हमारे लिए ग्रहण करने योग्य नहीं है। आत्मा ने उन

सब पदार्थों को ग्रहण किया है जो उसके सामने है और उसे सामने दिखाई देते हैं लेकिन देखा जाए तो आत्मा के अंदर किसी भी पदार्थ का ग्रहण नहीं हो रहा। बाहर से सब पदार्थों का ग्रहण दिखाई दे रहा है ये घर हमारा है, ये पुत्र, स्त्री, मित्र हमारे हैं और शरीर आदि भी हमारा है। ये भी हमको दिखाई दे रहा है और हमने उसको अपना मानकर के ग्रहण कर लिया है।

आचार्य कहते हैं जो तुम्हारा नहीं है उसे तुम कभी भी ग्रहण कर नहीं सकोगे, फिर भी हमने ग्रहण करने की एक जिद कर रखी है कि हमें ग्रहण करना है। ग्रहण करने के लिए हमने अपने मनोभावों को समझा लिया है और उसमें अपना ममत्व भाव सबसे पहले अपने साथ आ जाता है जिसके माध्यम से हम हर पदार्थ को ग्रहण कर लेते हैं। हमें स्पष्ट दिखाई देता है कोई भी स्त्री, पुत्र, मित्र, शत्रु आदि ये सब हमारी आत्मा के अंदर कोई भी नहीं आ सकता और हमें ये भी दिखाई देता है कि हम सबके बीच में रहते हुए भी आत्मा के अंदर किसी का कोई प्रवेश नहीं हो सकता। आत्मा में आज तक किसी का कोई स्थान नहीं बना और आत्मा ने आज तक किसी को न स्पर्श किया न किसी का कोई ग्रहण किया। इतना होने के बावजूद भी अपने मन में ये अवश्य रहता है कि ये सब मेरे हैं और मैं इनका हूँ। इन विकल्पों के साथ में जब ये बात आ जाती है कि क्या हमारे लिए ग्राह्य है और क्या अग्राह्य है तो सबसे पहले आचार्य कहते हैं ये देखो कि हम किस चीज को ग्रहण कर सकते हैं और किस चीज को ग्रहण नहीं कर सकते। ग्रहण करने लायक जो है वो तुम्हारे पास में पहले से है और जिसको तुमने ग्रहण करने का भाव किया है वह तुम्हारा कभी हो नहीं सकता। इस भेद-विज्ञान को पहले समझ लो और इस अवधारणा को जब हम समझ लेंगे तो अपने आप हमारे अंदर ये आने लगेगा कि जो हमसे छूट रहा है वो हमारा था नहीं और जो हमारे पास में है वो हमसे कभी छूट सकता नहीं।

इतना विश्वास आपको बनाना होगा और इस विश्वास के साथ चलोगे तभी आपकी आत्मा की अंतरंग की यात्रा प्रारंभ होगी। जब ये विश्वास बनेगा उस समय पर हम अपनी आत्मा के निकट होंगे। हमें अपने आप ये अनुभव होगा कि हमने जिन-जिन चीजों को अपना मान कर रखा है वस्तुत: हमें केवल उनको जानना चाहिए था पर हमने उनको अपना मान लिया है। एक छोटी सी गलती हो गई अगर आप इसको सुधार लोगे तो आज से ही आप अंतरात्मा बन जाओगे और आपके अंदर अपने आप सब चीजों का अलग-अलग प्रतिभासन होने लग जाएगा। मानने में और जानने में थोड़ा सा अंतर होता है। मानने में हमारे अंदर एक गहरी भावना के रूप में वह चीज

जुड़ जाती है और जानने में हम केवल उसको जानते हैं कि ये ऐसा है। अपनी पत्नी को अपना मानना और अपनी पत्नी को अपनी पत्नी जानना कुछ अंतर है। अपने बेटे को अपना बेटा मानना और अपने बेटे को अपना बेटा जानना। अपने घर को अपना घर मानना और अपने घर को ये मेरा घर है इतना जानना, कुछ अंतर आपको लग रहा है। अगर लग रहा है तो उसका मतलब है कि आपके दिमाग में कुछ स्पंदन हो रहा है। आपका दिमाग कहीं ना कहीं कुछ चीज को स्वीकार कर रहा है और आप समझने का प्रयास कर रहे हैं। आपको जोर डालकर समझने का ये प्रयास करना है कि मानने में और जानने में क्या अंतर होता है। मानने में हमारा मन उससे जुड़ जाता है और जानने में हमारी केवल इंद्रियाँ उससे जुड़ती है। आप समझ सकते हैं कि मानने में हम उसको मन से मानते हैं और जानने में हम केवल ऊपर-ऊपर से जानते हैं।

हमारे पास में दो चीजें मुख्य हैं- शरीर में इंद्रियाँ भी हैं और शरीर में मन भी हैं। मन के माध्यम से हमारी मान्यता बनती है और इंद्रियों के माध्यम से हमें केवल जानना होता है, ज्ञान होता है। हमारा घर है, हमारे मित्र हैं, हमारा परिवार है इसको जानने में कोई अपराध नहीं है। अगर आपको ज्ञानी बनना है तो आप देखोगे कि जानने वाला केवल ज्ञानी कहलाता है क्योंकि ज्ञान का संबंध जानने से है। आप अगर जानने की प्रक्रिया में रहोगे तो ज्ञानी बनते चले जाओगे। अगर आप उसको अपना मानने की प्रक्रिया में रहोगे तो आप मोही बनते चले जाओगे, अभिमानी बनते चले जाओगे। मानने में एवं जानने में वह अंतर है कि आपने किसी भी चीज को देखा, आपने किसी चीज को सूंघा, आपने किसी भी चीज को सुना और सुनकर के अगर उसमें अपना मन नहीं लगाया तो वह आपका केवल जानना रहा और अगर उसमें अपना मन लगा दिया तो वह आपका मानना हो गया। जब आपके सामने कोई भी पदार्थ आया, मान लो आपके लिए कोई अच्छा व्यंजन आया, आपने उसको खाने की इच्छा की। खा लेना कोई बुरी बात नहीं क्योंकि हर अच्छे पदार्थ अच्छे लोगों के लिए खाने के लिए ही होते हैं। उस खाने के साथ में दोनों चीजें आप कर सकते हो, आप उस पदार्थ को अपने मुँह में रखने के साथ, उसका स्वाद लेने के साथ एक प्रक्रिया अपनाओ कि हमें इस पदार्थ का स्वाद तो लेना है, ले लेंगे लेकिन उसको हम केवल जीभ से ही चखेंगे, मन से नहीं चखेंगे। आप कहोगे महाराज आप हर चीज को बड़ा क्लिष्ट बताते चले आ रहे हो, खाना-पीना कठिन नहीं बनाना है, अपने को खाने के प्रति भी जाग्रति रखना है। अगर हमने कोई भी वस्तु का ग्रहण किया है और उसके साथ में केवल इंद्रिय के विषयों के बारे में ही

नहीं सोचना। अब आप कहोगे महाराज हम आपका प्रवचन केवल कानों से सुन रहे हैं, मन से नहीं सुनेंगे। वह इंद्रिय के विषय जो हमको मोहित करते हैं उनसे मोह को अगर हमें कम करना है अगर उनसे अपने मोह को हटाना है तो उसके लिए ये भेद विज्ञान है कि हम हर चीज को ग्रहण करें। जिह्वा से रस को चखा जाता है, रस जिह्वा पर आएगा तो उसका स्वाद आए। कानों से सुना जाता है, शब्द कानों में आएँगे तो उसका अर्थ भी इस कानों में आएगा। रूप आँखों से देखने में आता है, सामने रूप आएगा तो वो देखने में आएगा लेकिन उसके साथ भी एक सावधानी रखी जा सकती है। अपने मन को उस पदार्थ के साथ में इंद्रियों के माध्यम से जोड़ना नहीं, वह केवल इंद्रिय का ही विषय बनकर के रह जाए और वह मन से न जुड़े तो भी आप इस संकट में रहते हुए भी इस संसार से ऊपर उठ जाओगे और इस संसार से तिर जाओगे। आपने कोई भी अच्छा पदार्थ खा लिया और खाने के बाद में आपको ये भी लग गया कि ये मीठा है, नमकीन है, चटपटा है। अच्छी बात है, अब उसमें जो आपने मन लगा दिया, उस मन को थोड़ा सा लगाना कम करो। खट्टा, मीटा, चटपटा ये तो केवल आपके जिह्वा के स्वाद तक रहा। लेकिन उसमें जो आपने मन लगा दिया, जब आपने अपने मन में उसका विचार कर लिया, गहराई के साथ ये पदार्थ बहुत अच्छा बना, आज बहुत अच्छा लगा, आज बहुत स्वाद आया, ये क्या हो गया ये आपका उसमें जरूरत से ज्यादा मन लग गया। इतना मन लगाने की उसमें जरूरत नहीं थी पर आपने उसमें मन लगा दिया। भीतर से मोह का मन के ऊपर ऐसा दबाव रहता है कि मन उस पदार्थ को ग्रहण बड़े गहराई के साथ करता है और उसी में उसको आनंद आता है। वह चाहता है कि वह उसमें डूब जाए लेकिन वह उसमें बहुत देर तक डूब नहीं सकता। आपके लिए कोई भी चीज ग्रहण करने में आई उसका आनंद तो आपको केवल एक क्षण रहेगा। आपने चाहे वो गोल बताशा खाया हो– पानी बताशे, चाहे वह आपने गोल गोल– रसगुल्ला खाया हो, चाहे आपने कोई नमकीन पदार्थ खाया हो लेकिन उसका स्वाद तो आपकी जिह्वा पर एक क्षण रहता है, वह क्षण भी इतना छोटा होता है कि अगर आप उस क्षण को भी पहचानने में अपना मन लगा दो तो भी आप उस पदार्थ की आसक्ति से बच सकते हो। आप ये सोचने में मन लगा दो कि हमने जो पदार्थ खाया, उसका स्वाद जिस क्षण आया और उस क्षण वह स्वाद आने के बाद चला गया। आप देखोगे कि जैसे ही वो पदार्थ आपकी जिह्वा से गले के नीचे उतर जाता है उस पदार्थ के स्वाद का अस्तित्व समाप्त हो जाता है। बाद में जो कुछ भी आपको ध्यान में रहता है वह केवल

आपके मन का मोह रहता है, आपके मन की स्मृति रहती है जो उससे जुड़ी हुई रहती है और कुछ नहीं रहता।

वह पदार्थ जो आपने ग्रहण किया वो तो केवल एक क्षण का है लेकिन उसमें जो आपका मन लग गया वह मन आपको कई दिनों तक भी याद में रह सकता है और वह आपके साथ में रह सकता है कि उनके यहाँ पर गए थे तो बड़ी अच्छी चाय बनाई थी या बड़ा अच्छा भोजन मिला था। वह आपके दिमाग में जो रहेगा वही आपके मन का मोह है और अगर आपने उसका उस रूप में ग्रहण नहीं किया तो आप इन इंद्रियों के बाजार में रहकर भी, इन इंद्रियों के बीच में रहकर भी आत्मा की यात्रा कर जाओगे। केवल अपने मन को संभालना है, इंद्रियाँ अपने आप संभल जाती है। मन को संभालने के लिए केवल इतना सा भाव करना है कि मन तो हमें दिखाई देता नहीं और मन को कुछ भी देते रहो उससे कोई फर्क पड़ता नहीं। मन की स्थिति उस पारे की तरह है जिस पारे में कितना भी सोना मिला दिया जाए वह सब उसमें आत्मसात होता जाता है। पता नहीं पड़ता कि वह कहाँ उसको आत्मसात करता जाता है, कहाँ उसका विलय होता जा रहा है, इसी तरह इस मन का खेल है। यह मन भी ऐसे द्रव्य से बना है जिसको **'मनोवर्गणाएँ'** कहा जाता है। इन मनोवर्गणाओं का ऐसा स्वभाव है कि इसमें कितना भी कुछ डाला जाए ये सब विलीन होता चला जाता है। वह द्रव्य उतना का उतना ही बना रहता है, पता नहीं सब कहाँ पर चला जाता है। ये एक ऐसा द्रव्य है जिसको पहचानने के बाद में आपको इसे ज्यादा कुछ देने की इच्छा ही नहीं होगी। ये इच्छा तभी तक होती है जब तक हमें मालूम नहीं रहता कि मन का स्वभाव क्या है और उस मन के स्वभाव को जान लेना, इंद्रिय के स्वभाव को जान लेना और उससे अपने आपको बचाने का एक पुरुषार्थ करना। ये पुरुषार्थ यहीं से शुरू होता है कि आप कुछ भी खाओ, कुछ भी देखो, कुछ भी सूंघों, कुछ भी सुनो लेकिन उसमें आप अपने मन को ज्यादा मत लगाओ। मन जैसे ही उसमें लगेगा, उसके प्रति आपकी आसक्ति बढ़ेगी। आसक्ति बढ़ेगी तो तृष्णा बढ़ेगी और तृष्णा बढ़ेगी तो आपके मन में फिर उस वस्तु को पाने की लालसा उत्पन्न होगी और अगर आपने उसका स्वाद वही लेकर के छोड़ दिया तो दोबारा आपको उस वस्तु को पाने की तृष्णा नहीं होगी। ये इसलिए बताया जा रहा है कि हमने अपनी आत्मा के माध्यम से इस शरीर को माध्यम बनाकर के, इस आत्मा ने हर उस चीज का ग्रहण कर लिया जो हो सकता था। लेकिन न तो कुछ आत्मा में संचित दिखाई देगा और न कुछ मन में संचित दिखाई देगा।

दुनिया के बाजार में सब कुछ पाने के बाद भी न हमारी आत्मा में कुछ है न हमारे मन में कुछ है। अभी आप बैठे हो, आप अरबों के मालिक हो, आपके पास में ढेर सारा परिग्रह है, आपके पास में बहुत सारी वस्तुएँ हैं लेकिन वे कब तक है जब तक आपने अपनी मान्यता में ये मान रखा है कि मैं करोड़पति हूँ, मैं बहुत बड़े फर्म का मालिक हूँ तभी तक आपके लिए वह सब चीज है। अगर आपके दिमाग में केवल वह ज्ञान रह जाए कि मैं मालिक नहीं हूँ, मैं केवल इसका संचालन कर रहा हूँ, मुझे इसके अंदर कभी भी घुसना नहीं हो सकता और बाहरी कोई भी चीज मेरे अंदर आ नहीं सकती। मैंने केवल इसको अपना मान लिया है, मान्यता को हटाकर केवल उसकी जानकारी भर रखे, हमारे पास इतने करोड़ हैं, हमें ये फर्म चलानी पड़ रही है, हम दो-चार घरों के मालिक हैं, हमारा ये परिवार है बस इतना हम जान रहे हैं। अगर आप इसको जानोगे तो जानने में मोह कम होगा। आसक्ति कम होगी, तृष्णा कम होगी। अगर आप अपनी मान्यता में उसको बिठाते चले जाओगे तो आपकी आसक्ति बढ़ेगी, तृष्णा बढ़ेगी।

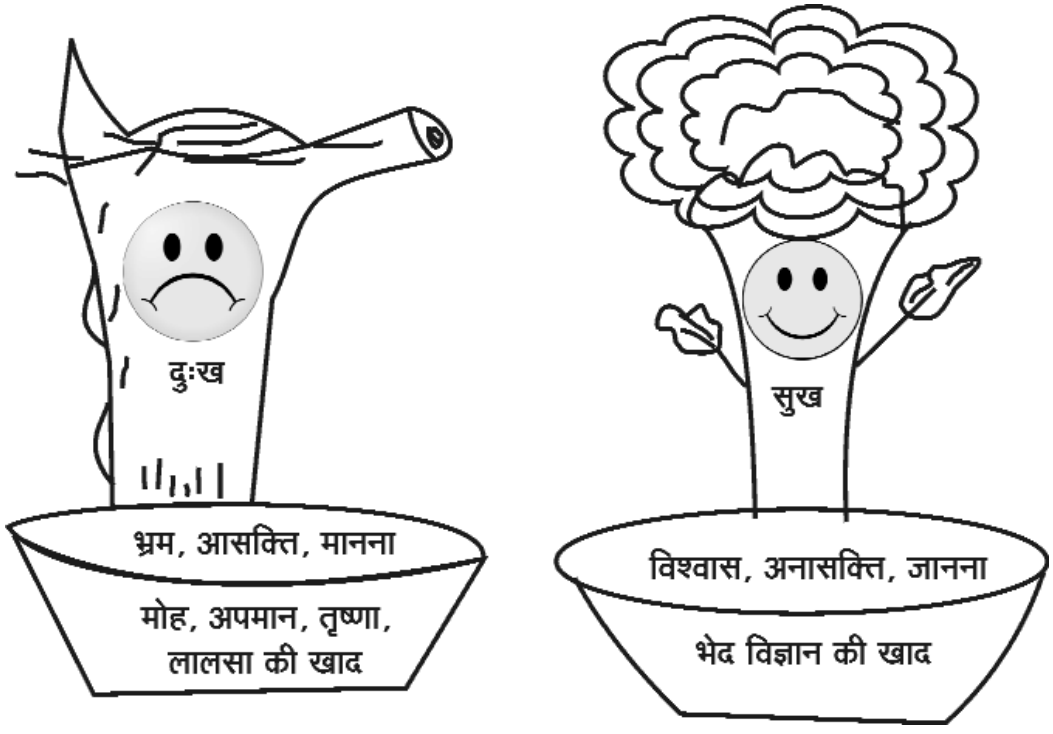
तत्स्वसंवेद्यमस्म्यहम्

हर श्लोक के ४ चरण होते हैं। चौथे चरण में एक ऐसी बात जरूर कही जाती है जो हमारी आत्मा के लिए होती है और आत्मा को छूने वाली होती है।

यह केवल अपनी आत्मा है, यही केवल अपने लिए काम का है। बाकी का जो भी विस्तार है वह हमारी समझ में चाहे आए या न आए लेकिन हमें ये समझना है कि मैं क्या हूँ? तो आचार्य कहते हैं तुम अपना थोड़ा सा ऐसा संवेदन करो जिस संवेदन में हमें ये समझ में आए कि मैं केवल मैं हूँ स्वसंवेद्य जो है वो मैं हूँ।

जो अपने आप में जो मुझे महसूस हो रहा है वस्तुत: देखा जाए तो आप अभी जो महसूस कर रहे हैं आप केवल उतने ही हैं। जब आप यहाँ से उठकर जो महसूस करते हैं वो आपके लिए ऊपर का ओढ़ा हुआ होता है। वह आपका स्वसंवेदन नहीं होता, उसमें परसंवेदन अधिक होता है। स्वसंवेदन में जैसे आपको अभी लग रहा है मेरे पास में कुछ है ही नहीं, मैं बिल्कुल खाली बैठा हूँ, मैं कुछ हूँ ही नहीं, मैं बिल्कुल सामान्य हो गया हूँ। यहाँ पर लोग मुझे कुछ जान ही नहीं रहे कि मैं प्रोफेसर हूँ कि डॉक्टर हूँ कि बहुत बड़ा बिजनेसमैन हूँ कि बहुत बड़ा करोड़पति हूँ। लोग मुझे कुछ नहीं जान रहे, मैं एक सामान्य के रूप में बैठा हूँ। ये जो आपको फीलिंग हो रही है यही फीलिंग आपकी अपनी है और यही आपका अपना **स्वसंवेदन** है। इसी को स्वतत्त्व कहा जाता है,

इस फीलिंग को हम बनाएँगे तो अपने आप पर पदार्थों से हमारा मोह छूटता है। उस मोह के छूटने के साथ में हमारी उससे आसक्ति छूटती है और आसक्ति कम होने से ही तृष्णा कम होने लग जाती है लेकिन हम उस स्वसंवेदन को ज्यादा देर तक रख नहीं पाते हैं। हमारी इंद्रियों के विषयों में आसक्ति इतनी अधिक हो जाती है कि हम हमेशा यही ध्यान रखते हैं कि हमने कल क्या देखा, हमने कल क्या खाया, हमने कल क्या सूंघा, हमने कल क्या आनंद लिया। हम कल की स्मृति को आज भी जो बनाकर रखते हैं उससे अपनी तृष्णा बढ़ाते हैं और तृष्णा बढ़ाने में भी आनंद आने लग जाता है। आनंद तृष्णा में नहीं आता, उस स्मृति से जब हम अपनी तृष्णा बढ़ाते हैं तो उस तृष्णा बढ़ाने में भी आनंद आता है और वह जो आनंद हमारे अंदर आता है, वही हमारा एक बहुत बड़ा भ्रम होता है। उस भ्रम को जीतना और उस भ्रम को भ्रम समझना यही हमारा सबसे बड़ा ज्ञान होता है। हमें वही चीजें अच्छी लगती है जो हमारे लिए नुकसान करती है और हम उन्हीं चीजों को ग्रहण करने में आनंद मानते हैं जिनसे हमें परेशानी होती है। आप देखना आपको जो अच्छा लगता है वही आपके लिए बाद में परेशानी का कारण बनता है लेकिन मन उसी को ग्रहण करने में लगता है और लगता है। यही हमारा सबसे बड़ा भ्रम है।



श्लोक–२१

उत्पन्नपुरुषभ्रान्तेः स्थाणौ यद्वद्विचेष्टितम्।
तद्वन्मे चेष्टितं पूर्वं देहादिष्वात्मविभ्रमात्।।२१।।

स्वामी! सुदूर स्थित नीरस वृक्ष में ओ; जैसा सदा पुरुष का अनुमान जो हो।
मिथ्यात्व के उदय से जड़ देह को ही, 'आत्मा' पुरा भ्रमित हो समझा प्रमोही।।२१।।

अध्यात्म में आचार्य कहते हैं कि इस आदमी को अनेक प्रकार की भ्रांतियाँ हो रही हैं और इन भ्रांतियों को बताने के लिए उदाहरण दिया जा रहा है–

जैसे कहीं पर ठूंठ खड़ा हो मतलब आधा कटा हुआ वृक्ष जिसमें कोई शाखा उपशाखा नहीं हो और उस वृक्ष को दूर से कहीं एक सूखे हुए ठूंठ को देखकर आपको ऐसा लगे कि ये वृक्ष नहीं है, ये आदमी खड़ा है और उसे देखकर आपकी चेष्टाएँ कैसी होंगी। ये आदमी खड़ा है तो इससे बचकर निकलना, ये आदमी खड़ा है ये हमें देख न ले, ऐसी अनेक प्रकार से आपके अंदर चेष्टाएँ हो जाती हैं भ्रम के कारण से। भ्रम जब तक बना रहता है तब तक हमारी चेष्टाएँ ऐसी बनी रहती हैं कि हम इंद्रियों के साथ में उस मन को जोड़ करके चलते हैं। जिस पदार्थ से हमें दु:ख मिलता है, हम उसी को सुख मान करके चलते हैं। आपको मिर्ची खाना अच्छी लगती होगा आनंद आता होगा। जब चटपटा खाएँगे तो आपकी आँखों में आँसू भी आते हैं, नाक भी चलने लग जाती होगी। इतना होने के बावजूद भी हमें मिर्ची खाना तो अच्छा लगता ही है। ये एक स्वाद और स्वाद के साथ में आसक्ति है और आसक्ति के साथ में होने वाली परेशानी। अगर आपके लिए मिर्ची अच्छी है, आपने उसको अनुपात में डाला है। न के बराबर डाला है तो आपके लिए फिर भी कहा जा सकता है कि आप अपने ज्ञान का प्रयोग कर रहे हैं। आपको लगा कि नहीं भाई थोड़ी सी तेज होनी चाहिए। यही अपनी तृष्णा हो गई। आपको तब तक और तेजी चाहिए जब तक कि आपका मुँह झनझना न जाए, चटपटाहट भी लगनी चाहिए। जब इतनी तेजी हो जाती है तब आपको लगता है कि हाँ अब मिर्ची का कोई स्वाद आया। हल्की-हल्की में आपको कोई स्वाद नहीं आता, जब तेज हो जाती है तो आपके अंदर छटपटाहट हो जाती है। आपके अंदर तृष्णा ऐसी

हो जाए कि आपको लगने लगे कि नहीं अब हमें मिर्ची नहीं चाहिए, मीठा चाहिए। ये एक छटपटाहट आ जाए, उसको आप सुख मानते हो। पहले मिर्ची द्वारा अपनी जीभ जलाओ फिर जलाने के बाद में उसके लिए मीठा दो और फिर उससे सुख मानो ये आपका ज्ञान है। अभी हम इसको आपका ज्ञान नहीं कह रहे, ये आपका अज्ञान है। अभी आपकी अज्ञानता क्या है कि पहले हम अपने लिए पीड़ा पैदा कर लें फिर उसके लिए दवाई करें। हमारे लिए पहले तो रोग पैदा करें, फिर उसकी दवाई ढूंढने के लिए उपयोग करें, फिर जब दवाई खा लें तो फिर हम सोच लें कि हाँ अब हम ठीक हो गए। रोग भी बनता जाए और दवाई भी मिलती जाए, इसका नाम आपके लिये इंद्रिय का सुख है। हमें उसी में सुख लगता है जिसमें अंत में भी दु:ख होता है। प्रारंभ में भी दु:ख होता है लेकिन हम उसके सुख की कल्पना इतनी गहराई तक किए रहते हैं कि दु:ख देने के बाद भी उस पर थोड़ी सी ऑइंटमेंट लगा देते हैं। उसमें हमें जो सुख का अहसास होता है बस हम उसी को सुख मान रहे हैं। पहले अपने हाथ में घाव करो और घाव करने के बाद में मूव लगाओ। अगर घाव होगा तो उस पर आप फास्ट रिलीफ लगाओगे तो बड़ा अच्छा लगेगा। उसमें सेंसेशन होने के बाद माध्यम से आपको ऐसा महसूस होता है कि हमें रिलीफ हो रहा है। वस्तुत: वह रिलीफ नहीं है वह एक-दूसरे तरह की जलन है। ज्ञानी को दोनों प्रकार की जलन का अहसास होता है, वह घाव की जलन भी जानता है और जो उसके ऊपर ओइंटमेंट लगाई जा रही है वह उसकी जलन को भी जानता है। आप देखोगे कि हर उस पदार्थ में भी जलन होती है जिस पदार्थ को आप उसके उपचार के रूप में लगाते हो चाहे वह बाम हो या चाहे वो फास्ट रिलीफ हो। आपने अगर तेज बाम लगा ली या ज्यादा घिस लिया तो वहीं पर और दूसरा घाव कर देगी, उस समय पर आपको पता नहीं पड़ेगा, बाद में पता पड़ेगा। उस समय आपको इसलिए पता नहीं पड़ेगा क्योंकि तब आपके अंदर दूसरी पीड़ा थी और उस पीड़ा के इलाज के लिए आप बाम मल रहे थे। अरे यह चमड़ी और जल गई, ये बाम या क्रीम के कारण से जल गई।

यही हमारी इंद्रियों का सुख है और हमें जिस किसी भी पदार्थ में सुख की कल्पना होती है वह इसी ढंग से होती है। हमारे अंदर ये भ्रांति रहती है कि हमें इस वस्तु से सुख मिल रहा है। वस्तुत: वह वस्तु हमारे लिए दु:ख को देने वाली होती है। आप अपने जीवन में जो भी प्रयोग करते हैं उनमें अपने मन में इस ढंग से बुद्धि का प्रयोग करना शुरू करो कि हम ये देखें कि हमें कब पीड़ा होती है और कब हमें उस पदार्थ से सुख मिलता है। ये भेद विज्ञान अगर आप स्वयं में करने लग जाओगे तो आप स्वयं बिना किसी गुरु के ज्ञानी बन जाओगे, आपको किसी को गुरु बनाना भी जरूरी नहीं होगा और आपको अपने आप में अपने अंदर से ज्ञान प्राप्त होने लग जाएगा।

करके देखो। लेकिन आप ऐसा इसलिए नहीं कर पाते क्योंकि आपके मन का मोह उस स्थिति में आपको वो ज्ञान करने नहीं देता। आप ये भूल ही जाते हो कि हमें कितना खाना, क्या खाना और कब खाना और इस भूलने का नाम ही है वह सामने रखी हुई चीज के प्रति आपका मोह। जैसे ही आपके सामने कोई भी आपसे मन का इच्छित/इष्ट पदार्थ आ जाता है तो आप उसके सेवन करने में लग जाते हो और ये भी सोच लेते हो कि जो कुछ होगा बाद में देखा जाएगा। अभी तो खा लो, पी लो। बस इसी अज्ञानता को आप थोड़ा सा जीत लोगे, आप इंद्रियों से हटकर के अपने मन की स्वस्थता तक आ जाओगे और आपके अंदर वह अंतरात्मापन आ जाएगा, जिसकी यहाँ पर चर्चा की जा रही है।

इन देह आदि पदार्थों में आत्मा का **भ्रम/विभ्रम, 'इलूजन'** इतना बढ़ गया है कि उसके कारण से हमें वह भ्रम भी भ्रम नहीं दिखाई देता। हमने उस ठूंठ को ही सच मान रखा है। उसके सामने होने पर जैसी चेष्टाएँ करनी चाहिए वैसी हम करते चले जा रहे हैं और कर रहे हैं। हम यह जानना ही नहीं चाह रहे कि वह सामने खड़ा हुआ ठूंठ है, वह आदमी नहीं है उससे तुम्हें डरने की कोई जरूरत नहीं है। तुम्हें यहाँ पर निडर बनाने की ओर ले जाया जा रहा है लेकिन तुम निडर बनना ही नहीं चाहते। निडर वही बनेगा जो इस प्रकार से समझ लेगा कि इन पदार्थों में सुख नहीं है और सुख की जो हमने कल्पना कर रखी है यह हमारा भ्रम है, अज्ञान है। जब हम इस प्रकार से विचार करने लग जाते हैं और निडरता में हम ये नहीं सोचते कि कोई क्या कहेगा। अगर आपको ये मालूम है कि हमें किस पदार्थ को कब खाना चाहिए और उस पदार्थ को खाने से हमें क्या होता है, कितनी मात्रा में खाना चाहिए तो ये आपका ज्ञान ही आपके लिए सम्यग्ज्ञान बन जाएगा। अगर आपको नहीं मालूम है तो आप अपने लिए ऐसा भ्रम उत्पन्न करते चले जाओगे कि आप रातों में भी खाते रहोगे, दिनभर खाते रहोगे। आपके लिए कभी ये नहीं लगेगा कि ये खाना-पीना ही हमारे लिए दु:ख का कारण बन रहा है। आज आदमी को सबसे ज्यादा परेशानी अपने शरीर से है और शरीर में भी परेशानी रोगों के कारण से है और रोगों का भी सबसे बड़ा कारण है उसका असीमित खाना-पीना। बुरा नहीं मानना क्योंकि खाने-पीने वाली समाज है। अब जैन लोग ही सबसे ज्यादा बीमार पड़ रहे हैं। सबसे ज्यादा जैन लोगों के घुटनों में दर्द हो रहा है। सबसे ज्यादा मधुमेह/डायबिटीज भी जैन लोगों को हो रहा है क्योंकि खाने-पीने में कोई कंट्रोल रहा नहीं। पहले कम से कम इतना कंट्रोल तो रहता था कि आदमी रात भर इस पेट को आराम देता था। रात भर में कुछ नहीं पहुँचता था तो पेट को एनर्जी मिलती थी, जो दिन भर खाया-पीया है वह उसको सेटअप कर लेता था।

लेकिन आज उसकी स्थिति ये बन गई है कि वह दिन भर भले ही न खाए लेकिन रात में खाना नहीं छोड़ रहा। दिन में इसलिए नहीं खा पा रहा कि बहुत काम है, जहाँ खड़े हो जाओ वहीं लाइन लगी है और उस लाइन को छोड़कर के आना और भोजन करना ये भी छोड़ा नहीं जाता क्योंकि सामने ग्राहक एक के बाद एक आ रहा हो। वह सामने का भ्रम इतना बड़ा रहता है कि खाना तो हम बाद में भी खा सकते हैं, रात में भी कर लेंगे, ग्राहक तो रात में नहीं मिलेगा। बस इसी भ्रम के कारण से उस आदमी का भीतरी स्वास्थ्य भी बिगड़ने लग जाता है और दैहिक स्वास्थ्य भी बिगड़ने लग जाता है। अगर आदमी अपने ऊपर इतनी कंट्रोलिंग कर ले। कम से कम हम समय पर भोजन करेंगे और जो भी काम जिस समय पर करने योग्य है उसको करके छोड़ देंगे तो भी आपके अंदर का मोह कम हो जाएगा और आपका ज्ञान सम्यग्ज्ञान के रूप में ढ़लने लग जाएगा।

आज हम ऐसा नहीं कह सकते कि जैन लोग रात्रि में भोजन नहीं करते हैं। बहुत से लोग हैं जिन्हें रात्रि में भोजन करने में कोई परहेज समझ में नहीं आता और संगति के कारण से उनके लिए एक फैशन भी बन गया है कि रात्रि में भोजन किए बिना तो अपना काम चलता ही नहीं। जब आदमी शुरू कर देता है तो उसके घर की वो मेम कहाँ पीछे रह पाएगी। वो सोचती है कि कब तक इनसे क्लेश किया जाए, चलो अब जो है सो है ही। महाराज शादी से पहले तो अपना खूब व्रत-संयम बन जाता था। शादी के बाद करना ही पड़ता है। ऐसी जो स्थिति बन रही है, उस स्थिति के पीछे भी अपनी एक भ्रांति कि रात्रि में खाने में सुख है। अगर आप ये भ्रांति छोड़ दो तो ये ऐसे कोई कारण नहीं होंगे जिसके कारण से आपको रात्रि में मजबूरन खाना पड़े। आप अपने मन में ये भी विचार कर लो कि अगर ये १/२ घंटे का समय जो शाम का रहता है और किसी को उस स्थान पर बैठाकर घर में जाकर भोजन कर लो या घर से बुलाकर के भोजन कर लो। आपके मन में अगर भाव होगा तो वह काम आप कहीं भी रहकर के कर सकते हो। अगर आपके मन में भाव नहीं है, उस चीज को आपने अपने हित के रूप में स्वीकारा नहीं है तो आपके लिए कभी मन बनेगा नहीं। आप सोचते जाओगे कि भैया ये तो आजकल बहुत जरूरत की चीज हो गई है। इसके बिना तो काम होता ही नहीं। आप जानते हो इस रात्रि भोजन को जैनियों के लिए सबसे बड़ा पाप कहा है। ये उन लोगों के लिए सबसे बड़ा पाप है जो धर्म को जानते हैं और जिस जैन कुल में उत्पन्न हुए हैं उस जैन कुल की सबसे बड़ी पहचान ये रहा करती थी कि जैन रात्रि में भोजन करता नहीं था। जिनको ज्ञान नहीं है वे अज्ञानता के साथ में ऐसे कुल में उत्पन्न हुए जहाँ पर तो होता ही है उनके लिए वो उतना बड़ा पाप नहीं है। उन्हें इस कुल में जन्म इसलिए मिला

कि पिछले जन्म कुल में उन्होंने रात्रि में भोजन नहीं किया था इसलिए जैन बने। अगर पिछले जन्म में रात्रि भोजन किए होते तो ऐसे ही कुल में जन्म लेते जहाँ रात्रि और दिन का कोई विचार नहीं होता, जहाँ भक्ष्य-अभक्ष्य का विचार नहीं होता। जानते हो रात्रि भोजन करने वाले जो आज मनुष्य हैं, उनके लिए अब अगला जन्म आचार्यों ने लिखा है- उलूक काक मारजार गिद्ध संवर सांप, अहि नकुल गऊ आदि रात्रि भोजन दोषार्थ।

जो जीव रात्रि में भोजन करते हैं वे ही अगली पर्याय में जाकर के ये जीव बनते हैं– कौआ, गिद्ध, सर्प, बिल्ली, कुत्ता और भी जितने रात्रि में चरने वाले प्राणी हैं ये सब उस पर्याय में उत्पन्न होते हैं।

पहले चातुर्मास के समय पर रात्रि के समय पर भोजन नहीं करेंगे, ऐसा नियम करके रखते थे। अब तो बस चातुर्मास केवल महाराजों का होता है, श्रावक का नहीं होता क्योंकि श्रावक किसी भी तरह अपनी जीवन चर्या में बदलाव नहीं लाता। श्रावक के लिए कोई भी ऐसा भाव नहीं आता कि हमें भी इस चातुर्मास में कुछ करना है। हमारे लिए भी कोई नियम होने चाहिए। वर्षा ऋतु में रात्रि में सबसे ज्यादा कीड़े होते थे, ऐसे-ऐसे श्रावक हुआ करते थे जो रात्रि में घर में अग्नि नहीं जलाया करते थे क्योंकि अग्नि जलने से जीव हिंसा होगी और हिंसा का पाप लगेगा। इस पाप से बचने के लिए वह दिन अस्त होने से पहले-पहले तक अपना सब भोजनपान करके, अपने बर्तन आदि साफ करके वह निश्चिंत होकर बैठ जाते थे। ये पहले के जैनों की वृत्ति हुआ करती थी। आज के जैनों में इतना अंतर आ गया है कि पाप पाप नहीं दिखता। वह पाप भी हमें आनंद देने वाला दिखता है। इतनी मानसिकता बिगड़ चुकी है इस वजह से जरूरत से ज्यादा आप रोगी हो रहे हैं और जरूरत से ज्यादा आपके अंदर पाप का संचय हो रहा है। पहले के लोग रात्रि में न भोजन बनाते थे न कराते थे और न स्वयं करते थे। यदि रात्रि में भोजन न करने व कराने का नियम आपके घर में बन जाए तो बहुत बड़ा अहिंसा धर्म का पालन हो जाए। इस तरह का नियम बनाने से आपके घर में रहने वाले बच्चे आदि रात्रि भोजन से बच जाएँगे और उन्हें अलग से सिखाना नहीं पड़ेगा कि रात्रि भोजन में दोष है, पाप है। आज ये सिखाने की जरूरत पड़ रही है कि रात्रि भोजन में पाप है। आपके लिए यह सीखना है कि ये हमेशा से जैन धर्म के आचरण में निषिद्ध था और ये जैन कुलाचार में था ही नहीं, हमने इसको अपने लिए स्वीकार किया लेकिन ये सबसे बड़ा पाप है। जिस तरह रात्रि में भोजन करना पाप है उसी तरह रात्रि में भोजन बनाना भी पाप है।

श्लोक– २२

यथासौ चेष्टते स्थाणौ निवृत्ते पुरुषाग्रहे।
तथा चेष्टोऽस्मि देहादौ विनिवृत्तात्मविभ्रमः।।२२।।

पश्चात् उसे निकट जा लख शुष्क ठूंठ, ज्यों त्यागता वह उसे द्रुत मान झूठ।
त्यों छोड़ता वितथ मान तनादिकों को, निस्सार हेय पर जो दुख कारकों को।।२२।।

आत्मा जब तक देह आदि को अपना मानकर के, आत्म रूप मानकर भ्रम में रहता है तो उसकी चेष्टाएँ अलग रहती हैं और जब वही आत्मा देह को जड़ मानकर के और चेतन को चेतन मानकर के चेष्टा करने लग जाता है वह अलग होती है। दुनिया में सब प्रकार के जीव जीते हैं। अज्ञान के साथ भी जीवन चलता है, ज्ञान के साथ भी जीवन चलता है। जो जीव इस भेद ज्ञान के साथ में जीते हैं, उन्हें ज्ञानी कहा जाता है और जो जीव इस भेद विज्ञान को नहीं रखते हैं उन्हें अज्ञानी कहा जाता है। अज्ञान और ज्ञान का सरोकार केवल पढ़ने-लिखने से नहीं है। उस भ्रम को दूर करने के बाद में जो हमारे चेष्टाओं में अंतर आता है उन चेष्टाओं से वह ज्ञानी और अज्ञानी बनता है। ज्ञान वैसे आत्मा का स्वभाव है लेकिन उस स्वभाव की जानकारी होने के बाद और उस स्वभाव को समझने के बाद में जो शरीर को जड़ के रूप में जानने लग जाता है और आत्मा को चेतना के रूप में जानने लग जाता है वह ज्ञानी होने लग जाता है। इस भेद विज्ञान की इस दहलीज पर ही उस आत्मा के अंदर परमात्मा का एक मकान खड़ा हो जाता है और उस परमात्मा तक पहुँचने के लिए उसके मन में अगर किसी भी प्रकार के विभ्रम है तो वह उन्हें ध्यान के माध्यम से दूर करता चला जाता है। कुछ भ्रम बाहर के होते हैं और कुछ भ्रम अंतरंग के होते हैं। बाहर के भ्रमों को दूर करने के लिए हम प्रकाश लगा सकते हैं लेकिन अंतरंग के भ्रमों को दूर करने के लिए आचार्य कहते हैं ध्यान का प्रकाश उत्पन्न करो। उस ध्यान के प्रकाश से मानसिक भ्रम दूर होते हैं। उन मानसिक भ्रमों को अगर हम बाहर भी देखें तो भी कई रूपों में देख लेते हैं। जैसी हमारी दृष्टि बनती है वैसे ही हमारे अंदर भाव भी बनते चले जाते हैं। जब कोई व्यक्ति रेलगाड़ी

से यात्रा करता है और बाहर खिड़की से झांकता है तो उसे लगता है कि बाहर प्रकृति बहुत तेज दौड़ रही है, वह महसूस करता है कि बाहर जितने भी वृक्ष, पर्वत, नदी, तालाब, पहाड़ इत्यादि हमारे साथ बहुत तेजी से दौड़ रहे हैं और वह भीतर बैठा हुआ सोचता है कि ये इतनी तेजी से कैसे दौड़ रहे हैं। अगर उसे सापेक्षता का ज्ञान नहीं है तो वह कभी भी इस बात को समझ नहीं सकता कि इस दौड़ का कारण क्या है। जो असल में दौड़ रहा है वह उसे दौड़ता हुआ नहीं दिख रहा है, जो स्थायी है वह दौड़ता हुआ दिख रहा है। ये अपनी दृष्टि का बहुत बड़ा भ्रम हो जाता है। बच्चे इस भ्रम में बहुत आनंद मानते हैं। बच्चों को भ्रम में ही आनंद आता है और आप जितनी भ्रामक चीजें उन्हें दिखाएँ उतना ही उन्हें आनंद आएगा। जब कोई बच्चा उस ट्रेन में बैठकर देखता है तो वह बहुत आनंदित होकर अपने मम्मी-पापा से कहता है कि देखो ये पेड़ कितने तेजी से दौड़ रहा है और ये धरती कितनी तेज दौड़ रही है लेकिन उसके माता-पिता जानते हैं क्या दौड़ रहा है और क्या स्थिर है। उस दौड़ में अगर उस बेटे का जो भ्रम है वह यदि स्थायी बन जाता है तो वह हमेशा ये ही सोचेगा कि बाहर की प्रकृति, पेड़-पौधे सब दौड़ते रहते हैं और हम स्थिर बने रहते हैं। इसी तरह के कई भ्रम हमारे अंदर भी पड़े रहते हैं और उन भ्रमों में एक वर्तमान में बहुत चल रहा है। वह भ्रम कि हम सोच नहीं पाते क्या सही है और क्या गलत।

आपको सिखाया जाता है कि धरती दौड़ रही है और सूर्य-चंद्रमा स्थिर हैं। बच्चों को पढ़ाया जाता है कि पृथ्वी हमेशा अपनी धुरी पर घूमती रहती है और सूर्य-चंद्रमा हमेशा स्थिर रहते हैं जबकि सामान्य व्यक्ति के लिए भी ये ज्ञान में आता है कि हम स्थिर हैं और हमारे आसपास में जो सूर्य-चंद्रमा है वो घूम रहे हैं। अगर वहाँ देखें कि हमारे आसपास के सूर्य-चंद्रमा का आगमन होता है एवं उन्हीं का अस्त होता है। उस आगमन व अस्त के माध्यम से ये कहा जाता है कि ये सूर्योदय हुआ और ये सूर्यास्त हुआ। अगर ये कहा जाए कहीं पर पृथ्वी का उदय हुआ और पृथ्वी का अस्त हुआ तब हम सोच सकते हैं वास्तव में पृथ्वी घूम रही है और घूमते-घूमते उसका उदय हो जाता है और घूमते-घूमते अस्त हो जाता है। हर व्यक्ति इस बात को महसूस करता है कि सूर्य का आगमन होता है और सूर्य का ही गमन होता है। ये सूर्य के आगमन व गमन की विधा हमारे लिए ये भ्रम उत्पन्न कर दे कि पृथ्वी घूम रही है तो आपके अंदर का ये भ्रम भी आपकी अज्ञानता का कारण बन सकता है। आप पूछ सकते हो कि महाराज, दुनिया कह रही है कि पृथ्वी स्थिर है व सूर्य घूम रहा है। जैन दर्शन कहता है कि पृथ्वी स्थिर है और विज्ञान कहता है कि पृथ्वी घूम

रही है, सूर्य-चंद्र-तारे स्थिर हैं। आपको ये सोचना है कि जो चीज घूमती है और उस घूमने के कारण से उसमें जो परिवर्तन आता है तो कहीं न कहीं हमारा एक स्थान से दूसरे स्थान पर भी जाना हो जाता है। जो चीज घूम रही होती है उसे घूमने के लिए जो आधार चाहिए पड़ता है। उस आधार का भी हमको ज्ञान होना चाहिए कि पृथ्वी किस आधार से घूम रही है। अगर कोई पृथ्वी एक धुरी के ऊपर घूम रही है तो वह धुरी उस पृथ्वी के लिए कब तक कारण बनी रहती है और उसके घूमते रहने का क्या कारण है और क्या कारण है उस कीली पर ये पृथ्वी सधी हुई है। आपको ये भी सोचना है कि अगर पृथ्वी घूमती रहती है तो उस पृथ्वी के आसपास का वायुमंडल कैसे घूम सकता है। आपने देखा होगा कि यदि पृथ्वी घूम रही है तो उसकी जिस डायरेक्शन में हवा चल रही है। हमेशा हवा का आना भी एक ही दिशा से होगा क्योंकि पृथ्वी जिस दिशा में घूम रही है, हवा भी उसी दिशा में घूमेगी और पृथ्वी इतनी तेजी से घूम रही है अगर आप उसकी वेलोसिटी देखेंगे विज्ञान के हिसाब से तो वह इतनी तीव्र वेग से घूम रही है कि उतनी तीव्र वेग से उस पृथ्वी पर अगर कोई भी वस्तु रहेगी तो वो उछल जाएगी। इस पृथ्वी पर अनेक समुद्र हैं और इतनी तेजी से पृथ्वी के घुमाव को स्वीकार किया जाएगा तो वो समुद्रों का पानी कभी भी समुद्रों में टिक नहीं सकेगा। विज्ञान के अनुसार हजारों कि.मी. पर सेकंड की स्पीड से पृथ्वी घूम रही है, फिर भी आप पृथ्वी पर इस ढंग से बैठे हो कि आपको बिल्कुल भी महसूस नहीं होता कि पृथ्वी घूम रही है। हल्का सा जब भूकंप आता है, झटका आता है तब आपको महसूस हो जाता है कि पृथ्वी में भूकंप आया है। हल्का सा झटका लगा आप हिलने लग जाते हो, आप महसूस करते हो कि भूकंप का झटका है और जो पृथ्वी हजारों कि.मी. की स्पीड से घूम रही हो, उसको आप महसूस नहीं कर रहे हो ये कैसे हो सकता है। ये भी हमें लगता है कि बच्चों की तरह एक बड़ों का भ्रम है। ये भ्रम कैसे उत्पन्न हो जाता है जैसे किसी बच्चे को किसी एक खंभे के सहारे रख दें और कहें बेटा घूम। वह बेटा उस खंभे के सहारे जब घूमता रहता है और घूमते रहने के बाद में उसका दिमाग इतना घूम जाता है कि उस खंभे से बाहर की हर चीज उसे घूमती दिखाई देती है। ये भी एक बाहर का भ्रम है और इस भ्रम के कारण से वह बच्चा समझता है कि देखो ये घर कितनी तेजी से घूम रहा है, उस घर में यदि मम्मी-पापा भी होंगे तो वे भी घूमते हुए दिखाई देंगे। जिस तरह अनेक भ्रम हमारे अंदर हैं उसी प्रकार ये भी एक भ्रम है कि सूर्य और चंद्रमा स्थिर हैं एवं पृथ्वी घूमती है, ये भी विज्ञान का बहुत बड़ा भ्रम है। इस भ्रम को दूर करने हेतु आपको

थोड़ा जैन दर्शन भी पढ़ना चाहिए ताकि आपको ये ज्ञात हो कि पृथ्वी स्थिर है एवं शाश्वत है। पृथ्वी की घूमने की प्रक्रिया कहीं पर भी नहीं लिखी है और सूर्य व चंद्रमा दिन और रात के माध्यम से आते हैं व जाते हैं। पृथ्वी पर जितना भी वातावरण है वह इस ढंग से चलता रहता है, कभी तो हमें हवाएँ पूर्व से बहती दिखाई देती हैं, कभी हमें हवाएँ दक्षिण से आती दिखाई देती हैं, कभी पश्चिम से। अगर एक ही वेलोसिटी से अगर पृथ्वी घूमती रहेगी तो हवाएँ एक ही ढंग से चलेगी। वो हवाएँ कभी भी बदलते हुए हमारे सामने नहीं आ पाएँगी, ये हम आपको बहुत बड़ा कारण बता रहे हैं। एक छोटा सा कारण बता देता हूँ कि अगर पृथ्वी घूम रही है तो आपको यहाँ से अमेरिका व जापान जाने के लिए किसी प्लेन से उड़कर के जाने की जरूरत नहीं है। आप अगर यहाँ पर बैठे हो, पृथ्वी घूम रही है तो कहीं न कहीं उसका अक्षांश अपने आप ऐसा आ जाएगा कि आप ऊपर प्लेन में जाकर के स्थायी रूप से खड़े हो जाओ, पृथ्वी घूमेगी, उसका अक्षांश जैसे ही उस अमेरिका के अक्षांश से मिल जाएगा, वहीं पर उतरना हो जाएगा। आप वहीं पर उतर जाना क्योंकि पृथ्वी घूम रही है। भ्रमों को दूर करने के लिए अनेक प्रकार के ज्ञान उत्पन्न हो सकते हैं। कई प्रकार का भ्रम हमारे अंदर है जिनमें लौकिक जगत के एवं अलौकिक जगत के अलग-अलग भ्रम होते हैं। यहाँ लौकिक जगत का कारण देकर के अलौकिक जगत के भ्रम की ओर आपकी दृष्टि कराई जा रही है। जिस तरह से हमने अपने शरीर आदि को अपना मानकर के भ्रम किया है। ये शरीर मेरा आत्मा नहीं है। मेरा आत्मा अलग द्रव्य है, शरीर अलग द्रव्य है। आचार्य कहते हैं कि अगर तुम्हारा ये भ्रम टूट जाएगा तो तुम्हारी चेष्टाएँ बदल जाएँगी, तुम्हारे क्रिया-कलाप बदल जाएँगे। जब हम इस शरीर को जड़ जानने लग जाएँगे तो हमारा इस शरीर से ज्यादा मोह उत्पन्न नहीं होगा और हम केवल इस शरीर के लिए नहीं जियेंगे, हमें अपनी आत्मा का जीवन दिखने लगेगा और हम अपनी आत्मा के लिए जियेंगे और शरीर हमारे लिए एक सहारा बन जाएगा। आपने सुना होगा- 'शरीर माध्यम खलु धर्म साधनं।'

चार दुर्गुण

धर्म साधना का अगर सबसे पहला कोई आधार है तो वह शरीर है। प्राचीन काल से ये युक्ति चली आ रही है। भारतीय संस्कृति के अंदर कहा गया है कि इस शरीर को धर्म साधना का आधार बनाएँ। लेकिन हमने इस शरीर को भोग वासना का आधार बना लिया। इस शरीर के माध्यम से

हमें केवल धर्म साधना करनी थी, हम भोग साधना करने लग गए। कैसे अच्छे-अच्छे भोग हमारे लिए उपलब्ध हों, ये विचार रहने लग गया। हमारे आत्मा के लिए ये विचार नहीं आता कि हम कैसे अपनी आत्मा के लिए आत्म तत्त्व उपलब्ध करें और इस शरीर से ममत्व को छोड़कर के अपने अंदर ऐसा आत्मबोध उत्पन्न करें, जिससे हमें इस शरीर का मोह छूटे और ये शरीर धर्म साधना में लग जाए। धर्म साधना भी इस शरीर के माध्यम से होती है और भोग साधना भी। जब तक ये अज्ञान रहता है कि मेरा शरीर ही मेरी आत्मा है, तब तक वह आदमी सोचता है खाओ-पीओ मौज करो। ये वृत्ति आदमी के अंदर आ जाती है क्या करना धर्म करके, धर्म सुनके। लेकिन ध्यान रखना ये मौज भी ज्यादा समय तक नहीं चल पाएगी क्योंकि मौज में भी रहने के लिए हमें कुछ धर्म ही करना पड़ता है। बिना धर्म किए हुए उस मौज करने के साधन भी नहीं मिलेंगे और एक जन्म तो बहुत छोटा सा है पर आपकी आत्मा का जीवन बहुत बड़ा है, बहुत दीर्घकालीन है। एक जन्म की मौज का आपको कई जन्मों तक अभिशप्त होकर के उसकी हानि आपको उठानी पड़ सकती है। ये शास्त्र, ये जिनवाणी और ये गुरुजन आपके उस उपकार को चाहते हैं जिसके माध्यम से न केवल ये जन्म भी सुधरे, अगला जन्म भी सुधर जाए। आप अगर इस जन्म में सावधान हो जाएँगे तो आपका अगला जन्म भी अच्छा होगा और अगले जन्म में बहुत कुछ हो सकता है, जो व्यक्ति दिन और रात का भेद नहीं करते और अपने विवेक से ये नहीं सोचते कि दिन और रात में कितने गुण और दोष हैं, उनके लिए दिन और रात एक जैसे चलते रहते हैं। अगला जीवन भी ऐसा ही होता है जैसा ये वर्तमान का जीवन है।

आचार्यों ने शास्त्रों में लिखा है जो व्यक्ति रात्रि में भोजन करते हैं वे अगले जन्म में रात्रि में ही भोजन करने वाले जीव बनते हैं। जब आपको रात्रि में बिल्ली बनकर घूमना पड़े, पानी में मगरमच्छ बनकर डला रहना पड़े, उल्लू बनकर किसी भी स्थान पर रहना पड़े, आप ये सोचना जिन जीवों का रात्रि में जीवन चलता है वे कहाँ से आए। ये जीव इसी मनुष्य पर्याय से तिर्यंच पर्यांय में जाते हैं क्योंकि ये वे विशिष्ट जीव हैं जो केवल रात में ही भोजन-पानी करने में आनंद मानते हैं। उनके अंदर ऐसे ही कर्मो का बंध होता चला जाता है कि रात्रि में भोजन करना अच्छा लग रहा है तो पर्याय भी ऐसी ही मिलेगी कि रात में ही खाओ। रात में ही खाना, जागना, काम करना पसंद है तो ऐसी ही शक्ति मिलेगी कि अब सब काम रात में ही करो। उल्लू को दिन में दिखाई नहीं देता। उसके अंदर वह कर्म उसी रूप में फलते कि वह दिन में नहीं देख पाता है,

रात में ही दिखाई देता है। उसी तरह से आपके अंदर की वृत्ति जो आज बन रही है वह भविष्य में उस रूप में हो सकती है। आप ये मत समझना कि हमारा जीवन आज हम जी रहे हैं वह उतना ही है। वह जीवन अनादि से चला आ रहा है और आगे भी चलता रहेगा। वहाँ पहुँच कर तुम्हें कुछ ध्यान नहीं आया तो समझ लेना तुम्हें ऐसी पर्याय मिलती चली जाती है जिसके माध्यम से जीवन और निम्नता की ओर चला जाता है फिर उससे भी छोटे-छोटे कीड़े-मकौड़े बनना आदमी शुरू कर देता है और आत्मा की वह परिणति एकेंद्रिय पर्याय तक पहुँच जाती है। जहाँ पर उसके पास केवल एक ही इंद्रिय रह जाती है। ये मत सोचना कि हम हमेशा ऐसे ही मनुष्य बनते आए हैं और ऐसे ही मनुष्य बनते रहेंगे। हर आत्मा ऐसी चौंरासी लाख योनियों में भ्रमण कर चुकी है। उन चौंरासी लाख योनियों में ऐसा कोई सा भी स्थान नहीं है जहाँ पर इस आत्मा का जाना नहीं हुआ हो। यहाँ पर उत्पन्न हुआ अपना ये अभिमान और अपना ये ज्ञान, नरक-तिर्यंच आदि गति में जाने के ये ही कारण बन जाते हैं। आप ये मत समझना कि नरक-तिर्यंच गतियों का वर्णन केवल जैन-दर्शन में है। हिन्दू दर्शन में भी नरक व तिर्यंच आदि गतियों का वर्णन है। हिन्दू दर्शन की 'महाभारत' में ये लिखा हुआ है- 'चत्त्वारि नरकद्वाराणि' नरक के चार द्वार हैं। प्रथमं रात्रि भोजनम्। ये व्यास की महाभारत में लिखा है कि पहला नरक का द्वार है- रात्रि भोजन।

पहला नरक का द्वार रात्रि भोजन है। दूसरा नरक का द्वार लिखा है परस्त्री सेवन। अपनी पत्नी के अलावा अन्य किसी स्त्री से संबंध रखना ये दूसरा नरक का द्वार है। यह पुरुषों के लिए लिखा है और स्त्रियों के लिए इसी का उल्टा समझ लेना। तीसरा नरक का द्वार संधान यानि अचार को खाने से इतने त्रस जीवों की उत्पत्ति हो जाती है, उनके घात के कारण से नरक आयु का बंध होता है। चौथा नरक का द्वार बताया- अनंतकायिकम्। जिन वनस्पतियों में अनंत जीव रहते हों, जिन वनस्पतियों को हम एक तरह से जमीकंद कहते हैं इनका भोजन करना, ये भी नरक के द्वार का कारण है। अब आपको समझना है कौन-कौन से द्वार हम बंद कर सकते हैं। इन चार द्वारों में से आपका किसी भी द्वार से नरक में प्रवेश हो सकता है। पहला रात्रि भोजन, दूसरा परस्त्री सेवन, तीसरा अचार खाना और चौथा जमीकंद। विशेष रूप से आलू-प्याज आदि खाना जो सामान्य रूप से हमारी संस्कृति में लोग नहीं खाते हैं या नहीं के बराबर खाते हैं। ये विवेक हमेशा से रहा है। अनेक प्रलोभनों के माध्यम से हमारा विवेक भी छूटता जा रहा है। आपको इन चार द्वारों के माध्यम से सोचना है और थोड़ा सा अपने मन पर अंकुश रखना है। अगर आप इन चार द्वारों से अगर

आप बच गए तो आप मान के चलना कि नियम से आप स्वर्ग में ही जाएँगे और स्वर्ग जाने के बाद देव बनने के बाद आपके पुन: मनुष्य बनने की पूरी संभावनाएँ बनी रहेंगी क्योंकि स्वर्ग से आने वाला देव भी ऐसे ही स्वर्ग भूमियों में जन्म लेता है जैसे ये मंदसौर की भूमि है। जहाँ के लोग बड़े आनंद से धर्म साधना करते हों, हर प्रकार की सुख-सुविधाओं में जीते हों और जहाँ के लोगों का हमेशा सब लोगों के प्रति हमेशा सद्भाव बना रहता हो, वही स्वर्ग कहा जाता है। जब कोई भी आत्मा स्वर्ग से उतरकर आती है तो उसे भी ऐसे ही अच्छी जगहों पर जन्म लेने को मिलता है जहाँ पर आप निश्चिंत होकर के कम से कम मुनिराजों के, संतों के प्रवचन तो सुन सको। इतनी स्वस्थता अभी आपके अंदर है। इतनी बुद्धि अभी आपकी चल रही है। अभी आपका मन अच्छा है कि आपके लिए इस कार्य में प्रवृत्ति हो रही है। इसका मतलब है आपके अंदर कुछ देवीय गुण उत्पन्न हो रहे हैं लेकिन उन गुणों को बनाए रखना और इस सत्संगति से ये सीख लेना कि हमें ये चार दुर्गुणों को और छोड़ना है और उन चार दुर्गुणों का हम संकल्प के साथ में अपने ही मन में त्याग कर लें। किसी को नहीं बताएँ तो भी चलेगा। बिना रात्रि के भोजन किए भी आप अपना जीवन जी सकते हो और निरोगता के साथ जियोगे। सबसे ज्यादा पेट की बीमारियाँ रात्रि में भोजन करने वालों को होती है। सबसे ज्यादा कब्जीयत की शिकायत सिरदर्द पेट के रोग रात्रि में भोजन करने वालों को होते हैं। जितनी भी आपको उन पेट से संबंधित बीमारियों में डायबिटीज, ब्लड प्रेशर समझ में आते हैं ये सब रात्रि में भोजन करने का परिणाम है। वैज्ञानिक लोग कहते हैं सूर्य के प्रकाश में जो किरणें रहती हैं उसमें यूवी रेज और इन्फ्रारेड्स रहती हैं, इन किरणों के कारण इनसे जीवों की उत्पत्ति नहीं होती है और जहाँ रात हुई वहाँ पर अपने आप जीवों की उत्पत्ति होने लग जाती है। आप उस भोजन को भले सीएफएल व्हाइट कलर में देख रहे हो, एक भी कीड़ा आपको दिखाई नहीं दे रहा है पर आपको अपनी इन आँखों से नहीं भीतर की ज्ञान की आँखों से देखना है।

आचार्य कहते हैं जैसे ही सूर्य का प्रकाश चला जाता है, पूरा का पूरा वातावरण जीवमय हो जाता है। जो भोजन आपका रखा हुआ है वह भोजन जीव सहित है, उसमें वो जीव आपको दिखाई नहीं देते लेकिन वो रात्रि में उत्पन्न होने वाले जीव उस भोजन के साथ में मिले हुए हैं और आप उस जीव सहित ही भोजन कर रहे हो। ये आचार्यो ने कहा है क्योंकि कोई भी कोना रात्रि होने के बाद आप आरटीफिशियल किसी भी लाइट से इन्फ्रारेड और उन यूवी रेज को उत्पन्न नहीं कर

सकते जो केवल सूर्य के प्रकाश में होती है। इस कारण से पहले के ऋषि-मुनियों द्वारा दीपक आदि के प्रकाश में भोजन नहीं किया जाता था और वर्तमान में अगर आपको लगता है कि हमारा घर तो लाइट से चमक रहा है, जगमगा रहा है। हमारे घर में तो कहीं अंधेरा है ही नहीं, हम तो महाराज प्रकाश में भोजन करते हैं, अंधकार में नहीं करते हैं। अगर ये आपके अंदर भ्रम बैठा है तो आप इस भ्रम से भी बचना। ये एक बहुत अच्छा भाव होगा जो आपको इतने बड़े-बड़े पापों से रोक देगा कि इस पाप का कोई सानी नहीं। रात्रि भोजन का इतना बड़ा पाप है कि आपको एक प्रसंग और बताता हूँ कि जब लक्ष्मणजी रामजी के साथ में वनवास की यात्रा पर थे और उस समय पर वह यात्रा करते हुए कई जगह पड़ाव करते हुए चले जा रहे थे तो कई बार उन रामजी व लक्ष्मणजी को ऐसे संयोग मिल जाते थे कि उन्हें कई राजाओं के साथ में परिचय हो जाते थे और वे राजा लोग उनको महापुरुष जानकर अपनी कन्याओं का विवाह उनसे कर दिया करते थे। लक्ष्मण के साथ भी ऐसा हुआ। एक जगह पर लक्ष्मण का रुकना हुआ। वहाँ के राजा ने अपनी कन्या का विवाह लक्ष्मण से करने के लिए कह दिया। लक्ष्मण ने उस कन्या के साथ विवाह की मंजूरी भी दे दी और कुछ दिन जब तक उनका पड़ाव रहा वहाँ रुके रहे और रुकने के बाद जब वो चल दिए तो कन्या का विवाह तो हो चुका था। बात थी लक्ष्मण के साथ जाने की, तब लक्ष्मणजी कहते हैं अभी हम किसी को भी साथ में ले नहीं जा सकते क्योंकि अभी हम वनवास में हैं। अभी हमें अपनी ही सुरक्षा करना मुश्किल है तो हम आपकी रक्षा कैसे करेंगे। जब हमारे वनवास का काल पूरा हो जाएगा, उस समय में हम अयोध्या में आपको ठाट-बाट के साथ बुलाएँगे। तब तक के लिए आप अपने घर पर ही रहो, वह पत्नी कहती है हम तो आपके साथ के बिना रह नहीं सकते। हम कैसे मान लें कि आप अयोध्या पहुँचकर के हमें बुला लेंगे। लक्ष्मणजी कहते हैं देखो आपको विश्वास तो करना पड़ेगा। विश्वास कैसे करें तो कसम खा लो। अपने इष्टदेव की कसम खा लो। लक्ष्मण ने अपने इष्टदेव की कसम खा ली तो भी उस कन्या को विश्वास नहीं हुआ। लक्ष्मणजी कहते हैं फिर क्या करें। अपने माता-पिता की कसम खा ली, तब भी उस कन्या को विश्वास नहीं हुआ। कुछ समय पर वह कन्या कहती है नहीं मुझे विश्वास दिलाने के लिए आप कोई ऐसी बात बताओ या ऐसी शर्त दो जिसके माध्यम से हमारे मन में विश्वास उत्पन्न हो जाए। उस समय पर लक्ष्मणजी कहते हैं- देखो आदमी ने जीवन में जो भी धर्म किया है वही उसके साथ जाता है और अगर उसने पाप किया है तो पाप भी उसके साथ जाता है। हम आपको ये विश्वास दिलाते हैं कि रात्रि में भोजन करने का जितना पाप लगता है वह पाप हमें लग जाए अगर अयोध्या पहुँचकर

हमने आपको नहीं बुलाया। जब उस कन्या ने ये सुना तब उसको विश्वास हुआ और तब उसने लक्ष्मण को विदाई दी। इतना पहले के लोगों के अंदर विश्वास रहता था कि रात्रि भोजन के पाप से बढ़कर के कोई पाप नहीं होता। आज के लोगों के अंदर कितना बड़ा भ्रम उत्पन्न हो गया है कि रात्रि में भोजन किए बिना ये लगता ही नहीं कि हम कुछ खा रहे हैं, पी रहे हैं, जी रहे हैं। इस भ्रम को दूर करने के लिए आपको ये ध्यान रखना है कि नरक के चार द्वारों में से सबसे पहला द्वार ही सबसे बड़ा द्वार होता है। हम ये सोच रहे हैं कि चार दिशा के चार द्वार हैं कि एक के अंदर एक द्वार हैं। आप बताओ। आप तो गए होंगे कभी न कभी, सब लोग सब जगह घूमघाम के आए हैं। अगर आपको याद नहीं है तो आप ध्यान रखना सबसे बड़ा द्वार नरक का रात्रि में भोजन है। कुछ भी करना पड़े अपने बच्चों को, अपने घर के लोगों को ये सिखाओ। उन्हें बार-बार ये बताओ कि बेटा जब तक हो सके, जितना हो सके तू समय से पहले आकर रात्रि होने से पहले भोजन कर लिया कर और उसी समय पर तुझको जो कुछ भी व्यंजन खाना है वो खा लिया कर। अगर बच्चा रात में भोजन नहीं करेगा तो रात में ज्यादा जगेगा नहीं, रात में जल्दी सो जाएगा तो सुबह जल्दी भी उठ जाएगा। जब रात को ९-१० बजे भोजन करोगे तो नींद कब आएगी। वैज्ञानिकों का ये भी कहना है कि भोजन करने के बाद ३ घंटे से पहले तो आपको सोना नहीं चाहिए और अगर आप सो गए तो वो भोजन आपके लिए रोग का कारण बन जाएगा। धर्म शास्त्रों में जो भी हमें सिखाया जा रहा है तो हमारी बुद्धि अपने आप जिसको हम बोलते हैं 'असतो माँ सदगमय' मुझे असत्य से सत्य की ओर ले चलो। असत्य माने जो हमारे सामने पर्याय दिखाई दे रही है वो सब असत्य होती है और सत्य माने वह स्थिर चीज जो हमारी आत्मा का अस्तित्व है। हम उस असत्य से सत्य की ओर चले यानि क्षणभंगुरता से स्थायित्व की ओर चलें। ये असत्य से सत्य की ओर जाने का लक्षण है। ये शरीर असत् है, असत् माने जो बहुत जल्दी मिट जाने वाला है और सत्य उसे कहते हैं जिसका अस्तित्व हमेशा बना रहता है। आत्मा सत् है आत्मा का अस्तित्व हमेशा बना रहता है। शरीर असत् है क्योंकि वह कुछ समय का ही है और कुछ समय के लिए हमारे साथ में है इसलिए उस असत् को छोड़कर के सत् की ओर आना, देह को छोड़कर के आत्मा की ओर आना यही उपदेश है। चाहे ये समाधि तंत्र पढ़ो, चाहे कोई भी भारतीय संस्कृति का अध्यात्म ग्रंथ पढ़ो। आपको ये ही उपदेश मिलेगा कि अपने अंदर ये जो भ्रम इस शरीर के साथ जुड़ा हुआ है। आत्मा की ओर आए और आत्मा की ओर आते समय आपके मन के भीतर जितने भी असत् के विकल्प हैं। उन सब विकल्पों को छोड़ो।

श्लोक– २३

येनात्मनाऽनुभूयेऽह – मात्मनैवात्मनाऽऽत्मनि।
सोऽहं न तन्न सा नासौ नैको न द्वौ न वा बहुः।।२३।।

ना मैं नपुंसक नहीं नर दीन स्त्री न, दो भी न एक न अनेक तथा न तीन।
मैं हूँ निजात्म बल से जब स्वात्म ध्याता, इत्थं तदा न मुझमें कुछ भेद नेता!।।२३।।

कहा जा रहा है असत्य से सत्य की ओर आओ। इतनी असत्य कल्पनाएँ इस दिमाग में है, इस मन के अंदर है, वो सब असत्य कल्पनाएँ दूर होती हैं एक सत्य स्वरूप का चिंतन करने से। वह सत्य स्वरूप है चित्त। चित्त माने चैतन्य आत्मा ही सत्स्वरूप है। उस सत्स्वरूप का आप चिंतन करोगे तो आपके मन में जो भी भ्रम है वे दूर होंगे। ये भी एक भ्रम है कि मैं मनुष्य हूँ क्योंकि मनुष्य तो मैं केवल अभी ८० साल के लिए हूँ। इसके आगे पीछे हम क्या होंगे तो आपको विचार करना है। मैं मनुष्य भी सत्य रूप में नहीं हूँ। ये भी असत्य रूप है। मनुष्य में भी कोई स्त्री रूप में है, कोई पुरुष रूप में है तो आपको ये विचार करना है कि मैं स्त्री रूप ही नहीं हूँ या कि मैं पुरुष रूप ही नहीं हूँ। मैं सत्रूप हूँ क्योंकि सत् में सिर्फ चेतना होती है, उसमें न स्त्री होती है न पुरुष होता है, न नपुसंक होता है न नारकीय होता है, न मनुष्य होता है कुछ नहीं होता है। न उसमें कोई दीन-हीन होता है न कोई अमीर गरीब होता है न कोई रूपवान् होता है न कोई कु रूप होता है। वह सत्चित है यानि वह सत्रूप अस्तित्त्व को धारण किए हुए मेरा वह चैतन्य आत्मा और उस आत्मा को जब हम अपनी दृष्टि में लाते हैं तो न वह आत्मा एक है न वो आत्मा दोरूप है न वो आत्मा बहुत रूप है। वह तो केवल आत्मा ही है। इसके अलावा और कुछ नहीं है। ये आत्मा की भावना जब आ जाती है तो अपने आप बहुत कुछ हमारे मन के विभ्रम जो अपनी उस पर्याय के साथ में जुड़ हुए रहते हैं वह भी छूट जाते हैं और आपके मन के अंदर अनेक प्रकार के दीन हीनता के विकल्प आते हैं। वह भी छूट जाते हैं क्योंकि आप असत् से सत् की ओर आने लग जाते हो। आप अंधकार से प्रकाश की ओर आने लग जाते हो।

आचार्य कहते हैं ज्ञान सबसे बड़ा प्रकाश है और उस ज्ञान प्रकाश के साथ जो जी रहा है वही प्रकाशवान् है। बाकी तो ये सब दुनिया का प्रकाश अंधकार है क्योंकि इस प्रकाश में भी जब तक ज्ञान का प्रकाश उत्पन्न नहीं हो तब तक तो आदमी का जीवन आदमी जैसा बनता ही नहीं है, वह पशुता जैसा जीवन जीता रहता है। उस जीवन को बनाने के लिए आचार्य कहते हैं अपने अंदर इस प्रकार का भेद विज्ञान करो कि मैं केवल स्त्री ही नहीं हूँ, कभी ये भाव करो कि मैं स्त्री के भावों से छूटकर के भी आत्मा हूँ। वैसे तो स्त्री के भाव बहुत अच्छे हैं लेकिन उन भावों को भी छोड़कर के ये भाव करो कि मैं केवल आत्मा हूँ। उस आत्मा को जब ये भाव आएगा तो कभी-कभी आप जब कोई अर्घ बोलते हो या पाठ पढ़ते हो तो उसमें लिखा रहता है, मैं आपके चरणों में अर्घ्य चढ़ाने आया हूँ तो आप ये जान लेना कि वह आत्मा के लिए लिखा हुआ है। बाहर की किसी पर्याय के लिए नहीं लिखा हुआ है। आत्मा पुल्लिंग का शब्द है। यह पुरुष भी पुल्लिंग का शब्द है और इसी शब्द के साथ में अगर आपके मन में विचार आ जाए कि मैं तो आत्मा हूँ तब आप उस पाठ को बिगाड़ेंगे नहीं कि मैं आई हूँ। आप कम से कम भगवान् के सामने, प्रभु के सामने, गुरु के सामने, पूजा करते हुए तो ये सोचो कि मैं आत्मा हूँ। जब आप आत्मा हैं ये सोचोगे तो आपको ऐसा लगेगा ही नहीं कि मैं आपके चरणों में अर्घ्य समर्पित करने आई हूँ, आप अगर कहोगे कि आया हूँ तो भी गलत नहीं माना जाएगा क्योंकि आपके अंदर ज्ञान चल रहा है। ये अपने अंदर आत्म भावों के साथ कहा जा रहा है और उस आत्मा की भावना में ही आपके अंदर के असत्य विकल्प अपने आप छूट जाते हैं।

आत्म चिंतन

आत्मा की जब भावना आप निरंतर करोगे, आपके मन में जो कुछ भी बाहरी परिस्थितियों से जो द्वंद उत्पन्न होते हैं, वह द्वंद भी आपके छूट जाएँगे। अगर आप केवल उन द्वंदों को दूर करने की बात करते रहो और अपने अंदर आत्म तत्त्व का श्रद्धान नहीं रखो तो आपके वो द्वंद कभी दूर नहीं होंगे। आपको जब भी ये भाव आए कि हमारे सामने कोई द्वंद है तो मन में ये भाव करो कि मैं **तो निर्द्वंद हूँ।** जब भी आपको लगे कि इससे मुझे परेशानी है, आप अपने मन में ये भाव करो 'आत्मा किसी से परेशान नहीं होती है।' आप अपने मन में उसी समय अपने चिंतन की धारा डायवर्ट कर लो, मुझे कोई मार नहीं सकता है, मुझे कोई परेशान नहीं कर सकता है, मेरा

कोई कुछ भी छीन नहीं सकता है, 'मैं आत्मा हूँ'। जैसे ही आपके अंदर इस शब्द के साथ में आनंद उत्पन्न होगा। आप समझ लेना आप अजर हो गए, अमर हो गए। कोई आपका बाल बांका कर नहीं सकता ऐसी शक्ति भीतर से मिलेगी। उसी शक्ति के कारण से अपने आप बाहर के परिवेश बदल जाते हैं। महापुरुषों के सामने विघ्न बाधाएँ क्यों नहीं आती, महापुरुषों के सामने क्यों अनेक प्रकार के हिंसक प्राणी भी सद्भावना के साथ में बैठे हुए मिलते क्योंकि उनके भीतर का चिंतन, उनके भीतर की सोच इस ढंग से बदली हुई रहती है उसी का परिणाम होता है कि बाहर सब कुछ बदला हुआ दिखाई देता है। हमें ऐसी भावना करना जिस भावना से दूसरे के प्रति हमारे अंदर कोई दुर्भाव नहीं हो, ऐसा चिंतन करो। आपने भजन को सुना होगा।

आत्मा तो अजर अमर है, हम आयु गिने इस तन की
वैसा ही जीवन बनता जैसी धारा चिंतन की
जो स्वयं समझ सकता है, वो ही समझा सकता है
संसार में रहकर प्राणी, संसार को तज सकता है
जीवन के किसी भी क्षण में वैराग्य उमड़ सकता है।

आप कभी इस बातों पर ध्यान दो। वैसा ही जीवन बनता है जैसी धारा चिंतन की। तुम चिंतन करते ही नहीं, जबरदस्ती तुम्हें यहाँ पर चिंतन करने के लिए मजबूर किया जाता है, बस इतनी ही देर आपका चिंतन चलता है। घर में जाने के बाद २४ घंटे तक आपके दिमाग में कभी ये चिंतन नहीं आता कि आज हमने क्या सीखा, उसको एक बार पुन: रिमाइंड कर लें। वह चिंतन की धारा अगर आपकी बनने लग जाए तो आपके जीवन में भी वह चीज उमड़ कर आ जाएगी जिसके लिए आप आदर्श मानते हो। जीवन में वैराग्य उमड़ सकता है। डर तो नहीं लगता तुम्हें वैराग्य से। जिसको तुमने आदर्श माना है अगर उससे डरोगे तो इसका मतलब है कि तुम्हारे अंदर उस आदर्श के प्रति भी श्रद्धा नहीं है। उस वैराग्य से डरना, उस आत्मज्ञान से डरना, ये भी एक बहुत बड़ा भ्रम है। हर आदमी को ये डर लगता है कि कहीं ऐसा न हो कि हमारे अंदर कोई ऐसा आत्मज्ञान उत्पन्न हो जाए कि हमें अपनी पत्नी, अपने बच्चों को छोड़ना पड़े।

ऐसा अगर भ्रम आपके अंदर बैठा हुआ है तो ये भ्रम भी आपके उस अज्ञान की उपज है। इसलिए अपने मन में हमेशा हम चिंतन करें कि हमारी आत्मा ज्ञानमय है। हम चिंतन करें कि हमारी आत्मा का अस्तित्व अनादि अनंत है। हम चिंतन करें कि हमारी आत्मा में इतना ज्ञान प्रकाश

है कि जितना भी विश्व है वो सब हमारी आत्मा के ज्ञान में झलकेगा और हम भी एक दिन केवली भगवान्, अरिहंत भगवान् बनेंगे। एक बार चिंतन की धारा तो उत्पन्न करो। आज का किया हुआ चिंतन ही अगले भविष्य का निर्माण करता है। जो व्यक्ति जैसा भी चिंतन कर रहा है समझना उसका भविष्य वैसा ही बनता चला जा रहा है। अगर आप आज आत्मा का चिंतन करोगे, आपको आत्मतत्त्व की उपलब्धि कभी न कभी भविष्य में होगी। आज आप परमात्मा के उस रूप का चिंतन करोगे, कभी न कभी आपको परमात्मा के उस रूप का दर्शन होगा। जैसी चिंतन की धारा वैसा ही जीवन बनता है। ये हमेशा ध्यान में रखो कि हमें अपनी चिंतन की धारा को अच्छा बनाना। हम किसी भी परिवेश में रहें लेकिन हमारी मानसिकता इतनी अच्छी होनी चाहिए कि हम हर एक दु:खदर्द में ये कह सकें कि मेरी आत्मा में कोई दु:ख नहीं है, आत्मा कभी परेशान नहीं होती। मैं तो हमेशा उस सुख में, शांति में रहता हूँ, जहाँ पर कोई भी परेशानी हमारी आत्मा तक नहीं पहुँच सकती। जिस दिन तुम्हारे भीतर ऐसा भाव उमड़ने लगेगा, आपको दुनिया में कोई परेशान नहीं कर सकेगा, जो आपको परेशान कर रहे वो भी आपके सामने हाथ जोड़ लेंगे। हे देवता मुझे बता तो तू इतना सुखी कैसे रहता है। इंसान को देवता बनाने की ये शुरुआत इसी अध्यात्म से होती है और ये ही अध्यात्म हमें अंतरात्मा की ओर उन्मुख करता है और ये ही हमें परमात्मा की ओर ले जाता है।



श्लोक–२४

यदभावे सुषुप्तोऽहं यद्भावे व्युत्थितः पुनः।
अतीन्द्रियमनिर्देश्यं तत्स्वसंवेद्यमस्म्यहम्।।२४।।

शुद्धात्म–ध्यान बिन खेद! अनादि सोया, पाके उसे जग गया, बहु दुःख खोया।
आनंद जो मिल गया, निज–गम्य, रम्य, स्वामी! अतीन्द्रिय अपूर्व न शब्द–गम्य।।२४।।

आचार्य कहते हैं कि जो अनुभूति हमें हो रही है, उन अनुभूति को पाकर के मैं जाग गया, अनादिकाल से सोया था और कभी भी अपने शुद्धात्मा का ख्याल नहीं आया। अपने आत्म स्वरूप की ओर दृष्टिपात नहीं किया। आज जब हमें अपने आत्मस्वरूप का ज्ञान हुआ, शुद्ध आत्मतत्त्व का ज्ञान हुआ तो हमें ऐसा लग रहा है कि मैं अनादिकाल से सोया था, आज ही जागा हूँ। यह अनुभूति उन्हीं को होती है जिन्हें उस शुद्धात्म तत्त्व के प्रति श्रद्धा व उसका ज्ञान हो जाता है। जब तक जीव को देह में ही आत्मा समझ में आता है और वह देह से भिन्न किसी आत्मा का अपने अंदर विचार नहीं करता तब तक उसे ऐसी अलग प्रकार की अनुभूति हो नहीं सकती। जैसे कोई व्यक्ति सो रहा हो और सोते हुए में स्वप्न देख रहा हो और उसे अचानक से उठा दिया जाए तो उसका स्वप्न टूट जाता है। ऐसे ही आत्मा का ज्ञान हो जाता है तो वह स्वप्न टूट जाता है जो वह बाहर देख रहा होता है। उसे अनुभूत होता है कि मैं जो कुछ भी सोच रहा था वह स्वप्न नहीं था वह एक सच था।

स्वप्न

स्वप्न में जैसे सुख मिलता है वैसे ही हमें इस संसार में तब तक सुख मिलता है जब तक हम उसे अपनी आँखों से देखते हैं। जब अंतर्ज्ञान की आँखें खुलती है तब यह संसार भी एक सपना दिखाई देने लग जाता है। दिन का सपना भी एक सपना ही होता है। 'दिन का हो या रात

का, सपना सपना होय। सपना अपना सा लगे किंतु ना अपना होय' ये आचार्य महाराज का लिखा एक दोहा है। रात के सपने सब देखते हैं पर दिन के सपने को आप सपने जैसा लेते नहीं। दिन में जो हम अरमान बनाकर रखते हैं, उन अरमानों के अनुसार हम अपनी जिंदगी बनाते हैं तो उसके अनुसार जब कार्य नहीं होते तो लगता है कि सपना टूट गया। वह भी सपने कहलाते हैं जिनके अनुसार हम अनेक प्रकार की इच्छापूर्ति करते हैं। जिस दिन, दिन का सपना टूट जाएगा उसी दिन अंतर्घट की यात्रा आपकी शुरू हो जाएगी। रात के सपने आपको अपने जैसे नहीं लगते परंतु दिन के सपनों में आपको अपनेपन का ख्याल रहता है। रात के सपने को आप नींद में देखा मानकर छोड़ देते हों परंतु दिन के सपने को समझते नहीं हो कि आप अपने लिए जागते हुए कर रहे हो। लेकिन जब आदमी को अपने अंतरंग आत्मा का ज्ञान हो जाता है तो उस समय पर उसे दिन का सपना भी सपना लगने लग जाता है। जब कभी उसका दिन का सपना टूट जाता है तो उसे लगता है कि उसका जीवन अब किसी काम का नहीं रहा। आपने भाव किया कि हमें आईएएस बनना है, एम.बी.बी.एस. डॉक्टर बनना है, बहुत बड़ा इंजीनियर बनना है। ये सब आपके सपने हैं और इन सपनों की शुरुआत हम जिंदगी में अलग-अलग समय पर करते रहते हैं। ये सपने किसी के पूरे हो जाते हैं और किसी के नहीं। इंजीनियर व डॉक्टर बनते-बनते कुछ नए सपने और जुड़ जाते हैं क्योंकि वे हमारे सामने नहीं है।

मोह की नींद

एक राजा था, उसके पुत्र को बहुत बड़ी बीमारी हो गई। राजा ने सभी वैद्यों को बुलाकर कहा मेरा एक ही बेटा है उसे रोगमुक्त करना है। सभी राजवैद्यों ने राजकुमार के लिए रोग का निदान किया किंतु कोई लाभ नहीं हुआ। राजा बहुत चिंतित हो गया कि इतने सारे राजवैद्य में कोई भी हमारे बेटे का इलाज नहीं कर पा रहे। वह खिन्न, परेशान, दु:खी हो गया, रातों की नींद उड़ गई। अनेक रातें बेटे के साथ जागते हुए बीत गई। एक दिन के समय उसे अचानक झपकी लग गई। उस थोड़ी सी नींद में उसने एक स्वप्न देख लिया। स्वप्न में उसने देखा कि उसके चार बेटे हैं और वे सब राजसी ठाट के साथ बैठे हैं, राजा की सेवा कर रहे हैं। पिताजी-पिताजी कहकर आदर कर रहे हैं, वह स्वप्न में इस सुख को पाकर इतना आनंदित हुआ कि खुशी में चिल्ला पड़ा। जैसे ही नींद खुली तो पत्नी ने कहा तुम्हें क्या हो गया, तुम पागल तो नहीं हो गए। अभी तक तो तुम

अपने बेटे को लेकर दु:खी-परेशान थे और अब अचानक से इतने खुश क्यों हो रहे हो, हँस रहे हो। पत्नी कहती है कि राजवैद्य ने कह दिया है कि तुम्हारा बेटा मर गया है और तुम हँस रहे हो। बात समझ में नहीं आ रही। उस समय पर राजा कहता है- मैं कौन से बेटे के लिए रोऊँ। जो बेटा सामने था, वो मर गया उसके लिए रोऊँ या अभी थोड़ी देर पहले चार-चार बेटों को देख रहा था, जो अब आँखों से ओझल हो गए उनके लिए रोऊँ, किसके लिए रोऊँ। मेरे अंदर अब ज्ञान जाग्रत हो गया है और मुझे पता पड़ गया है कि ये भी एक सपना था और जो मैं देख रहा था वह भी एक सपना था। राजा के मन में विचार आया कि ये भी तो एक सपना है। जैसे ही नींद लगी मैं भूल गया कि ये मेरा बेटा था और नींद में दूसरा सपना शुरू हो गया जिसमें मेरे चार बेटे दिखाई दे रहे थे, तुमने नींद तोड़ दी और फिर यही सत्य सामने आ गया। अगर हम थोड़ी देर के लिए आँखें बंद कर लें तो हमें समझ में आएगा कि ये दुनिया भी एक सपना है। इस दुनिया के इस सपने में हम इतने भ्रमित हैं कि हम अपने अंदर के इस अपनेपन को नहीं देख पा रहे कि हम क्या हैं और ये सपना भी तभी तक है जब तक हमारी आँखें खुली हैं। जिस दिन आँखें बंद होंगी उस दिन सब वहीं के वहीं रह जाएँगे। हर आदमी ने अपने विचारों में ऐसी ही दुनिया संजो के रखी है कि उस सपने में ही जीना उसे अच्छा लगता है, उसे छोड़ना नहीं चाहता है। यहाँ अध्यात्म में उसी सपने को, नींद को भगाने का उपाय किया जा रहा है। आप मोह की नींद में सो रहे हैं। अनादिकाल से उस मोह की नींद में सोने के कारण हम अपनी अंतरात्मा को नहीं समझ पा रहे हैं कि मैं आत्मा हूँ और मेरा जीवन इस शरीर के साथ जो चल रहा है वह कुछ समय का है लेकिन आत्मा का जीवन अनंत हैं। इस बात का ज्ञान नहीं होने का नाम ही मोह है। कुछ उपाय तब बनेगा जब कुछ मोह की निद्रा उपशमित हो जाए, दब जाएँ। वह उपाय तब बनेगा जब सद्गुरु मार्ग दिखाएँगे। ये बारह भावना का उद्गम पार्श्वपुराण से हुआ है जब पार्श्वनाथ राजा आनंद के रूप में बारह भावना भाते घर से निकल जाते हैं। आप सब ये भावना रोज पढ़ते हैं, 'राजा राणा छत्रपति....' एक-दूसरे को सुनाते हैं पर स्वयं कभी वैराग्य का अनुभव नहीं करते। पोता दादी को सुनाता है, बहू सास को सुनाती है पर कोई असर नहीं होता क्योंकि सुनाने वाले के भावों का प्रभाव पड़ता है। प्रतिदिन पढ़ने पर भी आज तक उस भाव का सही अर्थ नहीं मिल पा रहा है।

भाव अंदर क्यों नहीं उतरता क्योंकि मोह उसको भीतर उतरने नहीं देता, बस ऊपर ही ऊपर तैरकर रह जाता है जैसे किया हुआ भोजन यदि भीतर अग्नि नहीं हो तो वो पचता नहीं और शरीर

में नहीं लगता। उसी प्रकार से मोह के कारण सुना हुआ उपदेश भी आत्मसात् नहीं होता, वह अजीर्ण होकर के चला जाता है। इसे उपदेश की सार्थकता कहें या निरर्थकता कहें लेकिन फिर भी मन में आता है कि उपदेश सुनना है ताकि हमारा भ्रम दूर हो पर जिंदगी की शाम हो जाती है पर हमारा भ्रम दूर हो नहीं पाता।

तुम्हारे लिए जाग्रति को मौका बस तभी है, जब तुम सद्गुरु का उपदेश सुनते हो। जब तक यहाँ बैठे हो तभी तक मोह का थोड़ा उपशम है, तभी लगता है कि हम अपने पक्ष में हैं, अपने लिए कुछ सुन रहे हैं। इसके लिए बार-बार अभ्यास किया जाता है तब किसी दिन ये लगता है कि आज मेरी आँखें खुली हैं, अभी तक तो मैं सो रहा था। आज मुझे पता पड़ा है कि मेरी आत्मा कैसी है, मैं कैसा हूँ। मैं इंद्रियों के द्वारा न देखने में आने वाला हूँ न इंद्रियों से मुझे कोई देख सकता है। मेरी चक्षु इंद्रिय से न मैं किसी को देख सकता हूँ न कोई मुझे देख सकता है। मैं वह अरूपी आत्मतत्त्व हूँ। मैं इंद्रियों से रहित अतीन्द्रिय हूँ तभी आपको महसूस होगा कि मुझे वास्तव में कोई निर्देशित नहीं कर सकता, मेरी आत्मा का कोई कथन नहीं कर सकता। शब्द हमारे केवल कानों का विषय बन जाते हैं, जो वास्तव में आत्मा है वह शब्द से अतीत है। उस शब्दातीत आत्मा की अनुभूति मैं केवल तभी कर पाता हूँ जब केवल मैं ये विचार करता हूँ कि मैं अपने ही स्वसंवेदन के द्वारा गम्य हूँ, अपने ही स्वसंवेदन के द्वारा जानने योग्य हूँ। अपनी पंचेन्द्रियों को बंद करके मैं आत्मा के अंदर केवल आत्मा में हूँ, यह स्वसंवेदन ही आत्मा है और वही आत्मा मैं हूँ। जब यह संवेदन होगा तभी आप चिल्ला पड़ेंगे, उस आर्कमिडिज की तरह- यूरेका मिल गया। खोज लिया। क्या खोजा- पानी में कोई भी द्रव्य/पदार्थ डला हुआ है तो वह पदार्थ कितने पानी को अपने स्थान से हटा सकता है, वह उसमें डूब क्यों जाता है। बस इतनी सी खोज थी जिसके लिए उसने जिंदगी लगा दी कि पानी के द्वारा बढ़ा हुआ भाग उस हटाए हुए जल के भार के बराबर होता है। जैसे वैज्ञानिकों के अंदर जाग्रति आती है, वैसे ही आत्मविज्ञानी के अंदर भी जाग्रति आती है कि मिल गया। तुम्हें दिखाई नहीं देगा वो, तुम्हारी समझ में नहीं आएगा वो। जैसे वह राजा की नींद खुल गई और वो हँसने लगा। भले ही सामने उसका पुत्र पड़ा है जो मृतक है पर अब उसे दु:ख नहीं रहा क्योंकि अब उसे वह बोध मिल गया जो मैं आँख बंद करके देख रहा था। वह भी सपना था और जो आँख खोलकर देख रहा हूँ वह भी सपना है। इन दोनों सपनों में कोई भी अपना नहीं है। ऐसी जाग्रति जैसे ही आ जाती है वह आत्मा अपने भीतर से आनंदित हो जाता है। वह दूसरों को

तो पागल समझने लग जाता है, खुद वह आत्मज्ञान से भर जाता है। वह कहता है हमें तो मिल गया, तुम्हें कब मिलेगा।

आत्म ज्ञान

तुम्हारे अंदर कब जाग्रति आएगी, जब तुम कहोगे- मैं आत्मा हूँ। जब आत्मा का उसे ज्ञान हो जाता है तब उसे लगता है कि ये तो आत्मा का ऐसा स्वभाव है जिसे हमने कभी समझा ही नहीं। आत्मा ही सब कुछ कर रहा है, जान रहा है, देख रहा है लेकिन उसके अंदर जानने-देखने के अलावा और कुछ होता नहीं है। वह जिंदगी भर कुछ न कुछ करता रहता है, ऐसा ज्ञान होते ही वह शांत हो जाता है। उसके सामने कितनी भी प्रतिकूलताएँ हो वह विचार करेगा कि मेरी आत्मा तक किसी की आवाज पहुँच नहीं सकती, कोई शब्द पहुँच नहीं सकता क्योंकि वो जो शब्दों से कहा जा रहा है वो आत्मा नहीं और जो आत्मा है वो शब्द नहीं। शब्दों से तो केवल आत्मा है, ऐसा ज्ञान कराया जाता है। ऐसा आभास तो अपने अंदर आँख बंद करके करना पड़ेगा कि आत्मा इस शरीर के अंदर बैठा है और इस शरीर की उस यात्रा में वह आत्मा ड्राइवर का काम कर रहा है। जैसे कोई ड्राइवर किसी गाड़ी को चलाता है, उसका मालिक नहीं होता है। मालिक तो कोई और होता है। हो सकता है कि आप ही ड्राइवर, आप ही मालिक हो लेकिन साधु-संतों/मुनि महाराजों के लिए गाड़ी किसी की होती है और वे केवल ड्राइवर होते हैं उस गाड़ी को चलाने के लिए।

एक बार संघ में एक मुनि महाराज थे। नाम सुना होगा **प्रवचन सागरजी महाराज,** अकाल मृत्यु के कारण से उनका समाधिमरण हो गया। अमरकंटक में चातुर्मास के दौरान जब वे शुद्धि करने जंगल गए तो एक कुत्ते ने उनको काट लिया। उस समय पर ऊपरी उपचार किए गए, पर कोई इंजेक्शन नहीं लगाए गए थे। कुछ दिनों तक उन्हें कुछ नहीं हुआ संघ में रहे। संयोग की बात चातुर्मास समाप्त होने के पश्चात आचार्यश्री ने उन्हें कहा कि आप धर्म-प्रभावना हेतु कहीं ओर विहार करना चाहें तो कर सकते हैं। ऐसे ही विहार करते हुए वे कटनी आ गए। रास्ते में उनके अंदर कुछ ऐसे लक्षण दिखने लगे जो 'रेबीज' के लक्षण होते हैं। रेबीज के लक्षण में उसे पानी में भी वही जीव नजर आता है, वह पानी भी नहीं पी सकता। ऐसी स्थिति उनके साथ भी बनने लगी। जब आहार के लिए खड़े होते तो पानी में उन्हें जीव दिखाई देते और वो बैठ जाते। पूरी

चेतना दिनभर रहती सब कुछ सुनते, बताते लेकिन आहार के समय पर वह लक्षण सामने आ जाते। पानी-आहार छूटने लगा। देश-विदेश के डॉक्टर, वैद्य सभी ने कह दिया कि रेबीज के लक्षण प्रकट होने के बाद उसका कोई भी इलाज संभव नहीं है। अनेकों उपाय किए गए पर उन्हें बचाना संभव नहीं हो पा रहा था। इन सबके बावजूद उनके मन में आत्मा की जाग्रति बराबर बनी हुई थी। उनके समीप वाले लोग उन्हें देख-देख कर दु:खी हो रहे परंतु वे कहते कि चिंता मत करो, मुझे सब मालूम है, मुझे क्या हो रहा है। इसके बाद क्या होगा, मुझे ये भी मालूम है। बस अगर तुमसे कुछ हो सके तो इतना करना कि कभी भी मेरे व्रतों को मत बिगाड़ना, चाहे मुझे कुछ भी हो जाए। मेरे साथ रहकर मेरे व्रतों को संबल देना, णमोकार मंत्र, १२ भावना सुनाना। उस समय वे ३५-४० वर्ष के ही होंगे पर उनके मन में कोई भी विचार इस शरीर को लेकर नहीं थे। बस इतना विचार था कि मेरे व्रतों का पालन होना चाहिए, मेरे व्रत नहीं छूटने चाहिए। जो समाधिमरण करता है उस श्रावक के अंदर सबसे बड़ी प्रतिज्ञा यही रहती है। जब मृत्यु सामने नजर आती है तो वह अपना जीवन देखता है मृत्यु नहीं। उसका जीवन शरीर में नहीं है, उस आत्मा में है। उस आत्मा में सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र का पालन हो रहा है। ये तीनों आत्मा के गुण हैं, ये शरीर के धर्म नहीं हैं। शरीर के माध्यम से तो उनका पालन किया जाता है, आत्मा से रत्नत्रय का पालन करते हैं। जब तक गाड़ी चल रही है चला रहे हैं। यदि गाड़ी गड्ढे में गिरने वाली हो और ड्राइवर यदि समझदार है तो सोच लेता है कि गाड़ी तो फिर मिल जाएगी पर जिंदगी नहीं मिलेगी, तब वह कूदकर अपनी जान बचा लेता है। उसी तरह से जो व्यक्ति आत्मा व शरीर के भेद-विज्ञान को जानता है उसे जब ये पता पड़ जाता है कि ये शरीर अब मिट रहा है तो वह शरीर रूपी गाड़ी को छोड़ देता है और अपने ड्राइवर रूपी आत्मा को उससे मुक्त कर लेता है, इसी का नाम है **समाधिमरण।** यदि मौत सामने आ गई तो अपनी आत्मा को बचाना। यदि शरीर के साथ आत्मा पिस गई तो तुम्हारा जीवन और ज्यादा बिगड़ जाएगा। जब तुम्हें ये मालूम हो कि मेरा ड्राइवर एक आत्मा है और शरीर एक गाड़ी है, जिसे मैं चला रहा हूँ तो आपके अंदर ये भाव आएगा कि गाड़ी मिट भी रही है तो मैं नहीं मिट सकता क्योंकि ड्राइवर तो ड्राइवर होता है। आपको इतना मोह हो गया इस गाड़ी से कि गाड़ी चल रही हो, मिट रही हो फिर भी आप उसको छोड़ना नहीं चाहते, उस ड्राइवर की तरह गड्ढे में गिर जाना चाहते हो। ये आपकी सबसे बड़ी अज्ञानता है। समाधिमरण का मतलब है कि जिस समय पर हम मृत्यु के सामने हों तो हम डरें नहीं, हम उसकी

इच्छा नहीं कर रहे। कोई भी साधक मरने की इच्छा नहीं करता लेकिन वह जीने की भी इच्छा तभी तक करता है जब तक उसका शरीर चल रहा है क्योंकि वह शरीर के लिए नहीं जी रहा है, वह अपनी आत्मा के लिए जी रहा है। साधक इच्छा मृत्यु नहीं कर रहा। इच्छा मृत्यु व समाधिमरण दोनों अलग-अलग है। इच्छा मृत्यु को समाधि नहीं कहा जा सकता क्योंकि समाधि करने वाला मृत्यु की भी इच्छा नहीं करता। समाधिमरण में २ लाइन आती है- जीने की न हो बांछा, मरने की हो न इच्छा, परिवार मित्रजन से मैं मोह को हटाऊँ, दिन रात मेरे स्वामी मैं भावना ये भाऊँ, देहांत के समय पर तुमको न भूल जाऊँ। इसे इच्छा मृत्यु कहा कैसे जा सकता है। हमें जीवन जीना है क्योंकि जीने वाला तो आत्मा है। वह आत्मा कभी मरता नहीं है, हम उस आत्मा के गुणों के लिए जीवन जी रहे हैं, शरीर के लिए नहीं। आत्मा व शरीर का साथ गाड़ी और ड्राइवर की तरह है।

समाधिमरण की वैज्ञानिकता

जब उन मुनि महाराज का समाधिमरण हुआ, तब तक हर डॉक्टर का, हर वैद्य का एवं समाचार-पत्रों में छपे आर्टिकल/लेख में ये लिखा था कि ऐसा कोई पेशेंट जब मरण अवस्था में पहुँचता है तब वह कुत्ते की तरह भौंकने लग जाता है, कुत्ते की तरह चिल्लाने लग जाता है। परंतु जब उन मुनि महाराज का मरण हुआ उन्हें किसी भी प्रकार की वेदना नहीं हुई, कोई चीख-चिल्लाहट नहीं हुई क्योंकि समाधिमरण से ही वेदनाओं का शमन किया जाता है। समाधिमरण ही अंत में रोगों की वेदना को दबा देता है, अचूक औषधि है ये। ये डॉक्टर/वैज्ञानिक नहीं बता पाएँगे क्योंकि वे मोह से रहित होकर जी नहीं सकते, जीने की कला जानते नहीं। जिन्होंने मोह से रहित होकर जीने की कला का अध्ययन किया है उन्हें मालूम होता है कि इस प्रकार के रोग भी उस समय पर शमित हो जाते हैं। समाधिमरण के समय पर आत्मा में वेदना नहीं होती, शांति होती है, आत्मिक सुख उत्पन्न होता है। शरीर में रहते हुए भी वो आत्मा बिल्कुल शांत रहता है, वह सब प्रकार की शरीर की पीड़ाओं से मुक्त हो जाता है ये समाधिमरण का परिणाम है। कहते हैं जब तक मरोगे नहीं, स्वर्ग मिलेगा नहीं। उसी तरह तब तक समाधिमरण करोगे नहीं, तुम्हें समझ में आएगा नहीं कि समाधिमरण क्या होता है। जो समाधिमरण को लेकर ऊटपटांग कमेंट देते हैं, उनसे कहो कि पहले मर के देखो, अगर तुम समाधिमरण नहीं जानते हो तो उन साधुओं के पास चलो जो विधिवत् तुम्हारा समाधिमरण कराएँगे। जब मरण के लक्षण सामने दिखने लगे, जब इंद्रियाँ

काम करना कम कर रही है। एक-दो साल हमारे लिए बचे हैं, इससे ज्यादा अब हम नहीं जी पाएँगे यह हमारा बुढ़ापा आ गया है तो धीरे-धीरे समाधिमरण की तैयारी शुरू कर देता है।

समाधिमरण धीरे-धीरे होता है, १२ वर्ष तक लगते हैं समाधिमरण में। आचार्यों ने समाधिमरण का उत्कृष्ट काल १२ वर्ष लिखा है। १२ वर्ष तक साधना की जाती है मरने की नहीं, इस शरीर से मोह छुड़ाने की। इच्छा मृत्यु में क्या होता है- गया, जल में डूबा और हो गया। जैन लोग, तुम तो सीख लो कि समाधिमरण किसे कहते हैं और इच्छा मृत्यु किसे कहते हैं। जब तक तुम्हारे अंदर अज्ञान रहेगा तब तक तुम किसी दूसरे को बता नहीं सकते। अगर हमें अपने ही दर्शन का, धर्म का व सिद्धांतों का अगर ज्ञान नहीं होगा तो हम केवल दूसरे के कहे अनुसार चलेंगे और दूसरे के अनुसार धारणा बना लेंगे। हमें अपने अंदर ज्ञान व जाग्रति रखना चाहिए। जब उस कष्ट के साथ भी उनके अंदर कोई वेदना उन मुनि महाराज को नहीं हुई, बहुत से डॉक्टर वहाँ खड़े-खड़े देखते रह गए कि ऐसा हो कैसे गया। इसको कहते हैं जीवन भर की तपस्या का फल जो समाधिमरण के रूप में सामने आता है। तुम मरोगे तो तड़प-तड़प के मरोगे लेकिन जब कोई साधक मरता है तो बड़ी साधना से मरता है। शरीर के गुणधर्म भी उसे डिगा नहीं पाते, उन पर भी अपनी विजय प्राप्त कर लेता है। इसलिए समाधिमरण की वैज्ञानिकता को समझने का प्रयास कीजिए। ये दुनिया का विज्ञान केवल भौतिक विज्ञान है जिसके लिए 'यूरेका' यूरेका चिल्ला पड़े। उसको एक फार्मूले में बाँध दिया, आर्कमिडिज ने। जो हमारे अंदर घटित हो रहा है उसको जिन फार्मूलों में बाँधा गया है उसका नाम समाधिमरण है, **वीतराग विज्ञान** है। उसे समझने का प्रयास करो। इसका ज्ञान तब मिलेगा जब तुम इस प्रक्रिया से गुजरोगे। कई कैंसर, किडनी आदि के पेशेंट को देखा है, आदमी मरते-मरते भी कुछ भी छोड़ना नहीं चाहता। यदि उससे कहा जाए कि रात्रि को दवाई लेना छोड़ दो कुछ नहीं होना, खाएगा तो मरेगा, नहीं खाएगा तो भी मरेगा लेकिन वो मोह के कारण से इतना भी नहीं छोड़ पाता। जो ऐसा कर लेते हैं वो चाहे कैंसर के, ब्रेन ट्यूमर के पेशेंट हों, उनकी जब समाधि होती है उनके चेहरे पर कांति आती है, शरीर में इतनी प्रसन्नता होती है, रोग में होने वाली किसी भी प्रकार की पीड़ा उन्हें नहीं होती और रोग का शमन हो जाता है। उन दवाइयों और भोजन से शरीर में रोग बढ़ता है, शरीर में शक्ति नहीं आती है वह मरते-मरते भी चाहता है मैं जी जाऊँ चाहे मुँह में ऑक्सीजन लगा दो, चाहे फेफड़े के अंदर डाल दो। मरने से पहले ये स्वीकार कर लेना कि हमें अच्छे ढंग से मरना है। आजकल तो और दुर्गति होती है, अस्पताल में मरण

हो जाता है पर डॉक्टर दो दिन और रखता है कि दो दिन का चार्ज और मिलने वाला है। डॉक्टर की शरण में जाओगे तो ऐसे ही मरोगे। इधर साधु की शरण में आओगे तो णमो अरिहंताणं बोलते-बोलते मरोगे। अरिहंत-सिद्ध जपते-जपते उत्साह व साहस के साथ मरोगे, इसका नाम है समाधिमरण। करके तो देखो। नहीं कर सकते जो कर रहे हैं उनके पास जाकर देखो, उनकी अनुमोदना करके देखो। विचार करो कि ये क्या प्रक्रिया है।

सभी तीर्थंकरों ने ये समाधिमरण कई बार किया। भगवान् पार्श्वनाथ का जीव जब हाथी की पर्याय में था तब वह समाधिमरण करके १२वें स्वर्ग में देव बना। उस पुण्य के कारण उन्हें बाद में चक्रवर्ती राजा ऐसी पर्यायें मिलती हैं। उसके बाद ही उस आत्मा का उत्थान होता चला जाता है। इसलिए एक बार यह समझने का प्रयास करो कि हम जिस ढंग से जी रहे हैं वो गलत है, हमें एक बार धर्म की शरण में जाकर के जीना है व धर्म की शरण में जाकर के मरना है। कम से कम १० दिन दस धर्म के साथ जीना तो सीख लेना।



स्वसंवेदन ही आत्मा है।

श्लोक– २५

क्षीयन्तेऽत्रैव रागाद्यास्तत्त्वतो मां प्रपश्यतः।
बोधात्मानं ततः कश्चिन्न मे शत्रुर्न च प्रियः।।२५।।

देखूँ यदा परम ह्रद्य निजात्म को मैं, रागादि भाव दुखदा द्रुत नष्ट होते।
होती भयानक तदा न सुतेज आग, प्यारी नहीं कुसुम की लगती पराग।।२५।।

हमें अपने स्वरूप को देखकर ये पहली बार महसूस हुआ कि ये रागादि आत्मा के स्वभाव नहीं है। जब हमने तत्त्व से अर्थात् वास्तव में परमार्थ से, निश्चय से अपने आत्मस्वरूप को जाना, देखा और उसका श्रद्धान किया उसी समय पर हमारे रागादि भाव जो आत्मा में उत्पन्न होते हैं वे क्षय को प्राप्त होने लग जाते हैं। अपनी आत्मा में उत्पन्न हुए उन दोषों को, विकारी भावों को हम अपने ही मानते हैं। चित्त/मन के दोषों को आत्मा के मानना एवं राग-द्वेष मोह मत्सर आदि भावों को अपने मानना एक भ्रांति होती है। भ्रांति से रहित होने का नाम है विभ्रांति। जैसे आत्मा और देह की भ्रांति को दूर करने से हम अंतरात्मा की ओर अग्रसर होते हैं, उसी तरह से ये रागादि भाव आदि आत्मा के नहीं हैं ये भ्रांति भी जब दूर होती है तब हम अंतरात्मा के और निकट होते हैं। जिस राग को जिस द्वेष को करने में हमें आनंद आता है वह राग भी एवं द्वेष भी मेरी आत्मा में नहीं है। आत्मा तो राग व द्वेष इन दोनों से परे है, ये केवल मन की विचारधारा है। ये मन की विचारधारा बाहरी पदार्थों में इष्ट-अनिष्ट की कल्पना से हो जाती है। ऐसा विचार आने से उसकी आत्मा ज्ञानमय होती है, वह ज्ञान से परिपूर्ण उसे मानता है।

आत्मा का मंथन

इस ज्ञान स्वरूप, ज्ञान से परिपूर्ण आत्मा को जब हम श्रद्धा में अपनी रुचि में ले आते हैं तब अपने आप अपनी आत्मा में ये विचार आने लग जाता है कि हमने जो राग व द्वेष किया वो

भी एक बहुत बड़ी मूर्खता की, केवल अपना संसार ही बढ़ाया। आचार्य पूज्यपाद महाराज ने एक और सुंदर ग्रंथ रचा है- 'इष्टोपदेश'। इसमें वे कहते हैं कि इस संसार रूपी सागर में आत्मा क्यों भ्रमण कर रहा है? किसी पदार्थ का मंथन करने से कुछ फल निकलता है। दूध, दही किसी के भी मंथन के लिए दो डोरियों की आवश्यकता होती है। अनेक प्रकार की पर्यायों में उत्पन्न होना, अनेक प्रकार के सुख-दु:खों को भोगना, अनेक प्रकार के संकल्प-विकल्पों को जीना ये सब इस संसार के फल हैं। इन फलों को प्राप्त कैसे किया। आचार्य कहते हैं बहुत लंबी-लंबी दो डोरियाँ राग-द्वेष की इस आत्मा ने इस संसार रूपी सागर में डाल रखी है, इसे मथने से कर्मों को आत्मा ने अपने ऊपर ले लिया। इन कर्मों के फलस्वरूप आत्मा को अनेक प्रकार के संसार के फल मिल रहे हैं जिनको वो भोगता रहता है। राग व द्वेष की परिणति के कारण संसार मिला है। राग की परिणति होती है तो हमें अपने इष्ट बंधुओं में, अपने अनुराग करने वाले में, मित्र की कल्पना आ जाती है और जब द्वेष की परिणति होती है तो हमें अपने वही इष्ट बंधु आदि शत्रु दिखाई देने लग जाते हैं और वहीं से हमारे संसार की वह गति और बढ़ जाती है। जब आत्मा को ये केवल ज्ञान हो जाता है कि मैं केवल ज्ञानस्वरूप हूँ, आत्मा मात्र हूँ तो रागादि भाव उसमें रह ही नहीं सकते इसलिए न कोई मेरा शत्रु है न कोई मेरा मित्र है। ये भाव भी तभी आता है जब हमें ये श्रद्धा में बैठ जाए कि राग और द्वेष आत्मा का भाव नहीं है ये तो चित्त का विकार है। ये चित्त की विकृति आत्मा को विकृत कर रही है। आत्मा में विकार पैदा कर रही है इसलिए इस विकृति को आत्मा में प्रविष्ट न होने दें। राग की आग ठंडी आग होती है और द्वेष की आग गर्म आग होती है। ठंडी आग हमें गलाती है, गर्म आग हमें जलाती है इसे दुनिया अग्नि के रूप में जानती है। ठंडी आग आपको अत्यधिक शीत में, तुषार में जलाती है, आपका शरीर कैसा काला सा हो जाता है। ठंडी आग को हम अपनाते हैं तो राग की आग हमें अच्छी लगती है। द्वेष की आग गरम है उससे हम भागते हैं। आदमी के अंदर इन दोनों प्रकार की आग से शत्रु व मित्र की कल्पना चलती रहती है। जब आदमी अपने अंदर थोड़ा भी झांकता है तो वह विचार करता है मेरे कितने मित्र हैं और कितने शत्रु हैं। जैसे ही आप आत्मा का ध्यान करने बैठोगे, ध्यान से पहले ही चित्त आ जाएगा, वो आपको अपने अंदर पहुँचने नहीं देगा क्योंकि उस चित्त में राग व द्वेष कुछ न कुछ चल रहा होगा। आँख बंद करते ही वह झलक के बाहर आएगा। वो मुझसे बुरा मान गया, वह मेरे लिए बुरा सोचता है या वो मेरे लिए कितना अच्छा है, वह मेरे कितने अनुकूल है, प्रिय है, मेरा ख्याल रखता है।

आत्मा का ज्ञान करना बच्चों का खेल नहीं है। आत्मा के ध्यान करने से पहले इन परिणतियों को छोड़ना पड़ता है। इन परिणतियों में अपने चित्त की वृत्ति न उलझ जाए, ये जिसके ध्यान में रहता है वही व्यक्ति आत्मा तक पहुँचता है, नहीं तो मन उसको बाहर फेंक देता है। जैसे ही आपने आत्मा का ध्यान करने का मन बनाया तो एक मन तो ध्यान करना चाहता है और एक दूसरा मन भी होता है। शास्त्रों के अनुसार तो एक ही मन होता है परंतु लौकिक जगत में दो मन होते हैं। एक मन तो हमें अच्छे काम करने को प्रेरित करता है और दूसरा मन उसे रोक देता है। ये दो प्रकार के मन नहीं हैं ये राग और द्वेष की परिणति मन के अंदर होती है। इसी परिणति के कारण हमें अच्छे काम की थोड़ी सी भावना हो जाती है और तुरंत मिट भी जाती है, हमें उससे रोक भी देती है। आपने आत्मा का ध्यान करने का सोचा तभी आपको अपनी पत्नी, पुत्र, मित्र, शत्रु सबका ध्यान आ जाएगा। आप आँख बंद करते ही किसी उलझन में उलझ जाते हो। हाथ में माला चलती है और मन में... इसलिए कहने में आता है माला फेरत जुग गया, गया न मन का फेर। मनका मनका डारि के, मन का मनका फेर।

माला तो हाथ में चलती रहती है लेकिन मन में राग व द्वेष का फेर चलता रहता है। जो व्यक्ति इस राग-द्वेष के फेर को छोड़ देता है, उसे उन मणियों को फेरने की जरूरत नहीं पड़ती है। मन की आदत पड़ी है, कभी राग करेगा कभी द्वेष करेगा, शांत तो ये बैठ ही नहीं सकता। लोग कहते हैं मन बंदर के समान है। मन को हाथी की, पीपल के पत्ते की उपमा दी। कभी आप देखना बिल्कुल भी हवा नहीं चल रही हो तो भी पीपल का पत्ता हल्का सा हिलता है। हो सकता है कभी कुछ देर के लिए बंदर/हाथी या पीपल का पत्ता शांत हो पर तुम्हारे अंदर का मन कभी शांत नहीं रहता है, वह बैठे हुए भी शांत नहीं रहता और सोते हुए भी शांत नहीं रहता। कई लोग सोने के बाद ज्यादा परेशान दिखाई देते हैं जिनको ज्यादा स्वप्न आते हैं वो उठने के बाद सोचते हैं कि आज क्या-क्या देखते रहे। इसलिए मन की परिणति की शांति होना बड़ा कठिन है। ये उसी की शांत होती है जो अपने स्वभाव को इस ढंग से बार-बार देख रहा हो कि तत्त्वतः, यथार्थतः, वास्तव में मेरा स्वभाव तो इन राग व द्वेष से परे है और मैं केवल शुद्ध ज्ञानमय आत्मा हूँ। ऐसे विचार से ही शत्रु व मित्र की कल्पना छूटती है अन्यथा कभी नहीं छूटती। जब तक इस कल्पना में जीवात्मा लगा रहता है वह संसार बढ़ाता चला जाता है। चलो हम ये सोच लें कि हमारा कोई शत्रु नहीं है पर मित्र की कल्पना को हम कैसे छोड़ दें। आचार्य कहते हैं कि जो आज आपके मित्र हैं वे आपकी रागात्मक परिणति के कारण ही हैं। जिनके अंदर राग व द्वेष की परिणति नहीं है

उनके भी मित्र व शत्रु दोनों होते हैं लेकिन मित्र व शत्रु की कल्पना उनके अंदर नहीं होती। पार्श्वनाथ का शत्रु कौन था- कमठ लेकिन पार्श्वनाथ का जब यह अज्ञान भी दूर हो गया कि भाई से मोह के कारण ये हाथी पर्याय मिली और तब से उन्होंने उसे निश्छल भाव से सिर्फ देखा उसे अजगर, शेर, भील आदि के रूप में देखकर ये कल्पना भी नहीं की ये मेरा पूर्व जन्म का शत्रु आ गया। यदि एक क्षण को भी ये विचार आ गया तो धर्मध्यान छूट जाएगा, आत्मज्ञान छूट जाएगा। इसे कहते हैं आत्मध्यान जिसमें कोई भी शत्रु न दिखाई दे, न कोई मित्र दिखाई दे। वह भील है तो भील है, सिंह है तो सिंह है, वह काट रहा है तो ठीक और आरती उतार रहा है तो ठीक। उस ज्ञान स्वभाव में जानना मात्र रह जाता है उसे कहते हैं **आत्मबोध, आत्मज्ञान।** आप शत्रु व मित्र की कल्पना नहीं भी करोगे पर आपके शत्रु व मित्र बनते रहेंगे जब तक इस संसार में आपका शरीर दिखाई देगा तब तक। जिनसे आपको अच्छा लगता है उन्हीं से कभी आपको बुरा भी लगता है। जो कभी आपके मित्र थे वो कभी शत्रु भी हो जाते हैं। जिस बेटे को माँ बहुत प्रेम करती है, रोजाना नहलाती-धुलाती है, वही बेटा कभी उसे शत्रु के रूप में नजर आता है जब वह लौटकर जवाब दे, उसका कहना न माने तब उसे ऐसा लगता है कि इसे २-४ लगा दे। फिर जब पड़ोसी बचाते हैं तब लगता है मैंने इसे इतना क्यों मार दिया। ये राग-द्वेष की कल्पना हमेशा चलती है और आप अनुभूत करोगे कि जिनसे हमें ज्यादा राग होता है उनसे ही ज्यादा द्वेष हो जाता है और द्वेष कभी ईर्ष्या के रूप में भी हो सकता है। ईर्ष्या के भी कई रूप होते हैं।

एक बार गाँधीजी ने जैन साहित्य में पढ़ा कि एक पत्नी व्रत होता है। अपकी स्त्री को छोड़कर किसी भी दूसरी स्त्री के प्रति रागादि भाव नहीं रखना एक पत्नी व्रत होता है। गाँधीजी जो भी पढ़ते थे उसको वे अमल में लाते थे। उन्होंने इस बात को मान लिया व स्वीकार कर लिया। अब एक पत्नी व्रत उन्होंने तो ले लिया लेकिन पत्नी ने नहीं लिया। पत्नी से कहा तुम भी एक पतिव्रत ले लो। पत्नी ने कहा कि तुमने ले लिया पर हमारे लिए कोई जरूरी नहीं, हम नहीं लेंगे। पत्नी ने कोई व्रत-संकल्प नहीं लिया पर कभी कोई गलत भी नहीं किया। पत्नी का कहीं भी जाना, किसी से भी बात करने पर उन्हें शुरू-शुरू में बहुत बुरा लगता था। पत्नी ने व्रत लेने से मना कर दिया तो उसके प्रति भी उनके मन में द्वेष उत्पन्न होने लगा था, ईर्ष्या होने लगी। इस बात को जब उन्होंने गहराई से महसूस किया कि अभी तक अपनी पत्नी से अच्छे संबंध थे, इसके लिए हमेशा अच्छा सोचते थे अब हमें क्यों ईर्ष्या होती है, विकल्प होता है, ये तो पहले से भी यही सब करती थी। अपने मन में तब उन्होंने स्वयं समाधान ढूंढा कि अपना व्रत अपने लिए है, ये पत्नी कुछ गलत

नहीं करती है तो हमें अपना कर्तव्य करना चाहिए, अपनी सत्यनिष्ठा का पालन करना चाहिए। ऐसा विचार करने पर उनके मन की वह ईर्ष्या गई। ईर्ष्या व द्वेष के कई रूप होते हैं जो हमारे भाई-बहन आदि के साथ भी आ जाता है। मान लो यहाँ पर किसी का नाम लिया गया, आप उस समय पर नहीं आ पाए, आपका भाई उपस्थित था तो उसको यहाँ पर माला पहना दी, तिलक कर दिया। उसका सम्मान हो गया। आपके मन में ये विचार आ सकता है कि देखो जब मैं था तो मुझे क्यों नहीं थोड़ी देर के लिए रोका गया या मेरे आने का इंतजार क्यों नहीं करा। भाई पर गुस्सा हो सकते हो कि तुम आगे-आगे क्यों हो जाते हो। दूसरा भाव ये भी हो सकता है कि एक ही तो बात है, मेरा भाई ही तो है। मेरा सम्मान हुआ या उसका सम्मान हुआ है। कुल का ही नाम हुआ है। दोनों प्रकार के विचार उसके मन में आ सकते हैं अगर सावधानी हो तो। अगर ईर्ष्या व द्वेष का भाव हो तो आप सोचोंगे रहता मेरे साथ में है लेकिन नाम अपना करता है, अपना सम्मान कराता है और मेरा कहीं कोई नाम ही नहीं आता है।

सबके घरों के अंदर इस प्रकार के, घर का मतलब- ड्राइवर खुद अपना आत्मा है, अपनी गाड़ी खुद चलाना है। अपने शरीर रूपी गाड़ी की मालिक आत्मा स्वयं है। उस आत्मा के अंदर जैसी विचारों की परिणति चलेगी वैसी ही परिणति सामने देखने में आने लग जाती है। आप पूरे परिवार सहित डाइनिंग टेबल पर बैठकर नाश्ता कर रहे हैं, परोसने वाले ने किसी को पहले चाय दे दी, यदि आपके मन में उसके प्रति द्वेष भाव है तो आपके मन में ये परिणाम जरूर आएगा कि उसे पहले क्यों दी, मुझे क्यों नहीं दी या ये भाभी अपने बेटे को ज्यादा परोस रही है। मेरे बेटे को कम दे रही है। ये छोटे-छोटे से परिणाम बाहर से नहीं आते। इनका स्त्रोत हमारी आत्मा है, हमारा द्वेष भाव सबसे बड़ा स्त्रोत है। राग व द्वेष भाव दोनों साथ रहेंगे। एक से राग व दूसरे से द्वेष होता ही है। ये राग-द्वेष का भाव आपके अंदर यदि घर कर जाए और आप इसे समता भाव से नहीं संभाल पाओ तो एक दिन बटवारा होने की स्थिति आ ही जाती है। घर में अलगाव हो जाता है। छोटे-छोटे से ईर्ष्या व द्वेष के कारण से ये परिणाम आता है। जो अपने आत्म स्वभाव को देखते हैं तो उन्हें पता रहता है कि राग व द्वेष आत्मा का स्वभाव नहीं है इसलिए इसमें उलझना नहीं है। आपको स्वयं को संभालना है, उस चीज में उलझने की जगह समाधान देने की जरूरत है। अगर आपके ज्ञान के अंदर इतनी जाग्रति नहीं है तो आप राग व द्वेष की इन दीवारों को हर जन्म में खड़ी करते रहोगे और संसार बढ़ाते रहोगे।

श्लोक– २६

मामपश्यन्नयं लोको न मे शत्रुर्न च प्रियः।
मां प्रपश्यन्नयं लोको न मे शत्रुर्न च प्रियः।।२६।।

ब्रह्मांड ही जब मुझे नहिं जानता है, क्या शत्रु–मित्र वह हो सकता तदा है।
या जानता यदि मुझे लखता तथा है, तो भी न मित्र रिपु हो सकता अहा! है।।२६।।

जो मुझे शत्रु या मित्र मान रहा है वह मुझे देख नहीं रहा है। जब तक ये लोग, ये संसार, ये जगत मुझे नहीं देख रहा है, मुझे नहीं जान रहा है तो ये मेरा शत्रु या मित्र कैसे हो सकता है। अगर तुमने अपने आपको देख लिया व आत्मा के रूप में स्वीकार कर लिया तो तुम्हारे अंदर ये धारणा आ जाएगी कि मैं तो आत्मा हूँ और उस आत्मा की ओर सिर्फ मेरी दृष्टि हो सकती है, किसी दूसरे को मेरी आत्मा दिख नहीं सकती है, वह मेरा शत्रु या मित्र कैसे हो सकता है। जो मुझे देख रहा होगा वो मेरे अंदर के उस राग-द्वेष को नहीं देख रहा होगा। मेरी आत्मा को देख रहा होगा।

अरिहंत नाम सत्य है सिद्ध नाम सत्य है

अगर एक आत्मा दूसरे की आत्मा को देखेगी तो उसके अंदर कभी शत्रु या मित्र की कल्पना ही उत्पन्न नहीं होगी। ये कल्पना दूसरे की नहीं मिटाना है, अपने अंदर की कल्पना मिटाना है। अपने अंदर ये विचार लाना है कि सामने वाला तो मुझे जानता ही नहीं, मुझे देखता ही नहीं, वो मेरे शरीर को देखकर के विरोध करता रहता है, मेरे शरीर को देखकर राग-द्वेष करता रहता है, मैं तो आत्मा हूँ। जब वो मुझे देख नहीं सकता तो मैं क्यों इसके लिए विचार करूँ कि ये मेरा शत्रु है या मित्र। ये शत्रु-मित्र की कल्पना अपने अंदर के राग-द्वेष की उपज है, इसके कारण हम मान रहे हैं कि ये शत्रु-मित्र है लेकिन आँख जब मूंदी तो न कोई शत्रु है, न मित्र है, अरिहंत नाम सत्य

है, सिद्ध नाम सत्य है। दूसरे की मूंदी आँख देखकर ही अहसास कर लिया करो। ये भी एक कवि का बहुत अच्छा भाव है।

मेरे पीछे दूर–दूर दिख रही जो भीड़ है
पंछी शाख से उड़ा खाली पड़ा नीड है
आँख जब मुंदी तो कोई शत्रु है ना मित्र है
अरिहंत नाम सत्य है सिद्ध नाम सत्य है-२

ये अरिहंत व सिद्ध नाम हमें उस शुद्ध आत्मा की ओर ले जाने वाले हैं। जब हमें याद आता है कि ये ही सत्य है तो हम इस असत्य में क्यों उलझें। ये सब जितना भी दुनिया का झमेला है ये सब असत्य है। अरिहंत व सिद्ध नाम सत्य है, शुद्ध आत्मा सत्य है जब ऐसी कल्पना आपके विचारों में आ जाती है तब शत्रु व मित्र की कल्पना अपने आप छूट जाती है। शत्रु व मित्र को भले नहीं छोड़ पाओ पर उनके प्रति अपनी कल्पना छोड़ दो कि ये शत्रु या मित्र हैं। इससे आपको कोई हानि नहीं होगी। यदि कुछ समय बाद मित्र आपका शत्रु बन जाएगा तो आपको कोई दु:ख नहीं होगा और इस कल्पना से जो भ्रांतियाँ पैदा होती हैं और उससे आप अपनी अंतरात्मा तक नहीं पहुँच पाते, वो आत्मा तक पहुँचने की गति बनेगी ये आपको बहुत बड़ा लाभ होगा। दुनिया में जितने भी जीव है उन सबमें हमारे अंदर न किसी के प्रति शत्रुता का भाव है और न ही हमारे अंदर मित्रता का भाव है, मैं केवल **साम्य स्वभाव** में रहने वाला आत्मा हूँ, तुम ऐसा भाव रखना। ये एक नंबर का भाव है। अगर ये नहीं पचे तो दूसरा भाव करना संसार में कोई भी जीव हमारा शत्रु नहीं है, हर जीव हमारा मित्र है। ये भाव उपयोगी इसलिए भी है कि जब आपकी सबके प्रति मित्रता की भावना होगी तो आप कभी न कभी साम्य स्वभाव की भी कल्पना करने लग जाओगे। जब आपके अंदर से सबके प्रति शत्रुता का भाव छूट जाएगा तो अपने आप सब आपके मित्र दिखाई देंगे। आपका सबके प्रति सौहार्दपूर्ण व्यवहार होगा। कम से कम ये विचार करना कि दुनिया में कोई भी हमारा शत्रु नहीं है। इस विचार को रोजाना ९ बार रिमाइंड करना। ऐसा करने से अपने मन के अंदर ये परिवर्तन आता है कि जिसको देखकर हमें सहज रूप में गुस्सा आने लग जाता है, उसको देखकर हमारे अंदर शांत भाव होने लगेगा। आप रिश्तेदार/जान-पहचान वालों से जिनसे आपको समस्या है उनके प्रति साम्य भाव आएगा और ये वो पवित्र भाव है जिसकी किरणें आपके ही आभामंडल पर प्रभाव डालेगी और दूसरे लोग जो आपसे शत्रुता रखते हैं वो आपसे मित्रता

रखने लग जाएँगे, आप इस चीज को प्रयोग में लाएँ, बहुत फायदा होगा। केवल अपने मन में सुबह-शाम ९ बार विचार करना है- **'संसार का कोई भी जीव मेरा शत्रु नहीं है, सभी मेरे मित्र व हितैषी हैं।** अगर आपको अपनी चेतना को बदलना है, मन में कुछ परिवर्तन लाना है तो इस भाव की कल्पना करना। आपको लगेगा कि मित्रता कहीं और से उत्पन्न नहीं होती है वह सब हमारे एटीट्यूड से उत्पन्न होती है। जो लोग घरों में रहते हैं उनके मन मे द्वेष के भाव कभी न कभी उत्पन्न हो जाते हैं। परिवार वालों से नहीं तो पड़ोसियों से हो जाते हैं, ग्राहकों से हो जाते हैं, पढ़ाई में कंपीटिशन हो या बिजनेस में कंपीटिशन वाला हो, उसी को लक्ष्य में रखते हुए ये भाव करना कि मेरा इस दुनिया में कोई भी शत्रु नहीं है। हर कोई मेरा मित्र है। इससे आपके मन में शांति भी बनी रहेगी एवं सामने वाला भी आपके प्रति अच्छा भाव करने लगेगा। जब हम दूसरों को सुधारने की परिणति लाते हैं तो सबसे पहले हमें स्वयं को ही सुधारना पड़ता है। ये शत्रु–मित्र की कल्पना बड़े-बड़े महापुरुषों के साथ भी रही है, उनके साथ भी अनुकूल व प्रतिकूल व्यवहार रहे हैं।

आपने सुना होगा कि जब सीता ने राम को वनवास के लिए अकेले जंगल में छुड़वा दिया था तब उसके मन में क्या परिणाम आया होगा। मेरे पति ने गर्भावस्था के दौरान जंगल में छोड़ दिया और कोई भी सहायक नहीं। अपने पति के माध्यम से ऐसा व्यवहार देखने को मिल सकता है, ऐसा उस सीता ने कभी सोचा नहीं होगा पर उसके साथ हुआ। आज की सीता होती तो तलवार हाथ में ले लेती या कोर्ट में जाकर के मुकदमा दायर कराती, कोई भी धारा लगाकर उल्टा उसे जेल पहुँचा देती लेकिन वह सीता जिसने अपने मन में कोई विचार नहीं किया क्योंकि पति को पहले परमेश्वर समझा जाता था, उस पति के लिए ही उसका पूरा जीवन होता था। उसे तलाक देने का वह सोच भी नहीं सकती थी। आज ये परिणतियाँ कम या ज्यादा हो पर देखने को मिल रही है। आज हर आदमी इस चीज को स्वीकार कर रहा है, बार-बार विवाह करने की परिणति बढ़ रही है। पर उस सीता ने कोई भी क्लेश भाव नहीं किया बल्कि मन में विचार किया कि आपने अपनी लोकनिंदा से बचने के लिए हमारे साथ ऐसा किया, हमें इस जंगल में डाल दिया पर कोई बात नहीं यदि आपको इसमें भी सुकून मिला हो तो अच्छी बात है। हम भावना करते हैं कि आप हमेशा सुखी रहना। जिस तरह से आपने हमें छोड़ दिया है वैसे कभी भी धर्म को मत छोड़ना। ये कृतांतवक्र सेनापति से उस सीता ने कह दिया कि राम को ये ही संदेश देना। ये मत कहना कि

सीता वहाँ मूर्च्छित होकर गिर पड़ी थी, बिलख रही थी, रो रही थी। ये भाव उसी के अंदर आते हैं, जिसके अंदर धर्म बहुत गहराई से बैठा हो। जीव हर किसी के बारे में अच्छा सोच सकता है। जो अपने अंदर राग-द्वेष की परिणतियाँ रखता है वह एक से शत्रुता करेगा, एक से मित्रता करेगा, ऐसे ही जन्म निकलेगा, संसार बढ़ता जाएगा। परेशानियाँ बढ़ेंगी, कम नहीं होगी। वे तब कम होगी जब हम अपनी मानसिकताएँ सुधारेंगे, अपनी ही वैचारिक परिणति को जब हम अपने आपसे सुधारेंगे तभी परेशानियाँ सुधरेंगी। आज के जमाने में आदमी अनेक-अनेक तरह की सुख-सुविधाएँ पा रहा है लेकिन अनेक-अनेक तरह की परेशानियों को भी झेल रहा है।

आप ये विचार करो कि ये जो लोग हमारे सामने हैं वे मेरे स्वरूप को नहीं देख रहे। यदि ये देख रहे हैं तो उस समय पर ये खुद आत्मस्थ होंगे, वे खुद अपने आत्म-स्वरूप के ज्ञाता होंगे, तब ये हमसे द्वेष कर ही कैसे सकते हैं। इस कल्पना के माध्यम से बड़े-बड़े महापुरुष तीर्थंकर बने हैं। भगवान् पार्श्वनाथ ने भी इस भाव के माध्यम से अपनी शत्रु-मित्र की कल्पना को हमेशा के लिए छोड़ दिया था। ये तो हम और आप हैं जो कहते रहते हैं भगवान् पार्श्वनाथ का शत्रु कमठ है। उन्होंने कभी नहीं कहा कि कमठ उनका शत्रु है। भव-भव का वैरी है। ये तो हमारी भक्ति है, हमारे अंदर की कल्पना है कि वह भगवान् के ऊपर उपसर्ग करता है। हर भव में इसने भगवान् को परेशान किया, हम उसे शत्रु कहते हैं पर वह कभी भी भगवान् पार्श्वनाथ के मन में शत्रु के रूप में नहीं आया, वो इतने बड़े महापुरुष थे। ऐसे ही महापुरुष की श्रेणी में यदि हमें आना है तो अपने मन में शत्रु व मित्र के भाव को निकालना है। कोई भी काम करो, वो अच्छे भावों के साथ करो और कोई भी विरोध करो तो अहिंसात्मक पद्धति से करो। आपके मन में भाव रहे कि जिन्होंने ये निर्णय किया उनको सद्बुद्धि आ जाए और वो मान ले कि उन्होंने कुछ भूल कर ली है, बस इतना परिणाम लाना। यदि बुद्धि बदलेगी तो सब बदल जाएगा। ये कभी मत सोचना कि इस आदमी ने गलत काम किया तो ये मिट जाए, मर जाए, कहीं और परास्त हो जाए, ऐसा कोई भाव नहीं करना। बस यही भाव करना कि दुनिया में जितने भी लोग दुर्भाव रखते हैं उनका भाव अच्छा हो जाए। आप भी मन में मित्रता का भाव रखना। आप सफेद ड्रेस में कुछ करने जा रहे हैं (समाधिमरण के कोर्ट के आदेश के खिलाफ शांति मोर्चा) तो आप बस ये भाव करना कि भगवान् सबके अंदर ऐसी सद्बुद्धि आए कि वे धर्म के स्वरूप को समझ सकें, समाधिमरण के स्वरूप को समझ सकें और अनेक प्रकार का जो साधुओं के प्रति अज्ञानता फैली हुई है, उन सबको वो समझ सकें।

श्लोक– २७

त्यक्त्वैवं बहिरात्मान – मन्तरात्मव्यवस्थितः।
भावयेत् परमात्मानं सर्वसङ्कल्पवर्जितम्।।२७।।

शीघ्राति–शीघ्र बहिरात्म–पना विसार, औ अंतरात्म–पन को रुचि संग धार।
संकल्प, जल्प व विकल्प–विहीन भी हो, पश्चात् सुपूज्य परमेश्वर रूप पाओ।।२७।।

परमात्म ध्यान

आचार्य कहते हैं अपने ज्ञान को पहले अंतरात्मा में व्यवस्थित करो अर्थात् अपने अंदर से राग-द्वेष एवं शत्रु-मित्र की कल्पना को छोड़कर के अपनी अंतरात्मा की ध्यान की परिणति में लीन होने का प्रयास करो। ज्ञान आत्मा का स्वभाव होते हुए भी वह बहिर्मुखी वृत्ति के कारण से वह कभी भी आत्मा का ध्यान नहीं करता। आत्मा का ध्यान करने के बिना कभी भी ज्ञान की संयमितता नहीं होती। वही ज्ञान संयमित कहलाता है जो आत्मा का ध्यान करता है। वह आत्मा चाहे अपना हो या किसी दूसरे का हो, आत्मा की शुद्धता का ध्यान उसे होना चाहिए। परमात्मा भी शुद्ध होते हैं और अपनी आत्मा भी शक्ति रूप से शुद्ध होती है। हम परमात्मा का भी ध्यान कर सकते हैं और अपनी आत्मा का भी ध्यान कर सकते हैं। उस ध्यान की प्रक्रिया तक पहुँचने के लिए गुरुओं की आवश्यकता भी होती है इसलिए जैन दर्शन में पंच परमेष्ठी को आराध्य कहा गया है। **आराध्य** वो कहलाता है जो आराधना करने के योग्य हो और **आराधक** वो है जो आराधना करते हैं। ये आराध्य-आराधक भाव हमारे अंदर तब आता है जब हमारे अंदर अंतरात्म वृत्ति होने लग जाती है। इस समय आप परमात्मा का ध्यान करें। परमात्मा का अर्थ होता है परम यानि **उत्कृष्ट आत्मा,** जो आत्मा सभी प्रकार के उत्कृष्ट भावों को धारण करता है वह परम आत्मा कहलाता है उनमें कोई संकल्प नहीं होता। संकल्प कहते हैं अपने मन में आत्मा के अलावा और किसी पर्याय के रूप में अपने को मानना। हमने माना कि मैं डॉक्टर हूँ या मैं इंजीनियर हूँ या मैं मनुष्य हूँ या मैं स्त्री हूँ

ये सब संकल्प कहलाते हैं। इन संकल्पों से जो ऊपर उठ रहा है वह परमात्मा है। उस परमात्मा का ध्यान करने के लिए आचार्य कहते हैं, पहले उसकी भावना करो क्योंकि ध्यान तो तभी परिणत होगा आपके अंदर, जिसका हम ध्यान कर रहे हैं उसकी भावना आए। भावना के बिना कभी भी ध्यान नहीं होता इसलिए अच्छी भावनाओं के साथ में जो व्यक्ति अपने मन को एकाग्र करता है वह ध्यान में एकाग्र हो जाता है। ध्यान से पहले अच्छी भावना करो।

आप जैसा एक व्यक्ति एक बार हम जैसे साधु के पास में आ गया। पूछने लगा कि ध्यान करने के लिए हम कहाँ से शुरुआत करें, हमने उससे कहा कि ध्यान करने के लिए कुछ मत करो, जो है बस उसको देखो। कहने लगा- क्या देखूँ। सबसे पहले देखना शुरू करो। पूछता है- किसको देखूँ। दूसरों को देखता हूँ तो किसी से राग उत्पन्न होता है, किसी से द्वेष उत्पन्न होता है। हमने उससे कहा- भैया कोई ऐसा भी तो होगा जिसको देखकर न राग हो न द्वेष हो। बोले- ऐसा तो कोई समझ में नहीं आता। हर आदमी जिससे भी परिचय करता है उसमें राग या द्वेष की परिणति के रूप में देख लेता है। महाराज ने कहा कि हमें देखकर तुम्हें कैसा लगता है ये बता। क्या तुम्हें हमसे राग करने का मन होता है या द्वेष करने का मन होता है। वह कहने लगा कि महाराज आपसे राग करके करूँगा भी क्या और आपसे द्वेष करके मिलेगा भी क्या। आपसे द्वेष किया तो अपना संसार बढ़ना है और आपसे राग करूँगा तो आप कभी अपने पास रहने वाले तो हैं नहीं। आज यहाँ हो कल वहाँ हो, कहीं के कहीं चले जाओगे। आपसे राग करने से मतलब क्या। राग उससे किया जाए जो अपने पास में हमेशा रहे। हमने कहा- तुम उसी का ध्यान करो जिससे तुम्हें न राग हो न द्वेष हो। तुम ध्यान की प्रक्रिया साधु से ही प्रारंभ करो। साधु परमेष्ठी का ध्यान करने के लिए तुम कुछ मत करो केवल उनको देखते रहो। वो क्या करते हैं, कैसे चलते हैं, कैसे उठते हैं, कैसे भोजन करते हैं, कैसे बोलते हैं, कैसे पढ़ते हैं। उनको बस तुम देखते रहो। उस व्यक्ति के मन में बात जम गई। उसने कहा- ठीक है महाराज, जैसा आप कहते हो, हम वैसा ही करेंगे महाराज। उसने ध्यान प्रारंभ कर दिया- उसे मुनि महाराज ही केवल दृष्टि में आते हैं। वह मुनि महाराज को देखता है, अपने मन में ध्याता है और उनकी चर्या को देखकर अनेक प्रकार से अपने मन से समाधान भी प्राप्त कर लेता है। वह कभी देखता है कि मुनि महाराज आहार करने के लिए जा रहे हैं, कभी तो विधि मिल जाती है, कभी नहीं मिलती। आहार कभी निरंतराय होता है कभी अंतराय आ जाता है। वह देख रहा है कि मुनि महाराज के लिए जो क्रिया हो रही है, उस क्रिया को वो करते भी और अगर उस क्रिया में व्यवधान भी हो जाता है तो भी उन्हें कोई फर्क नहीं पड़ता।

जब मुनि महाराज ध्यान में लीन होते हैं तब वे सुखी और साम्य मुद्रा में दिखाई देते हैं। यदि कोई क्रिया करते हैं तो उस क्रिया में वे एकाग्रचित दिखाई देते हैं। सब कुछ देखते-देखते उस व्यक्ति के मन में भाव आ गया कि मुझे तो इन मुनि महाराज के ध्यान से, इनके परिचय से बड़ा लाभ हो रहा है। २८ मूल गुण साधु के उसके ज्ञान में नहीं है लेकिन उसे प्रेक्टिकली दिखाई दे रहा है। अनाड़ी सा श्रावक है। ज्ञान में व समझ में थोड़ा सा अंतर होता है। ज्ञान सभी के पास में रहता है लेकिन ज्ञान को अगर हम विकसित नहीं करें तो वह ज्ञान ही हमें नादान बना देता है और विकसित होने पर हमें ज्ञानी कहने का हकदार बना देता है। आजकल तो लोग ज्ञानी उसे कहते हैं जो चार बातें कर पाए, चार तरीके की जानकारी आपको दे पाएँ। आचार्य कहते हैं केवल जानकारियों के पिटारे का नाम ज्ञान नहीं होता। ज्ञान वह होता है जिसके अंदर ध्यान की परिणति की उन्मुखता हो और जो ज्ञान वस्तु के वास्तविक स्वरूप को जानता हो, जो ज्ञान अपना हित-अहित पहचानता है। वह नादान व्यक्ति सब देखते-देखते वह सब करने लग जाता है जो मुनि महाराज करते हैं, उसमें ध्यान की परिणति आने लग जाती है। आपने देखा होगा कि घर में बच्चे भी मुनि महाराज की तरह एक्टिंग करने लग जाते हैं, अंजुलि बनाते हैं, आहार लेने की चेष्टा करते हैं। आचार्य कहते हैं कि बच्चों की ऐसी भावना कभी बढ़ाना नहीं। खेल-खेल में भी मुनि महाराज की तरह आहार नहीं लिया जाता। मुनि महाराज की चर्या देखना लेकिन उनके जैसे आहार लेना नहीं बल्कि ये सीखना कि जैसा उनके हाथ में रख दिया जाता है वैसा ही वे खा लेते हैं। खुद भी सीखना व बच्चों को भी सिखाना। मन में ये संकल्प-विकल्प न रखें कि आज हमें ये मिल पाया, आज ये नहीं मिला। वह व्यक्ति ये सब सीख लेता है और उसके अंदर समता का भाव भी धीरे-धीरे बढ़ने लग जाता है। वह मुनि महाराज को अपनी पिच्छिका से जीवों की रक्षा करते देखता है। वे दया का भाव रखते हैं। वे कभी अपने मुख से गलत नहीं बोलते, क्रोध नहीं करते, गाली नहीं देते। वह सब कुछ अपने आप सीख रहा है। उसके अंदर सम्यक्त्व की भावना बढ़ती चली जा रही है।

ध्यान करना हो तो सबसे पहले साधु का ध्यान करो। **साधुता** को जानो। साधु का काम ज्ञान, ध्यान व तप करना है। अगर साधु ज्ञान व ध्यान में लीन है तो वह अपने आप तुम्हारे ध्यान का कारण बन जाएगा। अगर साधु के पास ज्ञान-ध्यान नहीं है, तमाम तरह के तमाशे हैं तो तुम्हारा ध्यान भी उन तमाशों पर लग जाएगा। सच्चे साधु का ध्यान करने पर तुम्हारे अंदर अपने आप समता की परिणति आएगी। आपका धर्म ध्यान वहीं से शुरू होगा, कैसे मन को साधा जाता है ये बात भी आने लगेगी क्योंकि साधु मन की पर्याय को साधने का ही नाम है। आचार्यों ने साधु

शब्द केवल संतों के लिए नहीं कहा। **साधु अर्थात् सज्जन पुरुष।** कोई भी व्यक्ति जो सरलता व सज्जनता के साथ जी रहा है, वह भी साधु कहलाने लग जाता है। उस व्यक्ति को साधु में सिंह सा पराक्रम भी दिखाई देता है तो कभी हाथी सा स्वाभिमान भी दिखाई देता है, कभी सर्प की तरह अनियत वृत्ति भी दिखाई देती है, हिरण सा सरल भी दिखता है। साधु सब प्रकार के कष्टों को सह लेता है जैसे गधा सब सह लेता है। सब प्रकार की वृत्तियाँ उसे साधु के अंदर दिखाई दे जाएगी। वह स्त्री की तरह करुणावान् भी होगा तो पुरुष की तरह कठोर भी होगा। उस बालक ने साधु की सब बात मान ली व बहुत समय हो गया उसे साधु का ध्यान करते-करते। उसे लगने लगा कि अब हमारे ज्ञान का कोई विकास नहीं हो रहा है। एक साल बाद उसके मन में भाव आता है कि महाराज अब हमें दूसरा भी उपाय बताओ। देख-देखकर कितना सीखू मैं। कुछ नया बताओ ताकि मेरा मन लगे। तब मुनि महाराज कहते हैं अब तुम 'उपाध्याय' परमेष्ठी का ध्यान करो।

अभी तक तुम णमो लोए सव्वसाहूणं का ध्यान किया अब णमो उवज्झायाणं का ध्यान करो। जितना समझ में आए, उसी को तुम अपनाओ। उसने पाया कि **उपाध्याय परमेष्ठी** में साधु से अलग एक विशेषता होती है- वे पढ़ते भी हैं और पढ़ाते भी हैं। वे स्वयं में भी ज्ञान अर्जित करते हैं और दूसरे को भी ज्ञान देते हैं। उन्होंने ज्ञान देने का प्रक्रम शुरू कर दिया उस बालक के साथ में। उसे लगा कि ज्ञान प्राप्त करने से कितना अच्छा बन जाता है व्यक्ति। अभी तक हमें पता ही नहीं था कि साधु क्या-क्या करते हैं, किसलिए करते हैं। ये साधु तो रत्नत्रय की आत्मा की साधना करते हैं। उपाध्याय परमेष्ठी दूसरों को शास्त्र पढ़ाते हैं और बताते हैं तेरा आत्मा सबसे निराला है, दुनिया में विशिष्ट तत्त्व है, अनंत ज्ञान, अनंत शक्ति से भरा हुआ है। यह उसने पहली बार सुना इसके पहले तो वो साधु की शक्ति देख-देखकर ही खुश था। अब उसने देखा कि ये साधु आँख बंद करके अपनी आत्मा का ध्यान करते हैं, अपनी आत्मा की शक्तियों का चिंतन करते हैं तो उसके मन में ऐसा आह्लाद उत्पन्न हुआ कि वह उपाध्याय परमेष्ठी का ही ध्यान करने लगा। उसे लगा उपाध्याय परमेष्ठी साधु परमेष्ठी से अच्छे हैं क्योंकि वे बताते तो हैं कि बेटा तू बहिरात्मा है। अगर तू बहिरात्मा वृत्ति छोड़ेगा तो तू अंतरात्मा बन जाएगा। अगर अंतरात्मा बन करके परमात्मा की भावना करेगा तो एक दिन तू भी परमात्मा बन जाएगा। वह पहली बार ये ज्ञान पाकर बहुत खुश हुआ। साधु ने कहा अब तू इन्हीं का ध्यान करना। जो ये बताए उसी का चिंतन करना, उसी का ध्यान करना। वे कहे कि देख तेरे अंदर चार प्रकार की संज्ञाएँ हैं, चार प्रकार की कषाय हैं तो तू उसे मान लेना। चार प्रकार की संज्ञाओं में हर चीज की परिणति दिखाई देती है- **आहार संज्ञा,**

भय संज्ञा, मैथुन संज्ञा व परिग्रह संज्ञा ये सभी जीवों में रहती हैं। तेरे अंदर भी ये चार संज्ञाएँ हैं और इन संज्ञाओं से तुझे ऊपर उठना है, इनको जीतने का प्रयास करना है। वह उपाध्याय परमेष्ठी से ज्ञान प्राप्त करने लगता, उसमें लीन हो जाता है, ऐसे दो वर्ष बीत जाते हैं। फिर वो कहता है महाराज ज्ञान का तो कोई अंत ही नहीं दिखाई देता। कितने शास्त्र पढ़ लिए और कितने पढ़ने बाकी हैं। हर शास्त्र में नई–नई बातें आती हैं लेकिन उन शास्त्रों का भी अंत नहीं है और उन ज्ञान का भी अंत नहीं है। अब आप कुछ और बताओ। मैं दो साल में थक गया हूँ। प्रवचन भी सुनते–सुनते और ग्रंथ भी पढ़ते–पढ़ते। उससे इतनी शांति तो मिलती है कि मन विषयों से हट जाता है। पर महाराज जैसा हमने सुन रखा है कि आत्मा सभी प्रकार के संकल्पों से रहित है, आत्मा स्वसंवेदन गम्य है, ऐसा हमें कुछ भी अनुभूति में नहीं आ रहा। ये अनुभूति कैसे होगी, थोड़ा सा उसके बारे में भी बताओ। हमने सब पढ़ लिया जीवकांड, कर्मकांड, समयसार, समाधितंत्र भी पढ़ लिया। १४ गुण स्थानों के बारे में, १४ मार्गणा स्थानों के बारे में भी पढ़ लिया, १४ जीव समासों के बारे में पढ़ लिया। जितने भी वर्णन हैं शास्त्रों में कर्म के, जीव के वो सब पढ़ लिए। अब पढ़ने के बाद में हमें क्या करना है ये अभी भी समझ में नहीं आ रहा है।

तब मुनि महाराज कहते हैं, बेटा अब तुम **आचार्य परमेष्ठी** के पास में जाओ वो तुम्हें बीना बारह में मिलेंगे। हम इससे आगे तुझे बढ़ा नहीं सकते। उसे लगा कि हमें और ज्यादा ध्यान करना है तो हमें मुनि महाराज की बात तो माननी पड़ेगी तो उसके लिए वो बीना बारह चला जाता है। मुनि महाराज ने उससे कहा कि वहाँ जाना और आचार्य महाराज क्या करते हैं वो देखना। अब तुझे णमो आयरियाणं का ध्यान करना है। वह वहाँ पहुँचकर देखता है कि आचार्य महाराज बहुत कुछ तो वही करते हैं जो साधु करते हैं। मुनि महाराज ने कहा था कि जब तक कुछ एकस्ट्रा न दिखाई दे तू वहीं रहना। वह वहाँ रुक जाता है। वह वहाँ बारीकी से देखता है कि आचार्य महाराज का एक विशेष कार्य है कि वे अपने शिष्यों को कभी–कभी प्रायश्चित्त देते हैं, कभी दंड देते हैं और कई तरीके से मोक्ष मार्ग में स्थितिकरण कर देते हैं। आचार्य महाराज किसी के साथ कुछ व्यवहार कर देते हैं और किसी के साथ कुछ। उनकी बहुत विशिष्ट परख होती है, वे देख लेते हैं किसके मन में कैसा चल रहा है, वह किस नेचर का है, उसी के साथ में वही कर लेते हैं।

बहुत बड़ी चीज होते हैं आचार्य महाराज। उनके पास में पचासों साधु होते हैं लेकिन वो सबको खुश रख लेते हैं। वे हर साधु की कमी एवं अच्छाई दोनों जानते हैं क्योंकि शिष्य तो उनका है। जिसको वे शिक्षा दे रहे हैं, दीक्षा दे रहे हैं उनके बारे में उन्हें पूरा ज्ञान रहता है। कभी–कभी

तो वे किसी शिष्य को हँसी–ठिठोली में भी निपटा देते हैं। जिसको सिद्धांत के ज्ञान में आनंद आता है उससे सिद्धांत की चर्चा कर लेते हैं और जिसको अध्यात्म अच्छा लगता है उससे अध्यात्म की चर्चा कर लेते हैं। वह देख रहा है आचार्य परमेष्ठी का कार्य कितना विशिष्ट है। वे हर साधु के बारे में जान रहे हैं कि किससे कितना प्रेम करना, किसको कितना सुनना, कितना ख्याल करना ये भी उनके अंदर रहता है। देखते–देखते उसे समझ में आ गया कि साधु महाराज अलग से आचार्य महाराज के पास जाकर के अपने दोषों का प्रायश्चित्त् करते हैं। एक दिन उसने देखा कि आचार्य महाराज नए–नए लोगों को दीक्षा भी दे देते हैं, अपनी तरह शिष्य बना लेते हैं तो क्या ये हमारे साथ भी हो सकता है। उसने आचार्य महाराज से निवेदन कर दिया और आचार्य महाराज ने उसके मन को देखकर उसको भी दीक्षित कर दिया।

णमो आयरियाणं करते–करते वह उन आचार्य महाराज का शिष्य बन गया। फिर वह गहराई से देखता है कि आचार्य महाराज की वृत्तियाँ क्या हैं। आचार्य महाराज के सामने सब शिष्य अपनी–अपनी व्यथा लेकर के पहुँचते हैं। शिष्य ये तक बता देते हैं कि गुरु महाराज मेरे पेट में दर्द हो रहा है। गुरु महाराज उसके उपचार की व्यवस्था करेंगे। किसी को वैयावृत्ति करने को भी बोलेंगे। उनका इतना बड़ा कर्तव्य रहता है कि वे हर किसी को ध्यान में रखते हैं, हर किसी की सेवा एवं वैयावृत्ति भी करा देते हैं, कभी–कभी कर भी देते हैं। ऐसी उनके अंदर अपने शिष्यों के प्रति परिणति रहती है, उस परिणति को देखकर वह शिष्य इतना सुखी हो गया, इतना आनंदित हो गया कि वह देखने लगा कि गुरु महाराज अपने को ज्ञान भी देते हैं, अपने को बड़ा भी कर रहे हैं, अपनी चिंता भी कर रहे हैं। वो देखता है किसकी कितनी चिंता रखनी है ये बात भी गुरु महाराज के पास में रहती है। संघ में बहुत से लोग रहते हैं उनमें कुछ सोचते हैं कि गुरु महाराज ने हमारी पीड़ा सुन तो ली पर हमें बताया नहीं कि हमें क्या करना है। एक बार संघ में एक मुनि महाराज गुरु महाराज के पास अपनी पीड़ा लेकर गए और आधा–पौन घंटे तक अपनी पीड़ाओं के बारे में बताते रहे। आचार्य महाराज ने सब सुन तो लिया पर उन्हें क्या करना है, किससे क्या कराना है, कुछ नहीं कहा। इसके लिए भी धैर्य रखना पड़ता है। वो संयोग से अपने साथ ही कमरे में रहते थे। पर वे धैर्य नहीं रख पा रहे थे। उन्हें समझाना पड़ा कि थोड़ा धैर्य रखो, वो कुछ सोचेंगे, बताएँगे। उनके अंदर थोड़ा सा धीरज आ गया। संयोग की बात क्या हुई कि उसी दिन दरवाजे की शटर खुली हुई थी, जाते समय ध्यान से निकल गए पर आते समय ध्यान नहीं रहा और उसकी नोक सिर पर लग गई। हल्की सी खरोंच आ गई। लोगों को पता पड़ा तो उन्होंने तुरंत उस पर

हल्दी वगैरह लगा दी। चोट कुछ खास नहीं थी। अब आचार्य महाराज के पास में जब सब शिष्य लोग आकर बैठ जाते हैं, कल का उपवास आदि का संकल्प लेना होता है तो वह सब बताया जाता है। **यह प्रत्याख्यान** की क्रिया कहलाती है, आहार, उपवास आदि का प्रत्याख्यान किया जाता है। जब सब बैठे थे तो उस शिष्य के सिर पर जो पीलापन लगा था तो आचार्य महाराज की दृष्टि उस पर चली गई। 'हूँ क्या हो गया।' 'कुछ नहीं, कुछ नहीं।' किसी ने कह दिया महाराज वो शटर लग गई थी, खरोंच आ गई थी तो हल्दी लगा दी।' 'अच्छा कोई बात नहीं।' सबके लिए प्रत्याख्यान हो गया, भक्ति हो गई। उसके बाद आचार्य महाराज ने अलग से बुलाया। 'इधर आ, इधर आ।' फिर उन्होंने पूछा कैसे लग गई, कहाँ लग गई, सब देखा। फिर वो पहले वाला शिष्य कहता है कि हम तो अपना दर्द लेकर जाते हैं, बताते हैं तो बड़ी मुश्किल से सुनते हैं और सुनने के बाद अभी तक हमारे लिए दवाई शुरू नहीं हुई और तुम्हें थोड़ी सी खरोंच लग गई तो कहने लगे, इस पर ये लगा लो, वो लगा लेना। बड़ा ख्याल रखते हैं। उन्हें ये मालूम है कि किसका कितना ख्याल रखना है और कौनसी दवाई देना है। हर शिष्य को ये बात तब समझ में आती है जब वह गुरु महाराज को समझने लग जाता है, साथ में रहने लग जाता है तब उसे लगता है कि गुरु महाराज हमारा इतना ख्याल रखते हैं तो हमें भी ये ध्यान रखना है कि जैसा गुरु महाराज कहें वैसा ही करना है क्योंकि अगर अपन ने उस कार्य में कुछ भी कमी की तो गुरु महाराज का भी ख्याल रखना कम हो जाएगा। आचार्य महाराज की ऐसी करुणा, ऐसा वात्सल्य रहता है कि उस भाव को हर कोई व्यक्ति समझ नहीं सकता, जितना उनके शिष्य समझते हैं, दूसरा कोई भी उनके बारे में समझ नहीं सकता। तुम जाओगे, तुम्हें कुछ मिले न मिले पर तुम्हें ये नहीं समझ में आएगा कि उनके अंदर कितनी करुणा है, वात्सल्य है। जो उनके लिए समर्पित हो जाता है, उनका शिष्य बन जाता है तो वे उस शिष्य का ख्याल रखते हैं। जब यह शिष्य उनके पास रहता था तब वो गुरु महाराज उसका बहुत ख्याल रखते थे और अब दूर रहता है तब भी बहुत ख्याल रखते हैं, ये भी उस शिष्य को मालूम है।

वह शिष्य कौन है ये तुम्हें समझ में आ रहा होगा। वह शिष्य णमो आयरियाणं करते–करते गुरुमय हो गया। अंतरंग से जब हम किसी के प्रति भक्ति रखते हैं, श्रद्धा रखते हैं तब ऐसे भी परिणाम बनते हैं। जब उस शिष्य की दीक्षा नहीं हुई थी तब वह साधु, उपाध्याय व आचार्य के गुणों का चिंतवन करता था। एक दिन चिंतन करते–करते उसके अंदर से आँसु निकल आए, वह सोच रहा था कि ये अपने शरीर को इतना कष्ट देते हुए भी इतना प्रसन्न रहते हैं कि हे भगवन्,

मुझे भी ऐसी शक्ति मिले, मैं भी इन २८ मूलगुणों का पालन कर सकूँ। ऐसा ध्यान करते–करते उसके आँसु आने लग जाते हैं। इसका नाम होता है ध्यान। ध्यान का मतलब केवल सोचना नहीं होता, इतनी तन्मयता के साथ उसमें लीन हो जाना कि हम ये भी भूल जाएँ कि हम जिसका चिंतन कर रहे हैं वो कोई और नहीं है हम वही हैं। हम में ऐसी परिणति उत्पन्न होने लग जाए कि हम भी साधु की तरह निश्चिंत, निर्विकार, शक्तिमान व ज्ञानवान् बन जाएँ, ऐसी परिणति जब अपने अंदर आती है तब वह ध्यान की परिणति कहलाती है। ध्यान करते हुए आपकी आँखों में आँसु आ सकते हैं, गद्गद् भाव हो सकते हैं, आपका मन कोमल बन जाता है। अगर आपको वास्तविक गुणों की पहचान है तो ऐसा होने लग जाए तो आप उस परिणति में ढ़लने वाले हैं। उस शिष्य के ऐसे ही मृदु परिणाम होने लगे इसलिए आचार्य महाराज से बहुत जल्दी दीक्षित हो गया और साधु परमेष्ठी बन गया। ये **मन की कोमलता** का परिणाम होता है।

ज्ञान का प्रयोजन मन के अंदर कोमलता उत्पन्न करना और ध्यान का प्रयोजन भी मन में कोमलता के साथ गुणों की प्राप्ति करना है। जिस ज्ञान व ध्यान से अक्खड़पना बढ़े तो समझना न वो ध्यान है, न ज्ञान है, वो नादान है और हमेशा नादान बना ही रहेगा। आचार्य महाराज से दीक्षा होने के बाद उसके द्वारा णमो आयरियाणं जपते–जपते तीन वर्ष गुजर गए। एक दिन वह आचार्य महाराज के पास जाकर कहता है कि महाराज हमें कुछ आता तो है नहीं, हम केवल णमो लोए सव्वसाहूणं जानते हैं, णमो उवज्झायाणं जानते हैं और णमो आयरियाणं सीख गए, आप कुछ थोड़ा सा और भी तो सिखा दो तब आचार्य महाराज कहते हैं बेटा अब तू णमो अरिहंताणं को सीख। ये जिनेंद्र भगवान् की प्रतिमाओं को तुम देखो और ये ध्यान किया करो कि मैं साक्षात् जिनेंद्र भगवान् को देख रहा हूँ, यही जिनेंद्र भगवान् अपनी अंतरात्मा में ध्यान का विषय बनना चाहिए, तू ऐसा ध्यान कर। बताऊँ कब सिखाया, कैसे सिखाया। एक बार कुंडलपुर के बड़े बाबा के सामने छोटे बाबा खड़े थे। यह उस समय की बात है, जब बड़े बाबा की मूर्ति पुराने मंदिर से नए मंदिर में विराजित की गई थी और नए मंदिर में विराजमान मूर्ति को वो देख रहे थे। वहाँ सब शिष्य खड़े थे, आचार्य महाराज के बगल में हम खड़े थे। आचार्य महाराज भगवान् को देख रहे हैं और हम आचार्य महाराज को देख रहे कि ये क्या देख रहे हैं। आचार्य महाराज ने देखा कि ये कभी भगवान् को देख रहा है और कभी मुझे देख रहा है तो वे समझाते हैं। बता दूँ? तुम्हें बताने से कोई मतलब तो है नहीं, कुछ करते तो हो नहीं। आचार्य महाराज उस समय पर कहते हैं– देखो, भगवान् को देखते समय पर क्या देखना? हमने कहा हम तो पूरे भगवान् देख रहे हैं। नहीं,

भगवान् को देखते समय केवल उनकी दृष्टि पर अपना ध्यान केंद्रित रखो। भगवान् की जो पलकें हैं, उनकी आँखें हैं, उनमें अपनी आँखों को मिलाओ और उनकी आँखों में अपनी दृष्टि लगाओ। तुम्हारी दृष्टि बदल जाएगी। भगवान् के सामने खड़े होकर के भगवान् को अपलक निहारो। देखो, सौम्यता, उनकी सुंदरता सब कुछ तुम्हें दिखाई देने लगेगी। तुम केवल अपना ध्यान, अपनी दृष्टि भगवान् की दृष्टि पर केंद्रित करो। गुरु महाराज ने शिष्य को समझाया कि अरिहंतों का ध्यान ऐसे किया जाता है। वह शिष्य **अरिहंतों** की प्रतिमाओं का ध्यान करना सीख गया और अरिहंतों का भी। भगवान् को देखने के बाद में आपके मन में अगर कुछ रह जाएगा तो वो भगवान् की शांत–सौम्य मूर्ति ही आपके ध्यान में रह जाएगी और अगर वही आपके ध्यान में रह गई तो आप मान के चलना कि आपने आज भगवान् को देखा, उनकी मूर्ति आपके अंदर प्रकटित हुई। तब आपका मन दर्पण सा होगा तो उसमें आपका प्रतिबिम्ब आएगा और यदि गंदला होगा तो भगवान् को देखने के बाद भी तुम्हारे आँख बंद करने पर भी कुछ दिखाई नहीं देगा। मन को दर्पण के समान उजला बनाओगे तो वह भी भगवान् के ध्यान से बनेगा। मन की कलुषतायें धुलती चली जाएँगी क्योंकि अरिहंत परमेष्ठी का ध्यान हम अरिहंत भगवान् की प्रतिमा को देखकर ही कर सकते हैं। गुरु महाराज ने अरिहंतों का ध्यान करना सिखा दिया तो वो शिष्य उसी में मस्त हो गया और एक भजन ही बना दिया–

अरिहंतों की प्रतिमाओं का ध्यान करो भाई
कोई भी ना करे जिसे वो काम करो भाई

उस मन में आने लगा देखो, ये काम ऐसा है जिसे कोई नही करता, कर सब सकते हैं पर कोई नहीं करता और अगर ध्यान करने बैठे तो उसे आता भी नहीं है। कभी किसी ने मुझे एक व्हाट्स एप पर एक पिक्चर दिखाई और कहा कि महाराज इस को दो मिनट ध्यान से देखें फिर आपको केवल सामने देखना दीवार पर तो सामने देखने पर वह जो पिक्चर उसमें देखी थी वो उस दीवार पर दिखाई देने लगी। मैंने सोचा ये दो मिनट इस पिक्चर को देखने के बाद में सामने दीवार पर वो पिक्चर दिखाई देने लग जाती है तो क्या भगवान् को हम दो मिनट टकटकी लगाकर देखेंगे तो भगवान् को बिना देखे भी हमें भगवान् दिखाई दे सकते हैं। प्रयोग करके देखो। अपने अंदर भी वही प्रति छाया पड़नी चाहिए, वह प्रतिबिम्ब अपने अंदर आना चाहिए और वह प्रतिबिम्ब तभी आएगा जब मन में कुछ कलुषता कम होगी। मन के अंदर की पहचान यही है कि आपको अरिहंत भगवान् का अगर ध्यान हो रहा है तो पहले उनकी भावना करना। वह परमात्मा जो सभी

प्रकार के संकल्पों से रहित है ऐसी उन अरिहंत भगवान् की कल्पना करो, उनका ध्यान करो और उनका ध्यान करने के लिए अगर तुम्हें ये शब्द भी याद आ जाए तो इन शब्दों को भी गुनगुना लेना क्योंकि ध्यान से पहले बहुत कुछ चाहिए पड़ता है। ध्यान से पहले भावना चाहिए, भावना से पहले भी ज्ञान चाहिए, ज्ञान के साथ में ऐसा आनंद चाहिए जिसमें हमें छोटी सी बात में सब कुछ समझ में आ जाए।

अरिहंतों की प्रतिमाओं का ध्यान धरो भाई
कोई भी ना करे जिसे वो काम करो भाई
भोगों की चाहत में राहत किसको यहाँ मिली
बगिया में वह कली कौन सी रहती सदा खिली
मानव जिसमें धसता जाता–२ जीवन वह खाई
कोई भी....अरिहंतों....
साँसों की चाबी से चलता तेरा देह खिलौना
बच्चों सा ये खेल सदा ही तुझको लगा सलोना
समय मिला ना आत्मध्यान का, अब मृत्यु आई
कोई भी.... अरिहंतो....
तन अपना जब धोखा देता क्यों पर को चाहे
पंछी मर जाता पिंजड़े में उड़ना ना चाहे
अपने को पहचान– यहाँ–२ और सब से माँग विदाई
कोई भी... अरिहंतो....
यदि तू चाहे नहीं डूबना इस भवसागर में
अरिहंतो को नहीं भूलना–२ घर में बाहर में
इसी नाम की रटना से तू प्रीति लगा भाई
कोई भी.... अरिहंतो....



श्लोक– २८

सोऽहमित्यात्तसंस्कारस्तस्मिन् भावनया पुनः।
तत्रैव दृढसंस्काराल्लभते ह्यात्मनि स्थितिम्।।२८।।

साधु सदैव, वह तो निज आत्म ध्याता, सोऽहं, विशुद्ध, जिन हूँ रट यों लगाता।
होता निवास निज में इस धारणा से, क्यों रोष तोष तब हो, दुःख हो कहाँ से?।।२८।।

गुरु महिमा

देखा जाए तो हर आदमी स्वयं में अपना गुरु होता है और स्वयं में अपना शिष्य होता है लेकिन जब हम ज्ञान प्राप्त करते हैं तो हमें किसी को अपना गुरु भी स्वीकार करना होता है। मोक्षमार्ग की ये अध्यात्म विद्या बिना गुरु के कभी फलीभूत नहीं होती है। वह शिष्य अब हमेशा अरिहंत भगवान् का ही चिंतन करने लगा, सोचता-विचारता है कि अरिहंत देव करते क्या हैं। उनके बारे में वो खुद तो कुछ नहीं देख पाता लेकिन शास्त्रों के माध्यम से सोचता है, विचारता है। इस पंचमकाल में सबसे बड़ा कोई दुर्भाग्य है तो वो इतना ही है कि हम अरिहंत भगवान् को साक्षात् देख नहीं सकते। इस कारण हम उनकी क्या तस्वीर बनाएँ ये भी समझ नहीं आता। उनके प्रति भाव नहीं आ पाता। उन अरिहंत भगवान् का शरीर कैसा होता है, उनकी क्रियाएँ कैसी होती हैं, वे किस तरह से भक्त जीवों के लिए परम आनंद की वर्षा करते हैं। अरिहंत भगवान् के बारे में जब भी आप शास्त्रों में पढ़ेंगे तो आपको मिलेगा कि २४ भगवान् सभी अलग-अलग रंग के हैं। उन रंगों को देखकर हम मूर्ति को अलग-अलग भगवान् की कल्पना कर ध्यान का विषय बना सकते हैं। भगवान् की कांति व उनका तेज चंद्रमा व सूर्य से भी ज्यादा होता है। भगवान् के दिव्य शरीर में इतना प्रकाश होता है कि हजारों करोड़ों सूर्य का प्रकाश भी उनके आगे फीका पड़ जाए। उनके दिव्य स्वरूप का बाह्य रूप कभी हमें सफेद रंग का दिखाई देता है, कभी नीले, हरे, पीले,

लाल रंग का भी दिखाई देता है। पद्मप्रभ व वासुपूज्य भगवान् लाल रंग की देह को धारण करने वाले थे। चंद्रप्रभ एवं पुष्पदंत भगवान् सफेद रंग की देह को धारण करने वाले थे। ऐसा सफेद धवल रंग कि करोड़ों चंद्रमाओं का प्रकाश भी फीका पड़े। मुनिसुव्रतनाथ भगवान् और नेमिनाथ भगवान् नीले रंग के हुए। पार्श्वनाथ भगवान् व सुपार्श्वनाथ भगवान् हरे रंग के हुए। केवलज्ञान की प्राप्ति के बाद में उनका शरीर इतना हल्का हो जाता है कि वे हमेशा आकाश में ही विहार करते हैं। कभी भी धरती का स्पर्श नहीं करते। सामान्य मनुष्य के शरीर में जो सप्त धातुएँ होती हैं उन सबसे उनका शरीर उठ जाता है, रहित होता है। उनकी देहयष्टि पारदर्शी एवं निर्मल होती है, जब वे विहार करते हैं तो असंख्य देवी-देवता उनके चरणों में रहते हैं एवं भगवान् के चरणों के आगे-पीछे-बीच में अनेक फूलों को बिछाते चले जाते हैं पर भगवान् के चरण उन फूलों को स्पर्श नहीं करते पर वे फूल सुरभि से भर जाते हैं एवं स्वर्ण के समान सुंदर हो जाते हैं। ये भगवान् के चरणों का उनकी काया का दिव्य प्रभाव हमें जब सुनने व पढ़ने को मिलता है तब हमें कल्पना होती है कि हम अरिहंताणं में किनको नमस्कार कर रहे हैं। अरिहंत कहते हुए हमारा ध्यान उन प्रतिमाओं से हटकर के उन दिव्य ऊँचाई वाली काया पर जाना चाहिए। आदिनाथ भगवान् ५०० धनुष के हुए व सबसे छोटे भगवान् महावीर हुए जो सात हाथ के हुए।

दर्शन

भगवान् की निर्मलता व पारदर्शिता के बारे में सुनकर हम कल्पना कर सकते हैं कि वे कितने सुंदर होते होंगे। जब भगवान् की प्रतिमा देखने में इतना आनंद आता है तो उनका वास्तविक रूप कितना सुंदर होगा। दुनिया में कोई भी उनसे बढ़कर के सुंदर नहीं होता। आचार्य उनकी सुंदरता की स्तुति करते हुए कहते हैं कि हे भगवान् आपकी सुंदरता को देखकर इंद्र भी विस्मय करता है। जब वह भगवान् के रूप को देखने के लिए हजार आँखें बना लेता है तब उसका नाम 'सहस्राक्ष' पड़ जाता है। वह भगवान् को देखकर इतना आनंदित होता है कि वह भगवान् के सामने नृत्य ही करता रह जाता है। भगवान् का आभामंडल इतना निर्मल होता है कि उसमें हमें अपने सात भव दिखाई दे जाते हैं। आपने तो उनके ३४ अतिशय, ४६ गुण ही सुने हैं लेकिन वे अनेकानेक अतिशयों से युक्त होते हैं। उनके गुणों का ध्यान करते-करते आपकी जिंदगी भी कम पड़ सकती है। आप उनके चिंतन से कभी भी संतुष्ट नहीं हो सकते। उनकी आत्मा की परिणति के वर्णन का

तो आप कभी अंदाजा भी नहीं लगा सकते, उसकी अनुभूति थोड़ी सी हमें तब होती है जब हम आत्मा के शांत स्वभाव का थोड़ा चिंतन करते हैं। ऐसे अरिहंत भगवान् की प्रतिमाओं का, ऐसे अरिहंत भगवान् का चिंतन करते-करते आपके अंदर में ऐसी विशुद्धि उत्पन्न हो सकती है कि पंचमकाल में आपकी आत्मा में सम्यक्दर्शन होगा। आपको साक्षात् अरिहंत भगवान् नहीं दिख रहे कोई बात नहीं, भगवान् के जिनबिम्ब, प्रतिमाएँ जो मंदिर में विराजमान हैं, उन प्रतिमाओं के माध्यम से आज भी सम्यक्दर्शन होता है, इतनी उन प्रतिमाओं में शक्ति हुआ करती है। आत्मा में कर्म और कर्मों की अपनी शक्तियाँ केवल जिनेंद्र देव का दर्शन करने से ही प्रकट होती है। कर्म की शक्तियाँ भी पराजित हो जाती हैं जब हम भगवान् जिनेंद्र देव का दर्शन करते हैं। इसलिए आचार्यो ने इस मनुष्य पर्याय में सम्यक्दर्शन के कारणों में एक सबसे बड़ा कारण जिनेंद्र भगवान् का दर्शन करना बताया है, दूसरा कारण भगवान् का उपदेश, गुरु का उपदेश सुनना बताया। तीसरा कारण है- अगर आपके सामने कोई ऐसी घटना आ जाए जिसके माध्यम से आपको जाति स्मरण हो जाए, पूर्व जन्म का स्मरण हो जाए तो वो भी आपके लिए सम्यक्दर्शन का कारण बन सकता है।

आप भगवान् का दर्शन करते हो तब ऐसा लगता है कि आप अपना दर्शन उन्हें कराने आए हों। बड़ी मुश्किल से दौड़ते आते हो, भगवान् को देख लिया और चलते बने। टाटा-बाय–बाय। आपके लिए ऐसा दर्शन चलता रहेगा तब तक सम्यकदर्शन का भाव नहीं आएगा। भगवान् के दर्शन से सम्यक्दर्शन की उत्पत्ति की अवधारणा बहुत बड़ी चीज है। पंचमकाल में हमें जिनेंद्र भगवान् के साक्षात् दर्शन नहीं होते लेकिन उनकी प्रतिमा के दर्शन से अगर आज भी हमें सम्यक्दर्शन हो जाता है तो हमें उन अरिहंत भगवान् का अपनी श्रद्धा में वह रूप दिखाई देगा जो उनका वास्तविक रूप है। ये उस श्रद्धा की परिणति और सम्यक्दर्शन की परिणति से आत्मा में आह्लाद के रूप में भाव उत्पन्न होता है। इस भाव के कारण आपको णमो अरिहंताणं का चिंतन करने में कभी भी थकान नहीं होगी।

दृष्टि

शिष्य पूछता है कि अरिहंत भगवान् भी तो एक दिन ये संसार छोड़कर चले जाते हैं, इनकी देह कपूर के समान उड़ जाती है तो फिर उनकी आत्मा कहाँ चली जाती है तब वे गुरु महाराज

उसे समझाते हैं। गुरु महाराज के पास अंतर्दृष्टि होती है जिससे वे बाहरी दृष्टि भी प्रदान कर देते हैं और अंतरंग दृष्टि भी प्रदान कर देते हैं। देखने की कला व जानने की कला भी गुरु महाराज सिखाते हैं। वे कहते हैं बेटा जब वह अरिहंत भगवान् का शरीर उनकी आयु क्षय के कारण से चला जाता है तो सभी कर्मो से रहित होकर के वे सिद्ध भगवान् बन जाते हैं। सिद्ध भगवान् की केवल आत्मा ही आत्मा रह जाती है, वहाँ पर कोई शरीर नहीं होता। कई के मन में ये विचार आ जाता है कि सिद्ध भगवान् करते क्या हैं, उनका काम क्या रहता है। वे वहाँ रहते हैं तो एक ही स्थान पर कब तक बने रहते हैं? णमो सिद्धाणं में हम जिन सिद्ध भगवान् का ध्यान कर रहे हैं वे हमेशा के लिए शरीर छोड़ चुके हैं क्योंकि शरीर तो उनकी आत्मा का एक खोल था, कवर था। वे उस आत्मा के कवर को छोड़कर के हमेशा के लिए मुक्त हो गए, अब उन्हें इस कवर की जरूरत नहीं है। उस कवर के कारण भी उन्हें दु:ख मिलता था, उससे वे मुक्त हो गए।

जब खोल से आदमी ऊपर उठता है तो उसका जीवन थोड़ा खुलता है, इसलिए आपको ये चिंतन दिया जा रहा है कि आप अपनी दृष्टि को खोल से ऊपर उठाओ। तुम्हारी आत्मा भी इस शरीर के खोल में बैठी है, उसे ज्ञात नहीं हो रहा कि उसमें और सिद्ध भगवान्/परमात्मा में कोई अंतर है या एक जैसे हैं। हमारे अंदर भी सिद्धत्व का भाव है, यह उस आत्मा को आभासित नहीं हो रहा है इसलिए वह इस खोल को ही सब कुछ समझ रहा है। आचार्य कहते हैं इस खोल के ऊपर एवं भीतर भी कुछ है। खोल से ऊपर जब हमारी दृष्टि उठती है तो उस समय पर दृष्टि में खुलापन आता है और उससे ज्ञान खिलने लग जाता है। जैसे- जैसे घर के दरवाजे खुलते हैं प्रकाश अंदर आता है तो वह घर भी जगमगाने लग जाता है। उसी तरह से जैसे ही हमारी दृष्टि ऊपर उठती है इस शरीर से ऊपर उस ज्ञान के माध्यम से, चिंतन के माध्यम से जिसे गुरु महाराज बताते हैं कि बेटा अब तुझे णमो अरिहंताणं करते हुए बहुत समय हो गया है। तुम उन अरिहंत के भीतर छिपी हुई आत्मा के जाने के बाद जो आत्मा का स्वरूप है, उसके बारे में भी थोड़ा सा जान लो। आचार्य कहते हैं अब तुम णमो सिद्धाणं बोलना। जब णमो सिद्धाणं बोलोगे तो तुम्हारे दिमाग में ये बात नहीं आएगी कि अरिहंत भगवान् तो एक शहर से दूसरे शहर में चले जाते हैं। एक स्थान से दूसरे स्थान पर विहार होता है लेकिन सिद्ध भगवान् हमेशा तुझे वहीं मिलेंगे जहाँ से वो सिद्ध बने हैं। अगर तुझे मालूम है कि पार्श्वनाथ भगवान् स्वर्णभद्र कूट सम्मेद शिखर से मोक्ष गए हैं, तुम जब भी जाओगे तो पार्श्वनाथ भगवान् तुम्हें हमेशा वही स्वर्णभद्र कूट के ठीक ऊपर मिलेंगे।

लोक के अग्र भाग पर तुझे पार्श्वनाथ भगवान् की आत्मा दिखाई देगी, मिलेगी।

सिद्ध भगवान् एक निश्चल परिणति है, जिस परिणति में उनके अंदर तो परिणमन होता है लेकिन वह परिणमन एक स्थान से दूसरे स्थान के रूप में नहीं होता है। जैसे अरिहंत भगवान् गमन करते हैं ऐसे सिद्ध भगवान् कभी भी गमन नहीं करते हैं। प्रश्न वही आ जाता है कि बैठे-बैठे करते क्या हैं? जो भगवान् बैठकर के मोक्ष गए हैं उनकी आत्मा का जो आकार बना हुआ है वह बैठा हुआ बना है। जो भगवान् खड़गासन से मोक्ष गए हैं, उनका खड़ा आकार बना है। ये आकार वैसा ही बना रहता है, उनमें कोई भी परिवर्तन नहीं आता है। उनके अंदर क्या चल रहा है ये ज्ञान जरूर आपको होना चाहिए। आत्मा के अपने ही जो स्वाभाविक गुण हैं, जो आत्मा का अपना नेचर है जो स्वभाव है वो प्रकट हो जाता है, उस स्वभाव में ही वो लीन रहते हैं, उन्हें फिर किसी विभाव की कोई आवश्यकता नहीं पड़ती है। ये स्वभाव और विभाव क्या होता है? आपने गर्म पानी व ठंडा पानी तो देखा ही होगा। पानी का स्वभाव शीतल है, ठंडा है। गर्म हम उसे कर देते हैं और वह गर्म भी तब तक रहेगा, जब तक कि उसमें उष्णता रहेगी। अगर आप उसे गर्म करके छोड़ देंगे तो वह पानी पुन: अपने स्वभाव में आ जाएगा। उसका स्वभाव ठंडापन/शीतलपन है। उसी तरह से आत्मा का स्वभाव अपने ज्ञान व अपने सुख में रमण करना है, यह शरीर तो एक खोल है। इस शरीर के अंदर न सुख है न ज्ञान है। हमने यह मान लिया है कि इस शरीर में सुख है, ज्ञान है और जब उनका ये खोल छूट गया, तब केवल आत्मा ही आत्मा रह गई, अब उन्हें किसी भी प्रकार का इस खोल से उत्पन्न होने वाला दु:ख भी नहीं रहा। कई लोग पूछते हैं, वो कुछ खाते नहीं हैं, किसी को देखते नहीं हैं, किसी से बातें नहीं करते, उन्हें कभी प्यास नहीं लगती? बेटा ये भूख-प्यास, सुनना-देखना ये बातें करना भी खोल के साथ हैं। ये खोल हमेशा छूट जाता है लेकिन जो इस खोल को छोड़ देता है वो हमेशा के लिए मुक्त हो जाता है। खोल जब छूट जाता है तब वह नया खोल प्राप्त करने के लिए चला जाता है लेकिन जब यह आत्मा इस खोल को छोड़ देती है तब वह हमेशा के लिए इस खोल से मुक्त हो जाती है जैसे एक तोता किसी पिंजड़े में बंधा हुआ है। कोई दूसरा व्यापारी आता है उस तोते को खरीद ले जाता है और दूसरे पिंजड़े में डाल देता है। कभी चाँदी के, कभी सोने के पिंजड़े में तोता पहुँच गया। कभी लोहे के पिंजड़े में पहुँच गया लेकिन वह पिंजड़े में ही रह जाता है। जब तक तोता खुद उड़ने की इच्छा नहीं करता तब तक पिंजड़ा उसका साथ भी नहीं छोड़ता है।

तोते को समझाता अभी तक तो समझ में आ जाता लेकिन तुम तोते से भी गए बीते हो। तोता अभी तक छोड़कर उड़ गया होता लेकिन आपको पिंजड़ा छोड़कर जाने की शक्ति अभी भी प्रकट नहीं हो रही है। शरीर रूपी पिंजड़े में ये तोता रूपी आत्मा बैठा है। जब कभी आपको याद आता है तो आप गा लेते हो- तोता मन स्तर पिंजड़े में, मन पंछी शोर मचाए। आत्मा जब तक शरीर रूपी पिंजड़े को छोड़ना नहीं चाहता तब तक उसे मुक्ति नहीं मिलती। इसीलिए अरिहंत भगवान् ने उस शरीर को उस पिंजड़े को छोड़ने की साधना कई जन्मों से की थी। इस जन्म में उन्हें मुक्ति मिली कि तोते के माध्यम से वो पिंजड़ा छूट गया और अब उन्हें किसी भी प्रकार का दु:ख नहीं है। भूख तब लगती है जब शरीर होता है, प्यास तब लगती है जब शरीर साथ में होता है। मन में बेचैनी तब आती है जब मन अपने साथ में होता है। एक ऐसा परिणमन भी होता है वहाँ न शरीर है, न मन है, न वचन है वहाँ केवल आत्मा ही आत्मा है और वह आत्मा अपने ही दिव्यप्रकाश में अपने ही स्वभाव में, ज्ञान में अपने आनंद में लीन है उसका नाम है सिद्ध आत्मा।

तालियाँ बजाने के साथ ये भी ध्यान कर लेना कि हम इन सिद्ध आत्मा पर विश्वास करें और समझें कि सिद्ध भगवान् को अब किसी चीज की जरूरत नहीं है। उनके अंदर अब इतना प्रकाश उत्पन्न हो गया है कि उन्हें अब किसी सूर्य के प्रकाश की जरूरत नहीं, किसी सीएफएल लाइट की जरूरत नहीं क्योंकि उनकी ही आत्मा में सब कुछ दिखाई दे रहा है। प्रकाश भी दिखाई दे रहा है और अंधकार भी। ऐसे वो सिद्ध भगवान् जो लोक के अग्रभाग में विराजमान हैं, वो अनंतकाल तक उसी परिणति में बने रहते हैं। एक बार जो सोना शुद्ध हो गया, पाषाण में से निकल आया तो उस सोने को कभी मिट्टी नहीं बनाया जा सकता, वह सोना हमेशा सोना ही रहता है। एक बार अगर गाय के दूध का घी बन गया तो वह घी घी ही रहेगा फिर उसको हम दूध में परिवर्तित नहीं कर सकते। उसी तरह आत्मा अशुद्ध दशा से शुद्ध दशा को प्राप्त हो जाता है तो फिर उस आत्मा में कोई विकारी भाव उत्पन्न नहीं होता। कभी उसके अंदर अरुचि, राग-द्वेष, मत्सर कोई भी भाव उत्पन्न नहीं होते, ऐसी उस आत्मा की शुद्ध, स्वाभाविक परिणति का नाम सिद्ध आत्मा है। उसे कहते हैं णमो सिद्धाणं। जब णमो सिद्धाणं समझ में आ जाता है तो अपने अंदर अपने आप ये भावना बनती है कि हम भी अब इस तन-पिंजर से अपने आपको छुड़ाएँ और इस तन पिंजर के अंदर जो ये आत्मा बैठा है उसे मुक्त करें। अभी तक तो ये आत्मा इस तन पिंजड़े

को छोड़ तो देता है लेकिन दूसरा पिंजड़ा फिर ग्रहण कर लेता है। पिंजड़ा वहीं पड़ा रह जाता है, आत्मा चली जाती हैं लेकिन ये आत्मा हमेशा के लिए इस तन पिंजड़े को छोड़ दे, ये परिणति तो आपकी तभी बनेगी जब आप भावना करें।

सोहं

जिसमें हमारी रुचि बन जाती है, उसी में हम कल्पना करने लग जाते हैं, अच्छी भावना करने लग जाते हैं कि ऐसे सिद्ध हम कब बनेंगे। हम भी सिद्ध हैं, वह भी सिद्ध हैं। वह सिद्धत्व हमारे अंदर भी है, मेरी आत्मा भी उस सिद्ध भगवान् के समान है, तब आचार्य कहते हैं ये जो भाव है यही भावना आपकी आत्मा के अंदर सिद्धत्व की प्राप्ति का एक संस्कार डालेगा। मेरी आत्मा और सिद्ध भगवान् की आत्मा दोनों में एकरूपता है और वह ध्यान करते-करते ये भावना आती है 'सोहं'। सो यानि वह, अहं यानि मैं। वह मैं हूँ। सोहं कहने का, रटने का ये जो संस्कार है, ये संस्कार ही आप की आत्मा के अंदर सिद्ध बनने का संस्कार है, ये संस्कार ही आप की आत्मा के अंदर सिद्ध बनने का संस्कार डालेगा। इसी संस्कार के बल पर आपको मुनि दशा, अरिहंत दशा, सिद्ध दशा, ये सब दशाएँ आपकी आत्मा की बनेंगी। अगर आप ये संस्कार डालेंगे आत्मा इसी रूप में आगे बढ़ेगी और यदि ये संस्कार नहीं डालेंगे तो आत्मा ऐसे ही मनुष्य से दूसरे मनुष्य/तिर्यंच/ नारकीय/देव, इन्हीं चार गतियों में रही आती है। इसलिए आचार्य कहते हैं यहाँ पर एक संस्कार डालो 'सोहं' 'सोहं'। एक ही रट लगाओ- सोहं, सोहं। यह 'सोहं' की भावना अपने मन में इतनी दृढ़ हो जाए कि उस दृढ़ संस्कार के माध्यम से हम अपनी आत्मा में, अपने लिए स्थिति को प्राप्त कर लें। अपनी आत्मा में टिकना तब होगा, जब हम सिद्ध भगवान् को जानकर के सोहं-सोहं की रट लगाएँ। सोहं भी तब आएगा जब थोड़ा सा अपने मन में उदासी आ जाए। पहले आएगा, उदासो–हं। इसका मतलब डिप्रेशन मत समझना। उदास होने का मतलब राग–रंग में, हमारे मन की परिणति जो लगती है उससे उदास हो यानि उससे न्यूट्रल हो जाएँ। जब हमारे राग-द्वेष की परिणति कम हो जाती है उस समय पर हमारे अंदर की उदासीनता के साथ में ही ये भाव प्रकट होता है कि हम 'सोहं' की यात्रा करने की तैयारी कर रहे हैं। जब तक मन में राग-रंगों का व्यापार चलता रहता है तब तक सोहं की यात्रा शुरू नहीं होती। उसकी यात्रा शुरू करने से पहले 'उदासोहं' बनना। उदास बनने के लिए पहले ब्रह्मचारी बनना, फिर क्षुल्लक, ऐलक

बनते हैं। जब थोड़ी सी उदासी आ जाती है यानि हम थोड़ा सा इस संसार से दूर हटने के लिए, घर-परिवार से दूर हुए हैं और वह उदासी की भावना में ही मोक्षमार्ग की यात्रा शुरू होती है। पहले थोड़ा सा **उदास** होना। उदास का अर्थ सेडनेस या डिप्रेशन नहीं बल्कि हम जिनके दास बने हैं उनकी दासता छोड़ दें, वो है उदास। जो कुछ भी हमारे पास में है, हम सबके दास बने हैं।

एक दिन हमें अपना बेटा दिखाई न दे तो रोने लग जाते हैं। एक दिन अगर घर में जाना न हो तो ऐसा लगता है कि कहाँ संसार में भटक रहे हैं। एक दिन अगर पत्नी दिखाई न दे तो तुलसीदास को भी क्रॉस कर जाते हैं। वह दासता इतनी ज्यादा बढ़ी हुई है कि हमारी उस दासता के कारण से जो आत्मा के अंदर गुण है, वैभव है, उसके प्रति हमारा लगाव नहीं होता इसलिए दासता में जब कमी आती है तब यहाँ से ये उदासपना शुरू होता है। भैया अब संसार के राग-रंग से उदासी आ गई। ये सब तो बहुत कर लिया, देख लिया, इसमें कोई ज्यादा दम नहीं है। इस भावना का नाम ही उदासी है लेकिन वह भीतर से तो बहुत ज्यादा एक्साइट रहता है, उत्साहित रहता है। भीतर से वह इतना उमंगित रहता है कि उसके पास में कुछ नहीं होते हुए भी उसका मन कभी भी निराशता महसूस नहीं करता। कुछ भी नहीं है मुनि महाराज के पास में फिर भी उनके अंदर कोई निराशता नहीं देखने मिलती। कुछ नहीं होने के बाद भी उनके अंदर वैसी उदासी क्यों नहीं दिखाई देती, जैसी उदासी तुम्हारे चेहरे पर रहती है क्योंकि उनके अंदर कोई दूसरी चीज की ललक है, वही उन्हें उस बाहरी चीज से दूर किए रहती है। उदास होने के बाद में 'उ' को भी हटा देना। पहले 'उदासोहं' बनना, उदास बनने के लिए कम से कम तुम्हें ब्रह्मचारी बनकर कुछ साधना करनी पड़ेगी।

अब ब्रह्मचारी घर पर रहकर तो बन नहीं सकोगे, जब घर को छोड़ेगे तब ब्रह्मचारी बनोगे। घर कब छूटेगा, जब तुम खुद छोड़ने की इच्छा करोगे। अब घर महाराज हमेशा के लिए तो छोड़ नहीं सकते तो २-५-१० दिन के लिए तो छोड़ सकते हो, वह घर छोड़ने की भावना जब करोगे तो उसका नाम ही 'उदासोहं'। जैसे ही भीतर से उदासोहं की भावना आएगी आपको लगेगा हम मोक्ष मार्ग पर अब बढ़ने जा रहे हैं, कम से कम किराए के ही सही, नकली ही सही, कुछ दिनों के लिए ही सही, १० दिन के लिए ही ब्रह्मचारी बनकर के अभ्यास करके देखना कि उदासोहं में कैसी फिलिंग होती है। उदासोहं जब तक नहीं होंगे तब तक दासोहं की प्रक्रिया आगे बढ़ेगी नहीं। उ हटाने के बाद क्या बचा फिर 'दासोहं'। अब अपनी पत्नी के, अपने पुत्रों के दास नहीं, अब

पंच परमेष्ठी के दास बनेंगे। अब हम अरिहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, साधु के दास बनेंगे, जब हमारे अंदर ये भावना आ जाएगी तो आपकी वह उदासी भी आपके अंदर ताकत देगी। 'दासोहं' ये दासोहं-दासोहं कहते हुए, सिद्ध भगवान् की स्तुति करते हुए एक दिन ऐसा भी आएगा, जब आपके अंदर का वह 'दा' भी छूट जाएगा।

धीरे-धीरे छूटता है सब कुछ। पहले उ छूटा फिर दा छूटा, फिर बचा 'सोहं'। वही सोहं यहाँ पर लिखा हुआ है। ये सोहं की स्थिति तब बनती है जब हम ब्रह्मचारी बन जाएँ, फिर क्षुल्लक, ऐलक, मुनि महाराज बन जाएँ। एक दिन शिष्य ने पूछ लिया कि सिद्ध भगवान् का भी कब तक ध्यान करें। आचार्य कहते हैं कि अब तुम 'अहं' यानि मैं- आत्मा- ''तदहं निर्विकल्पं'', तुम कौन हो, तुम निर्विकल्प हो, स्वसंवेदन गम्य आत्मा हो। तुम अपनी आत्मा का ध्यान करो और तुम्हें अपनी आत्मा का ध्यान करने में अगर मन लग जाए तो तुम सब छोड़ दो, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय सब छोड़ दो।

लेकिन कब छोड़ोंगे, जब स्थिति आगे बढ़े। अगली क्लास में पहुँचोंगे तो पिछली क्लास छूट जाएगी। पिछली क्लास छोड़ने की भावना मत करो, अगली क्लास आगे पकड़ने की भावना करो। यह भावना ही संस्कार है। आचार्य कहते हैं अब तुम्हें सोहं-सोहं रटने की जरूरत है। जब तुम्हें ये लगने लग जाए कि हम स्वयं अनंत शक्ति के भंडार हैं तो फिर आप अपनी ही केवल शुद्ध आत्मा का चिंतन करना इसका नाम है शुद्ध समयसार, अपनी विशुद्ध आत्मा में लीन हो जाना। अहं–अहं ही रह गए। ये ही वो प्रक्रिया जिसके माध्यम से जीवन चलता चला जाता है, अंत तक वह स्थिति पहुँच जाती है। गुरु महाराज हमेशा अपने शिष्यों को इसी प्रक्रिया से गुजारते हैं। सोहं तक की यात्रा कराने के बाद में उसे आगे की यात्रा कराते हैं।

एक बार जब गुरु महाराज से कहा कि हमें सम्मेद शिखर की यात्रा करने जाना है तो गुरु महाराज ने उस समय पर कहा- क्या करोगे सम्मेद शिखर जाकर? महाराज दुनिया जाती है सम्मेद शिखर में, सुना है वहाँ जाने से तिर्यंच, नरक गति नहीं होती। गुरुजी कहते हैं तुझे तो वैसे ही नहीं होना क्योंकि जो महाव्रत धारण कर लेते हैं उसे ये गतियाँ वैसे ही नहीं होती। अब क्या करें। गुरुजी ने फिर पूछ लिया- क्या करोगे वहाँ जाकर? महाराज! वह सिद्ध क्षेत्र है, वहीं तो सिद्ध भगवान् की याद आएगी, सिद्ध भगवान् के दर्शन होंगे। वहीं तो हमें सिद्धत्व की अनुभूति होगी जो हमें कहीं दूसरी जगह नहीं होगी। गुरु महाराज कहते हैं कि तूने इतना पढ़ लिया है, सब सिद्धांत

पढ़ लिए हैं। ये बता ऐसा कौन सा क्षेत्र है, कौनसी जगह है जहाँ से कोई सिद्ध न बना हो क्योंकि ढाई द्वीप बराबर उस सिद्ध शिला के ऊपर सिद्ध भगवान् खचाखच भरे हुए हैं। ऐसा कोई भी स्थान नहीं है जिस स्थान से कोई सिद्ध न बना हो, तू यहाँ पर भी रुककर सिद्ध भगवान् को देख सकता है, अपने ज्ञान का प्रयोग तो कर।

फिर गुरु महाराज पूछते हैं ऐसा कौन सा काल है जिस काल में कभी कोई सिद्ध न बना हो। इस समय पर भी सिद्ध बन रहे हैं। यहाँ भरत क्षेत्र से नहीं बन रहे, विदेह क्षेत्र से बन रहे हैं। गुरु महाराज से कभी भी कोई प्रार्थना की जाए तो वो प्रार्थना कभी भी तुरंत तो स्वीकार होती नहीं, चाहे आप उनसे ब्रह्मचर्य व्रत भी लेने जाओगे तब भी वो आपसे कह देंगे कि बाद में आना। जब तक वे आपको २-४ बार घुमा न दें, वे आपको आगे बढ़ाने की भावना नहीं करते, ये उनकी विशेषता है, उसमें वो परीक्षा ले लेते हैं। तुम्हारे अंदर कितनी श्रद्धा है, कितना समर्पण है। ४ बार मन करने के बाद में अगर वो हमारे पास आ रहे हो तो इसका मतलब है, तुम्हें हमसे कुछ लौ लगी है, तब वो कहेंगे हाँ अब एक साल का ब्रह्मचर्य व्रत ले लें।

सामने वाला आता है मन बनाकर कि हमें आप पूरी दीक्षा दे दो, इतनी जल्दी कुछ नहीं होता है। धीरे-धीरे मोक्षमार्ग पर आगे बढ़ना। वे उसकी परीक्षा लेकर के मोक्षमार्ग पर आगे बढ़ाएँगे। जब वे देख लेते हैं कि वो उसके लायक है तभी दीक्षा दी जाती है, नहीं तो बहुत से ऐसे भी लोग रह जाते हैं जो ब्रह्मचारी आते हैं उससे पहले के क्षुल्लक, ऐलक हैं वे ही रह जाते हैं। ब्रह्मचारी मुनि महाराज बनकर के अपना कल्याण करने लग जाता है। ये सब गुरु की दृष्टि की विशेषताएँ हैं। अब गुरु महाराज से निवेदन तो कर लिया कि सम्मेद शिखर जाना है। गुरुजी ने ३ प्रश्न तुरंत कर दिए और समझा दिया कि वहाँ जाकर करोगे क्या। हमें भी समझ में आ गया कि गुरुजी अभी भेजना नहीं चाहते यात्रा पर। हमने भी कह दिया कि अर्जी हमारी मर्जी आपकी। अगले तीन साल तक गुरुजी देखते रहे कि इसने कोई अर्जी नहीं लगाई, कोई भावना नहीं रखी। तीन साल बाद गुरुजी ने फिर अपने मन से कहा कि एक बार तुमने कहा था ना कि सम्मेद शिखर जाना है। अच्छा, अब याद आ रही आपको। जाना तो है लेकिन आपकी भावना होगी तो ही होगा। आपकी आज्ञा के बिना कुछ भी काम हम कर ही नहीं सकते। गुरुजी ने आज्ञा दी और जिस दिन सम्मेद शिखर भेजा, उस दिन जो बात उन्होंने कही, उसके लिए भूमिका बना रहा था। गुरुजी के जाते समय पर चरण छुए और कहा कि कुछ ऐसा आशीर्वाद दो कि आत्मा में हमेशा बना रहें। गुरुजी

कहते हैं 'आदपहाणे'। शिष्य ने समझ लिया, तुम्हें समझाने की जरूरत नहीं क्योंकि तुम्हें अपना शिष्य तो बनना ही नहीं। आदपहाणे का अर्थ होता है 'आत्मा ही प्रधान है।' उनका यह सूत्र वाक्य पूरी यात्रा में काम आया। आत्मा ही प्रधान है बाकी सब गौण है। अब उस यात्रा पर जा रहे हैं अनेक प्रकार की विडम्बनाएँ, अनेक प्रकार की प्रतिकूलताएँ/ परेशानियाँ हैं पर सबसे बड़ी चीज याद है कि आदपहाणे। गुरुजी को छोड़ने के बाद जब पहला चातुर्मास हुआ म.प्र. के 'कोतमा' में। चातुर्मास के समय पर इतना तेज बुखार आया और चार महाराज में से ३ महाराज को बुखार था, केवल चंद्रसागर महाराज स्वस्थ थे। सबसे ज्यादा बुखार इस शरीर को ही था, इतना तेज कि बुखार में बेहोशी आ गई। जब होश आया तो उठकर बैठा, किसी ने कहा ३ बज गए, दोपहर के कि शाम के तीन उससे पूछा। ऐसी स्थिति में भी बस गुरुजी के वचन याद रहते हैं, आदपहाणे। बेटा, सब कुछ भूल जाना लेकिन अपनी आत्मा को कभी मत भूलना। इसके साथ अनेक परेशानियाँ लेकिन सबके साथ हैं तो बस गुरु वचन है। सब कुछ चलता रहा, यात्रा हो गई और उस यात्रा के उपरांत जो सिद्धत्व भावना लेकर के गए थे, सिद्धत्व की अनुभूति की भावना, सिद्धत्व के ध्यान की भावना, वे सब भावनाएँ भी पूरी कीं। आपके अंदर वो भावनाओं की पूर्ति तभी होगी जब आप थोड़ा सा इसी प्रक्रिया से आगे बढ़े। पहले उदासोहं, फिर दासोहं, फिर सोहं, फिर केवल अहम्। ये प्रक्रिया आपकी जब बनेगी तभी आपको आनंद आएगा और जब आनंद आता है तो देखो सिद्ध भगवान् की स्तुति करने में भी आनंद आता है।

ये सिद्ध भगवान् की छोटी सी स्तुति है जो सिद्ध भगवान् के ८ गुण हैं, उन गुणों का जो जानता होगा, उसे ये शब्द समझ में आएँगे। ८ गुण वे सम्यक्त्व, ज्ञान, दर्शन, अगुरुलघु, अव्याबाध वह सूक्ष्मत्व अवगाहनत्व आदि गुण। उन गुणों को लेकर हम भगवान् से कैसी प्रार्थना और भगवान् में कैसे लीन होने की भावना कर सकते हैं।

हर आत्मा के असंख्यात प्रदेश हैं और उन असंख्यात प्रदेशों में अनंत गुण भरे हुए हैं। सब अनंत गुणों का प्रकट होना, वह सिद्ध परमात्मा के अंदर होता है।

सोहं सोहं सोहं, सिद्ध स्वरूपो हम्-२
सिद्ध शुद्ध लोकाग्र विराजित, मेरा आतम शुद्ध बने
असंख्यात आत्मदेशों में गुण अनंतो प्रकट घने।
समकित श्रद्धामय सिद्धों सी निज आतम में हो तल्लीन

सम्यक् केवलज्ञान प्रभावित लोक अलोक रहे नित लीन
समकित दर्शन गुण में नित ही निज पर का नित दर्शन हो
गुण अनंत को धारण करने की शक्ति भी निज पल हो
ऐसा ही हो सूक्ष्म परिणमन जैसा सिद्ध प्रभु का है
परिणति नित्य निरादर आदर गागर जैसा है
सिद्ध शुद्ध अवगाहित कर लो अपने अवगाहन गुण में
उरलभ भेद मिटाकर बैठे तव सम अगुरुलघु गुण में
व्याबाधा से रहित निराकुल निराबाध का अनुभव हो
अष्ट गुणों में गुण अनंत का सिद्ध समान ही अनुभव हो
सोहं सोहं सोहं, सिद्ध स्वरूपो हम्-२

ये भावना अगर आपके अंदर रहेगी मैं भी सो माने वह सिद्ध हूँ, सिद्ध स्वरूपी हूँ तो आपकी गति भी उर्ध्व होगी और आप भी उस परमात्मा की भावना से अपनी अंतरात्मा के अंदर वह संस्कार डालेंगे। सबसे बड़ा संस्कार ये है सोहं–सोहं। इस संस्कार के लिए आपको एक संस्कार शिविर में भी भाग लेना पड़ सकता है फिर आपको लगेगा कि जब मैं उदासोहं हो गया हूँ तो दासोहं की यात्रा शुरू होगी और दासोंहम् से आप सोहं के संस्कार डाल पाएँगे।



श्लोक–२९

मूढात्मा यत्र विश्वस्तस्ततो नान्यद्भयास्पदम्।
यतो भीतस्ततो नान्यदभयस्थानमात्मनः।।२९।।

नादान, दीन, मतिहीन, स्वबोध–हीन, विश्वास धार जड़ में सुखमान लीन।
है मान्यता यह अतः वह दुःख धाम, तो आत्म–ध्यान घर है, सुख का ललाम।।२९।।

अज्ञानता से अभय में भय

जहाँ पर संसारी आत्मा ने सोच के विश्वास किया है कि हमें जिसके ऊपर विश्वास है उससे कभी भी भय प्राप्त नहीं होगा एवं कल्पना करता है कि वे इसके प्रति बिल्कुल निश्चिंत हो गए, निडर हो गए लेकिन स्थिति कुछ विपरीत निकलती है। आचार्य कहते हैं कि ये मूर्ख प्राणी जहाँ पर विश्वास कर रहा है उससे बढ़कर के भय का स्थान कोई दूसरा नहीं। आचार्य वो अंतरंग की बात बता रहे हैं जिसके माध्यम से हमें अपने मन की सही पहचान होती है। अपनी परिस्थितियों का सही ज्ञान होता है। जहाँ पर हमने विश्वास कर लिया है कर रहे हैं उससे बढ़कर के डर की जगह कोई दूसरी नहीं है और जिससे तुम्हें डर लग रहा है उससे बढ़कर के अभय का कोई दूसरा स्थान नहीं।

कहा जा रहा है जिससे तुम्हें डर लग रहा है, जिस क्रिया से तुम्हें डर लगता है उस क्रिया में ही तुम्हारे लिए अभयता है, निर्भयता है। हम उसी क्रिया को करते हैं जिस क्रिया में हमारा मन पहले से रंजायमान रहता है जो हमारे लिए पहले से दिखाई गई है कि हमें बड़े सरल मार्ग पर चलना है, कम्फर्ट की जिंदगी जीना है। हर आदमी को ये सिखाया जाता है, बचपन से ही, बेटा जिंदगी बड़ी आराम से जीने की चीज है। ये धारणा जिसके अंदर आ जाती है तो वो फिर कभी जिंदगी में कोई अच्छा काम कर नहीं सकता, न ही नया काम कर सकता है क्योंकि जहाँ पर

आराम की बात आ गई वहीं पर आराम करते-करते एक दिन हराम हो जाएगा। एक दिन उसकी स्थिति ये बनेगी कि वह हराम से धीरे-धीरे वह हेवीराम हो जाएगा, उसको लोग शिवधाम तक पहुँचा आएँगे लेकिन उसके अंदर कोई भी राम का भाव नहीं आएगा। राम की भावना कभी नहीं आएगी। वह कभी आत्माराम के निकट तक नहीं पहुँच पायेगा चाहे बाहरी जीवन की बात हो, चाहे भीतरी जीवन की बात हो। बाहरी जीवन में भी वही व्यक्ति आगे बढ़ पाता है जिस व्यक्ति के अंदर सबसे पहले एक सोच हो। अगर आपके अंदर एक चीज है कि हम आराम से अपनी जिंदगी गुजारें तो आप जहाँ पर हो, वहीं पर बने रहोगे। यदि आपके अंदर कोई लगन है तो आपको ये भी ध्यान रखना होगा कि वो जिंदगी जीने के लिए आराम को एक तरफ करना होगा। जब बच्चा बढ़ता है, विद्यार्थी के रूप में रहता है उस समय पर भी ये कहा जाता है कि बेटा जब तक पढ़ रहे हो तब तक सुख की इच्छा नहीं करो। विद्यार्थी चैव कुत सुखम्। एक नीति थी कि अगर हम विद्यार्थी हैं तो हमें सुख मिल कैसे सकता है। लेकिन आज विद्यार्थी भी रहता है और सुखी भी रहता है। वह विद्यार्थी बनने के बाद भी कभी आगे बढ़कर कोई ऐसा काम नहीं कर पाता जिसके माध्यम से उसका भी नाम निकले, परिवार का, समाज का कोई बड़ा नाम कर पाए। वो नहीं कर पाता क्योंकि जो चीज हमें सुख से मिल रही है और हम जिसमें सुख की ज्यादा कल्पना कर लेते हैं, समझ लेना वह चीज तुम्हारे लिए कोई लाभदायक नहीं है।

तुम्हारा जीवन एक ब्रिदिंग लाइफ होती है और एक लिविंग लाइफ होती है। **ब्रिदिंग लाइफ** का मतलब होता है साँस ले रहे हो और जीवन चल रहा है। एक **लिविंग लाइफ** होती है जिसको हम जी रहे होते हैं और जिसके साथ जीवन चल रहा होता है। ये बहुत बड़ा अंतर है। ब्रिदिंग लाइफ तो हर कोई निकाल देता है। जीवन मिला है, साँसें लेनी हैं आपको। साँसें चलेंगी जीवन आगे चलेगा। लेकिन उस जीवन में भीतर से आगे बढ़ना और उस ब्रिथिंग लाइफ से हटकर के लीविंग लाइफ जीना तब होता है जब आदमी अपने कंफर्ट जोन से बाहर निकलने का दुस्साहस करता है। **कंफर्ट जोन** एक ऐसी मानसिकता है जिसमें घुसने के बाद आदमी को लगता है कि हमें अब कुछ करना नहीं है, जो है सो सही चल रहा है। इससे आगे न हमें कुछ सोचना है ना हमें बढ़ना है, न नया करने की अपने अंदर चाहत है। ऐसी स्थिति में जब कोई बच्चा पहुँच जाता है या युवा पहुँच जाता है तो न वो अपने लिए अच्छा बिजनेस कर पाता है, न सर्विस में प्रोग्रेस कर पाता है, न विद्यार्थी जीवन में कुछ कर पाता है। जहाँ पर मन के अंदर आराम घुस गया, आलस

आ गया और वह सोचे कि हम जो कर रहे हैं उससे ज्यादा अपने लिए परेशानी की बात नहीं रही, समझ लेना वो आदमी केवल एक ब्रिदिंग लाइफ जी रहा है उसके अंदर लीविंग लाइफ जैसे साइन कुछ भी नहीं है। अब अगर उस ढंग से जियें जिस ढंग से जीने के लिए कहा गया है तो हमारे अंदर कुछ लीविंग लाइफ जैसे चिह्न उत्पन्न होंगे और वह जीवन जीने के लिए हमें अगर डर भी लगे तो डर को भी स्वीकार कर लेना। आचार्य कहते हैं जिस चीज से हम डर रहे हैं उसी में अभयता है। जिस चीज में हमारी मान्यता है कि उसमें दु:ख है, समझना उसी में सुख मिलेगा और जिस में सुख की कल्पना किए बैठे हो, उसमें तुम्हें दु:ख मिलेगा। ये बहुत उल्टी बात है।

इस ग्रंथ की टीका करते हुए उन सब जगहों को, उन सब स्थानों को लिखा है जहाँ पर आदमी सुख की कल्पना के साथ में विश्वस्त हो जाता है उसकी मानसिकता से ऐसा विश्वास बनता चला जाता है। वह सोचता है कि इस शरीर में हमेशा निरोगता बनी रहे लेकिन उसको अपने ही शरीर में रोगों का भय रहता है। शरीर रहेगा तो रोगों का भय रहेगा और रोगों का उत्पन्न होना होगा तो उसके अंदर और एक भय उत्पन्न होगा कि रोगों के कारण हमारे लिए ये भोग विलासिता सब छूट जाएगी।

अगर हमें भोग मिल जाते हैं तो उनके विनाश होने का भी भय रहता है। जिस आदमी का जन्म हो गया है तो उसके बाद उसका जीवन कितना चले। क्या पता जीवन चलता रहे या नहीं चले इसका भी भय बना रहता है। यौवन आता है तो यौवन में काम का भय सताने लग जाता है। विवाह हो जाता है तो उस स्त्री का भय हो जाता है, इसका स्वभाव सज्जन है कि दुर्जन है, शीलवान् है या कुलटा है, स्नेहिल है कि दुष्ट है ये भी भय बने रहते हैं। स्त्री अगर है तो उसके लिए भी संतुष्टि बनी रहे, इस बात का भी आदमी के अंदर डर बना रहता है। अगर किसी के घर में कोई प्रसूति होती है तो ये भय रहता है कि कहीं बेटी ना हो जाए।

ये भय बना हुआ है कि कितने ही पढ़- लिख जाओ, कितना ही शिक्षित समाज हो जाए पर ये भय बना रहता है कि प्रसूति के समय पर बेटी न हो जाए और कहीं दुष्चरित्र न बन जाए। यदि पुत्र हो जाता है तो ये भय बना रहता है कि ये हमारे लिए कभी कोई अनादर न कर दे। कुछ भय ऐसे रहते हैं जिन्हें तुम टालते रहते हो, मना करते हो पर भीतर वे कहीं न कहीं बने रहते हैं। अगर भाई है तो ये भय बना रहता है कि हमारी जो संपत्ति है उसके विभाजन का टकराव खड़ा हुआ है। जिस देश में रहते हो, उस देश में राजा का भय रहता है। सेल्स टैक्स ऑफिसरों का भय

रहता है। अगर कोई आदमी राजा बन जाए जैसे सीएम/पीएम है तो उन्हें अपने विपक्ष की पार्टी का भय रहता है, अपने शत्रु का भय रहता है। कोई भी पार्टी ऐसी बनकर के नहीं आती है जिसे पक्ष व विपक्ष ने मिलकर के बिठाया हो। कोई ऐसा राजा नहीं बनता जो उसके हित में सबके साथ मिलकर काम करके चलता हो। सबके सामने एक ना एक विपक्ष तो खड़ा ही रहता है। घर में नौकर को मालिक का भय रहता है और मालिक को नौकर का भय रहता है। आजकल बहुत सी घटनाएँ नौकरों के कारण से घट जाती हैं। सुख मिलेगा तो भी भय रहेगा कि उस सुख में कहीं कष्ट न हो जाए। घर है तो चोरों का भय रहता है, कहीं कोई लूट न हो जाए। कीर्ति होगी तो उसका भी भय रहता है कि कहीं अपर्कीति न हो जाए। अनेक प्रकार के भय रहा करते हैं जब तक आदमी बाहरी दुनिया में रहता है तब तक उससे भय छूटते नहीं हैं। उन भयों में ऐसे भी भय होते हैं जिनको हम जीत सकते हैं। हम अपने ज्ञान के माध्यम से उन भयों पर काबू पा सकते हैं। आदमी ज्यादातर उन चीजों से डरता है जिन चीजों से उसका हित होने वाला है। अंत में हम आपसे कहेंगे कि आदमी को धर्म करने में सबसे ज्यादा डर लगता है।

धर्म करने में डर लगेगा, पाप करने में डर नहीं लगेगा। आज आदमी के अंदर ये वृत्ति बन गई है। अगर उससे कहा जाए भैया धर्म करने के लिए मंदिर आया करो तो मंदिर आने में उसे डर लगेगा कि लोग हमसे क्या कहेंगे, हमें कुछ कमेंट्स तो नहीं मिलेंगे। लोग कहेंगे कि भैया १२ बजे मंदिर आ रहे हैं। मंदिर आने का नाम धर्म है तो उससे और आगे बढ़ने का नाम भी धर्म है। मंदिर आओ तो पूजन करना, अभिषेक करना, इसमें आपको डर लगता है। धर्म का काम करने से आपका मन पीछे पहले हटता है, आगे तो बाद में आता है। इसके लिए भी किसी का सपोर्ट मिलता है तब थोड़ा सा वो आगे आता है।

अगर ऐसा नहीं होता तो यहाँ पर जितने भी लोग बैठे होते हैं वे सब आज विधान के कपड़े पहन कर पुजारी के रूप में बैठे होते क्योंकि तुम्हें पूजा करने से, भगवान् की आराधना करने से, मुनि महाराजाओं के लिए भी आराधना करने में डर लगता है, ये धर्म का डर भीतर बैठा हुआ है। आपके अंदर का ये डर निकलना चाहिए। जिस चीज से हमें डर लगे हमें वह काम करना चाहिए। अगर वह काम अच्छा है तो निरंतर करें, सफलता मिलती जाएगी। पाप कार्य के लिए नहीं कह रहा हूँ। चाहे आप स्टूडेंट लाइफ में हो, चाहे आप बिजनेस लाइफ में हों आपको रिस्क तो कहीं न कहीं लेनी पड़ेगी। यदि आप ये सोच लोगे कि दूसरे क्या कहेंगे तो आप न कभी अच्छे

मार्ग पर आगे बढ़ पाओगे न कभी आत्मा के मार्ग पर आगे बढ़ पाओगे। हर मार्ग पर आगे बढ़ने के लिए, अपने अंदर के भयों को पहले दूर करना पड़ता है। हमने जहाँ पर ये मानसिकता बना ली है कि हमारा विश्वास तो इन्हीं चीजों में है। धर्म में आपका विश्वास अगर नहीं है तो आपको कभी भी धर्म करते हुए सुख मिल नहीं सकता है। विश्वास करोगे तो निडर रहोगे, निडरता रहेगी तो आपके पास में धर्म के फल भी दिखाई देंगे। धर्म के प्रति विश्वास की कमी रहती है इसलिए भय सताता रहता है, हमारे अंदर निडरता आती नहीं है। आज की पूजन मुनि महाराजों की आराधना से जुड़ी हुई है। कभी ऐसा भाव करो कि यदि तुम्हें इकट्ठे ७०० मुनि महाराज मिल गए तो उन्हें बैठकर के अर्घ्य चढ़ाकर नमोस्तु कर पाओगे। महाराज, सुबह से शाम हो जाएगी, घुटने ही छिल जाएँगे, कमर दर्द करने लग जाएगी। ये हमें डर लगता है। कम से कम ऐसी मानसिकता तो बना ही लेना चाहिए कि यदि ७०० मुनि महाराज मिल जाएँगे तो हम ऐसा जरूर करेंगे क्योंकि ये मिलना भी बहुत दुर्लभ है। घुटने तो कई बार हमारे ठीक होते रहेंगे, उससे कोई फर्क नहीं पड़ने वाला लेकिन पहले हमें मिलें तो। ये भी तो एक भावना हो सकती है। सबसे बड़ी चीज है, मन के अंदर की वो इच्छा। जिस इच्छा में हमारे सामने कुछ भी हो, हम उसको करने के लिए तैयार रहें। आपको पता नहीं होगा, इसी दुनिया में ऐसे-ऐसे लोग हो गए हैं जो एक साथ ५००-५००, १०००-१००० मुनि महाराजों को आहार दिए हैं एवं उनकी सेवा की है।

आपको तो उन लोगों के नाम भी नहीं मालूम होंगे। दक्षिण भारत में एक महिला का नाम आता है **'अतिमब्बे'।** एक किताब निकली है दान चिंतामणि नाम से। वह किताब पढ़ना कि उस महिला के अंदर कितनी भावना रहती थी, वह कितना दान करती थी, वह दान करने के साथ-साथ देव-शास्त्र-गुरु के लिए क्या-क्या समर्पित करती है। ये किताब जरूर पढ़ना ताकि आपको ये ज्ञान आए कि कैसे धर्म किया जाता है। अभी तो आप सोते-सोते उठकर के चले आते हो, प्रवचन सुन लेते हो और सुनकर के चले जाते हो। उस महिला के अंदर ऐसी भावनाएँ उत्पन्न होती हैं और उन भावनाओं के कारण ऐसे स्वप्न आते हैं, उन स्वप्नों को पूरा करने के लिए वह श्रवणबेलगोला में, इसी पंचमकाल में, आज से ५०० वर्ष पहले की बात बता रहा हूँ। वह महिला स्वप्न देखती है कि मैंने १०० व ५०० मुनि महाराजों को आहार दिया है। वह विकल्प करती है कि मुझे ५०० मुनि महाराजों को आहार देना है तो वह उसी श्रवणबेलगोला में एक कार्यक्रम करती है। उसमें सब आचार्यों के संघ को उसने बुलाया और फिर एक साथ ५०० मुनि महाराज को

आहार दिए और अनेक प्रकार से उनकी सेवा करती है। इस तरह उसने अपने मन की इच्छा को पूर्ण किया। आप तो ऐसे डर जाओगे कि अभी दो बैठे हैं चार हो गए तो क्या होगा।

आप जिनकी आराधना करने बैठे हो वो अकंपनाचार्य मुनि महाराज ७०० शिष्यों के साथ विहार करते हैं। उनके साथ विहार करते-करते वो मालवा में आए थे। उज्जयनी के एक उद्यान में वे वहाँ आकर रुक गए। राजा सुबह उठकर देखता है कि ये सब जनता कहाँ जा रही है। वह मंत्री से पूछता है। मंत्री कहता है कि हे राजन् एक अकंपन नामक आचार्य आए हुए हैं ७०० मुनि महाराज के साथ, जनता उनके दर्शन के लिए जा रही है। वह सोचता है, मुझे भी दर्शन के लिए जाना चाहिए। वह अपने मंत्रियों से कहता है चलो तुम लोग भी चलो। ७०० मुनि महाराज के दर्शन एक साथ कहाँ मिलेंगे लेकिन उसके चार मंत्री थे और चारों ही बड़े दुष्ट स्वभाव के थे, कुटिल थे, धर्म विरुद्ध चलते थे। धर्म से घृणा करते थे। मंत्रियों के अंदर ये भाव आ गया, यदि ये राजा उन महाराजों के पास जाएगा तो उनका भक्त बन जाएगा। अपने को इस राजा को उनका भक्त नहीं बनने देना है और इस राजा के अंदर भी धर्म के प्रति घृणा उत्पन्न कराना है। इधर आचार्य अकंपनाचार्य जी को अपने ही निमित्त ज्ञान से पता चला है कि कुछ न कुछ उपद्रव हो सकता है। उन्होंने अपने संघ में कह दिया कोई भी मुनि महाराज राज्य के मंत्री/राजा किसी से बात नहीं करें, न कोई चर्चा करे एवं सब मौन रहें। राजा दर्शन करने के लिए आया। सबने देखा कि सारे मुनि महाराज आत्मध्यान कर रहे हैं, मौन पूर्वक बैठे हैं। किसी से कुछ कह नहीं रहे और न किसी को आशीर्वाद दे रहे हैं। राजा को प्रसन्नता हुई लेकिन मंत्रियों के अंदर भीतर से व्यंग्य करने की भावना हुई। मंत्री कहते हैं राजन् ये सब मौन लिए बैठे हैं, कुछ बोलना नहीं आता उनको, इन्हें कुछ ज्ञान नहीं है, सब मूर्ख हैं। पर राजा उनकी बात को सुनकर कहता है ये साधक हैं और अपनी साधना कर रहे हैं। मंत्रियों को लगा कि राजा ने हमारी बात को तवज्जो नहीं दी। उसी समय पर संयोग की बात एक मुनि महाराज चर्या करके लौट रहे थे, उन्हें आचार्य गुरु की आज्ञा का पता नहीं था, वे रास्ते में इन राजा व मंत्री को मिल गए। मुनि महाराज को देखकर मंत्री बोले कि राजन् वहाँ तो कोई मुनि बोले नहीं, इनसे पूछते हैं कि आत्मा क्या है और आत्मा की साधना क्या होती है। ये चारों मंत्री मुनिश्री से अपनी-अपनी धारणा के अनुसार वे विवाद करते हैं लेकिन वे मुनि महाराज बहुत ज्ञानी थे, उनका नाम था श्रुतसागर मुनि महाराज। उन्होंने मंत्रियों को वाद-विवाद में परास्त कर दिया। अनेकांत धर्म के माध्यम से उनकी एकांत धारणाओं को खंडित कर दिया। मंत्रियों के

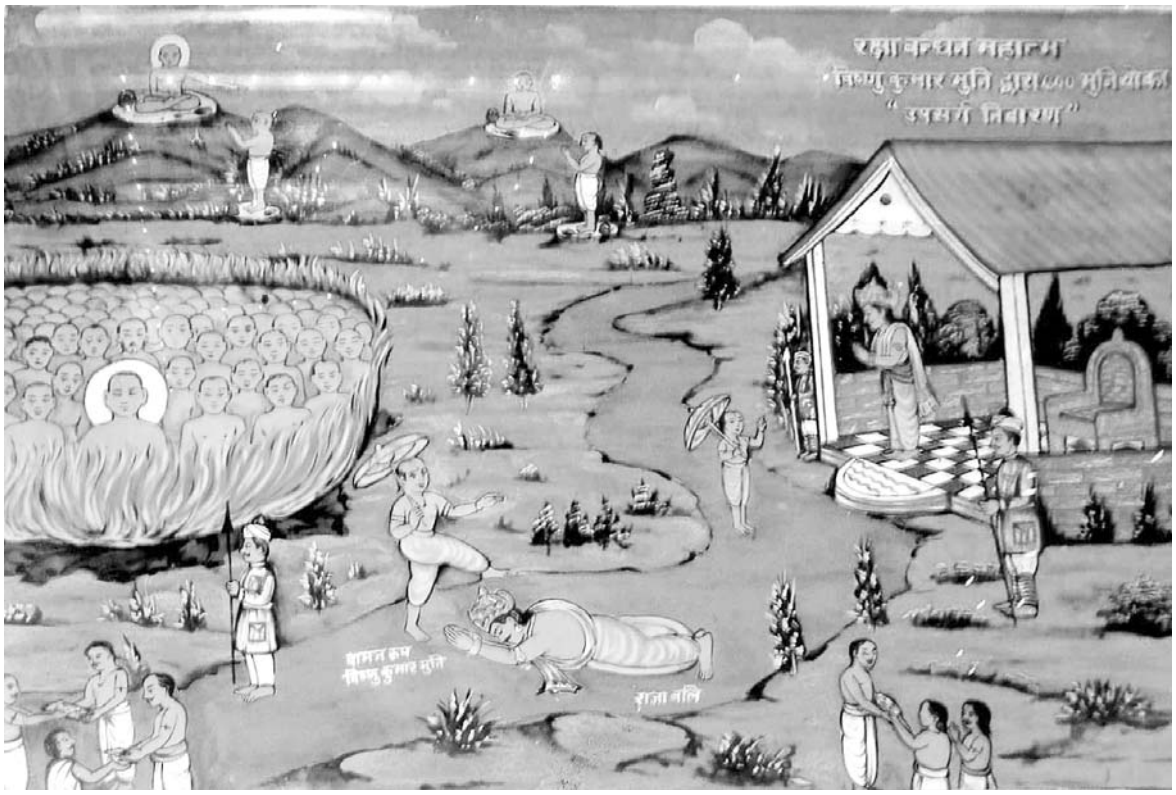
मन में घृणा उत्पन्न हो गई, राजा के साथ में थे, कुछ ज्यादा कर नहीं सकते थे। मन मार के वे महल की ओर चले गए। इधर श्रुतसागर मुनिराज जब वापस संघ में पहुँचते हैं आचार्य महाराज पूछते हैं कि रास्ते में कोई मिला तो नहीं, किसी से कोई चर्चा तो नहीं की। मुनिराज ने बताया कि राजा व चार मंत्री मिले थे, उनसे वाद-विवाद हुआ, परास्त किया इतना सा मुँह लटकाकर चले गए। अरे... तुमने बहुत अनर्थ कर दिया। तुमने जो किया है वो पूरे संघ के ऊपर आपत्ति का कारण बन सकता है इसलिए तुम्हें इस कार्य का प्रायश्चित्त करने आज उसी स्थान पर रहना है जिस स्थान पर तुमने वाद-विवाद किया। वहीं पर आज की रात्रि व्यतीत करना। मुनिराज उसी स्थान पर चले जाते हैं वहीं ध्यान में लीन होकर खड़े हो जाते हैं।

उधर चारों मंत्री अपमानित हो गए, उनमें इतना द्वेष उत्पन्न हो गया कि चारों ने सलाह की कि मुनिराजों को रात में उपसर्ग करके मार देना है। ऐसा भाव करके चारों मंत्री रात में मुनि संघ के पास जा रहे हैं। रास्ते में वे मुनि महाराज उन्हें मिल जाते हैं। वे खड़े हो कायोत्सर्ग कर रहे हैं। उन्हें देख चारों के मन में विचार आता है जिसने अपने को हराया था वो तो यहीं खड़ा है। संघ के पास तो बाद में चलेंगे, पहले इसी से निपटते हैं। वे चारों मंत्री एक साथ तलवार निकालकर के उन मुनिराज पर वार करने हेतु तैयार होते हैं। मुनिराज ध्यान में हैं, किसी भी प्रकार के भय से रहित हैं। जब हम अपने आपसे अपने को हटा लेते हैं तो भय नहीं रहता और अपने से बाहर की कोई भी वस्तु में जब हम अपनेपन की कल्पना करते हैं तो हमें भय उत्पन्न होता है। मुनिराज के लिए शरीर भी परवस्तु होती है। शरीर भी बाहर की वस्तु है और वे शरीर को छोड़ करके खड़े हो जाते हैं। **कायोत्सर्ग** का मतलब होता है काय माने शरीर का भी उत्सर्ग कर देना, माने छोड़ देना। वे उस समय पर केवल अपनी आत्मा और आत्मा के गुणों को अपने चिंतन में, ध्यान में लाते हैं। बाकी का सब कुछ पर है, जो पर है वह सब बाहर है। जो अपना है वो भीतर है। जहाँ पर के ऊपर दृष्टि जाएगी, वहाँ तक पर को पर से बाधा उत्पन्न होगी। आत्मा को भी बाधा अगर उत्पन्न होती है तो शरीर के कारण से होती है। इस शरीर को जो पर मानकर के अपनी आत्मा की आराधना करता है, उसे दुनिया में फिर किसी से भय लगता नहीं। कोई भी तलवार, अस्त्र-शस्त्र उसकी गति शरीर तक ही होगी, आत्मा पर उसकी गति नहीं हो सकती। आत्मा को कोई भी चीज छूने वाली नहीं है। आत्मा को छूने वाला तो केवल **आत्मग्राहक उपयोग** और आत्मा का ही परिणाम होता है और उस आत्मा में जो स्थित है उसके लिए दुनिया में किसी से भी भय नहीं

रहता। जो निर्भीक होता है वही वस्तुत: धर्म का, धर्म के फल को सामने देख पाता है। धर्म करने में डरना नहीं। धर्म करने में मन में किसी प्रकार का भय नहीं होता तब वह धर्म हमारे काम में आता है। हमें निर्भीकता का अगर कोई पाठ पढ़ना है तो ऐसे मुनिराजों से सीखना चाहिए।

श्रुतसागर मुनि महाराज खड़े हैं। चारों मंत्री रात के अंधेरे में तलवार निकालते हैं और जैसे ही वे वार करने हाथ उठाते हैं, उनके हाथ वहीं पर खड़े के खड़े रह जाते हैं जैसे किसी ने उनको कीलित कर दिया हो, वह तलवार महाराज की गर्दन तक पहुँच नहीं पाती। चारों के हाथ बंध गए, वे एक-दूसरे को देख रहे हैं पर कर कुछ नहीं पा रहे। अब चारों मुनिराज से प्रार्थना करने लगे पर मुनिराज तो ध्यान में हैं और वो ध्यान जब खुलेगा तब खुलेगा। वे वहाँ कीलित इसलिए हुए क्योंकि धर्म की रक्षा करने वाले देव-देवियाँ भी हर जगह रहते हैं और जो अपनी आत्मा की आराधना करते हैं उनकी देव-देवियाँ भी चिंता करते हैं, रक्षा करते हैं। मनुष्य कर सके तो ठीक नहीं तो कोई फर्क नहीं पड़ता। मुनि महाराज कभी देव-देवियों की उपासना नहीं करते क्योंकि उनके लिए जैसे तुम मनुष्य गति के जीव हो वैसे वो देव गति के जीव हैं। देवता लोग मुनि महाराज की आराधना करते हैं। यदि सम्यक्दृष्टि देव होगा तो जरूर धर्म की रक्षा करेगा, धार्मिक की रक्षा करेगा और यदि नहीं भी कर पाए तो वो कभी नहीं सोचता कि मेरी रक्षा के लिए देव आ जाएँ। आये तो ठीक, नहीं आये तो ठीक। जैसे तुमको बहुत से काम हैं वैसे उनको बहुत से काम हैं। ये एक संयोग की बात है। इसका मतलब ये मत समझना कि जिनको भी कष्ट आए तो नियम से देव रक्षा करने वाले हैं। ऐसा होगा तो फिर कोई कष्टो को जीत ही नहीं पाएगा, कष्टों के माध्यम से ध्यान होगा ही नहीं। संयोग की बात कि उस वन में कोई देव/देवी होगी जो सम्यक्दृष्टि होगी, उसे पता पड़ गया कि ये एक उपसर्ग के रूप में हो रहा है, उसी समय उसके अंदर ये भाव आ गया तो उसने चारों मंत्रियों को कीलित कर दिया। धर्म की रक्षा धर्मात्माओं के माध्यम से होती है। वे देव या मनुष्य हो सकते हैं लेकिन आजकल मनुष्य व देव दोनों ही बहुत आलसी हो गए हैं। वैमानिक देव तो अब आते ही नहीं हैं और जो अच्छी क्वालिटी के देव होते हैं वे कभी भी आपसे मतलब नहीं रखते। जो घूमते-फिरते रहते हैं वो सब भूत-प्रेत-व्यंतर होते हैं। उनका मुनि महाराजों से कोई लेना-देना ही नहीं होता। उनके मन में आ जाए तो मुनिराजों की रक्षा कर लें और नहीं भी कर सकते हैं। लेकिन आप लोगों को थोड़ा सा जाग्रत रहने की जरूरत है। आपके मन में ये भाव होना चाहिए कि हम कुछ नहीं कर सकते तो कम से कम उन मुनि महाराजों की पूजा ही कर

लें। आप तो सोते-सोते सब खोते जा रहे हो। सच्चा जो श्रावक/जैन होता है वो हर प्रसंग को गहराई से सोचता है और आत्मिक भावना से, आत्मिक श्रद्धा से तत्पर होता है और उसके मन में कम से कम इतनी भावना तो होनी चाहिए कि यहाँ पर मुनि महाराजों के लिए जो अर्घ्य चढ़ रहे हैं, घर से नारियल लेकर आएँगे, यहाँ कोई गरीब नहीं है, कंजूस हो सकते हैं। आपके अंदर ये भावना उत्पन्न हो कि इन पंच परमेष्ठी के माध्यम से हमारे जीवन की रक्षा होने वाली है। बहन और भाई के ये केवल रिश्ता नहीं है, ये धर्म का रिश्ता है जिसमें धार्मिक के माध्यम से धार्मिक की रक्षा करना और धर्मात्मा की शरण में जाकर के उससे ये भाव करना कि हे भगवान्/हे मुनि महाराज/ हे आचार्य परमेष्ठी, हे साधु परमेष्ठी मेरा जब तक जीवन है, मैं धर्म के मार्ग पर चलूँ, मेरे ये हाथ हमेशा इसीलिए देना कि मैं आपके चरणों में हमेशा श्रीफल समर्पित करता रहूँ। आप ऐसी उत्कृष्ट भावना रखेंगे तो आपको धर्म का लाभ होगा।



श्लोक–३०

सर्वेन्द्रियाणि संयम्य स्तिमितेनान्तरात्मना।
यत्क्षणं पश्यतो भाति तत्तत्त्वं परमात्मनः।।३०।।

निश्चिंत हो निडर, निश्चल अंतरात्मा, व्यापार रोक करणावलिका महात्मा।
जो भी जभी निरखता अरु जानता है, शुद्धात्म तत्त्व उसको वह भासता है।।३०।।

इंद्रिय संयम से आत्मोपलब्धि

जो भी जीवात्मा संसार में अपनी इंद्रियों के साथ रह रहे हैं उन्हें अपने शरीर, अपनी इंद्रियों को थोड़ा सा संयमित करना चाहिए। इंद्रियों के संयम के साथ में ही अंतरात्मा के माध्यम से चित्त में स्थिरता आती है। आचार्य देव सबसे पहले कहते हैं इंद्रियों का संयम ही हमें इंद्र आत्मा से मिलाता है। **इंद्र आत्मा** को कहा जाता है और उस आत्मा के लिए जो पहचान में आने वाली चीजें हैं उन्हें इंद्रियाँ कहा जाता है। आत्मा की पहचान इंद्रियों के माध्यम से होती है। इन इंद्रियों को हमने अपने अगर वश में नहीं किया तो आचार्य कहते हैं हम उस इंद्र स्वरूप आत्मा के पास तक पहुँच नहीं सकते। अगर हमें अंतरात्मा में स्थिरता प्राप्त करनी है और उस परमात्म तत्त्व को प्राप्त करना है तो सबसे पहले अपनी इंद्रियों को संयमित करके हम अपनी ही अंतरात्मा में ये देखने का प्रयास करें कि वह अंतरात्मा कैसी है और उसे देखते-देखते जिस समय पर हमें वह आत्मा का दिग्दर्शन हो जाए, समझ लेना वही आत्मा हमें क्षणभर में प्रकट होता हुआ दिखाई दे गया। देखने-देखने में बहुत समय लग सकता है लेकिन आत्मा को क्षण भर से ज्यादा नहीं देखा जा सकता और जो क्षण भर में दर्शन हो जाता है वही आत्मा का दर्शन कहलाता है। उससे पहले जो कुछ भी होता है वह उस आत्मा की भावना होती है। इंद्रियों के माध्यम से हम हमेशा बाहरी पदार्थों को देखते हैं और उन्हें ही पकड़ने का प्रयास करते हैं। अगर इंद्रियाँ संयमित है तो उनके माध्यम

से हम अपने अंतस्तत्त्व को भी देख सकते हैं। एक बाहर का संसार है और एक भीतर का संसार है, दोनों संसार बहुत बड़े हैं। बाहर का संसार अथाह है और उस संसार में रहने के लिए भी अपना मन काम करता है और उस संसार से छूटकर के भीतरी संसार में आने के लिए भी अपने मन का आलंबन लेना होता है। बाहर का संसार हर आत्मा का अनादिकाल से बना हुआ है। उससे परिचय भी खूब हो चुका है लेकिन भीतर का संसार अपनी पकड़ में अभी अधूरा है। भीतर आत्मा का संसार इतना बड़ा है कि अपनी आत्मा में सारा संसार दिखने लग जाता है। आपने सारभूत पदार्थ उनको मान लिया है जो थोड़े-थोड़े समय के लिए आपको सुख देने वाले हैं और जिन पदार्थों में हमेशा रहने के बाद में उतना आनंद आने वाला नहीं है। **आत्मा सारभूत है** पर उस सारभूत को आपने छोड़ दिया है। अगर आप से कहा जाए दूध और पानी इनमें क्या सारभूत है? दोनों मिले हुए हैं। दोनों एक ही जगह पर हैं और यदि आपसे कहा जाए कि दोनों को ग्रहण करना है तो आप दोनों को एक साथ ग्रहण कर लेंगे पर आप चाहोगे तो भी दूध में से पानी निकालकर ग्रहण नहीं कर पाओगे।

दूध- पानी के मिश्रण को आपने हमेशा से ग्रहण किया है पर दूध से पानी निकालने का काम वो ही कर सकता है जिसकी चोंच में ऐसी दम हो। चोंच तो आपके पास भी है लेकिन उससे पानी व दूध अलग नहीं हो सकते। हंसों की चोंच में ऐसी विशेषता होती है। उस हंस की तरह बनने के लिए आपको प्रेरित किया जा रहा है। अभी तक तो आप बिल्ली बने हुए हैं। बिल्ली पूरा दूध पी जाती है। उसकी दूध में इतनी आसक्ति रहती है कि उस समय वो डंडे की मार सह लेगी पर दूध को नहीं छोड़ेगी। आप लोग भी संसार के पदार्थ को इसी आसक्ति के साथ ग्रहण करते हो, उन्हें छोड़ना नहीं चाहते। आपके ऊपर भी मार पड़ती है। आप किसी चीज को जिस इंद्रिय के माध्यम से आसक्तिपूर्वक ग्रहण करते हो, उसी इंद्रिय में आपको परेशानी होगी, रोग का कारण बन जाएगा। यदि रोग होने के बाद भी आप उस चीज से स्वयं को नहीं बचा पा रहे हो तो आप बिल्ली की तरह आसक्ति रखते हो। आदमी कई बार कई चीजों से मजबूर होता है। किसी को कुछ खाने का शौक है तो किसी को पीने का। शौक यदि रहे तो कोई बात नहीं लेकिन शौक में हमारे जीवन को शॉक लग जाए तो बहुत गड़बड़ बात है। शौक करते-करते यदि डॉक्टर ये कहने लग जाए कि कुछ भी खाना/पीना आपके लिए रोग का कारण है। यदि महाराज से कहा जाएगा तो महाराज तो उसी समय पर छोड़ देंगे लेकिन यदि आप राजाओं से कहा जाएगा तो आप उसको

छोड़ नहीं पाओगे। डॉक्टर या वैद्य के कहने पर भी उस पदार्थ को छोड़ने का मन नहीं बना पाते हो यदि इतनी आसक्ति आपके अंदर आ जाती है तो समझ लेना कि आप इंद्रियों के गुलाम/दास हो गए हो। इंद्र हमारी आत्मा है, इंद्रियाँ हमारी दासी थी परंतु आज स्थिति उल्टी हो चुकी है। आत्मा दास बन चुकी है और इंद्रियाँ स्वामी बन चुकी हैं। हम इंद्रियों के माध्यम से आत्मा को थोड़ा सा सुख देने की कल्पना करते हैं लेकिन आत्मा की तृप्ति कभी इंद्रियों से होने वाली नहीं। इंद्रियों द्वारा किया भोग-उपभोग हमें क्षणभर को सुख देता है और फिर वह विलीन हो जाता है लेकिन अगर एक बार आत्मा का सुख उत्पन्न हो जाए तो वो शाश्वत होता है, कभी छूटेगा नहीं। ये एक अंतर है इंद्रिय सुख में और आत्मिक सुख में। इंद्रिय सुख के लिए हमें बहुत लंबा प्रयास करना पड़ता है तब क्षणभर को सुख प्राप्त होता है और आत्मिक सुख के लिए भी लंबी साधना के बाद क्षणभर का सुख मिलता है। बाहर के सुख की हकीकत आप जानते हो। आचार्यों ने कहा है जैसे कोई व्यक्ति बहुत प्यासा हो। वह प्यासा व्यक्ति अपनी प्यास बुझाने के लिए एक गड्ढा खोदता है कि इससे हमारी प्यास बुझेगी। आज की दुनिया में खुदे हुए गड्ढे किसी की प्यास बुझाने के काम में नहीं आते। सबको अपना-अपना गड्ढा खुद खोदना पड़ता है।

जितने घर में लोग हैं उतने ही घर में गड्ढे/कुएँ होने चाहिए। (कुए- कमाई का स्त्रोत) गड्ढे खोदने पर उसे लगता है कि हाँ अब थोड़ा सा जल दिखाई दे रहा है। वह उस जल को ग्रहण करता है। सोचा था कोई पानी का स्त्रोत फूटेगा, बड़ा लाभ मिलेगा। पर पानी इतना ही मिला कि एक कटोरे में समा गया। जिंदगी भर हम धन और धन की तृष्णा के लिए परिश्रम करते हैं अंत में महसूस होता है कि हमने अपनी जिंदगी का बहुत सा समय यूँ ही खो दिया। बहुत परिश्रम के बाद मिला जल जब उसने पिया तो वो खारा था। उसको पीने के बाद उसकी तृष्णा और बढ़ गई, प्यास बढ़ गई, बुझी नहीं। वह दूसरा गड्ढा खोदता है अपनी प्यास बुझाने, जब तक उसके शरीर में उसकी साँसें चलती हैं। इंद्रियों के सुख की इतनी सी तृप्ति होती है। आप सब इंद्रियों के राजा हो, बहुत से सुख भोगने के बाद भी आपको ऐसा लगा हो कि आज मन में खूब सुख ही सुख हो रहा होगा। अपने 'पास्ट' को देखकर सोचो। यदि भूतकाल में देखकर आपको डर लगता हो तो आप थोड़ा रुको, सावधान हो, अपनी अंतरात्मा में विचार करो, क्या हमने जो अब तक किया है उसने हमारे दिमाग को केवल परेशानियाँ दी हैं, चैन को केवल लूटा है जो परम शांति व परम सुख हमें मिलना चाहिए था वो तो हमें मिला नहीं। आज भी हम सोचें तो आगे के लिए नई

शुरुआत हो सकती है। भविष्य के प्लान के लिए जरूरी है कि वर्तमान में उसमें जी जान से काम करें। वर्तमान में प्लान बनाते समय यदि हमारे मन में ये भाव आए कि इन इंद्रियों के सुख के लिए अब हमें ज्यादा परेशान नहीं होना, हमें आत्मिक सुख की तलाश करना है। इस नए प्लान के माध्यम से आपको कुछ राहत मिल सकती है। आपने अब तक लगभग ३० श्लोक सुन लिए। आप ये मत समझना कि साधु केवल सुना रहा है। वह दूसरों को निमित्त बनाकर के खुद अपनी अंतरात्मा को सिखाता है, वह जो बोलता है वह करता भी है। वह किसी को अपनी अंतरात्मा दिखाना चाहता है तो खुद सोचता है कि क्या हमने अपनी अंतरात्मा को देख लिया है।

जब हम स्वयं देखते हैं तभी आपको अंतरात्मा देखने के लिए प्रेरित कर पाते हैं। आप भी लंबे समय से एक साधना में लगे हुए हो, जो आपकी आत्मा की विराधना करने वाली है। साधक भी एक साधना में लगा रहता है जिसकी साधना उसे एक आत्मिक सुख देने वाली होती है क्योंकि उसमें भी उतना ही श्रम व परिश्रम होता है जितना आप करते हो। आप इंद्रियों के सुख के लिए बहिर्मुखी वृत्ति रखकर करते हो, इसलिए आप श्रमिक कहलाते हो। श्रम करने वाला श्रमिक और परिश्रम करने वाले को पारिश्रमिक दिया जाता है। वह उतने में ही प्रसन्न है जितना उसने सोच लिया है लेकिन उस श्रम का संबंध श्रमण शब्द से भी बनता है जिसका अर्थ है मुनि महाराज एवं निरंतर अंतरात्मा में श्रम करने वाला। इस श्रमण के नाम पर संस्कृति चलती है जिसे कहा जाता है श्रमण संस्कृति। ये आचार्य, उपाध्याय, साधुओं के माध्यम से प्रवाहित होने वाली संस्कृति **श्रमण संस्कृति** के रूप में जानी जाती है। आप श्रमिक हो और हम श्रमण है। आपको पारिश्रमिक मिलता है। हमें कुछ भी नहीं मिलता क्योंकि हमने सब कुछ समर्पण के साथ में छोड़ा है और हमने कह रखा है कि प्रभु मिले तो केवल मोक्ष का शाश्वत सुख मिले, हमें और कुछ नहीं चाहिए। उससे पहले जो कुछ भी मिलेगा वो अपना नहीं होगा। स्वर्ग के सुख भी मिलेंगे तो वो भी अपने नहीं होंगे। उनकी कोई बॉडिग नहीं की गई, स्वर्ग जाना पड़ेगा, सुख भोगने पड़ेंगे लेकिन श्रमण को केवल आत्मा का सुख चाहिए, शाश्वत सुख चाहिए। उस शाश्वत सुख की तलाश कई जन्मों की साधना के बाद में उसी तरह से होती है कि भीतर की तरफ अपने गड्ढे जो खुदे हुए हैं उनको पूरता चला जाता है। दोनों तरफ प्रक्रिया चल रही है, हमारा व आपका जीवन चल रहा है। आप तृष्णा के नए-नए गड्ढे खोदते हो, एक प्रोजेक्ट पूरा हो गया, दूसरा प्रोजेक्ट डाल दिया और श्रमण को यदि अपने अंदर तृष्णा दिखाई देती है तो वह उस गड्ढे को पूरता है। वह तृष्णा की पूर्ति वह

ज्ञानामृत भोजन देकर के पूर्ति करता है। ज्ञान से उस तृष्णा को सदा के लिए समाप्त करता है। श्रमण की भीतर की प्रक्रिया चल रही है। जब बाहर और भीतर दोनों का लंबा अंतर घट जाता है बस उसी का नाम है संसार और मोक्ष का अंतर। यदि आप तृष्णा के गड्ढे बढ़ाते जाओगे तो ये संसार ऐसे ही चलेगा। यदि उन्हें भरते जाओगे तो गड्ढे समाप्त हो जाएँगे व एक दिन आपका निवास लोक के अग्र भाग में सिद्ध शिला पर होगा, जहाँ पर सिद्ध आत्माओं को कोई आकुलता नहीं होती, कोई तृष्णा नहीं होती।

ऐसे पुरुषार्थ करने का नाम है श्रमण बनकर के पुरुषार्थ करना और यह पुरुषार्थ आपसे तब तक नहीं हो सकेगा, जब तक आप अपनी इंद्रियों को जीतने का प्रयास न करें। आप हंसा नहीं बन सकते हो तो बिल्ली भी मत बनो। बिल्ली मार खाती है, पिटती भी जाती है परंतु दूध पीना नहीं छोड़ती। आपके शरीर में रोग होते जाते हैं, अनेक प्रकार की परेशानियाँ होती जाती हैं लेकिन आपको जो खाने का चस्का लग गया है वो आप छोड़ नहीं पाते हो। बस यही बिल्ली की आदत है। आप इतना प्रयास करना कि बिल्ली जैसी आसक्ति न हो। हंसा बनने का प्रयास करो तो आपके अंदर अंतरात्मा के माध्यम से भाव उत्पन्न होगा कि आखिर हमें करना क्या है और हम किसके लिए क्या कर रहे हैं। हर आदमी दूसरे के लिए सब कुछ कर रहा है। अपने लिए कोई कुछ नहीं कर रहा है। जो दूसरे के लिए कर रहा है वह इतना पराश्रित हो जाता है कि वह दूसरे के माध्यम से संचालित होता है। उसके सुख-दु:ख का निर्धारण दूसरों से ही होता है, अपने से नहीं होता है। जब आदमी अपने सुख-दु:ख का निर्धारण स्वयं करे तो वो स्वयं में स्वयं का मालिक होता है लेकिन आपकी मिल्कीयत दूसरों के हाथ में है। अगर आपसे कोई कहे कि आप सुंदर हैं तो आप कहोगे कि हाँ हम सुंदर हैं। यदि वो कहे कि आप गंदे हो तो आप मान लोगे कि हाँ मैं गंदा हूँ वास्तव में। आपसे कहे कि आप इंटेलिजेंट हो तो आप समझ लोगे कि आप इंटेलीजेंट हो। आपको मूर्ख कहेंगे तो आप उसे मान लोगे। आप जो कुछ भी हो वो दूसरों के माध्यम से नहीं जी पाओगे। जो व्यक्ति अपनी लाइफ जीता है वह अपने अंदर अपनी धारणा स्वयं रखता है। वैज्ञानिक जब प्रयोगशाला में उतरता है तो वो सब कुछ भूलकर के प्रयोग करता रहता है। इतना लीन रहता है कि दूसरे लोग उसको पागल कहने लगते हैं। चाहे वह एडीसन हो या आइंस्टीन हो या न्यूटन या आर्कमिडीज हो। हर वैज्ञानिक को उसके आसपास रहने वालों ने मूर्ख कहना शुरू कर दिया होगा पर वह भीतर से जानता है कि मैं क्या हूँ और क्या कर रहा हूँ, मैं कौन हूँ। जिसको अपने आप

में इतना विश्वास होता है, इतनी दृढ़ शक्ति होती है, दृढ़ इच्छा होती है कि हम जो कर रहे हैं व दूसरा कभी समझ नहीं सकता और जो वो मेरे लिए समझ रहा है वो मैं कभी हो नहीं सकता। वो मानता है मैं जिस ज्ञान में उतर रहा हूँ वो ज्ञान लोगों से परे है।

एक दिन पता पड़ता है कि उसने बल्व का आविष्कार कर दिया। उसका नाम अब लोग लेने लगे **'एडीसन'।** आविष्कार होने के बाद लोग उसे वैज्ञानिक कहने लगते हैं। पहले पागल/मूर्ख कहते हैं। ऐसा ही कुछ आप लोगों के साथ नहीं होता, हम लोगों के साथ होता है। जब तक हम आत्माओं को केवलज्ञान नहीं प्राप्त हो जाता तब तक दुनिया के लोग भी कुछ न कुछ कह सकते हैं। ये कैसा मार्ग अपना लिया, ये कैसी अज्ञानता में जी रहे हैं, ये क्या कर रहे हैं लेकिन जब तक केवलज्ञान की प्राप्ति नहीं होती है, तब तक सब कुछ सुनना पड़ता है। उस वीतराग विज्ञान के अनुसार ही जीना पड़ता है क्योंकि आपका ज्ञान सीमित है। ज्ञान से भी ऊपर की चीज होती है विज्ञान जिसको विशेष ज्ञान के रूप में कहा जाता है। उसमें जब आपकी गति बढ़ जाती है तो ये इंद्रिय के ज्ञान छूटने लग जाते हैं। लोग कुछ भी कहें पर वो वैज्ञानिक अपना प्रयोग करना नहीं छोड़ता। जिसकी ऐसी दृढ़ इच्छा बन जाती है वह जिंदगी में कुछ ऐसा काम कर जाता है जिससे वह दूसरों को बहुत प्रकाश दे सकता है। एडीसन सिर्फ बल्व का प्रकाश देता है पर गुरु और संत आपकी अंतरात्मा में लाइट फेंकते हैं, जिसके माध्यम से आपके अंदर का अंधकार दूर होता है। आपको वह प्रकाश ग्रहण करने की क्षमता होना चाहिए। उस प्रकाश के माध्यम से हम ये देखें, ये जानें, ये महसूस करें कि हम जिस गति में बह रहे हैं उस गति में दुनिया चल रही है लेकिन दुनिया में किसी भी आत्मा के लिए कोई एक सुख की तलाश होते हुए भी सुख की कोई बूँद नहीं मिल रही है और ये बूँद अगर मिलेगी तो कब मिलेंगी जब हम अपने आपको केवल समर्थ बनाएँ, स्ट्रांग बनाएँ और अपने आप में सुख खोजें। तृष्णा की पूर्ति कभी खत्म नहीं हो सकती और यदि हम बीच में हताश हो गए या असफल हो गए तो आप ये मानकर चलना कि आपका जीवन और आपके लिए बोरियत का काम कर गया, बोझ बन गया।

अपने जीवन को कभी भार मत बनने दो। जीवन भार तब बनता है जब हम अपने मन पर भार ज्यादा लाद लेते हैं। जो चीजें मन पर लादने की नहीं है हम उनको भी लाद लेते हैं। दूसरों ने कहा तुम मूर्ख हो, हमने मान लिया। ये इस तरह हमने अपने मन पर भार लाद लिया। इस तरह आप कभी आगे नहीं बढ़ सकते हो और स्वयं को दबाते चले जाते हो। आप उस दबाव से

कभी उबर नहीं सकते। इसलिए जो व्यक्ति अंतरंग में अपना जीवन जीता है उसके लिए सबसे पहला जो सूत्र होता है **'लोड मत लो'** (भार) भार/लोड को इस ढंग से शरीर पर मत डालो कि वह हमारे शरीर की हानि का कारण बन जाए। आज व्यक्ति इसी बात से सबसे ज्यादा परेशान है। किसी को बच्चे को बड़ा करने का भार है तो किसी को बच्चे को पढ़ाने का भार है, किसी को बिजनेस आगे बढ़ाने का, किसी को घर के कलह दूर करने का, किसी को नौकरी पाने का। इतने भार आदमी के अंदर पड़े हुए हैं कि वह टांगों से चलता है पर भीतर के अंतर्मन से नहीं चल पाता। पहले एक स्कूटर चलता था एलएमएल वेस्पा, आजकल नहीं चल रहा ना। बाहर के स्कूटर में तो तुम्हारी गति आ गई पर भीतर के स्कूटर चलाना सीखो। एलएमएल माने 'लोड मत लो' बिना भार के यदि अपना जीवन चलाओगे तो जीवन सुखी होगा। आपके चेहरे पर प्रसन्नता होगी, मुख पर खुशी होगी। आपको खुश देखकर दूसरे लोग भी खुश होंगे। यदि आप भार में दब गए तो न आप कभी सुखी हो पाओगे न आपको देखकर दूसरे आनंदित होंगे। यदि अपने को देखकर दूसरों का जीवन दु:खी होने लगे तो इसका मलतब है हम दूसरों के लिए परेशानी का कारण बन रहे हैं। अपना जीवन इतना अच्छा बनाओ कि हमारे पास में कुछ हो तो ठीक नहीं हो तो ठीक, पर हम इस ढंग से जियें कि हमें देखकर दूसरों को दु:ख न हो। हमें भी अंदर इतनी खुशी हो कि दूसरा अगर दु:खी भी हो तो वो हमारी खुशी को देखकर अपने दु:ख भूल जाए। बहुत बड़ा जीवन होता है। हम तो अपने ही दु:खों का रोना रोते रहते हैं, दूसरे के दु:खों को सुनने की बात तो बहुत दूर है, हमारे ही जब अपने दु:ख दूर नहीं होते तो हम दूसरों के दु:ख को कैसे दूर कर सकते हैं। जब हम अपने लिए ही दु:खी है तो दूसरों के सुख की बात कैसे कर सकते हैं। वह व्यक्ति महान होता है जो दूसरों को अपनी चेष्टाओं से दूसरों को सुख पहुँचाता है। जिसको देखकर दूसरों को सुख उत्पन्न हो, समझ लेना उसी का नाम **महात्मा** है। उसी का नाम अंतरात्मा है। जिसे देख दूसरों को दु:ख उत्पन्न हो वह दुरात्मा है, वह बहिरात्मा होता है। आप बाहर से कैसे हैं ये आपके मुख को देखकर दूसरा समझ लेगा। यदि आप प्रसन्नचित्त हैं तो आपको देखकर दूसरा समझ लेगा कि आपके मन पर कोई लोड नहीं है। एलएमएल स्कूटर आपके भीतर चल रहा है। बाहर का स्कूटर आउटडेटेड हो गया पर भीतर का स्कूटर हमेशा अपडेट रखो। उसके लिए आध्यात्मिक सूत्र है- अपने ऊपर जो लोड आए उसे फेंकते जाओ। जैसे गधा अपने पीठ पर आए भार को तुरंत हिलाकर नीचे डाल देता है।

आप कम से कम गधे जैसी थोड़ी सी प्रेक्टिस करने लग जाओ बाहर से नहीं, भीतर से। एक बार एक गधा एक गड्ढे के अंदर चला गया। कुम्हार ने देखा कि गड्ढा बहुत गहरा है। उसने निकालने के बड़े प्रयास किए पर गधा उसमें से निकला नहीं। उसने सोचा कि अब क्या किया जाए। अब दूसरे गधे इस गड्ढे में न गिरे तो इस गड्ढे को भर देते हैं। उन्होंने पूरी योजना बना ली। गाँव के सब लोग तसला/तगाड़ी में मिट्टी ला-लाकर डालने लगे। धीरे–धीरे गड्ढा भरने को आ रहा है तब कुम्हार सोचता है थोड़ा देखें तो कितनी मिट्टी और डालनी है तब वह हैरान रह जाता है कि अरे मेरा गधा तो ऊपर आ गया। वह गौर करता है कि ये कैसे हो गया। हमने तो इतनी सारी मिट्टी इस पर डाली। गधे ने इतनी समझदारी दिखाई यदि इतनी समझदारी आप में आ जाए तो आपके जीवन में कोई भी समस्या आ ही नहीं सकती। वह गधा गड्ढे के अंदर भी परेशानी नहीं महसूस कर रहा। जो मेरे ऊपर आ रहा है वह मेरे लिए हित का कारण है, इतना पॉजिटिव एटीट्यूड वाला जो हो रहा है वह अच्छा हो रहा है। मेरे लिए नई दिशा देने का कारण बन रहा है। मैं यदि गड्ढे में गिरा हूँ तो आज मेरे पुरुषार्थ की परीक्षा होनी है कि मैं इससे कैसे उबर सकता हूँ। बुद्धिमानी की परीक्षा तब होती है जब आदमी कष्ट में होता है। तभी उसका टेलेंट (प्रतिभा) उभर कर आता है। ये डिग्रियों से नहीं आता। ये भीतर की डिग्री (लोड मत लो) से आता है। इसी से एलएमएल वेस्पा चलाना आ जाएगा। इंटेलीजेंट होना अलग है और टेलेंटेड होना अलग है। इंटेलिजेंट वो है जो किताबें पढ़कर, डिग्री पास कर ले, बड़ी-बड़ी उपाधियाँ ले सकता है। टेलेंटेड जो होगा वो कभी भी परेशान नहीं होगा, हर परेशानी को अपने लिए नई सफलता का उपाय समझेगा, नए अवसर समझेगा। नई परेशानी का मतलब अपनी अंतरात्मा की शक्ति को और जाग्रत करना। हमने सोच रखा हो कि हम केवल इतना ही कर सकते हैं, आप उससे कई गुना बेहतर कर सकते हो। ये तभी होता है जब आपके सामने परेशानियाँ हो, सुविधाओं से नहीं हो सकता। आप परेशानियों से डरते हो, महाराज कभी हमारे सामने कोई कष्ट/परेशानी न आए, ऐसा आशीर्वाद दो। घर में पड़े रहो न, यहाँ क्यों आते हो। अरे घर में भी रहोगे न तो भी दुख और कष्ट कहीं जाएँगे नहीं क्योंकि दु:ख और कष्ट हमारी मानसिकता के ऊपर हैं और ये तब तक दूर नही होंगे। जब तक हमारे पास वो टेलेंट न हो जिससे हम समझ सकें कि ये दु:ख कैसे दूर होंगे। आज हर आदमी को यही सिखाया जाता है कि बस आराम की जिंदगी जियो। यदि तुम्हारे जीवन में कोई दु:ख नहीं होगा तो कोई सफलता नाम की चीज नहीं होगी और तुम्हें कभी जीवन जीने का आनंद नहीं

आएगा। बताओ कौनसा आशीर्वाद चाहिए। जीवन में अगर कष्ट नहीं है, विपरीत परिस्थितियाँ नहीं हैं, प्रतिकूलताएँ नहीं हैं तो आपके लिए कभी जिंदगी जीने का आनंद आ नहीं सकता। आप कभी भी प्रभु से गुरु से ये आशीर्वाद न लें हम पर कभी कष्ट न आए, कभी दु:ख न हो। प्रार्थना ये करना कि प्रभु मैं हर कष्टों को जीत लूँ, ऐसी शक्ति और सद्बुद्धि देना और यही आशीर्वाद गुरु से माँगना। मैं कभी भी लोड लेकर न गिर पड़ूँ और यदि मुझे गधा भी बनना पड़े तो ऐसा गधा बनूँ कि जैसा आज बताया गया है। आप तो बहुत अपने आपको इंटेलीजेंट समझते हो और हम कह रहे हैं कि आप थोड़ा सा गधा बनना सीख लो। कई बड़ी परेशानियों में सबसे बड़ी युक्ति होती है कि हम गधा बन जाएँ। एक और उसका एटीट्यूट है- **दूसरों की बात को ज्यादा सुनना नहीं।** ज्यादा गौर करना नहीं और ऐसे रहना जैसे कुछ सुना ही नहीं।

यदि ये आपके अंदर आ गया तो आपको कोई परेशान नहीं कर सकता। उस गधे के अंदर देखो कितनी क्वालिटी, कितनी स्फूर्ति, एलएमएल की क्वालिटी है कि गड्ढे के अंदर पहुँचने के बाद भी उसके अंदर मिट्टी ही मिट्टी गिरती चली जा रही है और वो.... सिर नहीं हिलाता, पीठ हिलाता है, सिर तो आप हिला रहे हो। वो गधा पीठ हिलाकर यानि जहाँ पर भार हो उसी जगह को हिलाओ। सिर पर भार हो तो सिर हिलाओ, पीठ पर हो तो पीठ हिलाओ और हृदय पर भार पड़े तो हृदय हिलाओ, उसकी भी अलग-अलग टेक्नीक होती है। सिर कैसे हिलाना, बार-बार सिर को हिलाकर प्रभु को नमस्कार की मुद्रा में लाना, प्रभु की प्रार्थना करो, उनकी स्तुतियाँ करो और ऐसी विनतियाँ पढ़ो कि उनको पढ़ने के बाद आपको लगने लग जाए कि मैं हल्का हो गया हूँ। अगर आपके हृदय पर लोड पड़ रहा है तो अपने सामने जो शास्त्र है उनको पढ़ना और उसके बाद विचार करना कि हमारे हृदय में ये विचार क्यों नहीं टिक रहा है। पीठ को कैसे हिलाना। पीठ हिलाने के लिए अपने शरीर को केवल सीधा रखना और बैठने की पोजीशन में जब ९० डिग्री का कोण बनेगा और जब आप शरीर को हिलाएँगे तो पूरा हिलेगा और आपने अपने शरीर को झुका लिया तो आपकी कमर में दर्द हो जाएगा, फिर आप कितना ही हिलाते रहोगे तो दर्द जाएगा नहीं। सीधा बैठना सीखो ९० डिग्री का कोण बनाकर रीढ़ की हड्डी व पालती मार करके। अपने हृदय में हमेशा सद्विचार आना चाहिए, अपनी बुद्धि में हमेशा नमस्कार की मुद्रा के माध्यम से गर्दन को झुकाना। **नमस्कार करना** ये अपने आप में इतनी वैज्ञानिक प्रक्रिया है कि जो व्यक्ति रोजाना मंदिर जाए, प्रभु को झुककर नमस्कार करे उसकी गर्दन में कभी दर्द हो ही नहीं सकता।

ये ऐसी एक्सरसाइज है जिसे आप करते रहोगे तो भीतर से भी स्वस्थ व बाहर से भी स्वस्थ रहोगे। गधे से कुछ सीखने का प्रयोग करो। उस पर जो भार पड़ा उसी भार को अपने लिए उसने एक सीढ़ी बना ली। इस पर मैं चढ़ूँगा ये भार मेरे ऊपर नहीं चढ़ सकता। देखो कितना बड़ा लाइफ मैनेजमेंट का फंडा वो गधा जानता है। जो भी मेरे सामने आ रहा है उसको अपने अंडर/नीचे मैं रखूँगा, वो मेरे सिर पर नहीं रह सकता।

जो भी हमारे पास समस्याएँ हैं वो सब हमारे लिए एक सीढ़ी बन जाए। मानो कि ये समस्याएँ भी हमें कुछ न कुछ सिखाएँगी, इनसे भी हमें सफलता मिलेगी और ये हमारे जीवन में आगे बढ़ने को प्रेरित करेंगी। ऐसे भाव रखकर आप भीतर से मजबूत बनोगे, हमेशा स्फूर्ति रहेगी और आपको देखकर कोई भी व्यक्ति ये महसूस नहीं करेगा कि आप परेशानी में हैं, वो आपको देखकर खुद परेशानी में पड़ जाएगा। अपना जीवन ऐसा बनाओ कि हमारे जीवन से किसी को परेशानी न हो। अपनी समस्याएँ भी हो तो वो भी हम प्रभु और गुरु के अलावा किसी दूसरे से कहें नहीं। आप से पूछें कि भाई कैसे हो और आपने कह दिया अरे ऐसे ही हैं, जिंदगी है, चल रही है, बीवी बच्चों के लिए कुछ न कुछ करना ही पड़ता है, समय अच्छा नहीं चल रहा है, ज्योतिषी को दिखाने गया तो उसने भी कह दिया राहु की दशा चल रही है। अगर ये 'राहु की दशा चल रही है' आपके भीतर बैठ गया तो कोई भी ज्योतिषी आपको उबार नहीं सकता और उसने आपको एक टेंशन/लोड दे दिया। अब इस 'लोड' से भी उबरना। सबसे बड़ा लोड इन्हीं ज्योतिषियों का है। ये आपको इसी तरह और टेंशन दे देते हैं। जब कोई आपसे पूछे कि कैसे हो, पहले के लोग हमेशा ये ही बोलते थे कि हाँ बहुत अच्छे हैं, बहुत बढ़िया चल रहा है। जब आप अच्छा बोल देते हो, तो सामने वाले को भी उस समय पर कुछ अच्छा ही फील होता है। ये आपका उसके ऊपर बहुत बड़ा उपकार हो जाता है। यदि वो कष्ट में होगा तो आपको देखकर सोचेगा कि इनके पास तो कम पैसा है, ये किराये के मकान में है, छोटी-मोटी दुकान है, इसमें ये खुश है तो हमें किस बात का दु:ख है। इस तरह आप दूसरे को सुख दे सकते हो। अध्यात्म हमें भीतर से सुखी होना सिखाता है।

श्लोक–३१

यः परात्मा स एवाऽहं योऽहं स परमस्ततः।
अहमेव मयोपास्यो नान्यः कश्चिदिति स्थितिः।।३१।।

जो मैं वही परम आतम है महात्मा, ऐसा विचार करता वह अंतरात्मा।
मैं ही उपास्य मम हूँ स्तुति अन्य की क्यों? मैं साहुकार जब हूँ फिर याचना क्यों?।।३१।।

सकारात्मकता का महत्व

सब कुछ मैं ही हूँ। आप सुखी होना चाहते हो तो आप मान लो कि आप सुखी हो। अगर आपने मान लिया कि आप दु:खी हो तो कोई आपको सुखी बना सकता नहीं। आप मान लो कि आप जीवन में सब कुछ कर सकते हो, कोई आपको रोक सकता नहीं। आप मान लो मैं ही अंतरात्मा हूँ तो आपको कभी कोई बहिरात्मा बना सकता नहीं। आप मान लो कि जो सिद्ध भगवान् हैं वही मैं हूँ तो आपके अंदर संसार के दु:ख प्रवेश कर नहीं सकते। ये भावनायें इसलिये दी जाती है कि जब आप सिद्धों जैसे सुख की भावना व कल्पना करोगे तो आपको संसार के दु:ख तो अपने आप पलायन होते हुए दिखाई देंगे। जब आप इतना उत्कृष्ट भाव रखोगे, मैं कैसा हूँ, सिद्धों के समान उत्कृष्ट सुख को धारण करने वाला हूँ, सिद्धों के समान शक्तिमान हूँ, सिद्धों के समान ज्ञानवान् हूँ तो आपके छोटे-छोटे अज्ञान के अंधेरे, छोटी-छोटी शक्तियाँ जो आपको अशक्ति के रूप में सामने है जो आपकी परेशानी का कारण बनी है वे सब दूर होगी क्योंकि जब हम **सुप्रीम शक्ति** से जुड़ते हैं तो आपके अंदर भी वो शक्ति प्रवाहित होने लग जाती है। उस परमात्मा की शक्ति से जुड़कर के अपनी भक्ति के द्वारा तो वो शक्ति आपके अंदर भी आएगी। आप भी ऐसा बनने लग जाओगे। जो भी कुरीतियाँ हैं, दुष्प्रवृत्तियाँ हैं उनसे आप बचने लग जाओगे, आपके अंदर सद्प्रवृत्तियाँ आने लगेंगी। हंस की प्रवृत्ति बनाओ, बिल्ली बनना छोड़ दो। बिल्ली मार खाकर भी अपनी आसक्ति नहीं छोड़ती और हंसा कभी भी मार नहीं खाता, दूसरों को प्रिय होता है, वह हमेशा पानी को निकाल कर केवल दूध पीता है। ऐसे ही अपनी बुद्धि को इतना परिमार्जित करो जिसके माध्यम से ये संसार और मोक्ष, शरीर और आत्मा इन दोनों का भेद विज्ञान प्रकट हो।

श्लोक–३२

प्रच्याव्य विषयेभ्योऽहं मां मयैव मयि स्थितम्।
बोधात्मानं प्रपन्नोऽस्मि परमानन्दनिर्वृतम्।।३२।।

मैंने सभी विषयों को विष मान त्यागा, मेरा जिनेश! जिस कारण भाग्य जागा।
आनंद–धाम मुझको अधुना मिला है, विज्ञान–नीरज अतः उर में खिला है।।३२।।

आचार्य पूज्यपाद महाराज १२वीं शताब्दी के महान आचार्य हुए। जब उनके भाव हम संस्कृत में पढ़ते हैं तो कुछ अलग सा महसूस होता है। उसके बाद जब आचार्य महाराज का पद्यानुवाद पढ़ते हैं तो उसमें कुछ अलग महसूस होता है। दोनों अलग-अलग अनुभूति-परक हैं। कुछ अनुभूतियाँ जो आचार्यों की है उन्हें हम बहुत जल्दी समझ नहीं पाते हैं तो उन्हें सरल भाषा में आप तक पहुँचाना पड़ता है, तब तक उसमें कुछ दूसरे भाव जुड़कर वह मंद हो जाती है। कोई चीज बहुत कड़वी हो तो उसमें कुछ मीठा मिलाकर दवाई के रूप में आपको देना पड़ता है।

भाग्य की जागृति

आचार्य पूज्यपाद स्वामी लिख रहे हैं कि अगर हम अपने निर्विकल्प आत्मध्यान में उस परमात्म तत्त्व की अनुभूति करना चाहते हैं तो हमें विषयों से छूटकर के अपने आपको अपने में ही स्थिर करने का प्रयास करना है। ये भाग्य की जाग्रति कैसी होती है आपको ये अनुभूति तब होती है जब आप कई कारों में भाग रहे होते हो या अच्छी-अच्छी बाइकों पर घूमते हो या ए.सी. में बैठकर अच्छे व्यंजन खा रहे होते हो या डनलप के गद्दों पर सो रहे हो। यहाँ आचार्य महाराज कह रहे हैं कि भाग्य से ही हमें ऐसे विषय मिलते हैं और भाग्य से ही उन विषयों का त्याग होता है, इन्हें आदमी **भाग्य** कहता है। वह भाग्य ही उसका पूर्वगत कर्म कहलाता है, उसे ही लोग 'समय' या किस्मत या भाग्य कहते हैं। सब एक ही बात है। भाग्य के रूप में आपको ये ही अच्छा

लगता है कि हमें बिन चाहे सब कुछ मिल जाए। वस्तुत: देखा जाए तो आदमी तभी भाग्य को सराहता है जब उसे जरूरत से ज्यादा मिल जाए, योग्यता से ज्यादा मिल जाए, बिना पुरुषार्थ के मिल जाए जैसे आप लोगों को मिल गया है। भाग्य का जागरण भी निरंतर करते रहना चाहिए क्योंकि यदि भाग्य सो गया है तो वह आप लोगों की उन्नति का कारण नहीं बनेगा। भाग्य के माध्यम से लोगों की निद्रा बढ़ती भी है और घटती भी है। मोह निद्रा को बढ़ाने वाले भाग्य लेकर आप आए हो, ये सब सुख-सुविधाएँ मोह निद्रा बढ़ा रही है। मोह निद्रा से जागने की प्रेरणा तब मिलेगी जब आप भाग्य को बनाने का पुरुषार्थ करे। भाग्य को आगे बढ़ाने के लिए हमें पंचेंद्रिय के विषयों को विष मानकर छोड़ना है जबकि हम अमृत मानकर ग्रहण करते हैं। हमें जो मिला था वह कुछ आगे बढ़ने के लिए मिला था और हम उसमें इतने आसक्त हो गए कि आगे बढ़ने की बात भूल गए। पंचेंद्रिय के विषयों से छूटने के लिए मन को संभालने की बहुत आवश्यकता है। मन तब संभलता है जब मन के अंदर बैठे मोह में कुछ कमी आए और ये ज्ञान आए कि ये पंचेन्द्रिय के विषय विष हैं जो अमृत समान लग रहे हैं। वो इसलिए कि मन का स्वभाव चंचल है, बिगड़ा हुआ है, मोह की कालिमाएँ पहले से ही लगी हुई हैं। मन को उसी प्रकार के विषय मिलते जाते हैं तो वह मन और उन्मत्त/पागल होता जाता है जैसे बंदर कभी शांत नहीं बैठता। वह स्वभाव से चंचल है और उसे थोड़ी सी 'वो' पिला दी जाए जो कभी-कभार कोई व्यसनी पुरुष पी लेता है- शराब/मदिरा तो उसकी कैसी हालत होगी और उसके बाद एक बिच्छू से डंक और लगवा दिया जाए। सांप और बिच्छू के काटने के अलग-अलग अनुभव होते हैं। सांप का काटा कभी जागता नहीं और बिच्छू का काटा कभी सोता नहीं। बिच्छू के काटने से शरीर में ऐसी चिनमिनाहट होती है कि वह व्यक्ति सो नहीं सकता, मूर्च्छित नहीं होता। वह तड़पता है, उन्मत्त हो जाता है।

यही स्थिति आप लोगों की है। एक तो मन पहले से ही मोह के कारण मोहित है, उन्मत्त है और पाँच इंद्रियों की सहायता एवं आधुनिक युग की विषय सामग्री मदिरा एवं बिच्छू काटने की तरह मद उत्पन्न कर रही है। पहले लोगों के पास मन था, इंद्रियाँ थी पर विषय सामग्री इतनी आकर्षक नहीं थी तो वे ज्यादा पागल नहीं होते थे। आज आदमी एक जगह बैठ ही नहीं सकता। वह भी बंदर की तरह एक डाल से दूसरी डाल पर छलांग लगाता रहता है और अपने करतब दिखाता रहता है। कभी शांत नहीं बैठता। यही स्थिति मनुष्य की है। वह पहले ही अपने अंदर

मोहित था, मन, इंद्रियाँ और आधुनिक विषयों के कारण उसके अंदर साम्यभाव की स्थिति लाना बड़ा कठिन है। इंसान मोह की मदिरा पीकर ही संसार में आया है और उसे बढ़ाता जाता है और बिच्छू भी उसे काटते रहते हैं, नए-नए एडवरटाइज, पर्वों पर विशेष ऑफर आदि-आदि। बिच्छू आपको थोड़ा सा काटे तो एक अलग प्रकार की सुखद अनुभूति होती है, ऐसा लगेगा कहीं न कहीं सरसराहट हो रही है। ऐसा नहीं कि आज ही कहीं बिच्छू दिखे तो कटवाने लग गए। एक अलग प्रकार की बेचैनी होती है और पैसे देकर नई-नई चीजें खरीदकर आप ऐसी बेचैनियाँ रोज खरीदते रहते हो। आपको उसी में आनंद आने लग जाता है। कई लोगों को शराब में आनंद आता है तो कई को चाय में। उन्हें बेड टी ही चाहिए, मुँह भी साफ नहीं करते। बेड टी यानि एक बिच्छू का डंक और पत्नी का व्यामोह छोड़ा नहीं जाता। सबको पता है कि महाराज आए हैं पर सुबह की नींद, बेड टी, पत्नी का व्यामोह। नई बहुओं को मायके का मोह आदि आपको कुछ अच्छा करने ही नहीं दे रहा। समय-समय पर अपने टेस्ट (पसंद) को बदलना सीखो। जो प्रकृति के नियम के अनुसार चलता है, वह व्यक्ति सही ढंग से जीता है। जो व्यक्ति थोड़ा भी धर्म के अनुसार चलेगा उसके जीवन में हमेशा स्फूर्ति व आनंद रहेगा। जिन्हें सुबह उठकर भगवान् के दर्शन-पूजन का भाव न आकर चाय पीकर फिर से चादर डालकर सोने का भाव आता है तो समझो अभी उनके लिए अध्यात्म बहुत दूर है। आत्मा की बात अभी आपके **मुख** से शोभा नहीं देती। ये उन्हीं को शोभा देती है जिनका मोह कम हुआ हो, जो आत्मा के निकट आना चाहता हो, जिसने अपने मोह पर, आलस पर कंट्रोल किया हो। जो धार्मिक कार्यों में जी-जान से शामिल होता हो। आपके मन में धार्मिक कार्य के लिए तुरंत बहाने आ जाते हैं, उसके लिए सोचना पड़ता है। पर गलत काम के लिए या गाली देने के लिए सोचना नहीं पड़ता। शिविर में शामिल होने के लिए मन बनाना पड़ता है, घर का मोह, घरवाली का, बच्चों का, काम धंधे का मोह छोड़ने का मन बनाएँ, फिर महाराज से मोह करने की बात करना संभव होता है। देव-शास्त्र-गुरु के प्रति राग बहुत कठिनता से होता है। जब अपने भीतर कुछ मोह की कमी आती है। अप्रशस्त राग कम हो तो देव-शास्त्र-गुरु से प्रशस्त राग हो पाता है। मंदसौर वाले ज्यादा विचार कर रहे हैं पर उनके जीवन में कभी ऐसा भाग्य जागने वाला नहीं है। भाग्य जागने की क्रियाएँ कुछ अलग होती हैं।

रामचंद्रजी के पिता दशरथ की चार रानियाँ थीं, ये सब को पता है पर उनका प्रतिदिन अभिषेक व पूजन का नियम भी था, ये आपको नहीं पता। **राजा दशरथ** प्रतिदिन अभिषेक के

बाद गंधोदक प्रतिदिन सर्वप्रथम अपनी रानियों के पास पहुँचाते थे ताकि उनके अंदर भी धर्म का भाव बना रहे। कभी भी कोई भी उन्हें गंधोदक ले जाकर दे देता था। एक बार राजा दशरथ ने गंधोदक भेजा। रानी कैकयी के पास गंधोदक ले जाने वाला व्यक्ति बुजुर्ग था अत: वह बहुत धीरे-धीरे उनके पास पहुँचा। बाकी तीन रानियों के पास पहले गंधोदक पहुँच गया। देर से पहुँचने से रानी कैकयी को लगा कि उसके साथ अन्याय कर दिया गया, उसका पति उसकी परवाह नहीं करता। बस वो मुँह फुलाकर बैठ गई, रोने लगी। दशरथ आए तो कुछ बोले ही नहीं। जब नाराजगी है तो बोलने की बात ही नहीं। उसने तो ईर्ष्यावश पहले ही दूत को जहर लाने का आदेश दे दिया। सेवक ने दशरथ के सामने जहर लाकर दिया तो उन्होंने पूछा कि ऐसा क्या हो गया। कैकयी रोते-रोते बोलती है- आप हमारे साथ ऐसा दुर्व्यवहार क्यों करते हैं। सबके पास गंधोदक भेजा, हमें नहीं भेजा। दशरथ कहते हैं, अरे मैंने तो सभी के लिए भेजा था, नहीं आया क्या। तभी वह बुजुर्ग लाठी टेकते सामने आकर खड़ा हो गया। दशरथ ने पूछा कि इतनी देर कैसे हो गई? वह बोला- महाराज, बुढ़ापा है, धीरे-धीरे चल पाता हूँ। देखो, स्त्री के लिए इतना भी धैर्य नहीं रहता, उसके दिमाग में तुरंत गलत-फहमियाँ पैदा हो गईं कि उसने जहर तक मंगा लिया। दशरथ की बात का विश्वास नहीं किया। जब बुजुर्ग व्यक्ति आ पहुँचा तब उसे विश्वास हुआ। चौथे काल में भी राजघरानों में धर्म-आराधना की जाती थी। अब पंचमकाल में व्यक्ति ९ बजे तक चाय पिया करता है, कब पूजन-अभिषेक करेगा और कब घरवालों को गंधोदक देने की भावना करेगा। जितना दिमाग आपका पाप के कामों में चलता है, उसका २ प्रतिशत भी धार्मिक कार्य में, बच्चों को संस्कार देने में चलाएँ तो ये पंचमकाल भी चतुर्थकाल जैसा सुख देने लग जाए।

आपके लिए आज भी माहौल है कि आप धर्म कमा सकते हो। शुरू से ही बच्चों को ऐसे संस्कार देना जिसके माध्यम से वह सीखे कि गंधोदक क्या है, उसका महत्त्व क्या है। जिस घर में ये नियम हो कि हर किसी को मंदिर में जाकर अभिषेक करना है, देखना है, अपने माथे पर लगाना है तो ये बहुत बड़ा संस्कार होता है। अगर बच्चा स्कूल जाता है, गंधोदक नहीं ले पाता है तो आप उसके लिए घर पर थोड़ा सा गंधोदक लेकर जाओ और उसे जरूर लगाने को कहो। तब बेटे को अभिषेक का महत्त्व ध्यान रहेगा और वह कभी न कभी जरूर वह अभिषेक करने की भी सोचेगा। जब हमारे अंदर खुद ये संस्कार नहीं हैं तो बच्चों के संस्कार की क्या चिंता है? बच्चों को तो कार दिला दो, संस्कार की कोई चिंता नहीं। जिस माँ-बाप ने बच्चों को दिलाई स्कूटी, समझ लो

उसके विवेक की आँखें फूटी। जिसने दिलाई बच्चों को समय से पहले कार, नहीं दे सकता वह अपने बच्चों को कभी संस्कार। जिसने दिला दी बच्चों को समय से पहले बाइक, उसके बेटे कभी नहीं करेंगे माँ-बाप को लाइक। ध्यान रखना, समय से पहले यदि ये काम तुमने करे हैं तो अपने ही पैरों पर कुल्हाड़ी मार रहे हो। बच्चे सबसे ज्यादा घूमने-फिरने के माध्यमों से ही बिगड़ रहे हैं। आप उनसे ये कभी नहीं कहते कि स्कूल/ट्यूशन/कोचिंग के रास्ते में मंदिर पड़ता है तो दो मिनट रुककर भगवान् के दर्शन कर लेना। अभिषेक हो रहा हो तो देखना, गंधोदक लगाना। बताओ कैसे उनमें संस्कार पड़ेंगे। चतुर्थ काल में दशरथ जैसे लोग अपने घर के लोगों के संस्कार के बारे में सोचते थे। जब उन्हें बुढ़ापा आ गया, सफेद बाल दिखने लगे तो उनमें वैराग्य का भाव उत्पन्न हो गया। चार पत्नियाँ एवं राम, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न चार बच्चों को छोड़कर संन्यास का भाव बना लिया। तुम्हारे लिए तो इस जन्म में कोई संभव नहीं। 'मैंने सभी विषय को विषमान त्यागा'- जब ये विषय दिखने लगे तो व्यक्ति अपने आत्महित के लिए विचार करने लग जाता है कि ये सब काम अनगिनत बार अनादिकाल से किए हैं। अब कुछ ऐसा करना है कि हमारा मोह कम हो, आत्मा पर धार्मिक संस्कार पड़े। अगर आपका विचार तुरंत नहीं बनता अर्थात् आपके ऊपर मोह का बहुत जबरदस्त प्रभाव है। साल में एक बार ही धर्म का सीजन आता है, उसमें पूर्णमन से धर्म करना चाहिए। खुद धर्म करिये और अपने बच्चों को भी संस्कारित कीजिए।

राजा दशरथ ने मन बना लिया कि मुझे गृह त्याग करना है। रानियों को छोड़ा जाएगा, बेटों को भी छोड़ा जाएगा तब कैकयी सोचती है कि ये क्या हो रहा है। मेरा बेटा भरत तो पहले ही वैरागी है और अब मेरा पति भी मुझे छोड़कर जाएगा। भरत के लिए कहा जाता था **'भरत घर में ही वैरागी'** ऐसा भरत जिसे राज्य लेने की इच्छा ही नहीं थी, केवल अपने भाई के कहने पर राज्य लिया और भाई के आने पर तुरंत दे दिया।

कैकयी को उस समय डर लगा कि मेरा पति जा रहा है, मेरा बेटा तो पहले ही जाने को तैयार रहता है। दशरथ राम का राज तिलक करके चले जाएँगे तो मैं क्या करूँगी? तब उसे दो वरदान याद आते हैं, तब वह दशरथ से वरदान माँगती है। कैकयी कहती है कि आपको गृह त्याग से रोकना संभव नहीं है लेकिन इतना तो कर सकते हो कि मेरे बेटे भरत का राज तिलक करना, नहीं तो वह भी मुझे छोड़कर चला जाएगा। इसलिए दशरथ को राम की जगह भरत का राजतिलक करना पड़ा। तब रामचंद्रजी सोचते हैं कि यदि मैं यहाँ रहूँगा तो भरत कभी राजगद्दी नहीं स्वीकारेगा।

आप जो टी.वी. में देखते हो वह कहानी कुछ और ही है। जैन रामायण पढ़ो तो वास्तविकता पता लगेगी। राम का वनवास के लिए जाने का स्वयं का भाव था क्यों... यदि मैं सामने रहूँगा तो वो मेरे सामने कैसे राज कर सकेगा। ये कैकयी की अपने आप में एक बहुत बड़ी चाल थी और उसका वरदान माँगने का ढँग ऐसा था कि जिससे सारा का सारा पांसा पलट गया। राम वनवास के लिए स्वत: चले गए। कोई भी माँ अपने बेटे के लिए चाहे वह सौतेला बेटा ही क्यों न हो, डायरेक्ट ऐसा नहीं कर सकती। दशरथ के वैराग्य भाव को देखकर उसने ऐसा कहा। राम निकले तो लक्ष्मण उनके मोह से निकल गए और सीता भी। ये इतना बड़ा प्रसंग था फिर भी इन परिस्थितियों में दशरथ ने वैराग्य को धारण किया। जिस घर में ऐसी स्थिति आ गई हो कि दो बेटे और बहू को घर छोड़कर निकलना पड़ा हो फिर भी उन्होंने अपना वैराग्य का कार्यक्रम आगे नहीं बढ़ाया न स्थगित किया।

एक बार ऐसे भाव उत्पन्न होने के बाद दुनिया को एक तरफ रखा जाता है अपने मन के, आत्मा के हित के विचारों को पीछे नहीं किया जाता। आप आयोजक ऐसे लोगों को सामने लाए जो १० दिनों के लिए धर्म की आराधना करेंगे, अपनी दुकानें बंद रखेंगे। धर्मात्मा कभी भी धर्म से दु:खी नहीं होता। ये मान के चलना, विश्वास करके चलना कि तुम्हारे लिए किसी बात की कमी नहीं पड़ेगी। दुकानें बंद होगी तो बाकी लोगों को पता चलेगा कि तुम्हारे पर्व चल रहे हैं। जब रोजे आते हैं तो लोग नमाज पढ़ने के समय सब काम छोड़कर नमाज पढ़ते हैं। तुम्हारे अंदर ऐसी कौनसी चीज है जिससे तुम्हारी पहचान की जाए। ऐसे कौन से नियम हैं जिससे **जैनत्व की पहचान** हो। हर धर्म के, हर पंथ के लोगों की कुछ न कुछ पहचान होती है। पर्व विशेष पर कुछ कार्य होते हैं पर तुम्हारे लिए हमेशा समय एक जैसा चलता है। अपने मन में ये भावना रखो कि कुछ समय के लिए दशरथ बनना है, राम बनना है, सीता बनना है। क्या पता आपके कितने बड़े-बड़े अंतराय कर्म बंधे हो तो वे १० दिन की साधना-तपस्या से टूट जाएँगे। हमेशा धर्म की आराधना करो और मोह की विराधना करो। यही हमें अध्यात्म की ओर ले जाने वाली बात होगी। आप निरंतर धर्म की आराधना करोगे तो घरों की समस्यायें अपने आप सुधरती चली जाएँगी। यदि विराधना करोगे तो बनती हुई बात बिगड़ जाएगी। जब हम धर्म के कार्यों में बहाने बनाते हैं तो उस समय अंतराय कर्म का बंध होता है, जिससे बनती हुई बात बिगड़ जाती है।

बनते बनते बात बिगड़ जाती है क्यों
जलते जलते बाती बुझ जाती है क्यों
होना था अभिषेक सुबह सिंहासन पर
बैठा था निश्चिंत खुशी में सारा घर।
मेरा पति कल राजा होगा देखूंगी
उनके राजमुकुट को लख सुधि खो दूंगी
पति के पीछे सीता वन जाती है क्यों?
बनते बनते..
राजुल के हाथों में मेहंदी देखूँगा
बेटी को डोली में बिठा के रो लूँगा
रानी बिटिया लेने नेमी आयेंगे
चंद्र चकोरी जोड़ी लख सब गायेंगे
घर आते बारात लौट जाती है क्यों?
बनते बनते...



श्लोक–३३

यो न वेत्ति परं देहादेवमात्मानमव्ययम्।
लभते स न निर्वाणं तप्त्वाऽपि परमं तपः।।३३।।

दुर्गंध–रक्त–मल–पूरित देह को जो, है मानता न यति भिन्न निजात्म से ओ।
निर्भीक यद्यपि करे तप भी करारी, तो भी उसे न वरती वह मुक्ति–नारी।।३३।।

स्व–पर भेद विज्ञान का लक्ष्य

जो व्यक्ति अपने देह से भिन्न अभेद अपनी आत्मा को नहीं जानता, न ही मानता है वह व्यक्ति कितना ही तप करे उसे निर्वाण की प्राप्ति नहीं होती। निर्वाण की अवधारणा आत्मा पर निर्भर है और आत्मा की अवधारणा देह से भिन्न है। जब तक उसे अपने स्वरूप का ज्ञान नहीं होगा तब तक उसे कोई भी क्रिया से आत्मा का लाभ होने वाला नहीं। व्रत, जप, तप, संयम सारी क्रियायें आत्मा के लिए की जाती है क्योंकि आत्मा में ही निर्वाण घटित होना है और उस पर ही हमारी दृष्टि नहीं है तो आचार्य कहते हैं कि तुम्हारे द्वारा की गई क्रियाओं का लाभ मात्र इतना होगा कि कुछ पुण्य बंध होगा जिससे तुम्हें कुछ देह सुख एवं भोग हेतु सामग्री के सुख मिल जाएँगे लेकिन निर्वाण का सुख नहीं मिलेगा। **निर्वाण सुख** के लिए अपनी आत्मा के भिन्न स्वरूप को देखना और जानना एवं उसी में रमण करना आवश्यक है। दुनिया में जो दिखाई दे रहा है वह आत्मा नहीं है और जो वो देखना चाह रहा है, उसमें भी आत्मा नहीं है। आत्मा को देखने के लिए हमें उस ज्योति स्वरूप परमात्मा का ध्यान करना पड़ता है। आत्मा को यदि हम **निश्चय** से नहीं जानते तो मूढ़ कहलाते हैं और केवल **व्यवहार** से जानते हैं तो भी मूढ़ कहलाते हैं। जब निश्चय से अपनी आत्मा को जानने का प्रयोजन आ जाता है तब आपको भगवान् की उपयोगिता समझ में आती है। यहाँ बताया जा रहा है कि हर आत्मा के अंदर ऐसा भेद-विज्ञान उत्पन्न होना चाहिए

जिसके माध्यम से वे हमेशा दूध और पानी एक जैसा दिखते हुए भी उन्हें अलग-अलग महसूस करें। आप पढ़ते हैं तू चेतन और देह अचेतन ये जड़ तू ज्ञानी...। अगर दूध और पानी दोनों मिले हुए हैं तो उन्हें अलग करने का पुरुषार्थ भी करना है। ये तब होता है जब हमारे अंदर उसके अलग-अलग होने की श्रद्धा और ज्ञान की परिणति पहले उत्पन्न हो जाती है। जब आप जानते ही नहीं कि दूध व पानी अलग हैं एवं देह और आत्मा अलग हैं तो आप जो कुछ भी करेंगे वो अज्ञान का तत्त्व कहलाएगा। अगर आप आत्मा को जानकर कुछ करते हैं तो वो आपको हर कार्य में आनंद देगा क्योंकि वह स्त्रोत है जहाँ से आनंद आना है। उसी स्त्रोत की ओर हमें दृष्टि लाना है। जब आप भगवान् की भक्ति अथवा पूजन करते हैं तो उसमें आपको आत्मा का शुद्ध स्वरूप दिखना चाहिए।

भगवान् का दिव्य स्वरूप अपने आप में एक ज्योति स्वरूप है जिस में कोई हिलन-डुलन नहीं होता, वह कभी घटती-बढ़ती नहीं है, उसमें कोई तेल देने की जरूरत नहीं पड़ती, कोई हवा उसे बुझा नहीं सकती। ऐसी ज्योतिस्वरूप आत्मा में ध्वनित पाप के समूह के कारण जो अंधकार उत्पन्न हुआ है, उसे दिव्य ज्योति ने नष्ट कर दिया है, दूर कर दिया है। ऐसे अंधकार में हमें भले ही कुछ दिखाई नहीं देता है पर हमें अपने स्वरूप का श्रद्धान हो जाता है। ऐसी ज्योति को ध्यान में लाकर अगर हम कुछ पाने की प्रवृत्ति करते हैं तो हमारी आत्मज्ञान के साथ होने वाली प्रवृत्ति कहलाती है। भगवान् की भक्ति व दर्शन के समय वह हमें सामने दिखना चाहिए। भगवान् कैसे हैं- ज्योति स्वरूप हैं। वे ज्ञान की ज्योति हैं। वे ज्ञान का प्रकाश हैं जिसमें अंधकार को कहीं भी स्थान नहीं है। उनके ज्ञान में इतनी स्थिरता है कि न तो उनका ज्ञान अपने अंदर-अंदर हिल रहा है और न बाहर का कोई पदार्थ उसे हिला सकता है। ऐसे भगवान् के प्रति जो भक्तिभाव है वो सम्यक् दृष्टि का भक्ति भाव कहलाता है। अगर वह ध्यान में नहीं है तो वह मिथ्यादृष्टि जीव का भक्तिभाव कहलाता है क्योंकि वह सिर्फ भगवान् का शरीर देख रहा है, उसमें आत्मा का श्रद्धान है ही नहीं। जब तक आत्मा का श्रद्धान नहीं है तब तक न हम अपनी आत्मा को देख सकते, न भगवान् के अंतर आत्मा में क्या है वह भी नहीं देख सकते जबकि भगवान् के स्वरूप को देखने के लिए हमें यही देखना व जानना है। देह से अपनी आत्मा को पृथक जानना। आत्मा अव्ययी है अर्थात् जिस आत्मा का कभी नाश नहीं होता है। आप भगवान् की भक्ति करते हुए भी इस प्रकार के भावों में डूब नहीं पाते।

आचार्यों ने सामान्य **दर्शन पाठ** में भी हमारी दृष्टि आत्मा के स्वरूप की ओर ले जाई है और भगवान् के परमार्थ स्वरूप को भी दिखाया है। 'अनंत चतुष्टय के धनी तुम ही हो सरताज, मुक्ति वधु के कंत तुम, तीन भुवन के राज'। हम जब भी भगवान् को देखे तो केवल बाहरी रूप को देखकर न संतुष्ट हो जाए बल्कि हमारी ज्ञान दृष्टि में उनका अनंत चतुष्टय रूप आत्मा है, उसमें वे अनंत ज्ञान, अनंत दर्शन व अनंत वीर्य एवं अनंत सुख को धारण किए हुए हैं। जब ये रूप हमारी दृष्टि में आएगा तो आगे की पूजा में और आनंद आएगा। आचार्यों ने हर स्तुति में उसी भाव तक पहुँचाने का प्रयास किया है जिसको जाने बिना हम अज्ञानी कहलाते हैं। भक्तामर स्त्रोत में आचार्य मानतुंगजी ने भी कहा है कि भगवान् के ज्ञान की स्तुति के लिए न किसी बाती, न तेल की जरूरत है लेकिन वह प्रकाश हमेशा अनंत रूप में प्रकाशमान रहता है। उस प्रकाश की ज्योति को ध्यान में रखते हुए आप अगर कुछ करेंगे तो वे आपके लिए बहुत बड़ा लक्ष्य साबित होगा। जीवन में हमेशा **उत्कृष्ट लक्ष्य** बनाना चाहिए। जैनाचार्य कहते हैं कि हमारा उत्कृष्ट लक्ष्य आत्मा का शुद्ध स्वरूप है और परमार्थ से आत्मा का स्वरूप अनंत चतुष्टयमय है। अगर अनंत चतुष्टय स्वरूप को ध्यान में रखकर आप ज्ञान, ध्यान व तप करेंगे तो वो आपके लिए लाभदायक होगा अन्यथा थोड़ा सा पुण्य बंध होगा, उससे स्वर्ग मिलेगा या राजा हो जाओगे या चक्रवर्ती बन जाओगे पर मोक्ष की प्राप्ति नहीं होगी। ये हमें बार-बार बताया जाता है, श्रावक को भी और श्रवण को भी। ये गलती अनादि से होती आई है।

इसलिए आचार्य कहते हैं कि देह और आत्मा की एकत्व की गुत्थी को छोड़कर यदि अपनी आत्मा का अनुभव होगा, ये हमारे लिए सबसे बड़ा आत्मा का समयसार कहलाता है। देह और आत्मा तथा दूध और पानी के बीच के भेद विज्ञान को जानना और उसके लिए यत्न करना। बिना यत्न के दूध और पानी अलग होगा नहीं। कभी-कभी यत्न पहले होने लग जाते हैं पर ज्ञान होता नहीं इसलिए सम्यक् चारित्र से पहले सम्यग्ज्ञान का नंबर आता है और सम्यक्ज्ञान से पहले सम्यक्दर्शन का नंबर आता है। सम्यक्दर्शन से पहले श्रद्धा मजबूत करो, फिर क्या करना है, उसकी श्रद्धा बनाओ ताकि आप बीच में भटको नहीं। मजबूत श्रद्धा में ही लक्ष्य तक पहुँचोगे। केवल बाहरी क्रिया से आप लक्ष्य तक नहीं पहुँच पाओगे। बाहरी क्रिया करते हुए बीच-बीच में बार-बार उस श्रद्धा की ओर देखना पड़ता है जिसे सम्यक्दर्शन की परिणति कहा जाता है। आचार्य बार-बार यही कहते हैं कि देखो बहुत तपने के बाद में भी आपको मोक्ष नहीं मिलेगा जब तक कि आप देह से भिन्न अव्यय स्वरूप अपनी आत्मा का बार-बार संवेदन और ज्ञान नहीं करेंगे। अपनी

श्रद्धा को निरंतर आगे बढ़ाते चले जाना है। उसे किसी भी प्रलोभन में छूटने नहीं देना है। श्रद्धा की परीक्षा हमेशा की जाती है। कई संप्रदायों में भगवान् की एवं आत्मा-परमात्मा की, शास्त्रों की कोई मान्यता नहीं होती, केवल गुरु की मान्यता होती है। कई संप्रदायों में केवल शास्त्र की मान्यता है गुरु की नहीं और ना भगवान् की। लेकिन महावीर स्वामी के बताए इस जैन दर्शन में देव, शास्त्र और गुरु तीनों को श्रद्धा एवं तीनों को मान्यता मिली है। तीनों के सम्यक् स्वरूप को जानकर अपने लक्ष्य को निर्धारित करना और फिर उस पर ऐसे चलना कि अपनी श्रद्धा छूटने न पाए।

एक प्रसंग सिक्ख समुदाय में आता है कि **गुरुनानक** को अपने उत्तराधिकारी का चयन करना था। उन्होंने अपने शिष्यों की श्रद्धा की परीक्षा ली। वे एक शहर से दूसरे शहर की ओर लगातार प्रस्थान कर रहे थे। उस दौरान उन्होंने कुछ ऐसा चमत्कार किया कि उनके हाथ से तांबे के सिक्के गिरने लगे। उनके पीछे बहुत से शिष्यों का समुदाय चल रहा था। उसमें से बहुत से शिष्य तांबे के सिक्कों को बटोरने में लग गए। पीछे चल रही भीड़ भी सिक्कों को बटोरने में लग गई। गुरुनानक आगे बढ़े और थोड़े से लोग अभी भी उनके पीछे चल रहे थे। अगले शहर में उन्होंने अपना हाथ हिलाया और इस बार चाँदी के सिक्के गिरने लगे। लोग उसे उठाने में लग गए। वे फिर आगे बढ़े, अगले शहर में पहुँचे अब तक उनके पीछे मात्र ५-७ लोग ही बचे थे। कुछ तांबे और कुछ चाँदी के सिक्कों में संतुष्ट होकर रुक गए थे। अगले शहर में उन्होंने चमत्कार कर सोने के सिक्के गिरा दिए। अब तो सभी लोग सोने के सिक्के बटोरने में लगे। गुरुनानक जी जब अगले शहर पहुँचे तब तक उनके साथ मात्र एक शिष्य चल रहा था जिसे उन्होंने अपना उत्तराधिकारी घोषित कर दिया। बाकी सब धन के, कंचन के, कामिनी के प्रलोभनों से अपने आपको बचा नहीं पाए। जो इन प्रलोभनों से उबरता चला जाता है वही अंतिम मोक्ष तक पहुँच पाता है। इसलिए बार-बार उसी आस्था को पहचानने के लिए अनेक परीक्षाएँ की जाती हैं। गुरुनानक के बाद अंगद को गुरु के रूप माना जाता है। हर जगह पर आपको अपनी श्रद्धा, अपनी आस्था सही ढंग से बनाकर रखनी होगी। आप किसी भी धर्म के अनुयायी हो, आप जिस कुल में जन्म लिए हो, आपको सबसे पहली आस्था उसी कुल पर उसी धर्म पर होनी चाहिए।

जैन धर्म के अंदर आत्मा को परमात्मा बनाने की साधना की जाती है, जहाँ आत्मा से परमात्मा बनाने की विधिवत् इतनी बड़ी प्रक्रिया लिखी हो जो आपको दुनिया के किसी भी प्रसंग में लिखी नहीं मिलती है। आपको अनेक प्रकार के काव्य एवं चरित्र लिखे हुए मिल जाएँगे लेकिन आत्मा से परमात्मा बनने की प्रक्रिया, मोक्षमार्ग पर चलने की विधि और मोक्ष तक पहुँचने की वह

प्रक्रिया जिसमें कहाँ, क्या, किस समय पर घटित हो रहा है, ये सब आपको केवल सर्वज्ञ भगवान्, वीतराग भगवान् के जैन दर्शन में मिलेगा। इसी में केवल मोक्ष के मार्ग की सम्यक् प्ररूपणा मिलेगी। जीव, अजीव, आस्रव, बंध, संवर, निर्जरा, मोक्ष ये सब अन्य दर्शनों में नहीं मिलेगा। विश्व के किसी भी दर्शन में चाहे हिंदू दर्शन देखें उसमें निर्जरा का मतलब या तो जल रहित होना है या बुढ़ापा आना है या कुछ झड़ रहा है उसका नाम निर्जरा है। 'कर्म' शब्द का इतना ही अर्थ है कि जैसे आप कर्म करोगे वैसा फल पाएँगे। जैसा आप बोओगे, वैसा आप काटोगे। कर्म का मतलब एक्शन या क्रिया ले लेते हैं लेकिन जैन दर्शन में कर्म वह है जो हमारी आत्मा में बंध जाता है संस्कार के रूप में, जो हमारी आत्मा को दूसरी जगह, दूसरी गति में ले जाता है। इस कर्म सिद्धांत पर इतनी बड़ी-बड़ी पुस्तकें लिखी हुई हैं कि आपका पूरा का पूरा जीवन कम पड़ जाएगा जैन दर्शन के अध्ययन के लिए। पर आपको फुर्सत कहाँ है और यदि हम सुनाने बैठ जाएँ तो आप कहते हो कि महाराज आपने बोर कर दिया। जब हम आपको आत्मा और कर्म की ओर ले जाने लगते हैं तो आप उदासीन हो जाते हो, नींद आने लगती है क्योंकि आपकी रुचि उस परमात्म तत्त्व की ओर है ही नहीं। आपकी श्रद्धा में वह भाव है ही नहीं कि हमने जिस महान कुल में जन्म लिया, हमें वो जिनवाणी सुनने का सौभाग्य मिला है जिसमें आस्रव, संवर, बंध और निर्जरा इन सब तत्त्वों की इतनी सटीक बारीक व्याख्या है कि जैसे-जैसे आपके परिणाम बढ़ेंगे, किन-किन कर्मो का संवर होगा, निर्जरा होगी, आस्रव होगा। इन सबको बिल्कुल व्यवस्थित रूप से संयोजित किया गया है। ऐसा वह सर्वज्ञ भगवान् के अलावा आत्मा को देखने वाला दूसरा कोई नहीं। सर्वज्ञ भगवान् ने सात तत्त्वों का वर्णन किया जिसमें प्रथम **जीव तत्त्व** है एवं अंतिम मोक्ष तत्त्व है। आप देखना दूसरे किसी भी दर्शन में मोक्षगामी भाव देने के लिए कोई भाव नहीं बताया है, कोई तत्त्वज्ञान नहीं है। अगर कोई उस प्रक्रिया में ढलेगा तो उसे अपने आप समझ में आएगा कि किसी प्रक्रिया में जाने के लिए तत्त्व ही हमें आगे बढ़ाएँगे। **आस्रव** का अर्थ है आत्मा में कर्मों का आना एवं कर्मों का झड़ना **निर्जरा** है एवं कर्मों से मुक्ति **मोक्ष** है। ऐसे इन सात तत्त्वों का दिव्यदर्शन जिनवाणी में मिलता है पर आप लोग जिनवाणी पढ़ने का मन बनाते नहीं, अभ्यास करते नहीं।

जिनवाणी के सिद्धांत आज पढ़ा-लिखा व्यक्ति नहीं जानता, अनपढ़ की क्या बात करें। पढ़ा-लिखा व्यक्ति फिजिक्स, केमेस्ट्री, मैथ्य पढ़कर इतना बोर हो जाता है कि नया पढ़ने की उसकी रुचि नहीं रह जाती। जिनवाणी पढ़ने के भाव या रुचि भी कोई पूर्व जन्म के पुण्य से उत्पन्न होती है, सबको नहीं होती। जिनवाणी में आनंद आने लगे, पढ़ने में रुचि बढ़ने लगे तो ये आपकी

निकट भव्यता का बहुत बड़ा लक्ष्य है, यह आपकी मोक्ष तत्त्व में रुचि का उत्पन्न होना दर्शाता है। अब आपके लिए ये संसार थोड़ा सा बचा है। इस जिनवाणी की इतनी महिमा है पर आप समझ नहीं पाते तो आपका जीवन यूँ ही व्यर्थ चला जाता है। कई बार पढ़े-लिखे लड़के एम.बी.ए., एम.सी.ए. करने वाले उनसे जिनवाणी पढ़ने को कहें तो कहते हैं कि जॉब में हैं, समय ही नहीं मिलता। अगर आप थोड़ा सा भी पढ़ें तो आपके दिमाग में **'हायर वेल्यूस'** आ सकती है। कोई सा भी प्रोफेशन हो, उसमें सफल होने के फंडे आपको यहीं से मिलेंगे। अपने जीवन में उच्च लक्ष्य बनाओ। यदि आपका जॉब सिर्फ पैसों के लिए है तो वह आपको उतनी खुशी नहीं देगा, जो सुख व खुशी आपको कुछ मिनिंगफुल भाव जॉब के साथ जुड़े रहने पर मिलेगी। जहाँ 'मनी' सर्वोपरि हो जाती है, वहाँ 'मिनिंग' (अर्थ) छूट जाते हैं। 'मिनिंग' अर्थात् जिसके लिए जो किया जा रहा है वो छूट जाता है और जो सामने है हम बस उसी की दौड़ में पड़े रहते हैं। अध्यात्म क्षेत्र में, लौकिक क्षेत्र में और अलौकिक क्षेत्र में भी यही होता है। अलौकिक मार्ग में भी ये होता है लोग तपस्या-तपस्या, व्रत-संयम, नियम, पूजा-पाठ सब करते हैं पर उसका अर्थ क्या है, किसलिए करते हैं अगर ये ही नही मालूम हो तो सब व्यर्थ है। यहाँ पर ज्ञान धन को धर्म कहते हैं और इस ज्ञान धन के लिए आप पूजा-पाठ, तप-त्याग करेंगे तो उसका मिनिंग होगा। सिर्फ पैसा इकट्ठा करने से सुख नहीं मिलेगा। सुख पाने के लिए कोई भी काम करो पर उच्चतम लक्ष्यों को लेकर करो।

मान लो, आप एक शिक्षक हैं, आप जैसे ही कक्षा के अंदर पहुँचते हो। आप सोचते हो कि हमें अपना कोर्स पढ़ाना है, तनख्वाह लेना है और ड्यूटी करके चले जाना है तो आप कभी भी एक सफल अध्यापक नहीं कहला सकते, न आपको उसमें सुख मिलेगा। पर यदि उसी कक्षा में शिक्षक अपने उच्च मूल्यों को ध्यान में रखे और माने कि ये ५० छात्र हैं, इनके माध्यम से देश का भाग्य बनना है, इन्हें संस्कारित करेंगे तो ये ५० छात्र देश के अंदर बहुत बड़ी अलख जगा सकते हैं। इनके संस्कार व ज्ञान दुनिया को ज्ञान दे सकता है। उच्च मूल्यों वाला शिक्षक उन्हें ढंग से पढ़ाएगा, प्रेक्टिकल भी कराएगा व संस्कारित करेगा तो उसे भी आनंद आएगा व छात्रों को भी आनंद आएगा। यदि आप किसी इंश्योरेंस कंपनी में काम करते हो या फाइनेंसर कंपनी में और आपके संबंधित डीलर आने वाले हो और आप ग्राहकों को समय पर लोन या अन्य सुविधाएँ दिला देते हो तो वो आपके उच्च मूल्य कहलाएँगे। उनको व आपको खुशी एवं सुख प्राप्त होगा। पर यदि आपकी जिंदगी में केवल मनी-मनी दिखाई देगी तो आप दूसरों के लिए कोई आदर्श नहीं बन पाओगे, प्रेरणा नहीं दे पाओगे। आप दूसरों की मदद करोगे, उनके काम आओगे, आपकी

सेवा-भावना को देखकर दूसरे लोग अपने आप सेवा-भावना करना सीख लेंगे, ये कहलाती है **'मिनिंगफुल लाइफ'।** अलौकिक जीवन में आनंद प्राप्त करना है तो भी जीवन में एक मिनिंग बनाना होगा। हम जो भी कर रहे हैं आत्मा की प्रोग्रेस के लिए कर रहे हैं। आत्मा को पहले श्रद्धा में रखो, आत्मा को अपने ज्ञान में लाओ। इस मिनिंग को यदि भूल जाओगे तो सब कुछ छूट जाएगा। कई बार ऐसे तपस्वी भी हो जाते हैं।

आपने कंस का नाम सुना है लेकिन कंस का पूर्व भव कैसा रहा ये आपको पता नहीं होगा। कंस क्यों मरा और उसके लिए ऐसी क्या स्थिति बन गई कि उसे अपने ही माता-पिता को जेल में डालना पड़ा। कंस का जीव पूर्व जन्म में जटाजूट धारण किए एक तापसी था और मनचाही तपस्या करता था। एक दिन उसे एक मुनिराज मिले, उन्होंने समझाया ये अज्ञानता का तप क्यों करते हो। उसने पूछा कि ज्ञान का तप क्या होता है? मुनिराज ने कहा जिसमें हिंसा हो रही है, आत्मा के ज्ञान की एवं श्रद्धा की परिणति नहीं है, उससे तुझे क्या मिलने वाला है। तब उसने वो तप छोड़कर मुनिराज से दीक्षा ले ली व उनका अनुकरण करने लगा। गुरुजी एक महीने का तप करते तो वो भी वैसा करता। एक महीने के तप के बाद जब वह पारणा के लिए निकला तो जिस गाँव में वह पहुँचा और वहाँ के राजा को पता चला कि कोई तपस्वी मुनि पारणा हेतु आ रहे हैं, उसने आज्ञा दे दी कि मुनि को हम ही पारणा कराएँगे और कोई नहीं कराएगा। जब मुनि पारणा हेतु निकलने वाले थे तभी एक मंत्री ने आकर राजा को खबर दी कि पड़ोसी राज्य का राजा आक्रमण करने आ रहा है। राजा घरवालों को कहकर कि मुनिराज के पारणे की व्यवस्था कर लेना और वह निकल गया। घर वालों ने ध्यान नहीं दिया और मुनिराज पूरा गाँव घूमकर आ गए और फिर से एक महीने के बाद पारणा का नियम ले लिया। एक माह बाद फिर राजा ने कहा कि हम ही पारणा कराएँगे और संयोग की बात कि जिस दिन मुनिराज निकलते हैं उसी दिन गाँव में कहीं आग लग जाती है और राजा पारणा की बात भूलकर उसमें लग जाता। मुनिराज फिर गाँव घूमकर लौटते हैं और एक महीने का नियम ले लेते हैं। अब तीसरा महीना आया तो राजा के अंदर वही भाव आ गया कि तीन महीने के उपवास की पारणा तो हम ही कराएँगे। संयोग से उसी दिन राजा के घर पर पुत्र की प्राप्ति हो गई, घर में सोर-सूतक लग गया। गाँव में सबको मना कर रखा था। गुरु से उसने दीक्षा तो ले ली लेकिन उसके साथ में जो ज्ञान होना चाहिए वो नहीं लिया। तीन महीने की तपस्या के लिए तो शक्ति मिल गई पर आत्मा की साधना करने में अभी भी कमी थी। तीन महीने की साधना के बाद जब वह गाँव से वापस निकल रहा था तब एक बुढ़िया कहती है

कि ये राजा करता क्या है, दूसरों को पारणा कराने नहीं देता और खुद इधर-उधर व्यस्त हो जाता है, ऐसे तो राजा उन्हें मार ही देगा।

वह बुढ़िया बात कर रही थी और मुनिराज के कानों में बात पड़ गई और अज्ञान का तप था तो मुनिराज के अंदर का क्षमा भाव, शांत भाव, क्रोध भाव में बदल गया। जब तक वह प्रसंग मालूम नहीं था तब तक उन्हें क्रोध नहीं था। जैसे ही बात सुनी मतलब राजा मेरा शत्रु है, वह मुझे पारणा करने नहीं देता, वह मुझे मारना चाहता है और उन्होंने उसी समय पर निदान बंध कर लिया। **निदान बंध** यानि मेरी तपस्या का जो भी पुण्यफल है अब मुझे उससे ये फल मिले कि मैं इसकी अक्ल को ठिकाने लगाऊँ, उसे इसी प्रकार से पीड़ा दूँ, निदान बंध करने के बाद में वह उसी राजा के यहाँ पर पुत्र के रूप में उत्पन्न हुआ और उस पुत्र ने ही बाद में अपने माता-पिता को बंदीगृह में डाला। कंस का जीव पहले ऐसे तापसी का जीव रहा, अज्ञान से मुनि भी बन गया लेकिन भीतर ऐसे आत्मज्ञान से उत्पन्न आह्लाद की कमी होने के कारण से छोटी-छोटी सी बातों पर क्रोधित हो जाता है और तपस्या में भी निदान बंध का भाव आ जाता है। उधर उसके गुरु महाराज ज्ञान सहित तपकर रहे हैं, उन्हें दो महीने के बाद केवलज्ञान की प्राप्ति हो गई। ऐसा परिणमन क्यों होता है क्योंकि हम अपने उच्च मूल्यों को भूल जाते हैं। सबसे बड़ी हायर वेल्यू क्या है- 'अपनी आत्मा के उच्च स्वरूप को लक्ष्य बनाकर के तपस्या करना,ये सबसे बड़ी हायर वेल्यू हैं। अपने प्रोफेशन के लिए एवं अपनी आत्मा के लिए लक्ष्य बनाना है तो हायर वेल्यूस पर ध्यान दो, उसके बिना बीच में जितने भी प्रलोभन मिलेंगे, उनमें इस आत्मा का भटकना नियम से हो ही जाता है। जो आत्मा इन भटकनों से अपने आपको बचाता है, उसे मोक्ष की इमारतें/महल मिलते हैं और उसी को मोक्षवधु का दर्शन होता है। ये मोक्ष की अवधारणा इस आत्मा की सबसे हायर वेल्यू हैं। इसलिए आचार्य कहते हैं तपस्या त्याग भी उतना ही करो जिससे अपना दिमाग शांत बना रहे। इतनी गर्मी न चढ़े कि हम ये ही भूल जाए कि हम किसके लिए त्याग कर रहे हैं, किसलिए त्याग-तपस्या कर रहे हैं। पर्यूषण में महिलाओं का तपस्या पर जोर ज्यादा रहता है। यदि आत्मज्ञान के साथ तपस्या करे तो बहुत आनंद आता है और भीतर से ऐसे परिणाम उत्पन्न होते हैं, ऐसी विशुद्धि आगे किसी समय में नहीं होगी। जब कभी मन होता है तो तपस्या करके भी विशुद्धि को एवं आह्लाद को बढ़ाया जाता है।

श्लोक– ३४

आत्मदेहान्तरज्ञान– जनिताह्लादनिर्वृत्तः।
तपसा दुष्कृतं घोरं भुञ्जानोऽपि न खिद्यते।।३४।।

जो जानता तन तथा निज आत्म–भिन्न, होता नहीं वह कभी यति खेद–खिन्न।
शीतातिशीत हिम से डरता नहीं है, संतप्त चूलगिरि पे तपता वही है।।३४।।

आत्मविशुद्धि हेतु तप

आत्मा और देह के भेद ज्ञान से जो आह्लाद उत्पन्न हुआ है, उस आह्लाद से जो भरा हुआ है, वह व्यक्ति कभी भी तप करने के बाद कभी भी खेद-खिन्न नहीं होता है। वशिष्ठ मुनि का जीव बाद में कंस बना था, वह इस आह्लाद से अछूता था इसलिए उसके अंदर निदान करने का भाव आ गया। जो आह्लाद में रहते हैं वे उस मोक्ष को प्राप्त करते हैं, आत्मा के अंदर भरे आनंद को प्राप्त करते हैं जिसमें बाहरी तपस्या बढ़ती जाती है और उन्हें उतनी ऋद्धियाँ और मिलती जाती हैं। वे जितना-जितना तप करते हैं उतनी ही उनकी देह में कांति बढ़ती चली जाती है। एक ऐसी तप ऋद्धि भी मिल जाती है कि यदि वे जीवन भर भोजन नहीं भी करे तो उन्हें कोई बाधा नहीं होती है। गणधर परमेष्ठी के लिए शास्त्रों में लिखा रहता है कि एक केवलज्ञान को छोड़कर बाकी सब ऋद्धियाँ उनके पास होती है। वे यदि जीवन भर आहार न भी ले तो उनके शरीर में क्लांति नहीं होगी बल्कि कांति बढ़ती जाएगी। हो सकता है ऐसी ऋद्धि के कारण से वो भगवान् के समवशरण को छोड़कर नहीं जाते हो। गणधर परमेष्ठी जब तक भगवान् सामने होते हैं, वे भगवान् से इतना राग रखते हैं कि वे अपनी आत्मा के लिए शुक्ल ध्यान करने का भी भाव नहीं करते। सबसे ज्यादा राग तीर्थंकर भगवान् से रखने वाले गणधर परमेष्ठी होते हैं। राग भगवान् से कभी भी दु:ख का कारण नहीं है। जब तक भगवान् है तब तक भगवान् को देखने का आनंद, उनकी

वाणी सुनने का आनंद लो। ध्यान करके मोक्ष तो जाना ही है, ये तो पक्का ही है लेकिन भगवान् को छोड़कर के क्यों जाओ। जिनके हम शिष्य बने हैं, उनको छोड़कर के क्यों जाओ। पहले उन परमगुरु की आराधना करो, जिन गुरु के माध्यम से हमें ये ज्ञान मिला है। इसलिए गणधर परमेष्ठी जब तक भगवान् रहते हैं तब तक आत्मध्यान नहीं लगाते हैं क्योंकि आत्मध्यान लगते ही केवलज्ञान होने में उनको देर नहीं है। जिस दिन भगवान् महावीर स्वामी को मोक्ष हो गया उसी दिन गौतम गणधर ने ध्यान लगा लिया और उसी शाम को उन्हें केवलज्ञान हो गया। जिनके अंदर ऐसी शक्तियाँ आ जाती हैं तो फिर उन्हें और किसी वस्तु में अनुराग नहीं रह जाता, केवल बस भगवान् में अनुराग रह जाता है। जब गणधर परमेष्ठी भी भगवान् में इतना अनुराग रख सकते हैं तो आप और हम जैसे लोग तो बहुत छोटे लोग हैं। भगवान् में इतना राग व इतनी भक्ति रखना कि उस भक्ति से ही हमें मोक्ष मिलेगा और उस भक्ति के पीछे ये जरूर ध्यान करना कि वह भक्ति भी भगवान् के आत्मस्वरूप की हो, भगवान् के वास्तविक अनंत चतुष्टय की हो और भगवान् जैसा बनने के लिए हो। ऐसी भक्ति आप करेंगे तो आपको मुक्ति मिल जाएगी। इसलिए कई आचार्यों ने लिखा है भक्ति ही मुक्ति का कारण है। उस भक्ति के साथ आपको हर क्रिया में आनंद आएगा, कोई खेद खिन्नता नहीं होगी।

एक बुढ़िया ने कह दिया तो ये नहीं सोचा कि अरे जिसके लिए तप कर रहा है उसका फल भी तो उस कर्म के माध्यम से मिलेगा। अगर तेरे पुण्य में नहीं है तो तेरे लिए किसी दूसरे पर क्रोध करने की जरूरत नहीं है। सबसे बड़ा तपस्वी वो होता है जो अपने कर्म के उदय को ध्यान में रखता है। अगर हमें पारणा मिल गई तो वो भी कर्म के उदय से और नहीं मिली तो भी कर्मोदय से। दृष्टि चली गई राजा के कारण से, बस यही हो गया अज्ञान। इसी अज्ञान के कारण से उसको वो फल नहीं मिला, अगले जन्म में कंस बन गया। राजा तो बना पुण्य के कारण से पर उसे मोक्ष नहीं मिलेगा। इसलिए तपस्या बुरी नहीं है। पर उस तपस्या का 'मिनिंग' होना चाहिए। आचार्य कहते हैं कि जब तपस्या की जाती है तो ऐसा आनंद आता है वो आनंद आपको तपस्या में ही आएगा। आप इस आत्मा और देह विज्ञान के साथ में तपस्या करना। भादो मास में लोग बहुत उपवास करते हैं, ५, १०, ३१ उपवास करते हैं। इस पर्यूषण पर्व में एक सलाह देना चाहता हूँ, बुरा नहीं मानना। तपस्या में भी अपने अंदर संक्लेश नहीं होना चाहिए, छटपटाहट नहीं होनी चाहिए। अपने परिणाम में इतनी शांति रहनी चाहिए तभी वह लाभदायक होगी। किसी भी प्रकार

का रिकॉर्ड बनाने के लिए तपस्या नहीं करना है। ज्यादातर साधक लोग इसी अज्ञानता से गुजरते हैं- हमारे इतने उपवास हो जाएँगे तो घर-परिवार, समाज को न्यौता देंगे, इतना बड़ा जलसा करेंगे, ये सब भावनाएँ नहीं हों। ये तो बाद की भावना है। करने के बाद हम निष्ठापन इस ढंग से करेंगे लेकिन हम इसलिए नहीं कर रहे हैं ताकि हमारे रिश्तेदार इस ढंग से जाने, वे आएँ। हम उद्देश्य को अच्छा बनाकर करें तो हमें अच्छा फल देती है। सबसे बड़ा उद्देश्य होना चाहिए- ''आत्मा से कर्म की निर्जरा करने के लिए, आत्मा की विशुद्धि बढ़ाने के लिए हे भगवन हम इस तप को अंगीकार कर रहे।'' ये अपने लिए लक्ष्य बनाओ। महिलाएँ बहुत से व्रत करती हैं चंदन छठ, कुछ व्रत पति के, कुछ संतति के लिए और कुछ सौभाग्य के लिए किए जाते हैं पर यदि उनके पीछे हायर वेल्यूस हो तो वो दोनों उद्देश्य के लिए बैठ जाएगा। फसल उगाओगे तो घास-फूस तो अपने आप निकल ही आती है, उसके लिए कोई बीज नहीं बोया जाता। गेहूँ की फसल आएगी तो घास-फूस अपने आप आएगी और आप दोनों अलग-अलग कर दोगे। आप ये थोड़ी न करोगे कि भैया गाय के लिए चारा नहीं था इसलिए हमने फसल उगाई थी। आपने यदि गाय के चारे के लिए फसल उगाई थी तो आपके लिए गेहूँ का कोई महत्त्व नहीं है और आपकी इतनी मेहनत बेकार जाएगी।

आचार्य कहते हैं कि लक्ष्य ऊँचे बनाकर चलो, हमेशा धर्म में भी हायर वेल्यू/उच्च लक्ष्य होने चाहिए- हमें अपने स्वरूप आत्मा का अनुभव करना है। ऐसे हम अनुभव करते हैं तो उन लक्ष्यों में मन में ये अनुभूतियाँ आती हैं। एक बार हमने अमरकंटक में सोचा कि एक उपवास से ज्यादा भी कर लें, मौसम भी अनुकूल रहता है। एक व दो कर लिए, अपने मन में सोचा कि परिणाम शांत है, विशुद्धि बनी हुई है, गुरु महाराज की आज्ञा भी जरूरी नहीं मिल जाए। उन्होंने हुलिया देखा और पूछा ठीक लग रहा है, पित्त तो नहीं भड़क रहा, अच्छा ठीक है, आशीर्वाद। तीसरा भी हो गया। दूसरे व तीसरे उपवास के साथ में मन में ऐसी परिणति प्राप्त होती है कि मोक्षमार्ग पर चलने वाले गुरुओं के प्रति विनय के भाव और तपस्वियों की तपस्या को ध्यान में रखते हुए, उनके प्रति भक्ति व अनुराग के भाव बढ़ जाते हैं। उस समय वास्तव में महसूस होता है कि व्यक्ति ५-५, १०-१० महीने भर के उपवास करते हैं और हम तो २-३ दिन के उपवास में ही थक गए, तब मन में तपस्या व तपस्वी के प्रति भक्ति उमड़ती है। भक्ति के लिए भी कुछ समर्पण करना पड़ता है, तपस्या करनी पड़ती है। तपस्या के प्रति भक्ति, श्रद्धा, समर्पण का भाव

कभी भी शास्त्र पढ़ने से नहीं मिलेगा। ये अनुभूतियाँ तपस्या के साथ ही होती है इसलिए आप भी यथाशक्ति तप करें लेकिन उस तप के प्रयोजन को अच्छा रखें। कोई भी काम करें उसकी हायर वेल्यू को हमेशा ध्यान में रखें। आपकी यदि किराने की छोटी सी दुकान हो पर आप चाहे कि ग्राहक को अच्छे से अच्छा सामान दें, कम न तोले, समय पर दें तो ये आपको अलग सुख देगा। ये हमेशा ध्यान में रखो कि चाहे लौकिक मार्ग हो या अलौकिक मार्ग हो, अपने उद्देश्य अगर अच्छे रहते हैं तो हमें जीवन में सुख मिलता है, केवल जॉब करने से सुख नहीं मिलता। जॉब के पीछे मिनिंग क्या है, ओनली फॉर मनी या जॉब फॉर सम परपज ऑर सम मिनिंग। अगर उस जॉब के पीछे कुछ मिनिंग है, सिर्फ पैसा कमाना है कि मोबाइल का बेलेंस, स्कूटी का पेट्रोल, पार्टी लेना-देना आदि करना। महिलाओं की बीसी पार्टी चलती है, १०-१५ को इकट्ठा कर लिया। एक-एक महीने में एक की तरफ से चाय-पार्टी। १०-१५ महीने का इंतजाम हो गया। पर इस आनंद से अपना कोई भला होने वाला नहीं है। आप उसकी जगह पर ऐसी अच्छी चीजें डेवलप करें जिसके माध्यम से आपको केवल शारीरिक आनंद ही नहीं, कुछ मानसिक आनंद भी व आत्मिक आनंद भी मिले। कभी भी आप कोई उद्देश्य बनाते हैं तो ऐसा एक उद्देश्य बनाएँ जिसमें हम अपने आत्मतत्त्व की ओर इंगित हो और उससे भी हमें कुछ लाभ मिले, सब चीज खेलने-खाने के लिए नहीं होना चाहिए। पार्टियों में तो आपको आनंद आ जाता है पर अन्य किसी भी कार्य में लगा दें तो आपका मन बिगड़ जाता है। सोचता है- वहाँ अपने को कुछ मिलेगा कि नहीं मिलेगा। मान लीजिए कि कोई धार्मिक आयोजन रखा, सभी समूह में तो आपका उद्देश्य सर्वप्रथम आत्मविशुद्धि करना, कर्म की निर्जरा करना, बाकी बाद में देखा जाएगा जो मिलेगा तो ठीक, नहीं मिलेगा तो ठीक। पर आपके द्वारा प्रथम प्रश्न ये रहता है कि भैया आएँगे हम पर वहाँ कुछ व्यवस्था रहेगी कि नहीं। सब मिलेगा चाय, नाश्ता, भोजन, दाल-बाटी, मिठाई... सब मिलेगा। तब ठीक है। तब उसका फल केवल उतना ही रह गया। आप सोचो हम जो भी काम कर रहे हैं उसका हमें बहुत बड़ा फल मिल सकता है पर क्यों नहीं मिलता क्योंकि हमारे सामने के उद्देश्य उस कार्य के पीछे नहीं होते हैं इसलिए ऊँचे उद्देश्य के साथ जीवन जीना प्रारंभ करो।

श्लोक– ३५

रागद्वेषादिकल्लोलैरलोलं यन्मनोजलम्।
स पश्यत्यात्मनस्तत्त्वं स तत्त्वं नेतरो जनः।।३५।।

योगीन्द्र का मन सरोवर है निहाल, ना हैं जहाँ कलुष राग तरंग जाल।
स्वामी! वही निरखता निज आत्मतत्त्व, रागी नहीं वह कभी लखता स्वतत्त्व।।३५।।

मोह निवृत्ति से आत्मानुभूति

आचार्य कहते हैं अपने आत्म तत्त्व को देखने के लिए राग-द्वेष आदि की कलोलों से अपने को पहले शांत करना चाहिए। कलोल तरंगों को कहते हैं और उन तरंगों के माध्यम से जिस तरह से जल में अपना रूप दिखाई नहीं देता वैसे जब तक आत्मा में राग-द्वेष का निवास रहता है तब तक वह आत्मा दिखाई नहीं देती। आप लोगों को वो आत्मा इसलिए नहीं दिखाई दे सकती कि जब तक आपके अंदर किसी न किसी पदार्थ से राग व द्वेष की परिणति चलेगी तब तक वह आत्म तत्त्व की जो अनुभूति है वह अनुभूति आपका विषय नहीं बन सकती। उस अनुभूति को प्राप्त करने से पहले एक और चीज आती है जिसे मोह कहा जाता है। तीन चीजें होती हैं– मोह, राग और द्वेष। मोह उसे कहते हैं जो हमारे मन को मूर्च्छित कर देता है, मोहित कर देता है और जिसके माध्यम से हम वस्तु को विपरीत रूप में ग्रहण कर लेते हैं। मोह हट जाने के बाद में राग और द्वेष की परिणति बनी रहती है। सबसे पहले अगर कोई चीज दूर होती है तो वो मोह दूर किया जाता है। मोह का मतलब होता है मोहित होने की प्रवृत्ति और विपरीत श्रद्धा की प्रवृत्ति को छोड़ देना। आपने किसी पदार्थ को देखा और देखते ही उस पर मोहित हो गए क्योंकि आपके ज्ञान में उस पदार्थ का विपरीत रूप से श्रद्धान बना हुआ है। अगर आप उसको सम्यक् रूप से न श्रद्धा में ला रहे हैं न जान रहे हैं तो मोह आपके साथ में चल रहा है। मोह होने के बाद में या राग होगा या द्वेष होगा, वह वस्तु हमें या तो अनुकूल दिखाई देगी या प्रतिकूल। हमें उसमें इष्ट या अनिष्ट की

कल्पना होगी। ये इष्ट-अनिष्ट की कल्पना होना ही राग व द्वेष की प्रवृत्ति कहलाती है। अगर बुद्धि में मोह छूट जाता है तो राग-द्वेष की प्रवृत्ति भी कम हो जाती है। हम वही देखते हैं जैसी भीतर से श्रद्धा करते हैं और सोचते हैं, अनुभव करते हैं। हम वह कभी नहीं देखते जैसी वस्तु होती है।

अगर हमारा अनुभव उल्टे रूप में चल रहा है तो बाहर का देखना व जानना भी उल्टे रूप में होता है। एक प्रसंग आपको सुनाया था कंस का, जिसके लिए एक बुढ़िया के माध्यम से बात सुनने में आई कि वह राजा तो मार ही डालेगा। इतनी सी बात सुनने के बाद बुद्धि में मोह उत्पन्न हो गया। मोह यानि उल्टा परिणमन, क्या कोई दूसरा हमको मार सकता है। अगर हमने ये सोच लिया कि कोई दूसरा हमको मार सकता है, जिला सकता है तो ये भी बुद्धि का उल्टा परिणाम है। यदि हमने सोच लिया कि हम उसको मारेंगे तो ये बुद्धि का और बड़ा उल्टा परिणाम है। यहाँ पर मोह भी है और द्वेष भी है। हमने यदि जिलाने के लिए सोच लिया तो वहाँ मोह व राग है। अगर सबसे पहले मोह को जीत लें तो राग व द्वेष को जीतने में आसानी होती है। सामने हमें कोई द्वेषी दिखाई दे रहा है या वह शत्रु या मित्र के रूप में आभासित हो रहा है तो ये हमारी बुद्धि की उल्टी गंगा है, इसी का नाम **मोह** कहलाता है। मोह को जीतने के बाद ही राग व द्वेष की प्रवृत्तियाँ जीती जाती हैं। मोह एक बड़ी प्रवृत्ति है, उसके माध्यम से हम छोटी सी बात से किसी को अपना दुश्मन समझ सकते हैं या दोस्त मान लेते हैं। जब हम एक स्टेप और आगे बढ़ जाते हैं। अगर वह हमसे द्वेष रखता है या हमारे मन में उसके प्रति एक धारणा बन गई कि ये एक हमारे वैरी हैं। उल्टा चलते हैं, हम उससे द्वेष कर लेते हैं और यदि लगे कि ये अनुकूल है तो हम उससे राग कर लेते हैं। वह जो तापसी था, वह मोह को नहीं जीत पाया। इसी कारण से उसके मन में उस राजा के प्रति द्वेष उत्पन्न हो गया, मथुरा के राजा उग्रसेन के प्रति। तपस्वी उस राजा के लिए ऐसा बंध कर लेता है कि अब मैं तुझे छोड़ूँगा नहीं। अब ये उसके लिए अनुबंध हो गया, भव-भव का बंध हो गया। जिससे भी तुमने ये भाव कर लिया, इसका मतलब है कि तुमने जन्म-जन्म के लिए नाता जोड़ लिया। जन्म-जन्म का नाता अच्छा भी होता है और बुरा भी। राग के साथ एवं द्वेष के साथ जन्म-जन्म के नाते जोड़े जाते हैं। अगर द्वेष के साथ ये भाव कर लिया है तो वो वैरी बनकर सामने आएगा और राग के साथ भाव किया है तो मित्र बनकर सामने आएगा। इसी में **संसार की परिणति** चलती है और इसी परिणति में जब उसका मरण होता है तो निदान करने के कारण उसने पहले ये सोच लिया था कि हमें इस राजा को अब **मारना** है तो वह उस राजा के यहाँ ही पुत्र बनकर पैदा हुआ।

जैसे ही वह पुत्र रानी की कोख में आया तो उसके मन में ऐसे विचार आने लगे कि वो किसी से कह नहीं सकती। सूख-सूख करके काँटा हो गई। वो अपने विचारों को अपने पति से भी नहीं कह पा रही थी। एक दिन राजा उग्रसेन ने पूछ लिया कि तुम्हें क्या हो गया है, जब से तुम्हारे गर्भ में पुत्र आया है, तुम्हारी काया म्लान होती चली जा रही हो। रानी कहती है मुझमें ऐसे दोहले भाव उत्पन्न होते हैं जो मैं आपसे कह नहीं सकती हूँ।

दोहला- जानते हो, जब कोई माँ गर्भवती होती है तो उसके मन में ऐसे भाव उत्पन्न होते हैं जो गर्भस्थ बच्चे की प्रवृत्ति के होते हैं। जैसा उस बच्चे का स्वभाव होगा, उसी स्वभाव के अनुसार माँ के अंदर विचार आते हैं। शायद आजकल ये दोहला बहुत कम होते हैं इसलिए आजकल जो संतानें उत्पन्न होती है, वे सामान्य स्वभाव की होती हैं। जिनके स्वभाव कुछ विशिष्ट होते हैं तो उनको विशिष्ट प्रकार के दोहले होते हैं। अगर कोई बचपन से ही क्रूर है, दुष्टता के संस्कार लेकर के आया है तो उस माँ के अंदर इस प्रकार के विचार उत्पन्न होते हैं कि मैं इसको मार डालूँ, मैं इसका खून पी लूँ। उस रानी के अंदर भी ऐसे ही विचार आते हैं कि मैं राजा का पेट फाड़ दूँ और उसका खून पी जाऊँ। अब वो राजा को कैसे बताए। अब राजा को विचार आता है कि यदि दोहला है और यदि उसकी पूर्ति कर दी जाए तो वह स्त्री सुखी हो जाती है। राजा ने उसके लिए कोई पुतला रखकर के कुछ उपाय किया ताकि रानी का जीवन बचा रहे। जब उसे पुत्र की उत्पत्ति हुई तब उसकी भोहें इतनी टेढ़ी थी कि आप देखकर के डर जाओ। उसकी आँखों में खूब क्रूरता झलक रही थी कि उसको देखकर के माँ डर गई और पिता कहते हैं जब से ये पुत्र घर में आया है तब से घर में अमंगल हो रहे हैं। अब करें तो करें क्या।

पहले आज जैसी व्यवस्था तो थी नहीं। आप होते तो गर्भ में ही कुछ कर देते। उस समय पर इस प्रकार के कोई भी कृत्य समझदार व्यक्ति करते नहीं थे। बालक के उत्पन्न होने के पश्चात् राजा-रानी के मन में विचार आया कि इसका अपन पालन नहीं कर सकते तो उन्होंने एक कांसे की मंजूषा यानि पिटारा में अपनी पहचान का पत्र लिखकर, साथ में धन, मुद्रा, अंगूठी इत्यादि रखकर के उसको यमुना नदी में प्रवाहित कर दिया। वह बालक नदी के बहाव से चलकर मथुरा से कौशाम्बी पहुँच गया। वहाँ पर एक कलाल- यानि मदिरा बनाने व पीने वाले के हाथ में वो मंजूषा लग गई। जब कलाल ने उसे खोला, बालक को देखकर उसे तरस आ गया और उसने उस बालक का लालन-पालन करना प्रारंभ कर दिया। धीरे-धीरे वह बड़ा हुआ। अपनी चेष्टाओं के अनुसार मोहल्ले के लड़कों को मारना-पीटना, गाली देना, शराब पीना बस यही उसका काम था।

उसे देखकर के उस कलाल व कलालन ने भी घर से बाहर निकाल दिया। वह अपने आप में बलवान् योद्धा था, धीरे-धीरे जाकर वह योद्धाओं की फौज में शामिल हो गया और सेनापति के रूप में सबके सामने आ गया। धीरे-धीरे उसका संपर्क हुआ वासुदेव से। ये भगवान् नेमीनाथ के समय की बात चल रही है। वासुदेव के साथ उसका उपकार- प्रति उपकार का रिश्ता चला। कभी वासुदेव को उसने बचाया तो कभी वासुदेव ने उसको। ऐसा करके ये एक-दूसरे के मित्र बन गए। उसी समय पर राजा जरासंध ने अपनी लड़की से उसका विवाह करने की सोच ली। विवाह के समय पर कुल-वंश पूछा जाता है। धीरे-धीरे जब पता किया गया कि वो आया कहाँ से तो मालूम चला कि वो कलालन के यहाँ पलता था, उसे छोड़े भी बहुत समय हो गया। जब उस कलालन को बुलाया और पूछने पर उसने मंजूषा में रखा पत्र दिखा दिया, मुद्रा दिखा दी। उससे ये स्पष्ट हो गया कि ये राजा उग्रसेन का पुत्र है। जब उसे पता पड़ा कि मेरे पिता ने मुझे गर्भ से प्रसूति होने के बाद ही भगा दिया तब उसका गुस्सा सातवें आसमान पर छू गया। उसने तभी सोच लिया कि अब मुझे इसी राजा उग्रसेन को बंदी बनाना है। वह सीधे मथुरा जाता है और राजा उग्रसेन से युद्ध करता है और बंदी बनाकर नगर के बाहर गोकुलद्वार में जो छोटा सा कमरा रहता है, उसमें रखा जाता है।

अपने ही पुत्र के माध्यम से वह पिता बंदी बना क्योंकि उस पुत्र ने पिछले जन्म में ही अनुबंध कर लिया था कि मैं इस राजा को पीड़ित करूँगा। राजा ने उसे बहा भी दिया था लेकिन कर्म कभी भी साथ छोड़ते नहीं हैं। दुश्मन से कितने भी दूर चले जाओगे पर यदि उससे वैर है तो वो कहीं न कहीं तुम्हें पा लेगा और कहीं न कहीं उसके हत्थे चढ़ जाओगे। वही कृत्य उस समय पर हुआ है। राजा उग्रसेन को बंदी बना लिया। कंस ने अपनी बहन देवकी का वासुदेव से विवाह करा दिया।

उन संबंधों के बनने के बाद एक निमित्त ज्ञानी मुनि महाराज के माध्यम से कंस को पता पड़ जाता है कि मेरा मरण देवकी के पुत्रों के माध्यम से होगा। मतलब मेरे ही भानजे मुझे मारेंगे। निमित्त ज्ञानी महाराज की बात झूठी नहीं जाएगी। तब वह वासुदेव से कहता है कि मायके में ही प्रसूति होने की प्रथा है और वह देवकी को अपने साथ ले आता है और उसकी प्रसूति की प्रतीक्षा करता है। देवकी को युगल पुत्र उत्पन्न हुए, उसी समय पर एक सेठ के यहाँ भी युगल पुत्र हुए, वे दोनों पुत्र मरे हुए उत्पन्न हुए। देवकी के पुत्रों की रक्षा करने देव आ गए और उन्होंने देवकी के पुत्रों का जन्म होते ही उन्हें उठाकर सेठ के पुत्रों से बदल दिया और उन्हें देवकी के बगल में सुला दिया। पुण्यात्मा जीवों की रक्षा उसके अपने पुण्य से होती है। विशिष्ट पुण्यात्मा जीवों की रक्षा हेतु देव

आ जाते हैं। जिनको उसी जन्म में मोक्ष जाना होता है, ज्ञान प्राप्त करना होता है, वे **'चरम शरीरी'** कहलाते हैं, उन्हें कोई मार नहीं सकता। देवकी के दोनों पुत्रों को कंस ने देखा कि वे मरे हुए हैं परंतु फिर भी उनको ले जाकर उसने एक शिला पर उन्हें पछाड़ डाला, पुन: मार दिया। ऐसा करके देवकी के ३ बार में ६ पुत्र उत्पन्न हुए- युगल/युगल। उधर सेठ के यहाँ दो पुत्र होते थे और इधर देवकी के और देव ले जाकर उन्हें बदल देते थे। कंस मरे हुए पुत्रों को मार कर संतुष्ट हो जाता था। देवकी के सातवें पुत्र के द्वारा कंस का मरण निश्चित था। उसके जन्म के समय सात दिन तक ऐसी घनघोर वर्षा हुई कि कंस के राजमहल में सभी इतने आतंकित हो गए कि बाहर क्या हो रहा है किसी को पता नहीं पड़ा और महल के अंदर की खबर ही कंस को बराबर नहीं पहुँच रही है। सबसे बड़ी बात ये हुई कि हर पुत्र की उत्पत्ति ९ महीने में होती है, उस पुत्र की उत्पत्ति सात महीने में हो गई। किसी को पता नहीं श्रीकृष्ण का जन्म हो गया। तुरंत उनके भाई व पिता बलदेव और वासुदेव दोनों उनको लेकर के चल देते हैं और शहर से बाहर निकलते हैं। रास्ते में पहले नगर द्वार बने रहते थे जिन्हें गोकुलद्वार कहते हैं। ऐसे गोकुल द्वार से उन्हें निकलना पड़ता था। द्वार के पहरेदार सो रहे थे, ताला लगा हुआ था। उस ताले पर श्रीकृष्ण का पैर लगाया गया और वो ताला खुल गया। इतना पुण्य रहता है जीवों के अंदर। उसी गोकुल द्वार पर उग्रसेन बैठे थे वो आशीष देते हैं बेटा चिरायु हो, उन्हें मालूम है कि अपनी रक्षा करने वाला ये ही है। आगे निकलते हैं तो सात दिन की वर्षा के कारण नदियाँ उफान पर थी, जैसे ही वासुदेव नदी में उतरते हैं, वो नदी एकदम शांत हो जाती है, पानी कमर से नीचे आ जाता है, आगे-आगे एक बैल चलने लग जाता है। बैल के रूप में वो देवता हैं जो मार्ग बताता है। नदी के दूसरे किनारे पर एक गाँव में उनका परिचित नंद गोप रहता था। उस नंद ग्वाले के यहाँ श्रीकृष्ण का पालन-पोषण की बात होती है। वसुदेव कहते हैं इस बात को गुप्त रखना, किसी से कहना नहीं।

कैसे-कैसे महापुरुषों का जन्म होता है और क्या-क्या होता है। जब जन्म हुआ तब भी कोई खुशी नहीं है। जब इस दुनिया से जाना होगा तब भी पता नहीं पड़ेगा कि कहाँ से चले गए। ऐसे भी जन्म होते हैं और ऐसे भी मरण होते हैं। दूसरे गाँव में नंद ग्वाला के यहाँ उनका पालन-पोषण होने लगा। उसके यहाँ कन्या उत्पन्न हुई थी, उसी कन्या को लाकर देवकी के बगल में रख दिया गया। कंस ने देखा कि इस बार तो कन्या उत्पन्न हुई है ये तो हमें मार नहीं सकती फिर भी उसने उसकी नाक को मरोड़ दिया और छोड़ दिया, उसे मारा नहीं। बाद में उस कंस को पता पड़ता है कि कहीं न कहीं, कोई न कोई हमारे शत्रु के रूप में पल रहा है। उसे याद आता है कि पूर्व जन्म

में जो तपस्या की थी तब उसे देवियों की विद्यासिद्धि हो गई थी। उन देवियों ने आकर कंस से कहा था तुम्हें जो माँगना है वो माँग लो। उस समय कंस कहता है जब हमें जरूरत हो तब हमारे सामने आ जाना। उस वक्त दो देवियाँ वहाँ आ गई और कहने लगी बताओ हम आपके लिए क्या कर सकते हैं। कंस उन देवियों को आदेश देता है कि जहाँ पर हमारा शत्रु पल रहा है उसे मार कर आ जाओ। वे देवियाँ कृष्ण के घर जाकर अनेक-अनेक रूप धर कर उन्हें डराती हैं, कोई सांप का रूप लेती है तो कोई पत्थर बरसाती है, कोई भयानक रूप रखती है पर श्रीकृष्ण किसी से भी नहीं डरते बल्कि देवियाँ कृष्ण से डरकर वापस आकर कंस से कहती हैं हम आपका काम नहीं कर सकते। सुन रहे हो मनुष्यों, देव लोग भी उन मनुष्यों से डरते हैं जिनके पास धर्म होता है, उनकी देव भी सेवा करते हैं। जो मनुष्य पिछले जन्म में धर्म करके आते हैं, पुण्य लेकर आते हैं, उन्हें देव भी साथ देते हैं। अपनी धारणा तो ये बनी रहती है कि हम जैसा करेंगे बस वैसा ही होगा। हम कुछ नहीं करेंगे तो कुछ नहीं होगा, हम जो करेंगे वो ही होगा तो ये धारणा भी आपकी गलत होती है। कई बार आपके कहने से भी कुछ नहीं होता है और कई बार कुछ नहीं करके भी आप बहुत कुछ पा जाते हो।

आप देखना आपके जीवन में जो कुछ भी चलता है उसमें बहुत कुछ नहीं किया हुआ होता है वो आपके सामने आता है। आपने किसी लखपति/करोड़पति घराने में जन्म ले लिया तो उसका सारा पैसा/वैभव आपका हो गया, आपने अभी किया कुछ भी नहीं है, ये आपका पूर्व जन्म का पुण्य था। यदि किसी निर्धन घर में जन्म हुआ तो वो आपके पूर्व जन्म के पाप के कारण हुआ। बहुत कुछ जीवन में अपने **पुण्य व पाप** से घटित होता है। जो आप कर रहे हो उसका रिटर्न भी आपको आपके पुण्य-पाप के अनुसार मिलेगा। पढ़ रहे हो तो साथ में पास हो जाओ तो उसके लिए भी पुण्य चाहिए। बिजनेस में सफल होने के लिए भी पुण्य चाहिए। घर में आई बहू भी अच्छी मंगलमयी बनी रहे तो भी पुण्य चाहिए। उस बहू के कारण घर में कलह भी हो सकती है व घर स्वर्ग भी बन सकता है। बहुत बड़ी रिस्क रहती है हर चीज में, वो सब निर्भर करता है आपके पुण्य व पाप पर लेकिन आपकी दृष्टि कंस जैसी रहती है, कृष्ण जैसी नहीं। कंस की दृष्टि में हम सामने वाले पर मित्र/शत्रु मानकर उस पर टूट पड़ेंगे। कृष्ण की दृष्टि में आप अपने पुण्य व पाप पर विश्वास करके अपने अनुसार अपने भाव बनाएँ। हमारा कोई भी शत्रु कुछ नहीं बिगाड़ सकता। हमारे लिए जब तक पुण्य का उदय है हमारा कोई शत्रु बाल बांका नहीं कर सकता, शत्रु हो नहीं सकता, ऐसी दृष्टि को बनाकर रखने वाला कृष्ण दृष्टि है। जब तक बहू दहेज ला रही थी तब तक

अच्छी लग रही थी, अब दहेज आना बंद तो बहू बुरी लगने लगी। जिसकी दृष्टि अपने पुण्य-पाप पर रहेगी वह कभी भी बहू को कलंकित नहीं करेगा, वह कभी नहीं कहेगा कि इस बहू के कारण से मेरे घर में अमंगल हो रहा है या मंगल हो रहा है। अपने पुण्य-पाप पर दृष्टि डालोगे तो तुम्हारी दृष्टि में सम्यक्ज्ञान उभरेगा और तुम्हारी दृष्टि कृष्ण दृष्टि कहलाएगी। आज भी आदमी में दोनों प्रकार की दृष्टि होती है, मन में कंसता भी है और कृष्णता भी है। जिसमें कंसता ज्यादा होगी वो अपने घर के लोगों पर अत्याचार करेगा, अपने माता-पिता को परेशान करेगा, बंदी बनाएगा, उन्हें वृद्धाश्रम में छोड़ देगा और स्वयं आलीशान फ्लैट में रहेगा।

जिन बेटों को बड़ी मेहनत से पढ़ाया-लिखाया, एकमत हो उनके सुख-दु:ख में साथ दिया, वे ही जब वृद्धाश्रम छोड़े तो किसको दोष दोगे। अपनी किस्मत को ही दोष दो। तब आदमी को ये सोच लेना चाहिए कि हमने पिछले और इस जन्म में कोई धर्म नहीं किया क्योंकि धर्म से ही पुण्य कर्म का बंध होता है एवं धर्म से ही हमें सभी अनुकूलताएँ मिलती हैं। भीतर पलडे में यदि धर्म नहीं है तो कोई अनुकूलता नहीं मिलने वाली और यदि धर्म है तो किसी अपरिचित के पास भी चले जाओ तो वो भाई की तरह व्यवहार करेगा, सहायता करेगा। भीतर धर्म है तो दुश्मन भी दोस्त बन जाता है। हमारे अंदर का पुण्य और पाप हमें संचालित करता है तब हमारी दृष्टि में यही आना चाहिए कि हम चाहते तो बहुत कुछ अच्छा हैं लेकिन अच्छा हो नहीं पाता है। यदि धर्म करने का मन बनाओ तो आगे से आगे सब कुछ अच्छा होता दिखाई देता है। आपके मन में विश्वास नहीं है कि धर्म करने से अनुकूलताएँ मिलेंगी तो हम धर्म करें। करेंगे तो हम वही जो हम कर रहे हैं। हर आदमी वह नहीं करता जो उसे करना चाहिए, वह वो सब करता है जो उसे पसंद आता है।

उसे वह पसंद आता है जो उसके लिए बिगाड़ का कारण होता है क्योंकि उसके पास में अपनी इतनी बुद्धि नहीं होती कि वह यह सोच सके कि हमारे लिए क्या सही है और क्या गलत है। आप छोटे-छोटे बहाने करते हैं वैसे ही जब धर्म करने का समय था तब राजा उग्रसेन के अंतराय कर्म आ गए। जिस समय मुनि महाराज को आहार देने का था, उसी समय उसे अंतराय कर्म का उदय, दूसरी व तीसरी बार भी वही अंतराय कर्मोदय। एक बार यदि अंतराय कर्म का उदय आया, उसे टाला भी जा सकता है। अगर कहीं आग लग गई है तो स्वयं राजा है, किसी दूसरे को भी भेज सकता था लेकिन वह स्वयं चला गया, उसने आहार क्रिया को महत्त्व नहीं दिया। अगर वह स्वयं नहीं जाता, वह धार्मिक क्रिया स्वयं करता तो आगे के लिए उसे अंतराय कर्म नहीं आता।

जिस समय आपके सामने धर्म करने का माहौल हो, उस समय पर आप उसको टाल दो, बहाना बना दो, समझ लेना आपको बहुत बड़े अंतराय कर्म का बंध हो रहा, यह फिर आगे व्यवधान उत्पन्न करेगा, फिर जब चाहोगे तो भी नहीं होगा। जब पूजा-अर्चना करना चाहोगे तो सूतक-पातक आ जाएगा। व्यक्ति जिस रूप में करना चाहता है, वैसा कर नहीं पाता क्योंकि अंतराय कर्म का बंध तो होता रहता है। जब हमारे सामने धर्म करने की सहुलियत हो और व्यवधान भी आ रहा हो तो व्यवधान को दूर करो न कि धर्म को। जो व्यक्ति दूसरे को धर्म करने के लिए प्रेरित करेगा तो उसके हिस्से का आधा पुण्य स्वयं अर्जित कर लेता है। धर्म की दुकान कभी खाली नहीं रहती है, दिन दूनी रात चौगुनी वृद्धि होती रहती है। भाव करो करने का और जो व्यवधान आए उन्हें ये देखो कि ये वास्तविक है या हमारा बहाना है। अपनी आत्मा से पूछो, उनका समाधान अपने ही विचारों से होगा। हम जिस चीज को प्राथमिकता देते हैं, उसी के समाधान सामने आते हैं। आचार्य कहते हैं पहले अपनी बुद्धि सीधी करो ये राग-द्वेष तो बाद में होंगे, मोह को छोड़ो, वो छूटता नहीं है। जो भी करना अच्छे भावों के साथ करना। ये हमारी आत्मशक्ति को बढ़ाता हैं, आत्मविश्वास बढ़ता है मोह दूर होने पर। जो काम महीनों से लंबित पड़े थे वो काम आत्मविश्वास के बल पर दो-चार दिन में ही हो जाते हैं। जैन दर्शन के अनुसार श्रीकृष्ण का जन्म आने वाले भाद्र पक्ष के शुक्ल पक्ष में द्वादश तिथि को होता है। सातवें महीने में जन्म हुआ था और माता को सात स्वप्न आए थे। उस कंस को जो विद्याएँ सिद्ध हुई थीं वे ७ विद्या सिद्ध हुई थीं, जन्म के समय ७ दिन तक घनघोर वर्षा हुई थी। सात का अंक भी कई बार बहुत शुभ होता है। आचार्य महाराज का दर्शन कुंडलपुर में जिस सन् में हुआ था। ५२ नंबर के मंदिर में बैठे थे, दीक्षा ९ मुनि महाराज की एक साथ दीक्षा हुई तो इस आत्मा का ७वाँ अंक था। सम्मेद शिखर की यात्रा का सन् २००७ था। ९, ७, १, १० अच्छा होता है। इस अंक का भी एक अंक विज्ञान होता है उसके अनुसार भी अपनी राशि के अनुसार उसके फल मिला करते हैं, जिन्होंने धर्म किया है, पुण्य कर्म किया है, वे फल प्राप्ति की बाद में सोचते हैं। अगर पुण्य होगा तो वो तारीख भी अपने आप संयोग से मिल जाएगी, ये सब पुण्य से और धर्म से होता है। इसलिए धर्म करने के लिए हमें किसी भी प्रकार के बहाने नहीं बनाएँ और यदि कोई अड़चन आती है तो मन की पूरी शक्ति लगाकर उन्हें दूर करने का प्रयास करें।

श्लोक–३६

अविक्षिप्तं मनस्तत्त्वं विक्षिप्तं भ्रान्तिरात्मनः।
धारयेत्तदविक्षिप्तं विक्षिप्तं नाश्रयेत्ततः।।३६।।

संक्षोभ–हीन मन आतम का स्वभाव, संमोह–मान–मय–मानस है विभाव।
सारे अतः मलिन मानस को धुलाओ, आदर्श सादृश विशुद्ध उसे सजाओ।।३६।।

कषाय रहित संतुलित मनःस्थिति

यह एक आध्यात्मिक ग्रंथ है। इसके माध्यम से हम अपने मन को अच्छा बनाने का प्रयास कर सकते हैं। मन को अच्छा या सुंदर बनाने का थोड़ा सा ज्ञान ध्यान के माध्यम से ही आता है। आचार्य कहते हैं जो मन है वही हमारा तत्त्व है, तत्त्व कुछ और नहीं है लेकिन जिस मन से किसी भी प्रकार की विक्षिप्तियाँ न हो, विक्षेप न हो, ऐसा शांत मन ही तत्त्व कहलाता है। जब मन में विक्षिप्तता रहती है तो वह आत्मा की भ्रांति कहलाती है। जो अविक्षिप्त मन है उसे धारण करो, विक्षिप्तता का आश्रय मत लो। मन के अंदर विक्षिप्त और अविक्षिप्त दोनों प्रकार की दशाएँ बनती हैं। समय-समय पर इन दोनों दशाओं की अनुभूति सभी आत्माओं को होती है। जब मन में किसी भी प्रकार की मलिनता होती है तब मन विक्षिप्त हो जाता है। आप लोग विक्षिप्त तब उसे समझते हो जो बहुत ज्यादा दिमाग से हट जाए या डिस्टर्ब हो या स्क्रू ढीले हो गए हो। ये तो बहुत बाद की बात है। विक्षिप्तता आपको स्वयं महसूस करना हो तो आप स्वयं अपने आप में महसूस कर सकते हो। कई बार हम दिन में विक्षिप्त होते हैं और ये ज्ञान हमें अध्यात्म की दृष्टि से समझ में आता है। जिस समय पर हमारा मन अहंकार के कारण से मलिन हो, ईर्ष्या से ग्रसित हो, गुस्सा हो, किसी को मोहित करने का भाव करता हो आदि प्रसंगों पर हमारे मन में विक्षिप्तता आ चुकी होती है। आप अपने **मन की विक्षिप्तता** को जब समझेंगे तो उन्हें संभालने का भी साहस कर पाएँगे। मन की विक्षिप्तता का कारण है आत्मा का विभाव भाव से युक्त होना। आत्मा के अंदर

व्यवहारिक परिणामों का संयोग बनना, कषायों की तीव्रता का भाव आ जाता है। उस समय आत्मा के अंदर जो मन की संगति रहती है, उसमें विक्षिप्तता आ जाती है। क्रोध, मान, ईर्ष्या, छल-कपट, जलन, निंदा, मात्सर ये ऐसे भाव हैं जो मन को विक्षिप्त बना देते हैं। यदि आप थोड़े से सावधान हैं तो आप अपने आपको संभाल सकते हैं।

मूड

कभी-कभी आपको ऐसा लगता होगा कि हमें कुछ अच्छा नहीं लग रहा। हर मनुष्य के जीवन में ऐसा समय आता है, जब उसे लगता है कि अभी मुझसे कोई बात नहीं करें, अभी मेरा मूड ठीक नहीं है। बात 'मूड' तक बाद में पहुँचती है पहले मन में शुरू होती है और मन में भी तब पहुँचती है, जब आत्मा के अंदर वो विभाव रूप परिणमन उत्पन्न हो जाता है। इन सब चीजों का संबंध जुड़ा हुआ है। आत्मा में पहले काषायिक भाव उत्पन्न होगा, उस कषाय भाव की जो संवेदना होगी वो मन में होगी। मन से वह शरीर के सिस्टम के माध्यम से वह विचार बुद्धि में जाता है और तब हमें लगता है कि हम वह नहीं चाह रहे जो हमारे सामने हो रहा है। ऐसी परिस्थिति जब आपके सामने आती है तो आप समझ लेना आपका मन तत्त्व में लीन नहीं है, आपका मन तत्त्व से हटा हुआ है। आपका मन साम्य अवस्था में न होकर विक्षिप्त हो गया है। उस विक्षिप्तता को हल्का सा पागलपन कह सकते हैं क्योंकि तब हम काषायिक प्रवृत्ति में लीन हैं। हम उसे महसूस तो करते हैं लेकिन पागल के रूप में अपने आपको स्वीकार नहीं करते हैं। तब आप महसूस करें कि देखो पागलपन के झटके हमें लग रहे हैं, झटके कैसे जैसे भूकंप के होते हैं। जब बाहर से कुछ ज्यादा रेक्टर का भूकंप आता है तब तो हमें महसूस होता है। हल्के-फुल्के झटके को हम भूकंप नहीं कहते हैं लेकिन वह भी भूकंप का झटका है उसको भी हमें महसूस करना है। छोटे-छोटे झटके रोजाना आते रहते हैं, कभी भी, किसी भी समय पर आ जाते हैं और उसके लिए न कोई समय व न कोई परिस्थिति निर्धारित है।

आप तैयार हो रहे हैं घर में मंदिर आने के लिए, आपको किसी ने टोंक दिया, इतना मेकअप करके मंदिर जाने की क्या जरूरत है, आपको झटका लग गया। आपने बेटे-बेटी को टोंक दिया, जींस पहनकर मंदिर मत जाओ, कम से कम मंदिर में तो अच्छे वस्त्र पहनकर जाया करो, उसे बुरा लग सकता है। वो झटका इतना भी लग सकता है कि मुझे मंदिर ही नहीं जाना, कर लो क्या करना है। ये स्थिति भी उस मन की विक्षिप्तता है। किसी भी बच्चे का, व्यक्ति का नेचर उसके

इन्हीं भावों से देखा जाता है कि जब हम उसको कुछ कहते हैं तो वो किस ढंग से रिएक्ट करता है। यदि उसके अंदर सिनसियरिटी होगी, बड़ों के प्रति आदर का भाव होगा तो वो इस ढंग से प्रतिक्रिया नहीं देगा। आज के बच्चों में इस प्रकार की सिनसियरिटी व आदर का अभाव हो गया है सबसे ज्यादा उन्हें तब गुस्सा आता है जब वे कुछ करना चाहते हो और आप उन्हें बीच में टोंक देते हैं। तब वे ये ख्याल नहीं करेंगे कि वे अपने माता-पिता को क्या जवाब दे रहे हैं। यदि वे भाव कर रहे हैं कि हमें मंदिर ही नहीं जाना तो समझना चाहिए कि उसके अंदर गुस्सा बहुत भरा हुआ है एवं साथ में अहंकार भी भरा है। जहाँ ये दोनों चीजे हैं वहाँ समझ लेना कि उस आदमी का मन कभी भी शांत नहीं रह सकता। वह स्वयं में विक्षिप्त है और दूसरों को भी विक्षिप्त करने का प्रयास करेगा।

जब हम भड़कीले कपड़े पहनते हैं, भड़कीला मेकअप करते हैं, किसी प्रकार की हम चेष्टाएँ करते हैं जिससे दूसरे का ध्यान आकर्षित करेंगे तो उनके पीछे भी हमारे अंदर एक यही भाव रहता है कि हमारे अहंकार की पूर्ति हो और सामने वाले को भी थोड़ा सा 'पागल' (अध्यात्म की भाषा में) होना ही चाहिए। हमें देखकर कोई विक्षिप्त न हो, पागलपन का थोड़ा सा झटका न लगे तो हमारे रहने का मजा ही क्या। हमारे कपड़ों का, मेकअप का प्रयोजन ही क्या। जैसे ही आपके अंदर ये भाव आया, आप मान लेना कि आप विक्षिप्तिता की ओर जा रहे हैं। इससे आप दूसरे को भी विक्षिप्त करने का प्रयास कर रहे हैं। अगर आपका ये प्रयास निरंतर जारी रहा तो अभ्यास बढ़ते-बढ़ते इतना बढ़ जाता है फिर किसी दूसरे की बात को व रोक-टोंक को सहन नहीं कर पाते। अगर हमें शुरुआत में ही ये बात मालूम हो कि ये चीज/प्रवृत्ति हमारे मन की शांति के लिए नहीं है, मन की विक्षिप्तता के लिए है। कई बार हमारा मन इसलिए भी परेशान रहता है कि हम घर से बहुत अच्छी साड़ी पहनकर निकले, अच्छे सज-धज कर निकले लेकिन सामने से किसी ने भी हमें 'वेटेज' भाव नहीं दिया, किसी ने नहीं कहा कि आज तो तुम बड़े अच्छे लग रहे हो। अगर वो इतना ही पूछ ले कि क्या बात है, कहीं जाना है क्या तो बस मन बहुत हल्का हो जाता है। आपके मन की विक्षिप्तता थोड़ी सी कम हो जाती है। पर कल वह और बढ़ जाती है। कैसे, आज पूछ लिया, कल भी पूछ लिया और परसों नहीं पूछा तो आपकी स्थिति डिप्रेशन में जाने जैसी हो जाएगी। जब कोई व्यक्ति ये कहता है कि मन नहीं लग रहा है, मूड ठीक नहीं है तो समझना कि यह भी एक अंदर से विक्षिप्तता का हल्का सा झटका है। अध्यात्म की भाषा में **ये कलुषता** आना यानि आत्मा के भावों से मन का संयोजित हो जाना। आत्मा में कलुषता का भंडार है, आत्मा में

एक कषाय अनंत-अनंत प्रमाण के साथ में बैठी है और उसमें से कौन सी कषाय कब अटैक करेगी, आपको पता नहीं रहता। अगर मन सावधान नहीं है तो कषाय से सहित मन हमेशा विक्षिप्त ही रहेगा और रहता है।

वोल्टमीटर

आचार्य कहते हैं इस विक्षिप्तता को दूर करो। इसके लिए यदि आपने फिजिक्स की प्रयोगशाला में प्रयोग किया होगा तो आप को बताया जा सकता है। फिजिक्स की लैब में एक 'वोल्टामीटर' होता है, उसमें जो सुई होती है जैसे ही वो करंट उसमें प्रवाहित होता है वह झटके से हिल जाती है और उस सुई को संभालना होता है। जैसा करंट जाता है उतना रिफ्लेक्शन होता है और जितनी मात्रा में घुमाना है उसका प्रयोग करना होता है कि कहाँ उस सुई को स्टेबल करना है। जैसे ही वोल्टामीटर में करंट गया, सुई में अपने आप विक्षेप आ गया। **'विक्षेपण'** फिजिक्स की भाषा में कहते हैं। जैसे ही उसमें करंट आया उसमें हलन-चलन दिखने लगेगा और करंट नहीं तो सुई जरा भी नहीं हिलेगी। ऐसा ही सिस्टम हमारे साथ जुड़ा है। हमारा मन विक्षिप्त क्यों हुआ जब आत्मा के अंदर कषाय का तीव्र उदय आ गया। कषाय का मंद उदय होगा तो आप उसको सहन कर लोगे, आपको फील नहीं होगा लेकिन जैसे ही उसमें तीव्रता आएगी वो आपके मन को विक्षिप्त कर देगा। तब आपको घर में भी अच्छा नहीं लगेगा, चलो कहीं घूम आते हैं, दोस्त से मिल आते हैं या दूसरे साधन का उपयोग कर लेते हैं। पहले के लोग ऐसे समय में शहर से बाहर निकलते थे। घर से बाहर जाना जरूरी है। अगर विक्षिप्तता घर वालों के कारण, घर के कारण आ रही है तो बाहर जाना जरूरी है, विकल्प की शांति के लिए।

शहर के बाहर एक नसिया बनाई जाती थी। इसके पीछे एक विज्ञान है। शहर से २-३ किलोमीटर दूर एक ऐसा स्थान बनाया जाता था, जहाँ पर भगवान् के दर्शन भी हो, खेलने-कूदने-बैठने का स्थान भी हो, शांतिमय माहौल हो। ऐसे स्थान हर गाँव में होते थे जिसको नसिया कहा जाता था। वहाँ पहुँचने पर लोगों को अपने आप शांति का वातावरण मिल जाता था। अब आपको बाहर जाना हो तो 'बही पार्श्वनाथ' जाना पड़ेगा, १४ किलोमीटर। आज की गाड़ी की रफ्तार देखकर वह भी दूर नहीं है। वहाँ जाने का भाव करना भी अच्छा है लेकिन इस विक्षिप्तता का भाव दूर करने आप किसी होटल में चले गए, पान की गुमटी या भुक्खड़ चौराहे पर खड़े होकर टाइम पास करने का प्रयास किया तो कई प्रकार की दूसरी परेशानियाँ आ सकती हैं। एक तो आपका

स्टेटस खराब होगा और इसकी लत लग गई तो परेशानी बढ़ जाएगी। इसलिए आचार्य कहते हैं कि मन की विक्षिप्तता को दूर करने का प्रयास करना और सही साधन ढूंढना। आप नसिया जी जाओ और ५ मिनट भगवान् के सामने सीधे जमीन पर बैठें। रीढ़ की हड्डी सीधी हो। आपको आदत पड़ी है श्वास को लेने की। भगवान् के सामने श्वास का ग्रहण करना और छोड़ना नाभि से करें और जितना हो सके श्वास को बाहर फेंकना, लेना नहीं। लेने की आदत हर आदमी की बहुत ज्यादा पड़ी हुई है, देने की आदत बहुत कम है। वह श्वांस को लेता ही रहता है, छोड़ता नहीं। हमारे फेफड़ों में ६००० छिद्र होते हैं लेकिन १५००-२००० छिद्र ही कार्य करते हैं। बाकी के सब छिद्र भरे पड़े रहते हैं, जो हमें छोड़ना चाहिए वो हम छोड़ते नहीं। कार्बन डाई ऑक्साइड वह भरा रहता है। आदमी सिर्फ ग्रहण करना जानता है, त्यागने का भाव उसके अंदर है नहीं। श्वास को लो और फेंको, इससे आपके फेफड़े के छिद्र खुलेंगे। लेने से नहीं खुलेंगे क्योंकि लेने से प्रेशर नहीं बनता है जितना फेंकने से बनता है। जब ये १५००-२००० छिद्र भी काम करना बंद करते हैं कार्बन डाई ऑक्साइड भरे रहने से तब आपको हार्ट बिटिंग की समस्या, ब्लड प्रेशर की समस्या, न्यूमोनिया आदि होने लगता है। हमेशा श्वास को छोड़ने का एक अभ्यास करो। एक तो श्वास को गहरी लेना और प्रेशर के साथ छोड़ना। श्वास को छोड़ने के साथ मैं अपने भीतर का क्रोध भाव बाहर निकाल रहा हूँ। मैं अपना अहंकार, ईर्ष्या, मलिनता के भाव बाहर निकाल रहा हूँ। मैं सभी प्रकार के मलिन भाव बाहर निकाल कर आपकी तरह स्वस्थ, सुंदर शांत बैठना चाहता हूँ। ये भाव भगवान् के सामने बैठकर के आप कर सकते हो। ये सब भाव मन को विकृत बनाने वाले हैं, हम आज उन भावों से विक्षिप्त हो गए, हम उन्हें दूर करने आपकी शरण में आए हैं। आपको ५-१० मिनट के भीतर लगेगा कि कुछ शक्ति मिली है। शक्तियाँ भीतर से प्राप्त की जाती है।

व्यसन

हर आदमी अनंत शक्ति का भंडार है लेकिन उन शक्तियों को हम प्रयोग में नहीं लाते और उन्हें प्रकट करने के लिए हम पुरुषार्थ नहीं करते। हम धीरे-धीरे इतने ज्यादा आदी होते चले जाते हैं कि हम उन शक्तियों को भी मार देते हैं और उन शक्तियों का उपयोग करने के बजाए उनका दुरुपयोग करने लग जाते हैं। अगर आपने शक्ति को बढ़ाने के लिए, अपने मन की विक्षिप्तता को दूर करने के लिए दूसरे साधन अपना लिए, जैसे गुटका खाना, तंबाकू खाना, सिगरेट पीना,

ड्रिंक्स करने लग जाता है। जब आप इनका सेवन बढ़ा लेते हैं तो आपके उन छिद्रों में कार्बन डाई ऑक्साइड और बढ़ेगी, आपकी परेशानी और बढ़ेगी। आदमी जानते हुए भी जब अपने आपको नहीं बचा पाता तो वह आदमी कभी भी अध्यात्म में गति नहीं कर सकता क्योंकि वह अपने भावों पर थोड़ा सा भी कंट्रोल नहीं कर पाता है। इतना कंट्रोल करना जानता हो कि मालूम होने पर कि इनको खाने से कैंसर होता है तो हमें ये सब छोड़ना होगा। खाने के लिए बहुत सारी चीजें हैं। यदि हम इक दिन नहीं खाएँगे तो मर नहीं जाएँगे लेकिन उस एक चीज को खाने से हम जरूर मर जाएँगे। हमें आश्चर्य होता है जब किसी जैन को तंबाकू–गुटका खाने से कैंसर होता है। वह तब तो गुटका नहीं छोड़ता पर बाद में उसका भोजन आदि छूट जाता है सिर्फ लिक्विड पर रहना पड़ता है क्योंकि आप मुँह भी नहीं चला पाते हो और न किसी का टेस्ट/स्वाद ले पाते हो। जब तक आँतें चलेंगी तब तक जीवन चलेगा अन्यथा समाप्त हो जाएगा। हमें आश्चर्य तब होता है जब पढ़ा–लिखा व्यक्ति तंबाखू गुटका को खाता है, सिगरेट पीता है। उसमें चेतावनी लिखी रहती है पर नहीं मानता। बीमार होता है तो लाखों रुपए खर्च होते हैं फिर भी जीवन का कोई भी भरोसा नहीं रहता है। आखिर उसमें स्वयं ये ज्ञान क्यों नहीं उत्पन्न होता।

पहले के लोग भी शौकीन होते थे। पान खाना इतना बुरा नहीं माना जाता जितना गुटका व तंबाखू खाना। सुपारी के फल को छोटे सरोते से कुतर–कुतर कर खाते थे। कम से कम वो फल है, आपकी बीमारी का कारण नहीं बनेगा। चाशनी लगी सुपारियाँ, सब गली हुई होती हैं, इन्हें चाशनी व इत्र लगाकर आपको दे दिया जाता है। बनाने वाली जगह में धूल–मिट्टी पड़ी रहती है, सब उसमें लग जाती है। गधे से भी गया बीता हो गया है आदमी, गाय–भैंस से भी गया बीता हो गया है आदमी। गाय–भैंस भी खाने के पहले फूंक मारती है, कुत्ता भी खाने के पहले सूंघेगा, आज का आदमी न सूंघता है न फूंकता है सीधे फक्की मारता है। वो सोचता है कि बहुत फैशन में जी रहा है पर ये मृत्यु का कारण है। घर के लोग इन आदतों से परेशान रहते हैं पर आपके मन के अंदर वो भाव नहीं आता कि हम अगर इस गंदी चीज को छोड़ दें, इनके दूसरे विकल्प अपना लें। सौंफ, इलायची से मुँह सुगंधित रहेगा। लौंग से गले के, फेफड़े के संक्रमण दूर हो जाएँगे, पहले एक डब्बे में ये रखे जाते थे। ये सब जितनी बार खाएँगे, आपका स्वास्थ्य उनसे अच्छा बनेगा। ये गुटका/पाउच आदि आप स्वयं छोड़ नहीं सकते तो आपसे ज्यादा कमजोर आदमी कोई नहीं होगा क्योंकि ये मन की कमजोरी के कारण हैं। बड़े–बड़े लोग बुढ़ापा आने के बाद भी स्वयं में ये सामर्थ्य पैदा नहीं कर पाते कि इन चीजों से स्वयं को बचाएँ/उबारें। जो स्वयं उबार

पाता है वही **बलवान्** कहलाता है, मजबूत व ताकतवर है। एक जमाना था जब जैन लोग ये सब बिल्कुल नहीं खाते–पीते थे पर आज ऐसा कुछ नहीं कहा जा सकता। आज जैन स्मोकिंग/ड्रिंकिंग करता है, कुछ घर पर नहीं करते तो बाहर जाकर करते हैं, होटलों व क्लबों में करते हैं, एकांत स्थानों पर करते हैं। जो व्यसन छुपकर किए जाते हैं वो मन को विक्षिप्त बनाते हैं। मन पर सबसे ज्यादा 'लोड' पड़ता है, तभी 'डिप्रेशन' नामक बीमारी होती है। मन का उस विक्षिप्तता के साथ जुड़ना और लंबे समय तक जुड़े रहने के कारण से मन पर लोड पड़ता है और मन डिप्रेशन में चला जाता है। अपने स्वास्थ्य व धर्म के लिए हमें व अपने परिवार के लिए ये सब छोड़ना चाहिए। ये ही सोच लो कि यदि हमें कैंसर हो गया और हम समय से पहले निपट गए तो हमारे परिवार की क्या हालत होगी, इनका जीवन कैसे चलेगा। जो चीजें गलत हैं तो गलत है। सही है वो सही है। गलत रास्ता गलत ही होता है, चाहे एक कदम बढ़ाओ चाहे १० कदम। बहानों से कोई लाभ नहीं है वो आपके लिए नुकसानदायक ही है। सही को स्वीकारने का साहस रखो, गलत से दूर होने का साहस रखो। ये बहुत बड़ा साहस कहलाता है, बाकी दूसरे साहस नहीं हैं। आपने किसी को थप्पड़ मारा, लात मारी, कोई चीज उठा ली, कहीं कब्जा कर लिया, ये सब साहस नहीं है। साहस है अपने मन को लात मारना, अपने मन को बुरी लतों से दूर करना। ऐसा व्यक्ति कभी डिप्रेशन में नहीं जाएगा। व्यसनी व्यक्ति के डिप्रेशन में जाने के सबसे ज्यादा संभावना होती है। व्यसनों से मन समर्थ नहीं होता बल्कि दुर्बल होता है। एक समय के बाद सुपारी भी आपके लिए वर्जित है स्वास्थ्य के लिए। आप ऐसी चीजें खाएँ जो खाद्य होती है, अच्छे व्यक्ति खाते हैं, मुनि महाराज खाते हैं। व्यक्ति को देखकर ही आप सीख लो।

अध्यात्म और शारीरिक विज्ञान एक दूसरे से जुड़े हुए होते हैं। यदि आप अध्यात्म की चर्चा करो पर अपने इन भावों को कंट्रोल करने का मन नहीं बन रहा तो आप कभी भी आध्यात्मिक नहीं बन सकते। ये चीजें अब गंवारू लोगों की चीज बन गई है, पढ़े–लिखे लोगों की नहीं रह गई। जिन्हें ज्ञान नहीं रहता, संगति खराब होती है वे इन आदतों में पड़कर अपनी परेशानियाँ बढ़ा लेते हैं। पढ़े–लिखे होने का सबसे बड़ा मतलब तो ये ही है कि हम ये समझे कि ये बहुत नुकसानदायक चीजें हैं, इनसे कोई लाभ नहीं है।

श्लोक– ३७

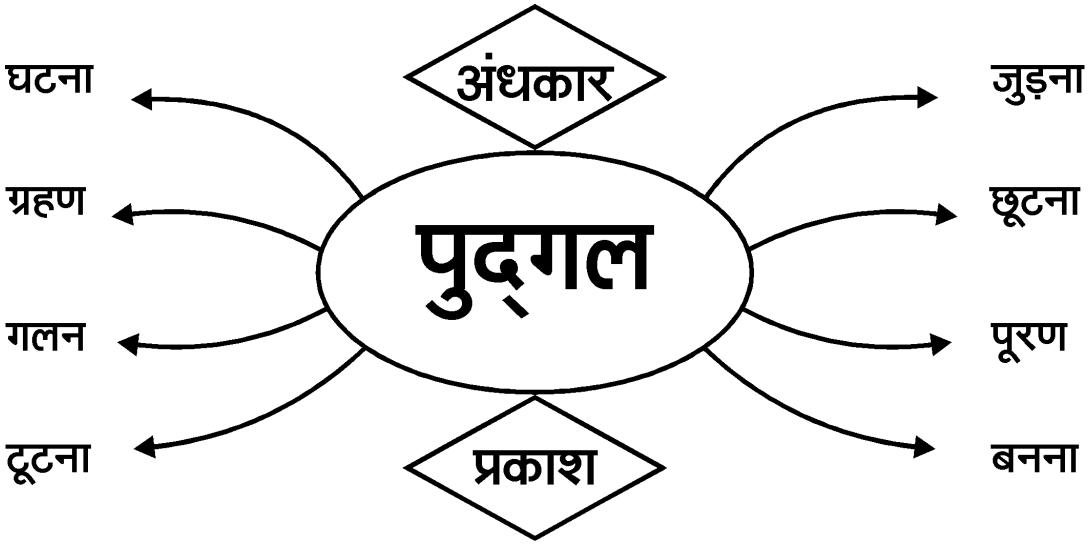
अविद्याभ्याससंस्कारै–रवशं क्षिप्यते मनः।
तदेवज्ञानसंस्कारैः स्वतस्तत्त्वेऽवतिष्ठते।।३७।।

मिथ्यात्व–मान ममतादिक कारणों में, होता सुलीन मन है, विषयादिकों में।
सिद्धांत के मनन से मन हाथ आता, विज्ञान के उदय से पर में न जाता।।३७।।

संस्कारित मन

हमारे ऊपर अज्ञान के संस्कार पड़े हुए हैं और उस अज्ञानता का अभ्यास इतना हो चुका है कि हमारा मन हमारे वश में नहीं होता इसलिए वो विक्षेप को प्राप्त हो जाता है। वह मन जब अपने ही वश में नहीं है तो वो किसके वश में होगा। यदि आदमी अपने मन को ही वश में नहीं कर सकता तो वो आदमी कहलाने के लायक नहीं है। आदमी तभी तक आदमी है जब तक वह अपने मन को कंट्रोल करना जानता है। जो अपने दिमाग को कंट्रोल नहीं कर सकता, वो आदमी नहीं हो सकता। यदि आपके दिमाग में कंट्रोलिंग पॉवर नहीं है तो वह वैसा ही हो करेगा जैसा मन कहेगा ना कि जो आपको करना चाहिए, वैसा आप करोगे। अब अज्ञानता के संस्कार हटा कर मन को संस्कारित करना है ज्ञान के संस्कारों से। उसके लिए ज्ञान भावना करना, अज्ञान भावनाएँ छोड़ना। यदि आपको अपनी कोई बुरी आदत छोड़ना है तो आप अभ्यास कर सकते हैं। आप केवल अपने मन में ये अभ्यास करो, मन को संस्कारित करो– ''रे मन तुझे ये तंबाकू खाना छोड़ना है, ये तंबाकू तेरे लिए बहुत हानिकारक है, कैंसर का कारण है'' अपने मन से रोजाना इस बात को दोहराओ। ज्ञान का संस्कार ऐसे डाला जाता है। अपने मन में स्वयं भावना करो, किसी को सुनाने की जरूरत नहीं है। तब तुम्हारे मन में वो शक्ति आएगी जिससे तुम गंदी आदतें छोड़ सकते हैं। ऐसे

ज्ञान के संस्कारों से मन अपने तत्व में खुद डूब जाता है। आत्मा और मन के बीच में बहुत ज्यादा अंतर नहीं है। जहाँ आत्मा है, वही मन है। आत्मा की ही शक्ति का कुछ उपयोग हुआ है वो मन के रूप में हुआ है। मन और आत्मा दोनों एक ही स्थान पर मिले हुए रहते हैं। मन जैसे ही शांत हुआ, वो उसी आत्मा में डूब जाएगा, विलीन होगा। मन जब तक उभरा रहेगा वो आत्मा से दूर रहेगा। मन का आत्मा में विलीन होना अपने तत्त्व में आ जाना है। मन का आत्मा से दूर होना, बर्हिमुखी हो जाना, अपने तत्व से दूर हो जाना है। अपना तत्व, अपना भाव, अपनी आत्मा सब कुछ अपने पास में है। मन के कारण से उसमें विक्षेप उत्पन्न होते रहते हैं, अनेक प्रकार के संकल्पों–विकल्पों की तरंगें मन में उत्पन्न होती है। मन को जैसे ही शांत कर दिया जाता है वह अपने आप आत्मा में जुड़ जाता है। इसलिए आचार्य कहते हैं मन को शांत करने के लिए भावनाएँ करो।



श्लोक–३८

अपमानादयस्तस्य विक्षेपो यस्य चेतसः।
नापमानादयस्तस्य न क्षेपो यस्य चेतसः।।३८।।

उद्विग्न क्षोभमय जो नित हो रहा है, मानापमान उसके मन में बसा है।
सद्धर्म–लीन जब जो मुनि वीतराग, क्यों द्रोह मोह उनमें फिर रोष राग?।।३८।।

वैचारिक मान्यता का प्रभाव

आचार्य पूज्यपाद महाराज चित्त का विक्षेप के कारण एवं उसके परिणाम बता रहे हैं। चित्त में विक्षेप होने पर सबसे पहले अपमान आदि भाव आते हैं कि किसी के द्वारा मेरा अपमान हो रहा है या कोई मेरा अपमान कर रहा है। जब मन शांत होता है तो उसमें किसी भी प्रकार का न क्षोभ उत्पन्न होता है न अपमान व सम्मान की कोई कल्पना उत्पन्न होती है। किसी भी तरह के भावों के चित्त में आने के पीछे हमारी कल्पना बहुत बड़ी होती है, जिसके कारण हम सुख की कल्पना करते हैं व प्रतिकूल के लिए दु:ख की। यह एक मानसिक व वैचारिक परिणति है। इस वैचारिक परिणति में आप देखते हैं कि आदमी के विचार ही सब कुछ होते हैं। अगर वह मान लेता है कि किसी ने मेरा अपमान कर दिया तो उसका ये विचार ही उसको अपमानित कर देता है। यदि मान लिया कि किसी ने मेरा सम्मान कर दिया तो उसकी ये मान्यता ही केवल उसका सम्मान होती है। विचार में अपमान या सम्मान जैसी चीज आने से ही वह संतुष्ट हो जाता है। अगर आपसे पूछे कि आपका **व्यक्तित्व** क्या है तो आप बताएँगे जैसा आप महसूस करते हैं- आप कहोगे मैं बहुत अच्छा आदमी हूँ, ५ फीट ऊँचा हूँ,, मेरी समाज में बहुत इज्जत है, फलाना ओहदे पर हूँ। ये अनेक प्रकार का व्यक्तित्व आपके केवल विचारों से चल रहा है। आप देखेंगे कि आपके अंदर क्या है तो आप पाएँगे कि कुछ भी नहीं है। गहराई से देखने पर आपको केवल शरीर का

एक ढांचा दिखाई देगा और दिमाग चल रहा होगा तो केवल कुछ विचार दिखाई देंगे। विचार आता है, चला जाता है। वो आपके पास में टिकने वाला नहीं है। वह विचार आपकी उस मान्यता के ऊपर रहता है जैसा आपने मान लिया है। यदि आपने मान लिया कि कोई आपको अपमानित कर रहा है तो कोई आपको नहीं रोक सकता कि वो विचार चला जाए और आपके अपमान का भाव आपसे छूट जाए। ये केवल अपने विचार की एक मान्यता है और इस वैचारिक मान्यता में इतना जुड़ाव होता है कि हम बाहर व भीतर से भी जुड़ जाते हैं। अगर देखा जाए तो आदमी के अंदर जो विचार उठा और वो कहाँ गया, उसका अस्तित्त्व भी समझ नहीं आएगा जैसे लहर उठती है और उठने के बाद में समाप्त हो जाती है। ऐसे ही ये विचार है मान-अपमान के, ये यदि हम से चिपक गए तो **कर्मबंध** का कारण बन जाते हैं। इनसे चिपकाव कैसे होता है? हम स्वयं को बाहरी वस्तुओं से जोड़कर के इन विचारों को अपने से चिपका लेते हैं। अगर हमें किसी बाहरी व्यक्ति या वस्तु को देखकर ऐसा महसूस होता है कि इसने मेरा अपमान कर दिया और आपने इसे अपने आप को चिपका लिया तो वह अपमान का भाव बहुत दिनों तक चिपका रहेगा। आपको याद रहेगा कि अमुक व्यक्ति ने भरी सभा में हमें बेइज्जत किया था।

ये केवल एक विचार है जो आपके मस्तिष्क में रहता है और यदि आप उस विचार को छोड़ना चाहें तो आप छोड़ भी सकते हैं क्योंकि मस्तिष्क में उत्पन्न होने वाले विचार हमारी इच्छा से उगते हैं और हमारी इच्छा से छूटते हैं। अगर हम उस विचार को निरंतर बनाकर रखते हैं तो हम धीरे-धीरे उस विक्षिप्तता की स्थिति में पहुँच जाते हैं जिससे डिप्रेशन में चले जाते हैं। सम्मान की स्थिति में उसका खून थोड़ा सा बढ़ेगा। अपमान की स्थिति में कम हो जाएगा क्योंकि मन की स्थिति में विचारों की कुंठाएँ उसने अपने अंदर संजोकर रखी है। उसने अपनी मान्यता बना रखी है कि लोग हमसे अच्छा बोले, हमारा नाम लेकर बुलाएँ, हमें आदर दें, सम्मान दें तभी हमारा सम्मान होगा। इस प्रकार के सम्मान के अभाव में एक क्रोध भाव भी उत्पन्न हो जाता है। यदि आपके मन में नहीं है कि कोई सम्मान आपका करे तो आपको गुस्सा नहीं आएगा और यदि आप इस विचार से बैठे हों कि आज हमारा सम्मान हो और नाम मंच से पुकारा जाएगा पर यदि एनाउंसर भूल जाए, चूक जाए तो आपको उस दिन जरूरत से ज्यादा गुस्सा आएगा क्योंकि आपका अपने विचारों पर कंट्रोल नहीं रहा और आपने पहले से ऐसी मान्यता बनाकर रख ली थी कि हमें आज इस समय पर सम्मान मिलना चाहिए और पूरी नहीं हुई तो क्रोध उत्पन्न हो जाएगा। ज्यादातर

आदमी को क्रोध उसके इसी सम्मान के अभाव में उत्पन्न होता है। आपको भी तभी क्रोध आता है जब कोई आपकी बात नहीं मानता है। बात नहीं मानने का मतलब यही है कि आपको सम्मान नहीं मिल रहा है, चाहे वह साथी हो या बच्चा। फिर आपका मन जो आहत होगा तब ऐसे विचार आपको बहुत दिनों तक भी याद रह सकता है। कई लोग क्षण भर में रुष्ट हो जाते हैं और क्षण भर में तुष्ट हो जाते हैं। अपनी पर्सनाल्टी को हमें अपने भावों से आँकना चाहिये। चेहरे की सुंदरता, शरीर की बलिष्ठता ये हमारी पर्सनाल्टी नहीं होती बल्कि इसका संबंध हमारे नेचर से होता है। कुछ लोगों का नेचर ऐसा होता है क्षणभर में रुष्ठ हो जाते हैं, छोटी सी बात हुई नाराज हो गए, बोलना नहीं। ऐसे लोग हर घर में देखने को मिलेंगे। ये नेचर बहुत खतरनाक माना जाता है, इसे सुधारने का प्रयास करना चाहिए।

जैसे उस कैकयी के नेचर की तरह कि गंधोदक नहीं आया तो नाराज हो गई, जहर खाने लगी। मैं मर जाऊँगी। पति ने साड़ी दिला दी या घुमा दिया, भले कर्ज लेकर या कैसी भी व्यवस्था करके तो वो संतुष्ट हो जाती है, पर उस बेचारे को भी ये सोचना है कि ये संतुष्टि आज तो हो गई लेकिन इस आदत से जिंदगी भर की बहुत बड़ी परेशानी भी हो गई। रोज-रोज नई-नई बातें सामने आएँगी और उनकी पूर्ति कर पाना संभव नहीं और व्यक्ति को संतुष्टि होने वाली नहीं। ऐसे लोगों के साथ रहना बहुत मुश्किल होता है। ऐसे लोग दूसरों पर बहुत अधिक निर्भर रहते हैं व उनके भावों को देखते हैं कि हमें सम्मान दे रहा है या नहीं, हमारे बारे में क्या सोच रहा है। बस इसी बात का विकल्प करता रहेगा। ऐसे लोगों की यदि आपके पुण्य या पाप कर्म से संगति हो गई है तो आपकी बहुत बड़ी परेशानी है। बुरा नहीं मानना, जो है सो है। उसकी संतुष्टि-असंतुष्टि की प्रक्रिया चलती रहती है वो अपने आपको उबार नहीं पाता, वह स्वयं भी परेशान होता है और दूसरों को भी परेशान करता है। मित्र, दोस्त, रिश्तेदार सबके बारे में धारणा बनी रहती है और उसे भय रहता है कि हमारा अपमान न हो जाए। इसके लिए तो निरंतर पुरुषार्थ करता है एवं क्रोधित भी हो जाता है। ऐसे लोगों का चित्त विक्षिप्त होता है। लड़के-लड़कियाँ कॉलेज में बहुत जल्दी मित्रता कर लेते हैं। मैसेज आया, पढ़ा, संतुष्ट हो गए और अपनी बात आगे बढ़ा ली। पर कोई ये नहीं समझ पाता कि इसका चित्त कैसा है। जब तक आदमी का नेचर न समझा जाए, तब तक उसके साथ में संबंध बनाने में भी हिचका जाए। आज आदमी नेचर किसी का नहीं देखता है सिर्फ ऊपरी चीजें देखता है। कोई बाइक पर घूम रहा है, हेयर स्टाइल क्या है, बोलने का लहजा

क्या है, बस इनको देखकर के आज के लड़के-लड़कियाँ एक-दूसरे से संबंध बना लेते हैं और फिर बाद में परेशान होते हैं कि उनके नेचर को कोई नहीं समझ पाते। ये नेचर किसी के भी अंदर हो सकता है। ये लोग कभी सुखी नहीं रहते। इनके अंदर एक टेडेंसी होती है कि जिस पर उपकार करते हैं उस पर हावी हो जाते हैं और जिंदगी भर उसी चीज का नाम लेते रहेंगे कि हमने तुम्हारे साथ ये-ये किया। सामने वाले का किया ध्यान नहीं रखेंगे। वे उपकार नहीं अहसान करते हैं। उपकार में आदमी मदद अंदर दबा लेता है और अहसान हमेशा २०-३० साल बाद भी याद दिलाता रहता है। यदि आप सामने वाले की छोटी सी बात पर स्वयं को बहुत आघात पहुँचा लेते हैं तो ये आपके लिए भी हानिकारक है। इससे उबरने का एक ही उपाय है कि हम ये महसूस करें कि सामने वाले के द्वारा किया जाने वाला व्यवहार हमारे आश्रित नहीं है। हमारा व्यवहार ही केवल हमारे आश्रित है। वह जैसा करे वैसा करे, हमें तो केवल अपनी मस्ती में मस्त रहना है। अगर आपका ऐसा नेचर बनेगा तब आप इस संसार में कुछ सुखी रह पाएँगे, अन्यथा नहीं, चाहे आप कितनी अच्छी-अच्छी वस्तुएँ ले आएँ, बहुयें ले आयें, कितने ही अच्छे बेटे-बेटियाँ हों। आपके अंदर खुशी तभी होगी जब आप दूसरों के आश्रित न हो और दूसरों के व्यवहार से अपने अंदर आघात पहुँचाना कम करेंगे। ये अपनी सुरक्षा है।

आचार्य कहते हैं अध्यात्म के माध्यम से हम अपनी सुरक्षा मजबूत करते हैं क्योंकि अध्यात्म हमारे लिए एक कवच का काम करता है। बाहर कुछ भी होता रहे हम उससे न परेशान हो न ज्यादा खुश हो। आपके चित्त में जितनी ज्यादा कलुषता होगी, उतना ज्यादा सम्मान और अपमान का भाव होगा। ये भाव हमेशा से आदमी के अंदर बना रहता है। बड़े-बड़े राजा-महाराजा भी इससे बच नहीं पाते हैं। उनके लिए बस इतना ही करना होता है कि आप तो सम्राट हैं, महान हैं। भगवान् आदिनाथ के समय उनके ही पुत्र भरत चक्रवर्ती के पुत्र थे **अर्ककीर्ति।** उन अर्ककीर्ति के साथ में कुछ ऐसा ही व्यवहार हुआ। उस समय लड़की के लिए उस के पिता द्वारा स्वयंवर रचा जाता था, इसलिए नहीं कि वह जिस किसी को भी चुन ले। लड़की में इतनी योग्यता रहती थी कि उन्हें पता रहता था कि मेरी बेटी जिसको भी वरण करेगी, वही भाग्यशाली होगा। राजा अकंपन ने उनकी बेटी सुलोचना के लिए स्वयंवर रचा और उस स्वयंवर में सब राजा बैठे हैं। राजा व राजकुमार दोनों बैठते हैं कि किसको वह लड़की वरण कर ले। सब अपना-अपना भाग्य आजमाते हैं लेकिन उस बेटी में इतनी योग्यता रहती है कि वह केवल बाहरी पहनावे पर, बाहरी रूप पर मोहित नहीं

होती है। उसमें पर्सनाल्टी के टेस्टिंग पावर इतनी ज्यादा होती है कि वह सैकड़ों राजाओं में से सिर्फ नाम-कुल के अलावा कुछ न जानते हुए भी एक अलग भाव आ जाता है और जिसके अंदर शौर्यता, स्वाभिमान, पराक्रम, कुल की पवित्रता आदि देखने की पहचान कर लेती है। वहाँ पर चक्रवर्ती व बाहुबली के पुत्र भी बैठे हैं। अनेक राजा बैठे हैं, सब अच्छे हैं पर उसमें वह कन्या वरण करती है उस व्यक्ति को जो भरत चक्रवर्ती का सेनापति रत्न था। चक्रवर्ती के १४ रत्नों में से एक। जैसे महाभारत के युद्ध में श्रीकृष्ण सेनापति व सारथी के रूप में थे, ऐसे व्यक्ति को सुलोचना ने चुना। उस वक्त अनेक राजपुत्र बैठे थे, सब सोचते हैं कि देखो राजपुत्रों के होते हुए भी कन्या ने माला सेनापति के गले में डाल दी- **'सेनापति जयकुमार'** बाकी अतिथियों ने सोचा ये तो स्वयंवर की रीति है, इसमें अपन को क्लांत होने की जरूरत नहीं है। भरत चक्रवर्ती का पुत्र अर्ककीर्ति वहीं बैठा था जिसके सेनापति जयकुमार को राजकुमारी सुलोचना ने चुन लिया। अब अर्ककीर्ति को उसके इष्ट मित्रों ने भड़का दिया। देखो अच्छा नहीं हुआ, तुम्हारे सामने कन्या ने सेनापति को चुन कर तुम्हारा अपमान किया, तुम्हारे रहते हुए उस कन्या ने सेनापति को वरण कर लिया, ये बात अच्छी नहीं है। अर्ककीर्ति इतने में ही भड़क गया, उसे लगा कि हाँ आज मेरा अपमान तो हो गया। कहाँ चक्रवर्ती के पुत्र के होते हुए उसने सेनापति को वरमाला डाल दी। उससे रहा नहीं गया और दोनों के बीच में युद्ध की घोषणा हो गई। वह कन्या पति के घर में तो बाद में जाएगी, पहले युद्ध होगा। अर्ककीर्ति के मन में गलत भाव आ गया और वह अन्याय और अनीति के रास्ते चलने लगा। वरमाला के तुरंत बाद में युद्ध होने लगा जिसमें कई राजा अर्ककीर्ति के साथ हो गए और कई जयकुमार के साथ। सुलोचना के परिवार वाले व रिश्तेदार जयकुमार के साथ हो गए। युद्ध में उस सेनापति ने अर्ककीर्ति को परास्त कर दिया। हार के पश्चात् अर्ककीर्ति में इतनी क्लानता आ गई कि युद्ध में हमें परास्त होना पड़ा। दुनिया में ये खबर फैल गई कि चक्रवर्ती का बेटा हार गया। एक और हार हो गई।

इतनी क्लानता के बाद उस आदमी को कैसे रहा जाएगा। बड़े-बड़े लोगों के गम और दु:ख भी बड़े-बड़े होते हैं। ये दु:ख वो अपने ऊपर ओढ़ते रहते हैं। कोई जरूरत नहीं थी उसे लड़ने की पर हम किसी से कम नहीं। चक्रवर्ती के पास भी बात पहुँचती है। विनयशील व सज्जन जयकुमार सोचता है कि हम यदि अकेले चक्रवर्ती के पास जाएँगे तो चक्रवर्ती सोचेगा कि ये बहुत अहंकारी हो गया है। जयकुमार सेनापति अर्ककीर्ति को मनाता है, उसको अपने साथ में लेकर के चलता है

और कहता है चक्रवर्ती भरत को सब स्थिति ज्यों का त्यों बता देंगे, आप बिल्कुल चिंता मत करो। आपके ऊपर किसी भी प्रकार की आपत्ति हम नहीं आने देंगे। जब चक्रवर्ती के सामने दोनों पहुँचते हैं तो जयकुमार सेनापति ये नहीं कहता कि मैंने तुम्हारे पुत्र को जीत लिया न ये कहता है कि तुम्हारे पुत्र ने मुझसे लड़ाई की। वह कहता है कि तुम्हारा पुत्र तो बहुत शौर्यवान् है, ये हमें इसके साथ युद्ध करने पर समझ में आया। पर इसने युद्ध क्यों किया, इसमें इसकी कोई गलती नहीं थी, इसके साथ में रहने वाले मित्रों ने इसको भड़का दिया। ये तो बहुत अच्छा है। ऐसा कहकर उसने चक्रवर्ती व चक्रवर्ती के पुत्र का सम्मान रखा। तब चक्रवर्ती ने प्रसन्न होकर कहा कि तुम्हारे सेनापति होने का हमें गौरव है, तुम हमारे १४ रत्नों में से एक रत्न हो। वह मन की मलिनता तब दूर हुई जब सामने वाले ने उसका सम्मान रखा। उसी अर्ककीर्ति के नाम पर **सूर्यवंश** चला था और बाहुबली के नाम से चला **चंद्रवंश,** ये क्षत्रियों के वंश हैं। आप लोग तो बनियों के वंश में आते हो।

जैनत्व का गौरव बढ़ायें

कल ही एक बंदा हमारे पास आकर प्रणाम करके बैठ गया। हमने उससे नाम पूछा बोला देवसिंग। कौन से वंश के हो तो बोला- चंद्रवंशी हूँ, मैं क्षत्रिय हूँ। ये क्षत्रिय सूर्यवंशी व चंद्रवंशी आदिनाथ भगवान् के समय से चले आ रहे हैं। उन वंशों में कुछ न कुछ पहचान उन लोगों ने बनाकर रखी है। आज भी उन वंशों में, कुलों में एक मर्यादित आचरण चल रहा है। हमने पूछा- तुम तो सब खाते-पीते होगे तो वह कहने लगा कि नहीं मेरे यहाँ पर कभी भी अंडा, मांस, शराब का सेवन नहीं होता है। हम ये सोचकर रह गए कि वास्तव में ये आदिनाथ भगवान् के समय से चले आ रहे क्षत्रिय वंश का वंशज है जिसके अंदर इतने गर्व से कहना हो रहा कि मेरे यहाँ कोई अंडा, मांस, शराब नहीं खाता। इतने गौरव से आदिनाथ का वंशज ही कह सकता है, तुम बनिया कभी इतने गौरव से अपने धर्म के बारे में नहीं कह सकते हो। तुम्हारा धर्म था रात्रि में भोजन नहीं करना, पानी छानकर पीना, रोजाना भगवान् का दर्शन करना। आपमें से कोई ये गौरव से कह सकता है कि महाराज मैं जैन हूँ, मेरे यहाँ पर रात्रि भोजन नहीं होता, अनछना पानी नहीं पिया जाता, कोई भी बिना देव दर्शन के भोजन नहीं करता। इतना कहने का साहस आपमें बचा ही नहीं है। ऐसे लोगों को देखकर लगता है कि जैन धर्म तो ऐसे ही क्षत्रियों के द्वारा चलने वाला था और

उनसे ही चलना चाहिए था लेकिन सब गड़बड़ हो गया। जितने भी पैसे वाले लोग सब सामने आकर बैठ गए। महाराज भी उसमें फंस गए, क्या करें हम भी नहीं निकल सकते। अगर उनको संस्कार दिए जाएँ तो आज भी क्षत्रियता के नाम पर वे जोर-शोर से उन्हें निभा सकते हैं जिस संस्कार के लिए हम आपको जिंदगी भर चिल्लाएँ फिर भी आपके कान में जूं नहीं रेंगे। पर उसका यदि हम उसके वंश से परिचय करा दें तो उनकी इतनी भगवान् पर श्रद्धा बन जाए जितनी तुम्हारे लिए भी न बने। आज समय और परिस्थितियाँ ऐसी हो गई हैं कि एक जैन भी अपने आपको जैन कहने में गौरव महसूस नहीं करता। जैन भी अपने सामने जैन नहीं लगा रहा है।

कई सालों से एक अभियान चल रहा है कि कम से कम अपने नाम के आगे जैन लगाकर रखा करो। जब राष्ट्रीय जनगणना होती है उस समय पर सिर्फ और सिर्फ वही नाम जैनों में शामिल होते हैं जिनके नाम के आगे जैन लगा होता है। जिनके नाम के आगे गाँधी/बाकलीवाल/ मेहता/ बड़जात्या लगा है वो सब जैनों की गिनती में नहीं आते। मुझे लगता है मंदसौर के जैनों का नाम राष्ट्रीय जनगणना की गिनती में है ही नहीं, तभी तो इतनी कम संख्या निकलकर आती है। आपकी वहाँ कोई गिनती नहीं होती है। तरीका ये होता है गौरव के भाव के साथ अपने नाम के आगे पहले जैन लगाएँ और दूसरी पहचान को कोष्ठक में डालकर रखें। यदि हम इस बात की भी जागरूकता नहीं दिखा रहे तो ये हमारे लिए बहुत कलंक की बात है। एक बार आई.डी. में, स्कूल में बच्चों का नाम लिख गया फिर वह जिंदगी भर उसे बदल नहीं सकता क्योंकि सारे बॉयोडाटा में नाम बदलने के लिए बहुत मशक्कत करनी पड़ेगी। ऐसी स्थिति में कम से कम नई पीढ़ी के बच्चों के लिए तो सोचो कि आज जो बेटा-बेटी जन्मे हैं उनका नाम जब स्कूल में लिखाने जाएँगे उसके नाम के साथ पहले जैन लिखवाएँ, बाद में कुछ और लिखें। यदि इतनी भी सावधानी आप रखें तो लगेगा कि हाँ थोड़ा सा आपको जैनत्व के प्रति गौरव है। आज भी कई लोगों की धारणा बनी हुई है कि ये जैन है ये रात में नहीं खाएगा पर आज आप लोग बोल देते हो कि नहीं भाई अब तो सब चलता है। ऐसे आपने जैनधर्म को कलंकित किया है। अपना गौरव तुमने खुद मिटाया है। उसके सामने अगर आप ये कह देते हैं कि हाँ भाई मैं रात्रि भोजन नहीं करता हूँ तो भी तुम्हारे लिए बहुत बड़ा धर्म हो जाता। पर आज कोई जैन ये नहीं कह सकता कि मेरे घर में रात्रि भोजन नहीं होता, मेरे बच्चे रात्रि भोजन नहीं करते और किसी मेहमान के आने पर उसे रात्रि में भोजन नहीं मिलता। जब तक ये पहचान नहीं रही, आपके लिए कोई धर्म नहीं रहा। आज ये और होने

लगा कि नियम लेना हो तो व्यक्ति कहता है कि महाराज घर में तो चल जाएगा, बाहर की छूट दे दो। घर के बाहर १ कि.मी. की दूरी पर होटल/ढाबा में सब खा सकते हैं पर घर में नहीं खाना। इससे क्या फायदा। ये तो और उल्टा काम हो गया। आपको तो ऐसा नियम लेना चाहिए था कि महाराज मैं बाहर कुछ नहीं खाऊँगा, घर में भले ही खाना पड़े। घर में खाओगे तो घर की बात घर में ही रहेगी, पर आप बाहर खाओगे, दस लोग आपको देखेंगे और लोगों के कहने में आएगा कि एक जैन व्यक्ति रात में ढाबे से भोजन करके गया है। इस तरह तुमने अपने धर्म को कलंकित किया है। ऐसे में जब हम चंद्रवंशियों व सूर्यवंशियों को देखते हैं जो गौरव से कहते हैं कि अंडा, मांस, शराब नहीं खाते तो वो आपसे बहुत बड़े हैं। आज ऐसे भी जैन हैं जो सब करते हैं। आप उस बात को भी जोरदारी से नहीं कह सकते जबकि वो तो आपके लिए अधर्म है ही।

आपके लिए तो तीन चीजें मुख्य थी- प्रतिदिन देव दर्शन, पानी छानकर पीना और रात्रि भोजन त्याग करना। अगर आप ये नहीं बोल सकते तो समझ लेना आप उस चंद्रवंशी से भी गए बीते हो। हमें ऐसे लोगों से बहुत मिलना होता है। अभी उदयपुर से विहार करके आ रहा था, रास्ते में एक स्कूल में लोगों ने व्यवस्था की थी। वहाँ थोड़ी देर रुका, आसपास गंदा सा माहौल था, बस्ती थी, मैंने कहा मैं यहाँ नहीं रुक सकता, आगे चलता हूँ। वहीं पर कुछ लोग खड़े थे उन्होंने पूछा कि महाराज को क्या-क्या चाहिए। कुछ नहीं बस रात्रि विश्राम करना है, एक छत चाहिए। उन्होंने कहा हमारी छत नई-नई बनी है आप वहाँ ले आओ। वे लोग आए और बोले महाराज आपके चरण हमारी छत पर पड़ जाएँगे, हमारा उद्धार होगा, कृपया वहीं रुक जाएँ। उनसे पूछा गया कि क्या काम करते हो तो बोले हम बस लुहारी का काम करते हैं। बंजारे जैसे ही हैं पर पहले घूमा करते थे अब एक ही जगह रहते हैं। हमारे यहाँ पुरखों से किसी ने कभी शराब/मांस, अंडा आदि को हाथ नहीं लगाया और रात में हमारे यहाँ भोजन नहीं बनता है, चूल्हे बंद रहते हैं। कितनी बड़ी बात है जिन्हें हम अजैन कहकर अपने से दूरकर देते हैं और भ्रष्ट जैनों के यहाँ हमें भोजन करना पड़ता है तो हमें बड़ी पीड़ा होती है। उन अजैनों के यहाँ न तो रात में चूल्हा जला, न कोई सिगरेट आदि जलाई, सबने शांति से भजन-कीर्तन किए और सब सो गए। सब बहुत ऊँचे, अच्छी कद-काठी के क्षत्रिय राजस्थानी जैसे लग रहे थे। ९० साल के दादा भी इतने हट्टे-कट्टे दिख रहे थे कि तुम्हें एक थप्पड़ मार दे तो चक्कर आ जाए। तब देखकर लगा कि जितने भी क्षत्रिय थे, वे सब कहीं न कहीं भटक गए लेकिन उनमें आज भी धर्म है। आप उन्हें देखकर उनको लो कास्ट

या थर्ड क्लास के समझते हो पर उनके अंदर भी धर्म पल रहा है वे ही लोग आगे चलकर ऐसे क्षत्रिय बनेंगे जो तीर्थंकर के रूप में होंगे। तुम उनको पूजोगे बनिया बनकर। आज आदमी १० दिन के लिए धर्म करने में इतना डर रहा है कि रात में भोजन नहीं मिलेगा, पानी नहीं मिलेगा, दवाई नहीं खा पाऊँगा। ऐसे भ्रष्ट लोगों के बीच में रहकर अगर धर्म की बात की जाए तो धर्म भी उपहास का कारण बन जाता।

आचार्यों ने कहा ज्यादा मूर्खो को समझाना नहीं चाहिए। जिस व्यक्ति को अपने धर्म का गुमान/गर्व न हो उन्हें समझाने से, जोर जबरदस्ती करने से कोई मतलब नहीं है। ये भी नीति है कि मूर्ख को उपदेश दोगे तो उसे गुस्सा आएगा। ऐसे मूर्ख मरकर के दरिद्र व तिर्यंच बनेंगे और कुछ नहीं। अगर इसी धन के लोभ में मरते रहे तो मरकर के दुबारा जैन कुल भी नहीं मिलेगा। ये जैन कुल उन्हें मिलेगा जो उसकी साधना कर रहे हैं, गौरव के साथ। आज किसी में इतनी हिम्मत नहीं कि सामने आकर कहे १० दिन के लिए मैं कुछ संस्कार अर्जित कर लूँ। बी.ए., बी.कॉम. करने वाले युवक १० दिन पढ़ाई आगे-पीछे कर सकते हैं। यदि माँ-पिता बीमार हो जाएँ और उन्हें बंबई/बैंगलोर लेकर जाना पड़े तो १०-२० दिन कहाँ और कैसे निकालने पड़ेंगे, सब समझ में आ जाएगा। जो व्यक्ति धर्म के लिए बहाना ढूंढते हैं उनके लिए ऐसे प्रसंग सामने आते हैं। १५ दिन-महीना भर डॉक्टर के यहाँ पड़े रहेंगे, एक चादर में अपना गुजारा कर लेंगे पर यहाँ मनाया जा रहा है तो सब बिचकते हैं। धार्मिक व्यक्ति को अपने धर्म का गुमान होता है। मैं भी सोच रहा हूँ कि कभी तुम लोगों से दूर होकर इन सूर्य-चंद्रवंशियो जैसों को जैन बनाऊँगा, इनको यदि थोड़ा सा संस्कार दिया जाए, उनकी धार्मिक भावनाओं को जगा दिया जाए तो सच्चे अर्थों में जैन हो जाएँगे। धर्म करने के लिए आप लोग थोड़ी सी क्षत्रियता अपनाओ, छूट आदि की बातें छोड़ो। जैसे देश के लिए आदमी सर कटा सकता है वैसे धर्म के लिए तुम १० दिन समर्पित नहीं कर सकते। वहाँ आपको अभाव में रहना सीखना है जिसे आपने अभाव न होते हुए साहस के साथ अपनाया है। इसी का नाम धर्म है, क्षत्रियता है। कोई भी मुनि महाराज दीक्षा लेते हैं तो वो पहले से अभाव में नहीं थे, वे सब कुछ कहने लायक थे, सब उनके पास में था पर सब सद्भावों को छोड़ने का साहस जब होता है तो उन्हें मुनि धर्म अंगीकार कराया जाता है। ये जीवन बहुत छोटा है, कब किसके साथ क्या घटित हो जाए। हो सकता है इन १० दिनों में उसकी अल्पायु टल जाए। धर्म के समय बहाना बनाने पर अनेक अंतराय कर्म के बंध होते हैं। सम्मान-अपमान ये सब

हमारे चित्त के विक्षेप है, इनसे दूर होकर केवल शांत भाव का आलंबन लेना। चित्त को शांत बनाना। जैसे वीतराग मुनि महाराज शांति से बिना किसी परिग्रह के रहते हैं, ऐसी अपने मन के अंदर साधना का भाव बनाना कि हम भी ऐसी ही साधना करके देखें, कैसे मन में हमारे अंदर वो शांति आएगी जो शांति मुनि महाराज के अंदर रहती है।

अपने मन से कहो, हे मन, जितने भी तू विकल्प जालों में पड़ा है। उन सब विकल्प जालों का निराकरण कर दे, उन्हें छोड़ दे। उनका मन से संबंध तोड़ दे और उसके बाद ये भावना करना कि ये जितने भी विकल्प हैं ये सब संसार के कारण के रूप में हैं और ये सब संसार के जंगल को बढ़ाने वाले हैं। ऐसा सोचकर अपने मन के विकल्प जालों को छोड़कर अपनी उस सुंदर–सुप्त एक रूप उस आत्मा का चिंतन करो। उसी आत्मा में मन को लगा और मन को स्पर्श करा, तुम अपने आप धीरे–धीरे परम आत्म तत्त्व में लीन होते चले जाओगे। ये ज्ञान के अभ्यास की भावना से आपके मन में बहुत जल्दी से अभ्यास का संस्कार आपके मन को शांत और आत्मा के सुख को देने वाला होगा। ये सबसे बड़ी प्रक्रिया हर आदमी को अपना मन समझाने के लिए करना चाहिए। मन की शांति के बिना कभी मन की शक्तियाँ प्रकट नहीं हो सकती। जिसका मन शांत होगा उसी की आत्मा की शक्तियाँ प्रकट होंगी, चाहे वो किसी भी प्रकार की शक्तियाँ हो।

कई लोगों के लिए संस्कारित करने का भाव इसलिए नहीं आता कि कुछ अपनी आदतों से हटकर के हमें करना पड़े। जहाँ कुछ हटकर करना पड़े तो हमें डर लगता है। अपने मन को ज्ञान से संस्कारित करने में डर लगता है, तुम्हें संस्कारित करने वाले कार्यक्रम में आने से डर लगता है। कुछ हटकर करना मतलब आप सोचते हो बहुत मुश्किलों में घिरना। जब तक हमारे मन में ऐसा कुछ नया करने का भाव नहीं होगा तब तक आपके जीवन में कोई नए प्रकार का आनंद नहीं आएगा, आप सुबह–सुबह दुकान खोलोगे, ग्राहकों से दिनभर अपनी माथा–पच्ची करोगे, दोपहर में भोजन करके सो जाओगे, शाम को फिर भोजन करके सो जाओगे। इसके अलावा तुम्हें कोई दूसरा आनंद जिंदगी में आने वाला नहीं। नए आनंद के लिए हमें कुछ नए कार्य करने होते हैं। आत्मा के ऊपर नया संस्कार डालना होता है, नई विधा से गुजरना पड़ता है, उसके लिए मन में थोड़ा साहस बटोरना पड़ता है। मन से ही कहना पड़ता है मन अब तू जिंदगी की बात कर ले, भले ही आदमी की उमर कितनी भी हो गई हो पर यदि उसमें नया करने की इच्छा है तो समझना वो आज भी जवान है। आपके अंदर यदि ऐसा भाव आता है कि ऐसे ही घिसी–पिटी ढर्रे की

लाइफ अपन कई बार जी चुके हैं, कुछ नए ढंग से अपन जीने के लिए कुछ नया अभ्यास करें, ये साहस यदि आपके अंदर आता है तो ये समझना कि आपका मन अभी भी जिंदा है, नहीं तो समझना कि आपका मन मर चुका है, इन्हीं संस्कारों में, इन्हीं गंदी आदतों में। हमें नई जिंदगी नयापन मिला ऐसा महसूस नहीं होने वाला। इसके लिए थोड़ी हिम्मत करनी पड़ती है, मन बनाना पड़ता है। कुछ भी कहीं हमारे लिए बिगड़ता नहीं है लेकिन हमें ऐसा लगता है कि कुछ बिगड़ रहा है। आपसे कहें कि आप तंबाकू नहीं खाना तो आपको लगेगा कि चक्कर आएगा महाराज। आपको ये नहीं मालूम कि तंबाकू खाने से चक्कर आ रहा कि नहीं खाने से। यदि तंबाकू खाने से आपके चक्कर दूर हो रहे हैं तो आपके चक्कर ही आपको चक्कर में डाल देंगे। यदि नहीं खाने से आ रहे तो जो चक्कर भीतर पड़ गए हैं वो निकल रहे हैं। भीतर का इंफेक्शन बाहर निकल रहा है। भीतर का टॉक्सिन मेटर बाहर निकल रहा है। आप केवल ४–५ दिन इतनी हिम्मत कर लो कि हमें दर्द सहन करना है तो आपको वो नौबत नहीं आएगी कि कोई डॉक्टर आपका गाल काट दे।

जो गंदी आदतें डाल रखी हैं, उनको निकालने के लिए भी बाहरी आत्मा से जुड़ने वाला नहीं है क्योंकि आत्मा के लिए मन की सबसे बड़ी दुर्बलता है। उसके साथ वह अच्छे से नहीं जी सकता इसलिए अपने मन को थोड़ा स्ट्रांग बनाओ और अच्छे ज्ञान से संस्कारित करो। अच्छा काम करने का मन यदि नहीं हो तो समझना कि हमारा मन कमजोर है। मन के ऊपर ज्ञान का संस्कार डालने पर मन स्ट्रांग बनता है। यदि किसी से डर लगता है मन को समझाओ कि तुम्हें इस चीज से नहीं डरना, कम से कम १० बार इसे दोहराओ। अपने आप उस चीज का डर निकल जाएगा। आपको अपने पापा से, पत्नी से डर लगता हो तो आप दोहराओ कि मुझे अपनी पत्नी से नहीं डरना, अपने पापा से नहीं डरना १०–१२ दिन में आपके ज्ञान का संस्कार डल जाएगा। मान लो आपको संस्कार शिविर में जाने से डर लग रहा हो तो अपने मन में दोहराना– हमें नहीं डरना है। आपको वहाँ करना कुछ नहीं है। वहाँ तुम्हें प्रेम मिलेगा, अच्छा भाव मिलेगा, अच्छे संस्कार मिलेंगे जब तुम अच्छी चीजों को प्राप्त करोगे तभी तो तुम्हें पता लगेगा कि ये रोज लेने की है। जब तुम उस लेवल को प्राप्त करोगे, भीतर से उस तक पहुँचोगे, तब तुम्हें महसूस होगा कि ये जो जीवन था, ये वास्तव में कितना हल्का जीवन है। संस्कार तभी होगा जब आप पूरा समय हमें देंगे, इसके लिए आपका मन बनना जरूरी है। १० दिन/२४ घंटे का पूरा समय देना है।

श्लोक–३९

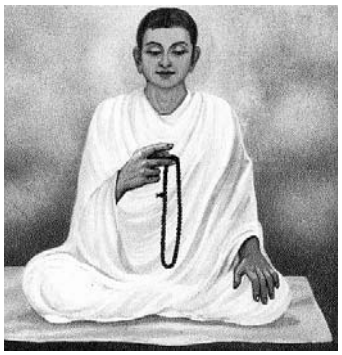
यदा मोहात्प्रजायेते रागद्वेषौ तपस्विनः।
तदैव भावयेत्स्वस्थमात्मानं शाम्यतः क्षणात्।।३९।।

अज्ञान का प्रबल कारण पा जिनेश! हो जाय तो यति यदा रति राग–द्वेष।
भावे उसी समय स्वीय विशुद्ध तत्त्व, तो राग–द्वेष मिटते, मिटता ममत्व।।३९।।

साम्य से स्वस्थ

आचार्य कहते हैं अगर किसी तपस्वी को किसी समय पर चारित्र मोहनीय कर्म के कारण राग और द्वेष की उत्पत्ति हो जाए तो वो तपस्वी उसी समय पर अपने रागादि भावों को दूर करने के लिए अपनी आत्मा को स्वस्थ रूप में लाए। स्वस्थ्य आत्मा की भावना करें जिससे उसके राग-द्वेष क्षण भर में शांत हो जायें। स्वस्थ का अर्थ होता है जो स्व में स्थित हो। जैसे ही वो अपने भावों में साम्य भाव का अवलंबन लेते हैं, राग-द्वेष को विकारी भाव समझकर छोड़ देते हैं और अपनी स्वस्थ-शुद्ध आत्मा का जैसे ही ध्यान करते हैं उसी क्षण उनके राग-द्वेष समाप्त हो जाते हैं। मुनि महाराज का राग-द्वेष का भाव इतना जघन्य अनुभाग को लिए हुए रहता है तथा संज्वलन कषाय की मंदता इतनी होती है कि वह कषाय होते हुए भी संयम का कुछ बिगाड़ नहीं करती। जो कषाय होते हुए भी संयम को ज्वलित करती है, प्रकाशित करती है उसका नाम **संज्वलन कषाय** है। अगर संज्वलन कषाय के कारण थोड़ा राग-द्वेष होता है तो वे परिणाम वैसे ही शांत कर देते हैं जैसे यदि कहीं पर थोड़ी सी आग लग गई हो और फूंक मार दे तो वो अग्नि शांत हो जाती है। मुनि महाराज जैसे ही भाव करते हैं कि मेरी आत्मा शाश्वत है, ज्ञानदर्शन स्वभाव वाला है और जितने भी शेष

भाव हैं वो सब बाह्य है। संयोग के कारण से ये भाव आत्मा में उत्पन्न हो गया है तो ऐसा भाव करने मात्र से राग-द्वेष की परिणति एकदम शांत हो जाती है। मुनि महाराज यदि आवश्यक कार्य अपने समय पर करते हैं तो उनके राग-द्वेष बढ़ नहीं पाते। जैसे छोटे से सूखे तिनके में आग लगती है और तिनका जैसे ही समाप्त हुआ, वह आग भी समाप्त हो जाती है। ऐसे ही मुनिराज का राग-द्वेष का भाव उत्पन्न होने के साथ ही समाप्त हो जाता है क्योंकि उनकी जीवनचर्या व दिनचर्या ही कुछ इस प्रकार है। बहुत समय तक वह परिणति उनके अंदर इसलिए नहीं रह पाती क्योंकि आग लगाने या बढ़ाने वाले कारण उनके पास में नहीं रहते। अगर कारण ही नहीं रहेंगे तो कार्य होगा नहीं। आपके यहाँ आग लगती है क्योंकि सिलेंडर फट गया जिसमें गैस भरी रखी थी। जब तक वह गैस पूरी नहीं जल जाएगी, आग बुझने वाली नहीं है। लालटेन में जब तक तेल पूरा नहीं जलेगा, आग नहीं बुझेगी। आपके अंदर की राग-द्वेष की आग बहुत देर तक जलेगी और उसको बढ़ाने के कारण भी मिलते रहेंगे। आपकी सुबह से शाम की जो चर्या होती है– उससे राग-द्वेष की प्रवृत्ति बढ़ती जाती है, घटती नहीं है। मुनिराज दिनभर प्रतिक्रमण करेंगे, सामायिक करेंगे, स्वाध्याय करेंगे। भगवान् की स्तुति/वंदना करना रहती है तो आग लगी भी रहेगी तो उसी समय पर छूट जाएगी जैसे ही वे भावों के साथ अपनी आवश्यक क्रिया करेंगे। यदि मुनिराज आहार करने भी आपके घर जाते हैं तो उनका राग-द्वेष बढ़ नहीं पाता है क्योंकि जब पड़गाहने के बाद श्रावक स्तुति करते हैं तो उसे सुनकर वो सोचते हैं कि हमारे अंदर ऐसे भाव हैं कि नहीं हैं। वे स्तुति के शब्दों को सुनकर के अपने परिणामों को ही संभालते रहते हैं, उन शब्दों के माध्यम से भी उनके परिणाम अच्छे बन जाते हैं। उन शब्दों से वो स्वयं को तोलते हैं कि हम इस लायक हैं भी या नहीं। यही सावधानी उनमें राग-द्वेष को बढ़ने नहीं देती।



श्लोक–४०

यत्र काये मुनेः प्रेम ततः प्रच्याव्य देहिनम्।
बुद्ध्या तदुत्तमे काये योजयेत्प्रेम नश्यति।।४०।।

सम्बंध स्वीय तन से यदि प्रेम का हो, योगी सुदूर उससे सहसा अहा! हो।
विज्ञान रूप तन में निज को लगावें, तो देह–प्रेम नशता, तब मोक्ष पावें।।४०।।

ज्ञान शरीरी आत्म चिंतन

मुनि महाराज के लिए प्रेम करने का कोई संबंध साधन नहीं बचा है न उनके पास चेतन पदार्थ होते हैं न अचेतन पदार्थ। राग की परिणति को ध्यान में रखते हुए उन्हें किसी बाहरी पदार्थ से राग नहीं होता। अगर कभी उन्हें अपनी देह से भी राग हो तो उसे छुड़ाने के लिए आचार्य कहते हैं तुम इस अपनी काया को क्या देखते हो, **ये काया** तो पुद्गल की है, माटी की है। इस काया में मल-मूत्र और अशुद्ध पदार्थों के सिवाय कुछ है नहीं। तुम्हारा उपयोग अगर इस काया में लग रहा है तो इस उपयोग को अपने में से उठाकर उस उत्तम काया में लगाओ जिस काया में केवल ज्ञानमात्र की ज्योति जल रही है जो या अरिहंत भगवान् की होगी या सिद्ध भगवान् की। सिद्ध भगवान् की काया औदारिक स्वरूप नहीं होती लेकिन उनकी आत्मा के जो असंख्यात प्रदेश है वे ही काया कहलाते हैं और उन असंख्यात प्रदेशों का जो स्वरूप बना हुआ है, वह भी पूर्व पर्याय की जो उनकी काया रहती है, उसी अनुसार आकार रहता है। आज भी ५०० धनुष की आदिनाथ भगवान् की वह काया ज्यों की त्यों खड़ी है। आज भी नेमिनाथ भगवान् की काया गिरनार पर्वत पर और महावीर भगवान् की काया पावापुरी के पद्म सरोवर के अग्रभाग पर ज्यों की त्यों खड़ी है।

उस उत्तम ज्ञान शरीर काया को, ज्ञानस्वरूपी उस काया का जो व्यक्ति ध्यान करता है उसका अपने शरीर से मोह का नाश हो जाता है। मुनिराज व श्रावक दोनों को ये ही करना आवश्यक है।

श्रावक तभी श्रावक कहलाता है जब वह जो मुनिराज करे, वही करेगा क्योंकि वह उपासक है और मुनिराज उसके लिए उपास्य। उपासक के लक्षण उसी अनुसार चलते हैं। हमें भी इसी प्रकार से अपनी आत्मा की उपासना करनी है। अपनी काया से प्रेम को छोड़ना है, बाहरी वस्तुओं से ममत्व का त्याग करके उस उत्तम ज्ञान शरीरी आत्मा का ध्यान करना है। ऐसे जब मनोभाव उत्पन्न होते हैं तो राग-द्वेष तो बहुत पीछे छूट जाते हैं। इस प्रकार से उपयोग की परिणति उन ज्ञानस्वरूप आत्मा में जुड़ती है तो आचार्य कहते हैं अपने आप राग-द्वेष का अभाव होता चला जाता है जो निरंतर उनके ज्ञानोपयोग में चलता रहता है। वे आपके सामने भले ही रहते हो पर उनका उपयोग अपने ही ज्ञानस्वभाव में रहता है। इस कारण वे शरीर के साथ रहते हुए भी वे शरीर के साथ नहीं रहते, वे आत्मा के साथ ही रहते हैं। जब वे आहार लेने आपके घर पहुँच जाते हैं तो भी उनमें शरीर के प्रति राग उत्पन्न नहीं होता क्योंकि वे आहार शरीर की पुष्टि के लिए नहीं लेते या कांति बढ़ाने के लिए नहीं लेते।

आचार्यों ने कहा है **६ कारणों से आहार लेना।** नियम है पहले ये प्रयोजन अपने अंदर रखना, आहार करने के बाद में हमें षट्-आवश्यकों का पालन करना, संयम का अप्रमत्त होकर पालन करना, वैयावृत्ति करना, स्वाध्याय करना, निष्प्रमत्त होकर के सामायिक करना, जरूरत पड़े तो भक्तों के लिए उपदेश भी दे देना।

श्रावक का धर्म व कर्त्तव्य

जब मुनिराज श्रावक के समक्ष पहुँच जाते हैं तो श्रावक का धर्म व कर्तव्य बन जाता है कि ऐसे रत्नत्रय की आराधना करने वाले अपनी आत्मा की साधना करने वाले उन मुनिराज की देह के लिये अगर वह कुछ दे देगा तो वो देह में नहीं रह जाएगा। वह रत्नत्रय में घुल मिल जाएगा। देह में दिया गया आहार रत्नत्रय में साधक बनता है और उस अन्न-पानी को वो जिस ढंग के माध्यम से खरीदता है उसका प्रयोजन रत्नत्रय की आराधना में यदि लगता है तो वो मुनिराज के आहारदान के माध्यम से ही लगता है। उसके घर के कुटुम्बीजन खा-पीकर बहा देंगे, छोड़ देंगे, शरीर में जाएगा, शरीर से निकल जाएगा, उसके बाद कोई उपयोग नहीं होगा किंतु वही अन्नपान रत्नत्रय की आराधना का कारण बन जाता है जब श्रावक मुनिराज की अंजुली में वह आहार देता

है। इसलिए श्रावक के लिए सबसे बड़ा धर्म दान और पूजा कहा है। चारों प्रकार के दान के लिए सबसे बड़ा आहार दान है क्योंकि तब वह समझ पाता है कि आज हमने अपने धन का कुछ उपयोग कर लिया। ये मुनिराज उपर्युक्त छः कार्यों में उस अन्नपान का उपयोग करेंगे। आचार्य कहते हैं कि जो श्रावक दान देता है वह रत्नत्रय की आराधना करता है। श्रावक का यही बड़ा धर्म है और अवसर भी है। उत्तम पात्र में मुनिराज आते हैं, मध्यम में व्रती श्रावक-श्राविका होते हैं सभी आर्यिका-क्षुल्लक-क्षुल्लिका सब मध्यम पात्र में आते हैं जिन्हें पंचमगुणस्थानवर्ती कहा जाता है एवं जघन्य पात्र जो आपके साधर्मी भाई-बहन हो जो इस मोक्षमार्ग की आराधना करने की भावना रखते हो तथा जो वीतराग भगवान्-शास्त्र व गुरु की आराधना करते हो। इनमें से जो भी पात्र आपको मिल जाए उनको आवश्यकतानुसार दान करके धर्म कमा सकते हो।

आचार्य कहते हैं सुबह से श्रावक के आरंभ-सारंभ की क्रिया शुरू हो जाती है- झाड़ू-पोंछा, पानी भरना, चक्की चलाना, सब्जी लाना फिर भोजन बनाना, अग्नि का प्रयोग करना। सुबह के सारे पाप को श्रावक धो लेता है यदि वह भोजन को बनाने का उद्देश्य सही रखता है तो, भोजन बनाना व भोजन रखना ये दोनों उसके पाप बंध के कारण नहीं होते। महावीर स्वामी ने जैसे मुनिराज को धर्म बताया है वैसे ही श्रावक को भी धर्म बताया है। कैसे पाप से बचना दोनों को बताया परंतु श्रावक अपने पाप से बचने की क्रिया पर ध्यान देता ही नहीं। **मुनिराज के २८ मूलगुण हैं तो श्रावक के ८ होते हैं।** कुछ नहीं हो तो दाता के ७ मूलगुण तो होते ही हैं। यदि कभी मुनिराज दाता को देखें कि वह धर्मी है या अधर्मी है तो वे केवल उसकी नवधाभक्ति को देखकर ये परीक्षा कर लेते हैं कि ये जिनधर्मी है कि विधर्मी है। यदि श्रावक नवधाभक्ति अच्छे से कर लेता है तो मुनिराज समझ जाते हैं कि इसको देव-शास्त्र-गुरु की आराधना करना आता है और इसे गुरु और गुरु के गुणों में अनुराग हैं। **नवधाभक्ति** क्या है- जब तक भक्ति क्रिया के साथ में नहीं होगी, तब तक हमें उसका फल मिलता नहीं। ये दान की, पुण्य की क्रिया इतनी महान क्रिया है कि श्रावक के लिए अगर कभी रत्नत्रय की भावना होगी तो वो केवल आहार दान के समय पर ही होगी। मुनि बनने की भावना एवं साधना केवल आहार दान के समय पर ही होगी। इसलिए हर श्रावक को नवधाभक्ति के नाम आने चाहिए। दुनिया के किसी भी दर्शन में साधु के दान के लिए इतनी दान की विशिष्ट प्रक्रिया एवं विधि नहीं कही गई जैसी भगवान् जिनेंद्रदेव ने इस जैन दर्शन में देने वाले श्रावकों के लिए कही है क्योंकि विधिपूर्वक दिया गया दान ही आपके लिए स्वर्ग का, भोग भूमि

आदि उत्तम फलों को देने का कारण बनेगा। उस नवधाभक्ति में हर क्रिया श्रावक के बहुमान के साथ हो और श्रावक याद रखें कि हमारे सात गुण हैं। पर आज किसी भी श्रावक को नहीं पता है कि उसके गुण कौन से हैं? श्रावक को दान देने के लिए सिर्फ इतना जानना ही पर्याप्त है कि जो मुनिराज आरंभ एवं परिग्रह से मुक्त हो बस, उनके २८ मूलगुणों को देखना ही नहीं है। 'पंचसूना' से मुक्त यानि उनके पास चूल्हा, चक्की, ओखली, झाड़ू, परिंडा न हो ये सिर्फ गृहस्थ के पास होते हैं। किसी भी प्रकार की हिंसक क्रियाओं से रहित हो, कोई पैसा परिग्रह आदि चीजें ना हो। उन्होंने महाव्रतों को धारण किया है। ऐसी निष्पाप आत्माओं को देखकर के आपके मन में केवल दान का भाव आना ही चाहिए वही मुनिराज की धन्यदशा है। तुम्हारी 'अधमदशा' क्या है, तुमने कभी मुनिराज को दान दिया कि नहीं, दान देने का भाव है कि नहीं और श्रावक के सात गुण हैं कि नहीं।

प्रथम श्रावक का गुण है भक्ति करना- नवधा भक्ति में सबसे पहले श्रावक पड़गाहन करे। पड़गाहन के लिए उसने कुछ बनाया होगा तब ना। बनाने का उसका उद्देश्य अगर उल्टा हुआ तो उसे दान की क्रिया का कोई फल नहीं मिलेगा। ये इतनी वैज्ञानिक पद्धति है कि अगर आप इसके अनुसार चलोगे तभी भगवान् महावीर के कहे गए फल पाओगे। यदि श्रावक सिर्फ इतना सा भाव करे कि मैं आज जो भोजन बना रहा हूँ इसी भोजन में से भगवान् मेरे घर के द्वारे पर कोई पात्र आ जाए, कोई ऐसा लाभ मिल जाए जिसके लिए हम पहले भोजन दे दें उसके बाद में हम भोजन करें। इस भाव के कारण सुबह से की जाने वाली क्रियाओं का कोई पाप नहीं लगेगा, पुण्य का बंध होता रहेगा। भोजन स्वयं के लिए बनाना परंतु उसमें से पात्र को दान देने का भाव रखने से पुण्य बंधेगा। आज भोजन तो रोज बनता है परंतु चौका रोजाना नहीं लगता, कभी-कभी लगता है। कभी-कभी कोई नादान श्रावक हमें कहता है महाराज चौका लगा है। भाई निमंत्रण दे रहे हो क्या?हाँ महाराज ये ही समझ लो। जितना जिसको ज्ञान होगा वैसी ही तो बात करेंगे। हमने कभी जाना ही नहीं, सीखा ही नहीं कि हमें क्या बोलना।

दुनिया के दूसरे साधुओं और जैन साधुओं के भोजन कराने में क्या अंतर है। यदि जैन लोग ही नहीं जानेंगे तो हम दूसरों से क्या अपेक्षा करेंगे। दुनिया का कोई भी साधु कहीं भी चला जाएगा और भिक्षा लेकर कैसे भी कुछ भी खा लेगा परंतु दिगम्बर साधु की चर्या क्या होती है ये यदि श्रावक ही नहीं जानेगा तो किसको बताया जाएगा। जिस श्रावक को ये नहीं मालूम कि मुनिराज

कभी निमंत्रण से आहार नहीं करते और मुनिराज के निमित्त से बनाया जाने वाला भोजन साधु व श्रावक दोनों के लिए दोष का कारण होता है। तुम जो भोजन करते हो तो मुनिराज को उसी में से भोजन कराओ। अब आज समस्या ये आ जाती है कि आज श्रावक कुछ भी खा लेता है, शुद्धि का विवेक है नहीं। महाराज, आपको तो शुद्धि से ही खाना है। एक जमाना था जब मुनिराज घरों-घरों तक पहुँच जाते थे, उन्हें ये नहीं बताना होता था कि कहाँ पर आहार है कहाँ नहीं है। मुनिराज को घर के आँगन तक घुसने की छूट है। इतना धन आपने अर्जित किया, अन्न का भंडार घर में भरा है परंतु आपके पास उनकी अंजुलि में पानी भी देने लायक नहीं रहता है, इतने दरिद्र हैं आप लोग। आपके घर में शुद्ध पानी, शुद्ध भोजन कुछ नहीं मिलेगा। एक जमाना था जब घर-घर में शुद्ध पानी व भोजन था। कुएँ का पानी ही हर घर में होता था, रोजाना पीसना, रोजाना बनाना और रोजाना निपटा देना। मुनिराज रोज-रोज हलवा, रसगुल्ला आदि पकवान खाते हैं क्या। जो श्रावक मुनिराज हेतु ऐसी भावना रखता है वो श्रावक अज्ञानी कहलाता है। श्रावक को अपनी शक्ति के अनुसार अपनी स्थिति को देखते हुए अपने धर्म का पालन करने के लिए दान करने का भाव करना चाहिए, तब श्रावक का दान, दान कहलाता है। बाकी सब दरिद्रता है, भ्रष्टपना है। उस दान के साथ ये भाव रहता है कि रोजाना हम अशुद्ध भोजन करते हैं आज यदि हमें आहार दान देना है तो चलो आज हम सब लोगों का शुद्ध भोजन बनेगा। इस प्रकार का जब भाव आता है तो वह सब प्रकार के आरंभ परिग्रह से लगने वाले पापों को ऐसे धो देता है जैसे यदि कहीं खून लगा हो और उस पर पानी डाल दो तो वह तुरंत साफ हो जाता है। अगर वह खून जम जाएगा तो देर से धुलेगा। अगर वह खून बहता हुआ होगा तो तुरंत धुल जाएगा। रोजाना भोजन बनाने का पाप यदि रोजाना पात्र मिल गया तो तुरंत धुल जाता है। यदि आपने महीनों, सालों तक उस बंध को इकट्ठा कर रखा है तो जब कभी तैयारियाँ होती हैं तो कुछ अंतराय कर्म इकट्ठे हो जाते हैं तो भीतर का पाप-मैल धुलता नहीं। इसलिए उसका कोई लाभ मिलता नहीं है। करते सब हैं लेकिन उद्देश्य अच्छे नहीं है क्योंकि ज्ञान नहीं है इसलिए आपको वह पुण्य का बंध नहीं हो पाता जो मुनिराज के लिए दान देने से होता है। आपका भाव ऐसा होना चाहिए कि आज चौका चौका हो गया, चाँदी-चाँदी हो गई, घर में सभी को शुद्ध भोजन करने मिला पर आप कहते हो महाराज थोड़ा सा ले लो, प्रसाद बन जाएगा। खुद भी दोष लगाते हो और साधु को भी दोष लग जाता है।

जब बहुत उत्साह के और आनंद के भाव होते हैं तो वह दान से ऐसा पुण्य लगता है कि

अपने आप पंच आश्चर्य होने लग जाते हैं और आश्चर्यजनक घटनाएँ भी अपने घरों में घटित होने लग जाती है। जब ये भाव नहीं रहते तो सिर्फ आपके लिए खाना-पूर्ति हो जाती है। मुनिराज तो खाना-पूर्ति करते ही हैं क्योंकि उन्हें कोई इंद्रिय से स्वाद लेना ही नहीं है, सिर्फ अपना गड्ढा भर कर आना है और अपने षट्आवश्यक में लग जाना है। श्रावक जब अपने मन से शुद्ध भोजन करने का संस्कार डालेगा तो उसके लिए समझ में आएगा कि जैन धर्म क्या है और धर्म के अंदर दान कैसे होता है और धर्म के लिए दान के पात्रों की गवेषणा कैसे हो सकती है। आप यदि रोजाना शुद्ध भोजन नहीं कर सकते तो आप अष्टमी-चतुर्दशी को शुद्ध भोजन करेंगे या महीने में एक बार शुद्ध भोजन करेंगे। अपने घर में बच्चों व पति को संस्कार देने के लिए करेंगे। मुनिराज की चर्या के समय घर के बाहर खड़े हो जाएँ, कहीं कोई तुम्हारे भाग्य से चारण ऋद्धि महाराज आ जाए। आज भी पंचमकाल में मुनिराज किसी भी समय पर आपके घर में आ सकते हैं लेकिन आपने सब दरवाजे बंद कर रखे हैं। आज श्रावक के अंदर वह जाग्रति है ही नहीं, जो एक धार्मिक के लिए होनी चाहिए। मुनिराज को उतने में ही आनंद आता है। आप इतना तो अपना भाग्य बनाकर रखो कि कभी नहीं चाहते हुए भी यदि मुनिराज हमारे घर में आ जाएँ तो आप दो चुल्लू पानी तो पिला सकें, भोजन तो बहुत दूर की बात हो गई। यदि अकस्मात् पानी पिलाने में आ गया तो समझ लेना मुनिराज के लिए उस दिन इतनी विशुद्धि बढ़ेगी जितनी उपवास से भी नहीं बढ़ती क्योंकि ये भाव उत्पन्न इसलिए होते हैं।

एक बार **आचार्य शांतिसागर महाराज** से श्रावकों ने पूछा महाराज इस पंचमकाल में मुनिराज के लिए केवलज्ञान क्यों नहीं होता। मुनि महाराज ने कहा उनको शुक्ल ध्यान नहीं होता। श्रावक ने पूछा कि शुक्ल ध्यान क्यों नहीं होता। वे बोले- क्योंकि विशुद्धि इतनी नहीं बढ़ पाती? क्यों नहीं बढ़ पाती महाराज? क्योंकि ये अधम श्रावक मुनिराज को शुद्धतापूर्वक भोजन देते ही नहीं है। अगर ये श्रावक भावों की शुद्धतापूर्वक भोजन कराएँ तो मुनिराज के लिए ऐसे भाव उत्पन्न होते हैं। एक बार शांतिसागर महाराज आहार करने के लिए निकले, सब जगह पर लोग अपने-अपने हिसाब से खड़े थे, एक बुढ़िया अकेली खड़ी थी, उसकी भावना थी कि मुनिराज हमारे घर पर आ जाएँ। संयोग से मुनिराज उसके घर में पहुँच गए। उसने दाल-चावल-रोटी बनाई थी, वो बस उतनी सी लेकर आये सामायिक करने गए तो शाम के ४ बज गए। वे उठे ही नहीं। श्रावक लोग घबरा गए, आज क्या हो गया। आपस में चर्चा करने लगे कि आज उस बुढ़िया के यहाँ पर आहार

करने गए थे महाराज। पता नहीं उस बुढ़िया ने क्या खिला दिया कि महाराज सामायिक से ही नहीं उठ रहे। जब शाम को महाराज सामायिक से उठे तो सब श्रावक लोग पहुँच गए और पूछने लगे कि आज इतनी देर तक सामायिक क्यों की? तब महाराज कहते हैं कि आज उस बुढ़िया ने जो आहार कराया उसमें इतनी विशुद्धि बढ़ी कि हमारा ३ घंटे तक सामायिक में मन लग गया। ऐसा कई बार होता है, हमारे साथ भी होता है। गोटेगाँव में जब चातुर्मास चल रहा था वहाँ एक बुढ़िया के घर मध्यमवर्गीय परिवार था। वह भी रोजाना पड़गाहन हेतु खड़ी हो जाती थी। १० दिन बाद उस बुढ़िया के यहाँ आहार हुआ तो उस बुढ़िया को जो प्रसन्नता हुई वो तो हुई पर अपने भावों में उस दिन सामायिक में जो विशुद्धि आई वैसी विशुद्धि का भाव कभी भी उत्पन्न नहीं हुआ। ये भाव इसलिए होता है क्योंकि आहार का मन के ऊपर बहुत प्रभाव पड़ता है। यदि ऐसा बोल दिया कि हमारा चौका लगा है तो महाराज उस चौके में तो जाएँगे ही नहीं क्योंकि वो तो निमंत्रण हो गया।

प्रथम गुण **नवधा भक्ति** में सबसे पहले आता है– 'पड़गाहन करना'। महाराज के आगे-आगे नहीं चलना। तुम आगे चल रहे हो इसका मतलब है तुमने महाराज को बाँध लिया और महाराज तुमसे बँध गए। ऐसा भाव भी तुम्हारी बहुत बड़ी अज्ञानता है इसलिए अपने घर पर खड़े रहो। शुद्धि के कपड़े पहनने के बाद आप किसी भी दूसरे कपड़ों से छूना नहीं, रास्ते में आने-जाने से हमारे कपड़े टच ना हों, दुपट्टा कहीं जा रहा, अपनी कहीं जा रहे हैं। किसी को कोई ध्यान नहीं रहता। आप मन में विचार करो कि उस काया की शुद्धि तब तक बनी रहनी चाहिए जब तक हम आहार दे रहे हैं। महाराज को अंदर ले जाना और उन्हें उच्चासन पर बैठाना ये दूसरी भक्ति होती है। फिर पाद प्रक्षालन करना तीसरी भक्ति, पूजन चौथी भक्ति एवं पूजन के बाद में नमोस्तु करना पाँचवीं भक्ति है। ६ठी मनशुद्धि बोलना, ७वीं वचनशुद्धि बोलना और ८वीं भक्ति काया शुद्धि बोलना और ९वीं भक्ति आहार शुद्ध बोलना। ये ९ शुद्धियों का ज्ञान अगर आपके अंदर है। आपको डरने की जरूरत नहीं है। दूसरा गुण **'तुष्टि' -** ऐसी संतुष्टि होना आज हमें मानो तीन लोक का खजाना मिल गया। जिस रत्नत्रय की हम कभी आराधना नहीं कर सकते, वह रत्नत्रय की निधि हमारे घर में आ गई, इतनी खुशी व संतुष्टि होना। तीसरा गुण श्रावक का है **'श्रद्धा'**- वह यह भाव करता है कि हमें मुनिराज के इस उपकार के माध्यम से ही, इस दान के माध्यम से ही हमें स्वर्ग मिलेगा। हमारा कल्याण यदि होगा तो मुनिराज को आहार दान से हो सकता है। इसी दान

के माध्यम से हमारा धर्म पलेगा और ये हमारा कर्तव्य है। इसी श्रद्धा भाव से उसके अंदर वह पुण्य का बंध होता है, जिस पुण्य से वह उत्तम से उत्तम सुखों को भोगने का पात्र बन जाता है। चौथा गुण है **'विज्ञान'** का अर्थ होता है उसे द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव का ज्ञान होना चाहिए। किस समय पर किसके लिए क्या भोजन देना, क्या आहार देना, ऋतु के अनुसार कैसा आहार देना ये सब ज्ञान भी उस श्रावक को होना चाहिए। ऐसा नहीं कि कल चौके में जो आहार लिया वही आज भी लेंगे। यदि कल आहार से महाराज को पेट में दर्द हो गया तो आज भी महाराज वह आहार कैसे लेंगे। वह ज्ञान श्रावक को अपने लिए स्वयं करना। पाँचवाँ गुण है **'अलोलुप्ता'** यानि लोलुप्ता का अभाव मतलब आज मैंने महाराज को दान दे दिया तो मैं सबकी नजर में बड़ा बन गया, हम भी बड़े आदमी हैं, हमने दान दे दिया। ऐसी कोई भी भावना नहीं करना इसका नाम है अलोलुप्ता। छटवाँ गुण है **'सात्विकता'** जो उसके पास है। अपनी शक्ति के अनुसार वह उसका पूरा का पूरा प्रयोग करता है। अगर उसको उत्तम पात्र का लाभ नहीं मिल पाता है तो वो मध्यम पात्र को भी वैसा ही पात्र मानकर के उनको समय पर बुलाता है। मध्यम पात्र आपके लिए प्रति श्रावक, श्राविका के रूप में दिखाई देते हैं। यदि मध्यम पात्र का भी लाभ न मिले तो अपने पड़ोसी साधर्मी को बुलाना। आपने अगर दान का भाव किया है तो वो आपको कहीं न कहीं पूरा करना है। उसके बाद आप आहार करोगे तो आपको जो आनंद आएगा तो लगेगा आज हमने अपने धन का, अन्न का, अपने भोजन का, अपने घर की वस्तुओं का सदुपयोग कर लिया। अगर ये सब नहीं भी हो पाए तो एक अंतिम गुण और होता है जिसे कहते हैं **'क्षमा'।** वह हमेशा ये विचार करता है कि हमें अगर लाभ नहीं भी हो पाए तो कोई बात नहीं, हमारे तो कर्म बंध धुल गए क्योंकि हमने भाव किए और भाव से हमें लाभ हो गया। आज हमें पात्र का लाभ नहीं भी हो पाया तो वो पड़ोसी पर गुस्सा नहीं करता कि आज तुम इस रास्ते से महाराज को क्यों नहीं लाये, उन्हें रास्ता क्यों नहीं दिखाया। ऐसी भावना करने वालों को कभी भी दान की पात्रता नहीं होती। इतने उत्कृष्ट भावों वाला श्रावक दिखे तो मुनि को भी आनंद आता है। ऐसे श्रावकत्व के गुण अपने अंदर अर्जित करो। कम से कम अपने अंदर ये भावना रखो कि हम अपने लिए जो कर रहे हैं उसके साथ में अगर किसी पात्र के लिए कुछ हो जाता है तो वो अपने लिए सार्थक है। बाकी तो सब खाया-पीया नाली में बह गया। धर्म के साथ में वही लगता है जो धर्मात्मा के लिए किया जाता है।

श्लोक–४१

आत्म–विभ्रमजं दुःखमात्मज्ञानात्प्रशाम्यति।
नाऽयतास्तत्र निर्वान्ति कृत्वाऽपि परमं तपः।।४१।।

अज्ञान–जन्य–दुख नाश स्वबोध से हो, पीड़ा अतीव वह क्यों न अनादि से हो।
विज्ञान के विषय में यदि आलसी है, पाता न मोक्ष, उसका तप! ना सही है।।४१।।

आत्मबोध सुख का कारण

आचार्य कहते हैं जब समीचीन कारण हमारे सामने होता है तो कार्य भी समीचीन होता है। हम कोई अच्छा काम करना चाह रहे हों तो उसके लिए अच्छे कारणों को भी समायोजित करना पड़ता है। जैसे कारण होते हैं वैसे ही कार्य होते हैं। अगर हमने कारणों की संयोजना गलत कर रखी है तो हमें वो कार्य की परिणति भी गलत रूप में ही सामने आती है। हम अगर संसार के दुःखों से मुक्त होना चाहते हैं या आत्मा में उत्पन्न होने वाले दुःखों से दूर होना चाहते हैं तो उसके लिए बताया है कि जितने भी दुःख है वे अपनी आत्मा को छोड़कर के परवस्तु में आत्मा के आरोहण से उत्पन्न हुए विभ्रम के कारण होते हैं। अपनी आत्मा को आत्मा न मानकर परवस्तु में आत्मा की कल्पना में उत्पन्न हुए विभ्रम के कारण होते हैं। परवस्तु से जब हमारे अंदर ये भ्रम उत्पन्न होता है कि यह हमारे सुख का कारण है तो वहीं से सबसे पहले दुःख का कारण उत्पन्न हो जाता है क्योंकि सुख के कारण को छोड़कर हमने अन्य वस्तु में दुःख की कल्पना कर ली। एक बार वह गलती हो गई तो वो गलती होती ही चली जाती है। कई बार वो भवों-भवों तक हमारे साथ रहती है। गलत दिशा में उठाए हुए कदम को वापस लौटाने के लिए भी बहुत पुरुषार्थ करना पड़ता है। एक बार गलत दिशा में यदि हमारी गति हो जाती है तो हम चलते तो जाते हैं लेकिन मंजिल की प्राप्ति नहीं हो पाती है। वही गलत दिशा में उठाए कदमों का ऐसा संस्कार

हमारी आत्मा में पड़ा है कि बिना कहे बिना बताए भी हमारे कदम गलत दिशा में अपने आप उठ जाते हैं। इसी को आचार्य कहते हैं ये **'विभ्रम'** है। आत्मा का विभ्रम से उत्पन्न हुआ दु:ख उसी विभ्रम को दूर करने से ही दूर होगा।

आत्मा को हमेशा भ्रम परपदार्थों में होता ही रहता है। उस भ्रम को दूर आत्मज्ञान से ही कर सकते हैं। जब आप को कोई दु:ख होता है उस समय पर आप अपनी आत्मा की कल्पना न करें कि ये मेरा अपना है। दुनिया के सब दु:खों का मूलभूत कारण है आत्मा का मतलब अपनापन। जब दूसरे में जुड़ गया तो वहीं से दु:ख शुरू हो गया। दूसरे को अपना मानना ही दु:ख का मूल कारण है और अपने को अपना मानना सुख का मूल कारण है। जैसे ही हमने दूसरे में सुख की कल्पना की, दु:ख की परिणति वहीं से शुरू हो गई, संस्कार के कारण से हमसे रहा नहीं जाता और हम किसी न किसी को अपना मानने के लिए निरंतर प्रयासरत रहते हैं।

स्मार्टफोन

हर व्यक्ति अपने को छोड़कर के किसी दूसरे को अपना मानने की एक बहुत बड़ी जिद लिए रहता है। जिद यानि हठ। ऐसी जिद जिसके माध्यम से हमें रोजाना ऐसा लगता है कि हमारे सुख में यदि वृद्धि होगी तो रोजाना नए-नए लोगों से मिलना चाहिए, परिचय होना चाहिए, संबंध बनना चाहिए। ये आत्मा के अंदर बहुत बड़ा भ्रम पड़ा हुआ है। आज कल लोग मोबाइल जैसी बड़ी-बड़ी सुविधाओं से एक नंबर लेकर १०० नंबर से जुड़ जाते हैं। एक ग्रुप में कई लोगों ने अपने-अपने ग्रुप बना रखे हैं। उनके भी सौ-सौ लोग और जुड़े हुए हैं जिनसे जुड़कर आपको आनंद आता है। आपकी बात एक साथ १००-२००-५०० लोगों के पास पहुँच जाए तो आपको अच्छा लगता है। चलो हमको भी कुछ जानने वाले लोग हैं। लोग अपने आपको न जानकर के दूसरों से अपनी पहचान बनाने के लिए प्रयत्नशील रहते हैं, मोबाइल, वॉट्सअप आदि से ही काम करते हैं। ये सब आपके भ्रम को बढ़ाने वाले हैं। भ्रम ऐसी चीज है कि एक बार यदि आत्मा में उससे आकर्षण हो जाता है तो वह उसमें फंसता चला जाएगा लेकिन उससे बचने का प्रयास नहीं करेगा। इसलिए आजकल सबको टचस्क्रीन वाले स्मार्ट मोबाइल चाहिए। ऐसे मोबाइल चाहिए जिससे एक साथ पूरी दुनिया से हमारा कांटेक्ट जुड़ सके। पहले जो मोबाइल आए थे उनसे आप केवल

बातचीत कर लो पर अब सिर्फ बातचीत तक नहीं है, किसी से भी संबंध बना लो, चेटिंग कर लो। ये सिस्टम आपके लिए भ्रम के कारण होते हैं। भ्रम से दूर होने के लिए इतना प्रयास करो कि अपनी इच्छाओं, अपनी भावनाओं और अपनी जरूरतों को देखें। जरूरतें हमारे अनुसार बननी चाहिए न कि हमारे सामने जैसे साधन हो वैसी जरूरत बन जाए। जरूरतें हमें कुछ नहीं लेकिन जबरदस्ती उनकी जरूरत बना ली और बिना वजह का हमने दु:ख अपने ऊपर ओढ़ लिया।

पहले घर में कोई मैसेज आने में समय लगता था और कभी-कभी उसके कारण से भी बड़े-बड़े फायदे हो जाते थे। यदि मान लो परिवार के किसी रिश्तेदार का एक्सीडेंट में मरण हो गया और वो समाचार आपके पास तक आते-आते आठ दिन हो गए। ये बहुत बड़ी सुविधा है कि दुविधा है। यदि किसी का मरण हुआ, तत्काल आपको सूचना मिल गई तो इससे आपको सुख बढ़ा कि दु:ख बढ़ा। आपने कभी गणित लगाया नहीं, विचार किया नहीं। देखो, पहले ७-८ दिन में मरण की खबर आती थी तो ये रहता था कि अब ८ दिन हो गए हैं कल/परसों/रविवार को सुविधानुसार बैठने चले जाएँगे। उसका काम हो जाता था। अब दुविधा ये हो गई कि आपको तुरंत सूचना मिल गई और आप उसी दिन वहाँ नहीं पहुँचे तो बड़ी समस्या हो गई। आपके रिश्ते में परेशानी उत्पन्न हो सकती है कि आपको तुरंत सूचना मिल गई पर आप तीन दिन बाद आ रहे हो। आपके रिश्तों में खटास आ जाती है। आपको उसी समय पर उस व्यक्ति को अटेंड करना ही होता है। मान लो आप किसी धार्मिक आयोजन में बैठे हैं और आज से प्रारंभ हुआ है और आज ही आपको मैसेज मिल गया। आपके बेटा के/बेटी के किसी के खानदान में बच्चा हो गया। आपका धर्म ध्यान उसी दिन से चला गया क्योंकि सूतक लग गई। पहले ये खबर आते-आते आठ दिन तक निकल जाते थे। कभी-कभी तो सूतक निकल जाने के बाद पता पड़ता था। धर्म ध्यान हो जाता, उसमें बाधा नहीं पड़ती थी। ये सुविधाएँ इस तरह से धर्म ध्यान में बाधक बनती चली जाती हैं और आप उसमें सुख ही सुख की कल्पना करते रहते हैं। आज कोई भी व्यक्ति सामान्य मोबाइल से काम निकालना नहीं चाहता, भले ही उसके लायक उसे कोई काम हो या न हो। उसे नया से नया मोबाइल सेट ही अपने पास चाहिए क्योंकि उसे ये भ्रम हो गया है कि यही हमारे सुख का कारण है, इसी से हमारा स्टैंडर्ड बढ़ता है।

अगर आदमी इतना सोच ले कि हम दुनिया की भीड़ में न बहें तो हमें अपनी लाइन खुद शुरू करना है। एक पिक्चर देखी आपने, जिसमें सुना होगा 'जहाँ से मैं खड़ा हो जाता हूँ, वहाँ

से लाइन शुरू होती है।' ऐसा आदमी के अंदर जब जज्बा हो। जहाँ मैं खड़ा हो जाऊँ, जो काम मैं करने लग जाऊँ बस वहीं से हमारे पीछे लोग चलने लग जाएँ, ऐसा जज्बा आने पर ही आत्मविभ्रम से होने वाले दु:ख दूर होंगे। जब तक दूसरों के अनुसार चलते रहोगे, तब तक आप आत्मा के इस विभ्रम से होने वाले दु:खों में और डूबते चले जाओगे। ये करने की हिम्मत चाहिए। अगर आपके पास में पैसा है, सब कुछ उसके बाद भी यदि आप सिंपल सा मोबाइल रखे हो। सामने वाला आपको देखकर कहे सेठजी, ये कैसा मोबाइल। आप कहो कि अपना काम तो इतने से ही चल जाता है क्यों अपने को माथा-पच्ची करने की जरूरत है। उसके ऊपर अपने आप इतना प्रभाव पड़ जाएगा कि सुखी रहने के लिए अपने को भी यही अपनाना चाहिए। दोस्तों से, रिश्तेदारों से इसी फोन से बात कर ली और रख दिया। आदमी यदि किसी कारणवश सफल नहीं हो पा रहा है तो इन्हीं साधनों के कारण से जो हमारे सामने हैं। पहले टी.वी. चलती थी अब वॉट्सअप व फेसबुक के आगे सब फेल है। उसमें दुनिया से संपर्क में रहने की सब सुविधा है पर स्वयं के संपर्क में रहने की सुविधा नहीं है। आदमी उसी को फैशन मान स्वयं के लिए सिरदर्द उत्पन्न कर लेता है। आदमी एक मोबाइल कान में, दूसरा हाथ में और तीसरा जेब में लिए है, मानो बहुत बड़ा व्यस्त आदमी है। ऐसे लोग भी हैं दुनिया में जो किसी भी प्रकार की सुविधा के बिना बहुत बड़े-बड़े काम करते हैं, बड़ी-बड़ी इंडस्ट्री चलाते हैं। ये चीजें तो उन लोगों के सामने रख दी जाती हैं जिन लोगों में अपनी कोई बुद्धि नहीं होती। देखा जाए तो दुनिया में एकमात्र भारत देश ही ऐसा है जहाँ आदमी की अपनी कोई बुद्धि नहीं है।

बुद्धिमानी

दुनिया में जो चीज कहीं न चले वो भारत में चलती है, बहुत आसानी से। बड़ी-बड़ी कंपनियाँ भारत में आप लोगों की बेवकूफी के कारण चल रही है। सारी दुनिया से रिजेक्ट होकर आ रही चीजें भारत में आसानी से बिकती है। आदमी बिना काम की चीजें घर में इकट्ठा कर लेता है और परेशान होता रहता है। उदाहरण के लिए आपके घरों में फ्रिज का क्या काम। ये वहाँ के लिए है जहाँ वातावरण इतना गर्म होता है जहाँ सब्जियाँ नहीं होती, फल-फूल नहीं होते, उनके लिए ये साधन बनाए गए थे। भारत में तो रोजाना हरी व नई सब्जियाँ मिलती हैं पर अपना स्टैंडर्ड दिखाने

के लिए लोग रेफ्रिजरेटर हर घर में रखने लगे। फ्रिज में रखकर बासी सब्जियाँ खाना, फ्रिज से निकलने वाली गैसों का भी उनमें प्रभाव पड़ता है, वे दूषित हो जाती हैं वो खाते-पीते हैं और स्वयं को समझदार मानते हैं। उससे अनके परेशानी/बीमारियाँ होने लगी और बिजली का बिल बढ़ा लेते हैं। अब हमें ये ज्ञान आ जाए कि जिन चीजों से हमें कोई सुविधाएँ नहीं हैं बल्कि दुविधाएँ हैं तो हम उन चीजों को छोड़ें, उनमें आसक्ति को त्यागें। ये करने का साहस ही हमारा दु:ख दूर करेगा। यदि ठंडे पानी का आनंद लेना है, स्वास्थ्य सही रखना है तो मिट्टी के घड़े का पानी पिओ। घर में ये चीजें ऐसे रखो पर काम में मत लो जैसे कपड़ों की दुकान के आगे स्टेचू ड्रेस पहने खड़ी रहती है जैसे वास्तविक आदमी खड़ा हो। मिनिरल वाटर में पानी के जो योग्य तत्त्व होते हैं वे भी मिटा दिए जाते हैं, पानी-पानी नहीं रह जाता। जो उसके आवश्यक तत्त्व होते हैं जिससे भोजन के पचने में आसानी रहती है जो पानी हमारे अंदर **ब्रिथ सेल्स** को बनाकर के रखता है, जो लिवर, किडनी आदि के कार्यों को सुचारू रूप देता है, वो तत्त्व भी उस पानी के अंदर नहीं है और उसे आदमी मिनिरल वाटर जो मिनिरल रहित पानी है, को शान से पीता है। उसे रोका जाए तो वो हमें ही बेवकूफ समझने लगता है। उसके दिमाग में ये सब इतना चढ़ चुका है उसे रोकना बहुत मुश्किल है। उसे समझाना कठिन है कि ये दुनिया का तमाशा सिर्फ आदमी को चलाने के लिए चल रहा है। सामान्य आदमी उनके आकर्षण और प्रलोभन में फंसता है और उसी से बड़ी-बड़ी देशी-विदेशी कंपनियाँ चल रही हैं।

भारत में हर घर में नल/हैंडपंप/कुएँ हैं तो फिर बोतलों का पुराना पानी पीने में क्या सार है। अंग्रेजों के आने से पहले घरों में गिलास नहीं होते थे, लोटे चला करते थे। अंग्रेजों ने गिलास लाकर दिए। लोटे और गिलास का अंतर आप भौतिकी के अनुसार समझे कि जिसकी ऊपरी सतह जितनी ज्यादा होती है, पानी अगर उसके द्वारा आता है तो पानी के अंदर उसकी जो डेंसिटी/घनत्व होता है और इंटेंसिटी बढ़ जाती है और वो पानी ज्यादा लाभदायक होता है बजाए उस बर्तन के जिसका ढक्कन छोटा है और उसमें से अगर आप पानी पियोगे तो वो पेट में नुकसान करेगा। ये बहुत बड़ा विज्ञान है। पहले के लोग पानी इस ढंग से पीते थे कि पानी मुँह में जाए तो बड़े मुँह से जाए। पहले लोटे आए फिर जग आए और गिलास बहुत बाद में आए। उससे भी पहले आदमी जब पानी पीता था तो मुनिराज के जैसे चुल्लू भर कर पीता था,चाहे दोनों हाथ से या एक हाथ से। हाथ का वाल्यूम बढ़ा रहता है और तेजी से पानी जाएगा तो वो बहुत फायदेमंद रहेगा। वो

पानी कभी मोटापा नहीं बढ़ाएगा, डायबिटीज नहीं देगा। ये आपको छोटी बातें नहीं बता रहा हूँ, ये बातें बड़ी-बड़ी कॉन्फ्रेंस में आपको डॉक्टर बताएँगे, जब आप ५००० रुपए की फीस लेकर के उस कॉन्फ्रेंस को अटेंड करेंगे। ये वो विज्ञान है जिसकी यदि आपको जानकारी हो जाए तो आप बहुत सारी शरीरगत बीमारियों से निजात पा सकते हैं। आप हमेशा चौड़े मुँह वाले बर्तन से पानी पियो, चाहे लोटे से पियो, जग से पियो, हाथ से पियो लेकिन छोटे-छोटे गिलास-कप-बोतलों से मत पियो, वे हानिकारक हैं। पानी पीने का एक तरीका था। बोतल का पानी सीधा मुँह में नहीं आकर यदि गले में गया तो समझना की पानी जो शरीर में पचाने के काम आता था उसको भी पचाने के लिए किसी दूसरी चीज की जरूरत पड़ेगी क्योंकि मुँह में जो लार रहती है जिससे मिलकर खाना-पानी पेट में पहुँचता है वो नहीं मिल पाती। प्रकृति से प्रदान विशेष चीज 'लार' यदि आपके मुँह में बनती है तो समझना अभी आपके लिए जीवन चल रहा है यदि नहीं बनती है तो जीवन समाप्ति की ओर है। बिना लार मिला पानी नुकसान का कारण बनेगा। उसी पानी को यदि आप धीरे-धीरे 'सिप' लेते हुए पियें (घूंट-घूंट) तो वो बीमारियाँ घटाने का कारण बनेगा। जिन्हें डायबिटीज व मोटापा हो वो केवल पानी को अच्छे ढंग से पीना सीख लें। छह महीने के अंदर उनकी डायबिटीज और मोटापा सब कुछ ठीक हो जाएगा। जैसे आप चाय पीते हो वैसे आप पानी को पियो, घूंट-घूंट। आयुर्वेद का बहुत बड़ा सिद्धांत है– पानी को खाओ और भोजन को पियो। मतलब भोजन को इतना मुँह में चबाओ कि वो पीने जैसा हो जाए और पानी को मुँह में इतनी देर रखो कि लगे आप खा रहे हो उसे। आजकल एक ही सीट पर बैठे-बैठे काम करने से मोटापा बढ़ रहा है, उसे सिर्फ इतनी सी क्रिया द्वारा ठीक किया जा सकता है। जब भी पानी पियो तो चौड़े मुँह के बर्तन से पियो और घूंट-घूंट कर के पियो। हम ढेर सारे पैसे खर्च करके दुनिया के काम करते हैं पर जिनसे भ्रम बढ़ रहा है उसको जानते ही नहीं।

फ्रिज में रखी चीजें कभी उपयोग में नहीं लें। आचार्यो के जीवविज्ञान के अनुसार फ्रिज में रखी चीजें तब तक ही सुरक्षित हैं जब तक वे फ्रिज के अंदर है। जैसे ही वो बाहर आती हैं वातावरण के तापमान में अत्यधिक अंतर आता है, अंदर माइनस में तापमान है और बाहर प्लस में। जैसे ही तापमान में अचानक परिवर्तन आता है, जीवों की उत्पत्ति उतनी ही तेजी से होती है और वह वस्तु उतनी ही तेजी से सड़ेगी और आपने यदि खाने में २-५ मिनट भी लगा दिए तो उसमें असंख्यात जीव उत्पन्न हो जाएँगे। ये केवल वीतराग विज्ञान या जीवविज्ञान ही बताएगा और

कोई नहीं जानेगा। इसलिए अपने को ये ध्यान में रखना है कि जो चीजें पहले चला करती थीं वो उतनी ही अच्छी थी और उपयोगी थी। आप जितने भी बड़े-बड़े लोगों को जानते हैं ना टाटा बिड़ला, अंबानी ये ऐसे चतुर लोग हैं जो दुनिया को तो बेवकूफ बनाते हैं पर खुद अक्लमंदी के साथ रहते हैं। ये स्टील, एल्यूमीनियम के बर्तन इस्तेमाल नहीं करते। अंबानी के यहाँ मिट्टी के बर्तनों को खाना बनाने के लिए काम में लेते हैं। रोटी भी मिट्टी के तवे पर बनती है और दुनिया बेवकूफ बनी हुई है इस चमक-दमक में। आपके लिए वही पानी और वही रोटी ही उतनी लाभदायक है। राजस्थान में रोटी को बनाने के लिए एक मिट्टी का **'कंडीला'** आता है जिस पर बनी हुई रोटियाँ अगर खाओगे तो जिंदगी में कभी डायबिटीज नहीं होगी। आज लोग लोहे के तवे की बनी रोटियाँ खाकर बीमार हो रहे हैं। मिट्टी के बर्तन में बने खाने में स्वाद आएगा और स्वास्थ्य भी अच्छा रहेगा। साधु-संतों के लिए जब रोटियाँ बनती हैं तो आप लोग जल्दी-जल्दी कच्ची-कच्ची ही बनाकर रख देते हो। किसी भी तरीके के पाक शास्त्र का आपको ज्ञान नहीं, भोजन बनाने का ज्ञान नहीं, पानी पीने तक का ज्ञान नहीं। सब फैशन में जिये जा रहे हैं, बोतलें रखी हैं फ्रिज के अंदर और डाइनिंग टेबल के ऊपर, बस खोला और पी गए। कब से वो पानी पड़ा है, कब का पैक है, आप कहोगे उसकी २ साल की गारंटी है और दो साल तक पीते रहोगे। दुनिया पागल हो तो हो, जैन ऐसी बेवकूफी करे तो लगता है कि सब पढ़े-लिखे बेवकूफ उत्पन्न हो रहे हैं।

आज का आदमी पढ़ा-लिखा असत्य है। बड़े-बड़े प्रोफेसर इस तथ्य को साबित कर चुके हैं। लंदन के **केम्ब्रिज यूनिवर्सिटी** का रिसर्च बता रहा हूँ आपको। पढ़ा-लिखा व्यक्ति बेवकूफ क्यों? क्योंकि जिसको अपने बारे में सही ज्ञान नहीं है हम क्या खा रहे हैं, क्या पी रहे हैं, कहाँ चल रहे हैं, कौन सी चीज को क्यों उपयोग कर रहे हैं। आपके लिए जब तक ये सब ज्ञान नहीं आता, तब तक ये सब पढ़ी-लिखी बेवकूफी के साथ आज दुनिया चल रही है। आप कम से कम अपने खाने-पीने की चीजों को तो सही ढंग से चला करके रखें। इससे शरीर की स्वस्थता बढ़ेगी तो थोड़ी सी आत्मज्ञान में स्वस्थता आएगी। शरीर स्वस्थ होगा तो महाराज की कही गई बात अच्छी लगेगी। महाराज धर्मध्यान करना है १० दिन कैसे करेंगे। बैठा जाता नहीं है, बार-बार प्यास लगती है, दवाइयाँ खानी पड़ती हैं। देखो आप अगर मन बनाओगे तो आपके लिए ये ताकत अंदर से आएगी। हमने ऐसे-ऐसे लोगों को प्रेक्टिकली देखा है। पिछले शहर में एक व्यक्ति ने कहा महाराज हम सब कुछ कर सकते हैं लेकिन हर आधे घंटे में पानी पीना पड़ता है, बहुत प्यास लगती है।

हमने कहा ठीक है तुम्हें हर आधे घंटे में पानी मिलेगा। १ दिन हो गया, उसको फुर्सत ही नहीं मिली पानी पीने की, बीच में उसने केवल दो बार पानी पिया। उसको प्यास लगी ही नहीं। यहाँ मंदसौर में कभी कुछ ऐसा हुआ नहीं तो सबको डर लग रहा है। एक दूसरे से पूछता है पर किसी को मालूम ही नहीं। वो होगा कि तुम्हें पता ही नहीं पड़ेगा कि कब सुबह हो रही है और कब शाम हो रही है। इतना अच्छा सिस्टम बनता है कि आदमी की सब विकृतियाँ दूर हो जाती हैं, सारी परेशानियों को भूल जाता है। आपको लगता है कि हम ऐसा कर ही नहीं सकते, वो सब शक्तियाँ आपके अंदर प्रस्फुटित होगी, इन सब शक्तियों के सरताज आप स्वयं होंगे। आप स्वयं महसूस करेंगे कि ये शक्तियाँ हमारे अंदर कहाँ से आ गई। ये सब शक्तियाँ आपके अंदर उसी समय से प्रारंभ हो जाएँगी जैसे ही आप यहाँ से मंत्रित हुई उस ड्रेस को पहनेंगे। उस ड्रेस के साथ ही आपके जितने भी विचार हैं, भावनाएँ हैं वो सब बदलेगी। ये ड्रेस आपको दिनभर व रातभर ही पहननी है, नाइट सूट नहीं होगा। तुम उसकी चिंता मत करो, सब भूल जाओगे। उसमें तुम्हें जो आनंद आएगा, वो तुम्हें पेंट-शर्ट, कुर्ते-पजामे में भी नहीं है तो कहीं पर भी 'अनईजी' महसूस नहीं होगा। सब एक जैसे होंगे, आपको आनंद आएगा। जिन व्यक्तियों को इन क्रियाओं में आनंद आने लग जाता है उस व्यक्ति को जिंदगी भर धर्म करना आसान हो जाता है फिर उसे दोबारा संस्कारित करने की जरूरत नहीं पड़ती। नींद भी अपने आप आएगी क्योंकि आप थके होंगे, कोई दुःख नहीं होगा, तनाव व परेशानियाँ नहीं होंगी तो आपको अपने आप नींद आएगी। कई लोगों की जीवन की पद्धति सुधर जाती है जो नींद की गोलियाँ खा रहे होते हैं उनकी गोलियाँ छूट जाती है। बार-बार भूख-प्यास लगने की शिकायत दूर हो जाती है। मैं उस व्यक्ति के बारे में बता रहा था तो पहले दिन तो उसने २-३ बार पानी पी लिया। भीतर से उसे ये भाव आने लगा कि मुझे बार-बार पानी नहीं पीना है। जब वह बगल में बैठे व्यक्ति को देखता है कि ये एकासन कर रहा है, दो दिन का उपवास कर रहा है तो उसकी भूख-प्यास आसपास के वातावरण को देखकर चली जाती है।

देखासीखी

जैसे वातावरण में हम रहते हैं, हमारे अंदर वैसे ही भाव आने लगते हैं। कभी-कभी कुछ शक्तियाँ हमारे अंदर अकेले में नियम-संयम करने से उत्पन्न नहीं होती है पर सामूहिक करने से

सहजता में हो जाती है। 'देखासीखी' से बहुत काम हो जाते हैं। इस मानसिकता का उपयोग धर्म में करने लगो तो आपके लिए फायदा ही फायदा है। जैसे खरबूजे को देखकर खरबूजा रंग बदलता है ऐसे ही दूसरे के चेहरे को देखकर आपके चेहरे का रंग बदलेगा। दूसरे को देखकर वह सोचने लगता है कि अपने को भी ऐसा ही करना है। दो दिन बाद ही वह व्यक्ति दो बार पानी पीने लगा। यह इच्छाओं के कंट्रोल का नाम ही तो धर्म है और यह किसी के कहने से नहीं अपने आप होता है। माहौल का अपने आप बड़ा फर्क पड़ता है। जिंदगी भर हमने कभी ऐसे माहौल देखे नहीं। एक बार अपने मन में इतना साहस कर लो कि हमें इस माहौल में रुकना है उसके बाद क्या होना है उसकी चिंता हमारे ऊपर छोड़ दो। बस ये भाव रखो कि हमें धर्म करना है और हम जिंदगी भर का समर्पण नहीं कर सकते तो कुछ दिन का ही करें। **समर्पण** का आनंद अलग ही होता है। जब तक समर्पण नहीं होता, भीतर की प्यास बुझती नहीं है। पानी है, नदी है, खूब बह रहा है पानी, आप प्यासे खड़े हो क्यों? आपकी प्यास तब बुझेगी जब आप पानी पीने नदी में उतरोगे, झुकोगे, हाथ में पानी लेने का प्रयास करोगे। दूर से पानी को देखकर प्यास नहीं बुझेगी। जो लोग कलरफुल ड्रेस में आएँगे, समय-समय पर रुकेंगे वे दूर से पानी को देखेंगे उनकी प्यास नहीं बुझेगी। जो समर्पण करेगा, उसके साथ ये भावना करेगा कि हमें जिंदगी में नया कुछ सीखना है तो इन दिनों में सीखना है। ऐसी भावना से अपने आप शीतलता आती है, प्यास बुझने लगती है। थोड़े से समर्पण से व्यक्ति के बहुत सारे भ्रम टूटते हैं। बड़े-बड़े आचार्य/साधु जिंदगी भर अपने भ्रमों को ही दूर करते रहते हैं। आपके पास संसार के भ्रम हैं, पर मन के भ्रम भी बहुत होते हैं जब आत्मा का ध्यान करने जाते हैं तो वो भ्रम सामने आ जाते हैं। ये भ्रम वही दूर कर पाता है जो अपने मन से शुद्ध आत्मा का ध्यान करता है। जैसे-जैसे ध्यान होता जाएगा, भ्रम दूर होते चले जाएँगे। ये मन के भ्रम बाद में दूर होते हैं, पहले बाहर के भ्रम दूर करने पड़ते हैं। ध्यान के माध्यम से जो भ्रम दूर होते हैं वो वास्तविक आत्मा के विभ्रम से उत्पन्न हुए दु:खों को दूर करने का उपाय होता है इसलिए आचार्य कहते हैं तप करो लेकिन उस तप के साथ में ये भी ध्यान रखो कि हमें इन आत्मा से उत्पन्न होने वाले जो भावगत दु:ख हैं उन दु:खों से मुक्ति के लिए बार-बार आत्मा की साधना, आत्मा का ध्यान और आत्मा की भावना भी करना है।

श्लोक–४२

शुभं शरीरं दिव्यांश्च विषयानभिवाञ्छति।
उत्पन्नाऽऽत्ममतिर्देहे तत्त्वज्ञानी ततश्च्युतिम्।।४२।।

लक्ष्मी मिले, मिलन हो, मम हो विवाह, मूढ़ात्म को विषय की दिनरैन चाह।
ज्ञानी, वशी, विमल मानस, आत्मवादी, मूढ़ात्म सादृश नहीं, पर अप्रमादी।।४२।।

तत्त्वज्ञान से सुख

भ्रम जब बढ़ते चले जाते हैं तो उसका परिणाम क्या निकलता है, हर आदमी क्या चाहता है? सब कुछ बस शुभ-शुभ हो, मंगल-मंगल हो, सब कुछ हमारे लिए अच्छा-अच्छा हो, दूसरे के लिए बुरा होना हो तो हो जाए। जितने भी दु:ख मिले वो दूसरों को मिले हमें केवल सुख मिले, ये भी एक बहुत बड़ी उल्टी मान्यता है। जब वही आदमी ये सोचने लग जाता है दुनिया में भगवान् सभी को सुख मिले, किसी को दु:ख मिले ही न तो उसे सही रूप से सुख मिलता है। जब आदमी केवल अपने लिए सुख, अच्छा शरीर, दिव्य विषय की चाहत रखता है जो किसी और के पास न हो, ये मूढ़ आत्मा की एक बहुत बड़ी पहचान होती है। आज हर आदमी किस दौड़ में लगा है, जो चीजें हमारे पास में है वो चीजें किसी और के पास में न हो, हम जो चीज लाएँ वो केवल हमारे पास में आए, इतने पैसे वाले हम बन जाएँ कि हम जो मॉडल लाएँ वो केवल हमारे पास में हो, किसी दूसरे के पास न हो। पहले तो आदमी को थोड़ा बहुत इसमें ही सुख मिल जाता था, आज तो इसमें भी नहीं है। पहले हर आदमी पैसे वाला नहीं होता था। बाजार में कुछ भी नया आता था तो पैसे वालों के पास पहुँचता था, बाकी के लोग तो केवल उसको देखते थे, सबसे बड़ा सुख तो केवल तब मिलता था। आज से २५ साल पहले जब शहर में पहली बार टी.वी. आई थी, उस पर रामायण चलती थी। लोग दूसरे के घर में टी.वी.

देखने जाते थे, तब उस व्यक्ति की शान होती थी। एक मोहल्ले में केवल एक टी.वी., तब उसे लगता था अपन कितने बड़े आदमी हैं। उस सुख की पूर्ति तो आज होती नहीं। कोई भी दुनिया में वैसी चीज ही नहीं है जो केवल शहर में आपके पास है, आप ही केवल उपभोक्ता हो, है कोई ऐसी चीज। 'अहम्' का इस प्रकार का सुख भी अब नहीं मिलता है। अब दु:ख बढ़ रहे हैं। आने वाले २५ सालों में ऐसी मारा-मारी होनी है कि जो सुख आज भोग रहे हो, वो भी नहीं मिलने वाला। निरंतर इसी ढंग से काल का ह्रास होता चला जाता है और जितने भी हमारे सुख थे वो दु:ख के रूप में परिवर्तित होते चले जाते हैं। इसी कारण आदमी ये समझ नहीं पाता कि सुख का कारण क्या और दु:ख का कारण क्या इसलिए वह मन बना नहीं पाता है। उसे कोई अच्छी बात कही जाए तो वह उन चीजों में इतना अंदर घुस चुका है कि उससे उभरने के लिए उसे बहुत पुरुषार्थ करना पड़ता है।

ऐसे विषयों की आकांक्षा करना और इन विषयों में ही आत्मबुद्धि रखना, देह में ही आत्मबुद्धि रखना, ये सब मूर्खता के काम हैं, बहिरात्मा के काम हैं। **तत्त्वज्ञानी** क्या चाहता है कि ये चीजें छूटे। इनसे छुटकारा मिले। इन वस्तुओं से, इच्छाओं से छुट्टी मिले, ये जो इच्छा करे वो तत्वज्ञानी और जो ये इच्छाएँ न करें वो अज्ञानी है। तत्त्वज्ञानी को लक्ष्मी की चाह नहीं। लक्ष्मी की चाह करने वाला विवाह की चाह, फिर पुत्र की, फिर उसके इंजीनियर-डॉक्टर बनने की, उसकी शादी की फिर अपनी वृद्धाश्रम की चाह रखता है। ये ही होना है और कुछ नहीं होना। सब कुछ करने के बाद में उल्टा ही होना है, अब तो इस सुख की कल्पना भी छोड़ देना चाहिए। पहले लोगों का बुढ़ापा बच्चे देख लेते थे पर अब तो बच्चों को पढ़ा-लिखाकर आपने परदेश पहुँचा दिया या महानगरों में पहुँचा दिया, अब वो वहाँ से लौटकर आने वाला नहीं है। अब कोई-कोई बिरला पुत्र यदि सोचेगा तो वो आपको ही बैंगलोर/मुंबई बुला लेगा, वह मंदसौर नहीं आएगा। आपको मंदसौर की आदत है तो आपको बाम्बे अच्छा नहीं लगेगा। इतना गदर, इतने वाहन, प्रदूषण, आवाजें कि आप दो दिन में ही पागल हो जाएँगे और वापस मंदसौर आकर जैसे-तैसे जिंदगी गुजारना चाहोगे। एक छोटे से फ्लेट में या कमरे में जिंदगी कहाँ तक गुजारोगे। खिड़की खोलते ही इतनी आवाजें, इतने लोग कि देखते से ही आदमी को चक्कर आ जाए। ऐसी स्थिति में आदमी सोचता है कि भैया अपने ही घर में ठीक हैं। ऐसे बेटे भी बहुत कम मिलेंगे जो अपने पिता को बुला ले नहीं तो वो कह देते हैं कि हम तुम्हारे लिए पैसे भेजते रहेंगे

और तुम अपनी व्यवस्थाएँ खुद बनाकर रखना और ज्यादा कुछ कहोगे तो वो तुम्हें आश्रम में छोड़ आएँगे। तुम्हारे मकान पर भी कब्जा कर लेंगे और बोलेंगे कि तुम्हें यह करना ही है। जिंदगी भर महाराज के प्रवचन सुने तो ज्यादा मोह-माया में पड़ना नहीं। ऐसी हालत हो जाएगी कि तुम सोच में पड़ जाओगे कि हमने क्या सोचा था और क्या हो गया। आज ऐसी स्थिति बनती जा रही है कि आप जिसके बारे में सुख की कल्पना कर रहे हो वो आगे जाकर दु:ख ही देने वाली है। इनमें जो हमें भ्रम उत्पन्न हो रहा है। हम उस भ्रम से अपने आपको बचाएँ और उस भ्रम से दूर होकर यदि थोड़ा सा जीवन इस परिवार, बच्चे, पत्नी से दूर होकर कुछ समय का जीवन निकालेंगे तो वह आपके लिए एक वास्तविकता का आनंद होगा जो आनंद आपका अपने चित्त का, अपने मन का और अपनी आत्मा का आनंद कहलाएगा, बाकी तो सब झूठी बातें हैं। झूठी बातों में जब तक आपका मोह लगा हुआ है तब तक आपको अच्छी बातें अच्छी लगने वाली नहीं है।



श्लोक–४३

परत्राहम्मतिः स्वस्माच्च्युतो बध्नात्यसंशयम्।
स्वस्मिन्नहम्मतिश्च्युत्वा परस्मान्मुच्यते बुधः।।४३।।

जो आत्म–भक्ति च्युत होकर भोगलीन, त्यों कर्म जाल फँसता रसलीन मीन।
जो स्नान आत्म सरमें करता तपस्वी, निर्मुक्त कर्म–रज से वह हो यशस्वी।।४३।।

समीचीन अहं बुद्धि

आचार्य कहते है इस जीव की अहं बुद्धि जो इसके साथ निरंतर बनी रहती है, वह अहं बुद्धि कहीं न कहीं लगती है। अहं बुद्धि अगर पर पदार्थो में लगती है तो वह अपने से छूट जाता है। जो उसकी अहं बुद्धि अपने आप में लगती है तो वह कर्मबन्ध से छूट जाता है। जिसकी अहं बुद्धि अपनी आत्मा में होती हैं कि मैं आत्मा हूँ इतना मात्र ही जिसकी अहं बुद्धि हो, वह कर्मबंध से छूट जाता है। जिसकी अहं बुद्धि में पर पदार्थो का ग्रहण करना और पर पदार्थो में अहं बुद्धि रखना होता है वह व्यक्ति कर्म बंध से बंधता चला जाता है और पर पदार्थो से भी बंधता चला जाता है। जैसे मीन/मछली जब तक पानी में रहती है उसके लिए कोई खतरा नहीं होता है लेकिन कोई शिकारी द्वारा कांटे में कुछ अन्न रोटी आदि कोई पदार्थ रख दिये जाते है तो वह उस कांटे में फंस जाती हैं। पदार्थों को ग्रहण करने पर जिस तरह से वह मीन फंस जाती हैं, ठीक उसी तरह से ये आत्मा भी कर्म बंध से संसार में फंसता चला जाता हैं। जब तक वह इस प्रकार की अहं बुद्धि को नहीं छोड़ता तब तक उसके अंदर की कर्तृत्व बुद्धि और भोक्तृत्व बुद्धि भी नहीं छूटती। मैं दूसरे पदार्थों का कर्ता हूँ मैं अपने मकान का मालिक हूँ, मैं अपना मकान बना रहा हूँ, मैं अपने मकान का उपभोक्ता हूँ, मैं इन सब परिवार वालो का पालन हारा हूँ। इस प्रकार की भी **अहं बुद्धि, कर्तृत्व बुद्धि और भोक्तृत्व बुद्धि** कहलाती है। इस भोक्तृत्व बुद्धि में जब अपने से छूटना हो जाता है तो वह कर्मों के बंध के अलावा और कुछ भी प्राप्त नहीं करता। आत्मा अपने आप में अकर्ता है और अपने आप में वह पर पदार्थों का अभोक्ता है। लेकिन अहम्बुद्धि के कारण से वह पर पदार्थों का कर्ता भी है, वह पर पदार्थों को भोगता भी है। ये कर्तृत्व और भोक्तृत्व बुद्धि से परिचय नहीं कराने देती इसी कारण से अध्यात्म में सबसे पहले आप अपनी अहंबुद्धि को विस्तार दो। अहम्बुद्धि का मतलब मैं ये कर रहा हूँ, मैं वो कर रहा हूँ, मैं ये हूँ, ये जो अहंबुद्धि होती है। मैं और मेरा उसी

अहंबुद्धि में और मेरे मन के भाव में आदमी इतना भूल जाता हैं कि उसे क्या करना है, कहाँ तक करना है यह भी ध्यान नहीं रहता है।

एक साधु के पास में आप जैसा एक व्यक्ति दर्शन करने के लिए आता हैं। साधु देखता रहता है कि ये आदमी दौड़ता हुआ आता है और दौड़ता हुआ चला जाता है। एक दिन साधु ने पूछ लिया तो जवाब मिला कि महाराज मेरे पास बिल्कुल भी टाईम नहीं है। मेरे पास इतना काम है कि हर काम मुझे भागते हुए करना पडता है और समय की बहुत कमी पड़ती है। महाराज ने सोचा इसको कहीं न कहीं थोडा सा ज्ञान देना है और बोले कल हमारे साथ में आना। वे उसे सुबह-सुबह एक स्थान पर ले गए। जहां पर बहुत सारे लोगों के केवल नाम लिखे हुऐ थे, काम कुछ नहीं कर रहे थे। वो उसे उस वैराग्य धाम में ले गये, आप लोग उसे मोक्षधाम कहते है। आपका मोक्ष धाम यहां से बस वहां पहुँच जाना है। उस मोक्षधाम में पहुँचकर उस साधु ने कहा- देखो ये फलानेचंद, ये फलानेचंद और जब इनका कोई भी कुछ भी वजूद नहीं है। ये भी तुम्हारी तरह जिंदगी भर दौड़ते रहे और अंत में जाकर के कब्र में समा गये। उस आदमी को थोडा सा महसूस हुआ कि हमारी दौड़ धूप की अंतिम यात्रा भी यहीं है और अगर दौड़ धूप नहीं भी करें तो भी हमारी अंतिम यात्रा भी यही पर समाप्त होगी। इसलिये जो लोग ज्यादा नहीं जानते है, वे लोग इसे ही मोक्ष मान लेते है और कहते है कि सबसे ज्यादा सुकून यहाँ मिलेगा। एक पंथ सम्प्रदाय ऐसा भी सोचता है पर आत्मा को किसी कब्र में दबाया नहीं जा सकता। शरीर जो एक पंचभूत का बना है या मिटटी का बना है वस यही उसमें दफन हो जाता हैं। बाद में देखोंगे तो उसमें कुछ भी नहीं मिलेगा, सब मिट जाता है। आत्मा अपने अस्तित्व को बनाये रखती है। वह दूसरी पर्याय में चली जाती है। आप अपनी अज्ञानता से ऐसा मान लेते है कि हमारी नींद यहाँ पर बहुत अच्छी लगेगी, हमें बहुत अच्छा चैन यहां मिल रहा हैं। हम यह भी मान लेते हैं कि हमें अगर कुछ करना है तो बस यहीं जाने के लिये करना है, हमारी पहुंच यहीं तक है। कुछ लोग ऐसे भी जिनका मोक्ष केवल वहीं तक है जहाँ तक उनकी अंतिम यात्रा हो जाती है। लेकिन आत्मा को मोक्ष कब मिलेगा? एक भजन सुना है।

ये करना फिर फिर यह करना, फिर- फिर करनी कारे।
एक बार कर करनी ऐसी, एक बार कर करनी ऐसी, छूटे गति गलियारे।
अरिहंत भजन कर प्यारे, अरिहंत भजन कर प्यारे,
जा करनी ते पातक भाजे, जा करनी ते पातक भाजे, दूर होय अंधियारे
अरिहंत भजन कर प्यारे, अरिहंत भजन कर प्यारे।।
प्यारे को अरिहंत भजन करने का समय नहीं है।

''करनी कारें'' अर्थात् जितनी भी करनी है, वह सब एक कारा बनती चली जाती है। कारा माने काला नहीं, **कारा माने काराग्रह** जैसे कोई आदमी बंदीग्रह में या काराग्रह में यानि जेल में पडा हुआ

रहता है, उसी प्रकार से आदमी अपने लिये एक जेल बना लेता है और उस जेल में वह घूमता रहता है, कुछ ना कुछ करता रहता है। अभी ये करना है फिर ये करना है और वह कभी भी उस अपनी बनाई गई जेल से मुक्त नहीं हो पाता है। सबके पास में लम्बी-लम्बी प्रोग्रामिंग रहती है और उसी के बीच में जो हमने नहीं सोचा है ऐसे भी प्रोग्राम आ जाते हैं। किसी ने अपनी प्रोग्रमिंग में बीच में ये चातुर्मास की प्रोग्रामिंग बनाई नहीं होगी। उसी चातुर्मास में और दूसरे प्रोग्राम आ गए। अपनी प्रोग्रामिंग इस ढंग से इन्होंने बना रखी है कि उसी में अपनी करनी बुद्धि चलती है, उसी में भोक्तृत्व बुद्धि चलती है। उसी अहं बुद्धि के कारण से इस कार्य में हमें जो आसक्ति हो रही है उससे हमें कोई ज्यादा लाभ नहीं है। इस कार्य से भी ज्यादा लाभ हमारे लिये केवल आत्मा के लिये कुछ करने में है। अपनी आत्मा का ध्यान, अपनी आत्मा के लिये कोई साधना या अपनी आत्मा के लिये ज्ञान प्राप्त करने में है। 'पर' के लिये कुछ भी करने में हमें कुछ भी हासिल नहीं होगा लेकिन दुनिया की दौड़ में हर आदमी 'पर' के लिये ही सब कुछ करता हुआ दिखाई देगा। ये साधु संत और ये धर्म शास्त्र यही बस आपको थोडा सा मजबूर करते है। सोचने के लिये और आपको खींचते है अपनी ओर कि आप अपने आपको स्वयं पहचाने। आप अपनी गति को थोडा सा रोके। उस बाह्य गति से अन्तर्गति की ओर मोडे और अपनी उस प्रकिया में अगर आपके मन में ये भाव आता हैं कि हमें ऐसा करना जरूरी है तो ही आप अपने आपको उस काराग्रह से मुक्त कर पाओगें। अगर आप ये सोचो कि धर्म के लिये तो बहुत समय है, अभी क्या करना है। जिनका समय निकल गया वो भी यही सोच रहे है और जिनका समय धर्म करने का चल रहा है, वो भी यही सोच रहे है। लेकिन धर्म करने का वास्तव में अगर समय तब होता है, जब हमारी इंद्रियॉं सही होती है। जब इन्द्रियों में शिथिलता आ जाती है, हम चलने फिरने में शिथिलता महसूस करने लग जाते है, अपने शरीर को ही हम स्वयं नहीं चला पाते है तो उस समय पर धर्म भी हमारे द्वारा नहीं हो सकता है।

जितने भी तीर्थंकर महापुरुष हुये सबने धर्म अपनी उस उम्र में किया जिसमें उनके लिये सब प्रकार की इन्द्रियों की पुष्टि थी। आप महावीर स्वामी को देख लो, पार्श्वनाथ भगवान् को देख लो और उनसे पहले होने वाले नेमिनाथ भगवान् को देख लो। लेकिन स्वार्थी आदमी उदाहरण देता है, भगवान् आदिनाथ ने सब सुख भोग लिये, पूरी जिंदगी भर राज किया और अंत में जाकर के वैराग्य लिया इसलिये महाराज हम भी अंत में ही धर्म की बात सोचंगे। ये नहीं कहेगा भगवान् महावीर स्वामी ने और भगवान् पार्श्वनाथ ने भी तीस वर्ष में ही घर छोड दिया था। उन्होंने उस उम्र में धर्म किया जिस उम्र में आदमी भोग में लीन होता है जिस उम्र में आदमी कर्म को बांधता है आसक्ति को बढाता है। उस उम्र में जो व्यक्ति तपस्या करता है, वहीं बुद्धिपूर्वक पूर्णमन से उस तपस्या को कर पाता है। अन्यथा बाद में तो केवल जीवन चलाने का नाम बस चलती का नाम गाडी रह जाता है और कुछ नहीं होता है। अंत-अंत में जो व्यक्ति धर्म करने का भाव करते है उनके लिये ये भी समझ में नहीं आ पाता है कि अब अंत होगा

कब? जब बिलकुल ही खटिया पर अधमरे हो करके पड़ जाते है तब भी उन्हें महसूस नहीं होता है कि हमारा अंत आ रहा है। वे अंत की परिभाषा भी हमारे मोह के कारण से खिंचती चली जाती है, बढती चली जाती है। कोई अगर कह दें कि आपको तो केवल अपनी आत्मा की सुध लेना चाहिये तो भी हमारी बुद्धि में वह बात आती नहीं है क्योंकि हमारे अंदर अहं बुद्धि, कर्तृत्व बुद्धि, भोक्तृत्व बुद्धि बहुत तीव्र वेग के साथ चल रही है।

हम अभी भी चाहते हैं हमारे चले जाने के बाद में हमारा घर चल नहीं पायेगा। हर आदमी यही सोचता है कि हम नहीं रहेंगे तो हमारे घर के लोगों का पालन पोषण नहीं होगा। हमारे बिना सब लोग दुःखी हो जायेगे, हर आदमी के अंदर ये बुद्धि बनी रहती है। ये सब कौन सी बुद्धियाँ हैं इसी का नाम कहा जाता है, कर्तृत्व बुद्धि और ये बुद्धियाँ कषाय और मोह के साथ चलती है, जितनी जिसकी तीव्र कषाय होगी, उतनी ही उसको तीव्र आसक्ति होगी, उतनी ही उसको अहं बुद्धि होगी और जो व्यक्ति यह सोच लेता है, भैया अपने बिना भी सब कुछ चलता है, अपन नहीं भी रहेंगे तो भी दुनियाँ चलेगी तो भी घर चलेगा तो भी बाल बच्चों का पालन होगा और अपन नहीं भी रहेंगें तो भी माता-पिता भाई-बहन का जीवन चलेगा। अपन ने ऐसा मान रखा है। अपनी बुद्धि की भ्रमता है ये मान लेना ये उस आत्मा का आत्मज्ञानीपन है। जब तक ये मान्यता रहती है कि हमारे बिना कुछ हो ही नहीं सकता तब तक उस आत्मा के अंदर वह मिथ्याज्ञान की परिणति चलती रहती है। ये अज्ञान कहलाता है और उसी अज्ञान से बचने के लिये यहॉ कहा जाता है कि अपनी अहं बुद्धि को अपनी आत्मा में लगाओं। आज तक तुमने खुद को पहचाना नहीं, खुद को जाना नहीं। तुमने सब कुछ पढ लिया, सब कुछ लिख लिया, सब कुछ डिग्रियाँ प्राप्त कर ली लेकिन जिसे अपनी खबर नहीं है, उसे किसी भी चीज की खबर नहीं है। कम से कम दिन में एक बार तो ये महसूस होना चाहिये कि हमारे बिना भी ये दुनिया चलेगी। हम तो दुनिया में आ करके फॅस गये है। हम दुनिया में किसी काम के नहीं है पर हम जबरदस्ती अपने आपको माने हुये है। हमारे बिना ये नहीं हो सकता है, हमारे बिना वो नहीं हो सकता। सबके बिना सब कुछ होता है। बड़े-बड़े मंत्री, बड़े-बड़े नेता, बड़े-बड़े वैज्ञानिक उनके होने पर भी दुनिया चलती रही और वे नहीं है तो भी दुनिया चल रही है।

किसी के रहने न रहने से यहाँ किसी को कोई ज्यादा फर्क नहीं पड़ता, ऐसा सोचकर के हर आत्मा को अपनी अहं बुद्धि पर प्रहार करना चाहिये। अपनी अहं बुद्धि को स्वयं अपने मन से तोडना चाहिये और उन प्रसंगो को देख करके भी तोडना चाहिये जिन प्रसंगो में हम देखते है कि हमारा जीवन चल रहा है। हम पुरुषार्थ भी कर रहे है और भाग्य के भी सहारे चलते है लेकिन कभी-कभी हम देखते है, पढने वाले लडके पढ रहे थे, आगे उन्हें पढना था लेकिन उनका एक्सीडेंट हो गया, उनका जीवन समाप्त हो गया। उनके अरमान कहाँ गये, उनका वह जीवन आगे बढने वाला था, अब क्या होगा, ये परिणति को जब हम ध्यान में रखते है तो कम से कम अपनी अहं बुद्धि तो टूट जाती है। उस अहं बुद्धि से

हम बच जाते है जिसमें हम इतने दौड़ रहे है, इतने दौड़ रहे है कि अगर हमें कोई साधु संत बुला करके कहे भैया रुक जा, वह कह देते है, टाटा बाय-बाय, थोडी देर में आ रहा हूं। इतनी दौड़ में हर आदमी दौड़ रहा हैं और उसे यह नही मालूम है कि इस दौड़ का अंत कहां होगा। तू कितना भी कमा लेगा कितना भी जोड के रख लेगा, कितनी भी बड़ी- बड़ी उपलब्धियॉं हासिल कर लेगा लेकिन उस उपलब्धियों से तेरे लिये कुछ नहीं होने वाला। जो तेरा अहंकार है जो तूने मान के रखा है कि मैंने ये कर लिया मैंने ये कर लिया बड़ी- बड़ी मॉल बना ली, बड़ी-बड़ी दुकाने बना ली बड़े-बड़े बिजनेस डाल लिये लेकिन तेरा अपने लिए क्या है? तुझे अगर ज्ञान नहीं है तो ध्यान रखना ये दुनिया की दौड़ केवल तुझे उस कब्र तक ले जायेगी और वहां जाने के बाद में तू बिल्कुल खाक के सुपुर्द हो जायेगा। उसके बाद तुझे कुछ भी एहसास नहीं होगा। यहॉं पर न तेरा नाम रहेगा, न तेरा कोई काम होगा। ये अगर आदमी को ध्यान रहे तो उसकी गति कुछ रुक सकती है। गति बाहर से नहीं रोकी जाती, भीतर से रोकी जाती है। इसलिये आचार्य कह रहे है, भीतर से अपने अंदर की अहं बुद्वि को थोड़ा सा कम करो। अहं बुद्वि कम होगी, कर्तृत्व बुद्वि कम होगी, भोक्तृत्व बुद्वि कम होगी। ये भी ध्यान रखना जो आदमी जिस प्रकार के पुण्य को ले करके आया है, जिस प्रकार के घर परिवार में उत्पन्न हुआ है, वे उसी के अनुसार अपना पुरुषार्थ कर पाता है, उसी के अनुसार उसका भाग्य उसका साथ दे पाता है। अगर आप बिजनेस कर रहे हो तो बिजनेस में भी एक पुरुषार्थ की सीमा है। आप जो कुछ भी कर रहे हो उसमें आपके पुरुषार्थ की एक सीमा हैं क्योंकि पुरुषार्थ तभी उछाले मारता है जब पुण्य होता है।

भाग्य व पुरुषार्थ

एक व्यक्ति राजा है, एक व्यक्ति मंत्री है और एक व्यक्ति सामान्य सा व्यापारी है। तीनों की बुद्वियां अलग-अलग चल रही हैं, तीनो के पुरुषार्थ अलग-अलग होंगे और तीनों के पुरुषार्थ के अनुसार उनका भाग्य साथ देगा। मान लो वे तीनों लोग एक साथ निकल गये। एक राजा है, एक मंत्री है और एक व्यापारी। ये तीनों लोग एक साथ अपने शहर छोड़ने के बाद में एक स्थान पर पहुँचे। वहाँ पहुँचने के बाद में तीनों ने आपस में बैठकर के मन बनाया कि देखो अब अपने को सोचना है कि हमें क्या आता है। अपने को क्या करना है। जब हमारे पास में किसी से कोई कॉन्टेक्ट नहीं हो, हम केवल अकेले हो, हम दूसरी जगह पर हो, अपरिचित हो, वहॉं पर पहुचने के बाद में समझ में आयेगा कि हम क्या है। आप कभी कल्पना कर सकते हो आपको ऐसी जगह ले जाकर के बिठा दिया जाये। जहाँ पर आपका किसी से कोई कॉन्टेक्ट नहीं हो, कोई मोबाईल नहीं हो। आप से कहा जाये कि आप एक नये ढंग से अपने अंदर जो है उससे आप अपनी जिंदगी चलाने की शुरूआत करो। कर पाओगे? अगर इतनी हिम्मत है तो समझना कि आपके अंदर कुछ है। जिस व्यक्ति के अंदर भाग्य होगा, बुद्धि होगी, वह सब कुछ

कर लेगा। वो तीनों व्यक्ति अपना राज्य छोड़कर के चले गये और एक जगह से वे जब दूसरी जगह पहुँचने के लिये तैयार होते है तो एक-दूसरे से पूछते है। बताओ तुम्हें क्या आता है, राजा कहता है- मैं तो अपने भाग्य के सहारे जीता हूं। मंत्री कहता है- मैं तो अपनी बुद्धि की कुशलता से जीता हूं और बनिया कहता है कि मैं अपनी बनिया गिरी से जीता हूं। किसी के लिये व्यापार करके या कराने में सहयोग करके मैं अपना जीवन चला लेता हूं।

अब तीनों के सामने तीनों की क्वालिटियाँ है। तीनों का पुरुषार्थ होगा लेकिन पुरुषार्थ तभी काम में आता है जब हमारा भाग्य हमारे साथ में होता है। तीनों लोग एक शहर से दूसरे शहर जाने के लिये तैयार होते हैं। तीनों लोग विचार करते हैं कि हमें इस शहर में जाकर के अपनी आजीविका के साधन देखना है, अपने लिये कुछ खाने के लिये लाना है और सबके के लिये भी कुछ सोचना है। पहले दिन एक जो व्यापारी था उसको उन दोनों लोगों ने कहा जाओ, आज तुम दूसरे शहर में जाओ और वहाँ जाकर के अपने लिये क्या कर सकते हो ये तुम खुद सोचना और शाम को आकर के बताना कि हमने क्या किया। व्यापारी दूसरे शहर में एक व्यापारी की दुकान पर पहुंच गया। वहाँ जाकर के वह देखता है कि इसकी तो दुकान खूब चल रही है पर व्यापारी के पास में और कोई नहीं है। वह व्यापारी उसकी दुकान में बैठ करके उसका हाथ बंटाने लगा। ग्राहको के लिये जल्दी-जल्दी से सामान ला करके देने लगा। जब उस व्यापारी ने देखा, अरे इसने हमारे व्यापार में सहयोग प्रदान किया। वह उस आदमी से पूछता भाई आप कौन हो? वो कहता है भैया मैं तो परदेशी हूं। हमारे मन में आया कि हम आपकी कुछ सहायता कर दे, सो हमने आपकी सहायता कर दी। वो व्यापारी इतना खुश हुआ और उससे कहा कि भैया आज का भोजन आप हमारे ही यहॉ करना। कहता है, भैया हम तो कर लेंगे लेकिन हमारे दो मित्र और है, बोले ठीक है, उनको भी ले आओ। दोनों मित्रों ने और उस आदमी ने उसके यहाँ पर भोजन कर लिया। ये व्यापारी के अपने पुरुषार्थ व अपने भाग्य की बात हो गयी। अब दूसरे दिन उसी शहर में मंत्री आता है। मंत्री देखता हैं एक व्यक्ति को कोई पुलिस वाले पकडकर के ले जा रहे है और वह मंत्री अपनी कुशलता से उन लोगो के साथ में चल देता है और जाकर के देखता है कि पुलिस थाने में व्यक्ति पहुंचा है। वहाँ पर उससे कुछ पूछताछ की जा रही है, कुछ जुर्म बताया जा रहा है। उसी समय पर मंत्री अपनी कुशलता से उस व्यक्ति को बचा लेता है। मंत्री की कुशलता को देखकर के उस व्यक्ति के मन मे भाव आया कि इस मंत्री ने हमे बचा लिया है तो अब वह अपना राज बताता है कि देखो मैं यहाँ का बहुत बडा सेठ हूं। आज तुमने हमें बचा लिया, बताओ हम तुम्हारे ऊपर क्या उपकार कर सकते है। आज तुम हमारे घर चलो, हम तुम्हें बहुत सारा धन देंगे। उस सेठ ने उसको बहुत सारा धन दे दिया। उसने कहा हमारे साथ में दो मित्र और है। सेठ ने कहा उनको भी ले आओ कुछ थोडा सा धन उन दोनों के लिए भी दे दिया और तीनो की आवभगत हो गई। अब तीसरे दिन राजा की बात

आती है राजा का मानना था सब कुछ अपने को तो भाग्य से मिला है। हम अगर ये राजत्व छोड़कर के आएं है, अज्ञातवास में अगर हम रह रहे है, अगर हमारे भीतर भाग्य होगा, पुण्य होगा तो हमारा राजत्व छूटने वाला नहीं है। दूसरे को राजसिंहासन से गिरा देना, मारामूरी करना उसके बाद में राजा बनना ये कोई अच्छा पुरुषार्थ नहीं है। जिसके अन्दर भाग्य होता है जो पुरुषार्थ होता है, वो अपने भाग्य के सहारे जब बनता है तो उसका वास्तविक राजत्व कोई छीन नही सकता। वह राजा तीसरे दिन शहर में जाता है और वंहा जाकर के देखता है, घूमता है। चारो और घूमने के बाद एक वृक्ष के नीचे बैठ जाता है। वहाँ वृक्ष के नीचे कुछ नहीं होता बस एक घोड़ा बंधा हुआ रहता है, वह घोड़े पर बैठ जाता है और घोड़ा उसको ले जाकर के राजमहल में पहुंचा देता है। वह राजा कहता कि मैं यहाँ-कहाँ आ गया। जो उस शहर का दूसरा राजा था वह कहता है अब यहाँ के राजा आप ही बनोगे क्योंकि ये घोडा हमने इसीलिए छोड़ रखा था। ये बहुत प्रशिक्षित घोड़ा है। इस घोड़े को जो लगाम लगाकर के बैठ पाएगा उसी को हम राजा बनायेंगे। ऐसा हमें ज्योतिषियों ने कहा था इसलिए यहाँ का राजसिंहासन आप स्वीकार करो। वह व्यक्ति कहता है कि भाई राजा हम तो बन जाएंगे लेकिन हमारे साथ मे दो और है। बोले उनको भी ले आओ। उन दोनों को राज्य मंत्री बना लेना और तुम राजा बनकर के रहना। तीनों की बात आपने सुन ली। एक व्यापारी है उसको कितना लाभ हुआ है, उसे केवल अपने लिए एवं दूसरे के लिए भोजन मिल गया। राजमंत्री के लिए अपनी बुद्धि से कितना लाभ हुआ? उसने अपने लिए थोड़ा धन ले लिया दूसरो के लिए थोड़ा धन दे दिया। जो वास्तव मे राजा है उसे कितना लाभ हुआ? उसने खुद के लिए भी राज ले लिया और दूसरो को भी उस राज मे बड़े अधिकारी पद पर नियुक्त कर लिया। क्या सोचते हो आप इस घटना से? जिसका जो भाग्य है वो भाग्य कही छूट नही सकता और उस आदमी की जो बुद्धि चलेगी उसका जो पुरुषार्थ होगा वो भी उसके भाग्य के अनुसार ही होगा। अगर आपकी एक दुकान है तो आपकी बुद्धि दुकान के लायक ही चलेगी आपकी जितनी बड़ी बिजनेस है बस आपकी बुद्धि बिजनेस के योग्य चलेगी, कोई बड़ी कम्पनी के योग्य नहीं चल पायेगी। आपकी जो सर्विस चल रही है बस आपकी बुद्धि उतनी- उतनी में घूमेगी क्योंकि आपने अपने पुरुषार्थ को सीमित बना लिया है। आप यह भूल गए है कि पुरुषार्थ के पीछे भी भाग्य बनाने की भी कोई कला होती है। उसी शहर में बनिया को तो घोडा नहीं मिला, राजमंत्री को वो घोड़ा नहीं मिला, राजा को ही वो घोड़ा मिलेगा क्योंकि उसका भाग्य है। उसे उसका भाग्य उसी जगह पर ले जायेगा। वहाँ पर उसे कम पुरुषार्थ मे भी उसे बड़ा लाभ प्राप्त हो जायेगा। पुरूषार्थ के साथ मे जब भाग्य हमारे साथ होता है तब हमे लाभ की प्राप्ति होती है। ये दोनों चीजे याद रखना चाहिये। आदमी केवल जब पुरुषार्थ, पुरुषार्थ, पुरुषार्थ की बात करता है और भाग्य को कुछ भी नही देखता है। भाग्य के सहारे भाग्य के अनुसार उसे जो लाभ होना चाहिए वे उसके पुरुषार्थ के अनुसार नहीं हो पाता और उस समय पर वह परेशान हो जाता है। अपने

पुरुषार्थ के साथ मे कहीं न कहीं एक भाग्य का फैक्टर भी है, उसे हम हटा नही सकते। आपके लिए साम्य की, सम्यग्ज्ञान की स्थिति तब बनेगी जब आपको दोनो चीजो पर विश्वास होगा और दोनों चीजें हमेशा हमारे साथ में होती है। हम उदाहरण तो देते है जो **जीरो से हीरो** बने लेकिन यह भी ध्यान रखना कि जीरो से हर व्यक्ति हीरो नहीं बन पाता। वही बन पाता है जिसके पास मे उसका कोई भाग्य है। भाग्य हमे दिखाई नहीं देता, पुरुषार्थ दिखाई देता है इसलिए वह हमारे लिए प्रेरणास्पृद बन जाता है। पुरुषार्थ करने से धीरे-धीरे सफलता मिल जाती है और कभी न कभी हमारे लिए भाग्य का भी निर्माण पुरुषार्थ से ही हो जाता है। भाग्य का निर्माण अगर होगा तो वो भी आपके उस पुरुषार्थ से ही होगा जिसे अंतरंग पुरुषार्थ कहा जाता है जिसे हम अपने शुभ भावो से अर्जित करते है। सद्विचार सद्भावना दूसरो के प्रति करुणा का भाव, दया का भाव ये ऐसे भाव हैं, जो हमारे भीतर ही भीतर हमारा भाग्य बनाते रहते हैं। ये तो हमें दिखाई देते नहीं, हमें बाहर का पुरुषार्थ ही पुरुषार्थ दिखाई देता है।

अब्राहम लिंकन

आपने सुना होगा कि अब्राहम लिंकन ने अपनी जिंदगी में २२ वर्षों में ऐसा पुरुषार्थ किया। वे कम से कम २२ वर्षों में वह २२ बार फेल हुआ। सब तरीके के उसने चुनाव लड़े, सब तरीके की योग्यता हासिल की लेकिन वह किसी भी चीज मे सफल नहीं हुआ और अंत मे जाकर के वह अमेरीका का राष्ट्रपति बन गया। उसके बाहर के पुरुषार्थ को सबने आपको बता दिया लेकिन भीतर का भाग्य कैसे बनता है यह कोई नहीं बतायेगा। यह ध्यान रखना उसका भाग्य बना उसके अपने स्वभावों के साथ में, अपने आत्म विश्वास के साथ में। इतनी बार हार जाने के बाद भी कभी सुसाईड करने की नहीं सोचना, किसी मद्यखाने में जाकर के मदिरा पीने की नहीं सोचना, किसी का मर्डर करके किसी की हत्या करके उसकी राजगद्दी को हथियाने की बात नहीं सोचना। यह आदमी के भीतर का बहुत बडा पुरुषार्थ होता है इसे कोई भी नहीं बताता। किताबों में जो कुछ भी लिखा रहता है वह एक पक्षीय लिखा रहता है इसलिये आपका ज्ञान अधूरा कहलाता है। पूर्ण ज्ञान हमे तब मिलता है जब हम दोनों फैक्टर को समझते हैं। आदमी अपने स्वभाव से पुण्य को अर्जन करता है, यह शास्त्रों में लिखा है। हम कितनी ही बार फेल हो, कितनी ही बार असफल हो लेकिन हमारा आत्मविश्वास इतना ज्यादा हो कि हमें कभी भी यह भाव नहीं आये कि मैं खुद अपने आप की मृत्यु कर लूं या दूसरे को मार दूं। दूसरे के प्रति ईर्ष्या होना, घृणा होना और दूसरो को गिराने का भाव भी अशुभ भाव होता है। कोई भी आप काम करने बैठे, आप सफल नहीं हुये पर आपका पार्टनर या क्लासमेट सफल हो गया, आप डिप्रेशन में चले जाते हो या खुद को मिटाने की सोचेगे या उसको मिटाने की सोचोगे। अब्राहिम लिंकन से यह भी सीखना उसके अंदर का आत्मविश्वास देखना कि कभी भी उसने अशुभ भाव नहीं किया।

राष्ट्रपति बनने का उसका उद्देश्य था- मुझे इस दुनिया को एक नई दिशा देनी है, मुझे यहाँ की शिक्षा पद्धति को सुधारना है, मुझे हर व्यक्ति के अंदर जज्बा पैदा करना है जिसके माध्यम से वह व्यक्ति खुद अपने पैरों पर खडा हो सके और खुद अपनी शिक्षा अर्जित कर सके और जो स्वतंत्रता उसके लिए नहीं मिल रही है उस गुलामी से आजाद करना। जब ऐसे उद्देश्य होते है तो उन उद्देश्य से अपना भाग्य भी बनता चला जाता है। यह उद्देश्य हर किसी के पास नहीं होते, न पढ़ने वालों के पास होते हैं न पढ़ाने वालो के पास होते हैं न बिजनेसमेन के पास होते हैं न सर्विसमेन के पास होते है। उद्देश्य से विहिन होकर के केवल अपना गुजारा करना, जीविका को चलाना ही उद्देश्य रह जाता है तो हमारे अच्छे भाग्य इसलिए नहीं बन पाते हैं। ऐसा कोई हमने अपना लक्ष्य नहीं बनाया है जो लक्ष्य हमारे उद्देश्यों को परमार्जित करता हो। कोई भी पढने वाला विद्यार्थी कभी अपना उद्देश्य नहीं बनाता कि मैं पढ़ लिखकर के दूसरो को भी ऐसा ही ज्ञान दूंगा और जो असहाय है उनके लिए सहायक बनूंगा। दूसरे के सहयोग की भावना, दूसरे के प्रति दया की भावना और दूसरों को आगे बढ़ाने की भावना नहीं होती तब तक हमारे भाग्य भी अच्छे बनते नहीं है। रोजाना का काम आपका चल जाता है कोई नया पुण्य अर्जित नहीं हो रहा है। जब तक नये पुण्य की फैक्ट्री नहीं लगाओगे तब तक जीवन में कोई नया बदलाव और कोई नयी प्रोग्रेस नहीं होने वाली है। दुनिया में आपको भीड़ ही भीड दिखाई देगी, कोई भी लाईन ऐसी नहीं है जहाँ पर आप सेफ चल सकते हैं। कोई सा भी देश हो, कोई सी भी छोटी से छोटी दुकान हो, बड़ी से बड़ी दुकान हो या कोई भी सर्विस हो, हर जगह पर लाखों की भीड लगी हुई है। न आज सी ए बनने के बाद चैन है न आज एम.बी. ए. करने के बाद भी न एमबीबीएस डॉक्टर बनने के बाद चैन है।

हर आदमी उसी मकड जाल में फंसता हुआ चला जा रहा है। भाग्य जो बना हुआ था वह भी नष्ट हो रहा है। आदमी आज यह नहीं समझ पा रहा है कि हमें अपना भाग्य कैसे बनाना हैं। बनाने के लिये भी हमें कुछ लगाना पडता है। जैसे हम अन्य चीजों के लिये पुरुषार्थ करते हैं उससे हम कुछ प्राप्त करते हैं। उसी प्रकार से जब हम अपने लिये भाग्य बनातें हैं तो उस समय पर हमें सब चीजें छोड़ देनी पडती हैं। जिदंगी में कुछ समय ऐसा निकालो जिसमें हम केवल भाग्य बनाने के लिये सोचें।

अगर हम किसी दौड में दौड रहे हो हमने अगर १० मिनट के लिये विश्राम कर लिया तो हमारे लिये एनर्जी मिल जाती है ये दस मिनट का विश्राम आपके लिये बहोत एनर्जी देने वाला है और आपका भाग्य भी बन सकता है। जैसे ही आप उस फैक्टरी से, संस्कार शिविर से निकलोगे ऐसा आयडिया, ऐसा भाग्य आपके साथ काम करे कि अपने आप ऐसा परिवर्तन हो कि आपको लगे कि हमने अपने जीवन में ये कभी सोचा नहीं था हमने इसको ऐसा कर दिया, आज हम सफलता के शिखर पर पहुंच गये। ऐसा तब होगा जब आपका भाग्य भीतर से होगा। ये बहुत बडी नीति है आदमी की बुद्धि उसके कर्मानुसार

ही चलती है। कर्म आपके अच्छे उदय में आ रहे हेांगे तो आपकी बुद्धि भी अच्छी चलेगी। उस फैक्टरी से निकलने के बाद में उसी पुरुषार्थ के माध्यम से आपको डबल और चौगुनी इनकम भी हो सकती है क्योंकि आपका भाग्य अब प्लस हो गया है।

आचार्य कहते हैं दोनों हमेशा याद रखना चाहिये आदमी न तो भाग्य के सहारे विकलांग हो जाये और न पुरुषार्थ के सहारे अहं बुद्धि वाला हो जाये, दोनो से बेलेंस कम होगा। भाग्य का फेक्टर हमें भीतर से पुश करता है और बाहर का पुरुषार्थ हमें उसमें सफलता दिलाता है और जब दोनों का मिक्सअप हो जाता है तो हमारे लिये वह सक्सेस हो जाती है। जितना ज्यादा हम अहं बुद्धि हटायेंगे, हमारे लिये कर्मबंध कम होगा, पाप का बंध कम होगा, पुण्य का बंध अधिक होने लगेगा तो पुण्य का उदय आयेगा। आपके लिये उसी पुरुषार्थ में सुबह से शाम तक एक हजार रूपये मिलते थे उसी पुरूषार्थ में आपको १० हजार रूपये मिलने लगेंगे यह सब केवल भीतर के भाग्य की बात होती है। सबके पास में दो हाथ, दो पैर, दो आंख और एक नाक होती है लेकिन एक आदमी बैठे बैठे रोजाना लाखो रूपये कमाता है। कोई १० हजार कमा पाता है।एक आदमी सुबह से शाम तक एक हजार कमा पाता है तो एक आदमी १०० रूपये भी मुश्किल से कमा पाता है। क्यों है? कभी सोचने का विचार तो करों, हमने अपने आप को उस दौड में इतना दौडा दिया कि हमें यह सोचने का भी मौका नहीं है कि ऐसा क्यों हो रहा है। वह पुरूषार्थ नहीं कर रहा है इसलिये नहीं, उसके पास में पुरूषार्थ कैसा करना है, इस बात की बुद्धि नहीं है। वह बुद्धि आने लायक कर्म उसके पास में नहीं है। दुनिया के नेता कितना भी कह दे गरीबी मिटा दो गरीबी मिटा दो, कभी मिट नहीं सकती। सेठो के पास में अनाज पड़ा-पड़ा सड़ जायेगा लेकिन वह गरीबो के पास नहीं पहुंच पायेगा। उसके पास भी कुछ लेने के पुण्य हो, भाग्य तो हो। किसी भी चीज की दुनिया में कमी नहीं है। इतना अन्न हर साल सडता है कि उस अन्न से एक देश की नहीं पूरे विश्व के गरीबो की समस्या का निराकरण हो सकता है, वह अकेला भारत कर सकता है। इतना अन्न भारत के अंदर पैदा होता है लेकिन वह सब गोदामो में पडा पडा सड जाता है। दूसरे कारण है सो है ही लेकिन यह भी एक बहुत बडा कारण है उस आदमी के भी अपने पुण्य नहीं होते, अपने भाग्य नहीं होतें। इसको मत भूलो जब तक हमारा भाग्य साथ नहीं देगा हमारे विचारो के अनुसार हमारा जीवन भी बन नहीं सकता। इसलिये आचार्य कहते है दोनों चीजों का याद रखो भाग्य को भी बनाना सीखते जावो और पुरूषार्थ को भी करना सीखते जाओं। जिदंगी भर से तुम मन्दसौर में रह करके पुरूषार्थ करते चले आ रहे हो हम तुम्हारे सामने केवल पहली बार आये है। हर संत महात्मा यही सोचता है कि हर व्यक्ति की उन्नति हो। हर व्यक्ति अपने लिये ऐसा पुरूषार्थ करे कि वह खुद हमारी तरह महात्मा या हमारी तरह भगवान बन जाये। अपने मन में एक शुभ भाव बड़े शुभ उद्देश्य के साथ जरूर बना करके रखना।

श्लोक-४४

दृश्यमानमिदं मूढस्त्रिलिङ्गमवबुद्धयते।
इदमित्यवबुद्धस्तु निष्पन्नं शब्दवर्जितम्।।४४।।

स्त्री नपुसंक औ नर लिंग को ही, 'आत्मा' सदैव इस भाँति कहे प्रमोही।
पै आत्म अव्यय, अवर्ण्य, अखण्ड पिण्ड, ऐसा कहे सुबुध, ना जिनमें घमण्ड।।४४।।

देहगत भावों से परे अखंड आत्म तत्त्व

आचार्य कहते हैं जो जीव अवगत हो जाता है, अवगत माने आत्मध्यान को धारण करने वाला जिसे हम प्रतिबद्ध/अवबुद्ध/ ज्ञानी भी कहते हैं और जो सम्यग्दर्शन के साथ अपने ज्ञान को समीचीन बना लेता है वो सम्यग्ज्ञानी कहलाता है। ऐसे **सम्यग्ज्ञानी** की परिणति में आत्मतत्त्व की मुख्यता हो जाती है, देहतत्त्व गौण हो जाता है जिस देह के साथ वो अनादिकाल से रहा है, उस देह की परिणति में कोई भी नयापन दिखाई नहीं देता। वह देह से भलीभाँति परिचित होता है। देह में घटित होने वाली सभी संवेदनाओं से भी वो परिचित होता है। वह आत्मा की संवेदना से अभी तक अपरिचित रहा है। इसलिए वह देह में विराजमान अपने आत्मस्वरूप का बार-बार ध्यान करता है, चिंतन करता है। वह आत्मा जो देह में कई कारण से हमें दिखाई तो देता है पर वो देह रूप नहीं होता। वह जो देह के रूप में दिखाई दे रहा है वह उसे तीन लिंगों के रूप में दिखाई देता है। कभी वह पुरुष रूप में, कभी स्त्री रूप में और नपुंसक रूप में उसको पहचान लेता है। दुनिया में जितने भी देह आश्रित जीव हैं उनकी परिणति में केवल तीन प्रकार के शरीर में चिह्न रहा करते हैं- पुरुष, स्त्री एवं नपुंसक लिंग। इन तीन प्रकार के शरीरों की प्राप्ति हर आत्मा को अपने भावों के अनुसार हुआ करती है। जो आत्मा कुछ प्रशस्त भाव रखते हैं उन्हें पुरुष लिंग के शरीर की प्राप्ति होती है। जिन्होंने कुछ अप्रशस्त भावों को

धारण किया उनके लिए स्त्रीलिंग की प्राप्ति होती है। अति अप्रशस्त भाव रखने वालों को नपुंसक लिंग की प्राप्ति होती है।

भावों की परिणति के अनुसार शरीर मिलता है और शरीर मिलने के बाद इस शरीर के अंदर जो प्रतिक्रियाएँ होती हैं उनमें भी अपने अंदर उठने वाले कषायों के वियोगों का अनुभव निरंतर होता रहता है। जिसके अंदर स्त्री के साथ रमण करने की इच्छा हो उसे पुरुष वेद कहते हैं। वेद आत्मा के आश्रित नो कषाय से उत्पन्न होने वाला भाव है। शरीर में उत्पन्न हुए कर्म के उदय से जो चिह्न है वो लिंग कहलाते हैं। किसी को स्त्रीवेद का उदय रहता है तो उसे पुरुष से रमण करने की इच्छा रहती है। जिन जीवों को स्त्री व पुरुष दोनों से रमण करने की इच्छा रहती है उन्हें नपुंसक कहा जाता है। तीनों प्रकार के वेदों में सर्वज्ञ भगवान् के द्वारा आचार्यों ने बताया। पुरुष वेद की अग्नि तृण के समान होती है। जिसे तृणाग्नि कहा जाता है। जैसे तिनके में थोड़ी सी अग्नि लगी तो थोड़ी देर अग्नि रहेगी फिर वह बुझ जाएगी। ऐसे ही पुरुष वेद से उत्पन्न भावों की अग्नि तृण के समान होती है। एक अवा की अग्नि होती है- अवा माने जो ईंट का भट्टा होता है, उसमें हमेशा आग लगी हुई रहती है, यह उपमा नपुसंक वेद के लिए दी गई है। स्त्रियों के लिए तीव्र अग्नि की उपमा दी गई है जो बहुत समय तक चलती रहे, इसे कामाग्नि के रूप में भी कहा जाता है। जब ये जीव अपने भावों को शरीर के साथ जोड़ देता है तो उसकी वह कामाग्नि और जलने लग जाती है।

आचार्य कहते हैं इन तीनों भावों में कहीं भी आत्मा के लिए सुख नहीं है। इन तीनों भावों की वृद्धि होने से आत्मा को सुख नहीं मिलता है, दुःख बढ़ता है क्योंकि जैसे अग्नि के जलने से कभी सुख नहीं मिलता, ऐसे ही इन तीनों प्रकार की कामाग्नि में जलने वालों को सुख की प्राप्ति होती नहीं है। व्यक्ति इन कामाग्नि के भावों से अपने आपको इस ज्ञान के साथ हटा पाता है कि दिखाई देने वाले ये तीनों प्रकार के भाव देहाश्रित हैं और देह के ही निमित्त को लेकर के बढ़ते हैं। इन भावों से अपने अंदर कभी भी वह कामाग्नि को बढ़ने नहीं देता क्योंकि वह 'अवबुद्ध' यानि ज्ञानी हो चुका रहता है। जब वह ज्ञानी हो जाता है तब वह अपनी आत्मा को 'निष्पन्न' अर्थात् पूर्ण देखता है। किसी भी प्रकार की कमी अपनी आत्मा में नहीं देखता है।

'राधे–राधे'

आत्मा के अलावा शरीर में कभी भी पूर्णता का भाव नहीं मिलेगा। आपने देखा होगा, कई लोग शरीर के साथ पूर्ण होने की अनेक-अनेक कल्पनाएँ करते हैं। पुरुष भी पूर्ण नहीं है जब तक उसके साथ में स्त्री न हो। इसलिए पुरुष के अंदर भी स्त्री के गुण होने चाहिए और स्त्री भी पूर्ण नहीं है जब तक उसके लिए कोई पुरुष न हो। दुनिया स्त्री व पुरुष इन दोनों के मेल करके पूर्णता करने में लगी हुई है। उसी पूर्णता करने के लिए हम अपने आदर्श के रूप में भी इसी प्रकार से सामने ले आते हैं कि हम अगर अपने अंदर कोई पूर्णता चाहते हैं तो हमारे आदर्श भी इसी प्रकार के हो। आपने सुना होगा एक शब्द आता है 'राधेश्याम'। राधे-राधे तो आजकल बहुत चल रहा है, चाहे वो कितना ही फ्रॉड क्यों न हो लेकिन हर आदमी के लिए बस जो आनंद आता है, वो उसी में आता है जैसा वो चाह रहा हो, वैसा बाहर दिख जाए। अगर हमारे अंदर कोई भाव हो और वो हमें भगवान् के अंदर दिख जाए तो भगवान् और हम दोनों एक जैसे हो गए। वह राधेश्याम-राधेश्याम करते-करते भी... श्याम तो श्याम थे... अपने आप में पूर्ण थे... लेकिन आदमी माना नहीं और उसने उसके आगे एक राधे और जोड़ दिया। किसी को भी पूछ लेना इतिहास में कृष्ण के साथ राधा का कहीं से कहीं तक उल्लेख नहीं होता है। जैन ग्रंथों में भी नहीं मिलता और हिंदू ग्रंथों में भी नहीं मिलता। कृष्ण के साथ राधा का कोई वर्णन कहीं पर भी उपलब्ध नहीं होता, यहाँ तक कि जिस भागवत के अंदर कृष्ण का पूरा का पूरा चरित्र चित्रण दिखाया है, उसमें भी राधा कहीं है ही नहीं। लेकिन इस आदमी को बिना राधा के चैन पड़ता नहीं। वह राधे भी उसके लिए इसलिए जुड़ गया कि उसकी दृष्टि देह पर बनी हुई है। वह देह की दृष्टि में पूर्णता लाना चाहता है।

आजकल अनेक प्रकार के **मनोवैज्ञानिक** हो चुके हैं जो कहते हैं कि भाई तुम तब तक पूर्ण नहीं कहलाओगे जब तक तुम्हारे अंदर कुछ स्त्री के गुण न हो और स्त्री तब तक पूर्ण नहीं जब तक आदमी के गुण उसमें न हो। गुणों की प्राप्ति करना अलग बात है, बाहर से अपना रूप बदलना अलग बात है। पुरुष के अंदर कभी भी अगर स्त्री के गुण रहते हैं तो इसलिए कहते हैं कि उसमें स्त्री की तरह कोमलता आए, करुणा-दया का भाव आए, मातृत्व

व पितृत्व की भावना आए। इन स्त्री के गुणों के साथ पुरुष की पूर्णता होती है इसलिए कई जगहों पर भगवान् को भी स्त्री के साथ बैठा दिया जाता है और वो भक्तों ने जबरदस्ती बैठाया है- राधेश्याम उसका एक रूप है। अगर हम ये देखना चाहें कि हमारे अंदर गुणों की पूर्णता होगी तो वो कभी भी देह के आश्रित रहने से नहीं होगी। गुणों की पूर्णता आत्मा की पूर्णता से होती है। जैसे ही हम अपनी ओर देखते हैं हमारे अंदर आत्मदृष्टि आती है। हम आत्मा को देखेंगे तो आत्मा शरीर से भिन्न है। जब तक आप शरीर को ही आत्मा मानोगे तो आपके लिए शरीर के गुण आत्मा के गुण हो जाएँगे। जो लोग ये जानते हैं कि आत्मा शरीर से भिन्न है, उस आत्मा में भीतर से किसी वेद का उदय भी चल रहा है तो वह भी परतत्त्व के कारण से है, वह आत्मा का अपना भाव नहीं है। उस आत्मा के अंदर न तो कोई पुरुषत्व है, न स्त्रीत्व है, न नपुंसकत्व है। आत्मा तो आत्मा है, अपने आप में पूर्ण है। जिन शब्दों से हम आत्मा को पुरुष-स्त्री कह देते हैं, उन शब्दों से वह बहुत ऊपर उठा हुआ है।

आत्मा की सबसे बड़ी चीज है कि वह आत्मा देह के जितने भी चिह्न हैं, परिणति है उन सब परिणतियों से वो ऊपर उठा हुआ है। आपको भी अपने भावों में कुछ ऊपर उठने का भाव करना चाहिए। आप एक महान आत्मा तब बन पाएँगे जब आप छोटी-छोटी चीजों से ऊपर उठेंगे। छोटी चीजें वो हैं जो कुछ समय के लिए तो हमारे सामने रहे और बाद में छूट जाए। पुरुष वेद का भाव या स्त्रीवेद का भाव हो वो आपके लिए कुछ समय के लिए उत्पन्न होगा, हमेशा नहीं रहेगा। यदि इसमें आपकी आसक्ति हो गई तो ये भी आपको तुच्छ बनाता चला जाएगा। आत्मा की गिरावट तब होती है जब वह इन भावों के साथ में अपना विवेक खो देता है और इन भावों के साथ आसक्त होता चला जाता है। इसलिए आप देखना जो व्यक्ति ज्यादा कामी होता है, ज्यादा विलासी होता है उसके घर में ही लोग उसकी इज्जत नहीं करते, समाज भी नापसंद करती है। लोगों को पता चल जाता है कि इसका अपने भावों पर कंट्रोल नहीं है तो उसे सभ्य लोग अपने घर में घुसने नहीं देते। अगर उसका चरित्र उजागर हो गया तो हर आदमी उससे डरने लगेगा और यदि उजागर नहीं है पर मालूम चल जाता है तो आदमी उससे उतना ही पास आता है जितना काम होता है फिर उससे जय जिनेंद्र कर लेता है। ये जरूरी है और ये इस बात का प्रतीक है कि अगर आज आदमी गिर रहा है तो सबसे बड़ी गिरावट इस काम भाव के कारण है, जो उसे अति तुच्छ बनाता चला जा रहा है। आदमी अपनी और दूसरों

की नजरों में गिर जाता है, सिर्फ इस काम भाव के कारण।

दुनिया में दो ही चीजें केवल शत्रु के रूप में मानी गई है **एक क्रोध भाव** और **एक काम भाव।** आप देखना जो ज्यादा क्रोध करने वाला होगा उसकी भी इज्जत कम होगी और ज्यादा कामी की भी। ये दोनों बातें आदमी के चरित्र की बहुत बड़ी गिरावट है। इन भावों से आदमी अपनी नजरों से भी गिर जाता है पर अपने को उन भावों से बचा नहीं पाता, कंट्रोल नहीं कर पाता तो वह गिरता चला जाता है। उसका गिरने का स्तर क्या होता है आप सब जानते हो। उसको घर-परिवार, रिश्तेदार, भाई-बहन भी दिखाई नहीं देते। स्वयं को रोकने की शक्ति ज्ञान के विचारों के माध्यम से आएगी। इसलिए ये अध्यात्म के सूत्र हमें आज बहुत उपयोगी है क्योंकि इनके माध्यम से हमारे ये भाव पूर्णता की ओर जाते हैं। किसी भी बाहरी वस्तु में आपको पूर्णता नजर नहीं आएगी। एक मनोवैज्ञानिक ने तो यहाँ तक लिखा कि प्यार और प्रेम जैसे शब्द ढाई अक्षर के शब्द हैं, ये शब्द ही बता रहे हैं कि इनमें अधूरापन है। इन भावों के साथ जो जुड़ेगा वो कभी भी पूर्णता की ओर नहीं जा पाएगा। दो लोगों के बीच का 'प्यार' उन्हें कभी पूर्ण नहीं होने देगा। बाहर से हर व्यक्ति दूसरे का संयोग चाहता है और अनेक-अनेक रूपों में वह दूसरों का संयोग करता है लेकिन उसे कभी भी पूर्णता का अनुभव नहीं होता। पूर्णता तब आएगी जब आप इन देहगत भावों से ऊपर उठेंगे। ये देहगत भाव तुच्छ भाव कहलाते हैं। जो ज्ञानी होता है वह इन तुच्छ भावों से ऊपर उठता है। अगर आप महान ज्ञानी,सम्यग्दृष्टि, तत्त्वज्ञानी बनना चाहते हैं तो अपने देह आश्रित भावों से अपने आपको बचाओ। उनसे ऊपर उठने पर आत्मा की ओर दृष्टि जाएगी। आत्मा निष्पंद है, पूर्ण है, देह कभी पूर्ण नहीं होती और देह से जुड़ी मन की वासना कभी पूर्ण नहीं होती। तृप्ति का तो कभी कोई सवाल ही नहीं है।

आचार्यों ने कहा, आग में घी डालोगे और तृप्ति की बात कहोगे, आग बुझ जाए ये संभव नहीं है। काम-क्रोध ये सब अग्नियाँ हैं, ये मानसिक अग्नियाँ हैं और चित्त में लगी हुई रहती है, अगर इनमें हम घी-तेल डालते रहेंगे तो ये बढ़ती रहेगी, कभी भी समाप्त नहीं होगी। अगर इन्हें ईंधन देना बंद कर देंगे तो ये एक दिन समाप्त हो जाएँगी, बुझ जाएँगी। ये बहुत बड़ा लॉजिक है, साइकोलॉजी है। आज का मनोवैज्ञानिक भी दूसरों को भुलावे में डालता है। ऐसे-ऐसे चिंतन आते हैं, ऐसे लोग आते हैं सामने जो ऐसी धारणा बनाकर रखते हैं कि पुरुष

कभी भी स्त्री के बिना जी नहीं सकता और स्त्री कभी पुरुष के बिना जी नहीं सकती। एक बार बहोरीबंद में आचार्य महाराज के पास ओशो से पढ़ा हुआ दार्शनिक टाइप का व्यक्ति आकर कहता है कि महाराज आप जिस ब्रह्मचर्य की बात करते हो और जिस ब्रह्मचर्य के साथ जीवन जी रहे हो, ये कभी संभव ही नहीं है। ये ब्रह्मचर्य शरीर के लिए रोग उत्पन्न करने वाली चीज है, पुरुष होकर के ब्रह्मचर्य के साथ रहना संभव नहीं एवं स्त्री होकर भी क्योंकि ये सब मन में उठने वाले भाव को यदि हम रोकेंगे तो ये हमारे लिए बढ़ते चले जाएँगे, कभी भी समाप्त नहीं होंगे, जितना हम इनकी तृप्ति करेंगे, जब उसका मन पूरा भर जाएगा, पूरी तृप्ति हो जाएगी तो वो इन भावों से ऊब जाएगा।

दोनों तरह के विज्ञान चलते हैं दुनिया में, ये वीतराग विज्ञान है और वो राग का विज्ञान है। इस तरह का चिंतन देने वाले आपको अनेक वैज्ञानिक मिलेंगे- फ्रायड, ओशो है। ओशो जैन ही था पर सबको रिझाने के चक्कर में और अपने चिंतन को सबके लिए व्यापक बनाने के लिए वह अपने धर्म को भूल गया, उसके भावों को भूल गया और संभोग से समाधि की बात करने लगा। ऐसे-ऐसे चिंतक हुए, लोग उन्हें पढ़ते हैं, प्रसन्न होते हैं और सोचते हैं कि हाँ वास्तव में कोई चिंतक है। उन्हें जिनवाणी की बात पर विश्वास नहीं होगा पर उसकी बात पर जरूर विश्वास होगा क्योंकि हमें समाधि मिले न मिले, संभोग तो मिलेगा ही। यहाँ पर यदि समाधि की ओर जाएँगे तो संभोग भी छूटेगा, समाधि मिली न मिली ये तो बहुत दूर की बात है। आदमी अपने मन की कमजोरियाँ नहीं देखता। आदमी उसी ओर ढलता है जिस ओर उसका मन उसे ले जाता है। उस आग में आग बढ़ाने की बात की जाए तो उसे जल्दी बात पकड़ में आ जाती है और यदि आग बुझाने की बात की जाए तो उसे समझ में नहीं आती।

गुरु महाराज से वह चर्चा कर रहा था कि महाराज ब्रह्मचर्य की साधना अपने शरीर के प्रति अपराध है। आचार्य महाराज सुन रहे थे और उनकी प्रसन्नता सब कुछ बता रही थी। आचार्यश्री ने मात्र इतना कहा कि मुझे देखकर लगता है कि मैंने कोई अपराध किया है और मेरा शरीर रोगी दिखता है क्या? बस यह सुनना था कि वो नमोस्तु करके चला गया। उसे समझ में आ गया कि इसके अलावा इसका कोई उत्तर नहीं हो सकता। आदमी ने अपने मन में वैसे ही विकार भाव संजो रखे हैं। आज दुनिया में सब कुछ वही पढ़ाया जाता है जो उसके उन विकारों को बढ़ाने के काम में आता है। ये सम्यग्ज्ञान कहीं नहीं दिया जाएगा कि अग्नि अगर बुझेगी तो तब बुझेगी जब उसे

ईंधन से दूर रखा जाए। ईंधन के पास रखने पर अग्नि बढ़ती ही रहेगी, ये एक सिद्धांत है, नियम है, उदाहरण है। वही चीज हमारे इस अंतर मनोविज्ञान के साथ घटित होती है। आपके चित्त को शांति तभी मिलेगी जब आप उस अग्नि से दूर होंगे। आप तो ये चाहते हो कि अग्नि हमारे पास रहे और चित्त हमारा शांत हो जाए। हाथ तापने की आदत तो सबको है लेकिन उसमें यदि कंट्रोल नहीं हो तो हाथ जल भी जाते हैं। अग्नि से बचने के लिए आचार्य कहते हैं जैसे ही आपके भावों से वह दुर्भाव उत्पन्न हो आप उस समय पर देह से अपना मन हटा लें और मन को अपनी आत्मा में लगा लें। देह एक तुच्छ वस्तु है, आत्मा एक अखंड वस्तु है। देह महत्त्वहीन वस्तु है और आत्मा सर्वज्ञान संपन्न महत्त्वपूर्ण वस्तु है। हमने अपने मन को हमेशा इस देह में लगाया है, कभी भी आत्मा से जोड़ा नहीं है क्योंकि उस मन के अंदर आत्मा का ज्ञान उत्पन्न नहीं हुआ। मन के अंदर का ये भाव जिसमें उसे ये भी याद न रहे कि मैं पुरुष हूँ कि स्त्री हूँ या और कोई हूँ, तब उसके अंदर वह पूर्णता का भाव आता है, वही आत्मा होता है। अगर आत्मा को अपने अंदर ये पुरुषार्थ करने की लौ लग जाती है तो वह अपने देहगत भावों से ऊपर उठ जाता है तब वह महान 'ग्रेट मैन' बन जाता है। इसके अलावा उसमें महानता का कोई लक्षण नहीं है। आदमी अपने काम भाव को सीमित कर सकता है।

लज्जा

आचार्यों ने कहा कि अपनी वासना का समीकरण लीगल तरीके से बैठाना वो सामाजिक व सांस्कृतिक कार्य 'विवाह' है। सिर्फ अपनी पत्नी तक ही अपनी वासना संयमित करने का व्रत भी अणुव्रत कहलाता है। इसे भी भगवान् महावीर ने व्रत का नाम दिया और इससे भी आदमी पूर्ण महसूस करेगा क्योंकि उसकी दृष्टि व वासना केवल अपनी पत्नी तक सीमित है और स्त्री की अपने पति तक। यह व्रत भी आज के जमाने में बहुत बड़ा धर्म है, बहुत बड़ी साधना है। जो पुराने यार-दोस्त रहे, साथ पढ़े उन्हें याद न करें, फिर से रमने की भावना उत्पन्न न हो, यह भी बहुत बड़ी मानसिक साधना हुआ करती है। इसे भी आचार्य कहते हैं कि वो शील का पालन कर रहा है। जिस आत्मा का संबंध अनेक शरीर से जुड़ा है वह आत्मा देहमय तुच्छ से तुच्छ हो चुका है काम वासना की तीव्रता वालों के अंदर एक दुर्गुण उत्पन्न हो जाता है जिसे कहते हैं निर्लज्जता। लज्जा

स्त्री का सबसे बड़ा गुण है। वही स्त्रीत्व की मुख्य निशानी है। जब यह काम भाव बढ़ जाता है तो स्त्री भी निर्लज्ज होने लगती है और पुरुष भी। ''आज की नारी, वासना की दौड़ में, निर्लज्ज खड़ी है'', ये एक 'हाइकू' है।

हाइकू शब्द है जिसमें एक छोटी सी कविता, ऊपर पाँच अक्षरों की एक पंक्ति होती है, बीच में सात अक्षरों की पंक्ति होती है, नीचे पाँच अक्षरों की पंक्ति होती है। मात्र १७ शब्दों का एक छंद होता है। आचार्य महाराज ने इन १७ शब्दों के बहुत सारे छंद बनाए हैं, 'हाइकू' बनाए हैं। कई छंदों में बहुत गंभीर भाव है। ये जो छंद हैं वो हमने कभी रचा था- 'आज की नारी (५) वासना की दौड़ में (७) निर्लज्ज खड़ी (५) ये जो दौड़ है वो ही बाहर दिखाई दे रही है और निर्लज्जता इस दौड़ के कारण से आ रही है।

वह लज्जा का भाव जो पहले दिखाई देता था, वो कहीं से कहीं तक बचा ही नहीं है। पहले की नारी घूंघट में रहती थी, पति के अलावा कोई दूसरा पुरुष उसे देख ही नहीं पाता था। आज से २०-२५ साल पहले तो देखी होगी आपने। अभी भी ऐसी जगहें हैं जहाँ पर हमने देखा है कि आज भी बहुयें पूरा का पूरा स्वयं को पल्लू लेकर ढँकती है, राजस्थान में भिंडर में, बागड़ में देखा हमने पर वह उन गाँवों तक ही सीमित है। जैसे ही शहर में आना होता है वे पल्लू-वल्लू छूट जाते हैं और वे अपने मुँह ऐसे बाँध लेती हैं जैसे आतंकवादी जा रहे हो। पहले मुझे लगा कि जो बहुत रूपवती हैं वो अपना मुँह ढाँक रही हैं कि औरों की वासना न जाग्रत हो जाए फिर पता पड़ा कि कहीं काले न हो जाएँ, चमड़ी न जल जाए इसलिए बाँध रही है पर अब देखता हूँ कि चाहे छाँव हो, चाहे पानी बरस रहा हो, चाहे पैदल हो या गाड़ी पर हो जब ये आतंकवादी बनकर निकलती है तो अपने आप समझ में आ जाता है कि इनके अंदर वासना का छिपाव नहीं, उद्वेग हो रहा है। उनके अंदर की ये वासना सिर्फ उसी पल्लू और दुपट्टे के माध्यम से छिप सकती थी। पहनती तो जींस-टी शर्ट हैं पर मुँह आतंकवादी जैसा बाँध लेगी ताकि पिता को, भाई को पता नहीं पड़े कि मेरी बेटी या बहन जा रही है। कब कपड़े बदल जाते हैं और मुँह बाँध लेने पर दुनिया में कोई नहीं पहचान सकता। घूमना-फिरना सब वासना बढ़ाने के तरीके हैं। अंतरंग में यदि वासना रुक सकती है तो मात्र ज्ञान को बढ़ाकर रुक सकती है। उस ज्ञान में ये मान लेना चाहिए कि आत्मा पूर्ण है, वासना से रहित है, ज्ञानमय है और जो कुछ भी ये दुर्भाव है, वे शरीर की संगति से है। अगर स्त्री के अंदर एक भाव बना रहे जो

उसका आभूषण कहलाता था, पहले के संस्कृत साहित्य, नीति शास्त्र में लज्जा का भाव उसका सबसे बड़ा आभूषण बताया है। गले के हार, हाथ के हार ये सब बेकार हैं। जिस स्त्री में लज्जा का भाव है, वो आपको हमेशा सुंदर लगेगी लेकिन आज के कामी पुरुषों को वो ही स्त्री अच्छी लगती है जो निर्लज्ज होकर उनके सामने आती है। जब तब उसे स्त्री का बदन न दिखे, तब तक उसे लगता ही नहीं है कि हमारी कोई शोभा है।

वह जमाना कितनी दूर चला गया जिसमें स्त्री के कोई अंग देखने को नहीं मिलते थे। अब इस शरीर को दिखाने का भाव रह गया, कोई दूसरा भाव है ही नहीं। अब जहाँ दुपट्टा, पल्लू और शॉल लेने वाली परंपरा हो, उस घर में आप अपनी बेटियों को न देना चाहों न उनसे अपनी बेटियाँ लेना चाहो। ये आपका स्टैंडर्ड हो चुका है, हम किससे क्या कहें। दूसरी समाज से हम क्या कहें, पहले हम आप से ही कुछ कहें। आपके लिए भी यदि ये स्टैंडर्ड बन चुका है तो कहने की जरूरत नहीं है। आप अपने चारित्र को स्वयं बिगाड़ते चले जा रहे हो और अपने घर की सुख-शांति को भी समाप्त करते जा रहे हैं। अगर मन के अंदर कहीं सुख-शांति और सभ्यता रहती है तो वो केवल अपने पहनावे-ओढ़ावे के साथ ही रहती है। जिस घर में जितना शालीन-संजीदा पहनावा होता है उस घर के लोग उतने ही सभ्य और अच्छे कहलाते हैं। उन घरों में ऐसी घटनाएँ नहीं घटती जिनको सुनने के बाद हमें तौबा-तौबा करना पड़े या किच-किच करके अपने लिए अफसोस करना पड़े या अपनी आँखें झुकानी पड़ें। ये आजकल के अपने पहनावे-औढ़ावे के कारण होता है। यदि पहनावा अच्छा है तो इसका मतलब है हम अपने आप में संतुष्ट हैं और हमारे साथ में जिसका संबंध है हम केवल उससे संतुष्ट हैं। इसके अलावा यदि असंतुष्टि है तो जैनदर्शन के अनुसार ये जान लेना कि जो स्त्रियाँ अगर ऐसा भाव करती हैं कि मुझे लोग देखें, मेरी तरफ आकर्षित हों, मुझे लोग चाहें तो उन्हें कर्म सिद्धांत का थोड़ा सा ज्ञान कर लेना चाहिए। इन भावों से उन्हें जो कर्म बँधते हैं तो अगली पर्याय में ऐसी दुर्दशा होती है, नहीं चाहते हुए भी उनका अपहरण होता है। हमारे साथ जो कुछ भी घटित होता है वो कर्म के उदय से घटित होता है। अगर हमने पिछले जन्म में ऐसे कर्म/भाव कर लिए जिनकी पूर्ति हमारी इस जन्म में नहीं हो पाई, हमने केवल उन भावों को बाँध करके रखा, अगले जन्म में जैसे ही वह स्त्री बड़ी होगी और उसके साथ में कुछ न कुछ ऐसा घटित होगा कि दो-चार उसके साथ में लोग पड़ जाएँगे, कुछ पीछे पड़ जाएँगे। कुछ ऐसा जरूर घटित होगा कि उसका चरित्र नष्ट होगा क्योंकि उसने पिछले जन्म में ऐसा

भाव करके ऐसे कर्मों को बाँध लिया। उन भावों के कारण आपको लगेगा कि मेरी बेटी ने तो कुछ किया ही नहीं, उसका अपहरण क्यों हो गया, लोगों ने इसके साथ में दुर्व्यवहार क्यों किया? कहीं न कहीं अपने भी बँधे हुए वो कर्म उदय में आते हैं जिन कर्मों का फल हमें भोगना पड़ता है। जो घटनाएँ हमें नए-नए रूप में बहुत सहजता से दिखाई दे रही है क्योंकि अपने ही घरों में वो ही जीव उत्पन्न होंगे जो अभी २०-३० साल यहाँ रहे और यहीं पर उनका मरण हो गया, वो अपने घरों में फिर उत्पन्न हो गए और उनके अंदर इस प्रकार के कृत्य दिखाई देंगे जिनके कारण आपका माथा शर्म से नीचा झुकेगा।

जैसा हम भाव करते हैं वैसा ही हमारे लिए फल मिलता है। जो स्त्री ऐसा भाव करे कि कई लोग हमें चाहें तो वो अगली पर्याय में वेश्या भी बन सकती है। ऐसी परिस्थितियाँ बन जाएँगी। उन वेश्याओं को भगवान् के द्वारा अलग से किसी अपराध के रूप में भेजा जाता है, ऐसा नहीं है। जो यहाँ पर हम लोग कर्म कर रहे हैं, कर्मों को बाँध रहे हैं, उन कर्मों के फल हमें इस रूप में मिल रहे हैं और अब ये फल मजबूर होकर भोगने पड़ेंगे। ऐसी ही परिणतियाँ मिलेंगी। इसलिए कहता हूँ थोड़ा-सा प्रथमानुयोग/पुराण ग्रंथ पढ़ा करो, उसी से बुद्धि सँभलेगी। किन भावों से कौन से कर्म बँधते हैं और ऐसे-ऐसे कर्म बँध जाते हैं।

कर्मफल

चंद्रप्रभ भगवान् के चरित्र में आता है, उनके पूर्व जीवन की एक घटना है। एक स्त्री के लिए पुत्र उत्पन्न नहीं हो रहा है। राजा है, रानी है, सुंदर है, सब कुछ है लेकिन राजा केवल इस बात से परेशान है कि मुझे कोई संतान क्यों नहीं हो रही। एक दिन उसको मुनिराज मिल गए। अवधिज्ञानी मुनिराज से उसने नमोस्तु करके पूछ लिया, महाराज कि मेरे घर में सारे सुख हैं, राज्य है, वैभव है पर एक संतान की कमी है। अवधिज्ञानी मुनिराज ने उसकी रानी को देखकर कहा कि बेटी तुमने पिछले जन्म में कुछ ऐसे भाव कर लिए, जिनके कारण तुझे संतान बहुत देर से प्राप्त होगी, अभी तेरे कर्मों का तीव्र उदय चल रहा है। पिछले जन्म में तू बहुत सुंदर थी और इस कारण तुमने ऐसा भाव कर लिया कि मुझे पुत्र की प्राप्ति न हो क्योंकि पुत्र प्राप्ति के बाद स्त्री का सौंदर्य कुछ फीका पड़ जाता है तो मेरा सौंदर्य फीका न पड़े, चाहे कुछ हो या न हो। ये भाव तुम्हारे कर्म के रूप में

बँध गया और आज तुम्हें व राजा को पुत्र की जरूरत है पर अभी बँधे हुए कर्मो का उदय चल रहा है। राजा पूछता है, महाराज कर्मो का उदय कब दूर होगा। महाराज कहते हैं धर्म आराधना करते रहो, अष्टाह्निका आ रही है, अच्छा पूजन-विधान करना, व्रत-उपवास करना क्योंकि बँधे हुए कर्म इन पूजन-विधान, व्रतों के माध्यम से ही हल्के पड़ेंगे। साल-दो साल में कर्म हल्के होंगे और तुम्हें पुत्र रत्न की प्राप्ति होगी। राजा प्रसन्न हुआ, चलो दो साल में गोद भरेगी। राजा-रानी दोनों ने मिलकर के उसी दिन से धर्म आराधना शुरू कर दी। रोजाना उन्होंने पूजन-विधान शुरू कर दिया और शक्ति अनुसार व्रत-उपवास भी करने लगे। वास्तव में २ साल के अंदर उन्हें पुत्र रत्न की प्राप्ति हो गई।

वह कर्म जो बँधा है वो हमारे भावों से बँधा है और हमारे पूर्व जन्म के कर्मो से बँधा है। अगर हमारे घर में हमारा अपमान हो रहा है तो वो भी हमारे पूर्व जन्म से बँधा कर्म है। पूजन-धर्म ध्यान के माध्यम से अपने कर्म हल्का करने पर उनसे छुटकारा मिल जाएगा। अगर आप रोते हुए, परेशान होते हुए, सुसाइड करते हुए कर्म करेंगे तो कर्म का उदय व बंध तो नहीं छूटेगा। सुसाइड करने से देह छूटती है पर कर्म तो आत्मा के साथ बँधा है। वह इस जन्म में नहीं, अगले जन्म में फल देगा। जब तक वह फल नहीं देगा, वह उस आत्मा को छोड़ेगा नहीं। कर्म ऐसी चीज है जो अपने अंधेरे में भी किए हुए दुर्भावों का फल देगा। कर्म एक ऐसा **न्यायालय** है, ऐसा जज है जो आपको कभी भी उस दंड से वंचित नहीं होने देगा, जिस दंड को जिस समय पर मिलना है, वह उसे दिलाकर ही रहेगा। ये सबके साथ में घटित होता है।

अगर स्त्री के अंदर दुर्भाव बढ़ते हैं तो मान लेना कि उसकी स्त्री पर्याय का तो विच्छेद होना ही नहीं है। स्त्री पर्याय से विच्छेद तभी होगा जब उसे स्त्री पर्याय से ग्लानि हो। पुराण ग्रंथ पढ़ोगे तो पता चलेगा कि यदि किसी स्त्री का पति युद्ध में अकाल मरण को प्राप्त होता है तो वह स्त्री अपनी स्त्री पर्याय की निंदा करती है, भगवान् ये स्त्री पर्याय छूटे और हम पुरुष पर्याय में दिगम्बर रूप धारण करके मुनि महाराज बनकर आत्म ध्यान करके केवलज्ञान प्राप्त करें। ये भाव रहा करते थे पवित्र स्त्रियों के, शीलवती स्त्रियों के जो हमें केवल पुराणों में पढ़ने को मिला करते हैं, अब आज कहाँ ऐसे भाव उत्पन्न होते हैं। जिनको सम्यग्ज्ञान होगा, जिन्हें स्त्री पर्याय के प्रति ग्लानि होगी वो आज भी ऐसे भाव करती हैं, कर रही होंगी और करेंगी क्योंकि धर्म करने वाले जीवों की कमी नहीं है। धर्म हमेशा से होता आया है आज भी कुछ स्त्रियाँ धर्म करती हैं और चाहती हैं कि स्त्री-

पर्याय से विच्छेद हो जाए लेकिन जो स्त्रियाँ अपनी सुंदरता दिखावे में होड़ लगा रही हैं, उनके अंदर तो ये भाव हो ही नहीं सकता। ये भाव तो उन्हीं के अंदर होगा जो स्त्री पर्याय को भी निंदित पर्याय के रूप में देखें कि उसमें कितने दु:ख भोगने पड़ते हैं। आज लोग गर्भ में ही बेटी को मार डालते हैं। आज भी अच्छे पढ़े-लिखे सभ्रांत परिवारों में बेटी के जन्म पर उत्सव नहीं होता। पुत्र होता है तो ही उत्सव होता है। आज भी घर वालों को चिंता बेटी की ही होती है क्योंकि बेटी अगर बिगड़ गई तो हमारा कुल कलंकित हो जाएगा, आँखें नीची हो जाएँगी, कोई उससे शादी नहीं करेगा और यदि शादी हो गई तो सास-ससुर, घरवाले परेशान करते हैं, ये कभी भी आत्म चिंतन में नहीं आता। सब कुछ जो देखा जा रहा है। संतान नहीं होने पर स्त्री को कोसा जाता है, पुरुष को नहीं। जबकि कभी स्त्री में कमी होती है तो कभी पुरुष में भी हो सकती है।

फिर वो प्रार्थना करती है कि भगवन् मुझे सम्यग्दर्शन की प्राप्ति हो, आत्मज्ञान की प्राप्ति हो जिससे इस स्त्री पर्याय से मुक्ति मिले। हर महीने हमारा धर्म छूटता है ऐसी स्त्री पर्याय की शीलवती स्त्रियाँ निंदा करके स्त्री पर्याय का विच्छेद करती थीं और पुरुष पर्याय को प्राप्त करने के भाव संजोती थी लेकिन जिन्हें अपने शील की, चरित्र की चिंता नहीं, स्त्री पर्याय से बढ़कर कोई दूसरा आकर्षण नहीं दिखता तो उनकी वह स्त्री पर्याय भी छूटने वाली नहीं। आचार्य कहते हैं स्त्री पर्याय में ध्यान भी नहीं लगता क्योंकि उसका चित्त बहुत चंचल होता है। स्थिरता नहीं आती क्योंकि भय अंदर बैठा रहता है। वह सबसे ज्यादा डरपोक होती है। उसके अंदर भय, चंचलता, लज्जा के गुणों के कारण वह कभी भी आत्मस्वरूप का चिंतन नहीं कर पाती और उसमें स्थिरता नहीं बन पाती। जब ये सब चीजें आत्म चिंतन में आती है तब स्त्री पर्याय से ऊपर उठने का भाव होगा। ये सब पुराण, चरित्र ग्रंथों को पढ़ने से आएगा। आज तो सब उल्टा दिखाई देता है, समझ में नहीं आता कौन सास है और कौन बहू है, कौन शादीशुदा है और कौन अविवाहित है, कौन लड़की है और कौन बहू है। आपको अगर अच्छा न लगे, बात पुरानी लगे तो आप उस पर ध्यान मत देना पर अगर कहीं अच्छी लगे तो मन में विचार करना कि हम जैसे भाव करेंगे तो हमारा आगे का भविष्य भी वैसा ही होगा। आज का विचार आदमी के आगे का भविष्य है। यदि हम आज गलत हैं तो हम कभी भी अच्छे भविष्य की कल्पना नहीं कर सकते। इसलिए अच्छे भविष्य की चिंता करना छोड़ दो और वर्तमान में अच्छे भाव करना सीखो। जो भाव हमारे लिए उपयोगी हैं उतना ही करो। इतना अपने विचारों पर कंट्रोल रखो, जब तक हमारा विवाह नहीं होता, हम कोई भी गलत भाव

न करें, ये आज के लिए बहुत बड़ी साधना है। अपने पति के अलावा किसी भी दूसरे व्यक्ति से संबंध नहीं रखेंगे चाहे वो हमारा कितना ही साथ में रहा हो, खेला हो, पढ़ा हो लेकिन अब हमें अपने घर की मर्यादा को ध्यान में रखना है।

पुरुष के लिए- तुम्हें शांति उतनी ही मिलेगी जितनी तुम्हारी स्त्री चाहेगी क्योंकि तुमने अपने आपको जिस बंधन में डाला है उस बंधन से शांति भी बँध गई है। स्त्री अगर चाहे तो तुम्हें शांत होने ही नहीं दे। तुम्हारी सुख और शांति उसी के आश्रित हो गई है इसलिए दोनों के मन में ऐसे भाव होने चाहिए कि हम एक-दूसरे के लिए शांति और सुख पूरा करें। ये तो भाव अच्छा है लेकिन इस भाव के अलावा और कोई पूर्णता का भाव करते हैं तो वो पूर्णता का भाव कभी भी तृप्ति देने वाला नहीं है जैसे दार्शनिक लोग हम लोगों के सामने आ जाते हैं और चैलेंज देकर चले जाते हैं। उनके कई-कई शिविर लगते हैं, वॉट्सअप पर कैसेट-उपदेश चलते हैं जिसके द्वारा जनता को भ्रमित किया जाता है। उनके शिविरों में डॉक्टर रहते हैं जो लड़कियों के एबार्शन करते हैं। उनके नाचने-गाने में आत्मध्यान होता है और वे संभोग से समाधि की बातें करते हैं। ये अपने लिए सम्यग्ज्ञान की बात है कि आग कभी भी घी या तेल से बुझ नहीं सकती। आप अगर उस आग से दूर रहोगे तो आग इसलिए शांत हो जाएगी क्योंकि उसे तृण अग्नि कहा है। तृण व अग्नि का संपर्क होगा तो अग्नि उतनी ही लगेगी जितनी वो तृण के साथ आई होगी, जैसे ही अग्नि दूर हो जाएगी वह तृणाग्नि भी शांत हो जाएगी। अग्नि से उसका ईंधन हटा दो तो वो शांत हो जाएगी। अपने बच्चों को उन चीजों से दूर रखो जिससे ये अग्नि बढ़ती है। उनके पास ले जाओगे तो आपकी भी अग्नि बढ़ेगी, उनकी भी बढ़ेगी फलस्वरूप घर में कभी भी सुख-शांति नहीं रहेगी। बेटा कह रहा है नई फिल्म लगी है, हमें देखना है। पापा को पता है कि फिल्म में क्या है, पर बेटे की जिद ले जाते हो। तुममें इतनी हिम्मत है क्या कि अपने बेटे को समझा सको, क्या वो मान जाएगा। अगर तुमने अपने बेटे को इतना संस्कारित बना लिया है तो वो मान जाएगा, अगर नहीं माना तो तुम्हें जाना पड़ेगा बाद में अफसोस करते रह जाओगे कि क्या देखने को मिला। कभी विचार नहीं आता कि हम अपने बच्चों की उतनी ही बात मानें जितनी उनके हित में हो और उन्हें इस ढंग से ट्रीट करें कि अगर हम उनकी बात से समझौता नहीं भी कर पाते हैं तो भी उन्हें गुस्सा करने की जरूरत नहीं है। हम उनको इस ढंग से मना पाएँ ये आपके बेटों के प्रति बहुत बड़ी जिम्मेदारी है और इस में आज आप सब लोग फेल हो। आज आपको डर लगता है कि हमारे मना

करने पर वो घर से न भाग जाए, सुसाइड न कर लें क्योंकि वो पहले से संस्कारित नहीं है। ये संस्कार तब से शुरू हो जाते हैं जब से तुम्हारा विवाह हुआ है, गौर करते रहो क्योंकि ये वो चीजें हैं जिनके माध्यम से हमारे अंदर अध्यात्म उतरने वाला है। अध्यात्म की शुरुआत होगी तो तभी होगी जब हमारा मन इन वासनाओं से दूर हो। अगर हम वासनाओं में लिप्त हैं, फैशनों में लिप्त हैं और समयसार को हाथ में रखकर के बांचते हैं। ये समयसार का अपमान है क्योंकि समयसार वीतराग विज्ञान की बात बताता है और हम इतने राग में आमूलचूल सने हैं कि हमारे मुँह से वो बातें अच्छी नहीं लगती। योगियों के मुँह से योगी की बातें अच्छी लगती हैं। भोगी तो केवल उस योगी को देखकर के अपना चेहरा देख ले और उसे प्रणाम कर ले, वही उसका सबसे बड़ा योग है, यही उसका सबसे बड़ा समयसार है। जो समयसार में जी रहे हैं उनके लिए आप केवल दर्शन करके नमोस्तु करने का भाव कर लो, यही आपका सबसे बड़ा समयसार है, इसी से आपका कल्याण होना है। करने के लिए हम कितना कर पाते हैं ये सोचना है। भावनाएँ अगर इन तीनों लिंगों से ऊपर उठकर के उस आत्मतत्त्व तक पहुँचती है तो शब्दरहित ऐसी शांति इस घट के अंदर, इसी शरीर के अंदर मिलती है। जहाँ पर कितना ही कोलाहल बना रहे लेकिन जब मन आत्मा में डूब जाता है तो वह शब्द रहित उस आत्मा को अनुभूति होती है। उस आत्मा में कोई शब्द सुनाई नहीं पड़ता और आत्मा शब्द से रहित है। ऐसी वह शब्द से रहित अपने पूर्व भावों की पूर्व ज्ञानमय अनुभूति में वह आत्मा जब डूबती है तो उसके देहगत भाव भी छूट जाते हैं, कर्मगत भाव भी छूट जाते हैं। ये आचार्य महाराज बता रहे हैं ये ध्यान की प्रक्रिया है। ये श्लोक ध्यान की प्रक्रिया में लगाने वाला है। ध्यान करने वालों को ये श्लोक एक आलंबन होता है।



श्लोक-४५

जानन्नप्यात्मनस्तत्त्वं विविक्तं भावयन्नपि।
पूर्वविभ्रमसंस्काराद् भ्रान्तिं भूयोऽपि गच्छति।।४५।।

शुद्धात्म को सुबुध यद्यपि जानता है, ध्याता उसे अलस को तज देखता है।
मिथ्यात्व का उदय पै यदि हाय! होता, सद्ध्यान शीघ्र नशता, वह भ्रष्ट होता।।४५।।

आत्मज्ञान अथवा निर्भ्रांति

जो आत्मतत्त्व को परद्रव्यों से भिन्न होकर उसकी भावना करता है वह अपने कर्म के उदय से उत्पन्न हुए अनेक प्रकार के कारणों से उन संस्कारों से दूर हो जाता है। आत्मतत्त्व को जानना और उसकी भावना करना। जानने का अर्थ केवल शब्दों से जानना नहीं होता बल्कि उसकी अनुभूति करना। जो आत्मा को परद्रव्यों से भिन्न होकर के उसकी भावना करता है और उसका अनुभव करता है, वह व्यक्ति अपने आत्मतत्त्व को जान रहा है। जिसके आत्मतत्त्व को अगर पूर्व में कोई कर्म का उदय था और उस कर्म का अगर कोई संस्कार पड़ा है और उस संस्कार के कारण वह पुन: अपने ध्यान से च्युत हो जाता है तो वो भ्रांति में आ गया ऐसा कहा जाता है। अध्यात्म की भाषा में भ्रांति उसे कहते हैं जिसमें वह अपने आत्मध्यान से चूक जाए, आत्मा के अनुभव से छूट जाए। जो साधक अपनी आत्मा के अनुभव में लगा हुआ है वह **निर्भ्रांत** है, ऐसा कहा जाता है। इसलिए भ्रांतियाँ अनेक प्रकार की हुआ करती हैं। अध्यात्म की भी भ्रांतियाँ हो जाती हैं कि आत्मा को जाने और अनुभव करें वो निर्भ्रांत है। जो व्यक्ति ये समझता है कि भ्रांति का अर्थ यहाँ पर किसी मिथ्या धारणा से है तो वो भी एक भ्रांति है। भ्रांति से रहित वह कहलाते हैं जिनके लिए प्रकाश से कुछ देखने में आ जाता है। लौकिकता में निर्भ्रांत पुरुष वो कहलाते हैं जो किसी भी प्रकार की मिथ्या धारणाओं में नहीं जी रहे हों। अध्यात्म में आत्मा का ध्यान होना ही निर्भ्रांति है। सम्यग्ज्ञान भी भ्रांति

कहलाती है क्योंकि उस सम्यग्ज्ञान से उसे आत्मज्ञान नहीं हो रहा है। सम्यग्ज्ञान अलग चीज है और आत्मज्ञान अलग चीज है। सम्यग्ज्ञान के माध्यम से आत्मा के बारे में जानना होता है, श्रद्धा करना होता है। उस आत्मा को अपनी अनुभूति का विषय बनाना और उस अनुभूति के समय उस आत्मा को जानना व देखना वस्तुत: आत्मज्ञान कहलाता है। जितने भी सम्यग्ज्ञानी हैं वे आत्मज्ञानी होते हों, ऐसा नहीं है। जो आत्मज्ञानी होगा वो नियम से सम्यग्ज्ञानी होगा। ऐसे भी सम्यग्ज्ञानी होते हैं जिन्हें आत्मा का ध्यान नहीं होता, आत्मा के सम्यग्ज्ञान की परिणति उनके अंदर चला करती है।

आचार्य कहते हैं कि जब तक हम आत्मतत्त्व को परद्रव्यों से भिन्न होकर के न जानें और उसकी भावना नहीं करें, तब तक हम भ्रांति में पड़े हैं। अगर आत्मा का ध्यान रखते हुए भी ध्यान से विचलित हो जाएँ तो वो भी समझना किसी भ्रांति के कारण से हो जाता है। आत्मा का ध्यान रखते हुए भी अगर ध्यान छूट जाए तो उसमें भी कुछ न कुछ हमारे अंदर भ्रांति आ गई है। वह भ्रांति क्या है और क्यों हो सकती है उसके भी कारण बताए हैं। कर्म के उदय से भी भ्रांति होती है और जब तक अपने पुरुषार्थ की दृढ़ता नहीं होती, तब तक भी भ्रांति चलती रहती है। आत्मा के अंदर होने वाली जो भ्रांतियाँ हैं उन्हें वही समझ पाता है जो आत्मा का ध्यान रखते हैं। आत्मा का ध्यान रखते हुए हम आत्मा को विषय बनाते हैं लेकिन ध्यान आत्मा का नहीं हो पाता है क्योंकि उस आत्मा तक पहुँचने के लिए हमें कई प्रकार की भ्रांतियों को तोड़ना पड़ता है। वो भ्रांतियाँ निरंतर ध्यान के पुरुषार्थ के माध्यम से छूटती हैं इसलिए बड़े-बड़े साधक निरंतर ध्यान और ध्यान की भावना, इन दो चीजों में संलग्न रहते हैं। तीर्थंकरों जैसे महापुरुष भी उसी ध्यान की साधना करने के लिए १००० वर्ष तक तप करते हैं और उन्हें वह आत्मा का ध्यान जो मात्र अंतर्मुहूर्त के लिए होता है। एक हजार वर्ष की साधना से जो भ्रम टूटता है, तो आत्मज्ञान होता है तब ही **केवलज्ञान** की प्राप्ति हो जाती है। आत्मज्ञान यदि अंतर्मुहूर्त तक एक साथ हो जाए तो केवलज्ञान होते ही उसके लिए आत्मा का साक्षात् दर्शन होने लग जाता है। आत्मज्ञान की ऐसी स्थिति प्राप्त कर साधक भ्रमों का त्याग करते हैं और सबसे बड़े भ्रम ध्यान की अवस्था में छोड़े जाते हैं, उसे कहा जाता है मानसिक अंधकार से दूर होना। एक तो बाहरी अंधकार से दूर होना, बाहरी प्रकाश के होने पर हो जाता है लेकिन मानसिक अंधकार का दूर होना, ये केवल ध्यान के समय पर ही होता है।

पुद्गल

भगवान् चंद्रप्रभ की स्तुति करते हुए आचार्य समंतभद्र महाराज कहते हैं कि हे भगवान् आपने ध्यान रूपी दीपक से अपने मानसिक अंधकार को दूर करके अपनी आत्मा में प्रकाश उत्पन्न किया। हम प्रार्थना करते हैं कि हे प्रभु हमें अंधकार से प्रकाश की ओर ले चलो। इसका अर्थ हैं हमें उस असत् भाव से सत् भाव की ओर ले चलो। अगर आप सोचते हैं कि अंधकार से प्रकाश की ओर ले चलो तो ये अंधकार क्या प्रकाश क्या? अगर आप जैनदर्शन को समझेंगे तो अंधकार व प्रकाश दोनों ही पौद्गलिक परिणतियाँ हैं, आत्मिक परिणतियाँ नहीं है। **अंधकार व प्रकाश पुद्गल की परिणति है।** पुद्गल का अर्थ सिर्फ शरीर ही नहीं होता, शरीर के साथ-साथ जो भी हमें जड़ पदार्थ दिखाई देते हैं वो सब पौद्गलिक पदार्थ कहलाते हैं जिनमें निरंतर कुछ बनना और बिगड़ना चलता रहता है और जिसका पूरण–गलन का स्वभाव होता है वह पुद्गल कहलाता है। कुछ उसमें जुड़ रहा है और कुछ उसमें से घट रहा है। प्रत्येक पदार्थ में वह पूरण–गलन का स्वभाव चलता रहता है। चाहे वो कोई भी पदार्थ हो, हमारा शरीर हो या शरीर से बाहर की कोई भी वस्तु हो। हर वस्तु में हर समय पर अनेक पुद्गल स्कंध आते हैं उसमें जुड़ते हैं और हर समय पर अनेक पुद्गल स्कंध उससे छूटते हैं। नयों को ग्रहण करना और पुराने को छोड़ना। ये स्वभावगत हर परमाणु की एक प्रक्रिया है। इस प्रक्रिया के माध्यम से हमारे शरीर में नए पुद्गल परमाणु आते हैं और पुराने को हम छोड़ते जाते हैं। यहाँ पर भी हम बैठे हैं तब भी ये कार्य निरंतर चल रहा है। समय-समय पर शरीर के अंदर ऐसा वाइब्रेशन (कंपन) चलता रहता है जिसके माध्यम से हर समय पर शरीर में वह पुद्गल स्कंध ग्रहण हो रहे हैं और हर समय पर वो छूट भी रहे हैं। आपको वो समझ में नहीं आ पाता क्योंकि आपकी दृष्टि में स्थूल बातें ही आती हैं, सूक्ष्म बातें नहीं आती। अपने ज्ञान का विषय स्थूल पदार्थ ही बनता है। **वर्गणाओं** का मतलब उन पुद्गल परमाणु का बहुत बड़ा समूह, किसी प्रकाश की किरण में हमें बहुत सारे प्रकाश के पुंज दिखाई देते हैं जिसे आप वर्गणा बोलते हैं। मतलब किरणों का समूह वह जिस तरह से हमें दिखाई देता है, इसी तरह से ऐसे पुद्गल पदार्थों का समूह जो केवल हमारे शरीर बनाने में काम में आता है। निरंतर उसमें शरीरगत जो प्रक्रिया है उस प्रक्रिया के माध्यम से शरीर के भोग्य जो वर्गणाएँ हैं उनका ग्रहण होना और उनका छूटना, ये निरंतर चलता रहता है। इस प्रक्रिया में एक समय का भी टोटा नहीं पड़ता,

चाहे आप सोओ, खाओ-पिओ या ध्यान में बैठे हो या किसी भी प्रकार की मूर्च्छा में चले जाओ।

आपके अंदर की वो प्रक्रिया जब तक चलती रहेगी तब तक आपके लिए आयु कर्म का उदय चल रहा है और आपकी श्वासें चल रही हैं। श्वासोच्छवास के माध्यम से वह शरीर में पुद्गल वर्गणाओं का ग्रहण व छोड़ना ये भी चलता रहता है। आप जैसे सांस लेंगे उसी प्रकार की पुद्गल वर्गणाओं का आपके लिए ग्रहण होगा व जिस ढंग से आप श्वास छोड़ेंगे उसी ढंग से वर्गणाओं का छूटना होगा। जब कभी योग की पद्धति से गुजरते हैं, प्राणायाम अथवा योग क्रिया करते हैं तो उसमें भी सिद्धांत यही रहता है। आप ग्रहण भी करो और छोड़ो भी, उसका एक सही अनुपात होना चाहिए। श्वास को यदि आप पूर्ण ग्रहण नहीं करते हो तो आप पूर्ण जीवन जी नहीं पाओगे इसलिए कोई भी योग गुरु हो वो 'लंबी गहरी श्वास लें' बोलेगा अर्थात् आप श्वास को थोड़ा गहराई से लो और उसे बहुत देर तक लो, इस ढंग से लो कि आपके पूरे शरीर तक उस श्वास का ग्रहण हो जाए। पूरे शरीर का संचालन नाभि केंद्र से होता है इसलिए कहा जाता है कि आपकी वह श्वास नाभि से ही ग्रहण हो और नाभि से ही उसका उत्सर्जन हो। लंबी और गहरी श्वास लेने का मतलब आपकी नाभि तक वह श्वास पहुँचनी चाहिए, वहाँ तक वह स्पंदन होना चाहिए। अधिकतर आदमी बैठा रहता है उसे पता नहीं पड़ता, कमर उसकी धीरे-धीरे झुक जाती है, धीरे-धीरे वो ९० डिग्री से झुकता हुआ ६० डिग्री के कोण तक पहुँच जाता है, उसको पता नहीं रहता वह झुककर बैठता है जब याद आता है तो आप कमर सीधी करके बैठ जाते हो। यूँ झुकने का मतलब ही है आपकी कमर झुकी हुई है। आपको लगता है कि ये आरामदायक है पर यदि ये ज्यादा समय तक बन जाएगी तो वो कमर के दर्द का एक कारण बन जाती है। पीछे की डिस्क खिसक गई या खराब हो गई तो हम हमेशा स्ट्रेट पोजिशन में नहीं बैठ पाते।

जैसे ही हमें थोड़ा सा भी फ्री लगता है, हम अपनी कमर को झुका देते हैं। इस झुकने का सबसे बड़ा नुकसान ये होता है कि हमारी श्वास सही-सही नाभि केंद्र तक नहीं पहुँचती। हमारी श्वास आधे फेफड़ों तक जाती-आती रहती है। इसी कारण से पेट की कई बीमारियाँ बिना आमंत्रण दिए हुए आ जाती हैं। ये भी आपके लिए संभालने की व सुरक्षा की बहुत बड़ी क्रिया है। यदि इसे हम ध्यान में रखते हैं तो यदि हम ध्यान की प्रक्रिया से न भी गुजर पाएँ लेकिन ध्यान के आलंबन स्वरूप जो प्राणायाम की प्रक्रिया है उस बाहरी शारीरिक प्रक्रिया के पास तक हम पहुँच जाते हैं। शरीर में जो पूरण-गलन स्वभाव है, उस पर भी प्रभाव पड़ता है। अगर आप पूरी श्वास लेंगे तो

आपके लिए अच्छी वर्गणाओं का पूरा ग्रहण होगा। पूरी श्वास छोड़ने से बुरी वर्गणाओं का शरीर से उत्सर्जन या निष्कासन भी होगा। यदि इन दोनों में कंजूसी हो गई तो उसे ही रोग कहते हैं। रोग और कुछ नहीं, इस प्रक्रिया के अधूरेपन का नाम है। इस प्रक्रिया के अधूरेपन के कारण पूरण-गलन प्रक्रिया में भी अधूरापन आ जाता है, इसी के कारण से हमारा शरीर रुग्ण हो जाता है। जिस किसी भी चीज में हमें पूरण-गलन स्वभाव दिखाई दे रहा है वह उसके आसपास के वातावरण के कारण होता रहता है। आप देखोगे कि बाहर ऐसी हवा है जिसके कारण हमें घुटन हो रही है तो आपको उस हवा को ग्रहण करने में अपने आप परेशानी होने लगेगी। ऑक्सीजन को जब आप अच्छे से ग्रहण नहीं कर पाओगे तो आपको अपने आप भीतर से घुटन होगी और वह घुटन अनेक शरीर संबंधी/फेफड़ों संबंधी रोगों का कारण बन जाएगी। यानि हम जो कुछ भी ग्रहण करते हैं तो उसमें आसपास का वातावरण भी हमारे लिए बड़ा सहायक होता है। अच्छे पानी, अच्छी हवा का सेवन करने से शरीर में निरोगता रहेगी। कई जगहों का पानी भारी होता है, अनेक प्रकार का बाइक्साइट घुला रहता है। छत्तीसगढ़ में बाक्साइट युक्त ही पानी मिलेगा। जब हमारा चातुर्मास 'कोतमा' में हुआ था तो वहाँ के बाक्साइट युक्त पानी के कारण मैं जाते से बीमार पड़ गया था। कोतमा, चिरमिरी, अनूपपुर होते-होते जब तक हजारीबाग नहीं आया तब तक शरीर में अनेक प्रकार की परेशानियाँ चलती रहीं। हजारीबाग निकलने के बाद थोड़ी निरोगता आई। इतनी रुग्णता आ चुकी थी कि ईसरी के पहले जो स्टेशन, आपकी ट्रेन का नहीं, हमारा पैदल का तो मन में ये भाव तक आ गया कि भगवान, पहली बार हम शिखरजी दर्शन करने जा रहे हैं, सुना है वहाँ की वंदना बहुत बड़ी है और शरीर की अस्वस्थता बढ़ती जा रही है। कहीं ऐसा तो नहीं जैसा हम दूसरों के बारे में सुनते हैं कि बड़े पुण्यवान् जीवों को ही सम्मेद शिखर की यात्रा करने को मिलती है। कई लोग वहाँ तक जाते हैं और वापस तक लौटकर आ जाते हैं पर वंदना नहीं कर पाते, मधुबन तक जाकर आ जाते हैं। वहाँ तक वही व्यक्ति पहुँच पाते हैं जिनके लिए वंदना करने का पुण्य हो और जिनके भावों में इस प्रकार की उज्जवलता हो। मन में एक क्षण के लिए ये विचार भी आ गया कि भगवान् अपनी योग्यता इसमें भी कम हो रही है। साथ में ये विचार भी आ रहा कि कहीं न कहीं ये शरीर जरूर साथ नहीं दे रहा लेकिन आत्मा के भावों में कोई कमी नहीं है। उस समय पर बॉम्बे के एक श्रावक बंधु आए जो वहाँ कई दिनों से रह रहे थे। वे बोले कि हम तो १-२ दिन छोड़कर तीर्थ की वंदना के लिए चले जाते हैं और उस दिन हम उपवास रखते हैं।

हम सोचकर दंग रह गए कि एक श्रावक भी इतनी अच्छी साधना करता है। वो बॉम्बे में रहते हुए भी दो प्रतिमा के व्रतों का वो पालन कर रहे हैं। उनकी दोनों बेटियों ने आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत धारण कर **'प्रतिभा स्थली'** आचार्य महाराज ने जो संस्था बच्चियों को संस्कारित करने के लिए खोली है, उसमें वो टीचर के रूप में पढ़ाती हैं एवं उनका भाई दीक्षा लेने के लिए तैयार है।

पूरा परिवार धर्म के रास्ते पर चल रहा है हम छोटी-सी बात के लिए भी सोचते हैं।

ऐसे श्रावक की बात सुनकर साधु के मन में भी अच्छे भाव आ जाते हैं। यदि साधु के मन में गुण ग्रहण के भाव रहते हैं तो एक श्रावक भी साधु को सीख दे सकता है। सच्चा सुधी श्रावक साधु का स्थितिकरण कर सकता है। ऐसे श्रावकों से धर्म प्रभावना भी होती है और दूसरे लोग इस तरह से जुड़ने भी लगते हैं। सुधी श्रावक की बात सुनकर हमारे मन में भी ये भाव आया कि यदि शरीर (रुग्ण) साथ दे जाए तो पहली वंदना तो कम से कम उपवास के साथ हो जाए। अब ये भाव का ही परिणाम हुआ कि जैसे ईसरी तक पहुँचना हुआ, लगने लगा कि स्वास्थ्य ठीक हो रहा है। ईसरी से स्वास्थ्य ठीक होने लगा, वहाँ बाकी साधु-संत भी मिल गए थे। मधुबन में 'प्रमाणसागर महाराज' भी थे जिनके साथ पहली वंदना करने का मन बनाया था। मन में विचार चल रहा था कि पहली वंदना उपवास के साथ करना है। ये बात सामायिक के समय प्रमाणसागर जी महाराज से कह दी।

वे बोले, नहीं-नहीं ऐसा मत करना। चंदाप्रभु की टोंक पर चढ़ते हैं, उतरते हैं बहुत मेहनत हो जाती है, सबको पसीना आ जाता है और लौटकर आते-आते सब थक जाते हैं, बहुत मालिश करवानी पड़ती है, तब जाकर एक वंदना होती है। हमने सोचा- अरे इन्होंने भी डरा दिया, अब किसी से कुछ नहीं कहना। जब मन का तीव्र भाव होता है तो वो कहीं न कहीं अपने रास्ते ढूंढ लेता है। महाराज ने कहा, पहले एक वंदना करके देख लो, फिर जैसा तुम्हारा भाव बने वैसा कर लेना। हमने कहा ठीक है।

शिखरजी वंदना

२००८ की एक जनवरी और पहली वंदना जीवन की, वह भी इस मुनि दशा में। वंदना के लिए सब साथ में चलते रहे। लगभग १२ बजे तक वंदना मुनिसुव्रतनाथ टोंक तक हो गई। १-

२.३० बजे गणधर परमेष्ठी की टोंक तक सामायिक करने के बाद पहुँचे। मन में विचार आया १ घंटे में नीचे उतरेंगे, ३.३० बज जाएँगे, ४ बजे तक तो वैसे भी वहाँ अंधेरा होने लग जाता है। मन में संकल्प ले लिया कि उपवास के साथ ही आज की वंदना का निष्ठापन कर लेंगे। उतरने के बाद महाराज लोगों को बता दिया। यदि मन के तीव्र भाव हो तो अपने आप परिस्थितियाँ भी अनुकूल बनती चली जाती हैं। अच्छे भावों की पूर्ति भी पुण्य कर्म के उदय से होती है। बुरे भावों की पूर्ति तो हम कभी भी कर लेते हैं। बुरे कामों की पूर्ति के लिए पुण्यकर्म यदि बैलेंस में होगा तो वो भी पाप में बदल कर चला जाएगा। अच्छे कार्यों की पूर्ति के लिए बैलेंस भीतर से खंगालना पड़ेगा, देखना पड़ेगा है कि नहीं। पुण्य से ही अच्छे भावों की पूर्ति होगी। एक बार यदि अच्छे भाव की पूर्ति हो जाएगी तो अगली बार जब आप वैसे भाव करेंगे तो वह चीज बहुत सरल हो जाएगी। ये बहुत बड़ा **कर्म सिद्धांत है।** ''हमें अपने कर्मों का उपयोग, अपने भावों का पूरा उपयोग इस भाव के साथ करना चाहिए कि हम हमेशा अच्छे भावों के लिए पुण्य की परीक्षा करें, बुरे भावों की नहीं।'' भोग विलासिता के लिए पुण्य की परीक्षा नहीं करनी चाहिए। ये चीजें हमें मिलेंगी कि नहीं मिलेंगी। हमारा पुण्य होगा तो हमारे लिए ये भोग विलासिता की चीजें उपलब्ध होंगी कि नहीं, हमारा दिमाग इसी में लगा रहता है। हर आदमी अपने पुण्य और पाप को तोलेगा तो इसी में तोलता रहेगा। एक मकान और लेना चाहते हैं ये वाला तो छोटा है। इस समय पर यदि पुण्य काम में भी आएगा तो पूरा खाली होकर जाएगा। भीतर से भरकर नहीं जाएगा क्योंकि उस पुण्य का पूरा शोषण कर लिया आपने। करोड़ का मकान ले लिया, अपने अभिमान की पूर्ति करने में लगा दिया, पुण्य तो भीतर से खाली हो गया। हो सकता है कि उस मकान को मैनेज करने लायक भी आपके लिए पुण्य न रहे। कई लोग कहते हैं जब से मकान लिया तब से हमारी दुकान, व्यापार, बैलेंस सब कुछ बिगड़ सा गया है। क्यों बिगड़ा, इस भीतर की ओर दृष्टि कर नहीं पाते और हमारेज्ञान में वो चीज आ नहीं पाती है, वो अदृश्य रूप में हमारे साथ रहती है।

आप कहोगे महाराज ऐसा कौन सा **वास्तुदोष** है मकान जब से लिया तब से काम अच्छा नहीं चल रहा है। भैया, दोष वास्तु में नहीं रहते हैं, दोष अपनी आत्मवस्तु में रहते हैं। आत्म दोष को यदि हम पाप के रूप में देख लेते हैं, पाप का उदय है, असाता वेदनीय का उदय है तो बाहर कैसी भी अच्छी वास्तु हो, वह आपके लिए सुख पहुँचाने वाली नहीं है। एक गलती और हो जाती है, वास्तुकार को बुलाता है, हजारों रुपए वो वास्तुविद ले जाता है। बहुत सारा तोड़-फोड़ और

निर्माण बता देता है। अब दिमाग में बैठ गया, पैसा नहीं है तो उधार लेकर करना है। उसी में आप कर्ज में डूब सकते हो। ऐसे-ऐसे वास्तुकारों के माध्यम से लोगों ने अपने अच्छे भले मकान में रहते हुए उस मकान को पूरा का पूरा गिरा दिया और आज तक वो बना नहीं पाए उसे। ऐसे भी दोष हमसे तब हो जाते हैं जब भीतर से हमारी बुद्धि बाहरी सुलभताओं के लिए चलती है और केवल भोग विलास के लिए पाप-पुण्य का अनुमान लगाती है और सही अनुमान न लगने पर हम फेल हो जाते हैं और स्थिति बद से बदतर होती चली जाती है। वास्तु का जितना विधान जिन-मंदिरों के लिए रहता है, उतना गृहों के लिए नहीं रहता है। ये वर्तमान में हर आदमी को हमसे ज्यादा वास्तु का ज्ञान है। वह स्वयं वास्तुकार होते हुए भी दूसरे वास्तुकार को बुलाकर उसकी बात मान लेता है और तोड़-तोड़ करके वह कहीं न कहीं ये सम्मति बिठाता है कि इससे हमारा ये ठीक हो जाएगा। सब कुछ वास्तु से नहीं होता। घर हमेशा वास्तु के अनुसार नहीं रह सकते। जो जिन मंदिर, जिनगृह है उनके लिए वास्तु का विशेष विधान है। रोड के दोनों ओर घर वाले भी रहते हैं, दुकान वाले भी रहते हैं, उत्तर व दक्षिण दोनों दिशा में रह रहे हैं।

घर बनाने के लिए कुछ मुख्य चीजें होती हैं उसमें एक चीज जिसे हम **चौका** कहते हैं और दूसरी चीज है आपके टायलेट की जगह। अगर ये दो चीजें सही दिशा में सही जगह पर बनी है तो आपको और किसी चीज में माथा-पच्ची करने की जरूरत नहीं है। चौका अगर आग्नेय दिशा में बना है तो अच्छी बात है। नहीं बना है तो उस चौके में हवा, पानी व धूप/रोशनी की पूर्ण व्यवस्था होनी चाहिए। हवा एवं धूप अत्यंत आवश्यक है। सी.एफ.एल. की लाइट की उसमें जरूरत न रहे। अगर आप कुछ भी नहीं जानकर के चौका बना लोगे तो आपका बाद में सब कुछ वहीं से मैनेज होता रहेगा, आपके वास्तु में कहीं कुछ फर्क नहीं पड़ेगा, कुछ नुकसान नहीं होगा लेकिन आप चौके का ध्यान नहीं रखते, बाकी सब चीजों का ध्यान रखते हो। ऊपर भी पैक, आजू-बाजू से पैक, ऐसी जगह यदि किचन बना ली तो आपका वास्तु पूरा का पूरा बिगड़ गया। यदि चौके में अंधेरा रहा तो रात्रि भोजन का दोष आपको लगता रहेगा। आप दिन में भी भोजन करोगे तो रात्रि भोजन जैसा दोष कारक होगा। अंधेरे में या बल्ब की रोशनी में आप बना रहे हो तो वह दोषकारक रहेगा। आपको ये भी ध्यान में रखना है कि किसी भी वास्तुकार के चक्कर में हम इतने न पड़ जाएँ कि जो हमारे पास में है, हम वो भी खो दें। अपने पुण्य को बैलेंस में बनाकर के चलो। आप अपनी व्यवस्थाएँ खुद बिगाड़ लेते हैं। आप उन चीजों का जरूरत से ज्यादा उपयोग

करने लगे, जिन चीजों से पाप का बंध होता है, पुण्य का बंध होना नहीं है। कार, मोबाइल इनसे पाप का बंध होगा। जिस पुण्य के माध्यम से आपके पास धन, वैभव, पैसा था उसको आपने पाप में झोंक दिया। अब आपका पाप का बंध तो रहा पर पुण्य का अभाव हो गया।

अच्छे कार्यों में आप कभी भी अपने पुण्य बंध को बढ़ाने का मन नहीं बना पाते और पाप कर्मों में आपके अंदर आसक्ति ऐसी बनी रहती है कि उसके लिए बिना कुछ कहे ही आप तैयार रहते हो। पुण्य कार्यों के लिए जो व्यक्ति अपने पुण्य की परीक्षा करता है उसका पुण्य और बढ़ता चला जाता है। आगे का जीवन उसका और सहूलियत के साथ में गुजरता चला जाता है। ये भी बुद्धि का एक बहुत बड़ा भ्रम होता है कि हम उस बुद्धि के माध्यम से पुण्य को पाप में लगाते हैं, पर पुण्य को बढ़ाने की ओर हमारा ध्यान नहीं जाता। हम ये भी सोच लेते हैं कि घर में एक बेटा तो धर्म कर रहा है। बेटे का धर्म बेटे के काम में आएगा, तुम्हारा धर्म तुम्हारे काम में आएगा। बेटे का खाया पिताजी के पेट को तो नहीं भर देगा। बेटे का खाया, बेटे के पेट के लिए काम आएगा। हर आत्मा की व्यवस्था अलग-अलग है तो हर आत्मा को पुण्य कार्य के लिए अपने आप आगे आने का भाव करना चाहिए। घर में जो धर्म करेगा, उसका उसको मिलेगा। दूसरे को कुछ मिल सकता है, जो उसकी अनुमोदना करें। प्रतिशत दोनों का अलग-अलग रहेगा। सबके धर्म अपने-अपने भावों के अनुसार होते हैं। अपने भावों के अनुसार सबकी परिणति चलती है। हम मोह के कारण से इतना भूल जाते हैं कि अपने बच्चों को हम धर्म के काम में इसलिए नहीं लगाते कि वो अगर धर्म में लगेगा तो बिजनेस कौन करेगा। आपने उसको इतना बिजी बना दिया, इतना बिजनेस में लगा दिया कि वह अपने लिए कब पुण्य का संचय करेगा। उसके लिए पुण्यबंध के कारण सामने आ रहे हैं तब उसे सिवाय बिजनेस के कुछ नहीं मिलता है तब वह कब अपने लिए सोचेगा, कब परलोक के लिए पुण्य का बंध करेगा, अगर कभी सहसा उसके साथ कुछ घटित हो जाए तो उसका धर्म कुछ काम में आएँ। पर धर्म कब काम में आएगा जब उसने किया होगा।

आचार्य कहते हैं वो सबसे बड़ा शत्रु है जो धर्म कार्य से व्यक्ति को वंचित करता है। ऐसे माता-पिता भी शत्रु हैं जो उसे बिजनेस में व्यस्त करके धर्म नहीं करने देते, धर्म कार्य में नहीं लगाते हैं, संस्कारित नहीं करते हैं और उन्हें धर्म बुद्धि बनाने की प्रेरणा नहीं देते हैं। वो केवल मोह को बढ़ा रहे हैं और जिससे उसको मोक्ष मिलता उस मोक्षमार्ग से तो उसको बिल्कुल अनभिज्ञ बनाए हुए हैं।

कभी आप सुकौशल महाराज की सुकुमाल मुनि की घटना सुनते हो। उसी की माँ अपने ही बेटे से कहती है बेटा कभी भी दिगम्बर मुनि को मत देख लेना। माँ रोकती है अपने मोह के कारण से क्योंकि निमित्त ज्ञानी मुनि ने उसे बता दिया कि जिस दिन ये दिगम्बर मुनि के दर्शन कर लेगा उसी दिन ये वैराग्य को प्राप्त हो जाएगा। राजमहल में ही सब प्रकार की व्यवस्थाएँ हो जाती हैं और वह कभी भी मुनिराज को देख नहीं पाता लेकिन उसका तो तीव्र पुण्य था कि उस जन्म में ही उसको सवार्थसिद्धि विमानों में उत्पन्न होना है। उन पर कितनी भी पहरेदारियाँ लगाई जाए, उन्हें कभी न कभी ऐसे निमित्त मिल जाते हैं। अब इधर तीव्र पापी जीवों की कहानी देखो जिन्हें घर में माँ-पिता कह भी दे तो भी उनका जाने का मन नहीं होता कभी धर्म करने का भाव नहीं बनता है। ऐसा पुण्य अर्जित करना जो हमें आगामी काल में इन सब संसार की भाग-दौड़ से मुक्त करा दे। ये **पुण्य का प्रारब्ध** भी उन्हीं क्रियाओं से होता है जिन क्रियाओं में हमने कभी मन में सोचा हो कि कुछ समय के लिए ही सही हम मुनि बनने जैसी साधना करें। हम घर का मोह छोड़कर कुछ समय के लिए धर्म ध्यान करें। ये धर्म ध्यान से जो पुण्य का बंध होता है वो कभी न कभी अगले जन्म में, उसके अगले जन्म में कभी प्रेरणा देता है। अपने आप कोई छोटा सा निमित्त मिलता है उसी सुकौशल स्वामी की तरह।

एक बार जैसे ही मुनिराज को देखता है, उनके चरणों में पहुँच जाता है और उनसे निवेदन कर लेता है कि महाराज हमें तो आपके ही पास रहना है। महाराज के पास रहना है तो महाराज जैसे ही रहो। तैयार हो। जी, तैयार हूँ। उसी समय पर महाराज उसे दीक्षा दे देते हैं। सुकौशल जैसे राजकुमार एक क्षण में दीक्षा का भाव कर लेते हैं। ऐसा पुण्य भाव जो कहीं न कहीं पिछले जन्म में ऐसी साधना से अर्जित किए जाते हैं। इसलिए हमारे सामने जो कोई भी पुण्य कर्म अर्जित करने के कार्यक्रम आ रहे हैं, ये अपने जीवन की बहुत बड़ी उपलब्धि है क्योंकि इनसे आप किस प्रकार के भाव अर्जित कर लें, आपके आगामी समय के लिए मोक्ष का कारण बन जाए। एक बार थोड़ा सा कष्ट भी हो जाए पर हम धर्म करेंगे, ऐसा जो भाव करता है उसके आगामी कष्ट अपने आप दूर होते चले जाते हैं, वर्तमान के कष्ट भी दूर होते चले जाते हैं।

पिछले शिविर की एक घटना है। एक व्यक्ति को माइग्रेन की बीमारी थी। आधासीसी उसका सिर दुखता था, मद्रास, मुंबई सब जगह जा-जाकर उसने उसका इलाज करवाया पर दो दिन ठीक रहता और तीसरे दिन से उसे और अधिक दर्द रहता था। ऐसे व्यक्ति ने मन बना लिया कि मुझे

महाराज के सान्निध्य में १० दिन रहना है। एक दिन ही निकला, दूसरे दिन से उसके लिए सिरदर्द बंद हो गया और १० दिन वह रहा, कोई सिरदर्द नहीं। उसके बाद हम चार महीने गोटेगाँव रहे पर तब तक भी उसे कोई सिरदर्द नहीं हुआ। इतना लाभ केवल एक शिविर में अध्यात्म की साधना करने से मिल गया। बाद में फिर दर्द उठा तो हमने कहा तुम्हारी बैटरी इतनी ही चार्ज हुई होगी। ये भी कुछ ऐसी दवाइयाँ होती हैं जिन दवाइयों के माध्यम से बड़े-बड़े डॉक्टर भी आश्चर्य करते हैं क्योंकि भीतर आत्मा की व्यवस्था पुण्य कर्म और पाप कर्म के अनुसार चलती है। अगर आप अच्छे भावों के साथ में अच्छे पुण्य कर्म का बँध करते हों और यदि असाता वेदनीय कर्म आपके उदय में आ रहा है तो जितनी भी पुरानी असाता से उठने वाले दु:ख हैं वे सब दूर हो जाते हैं। शारीरिक स्वस्थता भी आती है, आत्मिक स्वस्थता भी आती है।

धर्म हमारे लिए हमेशा निर्विकल्प भावना उपलब्ध करता है। धर्म की भावना से हमारे मन का भ्रम दूर होता है और हमारे शरीर में जो निरंतर पूरन-गलन स्वभाव के माध्यम से जो परिणमन चल रहा है, उस परिणमन में भी एक अच्छापन आ जाता है। ४-६ दिन सर्विसिंग के बाद कार बहुत अच्छी, हल्की चलती है (स्मूथ), ऐसा ही अपने शरीर के साथ होता है। हम डॉक्टर की सलाह पर सब कुछ कर सकते हैं लेकिन अपने ही शरीर को हम धर्ममय बनाकर के संयम के साथ चलाने का मन नहीं करते, ये भी हमारे पाप कर्म का उदय है। सुबह कुछ लोग हमारे साथ जंगल जाते हैं, वो कहते हैं कि एक्सरसाइज करते हैं, घूमते हैं पर वजन कम नहीं हो रहा। अभी डेढ़ महीना ही हुआ है और ६ किलो एक का वेट कम हो गया। फ्री में इतनी बड़ी-बड़ी दवाइयाँ पास आने से मिलती रहती हैं। हम जो दवाई देते हैं उसमें आपका जीवन बिल्कुल बैलेंस्ड चलेगा। ये प्राकृतिक दवाइयाँ हैं और यदि इनमें साधु का सोर्स मिल जाए तो वो हमारे लिए बहुत बड़ी औषधि बन जाती है। हम उसे समझने का प्रयास करें। उसके लिए हम अपने भाव करने का प्रयास करें कि इन भावों से हमें बड़े-बड़े लाभ हैं और जो भाव हमें दुनिया में दिखाई दे रहे हैं उनसे हमें घाटा ही घाटा है।

ये जो हम आपसे बात कर रहे हैं बिना मोबाइल के, इससे न आपको कोई बैलेंस कटता है न कोई टेंशन होती है और आपको लगता है कि आज आपने भीतर से कुछ अच्छा पाया। ये अच्छा पाने का भाव ही है कि आप अध्यात्म को पहचान रहे हो। भ्रमों को दूर करने का प्रयास करो। बाहरी और भीतरी भ्रम बहुत रहते हैं जब तक शुक्ल ध्यान नहीं हो जाता, भ्रमों में ही आत्मा

चलती रहती है। केवलज्ञान होने पर ही भ्रम दूर होते हैं। बहुत से मानसिक भ्रम सम्यग्ज्ञान के साथ भी चलते हैं और मिथ्याज्ञान के साथ भी चलते हैं। मिथ्याज्ञान के साथ उठने वाले भ्रमों की तादाद बहुत है उनसे बचा पाना बहुत मुश्किल है। वो भ्रम अगर छूट जाते हैं तो फिर सम्यग्ज्ञान के साथ उत्पन्न होने वाले भ्रम अपने आप छूटते चले जाते हैं क्योंकि एक साधक अपनी प्रोसेस (विधि) में ढल जाता है। उस प्रोसेस से उसे अपने आप अंधकार से प्रकाश की ओर जाना होता है। अंधकार यानि मन में अंधकार जिसके माध्यम से आत्मा और परमात्मा दिखाई नहीं देता। जिस समय पर वह आत्मा दिखाई दे जाता है, अपनी आत्मा में केवलज्ञान हो जाता है। वह सबसे बड़ा प्रकाश, सबसे बड़ी ज्योति कही गई है। ऐसी बड़ी ज्योति जिसमें इतना प्रकाश ही प्रकाश है कि दुनिया के सब पदार्थ उसमें आकर के अपने आप झलकने लग जाते हैं। ऐसा आत्म प्रकाश जब उत्पन्न होता है तो सब प्रकार के अंधकारों का विनाश होता है। अत: जब तक हमारा मन आत्मा में नहीं लगता, हम अंधकार में हैं। आत्मा में भी लगने के बाद में जब तक मन स्वयं परमात्म स्वरूप नहीं बन जाता तब तक भी अंधकार में है लेकिन वो सब अलग प्रकार के अंधकार है। सबकी केटेगरी अलग-अलग है। क्रम-क्रम से उन अंधकारों को तोड़ो क्रम-क्रम से उन भ्रमों से दूर हो। आपके लिए अपने आत्मज्ञान की प्राप्ति हो तब जो प्रकाश उत्पन्न होगा, यही प्रकाश आपके जीवन में सबसे काम की चीजें हैं, बाकी तो सब छूट जाना है।



श्लोक-४६

अचेतनमिदं दृश्यमदृश्यं चेतनं ततः।
क्व रुष्यामि क्व तुष्यामि मध्यस्थोऽहं भवाम्यतः।।४६।।

काया अचेतन–निकेतन दृश्यमान, दुर्गन्ध–धाम पर है क्षण नश्यमान।
तो राग तोष किसमें मम हो महात्मा! मध्यस्थ हूँ इसलिये जब चेतनात्मा।।४६।।

आचार्य कहते हैं अगर हमें अपने मन को राग-द्वेष व मोह से ऊपर उबारना है तो उस मन में ऐसी भावना करो कि हमारा मन प्रकाशित हो जाए। मन के ऊपर अंधकार उसी तरह से छाया होता है जैसे हम कभी-कभी देखते हैं एकदम से घटाएँ आ जाती हैं, बादल सूर्य के सामने आ जाते हैं और तीव्र प्रकाश भी यदि होता है तो वहाँ भी अंधकार सा दिखने लगता है। इसी तरह से मन के ऊपर मोह का प्रभाव इस रूप में रहता है कि वह हमें अपने ही ज्ञान से परिचित नहीं होने देता है। मोह को तिमिर या अंधकार कहा है। उस मोहरूपी अंधकार को दूर करने का प्रयास एक निश्चित समय पर नहीं होता, हमेशा करना पड़ता है। यहाँ तक जो साधक है उनके लिए भी आचार्य कहते हैं कि कभी-कभी साधकों के लिए भी मोह का प्रभाव देखा जाता है तो उस मोह के प्रभाव को कैसे दूर करते हैं। इसके लिए आचार्य पूज्यपाद महाराज ने ये भावना दी कि हमें जो कुछ भी दिखाई दे रहा है वह अचेतन दिखाई दे रहा है। जो चेतन है वो हमारे लिए अदृश्य है। आपके अंदर जब भी कभी विकल्प उठेंगे या राग-द्वेष उत्पन्न होंगे, अपने लिए नहीं होंगे, दूसरे के कारण से होंगे, दूसरे के लिए होंगे। आपके अंदर जब भी कभी मोह का प्रभाव उत्पन्न होगा वह परनिमित्त को लेकर के होगा। जब भी कभी राग-द्वेष की परिकल्पना उत्पन्न होगी, अपनी आत्मा के प्रति नहीं होगी, अपनी आत्मा के मोह के कारण से नहीं होगी लेकिन पर पदार्थों के प्रति मोह उत्पन्न होने से राग-द्वेष उत्पन्न हो जाते हैं। उन पर पदार्थों में जब हम मोह के प्रभाव से तुरंत अपने

आपको नहीं बचा पाते तो वो मोह रूपी बादल आत्मा तक गहराई से छाने लग जाते हैं। राग व द्वेष की परिणति भी बढ़ने लग जाती है इसलिए आत्मा में विक्षिप्तता का क्रम और ज्यादा बढ़ जाता है। हम जैसे ही अपने आपको देखें कि हमारी आत्मा के अंदर कहीं ना कहीं मोह का प्रभाव है तो उस मोह के प्रभाव को दूर करने के लिए, स्वस्थ होने के लिए ये बहुत बड़ी भावना है। हमें जो कुछ भी बाहर दिखाई दे रहा है वह सब अचेतन है। जो चेतन है वो हमें दिखाई नहीं दे रहा। आप जैसे ही अपने आपको महसूस करेंगे कि मैं चेतन हूँ तब आपको बाहरी सभी पदार्थ अचेतन दिखाई देने लगेंगे। उस अचेतन की अनुभूति के साथ ही चेतना की अनुभूति जुड़ी रहती है। जैसे ही चेतना की अनुभूति हमें होती है- मैं जो हूँ वह दिख नहीं रहा और जो बाहर नहीं दिखाई दे रहा वह मैं नहीं हूँ। जैसे ही हमें ये अनुभूति होती है तब अपने आप राग-द्वेष छूटने लग जाते हैं। किससे राग करें। जो राग व द्वेष का कारण है वह अचेतन है और अचेतन से चेतन राग करें। ये बात चेतन आत्मा को पसंद नहीं आना चाहिए। अचेतन से राग करने का नाम ही अपनी अज्ञानता को बढ़ाना है।

इसलिए आचार्य कहते हैं मध्यस्थ हो जाओ अर्थात् न राग करो न द्वेष करो,बीच में स्थित हो जाओ। न इस पार रहो ना उस पार रहो, बीच में आ जाओ। जैसे हम आज यहाँ आए हैं, ये सेंटर पाइंट है। जहाँ पहले थे वो सेंटर पाइंट बन रहा है ये पुराना मध्य बिंदु है। पुराने जिनालय यहाँ आस-पास बने हुए हैं। चाहे महावीर भगवान् का हो या पार्श्वनाथ भगवान् का या नेमिनाथ भगवान् का हो। जहाँ पर भगवान् पास में होते हैं वहाँ पर श्रावक लोग भी आसपास रहने लग जाते हैं। उन श्रावकों के मन में अपने उन पुराने भगवान् या पुराने मंदिर के प्रति जो भावना रहती है, उसके प्रति जो लगाव रहता है, जुड़ाव रहता है वही उनके लिए एक मध्यस्थ भावना का कारण बन जाता है। मध्यस्थ जैसे ही हम हो जाएँगे। हमारे राग व द्वेष सब छूटने लग जाएँगे और जैसे ही आत्मा में मध्यस्थ का ये भाव आता है, उसी समय पर आत्मा में जो मोह का भ्रम पड़ रहा है वह छूट जाता है। आप केवल ये भावना करो मैं चेतन हूँ। जैसे ही आपके अंदर ये चेतना की भावना आएगी, आपको लगेगा मैं जिसको देख रहा हूँ वह अचेतन है और मुझ अचेतन को देख रहा है। चेतन चेतना को देख नहीं पा रहा है। चेतना को चेतन का ज्ञान नहीं हो रहा। चेतना का चेतना से परिचय नहीं हो रहा यही सबसे बड़ी अज्ञानता है। इस चेतना को अपनी चेतना का जैसे ही परिचय होगा, दूसरे की चेतना का भी यही परिचय होने लग जाता है और जब तक अपने बारे

में सही ज्ञान नहीं होता तब तक हमें दूसरे के बारे में भी भ्रम उत्पन्न होता रहता है और अपने बारे में भी भ्रम बना रहता है। आपने एक राजा का नाम सुना होगा 'कुणिक राजा'। वह राजा श्रेणिक का पुत्र था। बड़ी अच्छी बात उसके साथ घटित हुई। देवलोक से क्या-क्या हो जाता है और अपने पुरुषार्थ से क्या-क्या होता है। ये हमें कुछ घटनाओं के माध्यम से अच्छे ढंग से समझ में आने लगता है। बालपन में ही कुणिक की माँ ने उसे घर से निकाल दिया। बाद में उसे पता पड़ा कि मैं इनका पुत्र हूँ तो उसने क्रोध में आकर के अपने पिता को जेल में डाल दिया। जैसे कंस ने किया था ऐसे ही कुणिक ने किया। रोजाना उन्हें पीड़ाएँ भी देता, इतना उसे पिता के प्रति क्रोध था। वह राजा श्रेणिक कहाँ भगवान् महावीर के समवशरण में जाने वाला श्रेष्ठी श्रावक और कहाँ जीवन के अंत में जेल में पड़ा हुआ पीड़ाएँ भुगत रहा है। भगवान् के समवसरण में क्षायिक सम्यक् दर्शन प्राप्त करने के बाद, भगवान् का उपदेश सुनने के बाद भी उसे ये पीड़ाएँ क्यों भोगने को मिल रही है। उसने अपने पूर्व जन्म में उसी जीवन में पूर्व अवस्था में कुछ ऐसा कृत्य किया जिस कृत्य के कारण से उसका इस रूप में परिणमन होना भी नियत हो गया। क्या किया उसने? उसने नरक आयु का बंध कर लिया था, भगवान् महावीर के दर्शन करने से पहले, समवसरण में जाने से पहले ही। जब उसने भगवान् महावीर का समवसरण देखा, दर्शन किए उसके अंदर क्षायिक सम्यकदर्शन तो उत्पन्न हुआ परंतु नरक आयु का बंध छूट नहीं सकता। ऐसी परिस्थिति बनने लगी। वह समवसरण में भगवान् से पूछता है कि एक बेटा अभयकुमार, एक वारिषेण ऐसे कई बेटों ने वैराग्य धारण कर लिया। वे भगवान् महावीर के समवसरण में गए और उन्हीं से व्रत लेकर भगवान् के साथ ही महाव्रती बन गए। राजा श्रेणिक पूछता है कि भगवान् आपके द्वारा बताए हुए मोक्ष मार्ग पर हमें पूरा श्रद्धान है, आपके द्वारा दी गई तत्त्वदेशना हमें पूरे ज्ञान में है और हम जीव-अजीव आदि सातों तत्त्वों का पूर्ण श्रद्धान रखते हैं लेकिन रोजाना आपका उपदेश सुनने के बाद भी हमारे मन में आगे बढ़ने के भाव क्यों नहीं होते तो भगवान् कहते हैं राजा श्रेणिक तुम्हें लग रहा है कि तुम्हारे कई बेटे, कई भाई मोक्ष मार्ग पर आगे बढ़ गए हैं लेकिन तुम्हारे भाव इसलिए नहीं हो रहे क्योंकि तुम्हें नरक आयु का बंध हो चुका है। जिन्हें नरक आयु का बंध हो जाता है वे कभी भी संयम पथ की राह नहीं चल सकते, थोड़े से भी व्रतों को धारण नहीं कर सकते। उनके मन में सब कुछ आएगा पर संयम का भाव नहीं आएगा। कर्म हमें कभी-कभी दबाते हैं और जब हम कर्म को दबाने लग जाते हैं तो कर्म ही हमको कभी उठाने भी लग जाते हैं। कभी-कभी कर्म हमारी आत्मा

श्लोक–४७

त्यागादाने बहिर्मूढः करोत्यध्यात्ममात्मवित्।
नान्तर्बहिरुपादानं न त्यागो निष्ठितात्मनः।।४७।।

मूढ़ात्म केवल पटादिक छोड़ता है, ज्ञानी कषाय घट को झट तोड़ता है।
सर्वज्ञ तो न तजता, गहता किसी को, तो लाख बार मम वंदन हो उसी को।।४७।।

आचार्य कहते है हमें त्याग और ग्रहण इन दोनों ही क्रियाओं को करना तो चाहिये। लेकिन कहाँ करना चाहिये, किसके लिये करना चाहियें, इसका भी हमें ज्ञान होना चाहिये। जब तक हमें ज्ञान नहीं होता, तब तक हमारे लिये त्याग और ग्रहण की क्रियाएं भी बाहर से होती है और बाहर ही छूट जाती है। जब ज्ञान की प्राप्ति हो जाती है तो वही आत्मा **त्याग और ग्रहण** जो कुछ भी करता है वह अपनी आत्मा के लिये करता है। जब भी कभी त्याग की बात आती है, हम हमेशा बाहर की वस्तुओं के ही त्याग को देखते हैं और ग्रहण की बात पर हम केवल बाहर की वस्तुओं को ही ग्रहण करने का भाव करते हैं। धीरे-धीरे जब हम अध्यात्म की ओर बढने लग जाते हैं तो एक स्थिति ऐसी आती है जब हम त्याग और ग्रहण जो बाहर से किया है वह हमारे अंतरंग के लिये ही होता है।

आपने अगर बाहर से कोई त्याग किया है तो भीतर से भी कुछ त्याग हो जाना चाहिये। केवल अगर बाहर से त्याग और भीतर का त्याग नहीं होता तो वो त्याग हमें कुछ फल देने वाला नहीं होता। इसी तरह से हमने बाहर से कुछ ग्रहण किया है तो भीतर से भी हमारे अंदर कुछ ग्रहण करने का भाव आ जाना चाहिये। भीतर से भी क्या ग्रहण करना और भीतर से क्या छोडना। बाहर से क्या ग्रहण करना और बाहर से क्या छोड़ना, इन दोनो बातों का ज्ञान सम्यग्दृष्टि जीव को रहता है। अगर आपने कोई भी चीज बाहर से छोड़ी है तो आपके ज्ञान में रहती है कि हमने आज ये त्याग किया और अगर कोई चीज बाहर से ग्रहण की तो वह भी आपके ध्यान में रहती आज हमने इस चीज को ग्रहण कर लिया। जो भी चीज आपने छोड़ी, वह चीज तो छूटी लेकिन

उसके पीछे कुछ और छूटना चाहिये था, वहां तक हमारी दृष्टि नहीं पहुंचती। कई बार छूटने के लिये बाहर का बड़ी आसानी से छूट जाता है और भीतर का नहीं छूट पाता और कई बार भीतर का नहीं छूटने के कारण से और बाहर का नहीं छूट पाता है। बड़ी पेचीदा चीजें है लेकिन सबसे तार्किक है अगर बाहर का आसानी से छूट रहा है तो भीतर भी आसानी से छूट गया, नहीं कहा जा सकता और बाहर का नहीं छूट रहा है इसका मतलब है, भीतर भी नहीं छूट रहा है निश्चित रूप से कहा जा सकता लेकिन एक छोटे से उदाहरण से आप बहुत अच्छे से समझ लोगें।

आचार्य कहते है अगर हमें जौ- धान्य की प्राप्ति हुई हैं, **'जौ'** जिससे चावल निकलता है। बाहर जौं के ऊपर एक छिलका लगा हुआ रहता है और छिलके को हटाने के बाद भी उस जौं के भीतर एक लालामी लगी हुई रहती है, उसको भी हटाया जाता है। कभी भी अगर हमें उस चावल के ऊपर लगी हुई उस लालामी को हटाना है तो यह बात निश्चित है कि ऊपर का छिलका तो पहले हटाना ही पडेगा। ऊपर के छिलके को हटाये बिना कभी भी भीतर उस चावल के ऊपर जो लालामी लगी है, वह हटाई नही जा सकती है। अगर आप कोई भी कूटने का, पीटने का कार्य करते है तो उसमें भी पहले हुए जौ के ऊपर के छिलके हटाये जायें उसके बाद मे उस चावल की लालामी को हटाया जा सकता है। अब इस उदाहरण से आपको यह भी समझना है कि अगर आपके ऊपर के जौ के छिलके को हटा दिया तो जरूरी नहीं कि आपके चावल जब बने तो उसमें वो लालामी हट गई हो लेकिन भीतर से वह जब भी हटेंगी तो ऊपर की जौ का छिलका हटने के साथ ही हटेगी। ऐसा ही बाहरी त्याग और अंतरंग के त्याग के साथ मे होता है। बाहरी ग्रहण और अंतरंग ग्रहण के साथ मे होता है। बाहरी वस्तु का त्याग, मान लो, गृहस्थ लोग है, रोजाना कुछ न कुछ रसी का त्याग करते रहते है। कुछ लोग इसलिए करते है कि हमारे लिए कुछ बाहर का त्याग हो जाये। किसी- किसी के उद्देश्य मे यह भी हो सकता है कि उस बाहर के त्याग के साथ मे भीतर का भी त्याग हो जाये।

अगर वह उद्देश्य रहता है तो वह त्याग आपकी आत्मा के साथ जुड गया। वह त्याग आपके आत्मबुद्धिपूर्वक आत्मा की उन्नति के लिये कारण बन गया। अक्सर ऐसा होता है बाहरी चीजो का त्याग आदमी बहुत जल्दी कर देता है और वह देखा -सीखी भी कर देता है लेकिन भीतरी त्याग की जहां बात आती है, वहॉ पर कुछ के लिये उस प्रकार का त्याग नहीं हो पाता। आपने अगर मान लो रसी का त्याग किया, श्रावकों के लिये एक विधान बनाया गया है। रविवार को नमक, सोमवार को हरी, मंगलवार को मीठा, बुधवार को घी, बृहस्पतिवार को दूध और शुक्रवार को दही,

शनिवार को तेल नहीं खाना। ये सात प्रकार के रसी इसलिये रखी गई है कि श्रावक के लिये कुछ त्याग का संस्कार बने रहे और उस त्याग के साथ में उसके अंतरंग में भी कुछ त्याग की प्रवृत्ति आ जायें।

कई बार बाहर का त्याग तो हो जाता है लेकिन भीतर का त्याग नहीं हो पाता। उस वस्तु से राग का त्याग करना उस वस्तु के प्रति कषाय या मूर्छा भाव का त्याग करना भीतर का त्याग है और उस वस्तु का त्याग कर देना, यह बाहरी त्याग है। त्याग जिस तरीके से बाहरी और भीतरी होता है उसी तरह से ग्रहण भी बाहरी और भीतरी होता है। आपने एक चीज का त्याग किया और दूसरी चीज का ग्रहण किया तो उससे आपके मन के अंदर राग की तो कमी होना चाहिए। एक चीज का त्याग करने के बाद में दूसरी चीज मे डबलराग नहीं करना। आपने दूध का तो त्याग कर दिया लेकिन दूध के त्याग के साथ दही इतना खा लिया कि आपके लिए वह दही पचने मे नहीं आया। एक चीज के राग के साथ में दूसरी चीज के राग की वृद्धि नहीं होनी चाहिए। हमने जिसके प्रति राग का, मूर्च्छा का, कषाय भाव का त्याग किया तो उस त्याग को सम्यग्ज्ञानी का त्याग कहा जाता है।

आचार्य कहते है, जब तक हमारे अंदर अंर्तआत्मा में स्थिति नहीं बनती या जब तक हम अपने अंर्तआत्मा मे स्थित नहीं होते हैं तब तक हमे बाहरी त्याग और भीतरी त्याग भी करने पड़ते है लेकिन ये दोनों प्रकार के त्याग अध्यात्म की दृष्टि से बाहरी त्याग या मूढात्मा के त्याग कहलाते हैं। अंतरंगआत्मा का त्याग तो अध्यात्म के साथ माने आत्मा के साथ होता है। आत्मा के साथ कषाय का त्याग करना, राग का त्याग करना। उस राग के त्याग करने के लिए हमें वस्तु का त्याग करना पड़ता है। बिना वस्तु के त्याग किए हुए भीतरी राग का भी त्याग होता रहे आप केवल इतना ही समझ लें। श्लोक में लिखा है बाहरी त्याग तो मूढ़ आत्मा भी कर लेती है अंतरंग का त्याग करो तो कुछ ज्ञानी की बात है। **ज्ञानी** सभी बनना चाहते हैं लेकिन अगर आपके अंदर सही ज्ञान होगा तो आप यह जानेंगे कि कभी भी अंतरंग का त्याग होगा वह बाहरी त्याग के साथ ही होगा। बाहरी वस्तुओं के त्याग के बिना अंतरंग वस्तुओं का, अंतरंग कषाय का त्याग होता नहीं है जैसे बाहरी छिलके का त्याग किए बिना अंदर की लालिमा कभी दूर हटती नहीं है। यह भी याद रखना कि बाहरी त्याग होने के बाद में यह जरूरी नहीं है कि बाद में भीतरी का भी त्याग हो जाये जैसे बाहरी छिलका हटने के बाद में जरूरी नहीं है कि उस चावल के ऊपर से लालिमा हट जाये। अगर आपने उस प्रोसेज को वहीं छोड दिया तो वह लालिमा हटेगी नहीं। लालिमा हटाने के

लिए आपको वह छिलका हटाने के बाद में जो प्रोसेज करनी पडती है, वह तो करनी ही पड़ेगी। इसी तरह से अंतरंग त्याग और बहिरंग त्याग का सम्बन्ध होता है, जो लोग इस कार्यकारणी की व्यवस्था को नहीं जानते, जो लोग अंतरंग और बहिरंग त्याग के सम्बन्ध को नहीं जानते, वे लोग कभी-कभी बाहरी त्याग करने वालों के लिये कही हँसी भी उड़ा देते हैं। बाहरी त्याग करने वालों के लिए बहिरात्मा कहकर के व्यंग्य भी कस देते हैं लेकिन आप किसी के भी अंतरंग परिणामों को जान नहीं सकते हैं। अंतरंग में उस आत्मा के अंदर कषाय की कमी हुई, कषाय का अभाव हुआ, उसने कषाय का त्याग किया, उसकी विशुद्धि बढ़ी ये केवल उसके ही अपने अनुभव से गोचर रहता है। यह केवल बाहरी व्यक्ति देख नहीं सकता, बाहरी व्यक्ति को केवल त्याग ही दिखाई देगा, जो वह कर रहा है। वह जो त्याग होता है उस त्याग के लिए ज्यादा सोचना नहीं पड़ता है ज्ञानी के अंदर जिस समय पर भाव आ जाता है वह उसी समय पर त्याग की परिणति को अपना लेता है, मृत्यु के बारे में ज्यादा नहीं सोचना पड़ता, वैराग्य आता है तो उसके लिये ज्यादा नहीं सोचना पड़ता और हमें कोई त्याग करना है तो उसके लिए ज्यादा सोचना नही पड़ता। जो लोग मृत्यु, त्याग और वैराग्य इनके बारे में ज्यादा सोचते हैं उन्हें कभी भी ये तीनों चीजें मिलती ही नहीं हैं। मृत्यु तो आपके सोचे बिना ही आ जायेगी। त्याग के बारे मे सोचते रहो आज नहीं करेंगे, कल करेंगे आप सोचते रहोगे तो कभी नहीं कर पाओगे। जैसे ही कभी-कभी वैराग्य के क्षण आ जाते हैं, जब हम केवल विचार करके ही छोड़ करके रह जाते है और उस समय के बाद हमारे भाव गिर जाते है। ये चीजें तीनों सड़नली होती है। **मृत्यु, त्याग और वैराग्य अचानक घटित होता है।** ज्यादा सोचने वाले कुछ नहीं कर पाते। जिनके मन मे विचार आता है और उस विचार के लिए वह तुरंत क्रियात्मक कर लेते हैं तो आप देखोगे वो कार्य हो जाता है। आपके मन में दान का भाव आया, अगर आपने ज्यादा विचार किया कि तीन हजार रुपये निकालेंगे इसको यदि बच्चे की फीस में लगा देंगे तो अच्छा रहेगा। आपके मन मे विचार आया कि हमें एक हजार रुपये देना था, दो हजार देने थे, दस हजार रुपये देने थे, आप तुरंत करोगे तो तुरंत हो जायेगा और अगर आपने थोडा सा भी ज्यादा सोचने का किया तो आपके मन का भाव कहीं न कहीं उलझ जायेगा। आप सोचोगे अरे यहां पर देने से क्या होगा, अपने मोबाईल को भी अभी चेंज करना है, नया मॉडल आया है उसमे लगा देंगे, अपने पास बहुत दिनों तक रहेगा। जैसे ही मन के अंदर यह भाव उठते हैं, त्याग के, संयम के, वैराग्य के अगर यह उसी समय पर घटित हो जाते हैं तब तो सब कुछ हो जाता है और अगर एक दूसरे का मुंह देखने लग जाते है तो कुछ नहीं हो पाता।

एक पत्नी अपने पति से कहती है तुम्हारी कितनी आसक्ति है तुम कम से कम मेरे भाई को तो देखो। कल से जब से महाराज के प्रवचन सुनकर आया है, तब से उसका घर में मन नहीं लग रहा है। उसने मोबाईल करके बताया कि मैं दूसरे दिन जाकर के महाराज के पास से दीक्षा ले लूंगा, सब छोड दूंगा। देखो, तुम्हारा साला कल दीक्षा लेने वाला है, कल मुनि महाराज के प्रवचन सुनकर आया तब से उसका मन ऐसा उद्वेलित हो गया कि विचार कर रहा है और कह रहा है कि मैं तो अब सब घरबार छोड़ दूँगा। पत्नी को छोड़ना पडे तो छोड़ दूंगा, बच्चो को भी छोड़ना पडे तो छोड़ दूंगा। उसका विचार बढता ही जा रहा है, उसके मन का भाव पक्का हो गया है और उधर से फोन आया है कि कहीं ऐसा न हो कि कल वो जाकर के दीक्षा ले लें। तुम हो, तुम्हें थोडा सा भी धर्म करने का भाव नहीं आता। उसका पति उससे कहता है बावली धर्म करने के लिये, त्याग करने के लिये इतना सोचना नहीं पड़ता। वो पत्नी कहती है, तुम तो कम से कम थोडा सा सोच लो तो ही बहुत बडी बात है। जो सोच रहा है, उसकी कम से कम प्रशंसा तो कर लो। तुम्हारे लिये इतना भी संभव नहीं है कि तुम कम से कम एक दिन के लिये, दो दिन के लिये या दस दिन के लिये ही घर छोड़ सको। वो तो हमेंशा के लिये घर छोड़ने जा रहा है। सामने वाले को बात लग गई। कभी-कभी बात ऐसी लग जाती है कि वे उसी समय पर मन में कुछ विचार करता हैं। तुम क्या समझती हो? 'क्या समझेगें हम, कभी मंदिर तक तो जाते नहीं हो, धर्म करते नहीं, जिनकी बात हम बता रहे, उनकी आप हँसी उड़ा रहे हैं।' वैराग्य में त्याग में समय नहीं लगता, सोचने वाला कभी कुछ नहीं करता। 'अरे तुम अपनी स्थिति तो देखो, कितनी भोग विलास में डूबे रहते हो, एक दिन भी तुम्हारे लिये ब्रह्मचर्य व्रत का पालन नहीं होता। एक दिन भी तुम्हारे लिये रात्रि का भोजन का त्याग नहीं हो पाता। कम से कम देखो तुम्हारा साला कितना अच्छा है।' पति कहता है- वो कब लेगा दीक्षा? 'वो कल आयेगी, १८ तारीख तब लेगा दीक्षा।' वह साला कहता है 'कल १८ आयेगी तब कल की कल देखी जायेगी, मैं आज ही जाता हूं और वे उसी समय पर बिना कुछ किये हुये, कोई तैयारी किये बिना घर से निकल जाता है।' पत्नी कहती रहती है, क्या हो गया, क्या हो गया, कहाँ जा रहे हो? 'बस हो गया, तू अब देख क्या हो गया है और वे उसी समय से घर से निकलता है। १७ तारीख की शाम को ही मुनि महाराज के पास में पहुंच जाता है। अपने मन में विचार किया और विचार करने के बाद में वह उसके लिये तुरंत अपने मन में भाव बनाता है।' अगर हमारे मन के भाव उसी समय पर बन जाते हैं तो कुछ काम हो जाता है, अन्यथा वह बात बहुत लंबी खिंच जाती है। जब आदमी को अपने व्यापार सीमित करना

पड़ता है, वह उसी समय अगर विचार कर लेता है, हाथ खड़ा कर देता है तो उसके लिये यह भाव बन जाता है कि हॉ भैया १० दिन तक अपना व्यापार भी बंद कर लेंगे। घर पर गृहमंत्री से पूछा, आपस में चर्चा की। वित्त मंत्री से पूछा क्या तुम पागल हो गये हो, क्यों बिना वजह की बातों में आ जाते हो, महाराज का काम तो बोलने का रहता है, अपना काम केवल सुनने का रहता है, इससे ज्यादा कुछ करने का नहीं रहता है। अगर इतना ज्ञान कोई दूसरा दे देगा तो आप का भाव वहीं के वहीं छूट जायेगा। आप कभी कुछ कर ही नहीं पाओंगे।

कई लोगों के मन में ऐसा भाव आता है कि हम कुछ करें लेकिन जैसे ही वे किसी दूसरे से सलाह मशवरा करते हैं, पत्नी, माँ, बहन, भाई से जैसे ही वह पूछने जाते हैं, चार लोगों से चार तरह की बातें सुनने में आ जाती हैं, उस आदमी का दिमाग वहीं के वहीं ठंडा पड़ जाता है। यह मत समझना यह चतुर्थकाल की बातें बता रहा हूँ। इस पंचम काल की इसी मंदसौर की बात बता रहा हूं। कई लोग मेरे पास में आकर के कहते हैं, महाराज यहॉ रहता हूं तब तक भाव बनते हैं लेकिन घर में जाता हूँ तो जो दो कदम हम आगे बढ़ते हैं, वह चार कदम पीछे खीच लेती है। 'घर काराग्रह वनिता बेड़ी परिजन जन रखवाले' इसलिये कहा जाता है, घर आदमी के लिये काराग्रह है, वनिता माने स्त्री उसके लिये बेड़ी है, परिजन जन रख वाले और जितने भी रिश्तेदार है परिजन है यह सब हमारी रखवाली कर रहे हैं, घर से बाहर नहीं चले जाना, घर के बाहर कदम नहीं रख लेना और वे हमारे इस तरीके से रखवाली कर रहे हैं। घर में मर जाना लेकिन मरने से पहले घर मत छोड़ना। घर में ही तेरे लिये कितने ही रोग हो जाये, सड़-सड़ के मर जाना, कोई बात नहीं, तेरी रक्षा हम करेंगे लेकिन घर को छोड़कर के वीर मरण मत कर लेना, ये हमारी रखवाली करेंगे। मोह के कारण से मर जाना, दम तोड देना, मूर्च्छा के कारण से नर्क में चले जाना लेकिन हमें छोड़ करके तब तक नहीं जाना जब तक हम तुम्हारे साथ हैं। जब आदमी के अंदर आत्मज्ञान उत्पन्न हो जाता है तो वह सोचता है। अपने घर को काराग्रह, अपनी स्त्री को अपने पैरो में पड़ी हुई बेड़ी देखता है और अपने जितने भी रिश्तेदार या बंधु रक्षक हैं। कहीं भी जाओ, रात के १० बजे तक तो लौटकर घर ही आना है। उस बंदीग्रह पर रहते हुये भी आदमी बड़ा खुश रहता है, उसे पता नहीं पडता कि हम बंधे हुये हैं कि हम मुक्त हैं। कोई दूर बैठा हुआ उसे कोई गुरु बुलाता है कि यह बंधन तोड़ दे, मुक्ति की राह पर चल। एक बार गुरु की बात मानकर, थोडा कुछ साहस कर, तेरे अंदर ऐसा साहस उत्पन्न होगा, जिसके माध्यम से अपने आगामी बंधनों को तू भी तोड़ सकेगा। एक बार अगर ये आत्मज्ञान प्राप्त हो जाता है, यही सम्यग्ज्ञान कहलाता

है। जब चक्रवर्ती को भी ऐसा आत्मज्ञान होता है तो उसी समय सब कुछ छोड़ने का भाव कर लेता है कि ये केवल हमारे उस शरीर की रखवाली करेंगे। शरीर में जो आत्मा है, वह चाहे कितनी भवों की कलुषता से कितने ही कर्मों का बंधन कर लें, उसकी रक्षा करने वाला कौन। परिग्रह इक्ट्ठा करके दो, ये सब की भावना है लेकिन उस परिग्रह से जो बंध होगा, उस धन के कमाने से जो पाप अर्जित होगा, उसके लिये बंटवारा करने को कोई भी तैयार नहीं होगा। हम जो दुकान खोलते हैं सुबह से शाम तक व्यापार करते हैं और उससे अगर जो पाप कर्म का बंध होता है, उसका बंटवारा करने को तैयार हो कि नहीं। बहुआरंभ और बहुपरिग्रह मूर्च्छा सब नरक आयु के बंध के कारण हैं।

अगर हम नर्क में चले गये तो हमारे साथ चलोगें या नहीं चलोगें ? तुम्हारे भाई से भी पूछ लेना कि अगर इस व्यापार के माध्यम से नरक आयु का बंध हमको होगा तो इसके हिस्सेदार तुम भी रहोगे या नहीं रहोगे। हर व्यक्ति कहेगा भैया नरक में तो तुम्ही जाना, अपना काम तो केवल इतना ही है कि आप हमारे लिये व्यवस्था करके दो। हमने आपको अपना मालिक बनाया है, आपको अपना परमेश्वर माना है। अब तुम्हारा काम हेाता है कि हमारे लिये अपने आप ऐसी वस्तुऐं लाकर के दो, इतना धन वैभव लाकर के दो, जिसके माध्यम से हमें लगे वास्तव में मेरा पति परमेश्वर है, दरिद्र नहीं है। अगर वे भाव उसके अंदर है तो ये मान के चलना कि आपको यदि नरक आयु बंध हो जायेगा तो कोई भी साथ में जाने वाला नहीं है। तिर्यंच गति में जाओगें तो कोई जाने वाला नहीं है, यह सब रखवालिया तब तक है जब तक आपकी जेब गर्म है। जिस दिन आपकी जेब ठंडी पड़ जायेगी, सब रखवाले, बंधु, परिजन, सब आपके लिये धीरे-धीरे किनारा करते चले जायेंगे। रोजाना हमसे जो बहुत अच्छे से बोलता था, आज हमसे जय जिनेन्द्र क्यों नहीं कर रहा। उसे मालूम पड गया कि सेठजी का दीवाला निकलने वाला है। यह परिस्थितियाँ जब हमारे सामने आ जाती है, तब आदमी को वास्तविकता का ज्ञान होता है। आचार्य कहते हैं उस वास्तविकता का ज्ञान अपने अंदर पहले से कर लो, अपने अंदर पहले से ही ऐसा भाव संजो लो, घर में से कोई हमें धकेल कर के निकाले और हम घर में से निकले उससे पहले समझदार आदमी स्वयं अपने घर में से चुपचाप निकल जाये। गुरु की बात मानकर चुपचाप चले आओगे तो अच्छी बात होगी अगर कहीं ढकेल करके निकाले गये तो ....हम भी नहीं रखेंगे ध्यान रखना।

चुपचाप अपने मन का भाव बना लिया तो तुम्हारे पत्नी, तुम्हारे बेटे यदि पीछे से आ जायेगें तो हम उन्हें समझा लेंगें। केवल दस दिन की बात है, बस आज आंख झपकी कल दस दिन हो

जायेगे, पता ही नहीं पडेगा वो समझ जायेगें। अगर आप उनसे कुछ ज्यादा ही पूछते रहोगे तो वे तुम्हें नरक में धकेल देंगे, तुम्हें पता भी नहीं पडेगा। सब कुछ आलम्बन मिलने के बाद भी तुम निरादर होकर के इन गतियों में चले जाओगें। गुरु तुम्हारे लिये बहुत ही भीतर की बात सोचता है। गुरु तुम्हारे ऊपर करुणा दृष्टि रखता है और गुरु तुम्हारे लिये ही इन बंधनो से मुक्ति की राह दिखाता है। जब हमें इस प्रकार की राह नहीं मिलती तो हमारे अंदर यह भाव आना चाहिये कि उस राह की हमारे लिये कमी क्यों हो रही है, उस राह पर हम क्यों नहीं चल सकते है, जिस राह पर हमारा पड़ोसी एवं हमारे रिश्तेदार भी चल रहे हैं।

उस राह पर हम भी चल सकते हैं, आप आकर के थोडी हिम्मत कर लेना जैसी उस 'साले' ने कर ली। केवल तुम गुरु को मना लो, दूसरे किसी को मनाने कि जरूरत ही नहीं पड़ेगी और तुम्हारी सब बातें बनती चली जाएगी। पर्व पर्यूषण की घड़ियां निकल गई तो हाथ मलने के अलावा कुछ हाथ में नहीं आता।

जो हम बाहर से देखते हैं, वह केवल बाहर का बाहर ही रह जाता है भीतर तो तभी प्रविष्ठ करता है, जब हम उसका आस्वादन लेते हैं और उसमें हम उतरते हैं। आप लोग मेला देखने तो जाते हो। जब छोटे थे और आप मेले के अंदर जाते थे तब आपके पिताजी कहते थे- बेटा देख, बहुत बड़ा मेला है। उस मेले में सब कुछ है, यहां खिलौने हैं, टॉफी मिलती है, झूले टंगे हुये है, यहां पर सर्कस चल रहा है, तू सब देखना, जो तुझे इच्छा हो बताना। लेकिन एक बात याद रखना, मेरी उंगली पकड़े रखना। अगर उस बालक ने अपने पिता की बात मान ली और वो बालक अपने पिता की उंगली पकड़े रखेगा तो मेले का भी आनंद आयेगा और कभी खो जाने का भी दुख नहीं होगा।

जैसे ही उसकी उंगली छूटी, मेला तो वहीं रहेगा, वो रोने, चिल्लाने लगेगा, पापा कहां गये, मम्मी कहां गई, तुरंत मंच पर स्लीप पहुंचेगी, ऐनाउन्स होगा कि किसी का बेटा हाफ पेन्ट, हॉफ शर्ट पहने है, जिस व्यक्ति का खो गया है, वह अपने बेटे को लेने आ जाये। सब कुछ वैसा होते हुये भी, बाजार लगा होते हुये भी वह एक चीज अगर हाथ से छूट जाती है तो मेले का आनंद चला जाता है। माता पिता का भी चला जायेगा, बेटे का भी चला जायेगा। दुनिया का बाजार इसी तरीके का है, हर बाजार तभी तक आनंद देगा, जब तक आप अपनी उंगली को पकड़ा कर के रखोगें, जो तुम्हारे सहीं ढंग से लालन पालन कर सकते हो, ख्याल रख सकते हो।

जो तुम्हारा इस जन्म में भी और अगले जन्म में भी तुम्हारा ख्याल रख सकें, ऐसे लोगों को

अपनी उंगली पकड़ाओ। बडे-बडे आचार्यों ने इसी ढंग से अपनी उंगली अपने से बडों को पकडाई। भगवान् उंगली नहीं पकड़ेंगे, अपने को ही भगवान् की उंगली पकड़ना है। अपने को देव, शास्त्र और गुरु की उंगली पकड़ना और उनकी उंगली पकड़कर के चलोगें तो इस संसार में भटकोगें नहीं। मेला देखने का भी आनंद आयेगा और कुछ खोने का गम भी नहीं होगा। बाकी सब पकड़े हो, बस देव, शास्त्र और गुरु की उंगली तुम्हें पकड़ने में नहीं आ रही। आचार्य मानंतुग महाराज भगवान् की भक्ति करते हुये कहते हैं अपने आपको समर्पित कर देना। **समर्पित** का मतलब ही यह होता है कि अपनी उंगली भगवान् को पकड़ा देना और भगवान् से कह देना कि भगवान् मैंने तो आप को अपनी उंगली पकड़ा दी, अब आप जानो मेरी नैया डूबे या तैरें। मेरे सब काम के जिम्मेदार आप हो। मेरी नैया के खेवनहार आप हो, ये समर्पण का भाव जब आ जाता है तो उसकी नैया कभी भी डूबती नहीं। भगवान् की स्तुति करते हुये भक्तामर के पहले ही काव्य में आचार्य मानंतुगाचार्य ने कहा कि संसार के सागर में ये सब जीव पतित हो रहे हैं, डूब रहे हैं, गिर रहे हैं, भगवान् इनको बचाओ और इनको बचाने के लिये केवल कोई एक सहारा है, आलम्बन है, वह केवल आप है, आपके चरण है। आपके चरणों को जो व्यक्ति पकड़ लेगा, वह इस संसार सागर में डूब नहीं पायेगा। भगवान् के चरण हमेंशा से हैं, सबके लिये हैं चतुर्थ काल में भगवान् हो चुके, तीसरे काल के अंत में जो हो चुके और उसके बाद में करोड़ों अंसख्यात वर्षों का काल निकल गया, भगवान् ने कितनों को आलम्बन दिया, कितने उनकी स्तुति करते तिर गये और कितने उनके चरणों का आलम्बन लेकर के उनकी उंगली पकड़ करके इस संसार सागर में डूबने से बच गये और वे मोक्षधाम को प्राप्त हो गये और अपने आत्म स्वरूप को उपलब्ध हो गये। ये भगवान् ने उपकार तब भी किया था और आज भी कर रहे हैं। इस पंचम काल में आज भी उन तीर्थंकरों का हम पर उपकार है, देव, शास्त्र, गुरु का उपकार है अगर हम समझें तो वह हमारे लिए भगवान् हैं और अगर हम उस उपकार को नहीं समझें तो कुछ नहीं है। चौबीस तीर्थंकर के बारे में पढ़ लिया और याद रख लिया। ज्यादा कहा तो भगवान् के मंदिर में जाकर के थोड़ा सा दर्शन कर लिया और चावल चढ़ा आयें, इसके अलावा हमें कुछ मतलब ही नहीं है। भगवान् की भक्ति की शुरूआत कहाँ से होती है। जब हमारे अंदर यह बैठ जाये कि भगवान् इस संसार में पतित जीवों के लिये आलम्बन स्वरूप केवल आप ही है तो आप क्या करोगे।

भगवान् नहीं कहेंगें बेटा ऊपर आ, उठ वहां से, मुझे अपनी उंगली पकड़ा। अपने को स्वयं ज्ञान करना कि हम भगवान् को कैसे पा सकते हैं। अपने अंदर स्वयं जब ज्ञान आयेगा तो हम

खुद भगवान् को अपनी उंगली पकड़ायेंगे। जब भगवान् नहीं हो साक्षात् तो भी कोई बात नहीं, हम शास्त्र के अनुसार अपनी उंगली को देखेंगे, जब हमारे सामने साक्षात् गुरु हो तो हम केवल गुरु को ही अपनी उंगली पकड़ा देंगे तो वो भी हमें भगवान् के पास पहुंचा देंगे। ये आलम्बन है, गुरु के पास पहुंचने का बाद में वह कहेगा, हमको भी तुम्हें छोड़ना है, यह ध्यान रखना। तुम अपना घर छोड़कर के आये, हमको ग्रहण कर लिया। ये तो सब बाहर की बातें है, भीतर से जो करना वो तुम्हें करना है। बाहर से घर छोड़कर के आना सबके लिये एक जैसा है लेकिन भीतर से क्या छोड़ना? तुम भीतर से अपने अंदर वह राग छोडना जिस राग को तुमने बाहर से छोडा है। जो समर्पण करते हैं, वो जिंदगी भर के लिये करते हैं। आपका समर्पण केवल दस दिन होगा तो आपको महसूस होगा कि दस दिन में भी हम कितना भीतर से अपने अंदर बदलाव ला सकते हैं। सुउद्देश्य से काम करोगें तो आपके अंदर बदलाव आयेगा।

आप को लगेगा कि हम जिन व्यर्थ की चीजों के साथ जीते हैं, उनके बिना भी हमारा जीवन चलता है, उसके बिना भी हम जीना सीख लेते हैं तो आपको सही आलम्बन लेने मे आनंद आयेगा। आप को सही आलम्बन लेने का महत्त्व मालूम पड़ेगा।

भगवान् ऋषभदेव के लिये भी आचार्य मानतुंग महाराज कहते हैं मुझे आलम्बन दो, उनके चरणों को अपने हाथों से पकड़ लेते हैं कि भगवान् हम इस संसार सागर में डूब न जायें। ऐसा भाव जब आयेगा, तभी आपके लिये कुछ मुक्ति की बात होगी, नहीं तो वो मुक्तिवधू भी आप पर रिझने वाली नहीं है ध्यान रखना। अगर हम इस प्रकार का भाव करेंगे तो नियम से हमारे लिये ऐसी स्थिति बनेगी, जब हम भीतर से इतने संतुष्ट होंगे। हमें बाहर से कुछ छोड़ने को रहेगा ही नहीं, बाहर से कुछ ग्रहण करने को रहेगा ही नहीं। एक स्थिति ऐसी आती है अब क्या ग्रहण करना क्या छोड़ना। जिस स्थिति में मुनिमहाराज जीते हैं उस स्थिति में उन्हें बाहर से न कुछ ग्रहण करना है न बाहर से कुछ छोड़ना है, अंतरंग का ही ग्रहण करना और अंतरंग का ही छोड़ना। नये नये विशुद्धि के भावों का ग्रहण और पुराने- पुराने संक्लेश भाव का विर्सजन करते जाना, राग भाव का त्याग करते जाना और एक स्थिति उसी प्रक्रिया के दौरान ऐसी आ जाती है, जब वहीं आत्मा अंतरात्मा से परमात्मा बन जाती है तों फिर उस परमात्मा के लिये न तो त्याग करने को बचता है न ग्रहण करने को बचता है। जो है सो है। आत्मा का स्वभाव जैसा ही उसको अनुभव में आता है। जो अपना है अपने पास रहेगा और जो अपना नहीं था जो अपने लिये बिल्कुल नया प्रतिभासित होगा यह सर्वज्ञ दशा भी उस परमात्मा की स्थिति कहलाती है।

जो मेरा है वह मुझसे छूटा नहीं,
जो छूटा है वो मेरा नहीं था,
मैं बंधन से मुक्ति को अब पा रहा हूँ।

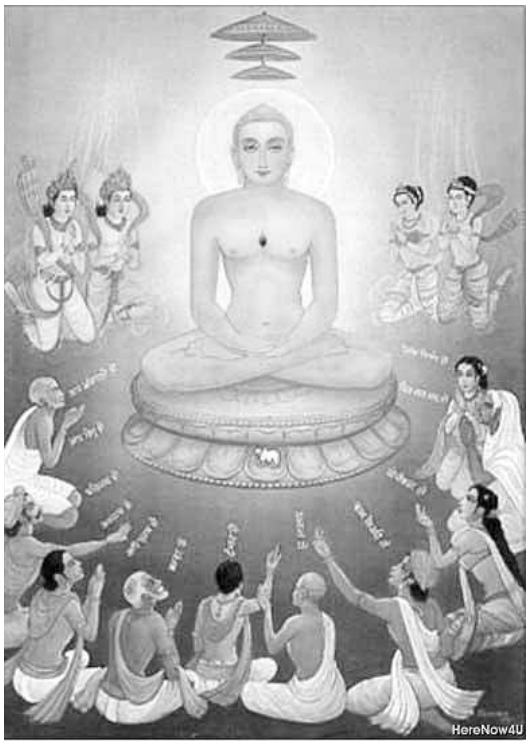
मैं वो हूँ नहीं जो तुम्हें दिख रहा हूँ
मैं हूँ जो नजर से परे ही रहा हूँ,
न जाने कहाँ से यहाँ आ गया हूँ,

जो चेतन हूँ तन में समाया गया हूँ,
जो छूटा है मुझसे वो मेरा नहीं था,
मैं बंधन से मुक्ति को अब पा रहा हूँ,

मैं वो हूँ नहीं जो तुम्हें दिख रहा हूँ,
मैं हूँ जो नजर से परे ही रहा हूँ,
सभी की तरह थी मेरी जो भी हसरत,

नहीं मुझको उनकी रही अब जरूरत,
मुझे जब से मेरा पता मिल गया है,
मैं तब से ही अपने में सुख पा रहा हूँ,

मैं वो हूँ नहीं जो तुम्हें दिख रहा हूँ,
मैं हूँ जो नजर से परे ही रहा हूँ।



श्लोक–४८

युञ्जीत मनसाऽऽत्मानं वाक्कायाभ्यां वियोजयेत्।
मनसा व्यवहारं तु त्यजेद्वाक्काययोजितम्।।४८।।

शुद्धात्म के शयन पे मन को सुलाओ, औ काय से वचन से निज को छुड़ाओ।
रे! सर्व बाह्य व्यवहार तथा भुलाओ, अध्यात्म रूप सर में निज को डुबाओ।।४८।।

मातृ शक्ति, ज्ञातृ शक्ति और चारित्र शक्ति में सामंजस्य

आचार्य कहते हैं मन से आत्मा को जोड़ें। मन से वह व्यवहार छोड़ दें जो वचन और काय से ही युक्त होकर किया है। आत्मा को जानने वाला आत्मसुख पाने के लिये मन को आत्मा के साथ एकाग्र करता है।

जब हम बाहर किसी संयोजना की बात करते हैं या बाहर किसी शक्ति के रूप में किसी को देखते हैं तो बाहरी शक्ति एक सबसे बड़ी शक्ति होती है जिसे कहते हैं **मातृ शक्ति** और जो अंतरंग आत्मा की शक्ति की बात करते हैं तो सबसे बड़ी शक्ति होती है **ज्ञातृ शक्ति।** दो शक्तियाँ, एक से हमारा बाहरी जीवन सुनियोजित ढंग से चलता है और दूसरे से हमारा आत्मिक जीवन। मातृ शक्ति में वो पूरी की पूरी नारी शक्ति आ जाती है जिसके माध्यम से एक जन जीवन में अपने आप चेतना मुखरित हो जाती है। कोई भी इस देश का पर्व हो, उत्सव हो, धर्म का कार्य हो, प्रभावना का कार्य हो सबसे पहले नारी शक्ति ही आपको दिखाई देती है और उस नारी शक्ति के माध्यम से ही देखा जाए यह आज का धर्म चल रहा है। नारी का सम्मान आज बहुत जरूरी है क्योंकि उसका सम्मान ही उसके लिए शक्ति प्रदान करने वाला है। नारी में आज अपने मन के अंदर ऐसा भाव उत्पन्न कर रखा है जो भाव पुरातन जीवन में देखते हैं तब दिखाई नहीं देता था। हम भगवान् महावीर के समय की बात करें तब भी उनकी माँ एवं माँ की बहनें जिन्हें हम कहते

हैं राजा चेटक की पुत्रियाँ, ७ बहनें थीं जिनमें से एक पुत्री महावीर भगवान् की माँ त्रिशला थी। सब बहनों का अपने-अपने कर्म के उदय से, पुण्य के उदय से अलग-अलग राज्यों में अलग-अलग प्रकार से रहना हो रहा है। एक उस बहन की बात करना उचित समझता हूँ जो अभी कुंवारी है। वह सुंदर है, रूपवती है और उसके रूप को देखकर के एक विद्याधर उसे उठा ले जाता है। रास्ते में जाते हुए विद्याधर ने उसे एक जंगल में छोड़ दिया क्योंकि उस विद्याधर की पत्नी उसका पीछा कर रही थी। कन्या जंगल में अकेली रह गई। १-२ दिन बाद उसे भीलों का सरदार मिल गया। उसने उस रूपवती कन्या को देखकर सोचा कि इतनी सौंदर्यवान्-रूपवती कन्या इस जंगल में कहाँ से आ गई। उसने उस कन्या को शहर में एक सेठ व्यक्ति के यहाँ पहुँचा दिया। उसने सोचा कि इसका हम क्या करेंगे तो सेठ ने उसे वेश्या के यहाँ पहुँचा दिया। वेश्या ने उसके साथ बहुत जबरदस्ती की। तब वह कन्या सोचती है कि ये मेरे कौन से पाप कर्म का उदय है जिसके कारण से मुझे इस तरह दर-दर की ठोकरें खानी पड़ रही हैं। मैं राजा की पुत्री होने के बाद भी जंगल में पहुँची, सेठ के पास पहुँची। वहाँ से सेठ ने मुझे वेश्या के हवाले कर दिया। अब मेरा क्या होगा?

दुनिया में दो चीजें आज की स्त्री के सामने हैं और आज की नारी को उनमें से एक ही चीज दिखाई देती है जिसका नाम है **कॅरियर।** आज की कन्या सिर्फ अपना कॅरियर बनाना चाहती है। आप जानते हो कॅरियर क्या होता है? शायद वो भी नहीं जानती होंगी पर बोलने में यही आता है, बिना अर्थ के भी हम बोला करते हैं। पुराने लोगों ने सुना होगा कि साइकिल के पीछे कॅरियर लगता है। कॅरियर का मतलब होता है ले जाने वाला। जो भी हमारे साथ में, सपोर्टिंग चीज हो, जिस पर हम कुछ भार ढोकर के ले जा सके उसको कहते हैं कॅरियर। आपने देखा, दोनों की स्पेलिंग भी सेम ही मिलेगी। कॅरियर बनाना और उसके माध्यम से अपने जीवन को आगे ले जाना, ये भाव उसमें छिपा हो सकता है। साइकिल का कॅरियर अब हर स्त्री का एक कॅरियर बन गया है। बीई, एमबीए कर रही हैं और आगे चलकर बहुत अच्छी जॉब करना है, खूब पैसा कमाना है, आलीशान बंगले में सुखपूर्वक जीवन जीना है। इस कॅरियर को बनाने के लिए आज हर बेटी/बहन के अंदर होड़ लगी हुई है। हम सोचते हैं पहले के लोगों को अपने कॅरियर की चिंता नहीं रहती थी, वो पढ़ने-लिखते नहीं थे। सबसे बड़ा कॅरियर है कि हम अपना जीवन सही ढंग से जियें। उसके लिए कॅरियर के साथ कैरेक्टर भी होना चाहिए। उस कैरेक्टर के माध्यम से उनका कॅरियर

बन जाता था, इतना अच्छे ढंग से उनका जीवन चलता था कि कोई भी परेशानी आ जाए पर उस शक्ति से सब काम बन जाते थे, उस शक्ति को कहते हैं **'द पॉवर ऑफ कैरेक्टर'।** कॅरियर की पॉवर से बढ़कर एक कैरेक्टर पॉवर होती है। आज तो आईटी कंपनी के कारण बहुत सारे जॉब हैं, सब कुछ है। कॅरियर बनने के जितने भी साधन हो सकते हैं वे सब अपने सामने हैं लेकिन कैरेक्टर बनाने के साधन छूटते जा रहे हैं। ऐसा नहीं है कि आज हमारी बेटियाँ या बहनें कैरेक्टरलेस हो गई हैं लेकिन उसमें कमी जरूर आ रही है। उस कैरेक्टर के साथ में अपना कॅरियर बनाने की भावना रखें तो आज भी हमारा जीवन बहुत अच्छा चल सकता है लेकिन ये शिक्षा मिलती नहीं हैं और न इसकी आवश्यकता महसूस होती है। आज किसी से ऐसी बातें करो तो उनके मन में विचार आता है कि ये तो धर्म की बातें करते हैं। इन्हें आज के जमाने का कोई नॉलेज तो है नहीं कि आज की नारी कहाँ अंतरिक्ष में पहुँच रही है, क्रिकेट, फुटबॉल सब खेल में आगे है। अगर उसके साथ उसका कैरेक्टर जुड़ा है तो आज वह शक्ति के रूप में है। यदि कैरेक्टर छूट गया तो नारी शक्ति की जगह अभिशाप बन जाती है, शक्तिहीन हो जाती है। इस समय मातृ शक्ति सिर्फ अर्थहीन नारा रह जाएगा। उस शक्ति के लिए, उसकी सुरक्षा के लिए हमें अपने बेटियों को, बहनों को, बेटों को पाठ जरूर पढ़ाना चाहिए जिसे कहते हैं चरित्र की शक्ति।



श्लोक–४९

जगद्देहात्मदृष्टीनां विश्वास्यं रम्यमेव च।
स्वात्मन्येवात्मदृष्टीनां क्व विश्वासः क्व वा रतिः।।४९।।

जो आत्म–बोध परि–शून्य शरीरधारी, भाता उसे स्वतन ही कल सौख्यकारी।
जो स्वीय बोध पय को नित पी रहा हो, संसार क्षार जल में रुचि क्यों उसे हो?।।४९।।

चारित्र शक्ति का प्रभाव

देह में आत्मदृष्टि रखने वालों को यह संसार विश्वास योग्य एवं मनोरंजक ही लगता है लेकिन स्व पर, अपनी आत्मा, अपने चरित्र पर जो दृष्टि रखता है उसे भरोसा नहीं होता। इस जग में सब कुछ रंगमंच के समान लगता है।

भगवान् की माँ त्रिशला का जगत में इतना नाम है और उन्हीं की बहन ऐसे दर-दर की ठोकरें खा रही हैं। अपने रूप व सौंदर्य के साथ में उसके ऐसे अपने पूर्व कर्म का उदय कि उसका अपने राजघराने से हटना हो गया और वह एक वेश्या के पास पहुँच गई लेकिन उसके पास एक शक्ति है 'पॉवर ऑफ कैरेक्टर'। वह शक्ति उसने छोड़ी नहीं, उसे विश्वास है हम सब कुछ छोड़ देंगे पर अपनी शक्ति को नहीं छोड़ेंगे जिसका नाम है चरित्र की शक्ति। वेश्या के द्वारा अनेक प्रकार के प्रलोभनों को सामने रखने के बाद भी उसके मन में कोई विकार नहीं आया। वह वेश्या के पैर पड़ रही है कि मुझे यहाँ से जाने दो पर वेश्या ने उसे लाइन में खड़ा कर दिया। कौशाम्बी नगरी में जब वृषभसेन सेठ वहाँ से गुजरता है। कई बार कन्याओं को देखकर उनके कुल की अपने आप पहचान हो जाती है। अगर वह कन्या रूपवती है, सज्जन स्वभाव वाली है, उसकी आँखें हमेशा परपुरुष को देखकर नीचे हो जाती हैं तब सज्जन पुरुष देख कर समझ लेता है कि ये उच्च कुल की कन्या है। वृषभसेन सेठ वहाँ से

निकल रहा था तो देखकर कहता है ये कन्या यहाँ पर कहाँ से, कैसे आ गई। सेठ वेश्या से बात करता है, कन्या के बारे में पूछता है तो वह बताती है कि ये कल ही यहाँ आई है। कन्या से बात करता है तो कन्या ने मौन ले रखा है वह केवल णमो अरिहंताणं बोल रही है। उसे लगता है कि मेरा जीवन अब खतरे में है और मेरे जीवन में यदि चरित्र चला गया तो सब कुछ चला जाएगा। वह केवल अरिहंत भगवान् का स्मरण कर रही है। उसने मन में ठान लिया कि जब तक हम सुरक्षित स्थान पर नहीं पहुँच जाएँ तब तक हम पंच परमेष्ठी के अलावा किसी का स्मरण नहीं करेंगे। सेठ समझ गया कि इसके मुँह से णमो अरिहंताणं निकल रहा है यह किसी अच्छे धार्मिक कुल की कन्या है। उसने कहा- बहन तू मेरे साथ चल। उसने वेश्या को जो देना था, देकर के कन्या को अपने घर पर ले आया। अपने घर पर बहन/बेटी की तरह सुरक्षा करने लगा, उसका पालन करने लगा। जब कन्या को लगा कि मेरे चारित्र के कारण मेरी यहाँ सुरक्षा हो रही है तो वो उस सेठ से सहज भाव से बातचीत करने लगी।

उसके चारित्र के कारण उसकी सुरक्षा हो गई और चारित्र की शिक्षा उसे उस कुल से मिली जहाँ सबसे पहले प्रधानता दी जाती है कैरेक्टर बनाने की। कॅरियर बनाना बुरी बात नहीं है पर कॅरियर बनाते वक्त कैरेक्टर कुछ लूज हो रहा हो तो उस कॅरियर को छोड़ने की शक्ति भी आज की उस बेटी के अंदर होना चाहिए। जॉब के दरमियान भी हमारे कैरेक्टर पर कोई लांछन न लगे, ये शिक्षा अगर बेटी के अंदर रहेगी तो हम समझते हैं, ये सबसे बड़ा रक्षाबंधन होगा। सबसे बड़ा रक्षक इस दुनिया में है तो वह अपना धर्म और धर्म पिता परमात्मा है। अगर हम धर्म की, धर्मात्मा की, धर्मगुरु की शरण में हैं और कोई ऐसा संकल्प सूत्र मिल जाए जिसके माध्यम से पूरा जीवन सुरक्षित बन जाए। जिससे हमारी बेटियों के मन में ये भाव आए कि अपने साथ होने वाले दुर्व्यवहार को हम सहन नहीं करेंगे। नारी शक्ति का सम्मान हमेशा से होता आया है लेकिन इस नारी की स्वतंत्रता के साथ में उसके सम्मान में कमी आ रही है। आप देखोगे कि दुनिया के हर बाजार के अंदर आज स्त्री बैठी हुई मिलेगी। कोई भी मॉल/दुकान/ प्लेटफार्म/ कंपनी हो सब जगह पर सबसे पहले स्त्री को बैठाया जाता है। स्त्री बहुत पढ़-लिखकर वहाँ पहुँची, ये आपका भ्रम हो सकता है। उस स्त्री के पीछे एक चीज जुड़ी रहती है उसका सौंदर्य। उसका रूप पुरुष की सबसे बड़ी कमजोरी

होती है। आज हर दुकान पर/कंपनी में वह चाहता है कि सबसे पहले लड़कियों की भर्ती हो क्योंकि पुरुष उससे आकर्षित होता है। पुरुष को अपनी संपत्ति का मान होता है इसलिए वह हमेशा से धन के पीछे पड़ा होता है। स्त्री की सबसे बड़ी संपत्ति होती है उसकी रूप-संपदा। आज का पुरुष उस सौंदर्य के पीछे पड़ा हुआ है। ये बहाने बन गए हैं, ये रास्ते निकाले गए हैं कि हम उसके रूप-सौंदर्य को कैसे सबसे ज्यादा अपने पास रख सकें व उसका उपभोग कर सकें। इसलिए ये नारा दिया गया कि नारी की स्वतंत्रता होनी चाहिए और नारी ये सुनकर उत्तेजित हो जाती है। वह भोली है समझती नहीं कि ये हमारे लिए उचित है या अनुचित। वह इतनी एक्साइट हो जाती है कि उसके लिए वो अपने माता-पिता- भाई यहाँ तक कि गुरुओं से भी बुरा मान लेती है। अगर उसकी स्वतंत्रता में एक बाधा आने लग जाती है तो उसे गुरु भी शत्रु के रूप में दिखने लग जाते हैं। बुरा नहीं मानना, पर ये प्रादुर्भाव मैं देख रहा हूँ। भले ही उसका प्रतिशत कम नजर आ रहा है। हमें कई लोग अपनी पीड़ा आकर के बताते हैं।

आज नारी की स्वतंत्रता की जितनी बात की जा रही है उतनी बात उसके सम्मान की नहीं की जा रही है। स्वतंत्रता कहते ही वह पढ़ने के लिए आगे बढ़ने के लिए तैयार हो जाती है। बाद में उसका शोषण करने के लिए बड़ी-बड़ी कंपनी के बड़े-बड़े लोग तैयार रहते हैं। पुरुष का ये स्वभाव है कि वह स्त्री के रूप-सौंदर्य पर मोहित हुए बिना रह नहीं सकता। इस शाश्वत नियम को आप कभी भूल नहीं सकते। पुरुष ने यह तरीका निकाला कि हर दुकान पर उसको बैठा लो, हर वस्तु को बेचने में इसको लगा लो। इसके अंदर ये भावना भरो कि ये नारी की स्वतंत्रता के विज्ञापन में इतनी आगे निकल जाए कि इसके अंदर ये भावना आ जाए कि मुझे भी मिस इंडिया बनना है, मिस यूनिवर्स बनना है।

ये क्यों दौड़ चल रही है, जो लोग वहाँ पहुँचते हैं उनके साथ में क्या हो चुका होता है, वे अपनी पीड़ा बताते नहीं हैं या तब बताते हैं जब कुछ अनुचित दिखाई देने लग जाता है।

श्लोक–५०

आत्मज्ञानात्परं कार्यं न बुद्धौ धारयेच्चिरम्।
कुर्यादर्थवशात्किञ्चिद्वाक्कायाभ्यामतत्परः।।५०।।

शुद्धात्म ध्यान तज अन्तर आत्म सारे, ना अन्य भाव मन में चिरकाल धारें।
या अन्य भाव यदि हैं करते प्रवीण, वाक्काय से कुछ करें मनसे कभी न।।५०।।

आत्म शक्ति व चारित्र शक्ति सर्वोपरि

कहा है जिन–जिन कारणों से मन में विकल्पों की परंपरा चलती है, वह सब कार्य आत्मज्ञान से भिन्न है। तीन लोक में जितने दु:ख है, पाप हैं और अशुचि वस्तुयें हैं, उन सबको मिलाकर विधाता ने ये नश्वर शरीर बनाया है। विडम्बना ये है कि आज शरीर ही सर्वोपरि है, आत्मा को तो सब भूल गये हैं। आत्म शक्ति और चारित्र की शक्ति की कोई बात होती ही नहीं।

महावीर भगवान् के समय की स्त्री जो **सती चंदना** है जिसके चारित्र की इतनी शक्ति है जिसके कारण वह सेठ के घर पर पहुँच गई। पहले की नारी अगर कभी परिस्थिति में फँस जाती थी, णमो अरिहंताणं बोलती थी, उसके सामने देवता खड़ा हो जाता था और उसके शील की रक्षा कर लेता था। चाहे वह सेठ के रूप में हो या किसी और व्यक्ति के रूप में हो। नारी के शील पर कोई आँख नहीं उठा पाता था। जहाँ उसकी रक्षा हो रही है लेकिन आज की नारी की रक्षा क्यों नहीं हो पा रही है। जिसे वो अपना फ्रेंड बनाती है वही फ्रेंड उसे बाद में धोखा दे देता है। ऐसी कितनी ही बेटियाँ हैं, बहनें हैं जो जिनसे संबंध बनाती हैं उनके द्वारा ही शोषित होती हैं। विवाह होने की बात भी बाद में होती है। एक-दो साल पहले निर्भया कांड बहुत चर्चा में था, उसी समय पर एक और न्यूज छपी थी नए साल की पार्टी में एक दोस्त ने अपनी गर्लफ्रेंड को एवं एक दोस्त को घर बुलाया और अच्छे से खिलाया-पिलाया। बाद में दोनों लड़कों ने मिलकर उस लड़की के साथ

गलत व्यवहार किया। ये छोटी सी खबर ज्यादा लोगों का ध्यान नहीं खींच पाई। आज की बहन-बेटियों को ये खबर कोई मायने नहीं रखती, उनके लिए ये एक एक्सीडेंट के समान है, उसे भूल जाने को कहा जाता है। ऐसी गोलियाँ आती हैं तुरंत खिला दो, गर्भ ठहरेगा नहीं। बहुत से बेटियाँ-बहनें इस प्रकार का शोषण होने के बाद बोल नहीं पाती हैं। ये सब कुछ होता चला जा रहा है। एक तरफ भगवान् महावीर का धर्म तीर्थ इस पंचम काल में भी चल रहा है और एक तरफ आज भी नारी के अंदर कितना दुर्व्यवहार का भाव आ गया या उसको अपने शील की बिल्कुल चिंता नहीं, ये फैशन बन गया। अभी दो दिन पहले खबर पढ़ी कि एक स्त्री के तीन पति हैं, पहले एक पुरुष की ३ स्त्रियाँ हुआ करती थी। बहुत हाई प्रोफाइल लोगों की बात है। जो बड़े-बड़े काँच वाले घरों में रहते हैं, एसी में, कारों में घूमते हैं। सी.ई.ओ. आदि उनके पति हैं कलकत्ता में, एक दिल्ली में और एक पति का बेटा व एक दूसरे पति की बेटी का आपस में अफेयर हो गया। जब माँ ऐसी है तो उन बेटे या बेटी के बीच में भाई-बहन का भाव कैसे हो सकता है। दोनों के बीच का अफेयर माँ से सहन नहीं हुआ तो उसने अपनी बेटी का ही कत्ल करवा दिया और टुकड़े करवा कर गड्ढे में डलवा दिया।

ये आज की नारी की स्वतंत्रता की बात आपको बता रहा हूँ। घर में रहना, घर के काम करना परतंत्रता है और मॉल में, बाजार में घूमना अपने यार-दोस्तों के साथ फिल्में देखना इसका नाम स्वतंत्रता है। नहीं, अगर ये स्वतंत्रता है तो ये तुम्हारी कभी रक्षा नहीं कर पाएगा और इस स्वतंत्रता के कारण से तुम्हारी आत्मा बहुत दु:खी होगी। आज जिनसे मित्रता करते हैं, अपने रिश्तेदार/विश्वासी होते हैं उन्हीं के माध्यम से हमारी बेटियों के साथ गलत व्यवहार होता है, शोषण होता है। अगर ये सभ्यता चलती रही और ये स्वतंत्रता आगे बढ़ती रही तो आप मान के चलना कि मातृ शक्ति ये केवल नाम रह जाएगा।

अभी दो दिन पहले बहुत बड़ा सर्वे हुआ। आप एक **अल्पसंख्यक समाज** हो उस लिस्ट में भारत में एक करोड़ ईसाई मिलेंगे, जो विदेशी थे, एक करोड़ सिख मिलेंगे, ४८ लाख बौद्ध जो भारत में नहीं थे और जैन हैं मात्र ४४ लाख व उसमें केवल ४६ फीसदी महिलाएँ हैं। ये लिंगानुपात इतना कम क्यों होता चला जा रहा। हमारी बेटियाँ जब बाहर पढ़ती है, जॉब करने लगती हैं तो उन्हें उनकी इंटेलिजेंसी के हिसाब से जैन लड़के नहीं मिलते क्योंकि लड़के पढ़ने में ज्यादातर भोंदू होते हैं, जैसे ही वो थोड़े बड़े होते हैं वे इंटरनेट से जुडते हैं, वेबसाइट से जुड़ते हैं और उनकी

सब शक्तियाँ उसमें नष्ट हो जाती हैं। वो पढ़ाई में बहुत पीछे रह जाते हैं इसलिए वो बड़े-बड़े ओहदों पर नहीं पहुँच पाते। हमारी बेटियाँ बहुत अच्छी-अच्छी पोस्ट पर पहुँचती हैं लेकिन उन्हें उन पोस्टों पर जैन लड़के नहीं मिलते। उन्हें जो पैकेज मिलता है वो लड़कों को नहीं मिलता। अब संबंध बनाने के लिए वो क्या देखेंगे और तुम पिता लोग क्या देखोगे। मेरी बेटी का यदि २५ लाख का पैकेज है तो जंवाई का कम से कम ३० लाख का होना ही चाहिए। अगर लड़के का २० लाख का पैकेज है तो क्या आप उससे बेटी की शादी करा पाओगे और बेटी तैयार होगी। अगर इस कारण से उसे जैन लड़के नहीं मिलते हैं तो वो अजैनों से जाकर शादी कर लेती है। ये आज सबसे बड़ी विडम्बना चल रही है। आपने जो जैन कुल था उस पूरे को दूसरे कुल में कन्वर्ट कर लिया। अब आपकी पहचान उस जैन के रूप में नहीं रहेगी, कुल उससे चलेगा जिससे आपने शादी की है और तुम्हारा कुल भी उसी के नाम से चलेगा, तुम्हारा बेटा भी वही कहलाएगा जैन नहीं। ये अल्पसंख्यक समुदाय पढ़ने-लिखने में बहुत आगे, पैसे कमाने में बहुत आगे है पर ये नहीं सोच रहा कि हमारी संख्या कम क्यों होती चली जा रही है। इसका सबसे बड़ा कारण है हमारी बेटियाँ आज अजैनों में ब्याही जा रही है। हर कुल में ये परंपरा रहती है कि जिस कुल में जन्मा है उसी में विवाह होना चाहिए। ब्राह्मण ब्राह्मण कुल में ही विवाह करेगा, राजपूत-राजपूत में ही विवाह करेगा। आप जैन हो तो जैन कुल में ही विवाह करने का संकल्प करना चाहिए। अपनी बेटियों से कहना चाहिए कि बेटी चाहे कितनी ही पढ़ जाना पर विवाह तो जैन कुल में ही करना चाहिए। आपका जीवन अच्छा भी रहेगा और धर्म के प्रति समर्पित भी क्योंकि अपना विवाह किसी ऐसे कुल में नहीं करना, जहाँ पहुँचने के बाद मुनि महाराजों के हाथ में एक ग्रास रखने की योग्यता चली जाए। ये योग्यता बनाकर रखना है एवं ये भी ध्यान में रखना है कि हम किसी भी प्रकार अपने चारित्र से समझौता न करें। चाहे हमें कितनी ही बड़ी कंपनी में जॉब मिली हो, हमारे बॉस, हमारे आस-पास रहने वाले लोग कभी लगे कि ये हमें भेड़िये की नजर से देख रहे हैं, हमारी रूप-संपदा पर मोहित हो रहे हैं, कोई प्रलोभन दे रहे हैं, पार्टी का या एकांत में किसी होटल में बुला रहे हैं तो उस समय पर आप अपने आपको सुरक्षित कर लें। झूठ भी बोल लोगे तो पाप नहीं लगेगा। कह देना पेट में दर्द हो रहा है या घर में जरूर काम के कारण नहीं आ पाई। दुनिया का कोई भी आदमी कितना भी सज्जन हो, उससे एकांत में नहीं मिलना, आपका चरित्र सुरक्षित रहने वाला नहीं है। मैं यहाँ तक कह रहा हूँ कि किसी साधु के पास भी एकांत में नहीं जाना। ये

आदमी का स्वभाव बता रहा हूँ। कभी भी कोई एकांत में बुलाए तो तुम टालने का साहस बनाए रखना। आपका कॅरियर अच्छा होगा क्योंकि आपके साथ अब आपका कैरेक्टर जुड़ गया है। इस चीज को समझने का प्रयास करो।

उस चंदना के साथ में कुछ हो या न हो पर उसका चरित्र उसे अपने घर में ले आया। बेटी की तरह रख रहा है। जब वही बेटी सहजता से अपने पिता से बात करने लगी तो उसकी पत्नी सोचती है कि ये तो परस्त्री होकर कैसी बातें कर रही हैं। सेठ की पत्नी ने घर में ही उसको कैद करके रख दिया और सेठ से कहा उससे बात मत करना। एक पत्नी की दूसरी स्त्री के साथ सहज ईर्ष्या होती है। सेठ की पत्नी उसको भावी सौत के रूप में देख रही है जबकि वह उसको अपने पिता के रूप में देख रही है। एक राजकुमारी, महावीर भगवान् के कुल में जन्म लेने वाली मौसी, वह एक कमरे में बंद होकर के हाथ में हथकड़ी, पांव में बेड़ियाँ डाल दी, थोड़ा सा चावल उसकी प्लेट में डाल देती है। बस उतना खाकर के वह अपना जीवन चला रही है। णमो अरिहंताणं-२ उसने कभी नहीं छोड़ा और उसे एक दिन समाचार मिलता है कि महावीर भगवान् इस कौशाम्बी नगरी में आ रहे हैं, आहार करने के लिए।

वह उस सेठ से इतनी प्रार्थना करती है कि मुझे केवल महावीर भगवान् के दर्शन दूर से ही करा दो। वह बाहर आकर के खड़ी हो जाती है। उसके हाथ में हथकड़ियाँ पड़ी है। एक छोटा सा कटोरा है, जिसमें चावल पड़े हैं। जैसे ही महावीर भगवान् आते हैं वह कहती है अत्र अत्र अत्र, तिष्ठ, तिष्ठ तिष्ठ स्वामिन् नमोस्तु नमोस्तु नमोस्तु और महावीर भगवान् उसके सामने आकर के खड़े हो जाते हैं। जैसे ही महावीर भगवान् सामने आकर के खड़े हुए उसके बंधन टूट गए, उसका रूप-सौंदर्य बदल गया, उसकी काया पहले की तरह सुंदर दिखने लगी, उसके हाथ का कटोरा सोने का हो गया। हाथ के निम्न स्तर के चावल खीर में बदल गए और उसने ले जाकर महावीर भगवान् को अपने घर में प्रवेश करा दिया। महावीर भगवान् ने मुनि अवस्था में उस चंदना से आहार लिया क्योंकि वो चंदना सती चंदना थी। ऐसे सतीत्व की, ऐसे शीलत्व की अगर हम रक्षा करके रखेंगे तो हमेशा धर्म आगे बढ़ेगा, हमेशा हमारे कुल का नाम होगा। अगर आपने इस धर्म की, कुल की, शीलपने की भावना छोड़ दी तो आप कहीं भी सुखी नहीं रह पाओगे।

पाप करने से सबसे ज्यादा आत्मा में भय उत्पन्न होता है। ऐसी हाई प्रोफाइल लाइफ से हमें क्या मतलब जिसमें स्त्री इतनी गिर जाए कि वह ३-३ पति रखने लगे, बेटी ३ लड़कों से अपनी

फ्रेंडशिप रखने लगे। ये दुश्चरित्र/दुष्शील कहलाता है। जिन नारियों के अंदर से शील छूट जाता है, उनकी जगत में कोई रक्षा नहीं कर पाता और उनके अंदर इतनी घुटन हो जाती है कि उन्हें एक दिन सुसाइट करना पड़ता है। किसी को भी ये मालूम नहीं रहता कि आखिर उसके साथ क्या हुआ। दो-चार दिन समाज में चर्चाएँ होती हैं। उसके बाद सब कुछ सहज हो जाता है। जिंदगी चली गई, कोई इसके बारे में गौर नहीं करता। कहीं न कहीं दुष्चरित्र की कुंठाएँ सामने आ जाती हैं और उस कुंठाओं से जब आत्मा ग्रसित हो जाती है तो उसके सामने इसके अलावा कोई उपाय नहीं रहता। आज सबसे ज्यादा आत्महत्या का कारण ये पाप है और इस पाप से बचने का संकल्प आपको लेना है। दो हाथ हैं तो दो गिफ्ट दे देता हूँ- एक तो कभी भी हम अजैनों से विवाह नहीं करेंगे। दूसरा विवाह से पहले हम किसी से कोई गलत संबंध नहीं रखेंगे और हमसे कोई गलत संबंध रखने वाला होगा तो हम उसे छोड़ने का भरसक प्रयास करेंगे। चाहे वो कितना ही बड़ा बॉस क्यों न हो, चाहे उसके पीछे हमें अपनी जॉब क्यों न छोड़नी पड़े। हम कभी भी अपने चरित्र को अपने दांव पर नहीं लगाएँगे। अपने चरित्र की रक्षा करना जैसे उस सती की रक्षा करने महावीर भगवान् सामने आ गए थे। ऐसे ही तुम्हारी रक्षा करने कोई न कोई देवता/मुनि महाराज सामने आ जाएँगे। आज भी ये ताकत है, आज भी हथियार फूल की माला बन सकते हैं लेकिन हमारे अंदर वो धर्म की, शील की भावना हो। आप अपनी बेटियों को कहीं भी पढ़ाओ। कहीं भी जॉब कराओ पर उन्हें हमेशा से प्रेरणा देते रहो कि बेटा आगे बढ़ने का नाम केवल पैसा कमाना नहीं है बल्कि अपने चरित्र की रक्षा करना। अपना कैरेक्टर ही अपना कॅरियर बन जाए ऐसी स्थिति हमें बनाना है न कि कॅरियर अलग व कैरेक्टर अलग। यदि ये दोनों चीजें अलग-अलग होगी तो भी ये मातृ शक्ति नहीं बन पाएगी, केवल बस नारा रह जाएगा। ज्ञातृ शक्ति का मतलब अपने ज्ञायक भाव आत्मा की शक्ति का उद्घाटन तभी होता है जब हम अच्छे माहौल में रह रहे हों और हम हर प्रकार से निश्चिंत हों तभी हमें अपनी आत्मा और परमात्मा की याद आती है इसलिए बाहरी परिवेश में मातृ शक्ति की रक्षा व उसका सम्मान इस ढंग से आप करें।

श्लोक-५१

यत्पश्यामीन्द्रियैस्तन्मे नास्ति यन्नियतेन्द्रियः।
अन्तः पश्यामि सानन्दं तदस्यु ज्योतिरुत्तमम्।।५१।।

जो भी मुझे सकल– इन्द्रिय गम्य है रे, निर्भ्रांत भिन्न मुझसे पर है, न मेरे।
देखूँ समोद जब मैं निज में, तभी यों, है ज्योति दीख पड़ती, मम है 'वही जो'।।५१।।

नियंत्रित मन में आत्मानंद

सबसे बड़ी चीज है इस शरीर में रहकर के उस आत्म ज्योति को देख पाना जिसके लिए हमारा जन्म हुआ है। शरीर में रहकर के अपनी ही आत्मा के बारे में जानना, यह इस मनुष्य जन्म की सबसे बड़ी सार्थकता और सफलता है। मनुष्य जन्म में करने योग्य कार्य वैसे तो अनेक होते हैं लेकिन सबसे प्रमुख कार्य इंद्रियों से हटकर के अतीन्द्रिय आत्मा को अपना विषय बनाना होता है। आचार्य कहते हैं कि आत्मज्ञान से हटकर के हमें अन्य कार्यों में बहुत देर तक नहीं लगना। जब हम इंद्रिय के विषयों से हटते हैं और उन्हें हम याद नहीं करते। केवल अपनी **अंतरंग आत्म ज्योति** को ही अपना उपयोग का विषय बनाते हैं। हमारे लिए ये तब संभव हो पाता है जब इंद्रियों को संयमित किया जाता है। वैसे तो सभी इंद्रियाँ संयमित हैं लेकिन मन के माध्यम से उनका संयम बिगड़ जाता है। इंद्रियाँ हमेशा अपनी-अपनी मर्यादा में ही रहती हैं, वे अपना ही काम करती हैं। जिस इंद्रिय का जो काम है वह इंद्रिय ही वह काम करती है। कोई दूसरी इंद्रिय उसकी मर्यादा में हस्तक्षेप नहीं करती न ही इच्छा करती है। स्पर्शन इंद्रिय का कार्य केवल स्पर्शन इंद्रिय ही करती है, रसना इंद्रिय का काम रसना इंद्रिय ही करती है, शब्द सुनने का कार्य कर्ण इंद्रिय ही करती है, गंध सूंघने का कार्य घ्राण इंद्रिय ही करती है और रस चखने का कार्य केवल रसना इंद्रिय ही करती है।

देखा जाए हमारा शरीर बड़ा व्यवस्थित एवं बड़ा अच्छा है। अच्छा इसलिए कि शरीर के माध्यम से हम बहुत अच्छी धर्म साधना भी कर सकते हैं एवं शरीर के स्वभाव को समझकर हम अपने मन को शरीर से हटाकर अपनी आत्मा में भी लगा सकते हैं। यदि हम ये समझ जाएँ कि पाँच इंद्रियों के माध्यम से हम जो विषय ग्रहण करते हैं उसमें कोई आत्मा का विषय नहीं आता तो अपने आप मन में एक शांति उत्पन्न हो जाती है और मन थककर के आत्मा में लग जाता है। अगर आत्मा के अंदर इस प्रकार का ज्ञान प्राप्त हो जाता है तो मन के माध्यम से वह अपनी इंद्रियों से हटकर के आत्मा तक पहुँचने में उसे ज्यादा देर नहीं लगती। आचार्य कहते हैं जो हम इंद्रियों के द्वारा देख रहे हैं, वह मैं नहीं हूँ, ऐसा अपने अंदर एक विचार करना पड़ेगा। जो इंद्रियों के द्वारा देखा जा रहा है, इंद्रियों के द्वारा जानने में आ रहा है वह हमारे लिए केवल थकाने वाला है। वह हमें अपने स्वभाव से दूर करने वाला है, बहिर्मुखी बनाने वाला है। जब हम केवल इंद्रियों को शांत कर दे, उनके कार्य हेतु उन्हें कोई विषय ना दे तो हम उस समय पर जो कुछ भी देखेंगे, जो कुछ भी जानेंगे वह हमारी आत्मा का विषय होगा, वही वस्तुत: आनंद होगा।

आनंद

''आनंद'' शब्द केवल आत्मा के लिए ही होता है। इंद्रियों में आनंद नहीं होता, आत्मा में ही आनंद होता है। इंद्रियों में केवल सुखाभास होता है। ''आनंद' अर्थात् आ-माने चारों ओर से, नंद-जो वृद्धि को प्राप्त होता रहे उसे आनंद कहते हैं। आप कभी-कभी ये शब्द सुनते होंगे नंद-नंद, वृद्धि हो- वृद्धि हो, आयुष्मान हो, ये सभी शब्द उसी प्रक्रिया के साथ में जुड़ते हैं जो आशीर्वादात्मक होते हैं। नंद-नंद माने वृद्धि को प्राप्त हो। यहाँ पर आचार्य कहते हैं कि आनंद केवल अपनी आत्मा का विषय है और उस आनंद की प्राप्ति होने पर हमारे लिए बाहर जो कुछ भी है वह भी बहुत शांत जैसा हो जाता है। आप किसी से मिलते हो, उसके पास पहुँचते हो, आपका मन होता है कि हम उससे कुछ पूछ लें और उनसे कुछ सुन लें। मतलब आप कभी भी बिना बात किए रह नहीं सकते। अब भगवान् बोलते नहीं हैं तो उनसे तो उम्मीद नहीं की जा सकती लेकिन जिनसे उम्मीद हो कि वो हमें कुछ सुना सकते हैं तो वे हमें कुछ सुनाएँ, कुछ बोलें। यदि किसी के पास बैठने के बाद हमें लगे कि हमें केवल इनको देखना है, इनसे बोलना नहीं है।

ये उन्हीं के बीच में हो सकता है जो ज्ञानी है।

एक साधु महात्मा अपने कई शिष्यों के साथ एक रास्ते से गुजर रहे थे। शिष्य समुदाय ने उनसे कहा कि हम सब उन महान साधु के दर्शन करें जिनका नाम, ज्ञान, ध्यान व चर्चाएँ सब जगह पर है, वो रास्ते में ही हैं। गुरु ने कहा ठीक है। आप सबकी इच्छा है तो हम भी चलते हैं। ज्ञानी आत्मा के पास सभी जन पहुँच गए। दोनों साधु बड़े प्रेम से मिले और आमने-सामने के आसन पर बैठ गए और दोनों शांत होकर के एक-दूसरे को देखते रहे। १० मिनट, २० मिनट होते-होते एक घंटा हो गया। कोई भी किसी से कुछ बोला नहीं। शिष्य समुदाय जो बैठा था उनके मन में आने लगा कि आखिर ये बातचीत क्यों नहीं कर रहे, कोई पूछताछ क्यों नही कर रहे। दोनों साधु आमने-सामने आनंदित बैठे हैं। शाम हो गई अब वहाँ से विदा होना था। उस समय भी शिष्यों ने सोचा अब ये दोनों गुरु आपस में बात करेंगे। वापस जाना है। निकलना है इस भावना से फिर दोनों गुरु आमने-सामने हुए पर उन्होंने कोई बात नहीं की। वहाँ से गुरु व शिष्य आगे निकल गए तो रास्ते में शिष्यों ने पूछा कि आप दोनों इतने पहुँचे हुए संत महात्मा हैं तो आपने उनसे कुछ बात क्यों नहीं की, कुछ पूछा क्यों नहीं? हम लोग सारे दिन ये ही देखते रहे। गुरु महाराज कहते हैं किससे क्या बात करना। जिनसे बात करना है वह भी सब कुछ जानते है और उन्हें भी मालूम है कि हम भी सब कुछ जानते हैं। जब ऐसे पहुँचे हुए ज्ञानी हो जाते हैं वहाँ पर केवल दर्शन ही एक-दूसरे का किया जाता है, वहाँ पर ज्यादा बातचीत करने की भावना नहीं रह जाती। बातचीत करने का मतलब है अपने स्तर को गिराना। बातचीत वहाँ पर होती है जब हमारे अंदर ये भाव आ जाता है कि हमें इनसे कुछ सीखना है, कुछ प्राप्त करना है। जहाँ पर सब अपने-अपने में संतुष्ट होते हैं, वहाँ पर कोई किसी से बातचीत भी नहीं करता है। जब भी आप किसी से मिलें और आपने उनसे बातचीत की इच्छा की तो इसका मतलब है आप अपने आपसे संतुष्ट नहीं हैं। आपको अपने अज्ञान को दूर करना है।

आचार्य कहते हैं किसी से भी काय से, वचन से कोई प्रवृत्ति मत करो, मन से अपनी आत्मा से जुड़ो और किसी से मत जुड़ो। ये अगर ज्ञानीपन आपके अंदर आ जाएगा तब आप दुनिया में किसी के भी पास जाओगे आपको केवल उसे देखने की इच्छा होगी, उससे बात करने की इच्छा नहीं होगी। अपने स्तर को, अपने ज्ञान को इस लेवल से नापना कि हमारे अंदर केवल देखने की अनुभूति या इच्छा कब होती है और हमारे अंदर बात करने की इच्छा कब होती है। किसी से

बोलना, किसी की बात को सुनना या किसी को कुछ सुनाना ये भी एक **आकुलता का** परिणाम है। आकुलता जब तक रहेगी तब तक आपके लिए बोलने की इच्छा भी रहेगी और सुनने की भी इच्छा रहेगी। ये आकुलता का धीरे-धीरे घटना, निराकुल होना और ज्ञानी का उस स्तर तक पहुँच जाना जहाँ पर हमें अपने आप में पूर्ण संतुष्टि हो और हम केवल अपने आपको देखें व जानें। किसी भी इंद्रिय के माध्यम से हम उसकी कोई भी क्रिया करने का भाव न करें, वह हमारे लिए ज्ञान की एक संतुष्टि की दशा होती है। शरीर में पाँचों इंद्रियाँ अपने आप में इतनी संतुष्ट हैं कि हर इंद्रिय अपने-अपने विषय को ही ग्रहण करती है और विषय न मिलने पर चिल्लाती नहीं है, आकुलता नहीं करती है।

आकुलता हमारा मन करता है। मन सबके साथ जुड़ जाता है इसलिए मन को ही सबसे बड़ा दोषी कहा जाता है। हमारे अंदर सदोषपन को धारण करने वाला हमारा मन ही है, जो सब इंद्रियों से जुड़ता है और सब इंद्रियों को प्रेरित करता है, सभी इंद्रियों के विषयों में डूबता है लेकिन किसी भी विषय में वो संतुष्ट नहीं होता है। मन को अपने लिए एकाग्र करना इसलिए आवश्यक हो जाता है ताकि मन अपने आप हमें समाधान देगा, इंद्रियाँ अपनी जगह पर दिखाई देगी, आत्मा अपनी जगह पर दिखाई देगी। इन दोनों विषयों के बीच में किसी भी प्रकार का अगर कोई व्यवधान उत्पन्न करने वाला तो सिर्फ मन होता है। इसलिए आचार्य कहते हैं अपनी इंद्रियों को नियत करने के लिए, स्थिर करने के लिए एवं सावधान करने के लिए आपको केवल मन को सावधान करने की जरूरत है और मन को जैसे ही आपने अपने आप में लगाया, इंद्रियाँ आपकी कहीं भी व्यवधान उत्पन्न नहीं करती। जब आप ध्यान लगाते हो, आपको कोई भी इंद्रिय कभी परेशान नहीं करती। आप ध्यान लगा रहे हो, आप स्पर्शन इंद्रिय का भी अनुभव भूल जाते हो, रसना इंद्रिय, चक्षु व घ्राण इंद्रिय आपको ये अनुभव में नहीं आती कि ये साथ में है कि नहीं।

ये अनुभव में न आना तभी संभव है जब हमारे मन की आकुलता थोड़ी-सी कम हो जाए, शांत हो जाए और मन हमारा विश्राम में आने लगे। जब मन को अपनी ही इंद्रियों से हटकर के अपने ही प्राणों का काम मिल जाता है तो अपने आप मन धीरे-धीरे शांत हो जाता है और तभी मन के अंदर शक्ति उत्पन्न होने लगती है। पीस ऑफ माइंड इज द पॉवर ऑफ माइंड। मन की शांति ही मन की शक्ति है। जितना आपका मन शांत होगा उतनी ही आपके अंदर शक्ति होगी और आप उतना ही बड़ा-बड़ा काम अपने उस मन से कर सकते हो। आप रोजाना णमोकार मंत्र पढ़ते

हो पर मन उस णमोकार मंत्र में लगता नहीं है। इसलिए मन में वह णमोकार मंत्र की शक्ति भी नहीं आ पाती और मन में णमोकार मंत्र के माध्यम से मन को लगाने की प्रक्रिया से गुजरकर के आप उस णमोकार मंत्र की शक्ति को पहचानें। उसकी शक्ति को हम **श्वासोच्छवास** के माध्यम से जानते हैं जिन्हें हमारे पूर्व आचार्य गणधर परमेष्ठी से लेकर उस आचार्य परंपरा से हर श्रमण के लिए, मुनि महाराज के लिए कायोत्सर्ग की विधि बताई गई। आचार्य कहते हैं कि श्वासोच्छवास के माध्यम से ही हम **कायोत्सर्ग** करें। आजकल साधु भी श्वासोच्छवास से कायोत्सर्ग कम करते हैं। णमोकार मंत्र पढ़ते हैं वह गिनने में आ जाता है। वस्तुत: आचार्य कहते हैं उस णमोकार मंत्र को अपने श्वासोच्छवास से इस रूप में आरोहण करो कि वह हमारी प्राणशक्ति के साथ में समाहित हो जाए। ये प्रक्रिया पूर्वाचार्यों ने भगवान् महावीर के समय से गणधर परमेष्ठी द्वारा बताई गई है। ये प्रक्रिया इतनी महत्त्वपूर्ण है कि यदि श्रावक इसे करने लग जाए तो बड़े-बड़े फायदे उसको मिल सकते हैं।

आपके शरीर में जो भी रोग होते हैं उनका कारण होता है, हमारे शरीर में दूषित ऊर्जा का संचय हो जाना। हमारे मन में कहीं न कहीं दुर्भावों के माध्यम से उस दूषित ऊर्जा का इकट्ठा हो जाना। उस ऊर्जा को अगर हम बाहर फेंक सकते हैं तो वह श्वासोच्छवास की प्रक्रिया के माध्यम से ही फेंक सकते हैं। जितना ज्यादा हम गहरी साँस लेते हैं, उतनी ही ज्यादा वह भीतर भरी दूषित ऊर्जा बाहर निकलती है। ये श्वास लेने की एवं छोड़ने की जो प्रक्रिया है इस प्रक्रिया को अगर हम लयबद्ध तरीके से कई बार करते हैं तो हम अपने शरीर में उत्पन्न हुए रोगों को स्वयं दूर कर सकते हैं। हमारे पास ये बहुत बड़ी भावनात्मक पद्धति है जिसके माध्यम से हम अपने रोगों को दूर कर सकते हैं पर लोगों को इसका ज्ञान नहीं है एवं विश्वास भी कम है।

णमोकार मंत्र ध्यान

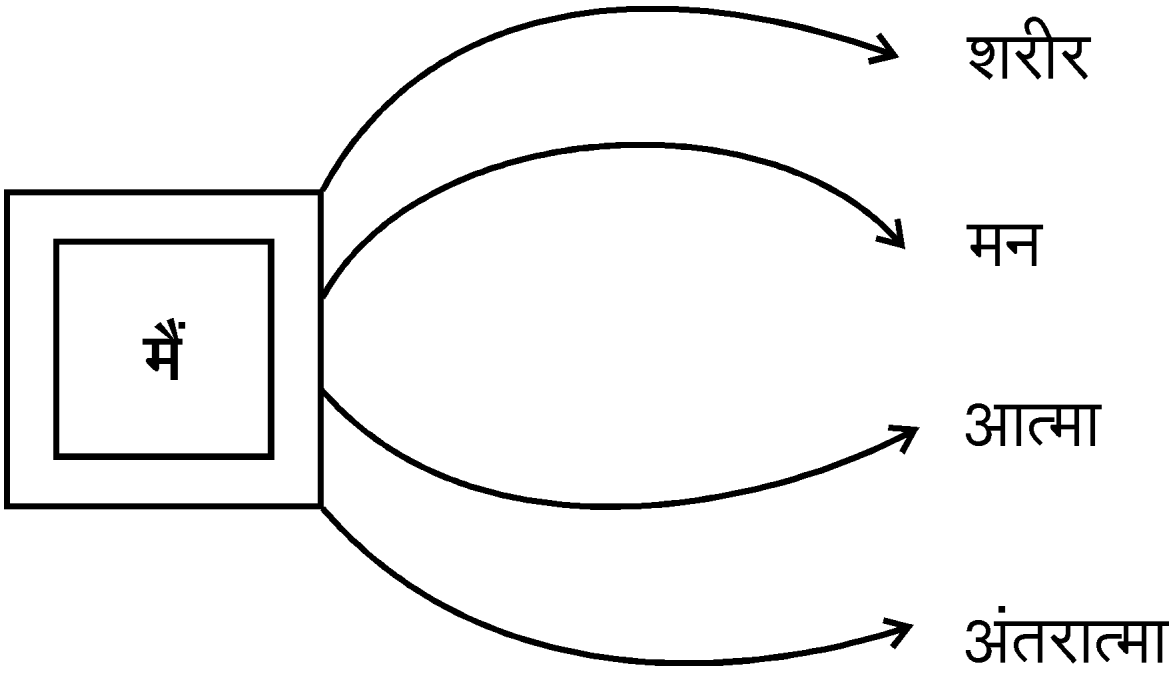
एक पुणे में संस्था चलती है। वह संस्था केवल णमोकार मंत्र के माध्यम से ही बड़े-बड़े रोगों को दूर करती है। जब डॉक्टर लोग कह देते हैं कि हम आपके लिए कुछ नहीं कर सकते हैं और मरीज दवाइयाँ खाकर एवं टेस्ट कराकर जब परेशान हो जाता है तब वहाँ पर पहुँचता है। उस संस्था के लोग णमोकार मंत्र के माध्यम से ऐसा निराकरण करते हैं कि जो लाभ उनको बड़े-बड़े

डॉक्टरों से नहीं होता वो इस णमोकार मंत्र के माध्यम से होता है। ऐसे बहुत से केस सामने आ चुके हैं जिसमें बहुत से लोग पूर्ण स्वस्थ हो गए। चाहे स्लिप डिस्क पीड़ित हो, चाहे ब्लड प्रेशर रोगी हो, पथरी, गठान, लीवर की बीमारियों में ये श्वासोच्छवास की प्रक्रिया के माध्यम से णमोकार मंत्र इतनी शक्ति देता है कि दुनिया के अंदर इससे बढ़कर के कोई और चिकित्सा नहीं है। आप सब इस पर अपना विश्वास बढ़ाएँ एवं अभ्यास भी निरंतर बढ़ाएँ। यदि कभी आपको शरीर में कोई समस्या आ रही हो तो आप सबसे पहले उस अभ्यास से जुड़ें और उस अभ्यास के माध्यम से अगर आप शरीर में ऊर्जा प्राप्त करेंगे तो आपको ऐसी कोई नौबत नहीं आएगी। जब अचानक आपके सीने में दर्द उठता है, डॉक्टर के पास आप जाते हो और डॉक्टर कहता है आपको एक माइनर हार्ट अटैक हुआ है, फिर जब सारा चेकअप होता है तो पता लगता है कि आपकी दो या तीन नलियाँ चोक हैं। आपको एंजियोप्लास्टी या बाईपास कराना जरूरी है। इसमें आप एक लाख से चार-पाँच लाख खर्च कर देते होंगे। अगर आप पहले से थोड़ा सावधान रहें तो आपको कभी भी इस प्रकार की नौबत नहीं आ सकती।

जो चीज हमें सरलता से उपलब्ध है हम उस पर कभी भी ध्यान नहीं देते, ये हर एक मनुष्य की सबसे बड़ी कमजोरी है। हवा सब जगह सरलता से उपलब्ध है। हम कभी भी ये महसूस करते हैं कि हम श्वास ले रहे हैं। हमारे ऊपर ये हवा बड़ा उपकार कर रही है। हमें इस हवा के माध्यम से अपने अंदर वो ऊर्जा प्राप्त करना है। हम कभी महसूस नहीं करते क्योंकि वह हमें उपलब्ध है। जब हम ऐसी जगह पर पहुँच जाएँ, जहाँ पर हवा नहीं मिले, हमारा दम घुटने लगे, तब हमें हवा की कीमत समझ में आती है। जब हमें प्रदूषित हवा मिले, साफ-स्वच्छ हवा न मिले तब हमें हवा की कीमत समझ में आती है कि हमें यहाँ पर घुटन हो रही है। जो चीज शक्ति के रूप में सर्वत्र फैली हुई है हम उसका उपयोग करना नहीं जानते। उसका उपयोग किए बिना हम कुछ अद्भुत आश्चर्यजनक शक्ति के रूप में अपने अंदर भाव कर ही नहीं सकते जो करना आवश्यक है। आप अपना मन णमोकार मंत्र की उस प्रक्रिया में लगाएँ। अगर आप केवल श्वास को गहराई से लेकर के छोड़ना- ९ बार, २७ बार या १०८ बार और यदि आपकी ये आदत धीरे-धीरे बन जाए तो आपके लिए वो दिन कभी नहीं आएगा जब आपके सीने में दर्द उठे और डॉक्टर चेक करके कहे आपकी तीन नलियाँ चोक हैं। ये रोजाना करना जरूरी है।

आचार्यों ने मुनि महाराज व श्रावकों के लिए ये कायोत्सर्ग की विधि बताई है। वे प्रतिक्रमण,

स्वाध्याय, वंदना, भक्ति आदि सभी कायोत्सर्ग के साथ करते हैं। मुनिराज सुबह के प्रतिक्रमण व भक्ति में १८ बार णमोकार मंत्र पढ़ना यानि ५४ बार श्वासोच्छवास एवं शाम को १०८ बार श्वासोच्छवास से प्रतिक्रमण करना फिर भक्ति करना। आप समझ लो ये कितना वैज्ञानिक तरीका है परन्तु इस पर कोई भी ध्यान नहीं देता। ऐसा समझ में आता है कि सुबह-सुबह ताजगी ज्यादा रहती है इसलिए कम में काम हो जाता है और शाम को जब हम थक जाते हैं तब अपनी प्राण शक्ति को वापस लाने के लिए १०८ श्वासोच्छवास के माध्यम से णमोकार मंत्र का आरोहण, अवरोहण करना चाहिए। जब भी आपको थकान लगे, बैचेनी हो, किसी काम में मन नहीं लग रहा हो तब आप केवल श्वासोच्छवास के माध्यम से गहराई से उस णमोकार मंत्र को ग्रहण करें और णमोकार मंत्र को छोड़ें। अपने घुटनों को छाती से लगाकर कभी नहीं बैठना चाहिए। उससे पेट में बहुत सारे रोग उत्पन्न होते हैं। इससे पेट की जठराग्नि डिस्टर्ब हो जाती है, भोजन अच्छे से पचता नहीं, शरीर में शक्ति की कमी होगी, बीमारियाँ बढ़ेंगी।



श्लोक-५२

सुखमारब्धयोगस्य बहिर्दुःखमथात्मनि।
बहिरेवाऽसुखं सौख्यमध्यात्मं भावितात्मनः।।५२।।

प्रारम्भ में कुछ दुखी निज ध्यान से हो, प्रायः सुखानुभव बाहर में उसे हो।
अभ्यस्त तापस कहै निज में हि तोष, संसार सागर असार विपत्ति कोष।।५२।।

स्वाश्रित आत्म सुख

आचार्य कहते हैं जिन्होंने योग का प्रारंभ किया है, आत्मध्यान का जिन्होंने अभ्यास अभी शुरू किया है उन्हें बाहरी विषयों में सुख मालूम पड़ता है। इस योग अभ्यास की क्रिया में आत्मा में दु:ख महसूस होता है क्योंकि जब हम कुछ नया कार्य करते हैं तो हमारा मन अभ्यस्त नहीं होने के कारण से थोड़ा सा कष्ट महसूस करता है। ये अनुभूति आचार्य पूज्यपाद महाराज ने की और वे कहते हैं कि अगर हम इस अभ्यास को बनाए रखें तो एक स्थिति ऐसी आती है कि बाहर ही हमें दु:ख या सुख दिखाई देगा। जो अपनी आत्मा को बार-बार इन भावनाओं से भावित करेगा, संस्कारित करेगा उसे अपने ही अंदर सुख महसूस होने लगेगा और बाहर उसे दु:ख महसूस होगा यानि मन का एक परिवर्तन हो गया। जब मन किसी भी योग को, ध्यान को, किसी भी आत्म संबंधी क्रिया को प्रारंभ करता है तो प्रारंभ में उसे दु:ख लगता है और बाहर ही सुख लगता है। मन कहता है हमें क्या करना, हमें जो दिख रहा है हमें वही देखना है। हमें कोई भी आत्मा के लिए नई क्रिया करना अच्छा नहीं लगता। मन के अंदर इस तरह के विचार उत्पन्न होते हैं और इसी विचार में जब वह थोड़ा अभ्यस्त हो जाता है। मन को निष्णात बना लेता है तो उसे लगता है हमारे मन में जो संतोष और आनंद है वह दुनिया में कहीं पर नहीं है। आप लोग थोड़े-थोड़े अभ्यास से गुजर रहे हो, जब अंत में हम आपको

बैठाए रखते हैं तो वह अभ्यास की अंतिम फलीभूत क्रिया होती है। आपको उस समय ऐसा भाव आता हो कि बस हम बैठे रहें, हमें न कुछ सुनना, न आँखें खोलना, न किसी को देखना ये भाव ही वस्तुत: आत्मा का संतोष का भाव है। ये भाव उसी को आएगा जो भावपूर्वक एकाग्रता के साथ इस अभ्यास को करेगा। अगर हमने अपने भावों में कोई कमी लाई या हमने अपने विश्वास के बिना ही इस प्रक्रिया को किया तो हमें इसका कोई भी आनंद नहीं आएगा। ये हमारी स्वयं की पहचान है और स्वयं हमने क्या किया, उसके परिणाम का फल हमें स्वयं ही देखना और समझना है। आपसे कोई पूछे तो ठीक न पूछे तो ठीक। अध्यात्म केवल अपने ही आश्रित होता है और अध्यात्म में जो हमें सुख मिलता है उस सुख का वर्णन हम दूसरों के लिए भी नहीं कर सकते।

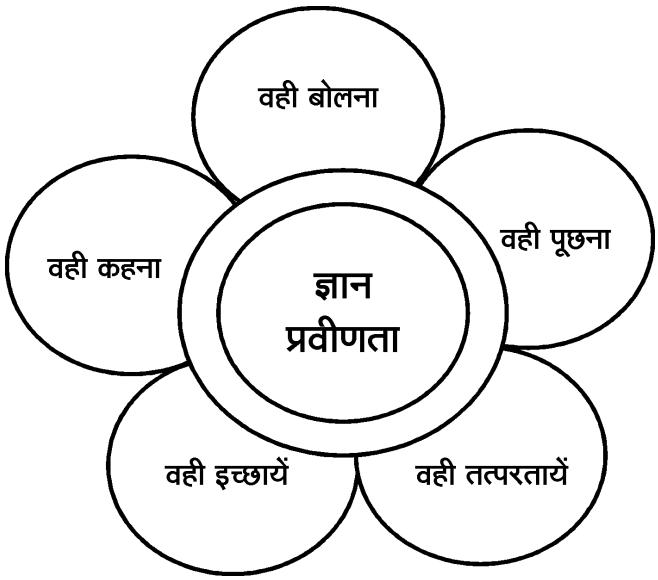


श्लोक-५३

तद् ब्रूयात्तत्परान् पृच्छेत्तदिच्छेत्तत्परो भवेत्।
येनाऽविद्यामयं रूपं त्यक्त्वा विद्यामयं व्रजेत्।।५३।।

निर्ग्रन्थ होकर करो निज आत्म–गीत, पूछो तथा निजकथा गुरु से विनीत।
चाहो उसे सतत हो उसमें विलीन, अज्ञान नाश जिससे, तुम हो प्रवीण।।५३।।

आचार्य कहते हैं दूसरों से वही बोलो, वही कहो, वही दूसरों से पूछो और उसी की इच्छा करो और उसी में तत्पर रहो जिसमें हम अपने अज्ञान रूप को छोड़कर के विद्यामय ज्ञान रूप को प्राप्त कर लें। आप दूसरों से केवल वही चर्चा करो, वही पूछो, वही भावना करो जिससे हमारा अज्ञान छूट जाए। ज्ञान का हमें आभास होने लग जाए जिससे हमारे अंदर अविद्या यानि मोहजनित भाव छूट जाएँ और हमें अपने आत्मा के स्वभाव का भाव होने लग जाए। ऐसे अविद्या रूप को छोड़कर उस विद्या रूप स्वरूप को प्राप्त करने के लिए निरंतर प्रयत्नशील रहो।



श्लोक-५४

शरीरे वाचि चात्मानं सन्धत्ते वाक्शरीरयोः।
भ्रान्तोऽभ्रान्तः पुनस्तत्त्वं पृथगेषां निबुध्यते।।५४।।

वाक्काय में निरखता निजको हि अज्ञ, तो देह का वचन का वह है न विज्ञ।
ज्ञानी कहे मम नहीं यह देह भार, होता अतः वह सुशीघ्र भवाब्धि पार।।५४।।

जो भ्रांत होता है जिसे अपने मन के अंदर अनेक प्रकार की भ्रांतियाँ रहती हैं, उन भ्रांतियों के कारण से वह अपनी आत्मा को अपने ही वचन में, अपने शरीर में धारण करके यह महसूस करता है कि जो मैं ये शरीर हूँ, वही मैं आत्मा हूँ। जो मेरे ये वचन हैं बस वही मैं आत्मा हूँ और जो मेरा मन सोच रहा है वही मैं आत्मा हूँ। जो भ्रांति से रहित हो जाता है, निर्भ्रांत हो जाता है वह इन सबको अलग-अलग महसूस करने लग जाता है। शरीर कभी आत्मा नहीं हो सकता और आत्मा कभी इन तीनों मय नहीं हो सकता। इन सबसे अपने आपको महसूस करना यही अपने अंदर का वह निर्भ्रांत भाव है। भ्रांति से रहित आत्मा तब होता है जब उसे अपने देह का भी भार अनुभव में न आए, उसे अपनी देह का भी आभास न हो। वह उस देह के साथ रहते हुए भी अपने आप को देह से भिन्न देखें, मन से, वचन से भिन्न देखें तो ऐसा आत्मा अगर उस ध्यान की क्रिया में निरंतर अभ्यास के द्वारा बैठा रहता है तो उसे संसार से पार होने में बहुत समय नहीं लगता है। उस स्थिति तक पहुँचने के लिए इस समाधितंत्र ग्रंथ के माध्यम से अपन उस अविद्या रूप को छोड़कर के विद्यामय रूप का अनुभव करें और अपने शरीर में, अपने वचनों में, अपने मन में जो अपना आत्मा जुड़ा हुआ है उसको पृथक् रूप से अनुभव करने का एक साधन, एक अभ्यास जो हम निरंतर पंचपरमेष्ठी की इस णमोकार मंत्र की साधना के माध्यम से कर रहे हैं और यही साधना जब हमारे लिए बढ़ती जाएगी, हम अभ्यस्त होते चले जाएँगे तो हम केवल अपने आपको केवल ज्ञानरूप एक आत्मरूप अनुभव करेंगे। यह इस साधना के माध्यम से ही होता है। इसलिए हम सभी हाथ जोड़कर के सबसे पहले उन पंचपरमेष्ठी को नमस्कार करते हैं।

श्लोक-५५

न तदस्तीन्द्रियार्थेषु यत्क्षेमङ्करमात्मनः।
तथापि रमते बालस्तत्रैवाज्ञानभावनात्।।५५।।

संभोग में सुख नहीं कहते मुमुक्षु, मोक्षार्थ योग धरते सब संत भिक्षु।
अज्ञान भाव वश हो वह सर्व काल, संभोग में निरत हो बहिरात्म बाल।।५५।।

आचार्य पूज्यपाद कहते हैं कि यह जीव अज्ञान भावना से मोह के वशीभूत होकर इंद्रिय के विषयों में रमण करता है और उससे अपनी कुशलता की इच्छा करता है। चाहता है कि इसी से हमें सुख, चैन मिलेगा, इसी से हमारी कुशलता की वृद्धि होगी किंतु जब हम उस अज्ञान से दूर हटकर के ज्ञान भाव के साथ में अपने स्वरूप का अध्ययन करते हैं तो हमें पूर्व में की हुई सब क्रियाएँ अज्ञान स्वरूप भासित होने लग जाती है। आचार्य कहते हैं कि वह अज्ञानता का आभास होना ही सबसे बड़ा ज्ञान हैं। जब तक हम इंद्रिय के विषयों में मोह के कारण से सुख मानते रहते हैं, तब तक हम अज्ञानता से जीते हैं। जब हमारा ये भ्रम टूटता है कि ये हमारी अज्ञानता है, हमारा ज्ञान ही हमारा सुख है और ज्ञान के अलावा कोई भी वस्तु हमें सुख देने वाली नहीं है। इस प्रकार का जब भाव अंतरंग आत्मा में उत्पन्न होता है तो आचार्य कहते हैं अब आप ज्ञान भावना के साथ जुड़ गए। इस ज्ञान भावना से जुड़ना और उसी ज्ञान भावना में रमण करना जैसे हम अनंत अनादिकाल से अज्ञानता से अपने देह के विषयों में रमण करते आए हैं। ऐसे ही देह को छोड़कर के अब आत्मा में रमण करने का भाव करना ये **ज्ञान दशा** है एवं देह में रमण करने का भाव करना ये **अज्ञान दशा** है। आत्मा का अज्ञान दशा का संस्कार बहुत गहरा है और ज्ञान दशा का संस्कार न के बराबर है। यूँ कहें कि है ही नहीं। इस अज्ञान भाव के संस्कार से हटना और ज्ञानदशा का संस्कार इस आत्मा के ऊपर डालना, ये मनुष्य जन्म का सबसे बड़ा पुरुषार्थ होता है। हम जो ज्ञान की बात सुनते हैं, उसी ज्ञान की बात को जब हम अपने मनन और चिंतन में लाते हैं, अपने अनुभव में लाते हैं तो वह ज्ञान का संस्कार हमारी आत्मा में पड़ता है और उस ज्ञान संस्कार से आत्मा के अंदर एक जाग्रति उत्पन्न होती है।

श्लोक-५६

चिरं सुषुप्तास्तमसि मूढात्मानः कुयोनिषु।
अनात्मीयात्मभूतेषु ममाहमिति जाग्रति।।५६।।

अज्ञान रूप तम में चिरमूढ़ सोये, भोगे कुयोनिगत – दुःख अतीव रोये।
ऐसी दशा च उनकी दयनीय क्यों है? वे आत्म बोध तजके परलीन क्यों है?।।५६।।

अज्ञान के अंधकार में चिरकाल तक यह आत्मा सोई है। वह सुषुप्त इस ढंग से हुआ कि ८४ लाख योनियों में ये आत्मा घूम रही है। उन योनियों में रहकर के उसने हर प्रकार के दुःख भी सहे और जितने संभव उस योनि में सुख हो सकते हैं उन सुखों को भी प्राप्त किया। इन ८४ लाख योनियों में यह आत्मा मोह के कारण से मूढ़ बनकर के रहा और अज्ञान से अपनी सुषुप्त दशा में पड़ा रहा क्योंकि उसने जो भाव अपने नहीं थे उन्हें अपना माना, जो लोग अपने नहीं थे, उन्हें अपना माना। जिन भावों से हमारी आत्मा में कोई लाभ नहीं होना था, उन भावों से अपनी आत्मा में लाभ माना। ऐसे अनात्मीय भावों में आत्म भावों को करके यह आत्मा चिरकाल तक मूढ़ बनी रही। अब इसके अंदर कुछ जाग्रति उत्पन्न हो रही है। जिसे हम मेरा कहते हैं- हम हमेशा परवस्तुओं को अपना या मेरा कहते रहे है। जाग्रति ये है कि मैं ही मेरा हूँ, ये भाव आने का नाम जाग्रति है- मैं ही मेरा हूँ, और मेरा ही मैं हूँ। ये भाव जब आत्मा में गहरा उतरता है तो इसी का नाम सुषुप्त दशा से जागना, चिरकाल की उस मोह निद्रा को छोड़ना और अपने आत्म भावों में रमण करना, यही सबसे बड़ी जाग्रति है और इस जाग्रति के लिए आप अगर थोड़ा-सा भी प्रयास दिन में एक बार भी करेंगे तो कहीं न कहीं वो संस्कार आपकी आत्मा के अंदर उस जाग्रति को लाने के लिए कारण बनेगा।

श्लोक - ५७

पश्येन्निरन्तरं देहमात्मनोऽनात्मचेतसा।
अपरात्मधियाऽन्येषामात्मतत्त्वे व्यवस्थितः।।५७।।

योगी सदा तप तपे निजमें रहेंगे, सद्ध्यान ध्या परिषहादिक भी सहेंगे।
'मेरा शरीर' इस भाँति नहीं कहेंगे, कोई प्रबन्ध परसंग नहीं रखेंगे।।५७।।

जो आत्मदृष्टा होते हैं उनके लिये आत्मा के अलावा हर वस्तु परिग्रह होता है। उनका खुद का शरीर भी उनके लिए परिग्रह होता है। इसलिए आत्मदृष्ट आत्माएँ केवल आत्मा में ही अपनी दृष्टि रखती हैं। जितनी भी बाहर की उन्हें चीजें दिखाई पड़ती हैं वे सब उनकी दृष्टि में 'पर' हुआ करती हैं। उन आचार्यों के द्वारा ये अनुभूतियाँ जो उन्होंने एकांत में निर्जन स्थान में, जंगल, वन आदि स्थानों में रहकर के की। उन्हीं अनुभूतियों को इन ग्रंथों में लिखकर के हम तक प्रेषित किया और हमें यह बताया जा रहा है कि हम अपनी देह को अपनी आत्मा से भिन्न देखें। हमारे चित्त में देह के प्रति आत्मभाव न रहे। अनात्म बुद्धि से जब हम अपनी देह को अपनी आत्मा से भिन्न देखेंगे तो हम धीरे-धीरे अपने आत्मतत्त्व में व्यवस्थित हो जाएँगे। आत्मतत्त्व में स्थित होना व्यवस्थित हो जाना है। यह उद्देश्य है और आत्मतत्त्व में स्थित होने के लिए ये भावना करना ये यहाँ बताया जा रहा है। जब तक कोई पर प्रसंग रहता है, तब तक आत्मा अपने आपसे स्वयं भी जुड़ नहीं पाता। उसी विकल्प को तोड़ने के लिए आचार्य कहते हैं कि एक अभ्यास करो कि निरंतर अपनी देह को अपने अंदर से भिन्न रूप में देखो। भिन्न रूप से देखने के लिए आप उस देह के स्वरूप का भी ध्यान रखो और अपने आत्मस्वरूप का भी ध्यान रखो। केवल आत्मा की भावना करते हुए जो आनंद आता है वह उन योगियों को आता है जिन्होंने शब्दों के रूप में उस आनंद को लिखा। यदि हम थोड़ी देर के लिए पंचपरमेष्ठी की भी आराधना करते हैं एवं पंचपरमेष्ठी के उस आनंद भाव को अपने अंदर देखते हैं तो स्वयं में आनंद आने लग जाता है। उस आनंद से हम कल्पना कर सकते हैं कि वास्तव में आत्मा का आनंद कैसा होता है। वह आनंद न तो इंद्रों के पास में है न अहमिन्द्रों के पास में है और न किसी चक्रवर्ती आदि के पास में है। जो आनंद निर्विकल्प और आत्मतत्त्व में व्यवस्थित होने पर उत्पन्न होता है, उस आनंद की अनुभूति पंच परमेष्ठी की आराधना के माध्यम से ही की जा सकती है।

श्लोक-५८

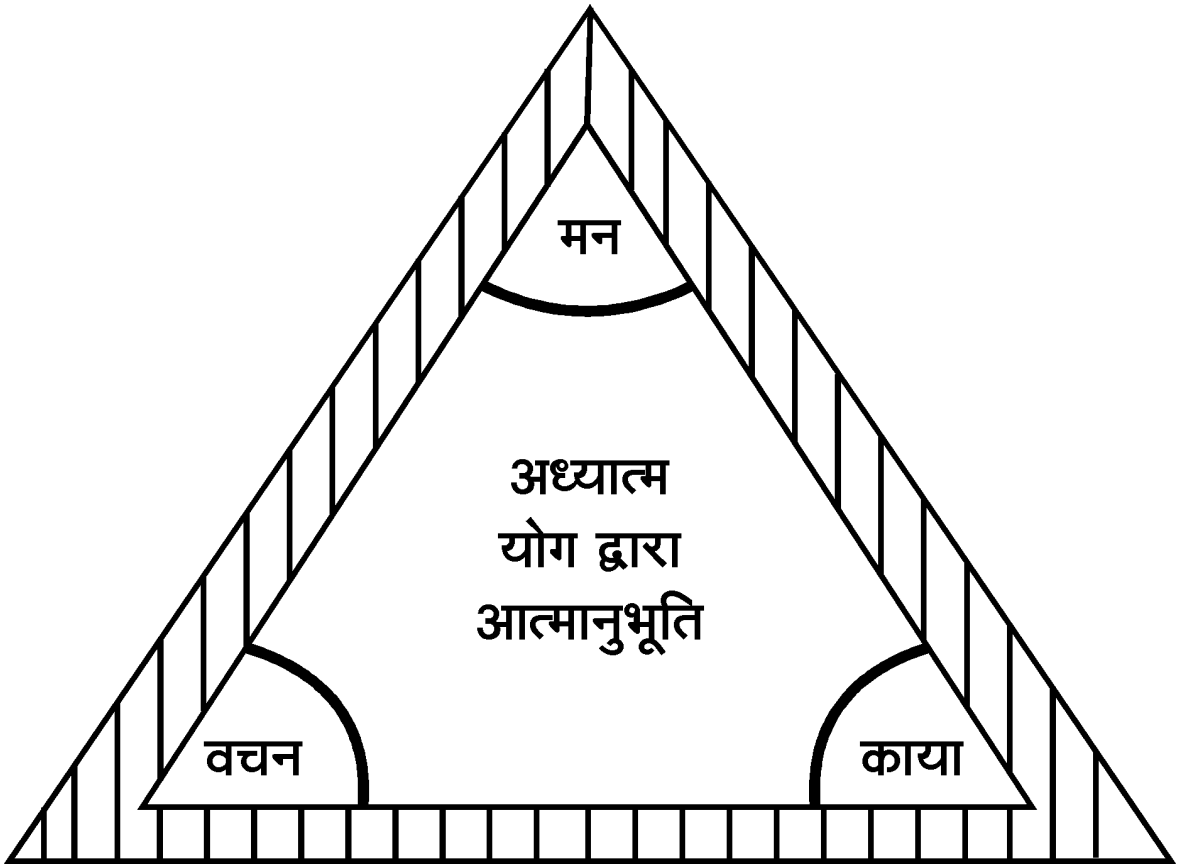
अज्ञापितं न जानन्ति यथा मां ज्ञापितं तथा।
मूढात्मानस्ततस्तेषां वृथा मे ज्ञापनश्रमः।।५८।।

मोही नहीं समझते निज शक्ति को भी, ओ जानते न मम उत्तम बोध से भी।
तो क्यों अहो! अबुध को उपदेश मेरा, होगा नहीं उदित सूर्य नहीं सबेरा।।५८।।

वे कहते हैं कि जो मेरा आत्म स्वरूप है, जिसे मैं जान रहा हूँ, उसे ये मोही लोग कभी जान नहीं सकते। हम अगर इस स्वरूप को किसी को बताना भी चाहें तो वे उस स्थान तक, उस भाव तक पहुँच नहीं सकते। आप जब ध्यान करते हैं और ध्यान में जब अंत की स्थिति आती है। ऐसा भाव आपके अंदर भी क्षणिक उत्पन्न होता है। जब आप ये महसूस करते हैं कि अब हमें किसी से बोलना नहीं है एवं किसी से कुछ कहना नहीं, किसी को कुछ समझाना नहीं। ऐसी ही भावना, ऐसा ही भाव यहाँ आचार्य महाराज कह रहे हैं कि जब हम निरंतर अपने ही आपको अपनी ही देह में भिन्न देखने लग जाते हैं तो हमें ऐसा आभास होने लग जाता है कि दूसरे को समझाने का श्रम भी करना व्यर्थ है क्योंकि जिसको समझ में आना है वह हमें देखकर ही समझ लेगा। हम जिस आनंद की स्थिति में हैं उस आनंद की स्थिति को छोड़कर के दूसरे को समझाएँ ये भी हमें व्यर्थ की बात लगती है। ये अनुभूतियाँ होती हैं जब हम उस आत्मा के निकट आ जाते हैं। आत्मा की इस प्रकार की गहराई से जब हमें आभास होने लग जाता है तो हम भी उन अनुभूतियों को कर सकते हैं, उन्हें महसूस कर सकते हैं। अगर ये क्षण हमारे जीवन में आए तो समझना हम भी अपनी आत्मा के निकट आ रहे हैं और हमें भी उन अनुभूतियों को कुछ न कुछ थोड़े अंश में साक्षात्कार करने का मौका मिल रहा है।

सबसे बड़ा योग है अपने आप से जुड़ना। योग माने जोड़। किसी दूसरे को नहीं जोड़ना बल्कि अपनी आत्मा से पृथक् भूत जो अपना मन, अपना वचन और अपनी काय, इन तीनों का

जो प्रवाह है वो अलग-अलग चल रहा है। सारी की सारी आत्मा की प्राण शक्ति इन तीनों में अलग-अलग रूप से विभाजित होकर के फैलती चली जाती है। उस प्राण शक्ति को मन, वचन, काय की शक्ति को एकमेक करना और उसे जोड़कर के अपनी आत्मानुभूति में लगा देना, इसका नाम अध्यात्म योग कहलाता है। योग का मतलब है अपने आप से जुड़ जाना, अपने आप तक आ जाना और दूसरे को भूल जाना, ये उस योग का सबसे बड़ा परिणाम है। पंच परमेष्ठी की अगर हम आराधना करते हैं तो आपको ये ज्ञान होगा कि पाँचों ही परमेष्ठी पर से अलिप्त रहते हैं, निर्लिप्त रहते हैं। पाँचों परमेष्ठी आत्मा की विशुद्धि से भरे होते हैं। इसलिए अगर हम पंच परमेष्ठी की शरण में जाएँगे तो नियम से ये विशुद्धि बढ़ेगी एवं हमारे अंदर ऐसा ही अलिप्तता एवं निर्लिप्तता का भाव होगा।



श्लोक-५९

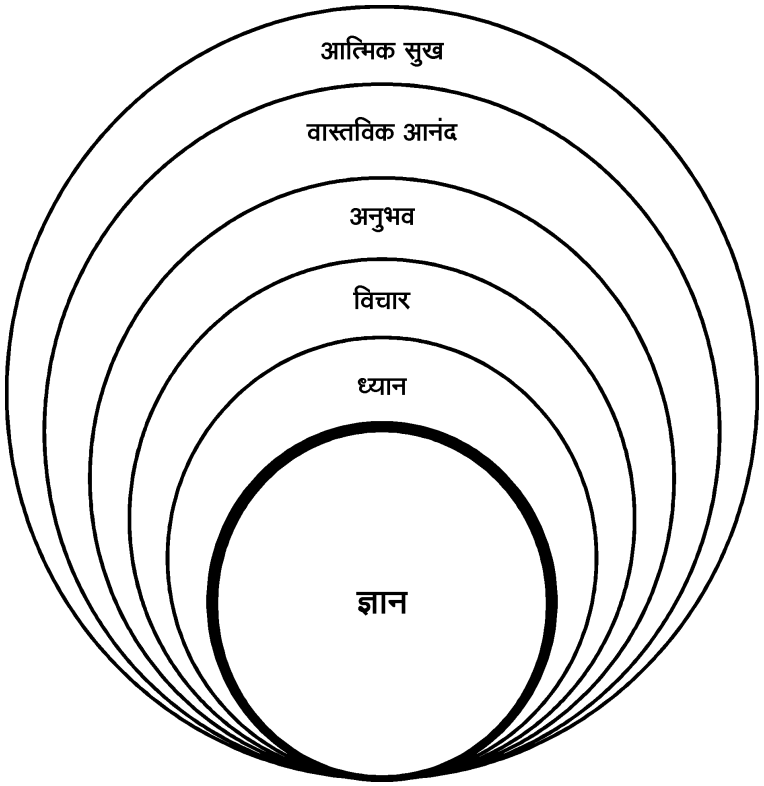
यद्बोधयितुमिच्छामि तन्नाहं यदहं पुनः।
ग्राह्यं तदपि नान्यस्य तत्किमन्यस्य बोधये।।५९।।

सद्बोध शिष्य–दल को जब मैं दिलाऊँ, स्वामी! निजानुभव मैं तब हा! न पाऊँ।
ना शब्दगम्य, निजगम्य, अमूर्त हूँ मैं, कैसे? किसे! कब उसे! दिखला सकूँ मैं।।५९।।

आपकी यात्रा दृश्य से अदृश्य की ओर चल रही है। ये बहुत आनंद की यात्रा होती है क्योंकि दृश्य वस्तु में भटकन होती है और अदृश्य में आनंद होता है। आचार्य कहते हैं कि जो ज्ञान है वो ज्ञान भी जब तक दिया जाता है या देने का भाव किया जाता है तब तक वह ज्ञान भी हमें आनंद नहीं देता। जब वह ज्ञान अपने आप में ठहर जाता है, ज्ञान ही ध्यान के रूप में परिणत हो जाता है तो उस ध्यान में बैठे हुए योगी के लिए किसी को फिर ज्ञान देने की भावना भी नहीं रहती। वह ध्यान में इतना समाहित होता चला जाता है, विचार करता है कि हम किसी को कुछ देंगे तो वह एक विचार होगा। हम किसी को कुछ बताएँगे तो वह भी किसी पदार्थ का भाव होगा लेकिन वह विचार या वह पदार्थ जिसको हम दूसरों को देना चाह रहे हैं, वह दूसरा उस पदार्थ को या उस विचार को ग्रहण तो कर लेगा लेकिन उसके ज्ञान से उसे कुछ भी अनुभव में नहीं आएगा। अनुभव में उसे भी तब आएगा जब वह ज्ञान की प्रक्रिया को छोड़कर के ध्यान की प्रक्रिया में अपनी आत्मा का ही अनुभव करें। जो उसके अनुभव में आएगा वह अनुभव ही उसका वास्तविक आत्मा का साक्षात्कार होगा। वह अनुभव ही उसका वास्तविक धन होगा और अनुभूति ही वास्तविक आनंद के रूप में उसे अनुभूत होगी। जब ध्यानी आत्माओं के अंदर ये ज्ञान उतरने लग जाता है तब वे अपने शिष्यों को भी ज्यादा समझाने का प्रयास नहीं करते। भक्तों को भी ज्यादा ज्ञान बाँटने का प्रयास नहीं करते और वे उन्हें भी उसी अनुभूति की ओर ले जाना चाहते हैं जिस अनुभूति में वो ढलते चले जाते हैं। जो शब्दों के परे है जिसे हम ही केवल अनुभव कर सकते हैं और जिस

आनंद को हमने अनादिकाल में कभी भी आनंद के रूप में देखा ही नहीं, वह अंतरंग का आनंद है, अंतरंग का सुख है, अंतरंग का धन है। इसको 'इनर वेल्थ' कहते हैं। अंतरंग का धन। आप जिस धन के लिए प्रयासरत रहते हैं वह सब 'मटेरियल वेल्थ' यानि भौतिक धन कहलाता है।

ये अंतरंग का धन यानि आत्मिक धन जिसे हम अंतरंग की अनुभूति के लिए संजोते हैं क्योंकि ये बहुत ही दुर्लभ होता है। इस आनंद को प्राप्त करने का, धन को उपलब्ध करने का जिनके अंदर भाव रहता है वह अंतरंग में इतने आनंदित हो जाते हैं कि बाहर से उनके पास धन नहीं भी हो तो भी वो आनंदित रहेंगे और धन होगा तो भी वो उस धन में मदहोश नहीं होंगे। उस धन के घमंड में अपने आनंद को नहीं भूलेंगे। ये इस अंतरंग के धन को पहचानने के लिए आचार्य देव अध्यात्म के माध्यम से हमें ज्ञान देते हैं।



श्लोक-६०

बहिस्तुष्यति मूढात्मा पिहितज्योतिरन्तरे।
तुष्यत्यन्तः प्रबुद्धात्मा बहिर्व्यावृत्तकौतुकः।।६०।।

सन्तुष्ट बाह्य धन में कुपथाभिरूढ़, उत्कृष्ट स्वीय–धन–विस्मृति से 'प्रमूढ़'।
चारित्र धार तपते, तजते कुभोग, पाते प्रमोद निज में 'मुनि' सन्त लोग।।६०।।

आचार्य कहते हैं जो बाहर के विषयों में संतुष्ट होता है उसकी अंतरंग आत्मज्योति हमेशा ढँकी हुई रहती है। उस अंतरंग आत्म ज्योति के अभाव में वह बाहरी विषयों में संतुष्ट तो हो ही नहीं पाता। तृष्णा के कारण से भटकता– भटकता उस सुख की प्यास में मर जाता है लेकिन जो प्रभुत्व हो जाता है जिसे हम कहते हैं जो मेच्योर हो गया, जो ज्ञानी हो गया, जिसके अंदर का ज्ञान जाग्रत हो गया वह प्रभुत्व आत्मा अपनी आत्म ज्योति में ही संतुष्ट होता है। बाहर के विषय उसके लिए केवल कौतुक उत्पन्न करते हैं। कौतुक जानते हो- जैसे कभी गली में कोई मदारी जैसे आ जाता था, बंदर का खेल दिखाता था तो बंदर का खेल देखने के लिए सभी का कौतुक उत्पन्न हो जाता। जब वह डमरू बजाता है तो सब लोग घर के बाहर निकल आते हैं। चलो बंदर का खेल देखते हैं। बाहर कुछ भी होता है, घर के लोग बाहर निकल कर आ जाते हैं। अपनी खिड़की से झाँकने लग जाते हैं और खेल देखने के बाद सोचते हैं देखो थोड़ी देर का कौतुहल था, बाद में लगता है अपनने ये समय यूँ ही खराब कर दिया। ये कौतुहल जैसा बाहर के लिए उत्पन्न होता है, ऐसा ही कौतुहल अंतरंग आत्म ज्योति को देखने के लिए उत्पन्न होता है। जैसे हम भटक-भटककर बार-बार बाहर की ओर जाते हैं और कुछ भी कहीं हमें बाहर दिखाई देता है तो मन होता है इसको और देख लो। किसी के लड़ाई-झगड़े होते हैं तो वही देखने खड़े हो जाते हैं। कैसी भी आवाज आती है उसे सुनने लग जाते हैं, कोई ढिंढोरा पीटा जाता है। वह सुनने लग जाते हैं। हमारा

बाहर के विषय में कौतुक इतना बढ़ा हुआ रहता है कि हम हर बाहर की चीज जानना चाहते हैं। उसी तरह आचार्य कहते हैं जब हमें अपनी अंतरात्मा में संतुष्टि होने लग जाती है तो हम बाहर के विषयों के कौतुक को छोड़कर के अंतरंग आत्मा में भी कौतुक उत्पन्न होने लग जाता है कि आखिर अपने अंदर क्या है। आँखों से जो दिखाई न दे, कानों से जो सुनाई न दे जिसका हम अपने हाथों से स्पर्श न कर पाएँ। वह अंतरंग में ऐसा क्या है, उसको देखने का कौतुहल उत्पन्न हो जाता है तो वह आत्मा बहिरात्मा से अंतरात्मा बन जाता है। यही एक पहचान है कि हमें भीतर से कौतुहल उत्पन्न हो जाए कि आज हमें कुछ देखना है, आज ध्यान में कुछ नया अनुभव लेना है। आज ध्यान में अपने ही अदृश्य वस्तु को देखना है जो कभी भी हमें अपनी आँखों से दिखाई नहीं दे सकती और किसी दूसरे उपायों से भी हम उसे देख नहीं सकते। इस प्रकार के देखने का जो कौतुक उत्पन्न होता है, यही अंतरात्मा में डूबने का भाव है। यही अंतर आत्म दृष्टि की सबसे बड़ी पहचान है कि वह दृश्य जगत को छोड़कर के अदृश्य जगत की यात्रा में उतरना चाहता है। ज्ञान से ध्यान की ओर आना चाहता है। अपनी ही आत्मा में क्या घटित होता है उन स्पंदनों को जब वह पहचानने का भाव करता है तो उसके मन में आता है हम भी पंच परमेष्ठी की आराधना करते हुए अपनी आत्मा के निकट तक पहुँचें। उसी क्रम को वह सामने हाथ जोड़कर बैठ जाता है। प्रसन्नता के साथ, किसी को कोई दु:ख तो नहीं। किसी को कोई विकल्प तो नहीं, उस विकल्प को भी दूर करने का उपाय उस ध्यान के अंदर रहता है। इस ध्यान के माध्यम से बड़े-बड़े महापुरुष, बड़े-बड़े मोक्ष जाने वाले चरम शरीरी आत्माएँ इसी ध्यान के माध्यम से अपने कर्मों का क्षय करते हैं और भ्रांतियों को दूर करके अपने आप में संतुष्ट रहकर के वे जीवन पर्यंत तक बहुत बड़ी-बड़ी तपस्याएँ कर जाते हैं। ये ध्यान हमें जो शक्ति देता है वह शक्ति हमें कोई भी ज्ञान नहीं दे पाता और कोई भी बाहर की औषधियाँ नहीं दे पाती इसलिए इस ध्यान की शक्ति को पहचानें।

श्लोक-६१

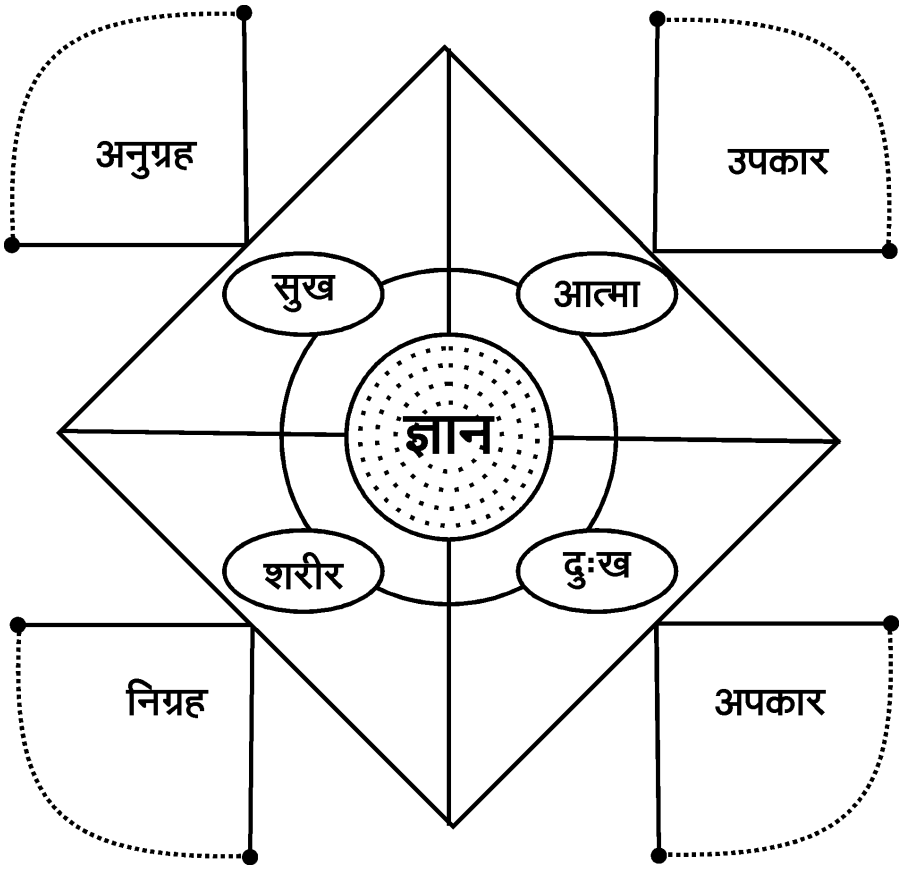
न जानन्ति शरीराणि सुखदुःखान्यबुद्धयः।
निग्रहानुग्रहधियं तथाप्यत्रैव कुर्वते।।६१।।

ना! जानता वह कभी सुख दुःख को है, स्वामी! अचेतन–निकेतन देह जो है।
मिथ्यात्मभाव वश हो तन की सुसेव, मोही नितान्त करता फिर भी सदैव।।६१।।

आचार्य कहते हैं एक चीज को बहुत अच्छे ढंग से जान लो। जो सुख है, दुःख है वह सुख और दुःख भी जानने का काम शरीर नहीं करता। शरीर कभी सुख व दुःख को नहीं जानता। सुख और दुःख को जानने वाला भी आत्मा ही होती है। उस आत्मा के माध्यम से ही उस शरीर के लिए सुख और दुःख में कारणभूत कुछ क्रियाएँ की जाती हैं जो उसके लिए उपकारी हो, सुख के लिए कारणभूत हो, वह शरीर का अनुग्रह कहलाता है, शरीर के ऊपर उपकार करने की क्रिया कहलाती है। जिस के माध्यम से शरीर का अपकार हो, उस शरीर का निग्रह हो, उस अपकार की क्रिया को निग्रह की क्रिया कहा जाता है। शरीर का चाहे अनुग्रह करो, चाहे शरीर का निग्रह करो, शरीर का चाहे अपकार करो, शरीर का चाहे उपकार करो, यह अपकार या उपकार यदि केवल शरीर पर ही किया जाता है और आत्मा की ओर दृष्टि नहीं रहती है तो आचार्य कहते हैं ये भी हमारी अज्ञानता के कारण से चलता रहता है।

शरीर का उपकार तो आप अच्छे ढंग से जानते हैं। खूब अच्छे-अच्छे माल-मलाई के भोजन करना और शरीर को खूब फुला–फुलाकर के स्थूल बना लेना। खिलाते-खिलाते उसमें रोग भी हो जाए तो उस पर ध्यान नहीं देना। जब रोग उत्पन्न हो तब दवाई खा-खाकर के उन रोगों से बचाव करने का प्रयास करना। ये सब शरीर का अनुग्रह है, उपकार है जो हर जीव आत्मा बड़े अच्छे ढंग से करता रहता है। कभी–कभी अज्ञानता से उसी शरीर का निग्रह

भी किया जाता है। मन में आ गया हमने शरीर को सुखाने के लिए, शरीर को तपाने के लिए अनेक प्रकार की तपस्या अंगीकार कर ली और वह केवल शरीर को ही सुखाने में काम आई, आत्मा के अंदर कर्म को सुखाने में कोई भी उसका उपयोग नहीं रहा। ऐसी अज्ञानता के साथ में जो किया जाने वाला सुख और दु:ख को उत्पन्न करने वाला या निग्रह–अनुग्रह की क्रिया को करने वाला जो कार्य है वह भी केवल शरीर तक सीमित रहता है जब तक कि हम अपनी आत्मा को नहीं जानते। इसलिए आचार्य कहते हैं पहले ये जान लो कि हम शरीर में लगे तो रहते हैं लेकिन शरीर वस्तुत: सुख और दु:ख किसी को भी नहीं जानता है। आप को शरीर से सुख हो सकता है, शरीर से दु:ख हो सकता है लेकिन शरीर न सुख को जानता है न दु:ख को जानता है। वह जीवात्मा अपने आत्मज्ञान से इस शरीर में सुख हो रहा है या दु:ख हो रहा है इसको जानता है इसलिए शरीर के ऊपर निग्रह या अनुग्रह ये दोनों ही करना व्यर्थ है।



श्लोक-६२

स्वबुद्ध्या यावद् गृहणीयात् कायवाक्चेतसां त्रयम्।
संसारस्तावदेतेषां भेदाभ्यासे तु निर्वृतिः।।६२।।

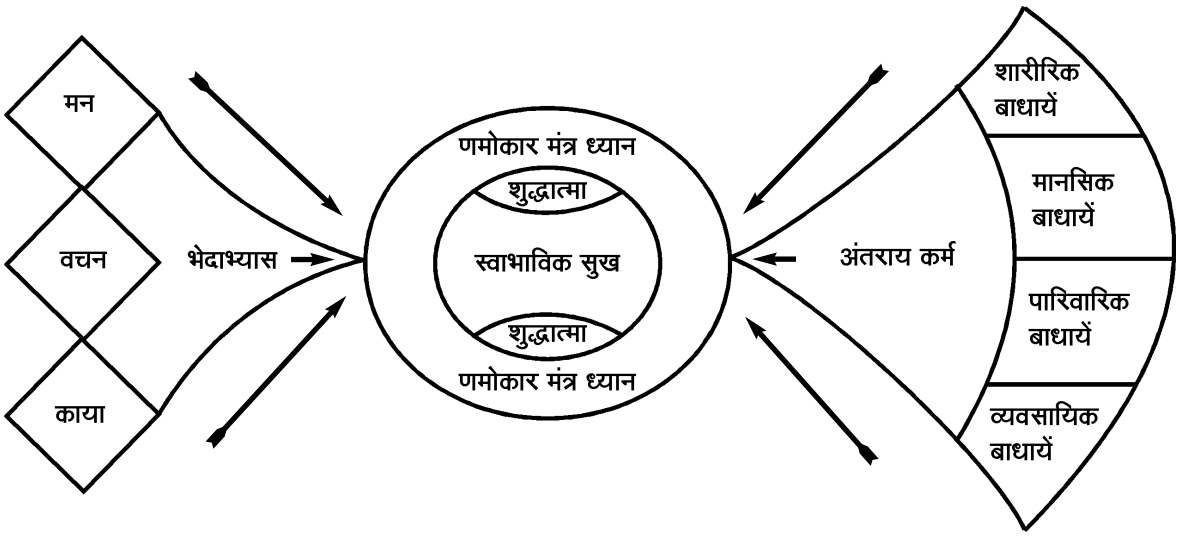
देहादि में निरत हैं जबलौं हि जीव, निर्भ्रांत दुःख सहता तबलौं अतीव।
शुद्धात्म ध्यान तुझको जब हो खुशी है, तेरे तदा निकट ही शिव–कामिनी है।।६२।।

जिस शिव की, जिस सुख की, जिस कल्याण की यह आत्मा इच्छा करता है वह उसके निकट है और वह निकटता इस शुद्धात्मा के ध्यान से प्रकट होती है। शुद्धात्मा का ध्यान बुद्धि में जब हम अपने वचन, अपने काय और अपने चित्त तीनों को अलग–अलग कर भेद अभ्यास करते हैं तो उस भेदाभ्यास से शुद्धात्मा का ध्यान प्रकट होता है। इस भेदाभ्यास से ही सुख उत्पन्न होता है। निर्वृत्ति कहते हैं– आत्मा का आह्लाद भाव यानि आत्मा का अपना स्वाभाविक सुख। यह स्वाभाविक सुख जब अपनी अनुभूति में आने लग जाता है समझ लो संसार अपना छूटने लगा और हम संसार से दूर होने लगे। जब तक यह स्वाभाविक सुख की किंचित् भी अनुभूति नहीं होती तब तक हमारा संसार अपने मन, वचन और काय तीनों से जुड़ा रहता है। तीनों से जुड़कर के हम अपनी बुद्धि में इन तीनों को एकमेक करके चलते हैं, तब तक हमारे संसार की वृद्धि ही होती रहती है। इसलिए भेद अभ्यास करना बहुत जरूरी है।

भेद का मतलब है जो चीजें हमें मिली हुई दिखाई दे रही हैं। उनको हम थोड़ा सा अलग–अलग महसूस करें। मन को, वचन को, काय को अपनी आत्मा से अपनी ही बुद्धि के द्वारा इस ढंग से अलग–अलग महसूस करें कि वो भेद अभ्यास की निष्णाता होने पर हमें अपने आप से निर्वृत्ति की उस सुख की अनुभूति होने लगे, जो सुख हमारा वास्तविक आत्मा का स्वभाव है। शरीर के सुख को, मन के सुख को इस स्तर पर नहीं जिया जा सकता। शरीर का सुख तात्कालिक होता है, मन का सुख भी अपनी इच्छा की पूर्ति मात्र ही होता है और उससे भी बढ़कर के जो सुख

हमेशा अपने पास में रहने वाला होता है वह इस शरीर और मन से ऊपर उठा हुआ सुख होता है। वहाँ तक पहुँचाने का प्रयास ये आचार्य देव अपने इन ग्रंथों के माध्यम से करते हैं।

पूर्वाचार्यों के भी अनेक ग्रंथों में अनेक प्रकार का भाव मिलता है कि हमेशा भेद विज्ञान से अपनी आत्मा के अंदर अभ्यास को बनाकर के रखो। उस भेद विज्ञान का अभ्यास निरंतर करो। शरीर से आत्मा की भिन्नता, आत्मा से मन की भिन्नता एवं आत्मा से वचनों की भिन्नता और इस भिन्नता के अभ्यास से जो आपके अंदर अनुभूति होगी, उसी का नाम सुख होगा। ऐसे वास्तविक सुख की ओर आपको हम ले चलते हैं जब तक आप अपने **मन, वचन और काय** तीनों को सही ढंग से नहीं बनाओगे, तब तक आप उस वास्तविक सुख की ओर नहीं जा पाओगे। उस वास्तविक सुख तक पहुँचने के लिए हम उसी णमोकार मंत्र का आलंबन लेते हैं जो णमोकार महामंत्र विश्व में शांति के लिए बहुत आवश्यक है। विश्व की शांति हो न हो लेकिन अपनी आत्मा अपने चित्त की शांति के लिए उस णमोकार मंत्र का आलंबन लेना बहुत आवश्यक है।



श्लोक–६३, ६४, ६५ व ६६

घने वस्त्रे यथाऽऽत्मानं न घनं मन्यते तथा।
घने स्वदेहेप्यात्मानं न घनं मन्यते बुधः।।६३।।
जीर्णे वस्त्रे यथात्मानं न जीर्णं मन्यते तथा।
जीर्णे स्वदेहेप्यात्मानं न जीर्णं मन्यते बुधः।।६४।।
नष्टे वस्त्रे यथाऽऽत्मानं न नष्टं मन्यते तथा।
नष्टे स्वदेहेप्यात्मानं न नष्टं मन्यते बुधः।।६५।।
रक्ते वस्त्रे यथाऽऽत्मानं न रक्तं मन्यते तथा।
रक्ते स्वदेहेप्यात्मानं न रक्तं मन्यते बुधः।।६६।।चतुष्कम्

ज्यों वस्त्र को पहन मार्दव स्पर्श शस्य, हैं मानते न निजको 'बलवान् मनुष्य'।
ना मानते सुबुध त्यों निज देह देख, सन्तुष्टपुष्ट निज को बलवान् सुरेख।।६३।।
होता यदा वसन है यदि जीर्ण–शीर्ण, कोई तदा समझते निज को न क्षीण।
काया जरा समय में यदि कांति हीन, ज्ञानी तदा समझते निज को न क्षीण।।६५।।
है मूल्यवान् पट भी यदि नष्ट होता, संसार में अबुध भी न कदापि रोता।
देहावसान यदि हो मम तो खुशी है, मेरा नहीं मरण यों कहते वशी हैं।।६५।।
हैं पंक से मलिन यद्यपि शुक्ल वस्त्र, पै मानते मनुज तो निज को पवित्र।
तो देह में रुधिर पीव पड़े सड़े भी, योगी स्वलीन फिर भी, तपते खड़े ही।।६६।।

आचार्य कह रहे हैं जैसे कोई मनुष्य मोटे वस्त्र पहन लेने पर स्वयं को मोटा नहीं मानता है। देह को मोटा होने पर भी स्वयं को मोटा नहीं मानता है वैसे ही वस्त्र को पुराना या जीर्ण–शीर्ण होने पर स्वयं को पुराना या जीर्ण–शीर्ण नहीं मानता है। जो आत्मा भेद अभ्यास अपना रहा है वह

देह की वर्तमान व्यवस्था में परिवर्तन को आत्मा का परिवर्तन नहीं मानता है वही उत्कृष्टता को प्राप्त करता है। सभी लोग अपने ज्ञान चक्षुओं से वस्तु की व्यवस्था को देख रहे हैं। अपने अंतर्मन से धर्म को ग्रहण करने का अंतरात्मा को महसूस करने का भाव कर रहे हैं सभी लोग अपनी अंतरात्मा को परमात्मा से जोड़ने का भी भाव कर रहे हैं। जो काम निरंतर चल रहा है वह चल रहा है और उसे चलते रहना चाहिए क्योंकि दुनिया का हर द्रव्य, हर कण, हर क्षण परिवर्तित होता रहता है। प्रत्येक पर्याय का द्रव्य अपने आप में परिणमन कर रहा है, इस परिणमन को हम कभी भी रोक नहीं सकते। जहाँ तक देखने और जानने की बात है, आदमी अपने अंदर से उतना ही जान सकता है जिसके अंदर जितना ज्ञान है लेकिन देखने के लिए वह उतना देख सकता है जितना उसके अंदर की दृष्टि खुलती चली जाती है। हम लोग हमेशा ज्ञान को महत्त्व देते हैं लेकिन कभी–कभी ऋषि–महात्मा लोग इस ज्ञान से भी बढ़कर के उस दृष्टि को महत्त्व देते हैं जिस दृष्टि के माध्यम से सब कुछ अपने आप दिखने लगता है। ज्ञान भी हमें होता है, जितना हम अपने दिमाग का उपयोग कर पाते हैं लेकिन दृष्टि से हम बहुत कुछ देख सकते हैं जो हमारे सामने है वो भी देख सकते हैं, जो हमसे बहुत दूर है बहुत परे है उसको भी हम देख सकते हैं। आपको ऐसी दृष्टि चाहिए जिस दृष्टि के माध्यम से हमें विश्व के समूचे पदार्थों का स्वभाव समझ में आ जाए, उनका परिणमन समझ में आ जाए। जब हम हर चीज के स्वभाव को समझने लगते हैं तब हम अपने स्वभाव में स्थिर अपने आप होने लगते हैं। भगवान् के द्वारा बनाए हुए ज्ञान की वह कृत्य व्यवस्था केवल उस स्वभाव को बनाने के लिए है। अगर वह स्वभाव हमारे ज्ञान में नहीं आता और हमारी दृष्टि ऐसे खुल जाए कि हमारे लिए जो दृष्टि मिली, हम उसको ही केवल पर्याय न समझें। देखना होता है आँखों से, वह देखता है और जानता है लेकिन यहाँ अंतरदृष्टि की बात की जा रही है। अंतरदृष्टि को खोलने के लिए मन की आँखों को खोलना पड़ता है। मन के अंदर भी आँखों को और भीतर तक खोलना है तो भीतर भी एक और आँख होती है, उस आँख को खोलना पड़ता है, जैसे ही वह आँख खुलती है हमें अपने अंतरंग का भी संसार दिखता है और बाहर का भी संसार अच्छे ढंग से दिखने लग जाता है।

आप जितना भी कुछ देख रहे हो सब इंद्रियों के माध्यम से देख रहे हों। साधु के अंदर एक और दृष्टि खुल जाती है और जिसके माध्यम से वह विश्व के सब पदार्थों को देखता है। वह तुमको भी जानता है और जो यहाँ नहीं है, उनको भी जानता है।

आस्था

आचार्य कुंदकुंद देव प्रवचनसार जैसे महान ग्रंथ में कहते हैं–

अगर साधु है तो उसे हमेशा अपने चर्म चक्षुओं से नहीं देखना, उसे आगम की आँख से देखना। साधुओं के अंदर आगम की आँख होती है। जितने भी जीव हैं, इनके पास केवल इंद्रियाँ ही हैं देखने के लिए। देवों के पास में दूसरी आँख होती है। देवता लोग दूर देखने के लिए अपने अवधि ज्ञान का प्रयोग करते हैं। एक उन आत्मा के लिए भी बताया जो अपनी आत्मा के एक–एक कण से देखते हैं, एक–एक प्रदेश से जानते हैं। उनकी दृष्टि इतनी खुल चुकी हैं वहाँ पर कोई आवरण नहीं है उन सिद्धों के सभी आत्मप्रदेश एक–एक चक्षु का काम करते हैं। ऐसे वो सिद्ध भगवान् की दृष्टि और सिद्ध भगवान् को देखने की उनके अंदर की दृष्टि भी हमें आचार्यों के द्वारा दिए हुये ज्ञान से ही मिलती है। सिद्ध भगवान् क्या देख रहे हैं, कैसे देख रहे हैं, कहाँ से देख रहे हैं, ये हम भी देख सकते हैं। वो हमें देख रहे हैं और हम भी उनको देख सकते हैं लेकिन आपको उन्हें देखने के लिए अपनी आँखें बंद करनी पड़ेगी क्योंकि जिन आँखों से तुम मूर्त पदार्थ को देख रहे हो उन आँखों से कभी भी अमूर्त पदार्थ नहीं दिख सकता। आँखों का काम केवल मूर्त को देखना है। अंतरदृष्टि का कार्य अमूर्त पदार्थ को देखना है। सिद्ध भगवान् को देखने के लिए तुम्हें अपनी मन की आँखें खोलनी होगी, बाहर की आँखों को बंद करना पड़ेगा। मन की आँखें तब खुलेगी जब मन के अंदर जिस चीज को हम देखना चाहें, जिसके प्रति आस्था हो। आस्था का मतलब ही है, आ माने आदर से, स्थ माने ठहर जाना, **आस्था** कहलाता है। जिस चीज में हम अपनी आस्था कर रहे हैं वह चीज हमारे अंदर में, हमारे मन में स्थिर हो जाए, ठहर जाए, रुक जाएँ तो समझ लेना आपकी उस पदार्थ के प्रति आस्था है। आस्था जब भगवान्, अरिहंत, सिद्ध किसी के प्रति भी रखते हैं तो वो हमारे मन में आकर के ठहरनी चाहिए और हमारे अंतर्मन की आँखों में वह दिखनी चाहिए। उस आस्था के, श्रद्धा के माध्यम से हमें वह दूर रहने वाली चीज भी दिखाई देती है और उस दूर रहने वाली चीज को भी हम अपने पास में देख सकते हैं। किसी ने कहा है– हे प्रभो, आप बहुत दूर हैं तो हमें इसकी कोई दरकार नहीं, हमें जब भी आपको देखना होता

है, अपनी आँखें बंद करता हूँ, अपने हृदय में आपकी तस्वीर देख लेता हूँ। ये वो अंतरदृष्टि होती है जिसके माध्यम से साधु हमेशा उन अरिहंतों को देखता है, सिद्धों को देखता है, उन गुरुओं को देखता है, जो भले ही मुझसे दूर हो लेकिन उस की अंतरदृष्टि में वो उसके पास में रहते हैं। तुम लोग पास में होते हुए भी दूर रहे आते हो। गुरु तुम्हारे पास में आते हैं और तुम दूर भागते रहते हो क्योंकि आपके अंदर अभी वो आस्था केंद्रित नहीं हो पा रही है। आस्था केंद्रित हो जाती है तो हमें ऐसे भागने की जरूरत नहीं पड़ती।

हम एक स्थान पर स्थिर होकर के उस चीज को समझना चाहते हैं कि अगर हमें सिद्धों और अरिहंतों के दिग्दर्शन कराने के लिए, उनको दिखाने के लिए कोई मीडिया चाहिए, एक बीच में टॉवर चाहिए पड़ता है।

चाहे वह बी.एस.एन.एल. का हो, चाहे वह आइडिया का हो, चाहे रिलायंस का हो, एक टॉवर होना चाहिए। उस टॉवर से हमारे अंदर वो वेव्स आती है, यदि हम कवरेज में रहते हैं तो उस टॉवर से हमें जितनी भी चीजें आती हैं वो हमें देखने, सुनने व जानने को मिल जाती है, उन अरिहंतों की, सिद्धों की और आचार्य गुरु भगवान् की। इतना बड़ा टॉवर यहाँ मंदसौर में लगा है और उसके बावजूद भी तुम्हें यदि भागने की पड़ी है। हमारे समझ में नहीं आ रहा कि तुम कौन सा मोबाइल लेकर के बैठते हो कि जिसकी वेव्स तुम्हें यहाँ नहीं मिल रही। तुम्हें अपने कवरेज एरिया में रहने का मतलब है कि तुम अपने आपको संयत बना रहे हैं। अपने आप ही आप में चारित्रता और नैतिकता प्रकट होती चली जाती है। आज मनुष्य को देखता हूँ तो मनुष्य मानवता से दूर हट रहा है क्योंकि उसके अंदर अपने ही चारित्र को, अपनी ही नैतिकता को समझने की कोई भी आज आवश्यकता नहीं रह गई। वह सोचता है कि आज के समय में चारित्र व नैतिकता जैसी चीजों का कोई अर्थ ही नहीं है। आज हर व्यक्ति के दिमाग में ये बात रहने लगी है जबकि बिना चरित्र के न कोई समाज बनता है, न कोई धर्म बनता है, न देश की कोई पहचान होती है। आदमी का अपना चरित्र बन जाता है, उसी चरित्र से वह दूसरे के सामने जब आता है तो वही चरित्र उसकी नैतिकता कहलाने लग जाता है। हमें चरित्र का भी निर्माण करना है और नैतिकता का भी। पहले के जमाने में वह नैतिकता अपने आप हमें सीखने को मिल जाती थी– माताओं के माध्यम से, पिताओं के माध्यम से, नाना–नानियों से, मामा–मामी से सीखने को मिल जाती थी। पहले छोटे–छोटे दृष्टांतों के माध्यम से हमें नैतिकता सिखाई जाती

थी जिसे आज **मोरेलिटी** कहते हैं वह हमें ओरल सीखने को मिल जाती थी। चारित्र में व नैतिकता में इतना सा बस अंतर होता है कि चारित्र व्यक्ति का स्वकृत निर्मित होता है और नैतिकता उसकी तब समझ में आती है जब किसी दूसरे के सामने खड़ा होता है। नैतिकता उसका वह व्यवहार रूप है जो वह दूसरे के सामने करता है और चारित्र उसको कहते हैं अकेले में भी उसको महसूस होता है। आदमी अकेले में रहकर भी अपने आप में वह गिल्टी महसूस नहीं कर रहा है, अपराध बोध से ग्रसित नहीं, हमेशा संतुष्टता के भावों से जी रहा है तो यही उसके चारित्र की सबसे बड़ी पहचान होती है जो अकेले में उसको परेशान नहीं करता है। जो आदमी गलत काम करता है, जिस आदमी के अंदर गलत भावना है, वो दूसरे के सामने आएगा, खुलकर बात नहीं कर पाएगा, नजरें चुराएगा, अपने अंदर के भावों को स्पष्ट नहीं कर पाएगा, प्रकट नहीं कर पाएगा। वह इतना परेशान होएगा कि अपनी परेशानी किसी को बता नहीं पाएगा। आज कल के बच्चों के अंदर सबसे ज्यादा अगर परेशानी इस बात की है कि वो किसी ओर से परेशान नहीं होते, वो अपने आप से परेशान होने लगते हैं। अपने आप से व्यक्ति परेशान होता है जिसके अंदर की चारित्रिक दृढ़ता या शून्य होती है या उसके अंदर थोड़ा सा चारित्र होने के बाद वह उससे भटक जाता है। हर मानव का जो मानव के प्रति व्यवहार होता है, उस व्यवहार के साथ जो व्यक्ति जुड़े, उसी को नैतिकता कह सकेंगे और वह नैतिकता यदि परस्पर में आने लग जाती है तो हर व्यक्ति अपने आप में चारित्रिक होने लगेगा, तभी समझना वह व्यक्ति वास्तव में धार्मिक होने लगा।

धर्म की शुरुआत उसी चारित्र में होती है जो चरित्र हमारी आत्मा को और हमारे संपूर्ण जीवन को निर्माण की ओर ले जाए। वह निर्माण तब होता है जब अपने भीतर से उन गुणों को अपना लें जो गुण हमारे अंदर हैं लेकिन उन गुणों की ओर हम ध्यान नहीं देते। आपने सुना होगा मानव को मानवीयता के साथ में जीने के लिए एक गुण की आवश्यकता है, जिसे कहा जाता है **'ईमानदारी'।** ईमानदारी का मतलब आप दुनिया के हर क्षेत्र में जाएँ, आप जो भी हैं, जिस बिजनेस में हैं, जिस सर्विस में हैं, जिस स्कूल में हैं, जिस कॉलेज में हैं वहाँ कोई भी काम आपके सामने है। उस हर एक जॉब के साथ में बस एक चीज जुड़ जाए 'ईमानदारी'। इस ईमानदारी के लिये इतने कोर्स और उपदेश देने पड़ रहे हैं यदि इस देश में ये गुण सब में आ जाये तो इस देश को दो दिन नहीं लगेंगे ये देश अमेरिका और जापान से

बहुत ऊँचा हो जायेगा। ईमानदारी एक ऐसी चीज है जो व्यक्ति को अपने काम से, पेशे से जोड़ देती है। नैतिकता और चरित्र जहाँ पर होंगे वो समाज भले ही छोटी होगी लेकिन उस समाज का नाम दुनिया में देश–विदेश में होगा। आज हर समाज के अंदर उस चीज की जरूरत है और इसके लिए हमें हमेशा प्रयत्नशील रहना। अगर आपके अंदर उस चरित्र के प्रति दृढ़ता नहीं है तो आप कभी भी कोई ऐसा काम नहीं कर सकते जो काम आपके जीवन में लंबे समय तक आपको सुख देता रहे। अगर आप कुछ नहीं जानते केवल अपने चरित्र को बनाए हुए हैं तो आपके जीवन में कभी अशांति नहीं होगी क्योंकि आपके पास सबसे बड़ा सुख है 'ईमानदारी' का। महाराज, हमने दुनिया के दु:ख देख लिए पर अपनी ईमानदारी को नहीं छोड़ा। कभी हमने अपने जीवन में गलत काम नहीं किया, गलत रास्ते पर नहीं चले। यही आदमी के जीवन की पूँजी होती है, सबसे बड़ा चारित्र होता है, यही सबसे बड़ी शान होती है। कारों में घूमने का नाम शान नहीं है अपने चरित्र का निर्माण करना अपनी शान है। अगर आपके जीवन का चरित्र चला गया समझ लो सब कुछ चला गया। आज मानव को मानवता के गुणों से जुड़ने के लिए केवल इसी की जरूरत है। जैसे चरित्र राम के, महावीर के, पार्श्वनाथ के हुआ करते थे, वैसे ही चरित्रों के साथ में जुड़े और हम अपनी ईमानदारी के साथ में जिस क्षेत्र में हैं उसमें कार्य करें तो हर घर में खुशियाली होगी और सुख शांति होगी। घर में अशांति का कारण केवल ये चरित्र का पतन होता है। घर के किसी भी सदस्य पर यदि घर के व्यक्तियों को संदेह/शंका होने लग जाती हैं तो घर की शांति वहीं से भंग होने लग जाती है। अपने मन में तो शांति बाद में आएगी पहले अपने परिवार के सदस्यों में वह नैतिकता व चरित्र का विकास करो जिस चरित्रता को भगवान् महावीर स्वामी ने कहा कि पाँच मूलगुणों को हमेशा आप अपना कर रखो– हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील और परिग्रह, इनको जितना कम से कम करेंगे, इनमें जितना कम भाव रखेंगे उतना ही हमारे चरित्र का निर्माण होगा। जितनी शिक्षा हम ग्रहण करेंगे वो सब हमारे चारित्र के विकास में काम आएगी।

अगर आप जानना चाहोगे कि चरित्र का विकास कैसे होता है तो आपको उन महापुरुषों की जीवनियाँ पढ़नी चाहिए जिन्होंने अपने जीवन में अनेक कठिनाइयाँ झेली। हर व्यक्ति उसी चारित्र से निकला जो चरित्र हमेशा सार्वभौमिक रहा है जिसके लिए महावीर, पार्श्वनाथ भगवान् सभी ने कहा है। ऐसे उस चरित्र की ओर हमारी दृष्टि होगी तो हम और ऊपर उठ सकेंगे। हर

मनुष्य के अंदर केवल एक भावना आए कि हम हर काम ईमानदारी के साथ करेंगे। अगर यहाँ बैठकर प्रवचन सुन रहे हैं तो वो भी ईमानदारी से सुनें। जो पढ़ रहे हैं वो ईमानदारी से पढ़ें और दिल से पढ़ेंगे। आज सबसे बड़ी जरूरत है कि हम हर काम में अपना उपयोग एकाग्रचित्त होकर के लगाए और उस काम को करते हुये अपने मन में सोचे कि वही काम हमें खुशी देने वाला होगा। आदमी सोचता है हमें खुशी के लिए सफल होना पड़ेगा, बड़ी सफलता चाहिये होगी पर हम कहते हैं हर क्षण हमारे सामने सफलता है, खुशी है। हर क्षण को सफलता के साथ गुजारो कि वह हमारी खुशी बनता चला जाए। अलग से कुछ मिल जाये हमें तो खुशी मिलेगी, ऐसा नहीं होगा। हम हर काम में खुशी निकाल सकते हैं। अगर हम प्रवचन भी सुन रहे हैं तो वह भी हमारी खुशी के लिये होना चाहिए। आपको ये ध्यान रखना है कि हम हमेशा खुश रह सकते हैं। खुश रहने के लिए किन्हीं बाहरी बातों की उपलब्धियों की ज्यादा आवश्यकता नहीं है, ये केवल एक मानसिकता है। इस मानसिकता के लिये हम तैयार हैं, हम जब चाहे तब खुश हैं। खुश रहने की कला आनी चाहिए, ये कला तब आएगी जब हम भीतर से चारित्रकता व नैतिकता से भरे होंगे।

लाल बहादुर शास्त्री

एक छोटा सा दृष्टांत 'लाल बहादुर शास्त्री'। इनके जीवन में इतनी ईमानदारी थी। जब वे प्रधानमंत्री थे उस समय पर कूलर व बड़े–बड़े पंखे हर किसी को उपलब्ध नहीं थे। विशेष लोगों को ही ये सुविधा मिलती थी। जब वो प्रधानमंत्री बन गए तो उनके घर में पंखे–कूलर लगाने के लिए एक व्यक्ति आया। उन्होंने पूछा– किसलिए आए हो? बोला पंखे–कूलर फिट करने आया हूँ। इससे क्या होगा? ठंडी–ठंडी हवा आएगी। उन्होंने कहा कि हमें इस कूलर की कोई जरूरत नहीं है। उनकी बेटी कहती है– पापा, आप उन्हें रोक क्यों रहे हैं। आप प्रधानमंत्री बन गए हैं तो घर के लोगों व बाहर से आने वाले लोगों को ठंडी हवा अच्छी लगेगी। वो कहते हैं बेटी अभी तक तेरा जितना जीवन गुजर गया तुझे बिना कूलर–पंखे के गर्मी सहन करना आ रहा है, जिस दिन बिजली नहीं होगी या पानी नहीं होगा तब तेरी क्या हालत होगी, तुझे मालूम है। इस कूलर की हमें जब तक आवश्यकता नहीं है जब तक हम अपने मन में

इतना दृढ़ हैं कि इतनी गर्मी तो हम सहन कर ही सकते हैं। यदि गर्मी सहन करने की आदत तुमने डाल ली तो कभी भी तुम्हें परेशानी नहीं होगी। यदि कूलर की आदत हो गई तो घर से बाहर कदम रखेगी तो और गर्मी लगेगी। अपने को अपना जीवन ऐसा बनाना चाहिए कि कभी किसी से हमें किसी भी पदार्थ के ऊपर पराश्रित न होना पड़े। हमें स्वाभाविक जीवन जीना चाहिए। ये सीख प्रधानमंत्री होने के बाद भी लोग अपने बेटी–बेटों को दिया करते थे। आज ऐसी सीख कोई नहीं देता। आप सब तो अपने बच्चों को इतना पराश्रित बना देते हो कि बिना ए.सी. के वो रह ही नहीं सकते। घर से निकले, कार में घुसे, कार में भी ए.सी. लगी है और जहाँ पहुँचे वहाँ भी ए.सी. लगी है।

एक बार अभी उदयपुर की घटना है। महाराज के आहार में न कूलर होता है न फ्रिज। एक घर में आहार के समय उन्होंने अपने बेटों को भी बुला लिया, आहार देने के लिए। उस बच्चे को बिना पंखे–कूलर के आधा घंटा रहना मुश्किल हो गया, वह महाराज को हवा करने की जगह स्वयं को करने लगा। वह बार–बार बैठता, फिर उठता, फिर बैठता। मैं उसे देखकर सोच रहा था कि देखने में हट्टा–कट्टा है फिर ऐसा क्यों कर रहा है? उसकी मम्मी कहती है ये बिना ए.सी. ऐसे ही मछली की तरह तड़पता है। हम इतना ज्यादा क्यों पराश्रित होते चले जा रहे, क्यों स्वयं को बिगाड़ते चले जा रहे हैं। हमें ये जीवन सहज जीवन जीने के लिए मिला है और हम यदि सहज आत्म तत्त्व को उपलब्ध करेंगे तो वही आत्मा के सहज ज्ञान, सहज दर्शन, सहज चारित्र सब सहज स्वभाव है, पर ये जीवन बाहर से कठिन होता चला जा रहा है, सहजता हमारे जीवन में भीतर से तो उद्भूत होनी चाहिए वो नहीं हो रही है। हम जितने सहज बाहर से बनेंगे उतने ही सहज भीतर हो जाएँगे। जो व्यक्ति भीतर–बाहर सहज हो जाता है वो बहुत मुख्य अपने आप बन जाता है, उसे मुख्य बनने की जरूरत नहीं पड़ती। आज आप लोगों को 'सिम्पलीसिटी व ऑनेस्टी' ये दो चीजें याद रखना है। इन्हीं से हमारा जीवन आज भी अच्छा बनेगा। ये चीजें हम अपने बच्चों को सिखाएँ तो वे अहंकार में नहीं जियेंगे। वे सरलता के साथ सहजता से जीवन जियेंगे।

श्लोक-६७

यस्य सस्पन्दमाभाति निःस्पन्देन समं जगत्।
अप्रज्ञमक्रियाभोगं स शमं याति नेतरः।।६७।।

जो आत्म–चिन्तन सदा करता नितान्त, निस्पन्द ही जग उसे दिखता प्रशान्त।
होता वही 'जिन' अतः गतक्लांत विज्ञ, मोही सदा दुख सहे बहिरात्म अज्ञ।।६७।।

जब हमारी आत्मा में अपना ही आत्मिक सुख अवतरित होने लग जाता है, प्रकट होने लग जाता है उस समय हमें यह संसार कैसा लगेगा। संसार की अनुभूति भी आचार्य देव इस ढंग से करा रहे हैं अगर आपको अपनी ही आत्मा में आनंद आएगा तो जब आप आँख खोलोगे तो देखोगे कि ये संसार ये जगत जो हमेशा स्पंदन से सहित है वह उसको निष्पंद रूप में दिखाई देने लग जाता है। स्पंदन माने आप इस दुनिया में किसी को भी देखोगे हर कोई आदमी दौड़ता-भागता कुछ न कुछ मन-वचन-काय की क्रियाएँ करता हुआ ही मिलेगा। कोई भी आपको दुनिया में शांत बैठा हुआ नहीं दिखाई देगा। आप कहीं भी दुनिया का एक रूप में चित्रण अपनी आँखों में लाओगे तो आपको लगेगा हर आदमी दौड़ रहा है, भाग रहा है। सड़कों पर, चौराहों पर, सिवाय दौड़-भाग के कुछ नहीं दिखाई देगा। थोड़ा सा भी सवेरा हो जाता है तो सड़कों पर बस दौड़-भाग के अलावा कुछ नहीं दिखता। अगर आप थोड़ी देर चौराहे पर खड़े हो जाओगे तो देखोगे कि ये दुनिया कहाँ भाग रही है। दुनिया के अंदर कितना भी स्पंदन हो और दुनिया कहीं भी भाग रही हो पर हमारे अंदर यदि स्थिरता आ जाती है तो हम ये महसूस कर सकते हैं कि ये दुनिया किधर भाग रही है। हम अगर अपने आप में उद्विग्न होंगे तो आपको इस दुनिया के अंदर कहीं पर भी किसी भी प्रकार से शांति व सुख मिलने वाला नहीं है। इसलिए आचार्य कहते हैं कि अगर आप शांति चाहते हैं तो शांति का अभ्यास पहले अपने अंदर करें। उसके अंदर शांति जब उत्पन्न हो जाएगी तो वह बाहर भी देखेगा तो वह इतना अभ्यस्त हो जाता है कि उस योगी को अगर चौराहे पर भी खड़ा कर दिया जाए तो वो चौराहे पर खड़ा-खड़ा देखकर अपने मन में अशांति नहीं

लाएगा लेकिन ये सोचेगा कि ये दुनिया कैसी पागल की तरह चारों ओर दौड़ रही है। ऐसा आपको कभी अनुभव में आता है, आना चाहिए। जब आप यहाँ से शांत भावों से उठकर के जाते हैं, थोड़ी देर के लिए तो आपको ये अनुभव में आना चाहिए कि देखो ये दुनिया के लोग कैसे दौड़ रहे हैं, जैसे आसमान के तारे तोड़ने जा रहे हैं। इनको ऐसी कोई उपलब्धि नहीं होने वाली। ये दौड़-धूप इनके मन की आकुलता है और इस आकुलता को जो व्यक्ति समझ लेता है वह अपने मन में शांत रहते हुए, दुनिया को स्पंदित देखते हुए भी अपने आप में निष्पंदित होने लग जाता है, उसके मन में कोई स्पंदन नहीं आता। ये जो सबसे अच्छी अनुभूति होती है वह अनुभूति हमारे लिए काम की है। इसी अनुभूति से हमारे अंदर ऐसी प्रज्ञा उत्पन्न होती है कि ऐसा महसूस होने लग जाता है कि दुनिया के लोग प्रज्ञा से रहित हैं। प्रज्ञा माने ज्ञान से अपनी चैतन्य आत्मा की अनुभूति से, अपने अंतरात्मा के भेद से ये सभी लोग अनभिज्ञ हैं। इसलिए आपको वे सभी लोग प्रज्ञा रहित जड़ के समान देखने में आएँगे। उनकी क्रियाएँ देखकर आपको लगेगा कि ये सब क्रियाओं से रहित है क्योंकि वास्तव में क्रिया जहाँ घटित होती है वहाँ तक तो ये लोग पहुँचते ही नहीं हैं। आपको अभी कुछ भी अनुभूत नहीं हो रहा है, पर आपको ये अनुभूति पहले से बताई जा रही है। ये आपके लिए कभी-कभी कुछ क्षण के लिए भी महसूस होना चाहिए।

हम कभी-कभी घर से बाहर खिड़की से झाँकते हैं तो उस दृश्य से बिल्कुल आसक्त होकर के झाँकते हैं और उसमें लीन होकर के उस दृश्य को देखते हैं। कभी-कभी बिल्कुल स्तब्ध होकर के उस दृश्य को देखो- लोग केवल जा रहे हैं, आ रहे हैं, दौड़ रहे हैं, भाग रहे हैं, हार्न बजा रहे हैं, आगे निकलने की इच्छा कर रहे हैं। इसके अलावा आप किसी पर इतनी दृष्टि मत डालो कि आप उसको पहचानने की कोशिश करें। यदि आप ऐसा करोगे तो आपके मन में शांति रहेगी, मन व्यथित नहीं होगा। यदि आपके मन में ये विचार नहीं है और आपने यदि घर की खिड़की खोल ली और देखने लगे तो आप देखते-देखते धीरे-धीरे थक जाओगे। कुछ भी आपको हाथ नहीं लगेगा। ये केवल विचारों का परिणाम है। इसलिए आचार्य कहते हैं कि अगर भीतर से शांति चाहते हैं तो हम दुनिया को इस ढंग से देखने लग जाएँ कि ये सब क्रियाएँ करते हुए भी ये लोग कोई क्रिया नहीं कर रहे, ये सब जड़ हैं, बुद्धिहीन हैं, प्रज्ञा से रहित हैं और इन्हें अपनी चेतना का कोई ख्याल नहीं है। ऐसा जब विचार हमारे अंदर आ जाता है तो हमें बाहर की अशांति को देखकर भी हमारे भीतर की शांति डिस्टर्ब नहीं होती है। आचार्य कहते हैं वही व्यक्ति शांत भाव को प्राप्त होता है जो इस तरह से देखने और जानने का अभ्यास करता है।

श्लोक-६८

शरीरकञ्चुकेनात्मा संवृतज्ञानविग्रहः।
नात्मानं बुध्यते तस्माद् भ्रमत्यतिचिरं भवे।।६८।।

जो राग–रोष करता गहता शरीर, तो बार बार मरता सह, दुःख पीर।
प्रत्येक काल जिस कारण कर्म ढोता, तो जानता न निज को भव बीज रोता।।६८।।

आचार्य कहते हैं आत्मा ज्ञान शरीर वाला है, ज्ञान शरीर से ही ढँका हुआ है, भरा हुआ है। अगर ये आत्मा शरीर को धारण किए है तो कांचुली की तरह। जैसे सर्प चलते-चलते कांचुली को छोड़ देता है लेकिन वह अपने अस्तित्व को बनाए रखता है उसी तरह से ये आत्मा इस संसार में आकर के कांचुली की तरह इस शरीर को छोड़ जाता है लेकिन अपने ज्ञान शरीर को वो आत्मा कभी भी नहीं छोड़ता। ऐसे आत्मा को जो नहीं जानता वह इस संसार में चिरकाल तक भ्रमण करता है। संसार का भ्रमण तब टूटेगा जब ये आत्मा अपनी आत्मा को जानने लगेगा। जब इस आत्मा को अपने ही निकट से अस्तित्व की अनुभूति होगी और अपने ही ज्ञान शरीर को जब यह अन्य रूप में अनुभव करेगा तब इसका वह शरीर के लिए जो चलने वाला चक्र है वह चक्र विराम को प्राप्त होता है। जो चक्र बाहर की ओर चलते-चलते संसार को बढ़ाता रहता है वही चक्र धीरे-धीरे स्थिर होते-होते जब वह ज्ञान के रूप में ढलता है तो वह इस संसार को तोड़ता चला जाता है। आपको संसार बढ़ाना है या घटाना है। संसार भी आपको तब अच्छा लगेगा जब आपके अंदर कोई अच्छाई होगी। जब आप अच्छे ढंग से जियेंगे और अच्छे भावों के साथ संसार में रहेंगे तब ही आपको संसार अच्छा लगेगा।

श्लोक-६९

प्रविशद्गलतां व्यूहे देहेऽणूनां समाकृतौ।
स्थितिभ्रान्त्या प्रपद्यन्ते तमात्मानमबुद्धयः।।६९।।

प्रत्येक काल जड़ पुद्गल वर्गणाएँ, जाती, प्रवेश करती तन में परायें।
तो पूर्वसा इसलिये तन दीखता है, मोही निजीय कहता उसको वृथा है।।६९।।

आचार्य कहते हैं जिसकी मोह के कारण से बुद्धि शरीर में बनी रहती है, उसे अध्यात्म में अज्ञानी जीव कहा जाता है। वह अज्ञानी जीव सोचता है कि ये जो शरीर है, इस शरीर में हमारी स्थिरता बनी हुई है। उसे ऐसा दिखाई देता है कि ये शरीर हमारे साथ में हमेशा था, है और रहेगा। इस शरीर के साथ में रहते-रहते वह इतना अभ्यस्त हो जाता है कि वह इस शरीर के परिणमन को देखते हुए भी यह नहीं सोचता कि इसका परिणमन क्षय की ओर है कि संचय की ओर है। दो चीज हैं, पुद्गलों का शरीर से निकलना क्षय कहलाता है और उन्हीं पुद्गल अणुओं का शरीर में संचित होना संचय कहलाता है। इसी को आचार्य कहते हैं एक संघातन और एक परिशातन। संघातन का अर्थ होता है कि शरीर में पुद्गल वर्गणाओं का इकट्ठा होना, संचय होना। परिशातन का अर्थ होता है शरीर से पुद्गल वर्गणाओं का बाहर निकलना। ऐसा एक औदारिक शरीर होता है जिसमें ये तीनों प्रकार की प्रक्रियाएँ घटित होती है और उसमें मुख्य रूप से संघातन-परिशातन हर समय चलता रहता है। ये हर समय पर चलता रहता है, जब तक आयु कर्म रहता है तब तक ये संघातन-परिशातन कृति के रूप में यह क्रिया निरंतर चलती रहती है। इस क्रिया को न समझने के कारण अज्ञानी जीव ये समझता है कि हमारी जो शरीर की आकृति बनी है वह ऐसी की ऐसी ही बनी है और आगे भी ऐसी ही बनी रहेगी। जब उसे ये समझ में आ जाता है कि इसमें निरंतर ये क्रिया चल रही है और उस क्रिया के साथ में वह क्षरण की क्रिया ही निरंतर इसमें बढ़ रही है। आयु बढ़ती है, आयु बढ़ने के साथ-साथ वह क्षरण की क्रिया अधिक होती है, संघातन की क्रिया धीरे-धीरे कम होने लग जाती है। उसका कम होने का कारण ये भी है कि धीरे-धीरे जैसे-जैसे शरीर वृद्धि को प्राप्त होता जाता है उस शरीर के अंदर की क्षमता भी कम होने लग जाती है। वृद्धि का मतलब जिनका– जितना शरीर ज्यादा बढ़ता हुआ होगा जिसे आप लोग बोलते हैं ये

बहुत मोटा-ताजा आदमी है। वह मोटा तो होगा पर ताजा नहीं रह पाएगा।

मोटा होना अलग बात है और ताजा होना अलग बात है। ताजा का मतलब है अपने शरीर की सब क्रियाओं को बिना थके कर ले और उसके अंदर शरीर की जो क्षमता है वह निरंतर इस ढंग से बढ़ती रहे कि उसे अपना शरीर कभी बोझ के रूप में न दिखाई दे। जब शरीर मोटा हो जाता है तो उसकी क्षमता कम हो जाती है क्योंकि हमारी ली हुई श्वास, हमारी ली हुई ऊर्जा वह उस शरीर के प्रत्येक अंग तक नहीं पहुँच पाती। मोटे होने के कारण से उस शरीर के अंदर अनेक व्याधियाँ भी उत्पन्न होने लग जाती हैं क्योंकि उस शरीर की ऊर्जा का हम पूर्ण रूप से उपयोग नहीं ले पाते हैं और उस शरीर के अंदर जो कार्यक्षमता होती है वह कम हो जाती है इसलिए मोटा होने का मतलब होता है कि जैसे हम आलसी होते चले जा रहे हैं। काम करने वाला आदमी ज्यादा मोटा नहीं मिलेगा आपको। आपने किसी मजदूर को कभी मोटा नहीं देखा होगा क्योंकि वह अपने शरीर से काम लेता है। आप देखोगे कि मोटे व्यक्ति थोड़ा सा भी वजन नहीं उठा पाते हैं क्योंकि शरीर की कार्य क्षमता बहुत कम हो गई है। बाहर से वह मोटा बन गया लेकिन भीतर से उसकी कार्य क्षमता इतनी कम हो जाती है कि उसे दो मंजिल की सीढ़ियाँ चढ़ने के लिए कहा जाए तो सोचेगा या रेलिंग पकड़-पकड़ कर चढ़ेगा और फिर घंटे भर तक हाँफता रहेगा। वहीं पर पतले आदमी से कहा जाए तो वह झटपट सीढ़ियों पर चढ़ जाएगा। आपको ये सोचना है कि हमको इस शरीर को किस ढंग से अपने काम में लेना है। अगर हम केवल इस शरीर का मोटापा बढ़ाकर के खुश होते रहेंगे तो आप इस शरीर से किसी भी प्रकार का कोई काम नहीं कर सकेंगे। न तो मेहनत के काम होंगे न ही योग व ध्यान होंगे क्योंकि वह बहुत देर तक एक आसन पर बैठ नहीं सकता और इसलिए ध्यान लगा नहीं सकता। इसलिए शरीर की क्षमता होना अलग बात है एवं मोटा होना अलग बात है। आप लोग ये ध्यान रखें कि आप जितना ज्यादा शरीर से काम लेंगे उतनी ज्यादा क्षमता बढ़ेगी और जितना ज्यादा मन से, बुद्धि से काम लेंगे उतनी ज्यादा हमारे ज्ञान की क्षमता भी बढ़ेगी। आपकी दोनों क्षमताएँ कम होती चली जाती हैं। जब ज्ञान पाने की बात हो तो आपको नींद आने लगती है और कार्य करने के लिए आलस आ जाता है। जल्दी से सोने का मन हो जाता है। ऐसा व्यक्ति न शारीरिक विकास कर पाता है न मानसिक विकास अच्छा होता है। पहले की महिलाएँ खूब काम स्वयं करती थीं तो वे ८०-८५ साल तक हर काम कर लेती थीं और आजकल की महिलाएँ बस बहु आई नहीं कि साल-दो साल में डायबिटीज, ब्लडप्रेशर की शिकायतें शुरू क्योंकि बैठे-बैठे खाना, कोई काम करना नहीं। यदि इस शरीर को ज्यादा लाड़-प्यार करोगे तो ये शरीर तुम्हें बहुत हानि पहुँचाएगा।

श्लोक-७०

गौरः स्थूलः कृशो वाऽहमित्यङ्गेनाविशेषयन्।
आत्मानं धारयेन्नित्यं केवलज्ञप्तिविग्रहम्।।७०।।

काला न मैं ललित, लाल नहीं अनूप, रागी न पुष्ट अति हृष्ट नहीं कुरूप।
पै नित्य, सत्य अरु मैं वर बोध–धाम, मेरा अतः विनय से मुझको प्रणाम।।७०।।

यहाँ कहा जा रहा है कि जब हम अपने ही स्वरूप को जानने लग जाते हैं कि हमारा शरीर केवलज्ञान को धारण करने वाला है। जानना ही उसका स्वभाव है, ऐसे शरीर को धारण करने वाली ये आत्मा है। उस आत्मा को भूलकर के अपने शरीर को भी हम इस रूप में देखते रहते हैं- मैं गोरा हूँ, मैं मोटा हो गया हूँ, मैं पतला हो गया हूँ, इस तरीके से हम इस शरीर के साथ अपनी आत्मा को जो जोड़े रहते हैं उसी जोड़ के कारण से हम अपनी आत्मा को समझ नहीं पाते और हम अपनी दृष्टि को अपनी आत्मा तक नहीं ले जा पाते। अपनी दृष्टि को अपनी आत्मा की ओर ले जाने का नाम ही अपनी आत्मा को स्वयं प्रणाम करना है। जब आपको अपनी आत्मा दिखी ही नहीं तो प्रणाम करने की बात कैसे आएगी। प्रणाम करने का मतलब है उसके प्रति बहुमान उत्पन्न हो जाना आदर का भाव होना और उसमें ही हम नम्रीभूत होकर लीन होते चले जाएँ। ऐसी इस आत्मा के बारे में हमें थोड़ी सी अनुभूति होती चली जाती है तो हम इस शरीर से अपना भाव छुड़ाकर के हम भूल जाते हैं कि हम मोटे हैं कि पतले हैं, काले हैं कि गोरे हैं। आप लोग इतने दिनों से ध्यान कर रहे हैं तब तो आप शरीर के बारे में भूल जाते होंगे। आपको यदि ये क्षणिक भी अनुभूति आ जाती है तो आप समझना मन अपनी आत्मा में लग रहा है, लग गया है। उसी प्रक्रिया के माध्यम से हम अपने चित्त को भी शांत करते हैं, भीतर से हमें ऊर्जा मिलती है वही ऊर्जा हमें दिनभर के लिए इतनी काम में आने लग जाती है कि सब काम में हमारा मन लगता है। आनंद आएगा व अच्छा लाभ भी हमें मिलेगा। ये अंतरंग की ऊर्जा जिसका कभी अभाव नहीं होता और समापन नहीं होता, इस ऊर्जा की ओर ध्यान देने का नाम ही 'ध्यान' की ओर मुड़ना, योग से अपने मन, वचन, काय की शक्तियों को एकत्रित करना। ये योग की प्रक्रिया णमोकार महामंत्र के माध्यम से प्रारंभ करें।

श्लोक-७१

मुक्तिरेकान्तिकी तस्य चित्ते यस्याचला धृतिः।
तस्य नैकान्तिकी मुक्तिर्यस्य नास्त्यचला धृतिः।।७१।।

जो ग्रन्थ त्याग, उर में शिव की अपेक्षा, मोक्षार्थ मात्र रखता, सबकी उपेक्षा।
होता विवाह उसका शिवनारि–संग, तो मोक्ष चाह यदि है बन तू निसंग।।७१।।

आचार्य कहते हैं जिसके चित्त में एकांतरूप से केवल मुक्ति का ही वास रहता है जो निरंतर मोक्ष को प्राप्त हुई आत्माओं का ध्यान करता है और जो अपनी आत्मा में भी केवल मोक्ष की भावना रखता है उन्हीं आत्माओं की तरह अपनी आत्मा की मुक्ति चाहता है। उसके चित्त में ही ऐसा धैर्य उत्पन्न होता है कि वो मुक्ति को ही एकांत रूप चाहता है, अनेकांत रूप से नहीं चाहता। मुक्ति को एकांत रूप से चाहने का मतलब अब उसमें कोई ओर विकल्प नहीं लाना। जब मुक्ति की ऐसी ऐकांतिक धारणा बन जाती है तो उसे मुक्ति प्राप्त हो जाती है। जहाँ मुक्ति की अनेकांतिक धारणा हो जाती है वहाँ मुक्ति उसे प्राप्त नहीं हो पाती। मुक्ति प्राप्त करने से पहले मुक्ति का ज्ञान अनैकांत के माध्यम से हो, आवश्यक है। मुक्ति के मार्ग पर चलने के लिए अनेकांत के माध्यम से चले ये भी आवश्यक है लेकिन जिस समय पर हम मुक्ति की भावना करने के लिए बैठ जाएँ उस समय पर तो एकांत रूप से उस मुक्ति की ही भावना करना।

पाँच पांडवों के नाम आपने सुने होंगे। उन्होंने जीवन के अंत में गृह त्याग करके जिन दीक्षा को धारण किया और अपनी भावना के अनुसार मनचाही तपस्या की। उसी दौरान कौरवों के कुछ रिश्तेदारों ने उन्हें देखा और उनके मन में विचार आया कि इन्होंने इतना युद्ध किया, विनाश किया। अब ये शांत भाव से यहाँ बैठे हैं। हमें इनसे बदला लेने के लिए कुछ न कुछ करके अपने मन की प्यास बुझा लेनी चाहिए। वे लोग उन पाँचों पांडवों के

ऊपर बदले की भावना से गर्म-गर्म लोहे के आभूषणों को उनके शरीर पर पहना दिया गया। उन आभूषणों की आग को पाँचों पांडवों ने सहन तो कर लिया लेकिन परिणाम सबका अलग-अलग आया। पाँच पांडवों में से तीन पांडवों को तो उपसर्ग के माध्यम से मुक्ति की प्राप्ति हो गई और दो पांडव मुक्त नहीं हो पाए। उन्होंने सर्वार्थसिद्धि नामक उत्कृष्ट विमान में जन्म लिया क्योंकि एक छोटा सा कारण यहाँ ये हो गया कि उन्हें मुक्ति के अलावा कुछ और ख्याल आ गया। तीन पांडव तो अपनी मुक्ति की ऐकांतिक भावना में ही लगे रहे कि शरीर जल रहा है, आत्मा का शरीर न कभी था न है, न कभी होगा। इस आत्मा को शरीर से मुक्त करना है ऐसी ऐकांतिक मुक्ति की धारणा से उन्होंने पूरा का पूरा उपसर्ग सहन कर लिया और उन्हें मुक्ति की प्राप्ति हो गई। पर नकुल और सहदेव के मन में ये विचार आ गया कि इतना बड़ा उपसर्ग ये मेरे भाई कैसे सह रहे होंगे। भाइयों का विकल्प मन में आने के कारण उनके ध्यान में कमी रह गई और इसलिए वे मुक्ति को प्राप्त नहीं कर पाए। सर्वार्थसिद्धि में पहुँचने के बाद अगला जन्म नियम से मनुष्य भव प्राप्त कर मुक्ति मिलेगी लेकिन उस समय पर जो एकांत की मुक्ति है, उससे उनका विचलन हो गया। इसे कहते हैं एकांतरूप से उस मुक्ति की अवधारणा को ही बनाकर के रखना।

इसलिए आचार्य कहते हैं जिनके अंदर इस प्रकार से अचल मुक्ति की भावना उत्पन्न हो जाती है उन्हें ही मुक्ति की प्राप्ति होती है और जो उस मुक्ति की भावना से थोड़ा भी डगमगा जाते हैं, वे मुक्ति प्राप्त नहीं कर पाते हैं। ध्यान में बैठो तो केवल वही ध्यान करना जो ध्यान के लिए आवश्यक है। उस वक्त कुछ और ध्यान आएगा तो वह ध्यान नहीं कहलाएगा। अगर पंचपरमेष्ठी की आराधना भी करते हैं जिन्होंने अपने उस लक्ष्य को प्राप्त कर लिया। उन अरिहंत व सिद्धों का हम ध्यान करते हैं तो ध्यान के समय पर हमें केवल उनका ही ध्यान रहे। मोक्षमार्ग में पाँचों ही परमेष्ठी उस मोक्ष मार्ग में चलने वाले और कुछ मोक्ष को प्राप्त होने वाले हैं, हम उन दोनों की आराधना करते हैं। अगर केवल मोक्ष की आराधना करनी है तो आपका प्रयोजन केवल अरिहंत और सिद्धों से रहना चाहिए लेकिन पंचपरमेष्ठी में आचार्य, उपाध्याय व साधु भी आ जाते हैं। मोक्ष मार्ग के बिना हम कभी भी मोक्ष को प्राप्त नहीं कर सकते इसलिए मोक्ष मार्ग की आराधना किए बिना हमें कभी मोक्ष नहीं होगा। पाँच परमेष्ठी में सिद्ध भगवान् पूर्ण रूप से मोक्ष को प्राप्त हो गए, अरिहंत

भगवान् आधा मोक्ष को प्राप्त हो गए और बाकी के तीन परमेष्ठी मोक्षमार्ग पर चल रहे हैं। पाँचों ही परमेष्ठी उन श्रावकों के लिए उपास्य होते हैं, अराध्य होते हैं जिनके अंदर अभी मोक्ष मार्ग का कोई भी मान नहीं है और जिनके अंदर मोक्ष मार्ग पर आरूढ़ होने की शक्ति नहीं है वह शक्ति उन्हें पाँचों परमेष्ठी की आराधना से ही प्राप्त होगी।

भगवान् के समक्ष बैठे हुए गणधर परमेष्ठी भी पाँचों परमेष्ठी की आराधना के साथ अपना मंगल कार्य प्रारंभ करते हैं। भगवान् के सामने साक्षात् वे आचार्य परमेष्ठी के रूप में बैठे रहते हैं लेकिन फिर भी वे पंचपरमेष्ठी की आराधना करते हैं। गणधर परमेष्ठी भी णमोकार मंत्र पूरा बोलते हैं। आप ऐसा नहीं करना कि णमो अरिहंताणं व णमो सिद्धाणं से मतलब रखें बाकी के तीन पद निकाल दें। यदि तुम ऐसा करोगे तो तुम जैन धर्म से बाहर निकल जाओगे, जिनशासन से ही बाहर निकल जाओगे। पंचपरमेष्ठी की आराधना ऋषि, मुनि, आचार्य, उपाध्याय सभी करते हैं। जो स्वयं आचार्य हैं वे भी आचार्यों को और साधु को नमस्कार करते हैं। जो स्वयं मुनि है, गणधर है व अनेक प्रकार की ऋद्धियों को प्राप्त है वह भी पाँचों परमेष्ठी का उच्चारण करते हैं तो सामान्य श्रावक को तो करना ही है। निश्चय का एकांत उनके लिए होता है जैसे पांच पांडवों पर जिनदीक्षा के बाद उपसर्ग हुआ तब उन्हें किसी भी प्रकार के व्यवहार का विकल्प नहीं है और वे निश्चय के एकांत में डूब गए तो एकांत की मुक्ति उनके हाथ में आ गई और जहाँ उनके लिए थोड़ा सा व्यवहार का विकल्प हो गया वहीं पर उनके लिए सर्वार्थसिद्धि में अटकना पड़ गया। ये एकांत रूप से निश्चय का परिपालन केवल श्रमणों या मुनि महाराज के द्वारा ही होता है इसलिए श्रावकों को कभी भी एकांत निश्चय की अवधारणा बनानी नहीं चाहिए अन्यथा वह पंचपरमेष्ठी की आराधना से भी छूट जाएगा और मोक्षमार्ग से छूट जाएगा। गणधर परमेष्ठी के द्वारा बताए गए उपदेशों से वह वंचित हो जाएगा। हमेशा ये ध्यान रखना कि एकांत निश्चय की अवधारणा केवल उन्हीं के लिए है जो निश्चयनय के विषयभूत अपने आत्मतत्त्व में लीन हो जाते हैं।

श्लोक-७२

जनेभ्यो वाक् ततः स्पन्दो मनसश्चित्तविभ्रमाः।
भवन्ति तस्मात्संसर्गं जनैर्योगी ततस्त्यजेत्।।७२।।

संसर्ग पा अनल का नवनीत जैसा, नोकर्म पा पिघलता बुध ठीक वैसा।
योगी रहे इसलिये उनसे सुदूर, एकांत में विपिन में निज में जरूर।।७२।।

आचार्य कहते हैं योगी के मन में किसी भी प्रकार का चित्त का विभ्रम उत्पन्न न हो। मन में विकल्प उत्पन्न न हो तो इसके लिए लोगों से बोलना बंद करो। चित्त की चंचलता कम करने के लिए लोगों से बोलना बंद करें, मोबाइल बंद करके रखें। इसी से एकाग्रता भंग होती है। जिनसे भी आप मिलोगे, जितनी ज्यादा आप चर्चा करोगे, दूसरों से जुड़ोगे उतना ही ज्यादा आपका अपने से अलगाव रहेगा। आचार्य पूज्यपाद महाराज भी इष्टोपदेश में कहते हैं कि हमेशा एकांत स्थान की इच्छा करो, निर्जन स्थान की इच्छा करो ताकि जब वहाँ पर बैठकर आप तत्त्व का चिंतन करेंगे, आपका मन एकाग्र हो जाएगा, अपने आप अपनी आत्मा में लग जाएगा। आपके मन में कोई विकल्प तभी उत्पन्न होएगा जब आप दूसरों के साथ में ज्यादा संसर्ग रखेंगे। यदि किसी कारण बोलना भी पड़े तो बोलने के बाद में तुरंत उसको भूल जाओ। बोलने के बाद में उसका चित्त में कोई विकल्प मत लाओ। चित्त में विकल्प उत्पन्न होने का सबसे बड़ा कारण है हमारा पर के साथ में संबंध और दूसरों के साथ संगति करने की इच्छा। इन संगति और संबंधों के कारण से हम कभी भी अपने आत्मतत्त्व के निकट नहीं आ पाते। आपको एकांत तभी महसूस होगा जब आप सभी प्रकार के संबंधों को छोड़कर के शांत बैठ जाएँ। केवल उस अनुभूति को अनुभव के लिए जहाँ पर हमें पंचपरमेष्ठी से निकटता मिले, अपनी आत्मा से निकटता मिले, हमें ध्यान में लीन होना होगा।

श्लोक-७३

ग्रामोऽरण्यमिति द्वेधा निवासोऽनात्मदर्शिनाम्।
दृष्टात्मनां निवासस्तु विविक्तात्मैव निश्चलः।।७३।।

मैं जा रहूँ नगर में, वन में कभी न, ऐसा विचार करता, बहिरात्म दीन।
ज्ञानी न ईदृश विचार स्वचित्त लाता, निश्चिंत हो सतत किंतु नितात्म ध्याता।।७३।।

इस श्लोक में आचार्य पूज्यपाद देव कहते हैं जैसे-जैसे इस आत्मा को ध्यान का, आत्मज्ञान का अनुभव होने लग जाता है। वह आत्मा अपने ही आत्मस्वरूप को देखने का अभ्यासी बन जाता है तो फिर इस आत्मा को बाहरी जगत के ग्राम, नगर, अरण्य ऐसे स्थानों से कोई फर्क नहीं पड़ता। वह ज्ञानी आत्मा चाहे ग्राम में रहे, नगर में रहे, जंगल में रहे या किसी तीर्थ पर रहे उसे कोई फर्क नहीं पड़ता क्योंकि जिसकी दृष्टि अपने आप में समाहित हो गई है, वह धीरे-धीरे अपने आप में ही निश्चल हो जाता है। जिसकी अंतर्दृष्टि अपने आप में ही निश्चल हो जाती है तो वह बाहर कुछ भी देखता रहे, कोई फर्क नहीं पड़ता। जिसके अंतरंग में चित्त की चंचलता दूर होकर के आत्म स्वभाव की ओर दृष्टि उन्मुख हो जाती है, उसे स्थान विशेष से कोई फर्क नहीं पड़ता क्योंकि जो अंतरंग में दृष्टि है उसी के अनुसार बहिरंग की सृष्टि बनती है। अंतरंग दृष्टि अगर शांत है, स्वभाव के उन्मुख है तो वह बहिरंग में भी किसी भी परेशानी से परेशान नहीं होगा। अंतरंग दृष्टि में अगर निर्मलता आ जाती है तो बहिरंग में भी वह सब कुछ निर्मल रूप में ही देखेगा। अंतरंग दृष्टि में पवित्रता आ जाती है तो बहिरंग में वह अपनी आत्मा को पवित्र रूप में देखेगा। जितनी भी आत्माएँ उसे बाहर दिखाई पड़ेगी उनमें भी वह पवित्र रूप देखेगा। ये दृष्टि का प्रभाव है और इसी दृष्टि के प्रभाव का कारण वीतराग भाव है। राग भाव के कारण से हमें हमेशा राग की परिणति ही बाहर दिखाई देगी और वीतराग भाव में लीन होने पर बाहर निकलने पर भी हमें वीतराग

भाव ही दिखाई देंगे। इसलिए ऐसा कभी नहीं कहना कि मुनि महाराजों को जंगल में ही रहना चाहिए, गाँव-नगर में नहीं रहना चाहिए। मुनिराज अगर अंतर्दृष्टा हैं, अगर उनके ज्ञान नेत्र खुले हुए हैं तो उन्हें कहीं भी रहने पर कोई फर्क नहीं पड़ता है। जिनके पास ऐसी दृष्टि नहीं होती है तो गुरु महाराज उन्हें अपने पास में रखते हैं या किसी अरण्य में भेज देते हैं कि आप एकांत में रहकर साधना करो। धीरे-धीरे ये अंतर्दृष्टि बढ़कर इतनी सहज हो जाती है कि गाँव-शहर-नगर से कोई फर्क नहीं पड़ता क्योंकि उसकी रुचि आत्मरूचि के रूप में ढलती चली जाती है।

इसलिए यह श्लोक आचार्य पूज्यपाद महाराज की अनुभूति को बताने वाला है जिस समय पर जंगल से गाँव में आना ही बड़ी बात हुआ करती थी। आचार्य पूज्यपाद महाराज पाँचवीं शताब्दी के महाराज हैं। उस समय दो ही विकल्प थे गाँव या अरण्य पर आज तो सिटी, मेट्रोसिटी भी हैं। पर आत्म दृष्टिधारी को कहीं पर भी कोई विचलन नहीं होता है। जिन्हें आत्म दृष्टि नहीं है वे तो एकांत में भी बुरा ही सोचेंगे और गलती करते रहेंगे। आचार्य पूज्यपाद जी कहते हैं कि हमें इस पंचमकाल में भी आत्मदर्शी बनना चाहिए। आत्मदर्शी अर्थात् हम अपनी आत्मा की ओर, स्वभाव की ओर अपने ज्ञान को उन्मुख करें। हमारा ज्ञान इंद्रियों के माध्यम से बहिर्मुखी बनता है तो उसे आत्मोन्मुखी बनाने का नाम ही आत्मदर्शी है या अंतर्दृष्टि प्राप्त होना है। अंतर्दृष्टि प्राप्त होने का मतलब है जीव और अजीव के भेद का ज्ञान हो जाना जिसे भेद विज्ञान भी कहा जाता है। जब ये भेद विज्ञान निश्चल हो जाता है। निश्चल माने उसमें किसी भी परिस्थिति को लेकर चंचलता न आए तो उस भेद विज्ञान के माध्यम से वह आत्मा कहीं भी रहे उसे कोई फर्क नहीं पड़ता। आप सोच सकते हो जब शहर, गाँव, जंगल में रहने से कोई फर्क नहीं पड़ता तो जब हम घर से निकल कर व्यापार आदि करने जाते हैं और किसी भी समाज के किसी भी स्थान पर रहते हैं तो हमारी दृष्टि में भी इस प्रकार की अंतर्दृष्टि बन जाए कि हमें किसी भी प्रकार के बाहरी वातावरण का हमारी आत्मा पर प्रभाव न पड़े। ये तब हो सकता है जब हम इस प्रकार की थोड़ी सी रुचि लाएँ एवं स्वयं को जाग्रत करें।

श्लोक-७४

देहान्तरगतेर्बीजं देहेऽस्मिन्नात्मभावना।
बीजं विदेहनिष्पत्तेरात्मन्येवात्मभावना।।७४।।

निस्सार पार्थिव तनादिक काऽनुराग, है बीज अन्य तन का द्रुत भव्य! जाग।
तो बीज मोक्ष द्रुम का निज भावना है, भावो उसे, यदि तुम्हें शिव कामना है।।७४।।

आचार्य कहते हैं कि इस आत्मा को एक देह से दूसरी देह की प्राप्ति क्यों होती है। इसका बीज क्या है? उस संसार की परंपरा का मूल कारण क्या है? अगर हम अपनी आत्मा की भावना इस देह में जोड़ेंगे तो हमें देह ही प्राप्त होती रहेगी क्योंकि हम जैसी भावना करेंगे हमें वही चीज मिलेगी। शरीर की भावना करोगे, शरीर की चिंता करोगे, शरीर से राग रखोगे तो शरीर मिलेगा यदि 'विदेह' यानि देह से रहित आत्म तत्त्व की प्राप्ति तब होगी जब अपनी आत्मा में ही आत्मा की भावना करोगे। आत्मा में ही आत्मा का अनुराग रखोगे तो आत्मा इस देह को धारण करने से छूट जाएगा, बस इतना सा संसार और मोक्ष के बीच का भेद-विज्ञान है। यही मूल कारण है कि हम जैसी भावना करेंगे हमें वही चीज प्राप्त होगी। देह की भावना से जुड़े रहोगे तो अगली पर्याय में फिर देह मिलेगी और आत्मा की भावना से जुड़ जाओगे तो देह छूट जाएगी और आपको केवल आत्मा ही आत्मा दिखाई देगी। संसार अपने आप इस शरीर के साथ जो जुड़ा रहता है वह छूट जाएगा। इस भावना को अगर हम गहराई तक समझे तो हमें अनुभूत होगा कि इस देह के साथ में जो हमारा अनुराग रहता है उस राग को छोड़ने के लिए ही एवं छुड़ाने के लिए ही ये अध्यात्म और ध्यान की प्रक्रिया होती है। एक ध्यान ही ऐसी चीज है जहाँ हम गहराई से अपनी आत्मा के पास पहुँचकर के देह के अनुभव को थोड़ी देर के लिए छोड़ सकते हैं। थोड़ी देर के लिए हमें अनुभूत होता है कि हम कोई इस देह से भिन्न एक अलग अनुभूति में ढल गए हैं और वही

जो संस्कार है वही विदेह की निष्पत्ति का बीज बन जाता है। बीज माने जैसे भूमि में बीज को वपन किया जाता है। ऐसे ही अपने अंदर की आत्मा की भावना आत्मा में ही हो। आत्मा में ही आत्मा की भावना बने और शरीर की भावना छूट जाए। इस बीज का अंकुर अगर हो जाता है तो अपने आप मोक्ष का फल हमारे सामने आ जाता है और इसी से सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र इन तीनों का प्रारंभ होता है। इसलिए सबसे बड़ी चीज है हमें अपने शरीर का राग छोड़ना। दूसरे के शरीर का राग तभी छूटेगा जब हम अपने शरीर का राग छोड़ेंगे। अपने शरीर का राग छोड़ने के लिए जब हम पंचपरमेष्ठी की शरण में जाते हैं तो पाँचों ही परमेष्ठी आपको ऐसे मिलेंगे जिन्हें अपने शरीर से राग नहीं होता। जो अपने शरीर में रहते हुए भी शरीर से रहित होकर जीने का अभ्यास करते हैं, ये मोक्ष मार्ग यहीं से प्रारंभ होता है। इसलिए हम उनकी शरण में चलें जो शरीर के राग से रहित है और केवल आत्म तत्त्व की आराधना करने में लीन रहते हैं।



श्लोक-७५

नयत्यात्मानमात्मैव जन्म निर्वाणमेव च।
गुरुरात्मात्मनस्तस्मान्नान्योऽस्ति परमार्थतः।।७५।।

आत्मा हि कारण सदा शिव का रहा है, जाता वही नियम से शिव को है।
है आत्म का गुरु अतः स्वयमेव आत्मा, कोई न अन्य, इस भाँति कहे महात्मा।।७५।।

आचार्य कहते हैं हमारी आत्मा अपने ही स्वयं के लिए जन्म उत्पन्न कराता है, मरण उत्पन्न कराता है और वह आत्मा ही आत्मा के लिए निर्वाण को भी उत्पन्न कराता है। आत्मा का किसी भी पर्याय में जन्म कराने का काम किसी और दूसरी आत्मा का नहीं है, किसी और भगवान् का नहीं है। आत्मा को इस पर्याय से छुड़ाकर के मरण कराने का काम भी किसी अन्य आत्मा का या भगवान् का नहीं है। हर आत्मा अपना भाव, अपने कर्म और उस कर्म के फल से स्वयं जिस प्रकार का चक्र रचता है वह उसी चक्र के अनुसार उसका फल प्राप्त करता रहता है। जब ये आत्मा संसार में रहता है तो जन्म-मरण का चक्र स्वयं बुनता है। जब यही आत्मा इस संसार चक्र से मुक्त होती है तो निर्वाण की प्राप्ति भी स्वयं यह आत्मा करती है। दूसरा कोई इस आत्मा के लिए कहीं स्वर्ग में रख दे, नरक में पहुँचा दे या मोक्ष में पहुँचा दे, ऐसा कोई भी आत्मा या परतत्त्व या कोई शक्ति नहीं है। इसलिए इस आत्मा का वास्तव में यदि कोई गुरु है तो वह स्वयं अपना आत्मतत्त्व ही अपना गुरु है। इसलिए आचार्य कहते हैं आत्मा की गुरु आत्मा ही है। जब तक यह आत्मा सही ढंग से चलना नहीं सीखती, अपनी वृत्ति को परमार्थ वृत्ति से नहीं जोड़ पाती, तब तक उसके लिए व्यवहार से, बाहर से हम पंच गुरु का आलंबन लेते हैं। जब वह आत्मा स्वयं अपने अंदर ऐसे भाव संजोने लग जाता है जिससे कि वह संसार चक्र से मुक्त होती चली जाए तो उस समय पर वह आत्मा ही आत्मा का गुरु होती है। पंच गुरु आपके लिए आलंबन तब बनते हैं जब आप उन्हें अपना आलंबन स्वरूप स्वीकार करें, आप उनसे कुछ सीखें। आप उनके माध्यम से कुछ अपने में परिवर्तन लाएँ। जब वह परिवर्तन इतना हो जाए कि हम हमेशा अशुभ से बच जाए और हमेशा शुभ में प्रवृत्ति करते हुए उनके शुद्ध स्वरूप का ध्यान रखते रहे तो एक स्थिति ऐसी आती है कि हमें बाहर के पंच परमेष्ठी का आलंबन लेना भी छूट जाता है। यह उस आत्मा की स्थिति बनती है जो अपने परिणामों को बिल्कुल अपने नियंत्रण में रखता है और जिसके अंदर शुद्ध तत्त्व की श्रद्धा और रुचि प्रकट हो जाती है, जिससे वह आत्मा कभी भी अशुद्ध भावों को नहीं करता

है ऐसी आत्मा के लिए आत्मा ही आत्मा का गुरु होती है। गृहस्थ के लिए ये स्थिति कदापि संभव नहीं है क्योंकि गृहस्थ अपने भावों को बिना पंचपरमेष्ठी का आलंबन लिए हुए कभी भी स्थिर नहीं कर सकता, सुधार नहीं सकता।

इसलिए आचार्य कहते हैं कि जब तक आप व्यवहार में हैं आप पंच गुरु का आलंबन लेना और जब आप व्यवहार को भी छोड़कर के अपने आत्म ध्यान को स्वयं करने में समर्थ हो जाए तो आप स्वयं अपनी आत्मा को ही अपना गुरु मान लेना। पंच गुरु के आलंबन की आपको कोई आवश्यकता नहीं रही है परंतु छोड़ना तब जब हम उन्हें छोड़कर गिर न जाए। बेटा, माँ की अंगुली पकड़कर चलता है। माँ तब तक अंगुली पकड़ाकर चलाती है जब वह देख लेती है कि हाँ वह अपने पैरों पर खड़ा होना सीख गया। वह अचानक अंगुली छुड़ाकर देखती है कि वह लड़खड़ा कर गिर गया तो वह समझती है कि अभी वह चलना नहीं सीखा। यदि वह चलते-चलते माँ के पास पहुँच जाता है तो वह अंगुली छोड़ना उचित समझती है। ऐसे ही ध्यान में होता है। पंचपरमेष्ठी का आलंबन छोड़ने के बाद में हमारे परिणाम गिर गए कि हमारे परिणाम अपनी आत्मा में जुड़ गए या हम अशुभ भावों में बह गए अथवा हम शुद्ध भावों में लीन हो गए, यह जिनवाणी माँ देखती रहती है। जिनवाणी माँ के अनुसार जो साधक अपने परिणामों को देखता रहता है वह धीरे-धीरे पंच गुरुओं का आलंबन छोड़कर के केवल अपनी आत्मा ही अपना गुरु है ऐसा वह स्वयं महसूस करने लग जाता है।

अभी अपनी आत्मा को अपना गुरु नहीं मान लेना। अभी पंचपरमेष्ठी को अपना गुरु मानना और उनके सहारे चलते-चलते जब ऐसी स्थिति लगने लगे कि हमारे अंदर पंच गुरु के आलंबन के बिना भी स्थिरता बन जाती है तो उस स्थिति में आपके लिए ये महसूस होगा कि हम श्रावक तो रहे ही नहीं, हम स्वयं गुरु की श्रेणी में आ गए। जब गुरु की श्रेणी में आ जाओगे तो गुरु को गुरु का ज्यादा आलंबन लेने की जरूरत नहीं पड़ती है। जब गुरुजन बाहर देखते हैं, व्यवहार में आते हैं तब उन्हें गुरुओं की आवश्यकता पड़ती है। गुरुजन उन्हें इतना सिखा देते हैं कि बेटा भीतर जाना तो ऐसे जाना कि बाहर आने के बाद भी तुम्हें भीतर की याद बनी रहे। इस प्रकार की जो कला सीख जाते हैं वही ज्ञान की कला कहलाती है। वह कला गुरु महाराज सीखे हुए हैं इसलिए यहाँ पर कह रहे हैं कि परमार्थ से तो आत्मा का कोई गुरु नहीं है। परमार्थ माने निश्चय से क्योंकि निश्चय में दूसरे की कल्पना होती नहीं है। जब परमार्थ की प्राप्ति होगी, परमार्थ रूप जब हम अपनी आत्मा को बना लेंगे तो उस समय पर हमें किसी गुरु की आवश्यकता नहीं है। जब तक आत्मा ये परमार्थ नहीं बनती है तब तक पंच गुरु को अपना आलंबन बनाना। कुछ नहीं भी आए तो भी णमो अरिहंताणं, णमो सिद्धाणं जपते-जपते उन पंच परमेष्ठी के प्रति अपनी श्रद्धा इतना बढ़ाना कि हमारी आत्मा में ही हमें स्वयं का गुरु दिखने लग जाए।

श्लोक-७६

दृढात्मबुद्धिर्देहादावुत्पश्यन्ना– शमात्मनः।
मित्रादिभिर्वियोगं च बिभेति मरणाद् भृशम्।।७६।।

होता यदा जड़ तनादिक का वियोग, भारी विलाप करते बहिरात्म लोग।
मैं तो मेरा, मरण!! महा समीप, ऐसे कहे, न जिनके उर–बोध–दीप।।७६।।

जब हमारा आत्म अभ्यास बढ़ने लग जाता है और हमें लगने लग जाता है कि ये शरीर हमारी आत्मा का स्वभाव नहीं है, इसे हमने एक कपड़े के रूप में ग्रहण कर रखा है, एक आवरण डाल रखा है। इस आवरण का विनाश हमारा भी होगा और जिस किसी का भी हम देख रहे हैं उसका भी होगा। न तेरा लाख का होगा, न मेरा खाक का होगा। तेरा भी नाश होगा, मेरा भी नाश होगा। जिंदगी भर ब्रांडेड–ब्रांडेड चिल्लाने वालों ये ध्यान रखना कफन का कोई ब्रांड नहीं होगा। ये एक ऐसी स्थिति है कि इसको जब आदमी समझने लग जाता है तो अपने शरीर के प्रति इतना निर्मोह हो जाता है कि उसके नष्ट–भ्रष्ट होने पर कभी व्याकुल नहीं होता। जब वह किसी दूसरे जीव का इस प्रकार परिणमन देखता है तो उस के वियोग होने पर या अभाव हो जाने पर अज्ञानी प्राणियों की तरह चिल्लाता नहीं है, रोता नहीं क्योंकि उसे धीरे–धीरे आत्मबोध मिल चुका है कि आत्मा तो केवल इन शरीरों को ग्रहण करती है, छोड़ती है। आत्मा समाप्त नहीं होती, उसका मरण नहीं होता। इसलिए हमारा कोई संगी–साथी कभी चला भी गया तो उसका शरीर ही छूटा है, आत्मा तो कहीं न कहीं है ही। ये भी बोध आ जाता है तो वह अज्ञानी प्राणियों की तरह, मोही लोगों की तरह वह भारी वियोग नहीं करता। बहुत चिल्लाकर या डिप्रेशन में जाकर अपने आपको मिटाता नहीं है। ऐसी स्थिति से बचना भी हमारी आत्मवृत्ति कहलाती है। हम इस संसार के स्वभाव को समझें, जहाँ पर किसी का जन्म हुआ है वहाँ पर उसका मरण भी होता है। हमारी बुद्धि जब देह में दृढ़ हो जाती है तो दूसरे के मरण से हमें भारी दु:ख होता है। इतना कि हम भी मरने से डरने लग जाते हैं। जब हम दूसरे के वियोग को देखकर इस प्रकार चिंतन करेंगे तो हम अपने मरण से नहीं डरेंगे, ये उसका सिद्धांत है। दूसरे के मरण को देखकर आदमी स्वयं बहुत चिल्लाता है, रोता है परंतु मरने वाला का कैसा परिणाम रहा, किस कारण उसका मरण हुआ, उसके भाव

क्या थे, ऐसी कोई भी चिंता नहीं करता। बस हमें छोड़ के चला गया, हमारा क्या होगा, इस प्रकार के स्वार्थ के परिणामों से जो व्यक्ति दु:खी होकर के रोते हैं। वे अपने मरण के लिए भी डरते हैं और कभी हँसते हुए मरण नहीं कर पाते हैं।

आचार्य कहते हैं अगर आपको मृत्यु से या मृत्यु के भय से अपने आपको बचाना है तो किसी भी मित्र आदि के वियोग होने पर ज्यादा रोना–धोना नहीं करो। ज्यादा दु:खी होने का भाव मत करो और बहुत ज्यादा लंबे समय तक उसी चीज को याद कर–कर के अपने मन को दु:खी मत बनाओ। अपनी आत्मा के परिणाम को इस रूप में देखो कि ये सबके साथ होता है और दुनिया में जो भी हमें दिखाई दे रहा है। देर सवेर या तो वो पहले जाएगा या हम पहले जाएँगे। नंबर सबका आना है, कोई भी उसमें न तो बहुत आगे है, न बहुत पीछे है, सब बीचों बीच में हैं। बस ये ध्यान रखना। मृत्यु के मुँह में सभी बीचोंबीच में है, ये आगे–पीछे तो हम अपनी कल्पना से बना लेते हैं। ये हमारे मन का एक मिथ्या भ्रम रहता है वस्तुत: जिसका जिस समय पर जैसा होना होता है वह होकर के ही रहता है। इसलिए हम अपने स्वभाव को देखें। पंचपरमेष्ठी की आराधना करें और पंच गुरुओं के आलंबन लेकर के अपने परिणामों को थोड़ा दृढ़ बनाएँ जिससे कि हम अपने आपके मरण होने से भी अपने आपको बचा पाएँ।



श्लोक–७७

आत्मन्येवात्मधीरन्यां शरीरगतिमात्मनः।
मन्यते निर्भयं त्यक्त्वा वस्त्रं वस्त्रांतरग्रहम्।।७७।।

प्राचीन वस्त्र तज, वस्त्र नवीन लेते, स्वामी! यथा मनुज मात्र न खिन्न होते।
योगी तथा न डरता यदि काय जाना, मेरा नहीं मरण है इस भाँति गाता।।७७।।

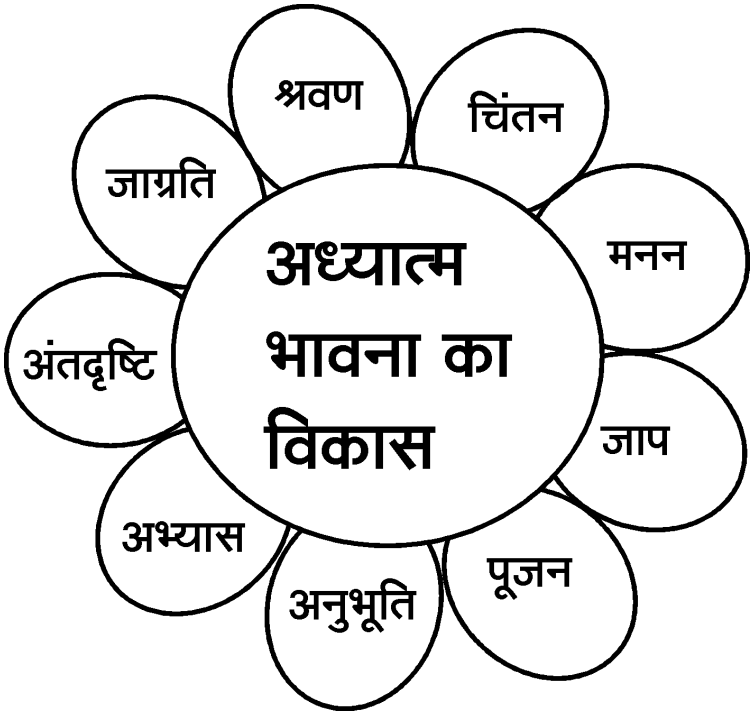
अध्यात्म की भावना और ध्यान के संस्कार बार–बार मन के ऊपर डालना पड़ते हैं। एक बार सुनने से या चिंतन करने से या ध्यान करने से बहुत कुछ हासिल नहीं होता है क्योंकि मन के ऊपर कुछ ऐसे संस्कार पड़े रहते हैं जिन संस्कारों को हमने अनंत कालों से अर्जित किया है, उन संस्कारों को दूर करके कुछ नया सोचना, नई भावना करना इसके लिए एक बार में कहना पर्याप्त नहीं होता। इसलिए अध्यात्म में एक बार को कई बार भी कहा जाता है ताकि आप उसी भावना को बार–बार करें। एक बार के अभ्यास से आपको कुछ भी हासिल नहीं होगा। बार–बार, लगातार कई महीनों तक उसका अभ्यास करें चाहे वो भावनात्मक हो या मंत्र जापात्मक हो। आपको लगता है कि आपको रोजाना नया–नया सुनना चाहिए लेकिन आचार्य कहते हैं आप अपने भाव नए–नए बनाओ और चीज वही रखो। आप चाहते हो कि चीज नई–नई हो और भाव वही पुराने घिसे–पिटे हो, ये आपकी दशा है क्योंकि आप नए–नए भाव बना नहीं पाते हो और नई–नई चीज सामने लाकर खाते हो, उससे अपने मन को प्रभावित करना चाहते हो। आचार्य कहते हैं उन नई चीजों को बार–बार लाने का अभी अपने मन में मोह मत पालो। अभ्यास इस ढंग से करो कि हमें उस अभ्यास के माध्यम से नया–नया भाव उत्पन्न हो।

एक बुद्धि होती है और एक प्रतिभा होती है। बुद्धि केवल जो सुनाया जाता है उसी को ग्रहण कर लेती है और बुद्धि में कुछ नयापन नहीं आता है लेकिन प्रतिभा उसको कहते हैं जिसमें नयापन आता है। नए–नए विचार, नई–नई भावनाएँ, नया–नया प्रतिदिन अनुभव में उत्पन्न हो, उसका नाम प्रतिभा। बुद्धिमान तो सभी हो सकते हैं लेकिन प्रतिभावान् तो बहुत कम होते हैं। प्रतिभावान् बनने का अर्थ है अपने अंदर नए–नए भावों का आनंद लेना। प्रतिदिन आपको सूर्य का दर्शन होता

है, चंद्रमा भी रात्रि में आता है लेकिन वह सूर्य और चंद्रमा का वही–वही रिपिटीशन होता रहता है। आपको कभी नहीं लगता कि यही सूर्य तो कल आया था, वही सूर्य आज आया है, वही सूर्य परसों आएगा। आपको कभी भी पुरानापन नहीं लगता उसमें। उस सूर्य के अंदर नई किरणें, नया प्रकाश रहता है उसी तरह से हमारा ज्ञान जो कल था वो छूट गया, वो बासी हो गया। आज जो हमारे अंदर ज्ञान है वो एक नया उत्पन्न हो रहा है, हम उसका अनुभव करने का प्रयास करें। ज्ञान भी कभी समाप्त नहीं होता जैसे सूर्य की किरणें और सूर्य का ताप कभी समाप्त नहीं होता। ऐसे ही हमारे ज्ञान का जो प्रकाश है वह कभी भी बासा नहीं होता, उसको हम नए–नए रूप में अनुभव में लाकर के इन भावनाओं के साथ जब जोड़ लेते हैं तो हमें नया–नया आनंद मिलता है। आपको आदत पड़ी है नया–नया आनंद लेने के लिए नई–नई वस्तुओं को खरीदने की और नए–नए मॉडल नए–नए आयटमों को सामने रखकर के उनसे कुछ नए–नए भाव उत्पन्न करें। त्योहार आ रहा है दशहरा व दीवाली। अब राम का पंडाल खाली रहेगा, रावण का पंडाल भरेगा। लोगों के अंदर जो रावण बैठे हैं उसके कारण से रावण जैसी भावनाएँ विकसित होंगी, राम जैसी भावनाएँ तो परे हैं।

हम ऐसा अभ्यास करें कि अपने अंदर ऐसी भावनाएँ जाग्रत हो जो हमें अपने आत्माराम की ओर ले जाए। हमें ये भाव आए कि जितना कुछ भी हमें मिल रहा है, हम एक नया–नया भाव एक नया आनंद लेने का प्रयास करें। इस आनंद में यदि आचार्यों के द्वारा दी हुई वाणी जुड़ जाती है तो ये समझना कि वह भी हमारे लिए नया भाव उत्पन्न करने का कारण बन जाती है इसलिए बुद्धिमान से ज्यादा जरूरी है प्रतिभावान् हो। प्रतिभावान् व्यक्ति बाहरी पदार्थों पर ज्यादा निर्भर नहीं होता वह भीतरी अंतरंग अपने आत्मतत्त्व पर ज्यादा निर्भर रहता है। जैसे–जैसे उसकी अंतर्दृष्टि बनती चली जाती है वह बाहरी पदार्थों पर आधारित न होकर के अपनी दृष्टि को अपनी आत्म आधारित बना लेता है, इसी का नाम है प्रतिभावान् व्यक्ति। आत्मा की उपमा सूर्य के साथ दी जाती है जैसे सूर्य का प्रकाश रोजाना नया–नया आता है, उसके प्रकाश में कभी कमी नहीं आती। ऐसे ही आत्मा के ज्ञान प्रकाश में कभी कोई कमी नहीं आती। आत्मा में भी ऐसी ललक होनी चाहिए कि आज मैं नया ज्ञान प्राप्त करूँ, नई अनुभूति प्राप्त करूँ। वह ललक जब अपने अंतरंग से अपने ही ज्ञान के लिए प्राप्त होती है तो ये हमारे आत्म जागरण की स्थिति बन जाती है। रात्रि में जागरण करने वाले लोग बहुत होंगे लेकिन जो दिन में जाग्रत रहे वो लोग बहुत कम होते हैं। रात्रि में आनंदित होने वाले, पूजा–पाठ करने वाले लोग बहुत होंगे लेकिन भारतीय संस्कृति में हर कार्य

दिन में करने के लिए कहा गया है। चाहे पूजा करो, ध्यान करो या ज्ञान का अभ्यास करो। आचार्यों ने कहा है कि रात्रि होने पर हमें अपने अंदर एक ध्यान की अवस्था तो तैयार कर लेनी चाहिए लेकिन अन्य कोई उत्सव या पूजा–पाठ है, ये सब सज्जन पुरुषों को दिन में ही कर लेना चाहिए। रात्रि में एक तामसता का वातावरण तैयार हो जाता है और उसमें यदि तामसिक कार्य करोगे तो आपकी तामसिकता और बढ़ जाएगी। तामसिक अर्थात् अत्यधिक काम की भावना, कलुषता का भाव, ऐसी कामुक वृत्तियाँ रात्रि में सहजता से आने लग जाती है। धर्म के नाम पर भी यदि तामसता आ जाती है तो वो धर्म नहीं रहता है इसलिए सभी सात्विक क्रियाएँ, धर्म क्रियाएँ भारतीय संस्कृति में दिन में करना चाहिए। रात्रि में आपको केवल अपना आत्मचिंतन करना, ध्यान करना क्योंकि ध्यान से उस तामसता के ऊपर नियंत्रण आ जाता है, उस भाव को ध्यान से जीता जाता है। ध्यान से उन आवेगों का प्रभाव कम हो जाता है। अब पाश्चात्य संस्कृति का ऐसा प्रभाव पड़ गया है कि दिन में आदमी को अपने व्यापार से फुर्सत नहीं है, जो कुछ होना है तो रात्रि में ही होना है और उसमें तामसता के साथ उलटे–सीधे अनेक प्रकार के गाने गाए जाते हैं। भांड रूप से नाचना, गाना, थिरकना ये सब कामुकता को बढ़ाने के साधन हम धर्म के नाम पर करने लगे हैं। ध्यान व चिंतन के माध्यम से हम अपने मन के विकारों पर विजय प्राप्त करने का मन बनाएँ।



श्लोक–७८

व्यवहारे सुषुप्तो यः स जागर्त्यात्मगोचरे।
जागर्ति व्यवहारेऽस्मिन् सुषुप्तश्चात्मगोचरे।।७८।।

जो भी यहाँ विषय भोग करें करावें, शुद्धात्म ध्यान च्युत होकर कष्ट पावें।
जो मौन सर्व व्यवहारिक कार्य में हैं, वे ही स्वदर्शन करें, निज में रमे हैं।।७८।।

दो चीजें हैं एक तो वो व्यवहार जिसके माध्यम से हम अपनी दिनचर्या चलाते हैं जिससे हम बहुत अच्छे ढंग से परिचित हैं। दूसरा वह आत्मकार्य जो केवल आत्मगोचर होता है उसको हम निश्चय कहते हैं। इस आत्मगोचर के कार्य में जो व्यक्ति सोता रहता है वह व्यक्ति व्यवहार के कार्यों से जागता रहता है एवं जो व्यक्ति व्यवहार के कार्यों से सो जाता है वह व्यक्ति आत्मा के कार्यों में जागने लग जाता है। दोनों प्रकार की सुषुप्तता है और दोनों प्रकार की जाग्रति है। आप चाहते हो महाराज दोनों कार्य चलते रहें, आत्मा की जाग्रति भी रहे और व्यवहार कार्य भी चलते रहें। ये आप चलाते तो रह सकते हो लेकिन लाभ आपको नहीं मिल सकता क्योंकि दोनों की वृत्तियाँ एक–दूसरे से विपरीत भावों के साथ चलती हैं। इसलिए आचार्य कहते हैं कि या तो पहले व्यवहार में जाग लो, जो आप अनंतकाल से जागते आए या तो निश्चय में जाग लो। जो आत्मा में जाग्रत होगा वह बाहर के क्रिया–कलापों में सो जाएगा और बाहरी क्रिया–कलापों में जागने वाला आत्मिक क्रिया–कलापों में सो जाएगा, दोनों चीजें उल्टी हैं। आपको आँख बंद करने के लिए इसलिए कहा जाता है कि आप व्यवहार से अपने आपको हटा दो। तब आपके लिए आत्मा की जाग्रति होगी। आचार्य कहते हैं अभ्यास की वह दशा व अभ्यास की वह भावना बार–बार करो, निरंतर करो, रोजाना करो और उसको तब तक करते रहो जब तक की उसी में हमारा रमने का मन अपने आप न बनने लग जाए, वह चीज हमें हर वक्त सामने न दिखाई देने लगे। जो लोग राम और आत्माराम को देखना चाहते हैं, उस आत्माराम की आराधना करें।

श्लोक–७९

आत्मानमन्तरे दृष्ट्वा दृष्ट्वा देहादिकं बहिः।
तयोरन्तरविज्ञानादभ्यासादच्युतो भवेत्।।७९।।

तो देख बाह्य धन वैभव और अंग, ओ! आत्म को निरख के निज अन्तरंग।
निस्सार जान जड़ को पर औ अमेध्य, छोड़े उसे बुध सुशीघ्र बने अभेद्य।।७९।।

अपनी आत्मा को भीतर देखकर के और देह आदि को बाहर देखकर के दोनों के अंतर को और दोनों के विज्ञान को जानों और इस प्रकार जानों कि दोनों के अंतर का विज्ञान अभ्यास के रूप में आ जाएँ। जब वह अभ्यास बढ़ेगा तब वह अभ्यास ही आपको अच्युत बना देगा। अच्युत का अर्थ होता है कभी भी अपने मनोभावों से च्युत नहीं होना, छूटना नहीं। हम सभी को ज्ञान है, हो चुका है और सभी के लिए ये ज्ञान सामान्य रूप से रहता है। शरीर पर है, आत्मा निज है। आत्मा शरीर के अंदर विद्यमान है। आत्मा शरीर से पृथक है ये सभी को ज्ञान है लेकिन इन अध्यात्म शास्त्रों में ज्ञान को महत्व नहीं दिया जाता बल्कि अध्यात्म के अभ्यास को महत्व दिया जाता है। ज्ञान होने के बाद में यदि हम उस ज्ञान का कोई अभ्यास नहीं करते तो हमें उस ज्ञान का कुछ भी उपलब्ध नहीं होता। न हमें उस तरह की धारणा बनती है, न ही वैसा अभ्यास बनता है और ना ही हमारी बुद्धि में ये बात दृढ़ रूप से आती है कि आत्मा भिन्न है और शरीर भिन्न है। रटने का काम तो कोई भी कर सकता है, कोई भी समझ सकता है लेकिन अभ्यास करने की बात आती है तो कोई भी अभ्यास नहीं करता।

आचार्य पूज्यपाद महाराज यहाँ पर बहुत छोटा सा अभ्यास बता रहे हैं लेकिन ये बहुत बड़ा हो सकता है। वो कहते हैं आप देखने की क्रिया करो। देह आदि को बाहर देखो और आत्मा को भीतर देखो। आप सब कुछ देखते हैं पर इस रूप में नहीं देख पाते। हम देखने का थोड़ा सा अभ्यास करें चाहे खुली आँखों से करे, वो भी वाजिब है। वो भी लाभकारी है। आप लोग जब भी कभी अपने शरीर को देखते हो, चेहरे को आइने में देखते हो पर इस रूप में नहीं देखते हो। सब कुछ हमने सुना, सब कुछ जाना, उसके बावजूद जब तक ये अंतरंग ज्ञान के साथ में अभ्यास की परिणति नहीं बनती तब तक आचार्य कहते हैं तब तक आप अपनी प्रवृत्तियों से, मानसिक वृत्तियों

से और अपने मनोभावों से छूट नहीं सकते। हम विचार करें हमारे मनोभावों पर क्या हावी रहता है? ये बात हमारी आत्मा पर बिल्कुल हावी नहीं होती, हावी का मतलब एकदम उसका प्रभाव हमारी आत्मा के ऊपर पड़ जाए कि हम अगर चेहरे को कभी शीशे में भी देखें तो हमें याद आ जाएँ आत्मन्, तू क्या देख रहा है। जो दिख रहा है वो तू है नहीं और जो नहीं दिख रहा है उसको तू देखने के लिए लालायित है। अपने मुख को देख कर, अपने चेहरे को देखकर के तुम अपने अंतरंग के राग की परिणति को इस शरीर के साथ क्यों बढ़ाता है। ये विचार हमारे मन में आ ही नहीं सकता जब तक गुरु महाराज के अनुसार देखने का प्रयास नहीं करें। खुली आँखों से भी ध्यान किया जा सकता है। आँखें इसलिए बंद करानी पड़ती हैं ताकि आपके भ्रम मिटे। कई बार आप लोग आईना सामने ना हो तो भी शरीर को देखते हैं। कई बार हमारे पास ऐसे लड़के आते हैं जो जिम जाते हैं और अपनी बॉडी बना लेते हैं और बार–बार उसे ही देखते रहते हैं। इनकी देह के प्रति इतनी आसक्ति बनी हुई रहती है कि वे एक क्षण भी उसके बिना नहीं रहते। उन्हें अपने शरीर को, बाजुओं को देख–देख कर आनंद आता है, ये भी एक देखना है।

इसी देखने की प्रक्रिया के लिए आचार्य कहते हैं देखो, परंतु अंतरंग में विज्ञान उत्पन्न करके देखो मतलब भीतरी विज्ञान या भेद विज्ञान के साथ में इन्हें देखो। चाहे शीशे में देखो या ऐसे ही देखो इस सूत्र को ध्यान रखो कि जो मेरा शरीर आदि है ये मेरा बाहर–बाहर का रूप है, ये मेरी आत्मा का बाहरी स्वरूप है। ये मेरे शरीर का रूप है, मेरी आत्मा का रूप नहीं है। ये आत्म पदार्थ नहीं है, आत्मा से बाहर का रूप है। इस विचार/विज्ञान के साथ आप अगर रोजाना चेहरा देखो तो आपके लिए ये अभ्यास हो सकता है कि बिना इस किताब के, बिना गुरु के भी आपके अंदर भेद विज्ञान बना रह सकता है। महाराज, ऐसा देखेंगे तो बिंदी, पावडर, लिपिस्टिक कैसे लगाएँगे? ऐसा देखने से तो वो क्रिया हो ही नहीं पाएगी। लेकिन यदि आप ऐसा देखने लग जाएँ कि शरीर बाहर है। चाहे गोरा–काला– मोटा–पतला कैसा भी है वह आत्मा से बाहर है, अंतरंग आत्म वस्तु नहीं है। अंदर देखने के लिए अभ्यास करें कि जो बाहर है वो बाहर है जो अंदर है वो अंदर है। आत्मा अंदर है शरीर बाहर है। आत्मा को हम कभी बाहर नहीं देख सकते और शरीर को हम कभी भीतर से नहीं देख सकते, जब ये अभ्यास बढ़ जाएगा तब आपके अंदर ऐसी दृष्टि बन जाएगी कि आप इस दृष्टि को भूल ही नहीं पाओगे। आत्मदृष्टि आपके अंदर हमेशा बनी रहेगी। हमारी आत्मदृष्टि हर समय पर च्युत होती रहती है, छूट जाती है। दृष्टि हमारी एकरूप में कभी रहती ही नहीं। हमें थोड़ा सा भी अच्छा मिल जाता है तो हम आत्मदृष्टि को भूल जाते हैं। अपने शरीर को, बालों, को, मुख को देखकर हम आत्मदृष्टि को भूल जाते हैं, हमें तब इतना राग उत्पन्न होता है, जितना किसी दूसरी चीज से भी नहीं होता। मानव का शरीर जल जाता है, केश जल

जाते हैं घास की तरह लेकिन ये तब होता है जब आत्मा चली जाती है उससे पहले तो किसी को कोई ज्ञान नहीं रहता। इस रूप में देखने वाले तो केवल योगी हुआ करते हैं जो साधना के पथ पर चलते हैं तभी उन्हें इस प्रकार के भी आयाम समय–समय पर आते रहते हैं।

केशलोंच आदि जो क्रियाएँ हैं उन्हें हमें बाहर दिखाने की क्या जरूरत है और बाहर दिखाने से किसी को वैराग्य उत्पन्न हो जाता हो ऐसा तो कभी नहीं हुआ। आपको यदि वैराग्य का भाव कभी उत्पन्न होगा तो वह केवल मुनि महाराज के गुणों को गहराई से चिंतन में लाने से भी हो जाएगा। आप किसी को जलता देखते हो, मरघट तक चले जाते हो, केशलोंच भी देख लेते हो पर आपको कब वैराग्य होता है। आपके अंदर वो वैराग्य इसलिए नहीं होता क्योंकि राग भाव का संस्कार बहुत गहरा पड़ता है। हमें अपने शरीर से, एक–एक बाल से इतना राग है कि उसकी गिनती नहीं है। यदि एक बाल भी हमारा टूट जाता है तो हमें ऐसा लगता है कि बहुत कुछ छूट गया। अरे! अब क्या होगा, बाल झड़ने लगे, कैसा डर लगता है। मुनि महाराज अपने उन्हीं बालों को घास की तरह नोंचकर के अपने ही हाथों से तोड़कर के सामने रख देते हैं और उन्हें आनंद उत्पन्न हो जाता है कि चलो ये राग की बुद्धि के जो कारण बने हुए थे अनादिकाल से, इसे कम से कम इस पर्याय में छोड़ रहे हैं, कम कर रहे हैं। उन्हें अपना ही रूप कभी दिखाई नहीं देता इसलिए उनमें राग की वृद्धि कभी हो नहीं पाती। मुनिराज केशलोंच करते हुए सोचते हैं कि ये जितना भी शरीर पर बाल आदि का जो राग है, ये राग भाव ही सबसे बड़ा पाप है। ये बाल हमारे अंदर इसलिए उत्पन्न हुए कि हमने पूर्व जन्म में बहुत पाप किए, उन पाप का ये फल है कि हमारे अंदर वह राग उत्पन्न होता है। उस पाप रूपी बाल को वो छोड़ते हैं, तोड़ते हैं ऐसे जैसे किसी आदमी को किसी से बदला लेना हो तो वो कहता है चुन–चुन कर तुझसे बदला लूँगा। ऐसे ही मुनिराज अपने राग भाव को चुन–चुनकर छोड़ते हैं, तोड़ते हैं और बदला लेते हैं किससे– अपनी ही आत्मा से, जिसने वह राग भाव को संजोया और उसके फलस्वरूप यह पाप शरीर को धारण किया, उसके प्रति वैराग्य की भावना इस केशलोंच के माध्यम से उत्पन्न होती है। कुछ याद रहे या ना रहे बस इतना ही याद रखें कि चुन–चुन कर बदला लूँगा 'आत्मा का आत्मा से' तब ही केशलोंच करने में अपने आप साहस आ जाता है। इसके माध्यम से अपने शरीर का जब तक राग नहीं छूटेगा तब तक आपको कभी भी ये वीतराग भाव में अच्युत भाव आएगा ही नहीं। इसलिए आचार्य कहते हैं कि अपने शरीर को भी देखो तो ये देखो कि शरीर बाहर है, पर है, दूसरा है। जब अध्यात्म भावना में आदमी ढल जाता है तो उसे अपना ही शरीर अपने पड़ोसी जैसा दिखता है, दूसरे का शरीर लगता है। अभ्यास करने से इस तरह की परिणतियाँ बनने लग जाती हैं।

श्लोक–८०

पूर्वं दृष्टात्मतत्त्वस्य विभात्युन्मत्तवज्जगत्।
स्वभ्यस्तात्मधियः पश्चात् काष्ठपाषाणरूपवत्।।८०।।

जो जोग धार, वन जीवन है बिताता, प्रारम्भ में जग उसे 'मद' सा दिखाता।
पश्चात् वही निरस–ठूंठ समा दिखाता, अभ्यास से मुनि यहाँ निज वित्त पाता।।८०।।

आत्मतत्त्व का अभ्यास

आचार्य कहते हैं कि जब आप अपने आत्मतत्त्व का अभ्यास करेंगे तो प्रारंभ में आपको जगत उन्मत्त के समान दिखाई देगा। उन्मत्त यानि ये सब पागल हैं जो सड़कों पर घूम रहे हैं और जो यहाँ बैठे हैं वे सब समझदार हैं। जो मंदिर में, प्रवचन में, ध्यान में नहीं आते, अपने घर में बिस्तरों में पड़े रहते हैं वे सब पागल हैं। कोई मोबाइल में, लेपटॉप में उन्मत्त है, किसी न किसी दृश्य अथवा किन्हीं दृश्यों को देखने में, न्यूज सुनने में। इसी–इसी में उनका समय बीतता जा रहा है, वे मदमस्त हैं, उन्मत्त हैं। किसी से कहना नहीं, अपने मन में विचार लाना। आपके सामने कोई इस प्रकार की वृत्ति करने वाला दिखे तो सोचना कि ये पागल हैं, पर उससे कहना नहीं। आपके मन में ऐसा विचार तब आने लगेगा जब आपका मन उन्मत्त नहीं होगा, तभी तो आप दूसरे के परिणाम देख पाओगे। जब आप समझदार होंगे तभी दूसरा पागल दिखेगा। इस तरह का थोड़ा सा भी विचार जब आपके अंदर बनने लगे तो आप समझ लेना कि आपने योग अभ्यास शुरू कर लिया है। आपके अंदर योग की परिणति भीतर तक उतर रही है। यह पहली कसौटी है। जब यह अभ्यास और बढ़ जाता है तब पागल भी हमें पागल जैसे नहीं दिखाई देंगे बल्कि हमें काष्ठ यानि पत्थर या ठूंठ की तरह दिखते हैं। आपके अंदर की निश्छलता जैसे–जैसे बढ़ जाएगी तब आपको पूरी दुनिया एक जड़ के समान या पत्थर के समान लगेगी या लकड़ी के ठूंठ के समान लगेगी और उनके भ्रमण से या उनके स्पंदन से आपके अंदर कोई स्पंदन नहीं आएगा। यह कहलाएगी आपके भीतर की सृष्टि और दृष्टि का बदलाव। यह अभ्यास से प्रारंभ होता है, सुनने से, ज्ञान से हमें बहुत कुछ प्राप्त नहीं होता इसलिए हम थोड़ा अभ्यास की ओर बढ़ें।

श्लोक–८१

शृण्वन्नप्यन्यतः कामं वदन्नपि कलेवरात्।
नात्मानं भावयेद्भिन्नं यावत्तावन्न मोक्षभाक्।।८१।।

तत्त्वोपदेश पर को दिन रैन देता, सद्बोध और सुनता जिन शास्त्र वेत्ता।
पै देह भिन्न मम जीव सदैव भिन्न, ऐसा न बोध यदि हो शिव मात्र स्वप्न।।८१।।

निर्जरा तत्त्व

हम बहुत कुछ दूसरों से सुनते हैं और सुनकर भी उस तत्त्व को भावित नहीं करते हैं। दूसरों से सुनना और खुद से सुनना, इन दोनों में अंतर है। दूसरों से कोई चीज हम सुनते हैं तो वो हमें अच्छी लगती है, हम सिर हिला देते हैं और हम सोच भी लेते हैं कि ये बात बहुत अच्छी है लेकिन वह बात हमारे भीतर असर नहीं करती क्योंकि वह केवल सिर तक रह जाती है। आप वह बात सुन लेते हो और ग्रहण भी कर लेते हो पर यहीं पर यात्रा समाप्त नहीं हो जाती। शब्द की यात्रा कर्ण इंद्रिय से होते हुए मति ज्ञान के रूप में जब तक श्रुतज्ञान और धर्मध्यान के रूप में नहीं ढलती, तब तक उस शब्द का प्रयोजन सिद्ध नहीं होता। शब्द की वह यात्रा अर्थ तक हो जाती है, मतिज्ञान एवं श्रुतज्ञान के माध्यम से लेकिन शब्द से अर्थ और अर्थ से भाव भासन का होना, ये ध्यान से शुरू होती है। श्रुतज्ञान की भी एक परिणति जिसमें हम उस ज्ञान को भी विश्राम दे देते हैं और उस ज्ञान में जो हमने विचार किया है उसी बात पर जब हम उसका ध्यान करते हैं तो वह ज्ञान की परिणति ध्यान में बदल जाती है। पहले आप लोग ज्ञान अर्जन ज्यादा किया करते थे, ध्यान न के बराबर करते थे। अब आप लोग ध्यान ज्यादा कर रहे हो। ज्ञान कम तो नहीं हो रहा है, पर कह सकते हैं कि ध्यान में ज्ञान की बातें होती हैं जो हमारे भीतर तक उतरती है। आचार्य कहते हैं हम कई बार सुन लेते हैं, सुनाने वाला भी कई बार सुना देता है और उपदेश देने वाले भी थक जाते हैं। जब तक तुम उपदेश देते रहोगे तब तक तुम्हारा भी कल्याण होने वाला

नहीं है। उपदेश देना व सुनना, ये दोनों चीजें कर्ण इंद्रिय से व नेत्र इंद्रिय से होती हुई हमारे मतिज्ञान से श्रुतज्ञान तक पहुँच जाती है और श्रुतज्ञान का काम केवल इतना ही है कि वह सिर हिलाकर स्वीकार कर लेगा कि बात बहुत अच्छी है। जो भी मैं सुन रहा हूँ उसमें आनंद आता है।

आचार्य कहते हैं कि इसके आगे भी तुम्हें कुछ करना है। जब तक हम अपनी आत्मा को इन परद्रव्यों से भिन्न होकर के उस केवल आत्मा की भावना नहीं करेंगे तब तक हमें मोक्ष की प्राप्ति नहीं होगी। आप कहोगे महाराज मोक्ष की प्राप्ति तो अभी भी नहीं है। मोक्ष तत्त्व के पहले एक तत्त्व आता है 'निर्जरा' यदि उसकी प्राप्ति हो जाती है तो मोक्ष तत्त्व की प्राप्ति हो जाती है। आज मोक्ष निर्जरा के रूप में है। निर्जरा को एक देश मोक्ष कहते हैं माने थोड़ा मोक्ष। पूरा मोक्ष आज नहीं है पर थोड़ा मोक्ष आज भी है। निर्जरा का मतलब है एकदेश कर्मों का झड़ जाना, बुरे कर्मों का झड़ जाना। थोड़े कर्म झड़ गए तो थोड़ी मुक्ति तो मिल ही गई। वृक्ष को जब हम झड़ाते हैं तो उस समय पर वृक्ष की पत्तियाँ या कुछ फल झड़ जाते हैं, उस समय वृक्ष का एकदेश मोक्ष हो जाता है। जब उसके सारे फल तोड़–तोड़कर ग्रहण कर लेते हैं तो ये उसका पूरा का पूरा मोक्ष हो गया। इसी तरह कर्मों की निर्जरा होने से अंशत: मोक्ष या एकदेश मोक्ष आज भी है। पूरा मोक्ष तो आप लोग ग्रहण भी नहीं कर सकते क्योंकि उतनी ताकत आप में से किसी के पास नहीं है। जिनके पास वज्र वृषभ नाराच संहनन होता है उन्हीं के पास में मोक्ष पूर्ण रूप से आता है। जो उस संहनन से रहित होते हैं उनके लिए आचार्य कहते हैं वे देश निर्जरा करके उस थोड़े मोक्ष की अनुभूति कर सकते हैं। यदि आप इस ढंग से ध्यान द्वारा आत्मा की भावना करेंगे तो निर्जरा तत्त्व आपकी आत्मा में घटित होगा। कर्मों का आना रुकेगा, जो पुण्य कर्म है वे आपकी आत्मा में अधिक रूप से बंध को प्राप्त होंगे और आपकी आत्मा में पाप का पूर्णतया संवर हो जाएगा और भीतर से पाप पर ही दबाव पड़ेगा। एक केमिकल प्रोसेस है 'कार्मिक बांडिंग' की, जिस चीज को आप रोक दोगे उसी चीज का भीतर दबाव पड़ता है और दबाव पड़ने से वही चीज भीतर से बाहर निकलेगी। उसी का नाम है निर्जरा तत्त्व। जब आप पाप को रोक दोगे तो पाप की निर्जरा होगी। पाप की सबसे ज्यादा निर्जरा तब होती है जब पाप का संवर हो जाता है। पाप के संवर के लिए हम पाप की क्रियाओं को पूर्ण रूप से मन–वचन–काय से रोक देते हैं। इसलिए आचार्य कहते हैं आज भी पाप का संवर है, निर्जरा तत्त्व है और मोक्ष तत्त्व है। जो कुछ भी उपादेय चीजें हैं वे सब हमारे पास में हैं बस हमें उसकी भावना जरूर करना। केवल सुनकर के सिर हिलाकर के नहीं रह जाना, इस प्रकार की भावना करो।

श्लोक–८२

तथैव भावयेद्देहाद् व्यावृत्यात्मानमात्मनि।
यथा न पुनरात्मानं देहे स्वप्नेऽपि योजयेत्।।८२।।

शुद्धात्म ध्यान सर में निज को डुबाओ, दुर्गन्ध देह सर को सहसा भुलाओ।
तो देह धारण पुनः जिससे न होवे, पावे विशुद्धि पद औ वसु कर्म खोवे।।८२।।

आत्मा को शरीर से हटाकर के केवल आत्मा की भावना करना और तब तक करना जब तक इस शरीर के साथ में मैं हूँ, यह स्वप्न में भी याद न आए। ये तो बहुत बड़ी बात हो गई महाराज, ध्यान में ही याद न आना बड़ी बात है। स्वप्न में याद न आए तब तो आपको घर छोड़ देना पड़ेगा। जब आप पूर्ण योगी बन जाएँगे तभी ऐसा हो पाएगा। यदि हम कुछ समय के लिए ये भावना करते हैं और अपने देह के माध्यम से थोड़ा सा उस विशुद्धि भाव को अंगीकार करते हैं तो उससे भी कर्म की निर्जरा होती है और हमारे लिए मोक्ष तत्त्व घटित होता है। हम उसी निर्जरा या मोक्ष की अनुभूति के लिए आत्मा की ओर चलें।



श्लोक–८३

अपुण्यमव्रतैः पुण्यं व्रतैर्मोक्षस्तयोर्व्ययः।
अव्रतानीव मोक्षार्थी व्रतान्यपि ततस्त्यजेत्।।८३।।

निर्भ्रांत अत्र व्रत से वह पुण्य होता, अत्यन्त क्लांत! व्रतहीन कुपाप ढोता।
दोनों विलीन जब हों तब मोक्ष भिक्षु, छोड़े व्रतेतर समा व्रत को मुमुक्षु।।८३।।

मोक्ष का स्वरूप बताया जा रहा है। एक स्थिति वह है जब आत्मा पापों से युक्त होता है, अव्रतों के साथ में रहता है। जब से वह व्रतों के साथ रहने लगता है तो उसे पुण्य का बंध होने लग जाता है। अव्रतों से पाप होता है एवं व्रतों से पुण्य होता है। आचार्य कहते हैं मोक्ष में न पुण्य होता है न पाप होता है। जब आत्मा को मोक्ष की प्राप्ति होती है तो वह पुण्य बंध को भी छोड़ चुका होता है और पाप बंध को भी छोड़ चुका होता है। यदि हमें मोक्षार्थी बनना है मतलब मोक्ष के लिए वास्तविक रूप से प्रयत्न किया जाता है वह उसी प्रयत्न के साथ मोक्षार्थी कहलाएगा। जिस समय पर आत्मा केवल आत्मा का ही ध्यान करे, स्वयं में लीन हो जाए और ऐसी आत्मा की लीनता बने कि वह शुक्ल ध्यान के माध्यम से केवलज्ञान को प्राप्त करें तो उस समय पर ही वह वास्तविक रूप से मोक्षार्थी है। मोक्षार्थी को यदि थोड़ी सी भी मोक्ष के रूप में अनुभूति करना है चाहे निर्जरा के रूप में करना है जैसे आपने अव्रतों को छोड़ा, व्रतों को ग्रहण किया उसी तरह से अब आप व्रतों के भाव को भी छोड़ दो। आप कहोगे कि जब व्रतों को ही छोड़ना था तो हम तो पहले से ही छोड़े बैठे थे, ग्रहण क्यों कराया।

मोक्षार्थी

आचार्य कहते हैं छोड़ने का अर्थ क्या? जैसे पाप को हमने संकल्पपूर्वक छोड़ा ऐसे पुण्य को संकल्पपूर्वक नहीं छोड़ा जाता। जैसे अव्रतों को संकल्पपूर्वक छोड़ा ऐसे व्रतों को संकल्पपूर्वक नहीं छोड़ा जाता। अव्रतों को छोड़ते समय संकल्प लिया जाता है कि हम आजीवन पाँचों पापों का त्याग करते हैं लेकिन पुण्य के लिए ऐसा कोई संकल्प नहीं दिलाया जाता और न पुण्य को छोड़ने

के लिए नई–नई दीक्षा कराई जाती है। व्रतों को छोड़ने का मतलब है कि व्रतों में भी अपना परिणाम मत रखो। अपने परिणामों में जब तक ये रहेगा कि मैं सत्य का पालन कर रहा हूँ, अपरिग्रह का, अहिंसा का, ब्रह्मचर्य का पालन कर रहा हूँ तब तक भी तुमको आत्मा का ध्यान नहीं रहेगा। आत्मा का ध्यान करने के लिए इन व्रतों के भावों को भी छोड़ दो पर अव्रती नहीं हो जाना। व्रत और अव्रत से ऊपर की जो अवस्था है जिसे आत्मध्यान की अवस्था कहते हैं, उसे प्राप्त करने के लिए प्रयत्नशील को मोक्षार्थी कहा जा रहा है। देखा जाए तो दिगम्बर श्रमण ही केवल मोक्षार्थी होते हैं क्योंकि मोक्ष के लिए जो भावना होना चाहिए वो कभी भी श्रावक के पास नहीं होती। श्रावक धर्मार्थी होता है, वह धर्म करने की इच्छा करेगा। श्रमण मोक्ष जाने की इच्छा करते हैं वे मोक्षार्थी होते हैं। इच्छा के साथ उनका प्रयोजन, उनकी क्रिया उसी रूप में रहेगी, वे उसी से मोक्ष प्राप्त कर लेंगे। श्रावक अपनी किसी भी क्रिया से मोक्ष का संपादन नहीं करता, वह धर्म प्राप्त करता है। इसलिए चार पुरुषार्थों में एक धर्म पुरुषार्थ है, एक मोक्ष पुरुषार्थ है। मोक्ष पुरुषार्थ केवल श्रमणों के लिए होता है और धर्म, अर्थ व काम पुरुषार्थ ये तीनों श्रावकों के लिए होते हैं। आचार्य कहते हैं कि अव्रतों को छोड़कर व्रतों को धारण करना ये धर्म भी यदि श्रावक करेगा तो वह धर्मार्थी है। धर्म और मोक्ष में अंतर है। धर्म के साथ में कुछ ग्रहण भी होता है तो कुछ छोड़ा भी जाता है लेकिन मोक्ष में कुछ भी ग्रहण नहीं होता। सब कुछ छोड़ने के साथ में मोक्ष की प्रक्रिया शुरू होती है न पुण्य का, न पाप का भाव रखना, ये मोक्षार्थी होने का भाव है। मोक्षार्थी होने के लिए पहले आपको अव्रतों से व्रतों की ओर आना पड़ेगा। आप लोग अव्रतों में ही मोक्ष, ध्यान या लीनता चाहते हो परंतु थोड़ी देर के लिए ही आपको व्रत धारण करना ही पड़ेगा। कम से कम जब हम ध्यान करने बैठे तब के लिए ही ये संकल्प करें कि हम पाँच पापों का त्याग करके यहाँ बैठे हैं। पंचपरमेष्ठी की आराधना आपको निरंतर करती रहनी है।

आत्म ध्यान

यदि हम श्रद्धा के साथ पंचपरमेष्ठी का ध्यान शुद्ध व सहज भावों के साथ आराधना करते हैं तो हमें शारीरिक, मानसिक व अध्यात्मिक तीनों प्रकार के लाभों की प्राप्ति होगी। जितनी जिसकी श्रद्धा होगी, उसी के अनुसार उसे ये लाभ बहुत जल्दी मिलते हैं। जैन व्यक्ति की श्रद्धा पंच परमेष्ठी पर होती है। अजैन व्यक्ति की श्रद्धा भी णमोकार महामंत्र पर रहती है। श्रद्धा जो जैसी करेगा उसको वैसा फल मिल जाता है। कई बार अजैन व्यक्ति भी णमोकार मंत्र की श्रद्धा से ऐसी सिद्धियाँ प्राप्त कर लेते हैं जो जैन व्यक्ति नहीं कर पाते। ये भी अपनी–अपनी श्रद्धा का परिणाम है।

श्लोक–८४

अव्रतानि परित्यज्य व्रतेषु परिनिष्ठितः।
त्यजेत्तान्यति संप्राप्य परमं पदमात्मनः।।८४।।

संसार कारण व्रतेतर आद्य छोड़, वैराग्य पा विषय से निज को सुमोड़।
छोड़े महाव्रत तदा मुनि मौनधारी, होती स्वहस्तगत है जब मोक्ष नारी।।८४।।

आचार्य कहते हैं कि आत्मा के परम पद को पाने के लिये व्रतों को भी छोड़ना और अव्रतों को तो छोड़ना ही है। जो व्रतों का अच्छी तरह अभ्यास करता है वह सुखपूर्वक परम पद को पाता है। जो श्रमण स्वर्ण की और लोहे की हथकड़ी के समान पुण्य और पाप में समानता नहीं मानता है वह संसार में भ्रमण करता है। हमारे लिये क्या सही और क्या गलत है इस पर विचार करना अतिआवश्यक हैं।

विचारक

जीवन विचारों के अनुसार चलता है और विचार दूसरों के द्वारा सुने गए ज्ञान से प्राप्त होते हैं। जैसा हम दूसरों से सुनते हैं वैसा ही बुद्धि के अंदर विचार आने लग जाता है। इतनी समझ हर किसी के अंदर नहीं रहती कि वह विचारों को सही और गलत के रूप में कसौटी पर कस सके। जैसा भी हमें ज्ञानी लोग बताते हैं हम वैसा ही करने लग जाते हैं और उन विचारों में जब हम बहुत दूर तक डूब जाते हैं तो कभी-कभी वो विचार उत्थान के भी कारण बन सकते हैं या पतन के भी। आज के समय में ये पहचान करना बड़ा कठिन है कौन हमारा हितैषी है और कौन शत्रु है। यहाँ तक कि हर एक उपदेशक भी आपका हितैषी नहीं होता, आपके हित की बात नहीं बता सकता। दुनिया में बहुत से ऐसे उपदेशक/प्रभावक हुए जिन्होंने हमें वो दिया जो हम चाहते थे। ज्ञानी वो देता है जो हमें चाहना चाहिए, उन लोगों ने हमें वो

दिया जो हम चाहते थे। हम क्या चाहते हैं, हर किसी आदमी को यही पसंद आता है कि जिंदगी बड़ी मौज-मस्ती के साथ गुजरे। हर किसी को ये ही अच्छा लगता है कि हम ऐशो-आराम के साथ, बिना किसी कष्ट के साथ जीवन बिताएँ। इसी कमजोरी को मनोवैज्ञानिक पढ़ लेते हैं और वे धर्म की भी बात बताएँगे कि आपको लगे कि हाँ जो बताया जा रहा है वो एकदम सही है, ऐसे ही जीना चाहिए। जब हम अपनी बुद्धि स्वयं नहीं रखते, हमारा वो विचार जो दूसरों के द्वारा दिया होता है, हम उसी के अनुसार अपने विचार बना लेते हैं। ऐसी बहुत सी चीजों से समझ में आता है कि वस्तुस्थिति क्या होनी चाहिए और आज वह क्या है? हम सोचते हैं जीवन और मरण के गणित क्या होना चाहिए और आज उनकी परिभाषा क्या है? हम वह भी सीखते हैं जो धर्म में सिखाया जाता है। ज्ञानियों ने सिखाया है और कई बार वह भी सीखते हैं जो प्रभावक सिखाते हैं जिसके माध्यम से धर्म को भूल जाते हैं। एक बात के माध्यम से उस परिस्थिति को रखना चाहता हूँ जिसके लिए हम तैयार हो जाते हैं और हम ये भूल जाते हैं कि हमारे अंदर के विचार क्या होने चाहिए और हमें कौन से विचारों के साथ में चला जाना चाहिए।

जीवन का लक्ष्य

एक आदमी बहुत बड़ा व्यापारी था उसके पास में सब कुछ था। एक बार वो डॉक्टर के पास गया। डॉक्टर ने उसे देखकर, टेस्ट करके उससे कहा कि तुम्हारी उम्र केवल १० दिन की बची है। जब उस व्यापारी ने सुना कि उसकी उम्र केवल १० दिन की बची है। वह सोचने लगा कि अब मुझे क्या करना। उसे याद आने लगा कि कभी मैंने किसी उपदेशक के मुख से सुना था, मृत्यु को भी जीत लो। कैसे जीती जा सकती है मृत्यु। मृत्यु को भी भुलावे में डाल दो और मरने से पहले वो सब कुछ कर लो जो जीने के लिए चाहिए। जितने भी तुम्हारे काम रुके हुए थे जिंदगी से, अब वो इन १० दिनों में कर लो क्योंकि फिर तो तुम्हें मरना है। उस आदमी ने सोचा कि क्या करें। जितने भी उसके शौक थे, वो पूरे नहीं हुए थे क्योंकि वो अपने बिजनेस में इतना ज्यादा उलझ गया था कि सारे शौक भूल गया था। जैसे ही उसे पता पड़ा अब जिंदगी १० दिन की बची है, उसे याद आए एक उपदेशक के उपदेश- जिंदगी जियो

तो ऐसी जियो कि मौत भी भूल जाए कि हमें तुम्हें लेने आना है। उसने उसी ढंग से जिंदगी जीने की शुरुआत की। अच्छे-अच्छे भोजन करना, अच्छे कपड़े पहनना, घूमने के सारे कार्यक्रम बना लिए। उन १० दिनों में जितना अच्छा हो सकता था, जितना अच्छा वो जी सकता, वह जी लिया। अंत में उसके लिए मृत्यु भी नहीं आई, वो भी भूल गई कि हमें उसको मारना है, वो भी भूल गया कि मुझे मरना है। उपदेशक के उपदेश में आपको ऐसे भी उपदेश मिलेंगे। वह उपदेश के माध्यम से आपके जीवन को इस ढंग से बनाना चाहता है कि आप भी मरने से पहले खूब जिये, खूब खाएँ, खूब पियें, खूब मौज करें, जो मन में आए वो सब पूरे कर लें क्योंकि मरने के बाद में कौन जानता है कहाँ जाना है, हमारा क्या होना है। जब यह बात आदमी के दिमाग में आ जाती है तब आदमी इस ढंग से जीने लग जाता है। आपको ऐसे भी बहुत से विचारक मिलेंगे, प्रभावक, उपदेशक मिलेंगे जो आपको इस तरह जिंदगी बिताने को कहेंगे कि ऐश करोगे तो तुम्हारी आत्मा तृप्त हो जाएगी।

ये उपदेश तुम्हें सही समझ में आ रहे हैं कि उल्टे समझ में आ रहे हैं। ये उपदेश भी दिए जा रहे हैं और देने वालों को बहुत बड़ा प्रभावक/उपदेशक माना जा रहा है क्योंकि आदमी को जिंदगी के लिए जो चाहिए उसे वो परोस दो। न उसको अपने मरने की फिक्र है न मरने के बाद के होने वाले जीवन की क्योंकि उसको विश्वास नहीं है कि मरने के बाद भी जीवन है। वो चाहेगा कि मरने के समय आपको लगे कि आप बिल्कुल संतुष्ट हो गए हैं। आपको यदि कोई बताए कि आपकी जिंदगी के कुछ ही दिन रह गए हैं तो आप अपने सारे शौक पूरे कर लेना। अतृप्त होकर के कहीं जाओगे तो वहाँ भी अतृप्त रहोगे, जितना हो सके यहीं पर अपने लिए तृप्ति कर लो।

अगर आपके दिमाग में ये उपदेश घुस गए तो आप मान कर चलना कि आपका ये जीवन भी बर्बाद होगा और अगला भी। उसी चीज को जब हमें सही ढंग से बताया जाता है तो थोड़े दिन के लिए हमें लगता है कि ये कठिन है। उसी चीज को जब–जब सरलता से बताया जाता है तो हमें लगता है कि अरे हाँ ये तो सरल है, सही है।

श्लोक–८५

यदन्तर्जल्पसंपृक्तमुत्प्रेक्षा– जालमात्मनः।
मूलं दुःखस्य तन्नाशे शिष्टमिष्टं परं पदम्।।८५।।

संकल्प, जल्प व विचित्र विकल्प वृन्द, है दुःख मूल, जिससे वसु कर्म बन्ध।
होता यदा जड़तया उसका विनाश, आत्मा तदा स्वपद–दिव्य गहे प्रकाश।।८५।।

आचार्य कहते हैं कि मन की कल्पनाओं का जाल ही दुःख का मूल कारण है। जिसने पदार्थों का, सूत्रों का अच्छी तरह ज्ञान प्राप्त किया है, जो संयम और तप से संयुक्त हो, राग रहित हो, सुख और दुःख में समता रखता हो, वही आत्मा का उत्कृष्ट पद प्राप्त कर सकता है।

जीवन कैसे जियें

अगर एक जैन संत होगा, परलोक को मानने वाला आस्तिक व्यक्ति होगा, अगर कोई आत्मा के अस्तित्व को मानने वाला, परम सिद्धांत को जानने वाला कोई ज्ञानी पुरुष होगा तो वो क्या करेगा अगर उसे मालूम पड़ गया कि आपके १० दिन बचे हैं मरने में तो वो आपको कहेगा कि १० दिन के लिए आपको कैसे जीना है, ये आप सोच लो। भोग के साथ जीना है कि त्याग के साथ जीना है। अगर आपकी आत्मा की चिंता करने वाला होगा, सच्चा हितोपदेशी होगा तो वो आपसे कहेगा कि आपके जीवन में जितना भी खाना-पीना, मौज-मस्ती करना थी वो तो आप कर चुके, अब आपके लिए जो समय बचा है उस समय में अब कुछ आत्मा की बात कर लो, कुछ आत्मा की आराधना कर लो और तृप्ति की बात है तो जो तृप्ति तुम्हें पूरे जीवन भर नहीं हुई, इन १० दिनों में क्या होने वाली है। सारे जीवन भोग भोगने के बाद में सुख नहीं मिला तो इन १० दिनों में तुम्हें किन-किन चीजों से सुख मिल जाएगा, तृप्त तो तुम तब भी नहीं हो पाओगे। वो तुम्हें उपदेश देगा कि भैया यदि तुम्हें अपना जीवन अच्छा बनाना है तो तुम्हें वो नहीं करना है जो तुम करते आ रहे हो। हर आदमी आजकल थ्री-डी में जी रहा है ड्रिंक, डांस और डिनर। इन तीन चीजों से ही उसको लाइफ में ऐसा लगता है कि कुछ है लाइफ में, कुछ एक्साइमेंट है अंदर, लिविंगनेस है अंदर।

एक आदमी कह रहा है कि तुम इस जीवन में खूब पियो, खूब नाचो, खूब खाओ और दूसरा आदमी कह रहा है कि यदि तुम अंत में जीवन को अच्छा बनाना चाहते हो तो इन थ्री-डी को छोड़ दो। ड्रिंक्स करना छोड़ दो, डांस करना छोड़ दो, रात्रि में भोजन करना छोड़ दो। आपको कौन सा उपदेश अच्छा लगेगा ये आपको सोचना है। विचार आदमी के वैसे ही बनते हैं जैसा वो पढ़ता है, जैसा वो सुनता है। अगर सामने सुनाने वाला भी भोगी है तो वो आपको भी भोगी बना देगा। यदि सुनाने वाला योगी है तो वो आपको १० दिन के अंदर योगी बना देगा। आपको क्या बनना है ये आपके भी इंटरेस्ट के ऊपर निर्भर करेगा। आपके अंदर अगर सोचने की खुद की क्षमता नहीं है तो दुनिया में देख लेना, जिन कारण से दूर रहने के लिए आचार्य कहते हैं, ज्ञानी लोग कहते हैं उन कारणों को कई कवि लोग/लेखक इस ढंग से प्रस्तुत करते हैं कि हम भी सोच में पड़ जाते हैं। ये बात धर्म में लिखी है उससे अलग है। आप सोच में पड़ जाते हो कि जिंदगी कैसी जीना। आपके मन में सम्यग्ज्ञान बहुत मजबूत होना चाहिए। जिसके अंदर सम्यग्ज्ञान मजबूत होगा तो वह हर उल्टी चीज को भी आते-आते सीधी कर लेगा। मृत्यु से पहले क्या करना है ये आपको सोचना है। मृत्यु से पहले हमें खूब आराम, खाना-पीना ऐश करना है या उसको मिनिमाइज करना है, उसमें कुछ कमी लाना है। जो हम शौक कर रहे थे उनको छोड़ना है, हमें आत्म शांति के लिए पंच परमेष्ठी की आराधना करना है। एक ये भी तरीका है और एक वो भी तरीका है। उपदेश देने वाले कैसे-कैसे उपदेश देते हैं, वो कह रहे हैं कि मृत्यु ही भूल गई कि हमें लेने आना था, किसको उठाना था। ध्यान रखना, मृत्यु कभी भी भुलावे में नहीं आती, चाहे तुम कितना ही नाच लो, खा लो- पी लो, कितना ही ऐशो आराम कर लो, जिस क्षण जिस पोजीशन में अंदर का आयु कर्म समाप्त हो जाता है, उसी क्षण वह आदमी वहीं पर गिर जाता है। अगर तुम बाथरूम में नहा भी रहे होगे तो नहा के बाहर नहीं निकल पाओगे, वहीं पर गिर पड़ोगे। कई लोगों को बाथरूम से ही निकालना पड़ता है। मृत्यु जिस समय पर आनी है, तभी आएगी। मृत्यु कहीं बाहर से नहीं आती है, हमारी आत्मा में जिस आयु कर्म के साथ हम जी रहे हैं वे आयु कर्म समाप्त होंगे और मौत आएगी। उस कर्म को कोई भुलावे में नहीं डाल सकता।

आपको चाहे उपदेशक कितने ही भुलावे में डाल दे, आप उन दृष्टांतों को सुनकर चाहे कितने ही भुलावे में पहुँच जाओ लेकिन वस्तुत: मृत्यु कभी भी किसी से एक क्षण भी अलग नहीं हो सकती और एक क्षण भी विलंब नहीं कर सकती। आपको ये ध्यान रखना है कि मृत्यु आने से पूर्व में हमें किस ढंग से जीना है। उपदेशक के अनुसार जीवन जीना आपकी सबसे बड़ी गलती होगी। ऐसे विचार आज धर्म के नाम से भी परोसे जाते हैं और विचारकों के माध्यम से भी परोसे जाते हैं। स्कूल-कॉलेजों में भी परोसे जा रहे हैं।

श्लोक–८६

अव्रती व्रतमादाय व्रती ज्ञानपरायणः।
परात्मज्ञानसम्पन्नः स्वयमेव परो भवेत्।।८६।।

जो अव्रती वह सुशीघ्र बने व्रती ही, सज्ज्ञान में परम लीन रहे व्रती भी।
सम्पन्न ध्यान क्रमशः स्वयमेव होगा, विज्ञान पूर्ण मुनि यों भव–मुक्त होगा।।८६।।

आचार्य कह रहे हैं कि अव्रती को शीघ्र ही व्रतों को धारण करना चाहिए और व्रती भी ज्ञानार्जन में निरन्तर लगे रहे। व्रती जब आत्मा और पर के भेद ज्ञान को प्राप्त कर लेगा तो स्वयं ही मुनि बनकर भव बन्धन से मुक्त हो जायेगा। अंतर्जल्प से सहित जो कल्पना जाल है वह आत्मा के दु:ख का मूल कारण है। अंतर्जल्प अर्थात् शुद्ध अनुभूति से विपरीत मिथ्यात्व, राग आदि, मन की इष्ट इच्छाओं की पूर्ति के लिये किया जाने वाला प्रपंच है। चारों तरफ माहौल अत्यधिक बिगड़ा है चाहे स्कूल–कॉलेज हो चाहे व्यवसाय का क्षेत्र हो या सामाजिक क्षेत्र हो।

''न तो स्त्री को धरती देखने में आ रही है न किसी आदमी को धरती दिख रही है क्योंकि सब ऊपर उड़ रहे हैं, धरती पर तो किसी को चलना ही नहीं।'' जमीनी बातें, जमीनी शिक्षा, जमीनी भाषा, जमीनी रिश्तों से, जमीनी भावों से एवं जमीनी अपने कुल धर्म से कोई भी जुड़ना नहीं चाह रहा है। सब चीज हवा में उड़ रही है और उस उड़ान में सब बहे जा रहे हैं। कोई भी अपने आपको कैसे रोकने का भाव करे, चलता है, चलता है सब ऐसे ही हो रहा है, होने दो, क्या कर सकते हैं। बस इसके अलावा कोई बात किसी के मुँह से निकलती नहीं।

आधुनिक कॉलेज जीवन का दुष्प्रभाव

एक ही उस समस्या का समाधान है कि हम अपने आपको संभालें, हमारा जीवन चरित्र निर्माण के साथ, नैतिकता के साथ होना चाहिए। धन-वैभव ये दूसरी चीजें हैं, इनकी प्राप्ति के लिए हमें इतना नहीं गिरना चाहिए कि हमें अपने आपको बेचना पड़े। बेटियों को सिखाओ कि

दूसरे लड़के को देखकर नीची नजरें करके चले जाना, वो व्यंग्य कसे तो सह लेना क्योंकि वो तुम्हारी सहनशक्ति को बढ़ाने वाला होगा। इतना दृढ़ जिनका चरित्र होगा वो बेटा-बेटी ही सावधान होकर कुछ कर पाएँगे, उन्हीं का चरित्र अच्छा होगा अन्यथा आज के कॉलेजों में चरित्रनाश के अलावा कुछ है नहीं और आप मजबूर हो उस आग में अपने बेटे-बेटियों को झोंकने के लिए।

आज के बेटे और बेटियों के साथ में जहाँ से उनकी कॉलेज लाइफ शुरू होती है, बस यही दीवानगी भी शुरू होती है। यहाँ पढ़ाई तो साइड में रहती है बस कॉलेज लाइफ का अपार आनंद लेते हैं। आज के कॉलेज के दृश्य देखकर के आश्चर्य होगा। आज कोई भी माता-पिता अपने बेटे-बेटी को कॉलेज में प्रवेश दिलाने स्वयं नहीं जाते, न स्वयं उसका कॉलेज पसंद करते हैं। बच्चे बताते है कि उन्हें किस कॉलेज में पढ़ना है। कहाँ रहना है, वे सब फैसले बच्चे लेते हैं। पर आप एक बार कॉलेज में जाकर वहाँ के हाल देखना कि कैसे ये बच्चे वहाँ गले में हाथ डालकर पार्क में बैठे हैं, पिक्चर हॉल में कैसी मटरगश्ती करते हैं। उन्हें देखकर आपको समझ में आएगा कि आप अपने बेटे-बेटियों को पढ़ा रहे हैं या बिगाड़ रहे हैं। आप कहोगे, महाराज करें क्या, हम अपने बेटे-बेटियों को कॉलेज में नहीं पढ़ाएँ। कॉलेज पढ़ाना जरूरी है पर उन्हें संस्कारित करके कॉलेज पहुँचाना, उन्हें शिक्षित करें कि तुम सब भोले हो, तुम लोग आकर्षण में स्वयं को डुबो देते हो, उन्हें वास्तविकता से कोई मतलब नहीं रहता। यदि पालक नहीं समझाते हैं तो ऐसे बच्चों का पहले साल में अफेयर, दूसरे में प्यार और तीसरे में शादी तक सोचने लग जाता है।

एम.एससी., एम.ए. तो बाद में होती है बाकी सब पहले हो जाता है। तब माता-पिता, घर-परिवार सब एक तरफ रह जाते हैं क्योंकि वे सुनते रहते हैं- जब प्यार किया तो डरना क्या...। अब डरना नहीं है मर भले ही जाओ। तीन साल में इतनी घुल-मिल गए हैं कि वो मर सकते हैं पर माता-पिता के अनुसार चल नहीं सकते। ये स्थितियाँ इसलिए बनती है कि हम अपने बेटे-बेटी को कॉलेज में छोड़ तो देते हैं पर उन्हें ये नहीं सिखाते कि बेटा इन तीन साल में इतना बच के चलना कि जितना पूरी जिंदगी में बच के नहीं चलना। इसमें तुम सिर्फ पढ़ना, किसी के साथ कोई रिलेशनशिप में मत रहना, ज्यादा फ्रेंडशिप मत करना। आप शायद अपने बच्चों से इतना कहने की हिम्मत भी नहीं कर पाए। जो सच्चाइयाँ आप छुपा रहे हैं वो सामने निकल-निकल कर आ रही है। आज कॉलेज लड़के व लड़कियों के चरित्र गिराने के सबसे बड़े साधन बन गए हैं, उन्हें क्लबों में जाने की जरूरत नहीं, वे तो उनके लिए है जो पढ़ चुके हैं। जब कोई संस्कारित

लड़का/लड़की कॉलेज जाता/जाती है। यदि वो सीधा-सादा है तो उसे बहुत कुछ सुनना पड़ता है। जो सब कुछ सुनकर बर्दाश्त कर पाएगा, वही स्वयं को संभालकर रख पाएगा। 'मुझे ऐसा नहीं करना' ये सोच बनाए रखे, ऐसे कार्य करे, ये बहुत बड़ी साधना है। सब कुछ देखने के बाद भी उनमें दृढ़ता रहे, वही बच्चा अपना चरित्र संभालकर रख सकता है। कितने ही केस हो जाते हैं, घरवालों को पता नहीं चलता। सब काम चुपचाप हो जाता है पर जिंदगी में बस भीतर ही भीतर घुटन होती रहती है कि हमारे साथ किसी ने कुछ गलत किया है, धोखा दिया है। जब तक हम चरित्र में दृढ़ नहीं होंगे, हम कॉलेज में सही ढंग से निकल कर आ नहीं सकते। आप माता-पिताओं को बच्चों को कॉलेज पहुँचाने के पहले सोचना चाहिए कि कॉलेज में कैसा वातावरण है, वे पढ़ेंगे कि बिगड़ेंगे। यदि कहीं छोटे लेवल का कॉलेज हो और यदि वहाँ पर चरित्र निर्माण होता हो तो आप बच्चों को वहाँ भेजें। ये हिम्मत करने की बात है और आज बात मानने वाले बेटे और बेटियाँ भी नहीं मिलते हैं।

आज के बच्चे मंदसौर में भी ग्रेजुएशन की नहीं सोचते, वे सोचते हैं कि मुझे बैंगलोर से बी.बी.ए. या पुणे से एम.बी.ए. करना है। वहाँ क्या करना, कैसे करना ये सब कुछ नहीं पता होता।

अभिभावकों को लगता है कि नहीं पढ़ाएँगे तो विवाह कैसे होगा। इन जैनियों की बुद्धि इतनी खराब हो रही है कि यदि इन्हें गाँव की कोई सुशील कन्या मिले तो नहीं करेंगे, इन्हें चाहिए बाम्बे, दिल्ली में शहरों में घूमने वाली लड़कियाँ क्योंकि हमारा बेटा भी उसी मिजाज का है तो लड़की भी उसी मिजाज की होनी चाहिए। गाँव की भोली-भाली, सुंदर, सुशील लड़की नहीं चाहिए। पहले के लोग कुछ पूछते थे, शील पूछते हैं, आज लड़की भाग जाए तो पिता समर्पण करके खड़ा हो जाता है, वहाँ समझौता कर लेगा लेकिन उससे पहले अगर कोई सुशील/अच्छा लड़का मिले तो संबंध नहीं करेगा। लड़की भी वैसी चाहिए और लड़का भी वैसा ही चाहिए। लड़का दुकान पर बैठता है, आई.टी. कंपनी में नहीं है तुम्हारा भाव ही नहीं होगा उसे लड़की देने का। ये नहीं देखेगा कि लड़का दुकान पर बैठता है, कम से कम दुराचारी तो नहीं है, गलत आदतें, व्यसन तो नहीं है। कोई भी बाप अब ऐसा नहीं सोचता है क्योंकि हमें वही देखना, वही करना है जो हमारे दिमाग में बसा हुआ है, एक स्टैंडर्ड बन गया है उसमें। स्वयं चरित्रहीन हो रहे हैं। माता-पिता और बच्चे जो कर रहे सो करे, अपनी लाइफ अपने साथ। इस तरह तुम जियोगे तो तुम्हारे जीवन में जो पवित्रता आनी चाहिए, सात्विकता आनी चाहिए वो कभी नहीं आ सकती।

श्लोक–८७

लिङ्गं देहाश्रितं दृष्टं देह एवात्मनो भवः।
न मुच्यन्ते भवात्तस्मात्ते ये लिङ्गकृताऽऽग्रहाः।।८७।।

चारित्र बाहर तनाश्रित दीखता है, तो जीव का 'भव' यही तन तो रहा है।
जो मात्र बाह्य तप में रहता सुलीन, होता न मुक्त निज–निर्मल–भाव–हीन।।८७।।

संसारी प्राणी के लिये देह ही आत्मा का संसार है। जो शरीर के आश्रित है वे संसार से मुक्त नहीं हो पाते। दीक्षा लेने मात्र से पाप का क्षय नहीं होता है। यह जगत स्वभाव से ही स्वच्छंद वृत्ति वाला है। जो अनाचार पथों पर उछल–उछल कर अपने आपको निर्दोष साबित करता है।

संस्कारित जीवन

अपने जीवन को अच्छा बनाने के लिए उन्हीं चीजों को सीखो जो धर्म शास्त्रों में लिखी हुई है। ये ४ लाख वर्ष पहले भी उतनी ही सच थी और आगे आने वाले छठे काल तक उतनी ही सच रहेगी। धर्म शास्त्रों में सर्वज्ञ भगवान् के द्वारा बताया हुआ लिखा जाता है। सर्वज्ञ भगवान् त्रिकाल की बात जानते हैं, भूत-भविष्य-वर्तमान तीनों को देखकर जो उन्होंने बोला वो आज भी उतना ही महत्त्वपूर्ण है जितना पहले था। हम उसे महत्त्वपूर्ण बनाएँगे तो वो महत्त्वपूर्ण रहेगा और स्वयं को भटकाएँगे तो संसार में भटकते रहेंगे। विचारक आपको सब तरह के मिलेंगे कि खाओ, पियो, ऐश करने दो। अच्छे कॉलेजों में पढ़ाओ, अच्छी लाइफ मिलेगी। क्या लाइफ, एक वाइफ तो जिंदगी भर संभाल नहीं पाता, लाइफ की बात करता है। बातों ही बातों का बस केवल जमा खर्च रह गया है जिंदगी में। पहले का व्यक्ति पढ़-लिखकर अच्छा जीवन जीता था, आज का पढ़ा-लिखा व्यक्ति इतना शैतान/बेईमान/ बदमाश दिखाई देता है कि उसे एक स्त्री से संतुष्टि नहीं होती है और वह वाइफों में वाइफ-वाइफ बनाता चला जाता है। चाहे उसके लिए उसे एक वाइफ पर

नाइफ क्यों न चलाना पड़े। ये सब कुछ इसलिये हो रहा है क्योंकि हमने अपनी शिक्षा गलत अर्जित की है। शिक्षा की भाषा गलत है, हम अंग्रेजों की भाषा में पढ़ रहे हैं। हम भारतीय संस्कृति के संस्कारों में पल ही नहीं रहे हैं, हम दूसरों के संस्कारों से पाले जा रहे हैं। इसलिए कह रहा हूँ आज भी थोड़ा सा वक्त है। जमीन पर चलने का प्रयास करो, जमीनी बातें सीखों और जमीन से जुड़ने का प्रयास करें। संस्कृति हमारी जमीन है और जमीन पर अगर हम पैर रखकर चलेंगे तो हम सुरक्षित रहेंगे अन्यथा तुम्हें कभी सुख नहीं मिलने वाला। जिस सुख की तुम तलाश कर रहे हो वो सुख उस पतंगे की तरह है, बस मार-मार कर, चोट पहुँचा-पहुँचा कर तुम्हारे प्राण ले लेंगे, उस पंतगे को लाइट के आसपास और कुछ नहीं मिलता है, वो भीतर के प्रकाश की ओर जाना चाहता है लेकिन उसे बाहर की लाइट की जो गर्मी रहती है, उतनी भी सहन नहीं होती है और वो वहीं पर चोट खा-खाकर फिर जाएगा, फिर आएगा ऐसा करते–करके मर जाता है। जब रात भर लाइट जलती हो तो सुबह देखना उस लाइट के नीचे कितने कीड़े/पतंगे मरे हुए मिलते हैं। उनको देखना, उन्होंने रातभर ऐसे ही पुरुषार्थ किया है। उसी दीवानगी में वो मर गए। एक तरफ उनसे कहा जाता है कि थोड़ा बच जाओ पर कितनी बड़ी हठ होती है। ऐसे ही हठ से बचाने के लिए जैनाचार्य उपदेश देते हैं। कितने ही बेटे-बेटियाँ ऐसा करते हैं, दो-चार दिन में पलटकर घर आ जाते हैं, दोनों अलग-अलग रह रहे हैं, अपनी जिंदगी बर्बाद करते हैं। जो प्यार-प्यार कर रहे थे, न उसमें कोई शक्ति थी न कोई सच्चाई थी। वो प्यार बस दो-तीन साल में ही अपना दम तोड़ देता है, कहाँ से चले इतनी बड़ी लाइफ। ऐसे बच्चों के माँ-बाप भी इस बात के लिए थोड़े-बहुत जिम्मेदार रहते हैं। माँ-बाप ध्यान रखें, अपने बच्चों को समझाएँ कि यदि कोई लड़का/लड़की तुम्हें परेशान करे तो तुम हमें बताना, अपने दोस्तों, मित्रों के बारे में भी माता-पिता से शेयर करें, अपनी बात बताने की हिम्मत, थोड़ा सा पुरुषार्थ करें। अगली पीढ़ी को आगे संस्कारित बनाने के लिए यहाँ पर हमें कोई भी लक्षण दिखाई नहीं दे रहे। भावी पीढ़ी यहाँ पर दिखती नहीं है। सब ओवरएज के लोग दिखाई दे रहे हैं। भावी पीढ़ी को तुमने किसी न किसी जगह पर इंगेज कर रखा है, उनको संस्कारित करने का भाव नहीं करोगे तब तक धर्म की भाषा तुम्हें समझ में आने वाली नहीं है। आज हमें इतना ही सीखना है कि हम अपने बेटे और बेटियों के पास अच्छे विचार पहुँचाएँ, उनकी खबर रखें, उनका ध्यान रखें और उन्हें संस्कारित करने के लिए अच्छे-अच्छे उपदेश सुनाना है, अच्छी किताबें उन तक पहुँचाना है ताकि उनका जीवन अच्छा बन सके।

श्लोक–८८

जातिर्देहाश्रिता दृष्टा देह एवात्मनो भवः।
न मुच्यन्ते भवात्तस्मात्ते ये जातिकृतागृहाः।।८८।।

ये शैव वैष्णव तथा बहु जातियाँ हैं, सारी यहाँ जड़ तनाश्रित पंक्तियाँ हैं।
जो मूढ़ जाति मद है रखता सदैव, कैसे उसे शिव मिले अयि! वीर देव!।।८८।।

संस्कार

किसी एक बालक का अपने ही परिवार से वियोग हो गया। किसी दूसरी जगह पर उसका पालन-पोषण होने लगा। वह बालक उसी रूप में अपने आपको स्वीकार करने लग जाता है। अगर उच्च कुल में उसका पालन-पोषण होगा तो वो अपने आपको उच्च मानता रहेगा और नीच कुल में होगा तो वो अपने आपको नीच ही मानता रहेगा। ये उसकी मान्यता उसके अपने भाव पर निर्भर करती है कि कहाँ पर उसका पालन-पोषण हो रहा है। कुछ ऐसी भी चीजें होती हैं जो जन्मजात होती हैं और जिनके संस्कार जाति के कारण से जन्मजात ही होते हैं। वे जन्मजात संस्कार कहीं भी उद्‌भूत हो सकते हैं लेकिन वो संस्कार बड़े प्रबल होना चाहिए। अगर वो संस्कार दुर्बल होते हैं तो किसी भी रूप में उसको ढाला जा सकता है। आज की परिस्थिति में देखें। आज अपने दुर्बल संस्कारों के साथ ही जन्म लेते हैं और उन्हें जिस स्थिति में ढालना चाहें उस स्थिति में हम ढाल सकते हैं। अगर उनकी संगति, उनके रहन-सहन का परिवेश, पालन-पोषण का वातावरण अगर अच्छा हो तो वो अच्छे बन जाते हैं। अगर बुरा हो, निम्न क्वालिटी का हो तो वो निम्न रूप में भी ढल जाते हैं। ये सब निर्भर करता है कि उस बच्चे का पालन-पोषण किस वातावरण में हो रहा है।

लेकिन पहले कुछ ऐसे बच्चे भी होते थे जिनके संस्कार इतने प्रबल होते थे कि उन्हें कहीं भी रखा जाए उनके संस्कार उनसे छूटते नहीं थे। जैसे लव और कुश जब वो राम से दूर थे। केवल

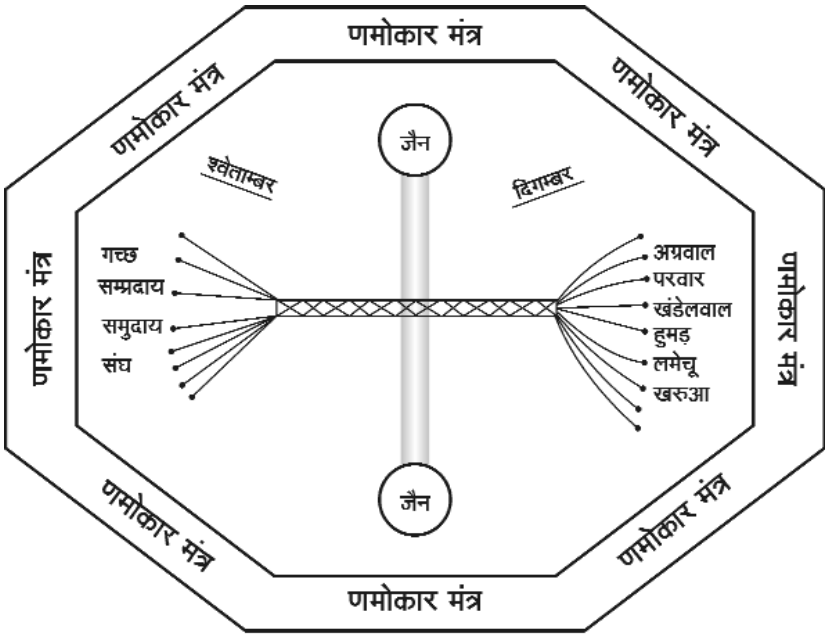
माता के पास में उनका पालन-पोषण हो रहा है फिर भी उनके अंदर जो क्षत्रियता के गुण हैं वो उनसे छूटते नहीं। माँ के पास रहकर के पिता से दूर रहकर जब वो बड़े हो जाते हैं तो उनमें अपने आप वे क्षत्रियता के गुण प्रकट होते हुए दिखाई देते हैं। जब वो अपनी माँ से पूछते हैं, हमारे पिता कौन हैं और उन्होंने आपको क्यों छोड़ दिया। माँ उन्हें सच-सच बता देती है कि तुम्हारे पिता राम हैं और उन्होंने हमें इस अपवाद के कारण से छोड़ दिया तो उन पुत्रों को गुस्सा आता है कि तुम्हारे साथ में पिता ने ऐसा बर्ताव किया। हम उनसे युद्ध करेंगे, हम उनसे लड़ेंगे और उन्हें जीतकर के आपसे मिलाएँगे। ये जो भाव आया क्षत्रियता का, ये उनके उस प्रबल संस्कार के कारण से आया। ऐसे प्रबल संस्कारों की आप वर्तमान में किंचित् भी अपेक्षा न रखें। आजकल दो साल के बच्चे हो नहीं पाते, बच्चा तो बहुत ढंग से मोबाइल चला लेता है, अच्छा इंटरनेट चलाता है। वो बहुत अच्छे ढंग से लेपटॉप चलाने लग जाता है? ये सब संस्कार जो आज बच्चों में आ रहे हैं वो यहीं की उत्पत्ति है, तुरंत यहीं पर मरण हुआ। संस्कार उसी लेपटॉप और मोबाइल के बने रहे और वही संस्कार दूसरे जन्म में आकर प्रकट हो जाते हैं। अब कोई क्षत्रियता के, कोई भी वीरोचित कार्य के संस्कार बचे नहीं। अब इस कम्प्यूटर के युग में बस यही संस्कार हैं और अब उन्हीं संस्कारों के कारण से ये आज देखने में आ रहा है कि हर बच्चा चाहे अन्य कुछ नहीं जानता हो उस का इंट्रेस्ट अगर जाता है तो वो केवल इन्हीं मोबाइल, लेपटॉप, इंटरनेट में अपना जीवन खपाना चाहता है क्योंकि उसके संस्कारों में ये चीजें पड़ी हुई हैं। इसलिए अगला जन्म हो जाना कोई बहुत बड़ी बात नहीं है लेकिन अगले जन्म में हम किन संस्कारों के साथ पहुँच रहे हैं, यह बहुत बड़ी बात है।

जाति

इसलिए इन अध्यात्म शास्त्रों में आचार्य कहते हैं अगर जाति का अहंकार रखोगे तो देह को प्राप्त करना पड़ेगा और देह को प्राप्त कर के पुन: फिर तुम्हें जाति का पुण्य होगा। इसलिए इस देह के आश्रित रहने वाली जाति से भी अपना मद मत करो। मद का मतलब अहंकार मत करो। अनेक प्रकार की जातियाँ हैं। एक समय था, जब केवल एक जैन जाति थोड़ी-सी अलग हो गई थी। क्षत्रिय अलग हो गए, ब्राह्मण अलग हो गए, शूद्र अलग हो गए। फिर धीरे-धीरे जैन में भी दिगंबर, श्वेतांबर दो हो गए। फिर धीरे-धीरे अब दिगंबरों में भी जातियों का पता नहीं और श्वेतांबरों में भी कितनी जातियाँ हो गईं। उनका पता ठिकाना नहीं कितने गच्छ, कितने समुदाय, कितने संघ

सब अलग-अलग ढंग से बने हुए हैं। यहाँ पर भी जितने लोग बैठे हुए हैं, उतनी जातियों के लोग बैठे हैं कोई पाटनी है, कोई बड़जात्या है, कोई झांझरी है, बाकलीवाल, पालीवाल, पल्लीवाल है जितने भी लोग मिलेंगे सबने अपने आपको कहीं न कहीं जातियों में बांट लिया है।

लेकिन यह अध्यात्म ऐसी चीज है जो हमें इन सबसे ऊपर उठकर के थोड़ा सा जीना सिखाता है। ये जाति का जो हमारे अंदर भाव आएगा ये तभी तक आएगा जब तक हम अपने परिवार, अपने शरीर आश्रित अपना जीवन जियेंगे। जब हम इन अध्यात्म के भावों से जीने लगेंगे तो हमारे अंदर इन जाति से भी ऊपर उठने की भावना आ जाती है। इसलिए आचार्य कहते हैं शरीर को ही आपने अपना संसार बना लिया 'देह एव आत्मनो भवो' आत्मा का संसार देह है! जैसी तुम देह में कल्पना करोगे तुम वैसे ही बन जाओगे और अगर तुम्हें इस देह से छूटना है तो जातिकृत आग्रह को छोड़ दो। आचार्य लिखते हैं जिन्हें जाति का आग्रह रहता है वे कभी इस संसार से छूट नहीं पाते। इसलिए जाति का आग्रह छोड़ने के लिए पुरुषार्थ करना, ऐसी स्थिति अपनी चिंतन में बने, अपनी आत्मा के अंदर बने कि उस समय पर हम इस जाति के हैं, हम ये भी भूल जाएँ। वो तब बनेगा, जब आप थोड़ी देर के लिए ध्यान करें। पंच नमस्कार का जाप करें। उस समय पर ही आप भूल सकते हो कि जाति से हम रहित हो गए।



हम सब जैन हैं।

श्लोक–८९

जातिलिङ्गविकल्पेन येषां च समयाग्रहः।
तेऽपि न प्राप्नुवन्त्येव परमं पदमात्मनः।।८९।।

मैं हूँ दिगम्बर अतः शिवमार्गगामी, कोई नहीं मम समा बुध अग्रगामी।
इत्थं प्रमत्त मुनि हो मद धारता है, पाता न मोक्ष पद को वह भूलता है।।८९।।

लिंग का मोह

दिगंबर दीक्षा लेने के बाद में तुमने दिगंबर लिंग को धारण कर लिया। जो हमने शरीर के ऊपर भेष धारण किया है, वह सब लिंग के रूप में कहा जाता है। आचार्य कुन्दकुन्द देव ने तीन प्रकार के लिंग बताए यानि अपने को मोक्ष मार्ग पर चलने की पहचान बताने वाले तीन प्रकार के लिंग बताए। उनमें सबसे पहला उत्कृष्ट दिगंबर ये त्याग रूप कहलाया। दूसरा श्रावकों का रूप कहलाया जो उत्कृष्ट श्रावकों का है और तीसरा जघन्य श्रावकों का रूप कहलाया जो उन श्रावकों में भी और उत्कृष्टता के अलावा रहते हैं। मध्यम श्रावक हैं जघन्य श्रावक है। जैसे मान लो सफेद ड्रेस में ब्रह्मचारी बहनें बैठी हैं, ब्रह्मचारी भैया बैठे हैं। ये भी एक लिंग, एक पहचान का कारण हो गया। इसलिए ये भी एक श्रावक का लिंग हो गया। वह आपकी पहचान देह आश्रित ही रहेगी। आपने वस्त्र उतार दिए तो भी देह आश्रित पहचान होगी और सफेद वस्त्र धारण किए वह भी देह आश्रित पहचान है। इसलिए आचार्य कहते हैं कि तुम ये भूल जाओ कि मैं दिगंबर हूँ, मैं श्वेतांबर हूँ क्योंकि ये दिगंबरत्व होना भी शरीर आश्रित है और श्वेतांबरत्व होना भी शरीर आश्रित है। जब तक तुम शरीर आश्रित रहोगे, तब तक कभी भी अपनी आत्मा का चिंतन, अपनी आत्मा का ध्यान नहीं कर पाओगे। अगर इन शरीर आश्रित विकल्पों में उलझे रहे तो जिसके लिए तुमने इस लिंग को धारण किया था उस उद्देश्य को भी तुम कभी प्राप्त नहीं कर पाओगे। उसको भी भूल जाओगे। इसलिये आचार्य इन आध्यात्मिक शास्त्रों में कहते हैं कि जाति और लिंग इन दोनों के विकल्पों में जिनका आग्रह बना रहता है, उनकी हठ बुद्धि बन जाती है कि मैं तो दिगंबर ही हूँ, मैं तो श्वेतांबर ही हूँ, मैं तो क्षत्रिय ही हूँ, मैं तो ब्राह्मण ही हूँ तो तुम कभी भी आध्यात्मिक नहीं कहला सकते। आध्यात्मिक होने के लिए इन विकल्पों से हमें परे जाना, इन विकल्पों को छोड़ देना। ये जितने भी विकल्प हैं ये सब बाहरी आचरण संबंधी हैं, अंतरंग आत्मा के आचरण से विकल्पों का कहीं से कहीं तक संबंध नहीं है।

क्षत्रिय

मान लो क्षत्रिय है, ब्राह्मण है ये सब विकल्प भी एक व्यक्ति को लेकर के है। उस आदमी की जो एक्टिविटी रहती है, आचरण रहते हैं उनको लेकर के ये कहा जाता है। जैसे पहले के समय में क्षत्रिय उन्हें कहते थे जो अपने हाथ में तलवार धारण करके दूसरों की रक्षा किया करते थे। ब्राह्मण उन्हें कहा जाता है जो ब्रह्म स्वरूप अपनी आत्मा का ध्यान करें, आत्मा का चिंतन करे और जो ब्रह्म में लीन होने की भावना करे। जैन शास्त्रों में भी यही लिखा हुआ है। क्षत्रिय उनको कहा जाता है जो वीरोचित कार्य कर सकें, दूसरों की रक्षा कर सके। दूसरों को अभयदान दे सकें। इसमें पिछले पन्ने पर एक श्लोक लिखा हुआ है कि जो व्रतों को धारण कर लेगा वो क्षत्रिय कहलाएगा क्योंकि व्रतों का पालन करना कायरों का काम नहीं है। ये वीरों का काम है। ये क्षत्रियों का काम है। नियम, संयम, व्रतों के साथ जीवन निकालना ये क्षत्रियपना है और वो क्षत्रिय बन गए हम। हम ब्रह्म स्वरूप अपनी आत्मा में लीन हो गए तो हम वास्तव में ब्राह्मण बन गए तो अब बाहर से लड़ने की जरूरत क्या है कि ये ब्राह्मण है, ये क्षत्रिय है। आचार्य कहते हैं या तो अपनी आत्मा की रक्षा करो या तो दूसरों की आत्मा की रक्षा करो तो ये क्षत्रियोचित काम है। अपने ब्रह्म स्वरूप की आराधना करो तो ये ब्राह्मणोचित काम है। किसी भी प्रकार की गर्वोक्ति की आवश्यकता नहीं है। हम अगर इस प्रकार की गर्वोक्तियाँ छोड़ दें तो अपने आप हमारी आध्यात्मिक प्रवृत्तियाँ समता भाव के रूप में ढल जाएगी और हम इन विकल्पों से बहुत दूर उठकर के अपना एक जीवन जीते हैं और उसी जीवन को जीने का नाम सच्चा जीवन जीना है।

आध्यात्मिक जीवन

इसलिए आचार्य कहते हैं अगर तुम्हें कुछ अपनी आत्मा के परम पद यानि उत्कृष्ट पद की अगर प्राप्ति करना है, अपने आत्म तत्त्व को उपलब्ध होना है तो इन जाति और लिंगों के विकल्पों में अपना समय व्यर्थ मत करना और इस प्रकार के विकल्पों में उलझ करके तुम अब अपने आपको अपने से दूर मत करना। ये अध्यात्म शास्त्र हमें आत्मा के निकट लाने वाले शास्त्र हैं और आज आदमी आत्मा के निकट जाना नहीं चाहता। वह बाहरी दुनिया में ही भटकना चाहता है क्योंकि उसके संस्कार बाहरी रूप में ही भटकने के पड़े है। आत्म अभिमुख होने के संस्कार इसी ढंग से डाले जा सकते हैं। कभी-कभी प्रवचन सुनने के बाद भी आत्म उन्मुख होने की वृत्ति नहीं आती। जब तक कि हम उसके अनुरूप भावना न करें, इसलिए अपन आत्मा के अनुरूप होने के लिए उसी ध्यान की प्रक्रिया से थोड़ा गुजरते हैं ताकि हमारा निकट का समय अपने लिए काम में आए और हम अपने को ऊर्जा से भरके कुछ नया अनुभव करें। अपने अंदर एक नयापन महसूस करें।

श्लोक–९०

यत्त्यागाय निवर्तन्ते भोगेभ्यो यदवाप्तये।
प्रीतिं तत्रैव कुर्वन्ति द्वेषमन्यत्र मोहिनः।।९०।।

ज्ञानी सुयोग धरते तपते शिवार्थ, जो दूर हैं विषय से निज साधनार्थ।
तो भोग लीन रहता दिन–रैन मोही, है त्याग का वह सदा अनिवार्य द्रोही।।९०।।

मोह की विचित्रता

जिस शरीर आदि के त्याग के लिए यह जीव कभी-कभी भोगों से दूर हट जाता है, मोह के कारण से पुन: व उन्ही वस्तुओं से फिर प्रेम करने लग जाता है। उन्हीं को अपनाने लग जाता है। ये मोह की बड़ी विडंबना है। चित्त की वृत्तियाँ बड़ी विचित्र होती है। सूक्ति है– चित्त की वृत्तियाँ, चित्त के विकल्प जाल बड़े विचित्र होते हैं और उन विकल्प जालों को रोककर के निरंतर जो साधना करते हैं, अपने चित्त को अपनी आत्मा में समाहित करते हैं और निरंतर अपने चित्त में उत्पन्न होने वाले उन विकल्पों को, विचारों को समझते है, उन्हें रोकते हैं या रोकने का अभ्यास करते हैं, वही जीव अपने आप उस आत्मतत्त्व से प्रेम कर पाते हैं, नहीं तो कई बार इस तरह के त्याग आदि करने के बाद में पुन: उसी मोह में उलझ जाते हैं। मोह कई प्रकार का होता है।

पिछले श्लोकों में बताया अपने शरीर का मोह, जाति का मोह, कुछ नहीं तो हम दिगम्बर हैं, हमने यह दिगम्बर रूप धारण किया इसका भी मोह उत्पन्न हो जाता है। उस शरीर में उलझने के कारण से उन्हें जिस लक्ष्य की प्राप्ति करनी थी, उस लक्ष्य की प्राप्ति नहीं हो पाती। कई साधुगण कई बार देखने में आता है कि अपने जाति के विकल्पों में उलझ जाते हैं। हम इस जाति के थे पुन: उसी जाति की समाज मिल जाती है। उसी जाति में वह समाज उनको ऊपर उठाती है, उनका समर्थन करती है, खूब अच्छे प्रचार-प्रसार करती है तो वो उसी जाति के हो जाते हैं और जो दूसरी जातियाँ, जो समाज में रहती है उनसे वह कट जाते हैं। कई साधुओं-साध्वियों के ऊपर इस प्रकार

का ठप्पा लगा हुआ मिलेगा, भैया ये उस जाति के हैं। आचार्य कहते हैं मोह के कारण से ये चित्त पहले चीजों को छोड़ता है फिर उसी में रमने लग जाता है। ये मोह की बड़ी विचित्रता है और उसी में ये जाति के विकल्प, लिंग के विकल्प और भी अनेक ऐसे संसार, शरीर, भोगों के विकल्प जिन्हें वह छोड़ता है पुन: वह ग्रहण करने लग जाता है। उस वृत्ति को वही साधु या वही श्रावक समायोजित कर पाता है या अपने अंदर उससे दूर हटने का साहस कर पाता है जो निरंतर अपने मोह को समझता हो और अपनी चित्त वृत्तियों को समझता हो।

त्याग मोह : बन वीतरागी

इसलिए आचार्य कहते हैं अगर हम कभी मोह के कारण से किसी भी चीज को पुन: प्रेम करने लग जाते हैं या उससे हम पुन: राग करने लग जाते हैं तो इसका मतलब है कि हमारा अपने वीतराग भावों से द्वेष हो रहा है। आपने पहले किसी भी चीज का त्याग किया और पुन: आप उसी से राग करने लगे तो इसका मतलब यह कि जिससे पहले त्याग किया था, जिसके लिए किया था अब आपको उससे द्वेष होने लगा। आपने वीतरागता के लिये राग का त्याग किया। अब राग में पुन: आप सनते चले जा रहे हैं तो इसका मतलब है कि वीतरागता से अब आपको द्वेष उत्पन्न हो रहा है। ये राग की प्रवृत्ति को छोड़ना केवल ध्यान के माध्यम से ही संभव होगा।

साधक के लिए निरंतर ज्ञान और ध्यान में लीन होना बताया गया है। इसीलिए कहा गया है कि जो ज्ञान और ध्यान मे लीन रहते हुए अपनी चित्तवृत्ति को वो समझते हैं तो वह निरंतर मोह से दूर बने रहते हैं और अगर उस ध्यान में थोड़ी-सी भी सावधानी हट जाती है तो यह मोह का आक्रमण तुरंत होने लग जाता है। ये साधुओं के लिए कहा जा रहा है। श्रावक सोच सकता है कि जब साधु के लिए दिन भर ज्ञान और ध्यान में लीन रहने पर भी मोह का आक्रमण हो सकता है तो श्रावक कैसे निर्मोही हो सकता है। उस श्रावक के लिए अगर ध्यान के समय पर थोड़ा सा अपने वातावरण से हटने का मौका मिलता है और वो थोड़ी देर के लिए अपने मन को संभालता है तो थोड़ी देर के बाद में वह पुन: उसी मोह में चला जाता है। जिस मोह से वह थोड़ी देर के लिए बच पाता है लेकिन फिर भी श्रावक के लिए अगर ध्यान की साधना थोड़ी सी की जाती है तो धीरे-धीरे ये संस्कार ध्यान के जो आत्मा पर पड़ते हैं, वो हमारे मन को संभाले हुए रहते हैं।

मनोविज्ञान का अध्ययन करने से प्राप्त होता है कि मन के अंदर कभी भी अगर हम कोई भी संस्कार डालना चाहें तो डायरेक्ट नहीं डाल सकते हैं। मन एक ऐसा उछलता हुआ पदार्थ है

कि उसको अगर हम डायरेक्ट अपने कब्जे में लेना चाहें तो वो कभी नहीं हो सकता। कभी डायरेक्ट अटैक नहीं कर सकते। जो शत्रु बहुत दिनों से अपनी पेंठ बनाए हुए हो, जिसने सब जगह अपना साम्राज्य कर रखा हो उसको पकड़ना बहुत कठिन होता है। उसके लिए एक मोर्चाबंदी की जाती है। मोर्चाबंदी अर्थात् उसको घेरने का प्रयास करना। उसको आजू-बाजू से घेरना, उसके चारों ओर ऐसी चीजें बनाना कि वो धीरे-धीरे घिरता चला जाए और वो अपनी गिरफ्त में आ जाए। इसी तरह का प्रयास इस मन के साथ में किया जाता है। मन को भी आप डायरेक्ट अपने कंट्रोल में करना चाहोगे तो वो नहीं होगा। मन को धीरे-धीरे प्रयासों के साथ में उसके लिए मोर्चाबंदी की जाती है और उस मोर्चाबंदी में क्या होता है कि मन को धीरे-धीरे ऐसी दैनिक क्रियाओं के साथ में समायोजित किया जाता है कि वह मन सधा हुआ बना रहे। साधु का मन सधा हुआ इसलिए बना रहता है कि उसे सुबह से शाम तक छह आवश्यक क्रियाएँ, व्रतों का पालन सब कुछ शास्त्र के अनुसार करना होता है।

संयमित जीवन

श्रावक भी मन को संयमित करें। श्रावक भी अगर अपनी दैनिक जीवन को थोड़ा सा साधे, समय पर समयोचित क्रियाएँ करें और उन क्रियाओं में उसके लिए स्वाध्याय, ध्यान, जप, तप इसके लिए समय हो तो वो श्रावक भी अपने मन को मोर्चाबंदी करके बाँध सकता है। अपने मन को कंट्रोल कर सकता है।

पहली-पहली बार जब आप कोई भी काम करते हैं तो आपको उसमें मन नहीं लगता। चाहे आपको स्वाध्याय कराया जाए, चाहे आप ध्यान करने बैठे। पहली-पहली बार मन नहीं लगता लेकिन जब मन हाँफने लग जाता है, थोड़ा-थोड़ा सा मन अस्वस्थ होने लग जाता है तो मन अपने आप उस स्थान पर नियमित रूप से उसी कार्य के लिए स्वयं तैयार हो जाता है। धीरे-धीरे अट्ठाइस दिन लगभग हो गए। आपका मन अब धीरे-धीरे एक नियमित समय पर भले ही वो समय सुबह नौ बजे का है या सवा नौ बजे का है। आपका मन तैयार हो जाता है कि हमें अब ध्यान करना है जबकि यह ध्यान का उचित समय नहीं है लेकिन फिर भी आपका मन अपने आप इस ढंग से नियमित हो जाता है। इसी नियमन का नाम है मन का संयमित हो जाना और जब मन इस प्रकार से संयमित होने लग जाता है तो वही मन हमारी गिरफ्त में आ जाता है। हम उस मन पर धीरे-

धीरे अधिकार पाने लगे। अगर आप अपनी क्रियाओं को नियमित रूप से संयमित ढंग से करेंगे तो आपका मन के ऊपर अधिकार बन जाएगा और जिसका मन के ऊपर अधिकार बन गया उसे दुनिया में कोई हरा नहीं सकता। मन के जीते जीत है और मन के हारे हार। मन को जीत लिया तो आपको दुनिया में कोई हरा नहीं सकता। इसलिए सबसे बड़ा काम इस शरीर को संभालना नहीं है। सबसे बड़ा काम है अपने मन को संभालना। मन संभालेंगे, शरीर भी संभल जाएगा। शरीर संभालेंगे थोड़ा सा मन के ऊपर प्रभाव पड़ेगा लेकिन मन को अगर संभाल लिया तो शरीर भी संभल जाएगा और जहाँ मन और शरीर दोनों संभलने लगे तो आपकी अध्यात्म की यात्रा शुरू हो जाएगी। आपकी आत्मा की वृत्तियाँ, आत्मा की ओर आपका चित्त अपने आप लगने लग जाएगा। अगर आपका मन शुद्ध है, पवित्र है और तन स्वस्थ है तो ही आपके अंदर आत्मा का ज्ञान, आत्मा का दर्शन या प्रभु का दर्शन हो पाएगा।

मन स्वस्थ तो तन स्वस्थ

स्वच्छ मन और शुद्ध तन, निरोगी तन में ही इस प्रकार के योग की क्रियाएँ घटित होती हैं। अगर आप निरोगी नहीं हैं तो आपके लिए मन भी अच्छे ढंग से नही लगेगा। ध्यान रखें। पहले आपका मन उस रोग को दूर करने में लगेगा। जब दर्द ठीक हो जाएगा तब मन थोड़ा सा सही बनेगा और जब मन स्वच्छ बनेगा, सही बनेगा तब फिर आपका मन आत्मा में लगेगा। इसलिए जिन लोगों का शरीर सही है वे भी इस योग को करें। इस ध्यान को करें ताकि उनका शरीर लंबे समय तक सही बना रहे। जो रोगी होकर के बैठे हैं तो अपने इस ध्यान के माध्यम से उस रोग को कम कर सकते हैं। धीरे-धीरे अपने मन को भी अपनी आत्मा में समाहित कर सकते हैं। जितने भी रोग होते हैं। वैज्ञानिक कहते है वो सब मन के माध्यम से ही होते हैं। सबसे पहले दर्द मन में होता है, घुटने में बाद में आता है। ये दर्द तब आते हैं जब मन में अति हो जाती है वह दर्द शरीर पर अपना प्रभाव डालते हैं। अगर आपने उस मन के दर्द को रोजाना इस ध्यान के माध्यम से दूर कर लिया, रोजाना अपने मन को अपने आप में समाहित कर लिया तो आपके लिए इस प्रकार के दर्द ही नहीं होंगे क्योंकि आपका मन ऊर्जावान् बनेगा, शक्तिमान बनेगा। इस प्रकार के दर्द के लिए कारण रूप विकृत भाव होते हैं, उन भावों से वह बचा रहेगा। यही आचार्य कहते हैं कि बार-बार अपने मन को उस राग की परिणति से और द्वेष की परिणति से दूर करके मोह को कम करो।

श्लोक–९१–९२

अनन्तरज्ञः सन्धत्ते दृष्टिं पङ्गोर्यथान्धके।
संयोगात् दृष्टिमङ्गेऽपि सन्धत्ते तद्वदात्मनः।।९१।।
निर्भ्रांत देह जड़ ही नित जानता है, मोहाभिभूत नर ईदृश मानता है।
पंगु प्रदर्शित यथा पथ–रूढ़ अन्ध, ना दीखता पथिक को वह हाय! अन्ध।।९१।।

दृष्टभेदो यथा दृष्टिं पङ्गोरन्धे न योजयेत्।
तथा न योजयेद् देहे दुष्टात्मा दृष्टिमात्मनः।।९२।।
जो अन्ध–खंज युग अन्तर जानते हैं, ज्यों अन्ध को नयनवान न मानते हैं।
विज्ञान पूर्ण निज को मुनि मानते जो, आत्मानुरूप तन को नहि जानते त्यों।।९२।।

थोड़े से अंतर के साथ दोनों श्लोक एक ही प्रकार के भावों को लिए हुए हैं। दो वस्तुओं के अंतर को संसारी जीव नहीं समझते हैं इसलिये वे देह और आत्मा को एक मानते हैं। मोही लोग जब तक अंतर को नही जानते, भेद विज्ञान को नहीं जानते तब तक एकमेक होकर ही जीते हैं। दो उदाहरण एक ही चीज को बताने के लिए दिए गए। जैसे कोई एक अंधे पुरुष के ऊपर एक लंगड़ा पुरुष बैठा है। चल एक व्यक्ति रहा है क्योंकि अंधा देख नहीं सकता और लंगड़ा चल नहीं सकता तो अंधे के ऊपर लंगड़ा बैठ गया। सामने वाले ने देखा। देखो, ये एक व्यक्ति चला जा रहा है, जब तक उसे ये ज्ञात नहीं हुआ कि ये दो व्यक्ति है।

देह और आत्मा

इसी तरह से आचार्य कहते हैं देह और आत्मा ये दोनों जुड़ी हुई है। देह और आत्मा के बीच के अंतर को जब तक नहीं जानता, तब तक वह मोही जीव इस देह में ही दृष्टि रखता है और देह को ही अपना मानकर के सब कुछ देह को ही मानता है। आत्मा को वह जानता ही नहीं,

आत्मा को देखता नहीं। जब उसे भेद विज्ञान हो जाता है, देह और आत्मा की भिन्नता का स्वरूप ज्ञान हो जाता है तो वह देह के स्वरूप को भिन्न और आत्मा के स्वरूप को भिन्न मानकर चलने लग जाता है। चलना तो एक जैसा ही हो रहा है लेकिन दृष्टि में अंतर आने पर उसको सृष्टि में अंतर दिखाई देने लग जाता है। ये दृष्टि का अंतर सबसे बड़ा अंतर होता है जिसके अंदर भेद विज्ञान की थोड़ी सी भावना आ जाती है तो वो सोचता है भैया ये समय बहुत हीरे जैसा कीमती है। इस समय को अपने को गंवाना नहीं। दुकान तो १० बजे खुले या १०.३० बजे खुले चाहे हीरे की दुकान हो, चाहे जवाहरात की दुकान हो। उस दुकान के ग्राहक कहीं नहीं जाएँगे लेकिन ये जो यहाँ पर अपने को रत्नत्रय की आराधना, भेद विज्ञान की दृष्टि, आत्मा की अनुभूति, ये चीजें जो हमें यहाँ सीखने को मिल रही है वो चीजें हमें पंद्रह दिन बाद फिर सीखने को नहीं मिलेगी। ये भेद विज्ञान ही जानता है। दीपावली तो हर साल आएगी। वही अपने कचरे-कूड़े को बाहर निकालना, अपने पूरे शरीर को गंदा करना, रंग-रोगण से अपने हाथ-पाँव लीप लेना। ये तो हम कई बार कर चुके हैं, करते-करते थक चुके हैं। अब हम थोड़ा सा अपनी आत्मा की सफाई और मन की सफाई की बात कर ले। ये बात जिसके अंदर आएगी वो ही धार्मिक और सम्यग्दृष्टि कहलाता है। नहीं तो महाराज, अभी दशहरा था, अब नया दिन शुरू हो गया। अब दीपावली आने वाली है। अब उसकी सफाई में लगे हैं। इन दिनों बिजनेस बढ़ जाता है। ये हो जाता है, वो हो जाता है। मोही जीव हमेशा इसी प्रकार के विकल्पो में उलझकर के अपनी जिंदगी पूरी कर लेता है और उसे कभी भी आत्मा की खबर नहीं आती, इसी का नाम मिथ्यात्व है। ऐसे जीवों के लिए यहाँ दृष्टि देने के लिए आचार्य कहते हैं थोड़ी देर के लिए अपने आपको देखो, अपने आपको जानो, अपने आपको समझो। जब तक तुम अपने आपको नही देखोगे, तब तक तुम्हारा पूरा का पूरा जीवन एक ऐसे ही कूड़े-कचरे की तरह चलता रहेगा और उससे तुम्हें कोई भी लाभ नही होगा। इसलिए इन आचार्यो की वाणी से हमें ये समझना है कि अपनी उस भेद विज्ञान की दृष्टि को थोड़ा सा पैना करना है। द्वेष के साथ में और आत्मा के साथ में जो मन जुड़ा हुआ है उस मन को अगर हम थोड़ा सा ऊर्जावान् कर लें, पवित्र कर लें और अगर वो णमोकार महामंत्र के माध्यम से हो जाए तो नियम से हमारे लिए वो मन आत्मा में समाहित हो जाएगा और आत्मा में लीन होने का एक साधन बन जाएगा। इसलिए आज हम एक और नई प्रक्रिया से गुजरते हैं। आप यह मत सोचना कि ध्यान के आयामों की कोई कमी नहीं है। न ज्ञान के आयामों की कोई कमी है न ध्यान के आयामों की कोई कमी है। आपके लिए इतना कुछ है कि अभी तो आप ये समझो कि इन दिनों में आपने कुछ सीखा ही नहीं, आप बिल्कुल पहली क्लास में ही चल रहे हो। अभी कुछ

नया सीखने की प्रक्रिया तो शुरू हुई ही नहीं। अगर हम देखें तो ये सब फर्स्ट स्टेप की क्रियायें हैं जिनमें ही आपको आनंद आने लगा। जब आप सेकंड स्टेप में उतरेंगे तो कुछ और होगा। अगर आप निरंतर यह अभ्यास करेंगे तो आपको लाभ होगा। ये ऐसी चीजें हैं जिसका निरंतर अभ्यास करने से ही आपको लाभ होगा और अगर आपका एक दिन का गेप हो गया तो समझ लो आप पहले पायदान पर खड़े हो गए। अब आपको फिर उतना ही टाइम लगाना पड़ेगा, फिर उतनी ही मेहनत करना पड़ेगी। अब सबकी अपनी-अपनी परिस्थितियाँ है, जिसको जो जैसा लाभ मिल रहा है। सबके अपने पुण्य और पाप हैं।



श्लोक–९३

सुप्तोन्मत्ताद्यवस्थैव विभ्रमोऽनात्मदर्शिनाम्।
विभ्रमोऽक्षीणदोषस्य सर्वावस्थाऽऽत्मदर्शिनः।।९३।।

उन्मत्त सुप्त जनकी वह जो क्रिया हो, मोही उसे भ्रम कहे यह अज्ञता ओ!
पै रोष तोष मय तामस–भाव को ही, हैं मानते 'भ्रम' अहो! गुरु जो अलोभी।।९३।।

आचार्य कहते हैं इस आत्मा के ऊपर मोह कर्म के प्रभाव से मन में हमेशा विभ्रम के भाव उत्पन्न होते हैं। उस मोह के कारण से इस आत्मा को पहले-पहले तो अपनी जो भी क्रियाएँ हैं वह तो कभी उसको भ्रम स्वरूप दिखाई नहीं देती, समझ में नहीं आती। लेकिन धीरे-धीरे जब उसे आत्म ज्ञान होने लग जाता है और वह अंतर्दृष्टि वाला होकर के अपनी आत्मा को और अपनी देह को भिन्न-भिन्न जानने लग जाता है तो उसे ऐसा महसूस होने लग जाता है कि हम जो इस देह के साथ क्रियाएँ करते हैं वो सब हमारा एक भ्रम है। सोना, उठना, जागना, खाना, पीना ये सब क्रियाएँ हैं उसको एक विभ्रम स्वरूप प्रतीत होती है यानि इन क्रियाओं में हम अपने आपको जोड़ते हैं और अपनी आत्मा की कल्पना करते हैं और ये सोचते हैं कि ये क्रियाएँ हमने की, यह सोचना भी उसको भ्रम लगता है। धीरे-धीरे जब उसका इस ढंग से मोह घटता जाता है और अंतर आत्मदृष्ट वाला होता चला जाता है। एक स्थिति ऐसी आती है जब वह अपने मन में उठने वाले रागादि भावों को भी भ्रम के रूप में देखने लग जाता है। यह एक और ऊपर की स्थिति है जिसमें किसी भी प्रकार की राग आदि की परिणति भी उसी भ्रम के रूप में दिखाई देने लगती है।

आत्मदर्शी

वह विचार करता है कि ये रागादि भाव हमारे आत्मा में उत्पन्न होता है, यह हमारा स्वरूप नहीं लेकिन फिर भी मैं कर रहा हूँ और इस स्वरूप के नहीं होने के कारण से भी जब उसे वह

भाव करने में आता है तो उसमें वह अपने अंदर ये महसूस करता है कि ये हमारी बुद्धि का कैसा भ्रम है, जिसके कारण से हमें ये रागादि भाव भी अच्छे लगते हैं। यह स्थिति एक आत्मदर्शी की स्थिति कहलाती है जब वह अपने आपको भी देखने लग जाता है सही ढंग से और दूसरों को भी सही ढंग से देखने लग जाता है। किसी को भी सही ढंग से जानना और सही ढंग से देखना तभी होता है जब हम अपनी बुद्धि पर पड़े उन भ्रम के परदों को हम अपने ही ज्ञान से धीरे-धीरे हटाते हैं। जैसे बादल छा जाते हैं तो सूर्य का प्रकाश ढक जाता है। सूर्य का प्रकाश भीतर ही भीतर उन बादलों से लड़ता रहता है। बादल सामने आ जाते हैं। कुछ समय के लिए अंधेरा सा होने लग जाता है। प्रकाश पूरा नहीं आता और बीच-बीच में वह प्रकाश भी हमें दिखाई देने लग जाता है। यह एक प्रक्रिया निरंतर चलती रहती है। ये नहीं सोचना कि सूरज उन बादलों के कारण से डर गया और सूरज के ऊपर उन बादलों ने अपना प्रभाव डाल लिया तो हमेशा बादल उस सूरज को घेरे रहेंगे। देखो प्रकाश आने लगा, ऐसे ही अपनी आत्मा में और अपने कर्मों के भावों के साथ होता है। कोई भी कर्म से उत्पन्न हुआ भाव अपने ऊपर कभी प्रभाव डालता है तो हमें ये नहीं मान के बैठ जाना है कि ये कर्म हमें दबाकर बैठा है तो हमारे अंदर ये कर्म का प्रभाव हमेशा बना ही रहेगा। अगर हमने ये सोच लिया कि कर्म का प्रभाव हमारे अंदर ऐसे ही बना रहेगा तो हम उस कर्म को कभी भी जीत नहीं पाएँगे। अगर हम सूर्य की तरह संघर्ष करते रहेंगे तो अवश्य जीतेंगे। सूर्य कभी भी उस संघर्ष से पीछे नहीं हटता। उसका प्रकाश हमेशा जो आसपास बादल छाए रहते हैं वह अपनी गर्मी से दूर करता चला जाता है। कभी-कभी बादल बहुत ज्यादा घने हो जाते हैं तो वह उस सूर्य की गर्मी से भी नहीं हट पाते हैं तो उसमें समय लग जाता है। आखिर एक-न-एक समय पर उनको हटना तो पड़ता है।

इसी तरह से आचार्य कहते हैं कोई भी राग-द्वेष आदि के भाव हमारी आत्मा में उत्पन्न होते हैं तो वह भाव हमारी आत्मा में कोई स्थायी पेठ नहीं बनाए हुए हैं। हम अपनी स्मृति से उनको अपने दिमाग में रख लेते हैं और अपने मन में ये सोचकर बैठ जाते हैं कि ये राग-द्वेष आदि भाव हम जीत नहीं सकते। जहाँ आपने यह विचार कर लिया कि हमारा मन इन राग आदि भावों को जीत नहीं सकता तो आपका मन उस समय पर दुर्बल हो गया और आप उन राग आदि भावों की गिरफ्त में आ गए। अगर हम निरंतर ज्ञान का पुरुषार्थ करते रहेंगे कि यह मेरा स्वभाव नहीं है और मेरा जो ज्ञान स्वभाव है उसके ऊपर रागादि का प्रभाव हमेशा रहने वाला नहीं है। ये विचार ही

जैसे आपके अंदर आ जाता है तो आपका स्वयं का ज्ञान प्रकाश भी बढ़ने लग जाता है। ज्ञान के समय पर वह ज्ञान प्रकाश इतना नहीं बढ़ता जितना ध्यान के समय पर बढ़ता है। जिस समय पर हम दूसरों से हटकर के अपनी सारी की सारी शक्ति को अपनी ही अनुभूति में लगाते हैं। उस शक्ति को हम भीतर से महसूस करते हैं तो हमारे ऊपर आने वाले राग, द्वेष, क्रोध, मोह आदि के जो बादल छाए रहते हैं वो धीरे-धीरे हटने लग जाते हैं। उस समय पर हमें भीतर से यह शक्ति मिल जाती है। जब हमें किसी भी प्रकार से अपने मन में राग, द्वेष, मोह आदि का भाव उत्पन्न होता हुआ न दिखाई दे रहा हो तो वह अनुभूति हमारी बहुत बड़ी शक्ति होती है। फिर उसी शक्ति के माध्यम से हम आगे भी उन कर्मो का जो अनुभाग है, उनकी जो शक्तियाँ हैं उनको हम जीतने की एक सामर्थ्य पैदा कर लेते हैं। जीतने की सामर्थ्य, कर्मो से लड़ने की सामर्थ्य हमें केवल ध्यान के माध्यम से ही मिलती है। कर्मो से अपने आपको बचाने की शक्ति वह केवल हमें ध्यान के माध्यम से ही मिलेगी और वह शक्ति कहीं आपको बाहर से नहीं मिलेगी। बाहर से तो केवल आपको एक विचार मिलेगा। अभी आप बाहर हैं, आपको केवल एक विचार मिल रहा है, आपको एक ज्ञान मिल रहा है लेकिन अभी आपके अंदर की शक्ति प्रकट नहीं हो रही। शक्ति आपको मिलेगी तो अपने ही भीतर से मिलेगी। वो अंतरंग की शक्तियों को पहचानना, समझना और प्रकट करना यही अगर हमारे लिए रुचिकर लगने लग जाता है तो दुनिया में हमें फिर कोई भी बाहरी शक्ति न कभी परेशान कर सकती है और न ही कोई बाहरी शक्ति के कारण से हमारी आत्मिक शक्ति दब सकती है न कर्म की शक्ति से, न नोकर्म की शक्ति से।

आत्मदर्शी का मतलब है कि वह निरंतर कर्म से रहित हो करके अपनी आत्मा की शुद्ध अवस्था को देखने की अनुभूति रखते हैं और जो देखने का भाव रखते हैं। उसके कारण से उसके अंदर जो दोष है वह भी क्षीण होते चले जाते हैं। अपनी ही आत्मा के दोषों को क्षीण करने के लिए अपनी ही अंतरंग शक्ति को पहचानना और उसी अंतरंग शक्ति की अनुभूति की तीव्रता बढ़ाना। जब आत्मा के दोष क्षीण होंगे तो मन भी निर्दोष बनेगा और अगर मन निर्दोष बनेगा तो अपना शरीर भी निर्दोष बनेगा। हमें हमेशा ये महसूस होगा कि हम जिन शक्तियों के साथ में जी रहे हैं वो शक्तियाँ हमारे लिए बहुत बड़ी चीजें हैं। जब तक हम उन शक्तियों को नहीं पहचानते तो हम उनके साथ जीते रहते हैं लेकिन हम उनका उपयोग करना नहीं जान पाते। इसीलिए आचार्य कहते हैं अपने ही भ्रम को धीरे-धीरे दूर करने के लिए आप अपनी ही अनुभूति को समझें और अपनी

ही अनुभूति को समझने के लिए आप अपने ही अंतरंग में उस ध्यान की क्रिया से जुड़ें जिसके माध्यम से हमें ये भीतर से अनुभूत होता है कि हम कुछ और हैं और जैसे ही हम आँखें खोल लेते हैं तो हमें लगने लग जाता है कि हम कुछ और हैं।

आपको कब याद आएगा कि हम कियावत (सरनेम) हैं। जब आँख खोलकर बैठोगे तब, जब आप सभा में आ रहे होंगे तब, जब आपके सामने कोई दूसरा बगल में खड़ा हो जाएगा तब। जब आपके सामने कोई दूसरा खड़ा होगा तो आपको लगेगा कि वह क्यों खड़ा है। मैं क्यों नहीं खड़ा, वहाँ पर। ये फीलिंग कब होगी, जब आपकी आँखें खुली होंगी, जब आप बाहरी जगत को देख रहे होंगे और जब आप केवल अपने ही अंतरंग जगत को देख रहे होंगे तो आपको कुछ भी फीलिंग नहीं होगी और आपके सामने अगर कोई आकर के खड़ा हो जाए तब भी। आपके अंतरंग की अनुभूति तीव्र है तो आपको यह देखने का भी भाव नहीं होगा कि कौन हमारे बगल में आकर के बैठ गया और कौन हमारे बगल से उठकर के चला गया। ये जो अपने अंदर की फीलिंग्स है, यही फीलिंग्स हमारे जीवन को ऊपर उठाती है। इसी के माध्यम से हमें अपनी अंतरंग शक्ति का पता पड़ता है इसलिए जो व्यक्ति अपने अंदर की शक्ति से जुड़ता है वह व्यक्ति जगत की सभी शक्तियों से जुड़ने लग जाता है। अंतरंग शक्ति से जुड़ने का सबसे अच्छा तरीका है, हम अपनी इंद्रियों से परे होने का एक भाव बनायें। आप इंद्रियों से कभी परे नहीं हो सकते। जब आप लेटे हैं, सो गये हैं, तब भी आप इंद्रियों से परे नहीं हो, आपकी इंद्रियाँ उस समय पर भी काम करती रहती हैं। ये बात अलग है कि उनकी चेष्ठाएँ बंद पड़ जाती हैं, निश्चेष्ठ हो जाती हैं लेकिन उन इंद्रियों से भी परे जाने का अगर भाव आएगा तो वह सुस्त अवस्था में नहीं आएगा, उन्मत्त अवस्था में नहीं आएगा, वह आपके लिए एक जाग्रत अवस्था में आएगा, जिसे कहते हैं ध्यान की जागरण की अवस्था। ये जितनी भी अवस्थाएँ हैं वह सब सुस्त अवस्थाएँ, उन्मत्त अवस्थाओं की तरह दिखाई देने लग जाती है जब हम ध्यान की अनुभूतियों में उतरते चलते जाते हैं। इसलिए आचार्य कहते हैं अपने अंदर उस अनुभूति की तीव्रता को बढ़ाने का प्रयास करो। उस तीव्रता के बढ़ने पर बाहर का वातावरण कैसा भी होगा, अगर आप अपनी आत्मीय शक्तियों से जुड़े हुए हैं तो आपको कोई ज्यादा फर्क नहीं पड़ेगा।

श्लोक–९४

विदिताऽशेषशास्त्रोऽपि न जाग्रदपि मुच्यते।
देहात्मदृष्टिर्ज्ञातात्मा सुप्तोन्मत्तोऽपि मुच्यते।।९४।।

सिद्धांत हस्तगत यद्यपि है जिसे वो, सद्ध्यान हीन यदि हो शिवा ना उसे हो।
शुद्धात्म का अनुभवी यदि नींद लेता, तो भी अपार सुख पा, भव पार होता।।९४।।

आपने बहुत ज्यादा पढ़ लिया, सिद्धांत शास्त्रों का अध्ययन कर लिया, सब प्रकार के सिद्धांत आपके ज्ञान का विषय बन गए लेकिन अगर आपको ध्यान करना नहीं आता तो आपको कुछ भी नहीं मिल रहा है। ज्ञान से भी बड़ी चीज है ध्यान। अगर ज्ञान के माध्यम से जिस चीज को हमने सीखा उस चीज की अनुभूति हमें नहीं होगी तो उस ज्ञान का कोई मतलब नहीं। ज्ञान की अनुभूति अगर होती है तो वो ध्यान में होती है। आचार्य कहते हैं कि जो ध्यान से हीन है, उनके लिए वो ज्ञान भी भार बन जाता है। ज्ञान हल्का बन जाता है जब ध्यान में लीन हो जाता है। छोटी-छोटी सी बातें आप अपने सांसारिक अनुभवों में लाते होंगे। जैसे मान लो, कहीं कोई चीज गुम गई। आपको कभी-कभी लगता होगा, कहीं वो चीज रखी हुई है। उसको जल्दी-जल्दी ढूंढते हो। बार-बार देख-देख करके भी ढूंढते हो तो भी वह चीज वहीं पर होते हुए भी नहीं मिलती आपको। होता है कभी आपको ऐसा। आपकी मोटरसाइकिल की चाबी, स्कूटी की चाबी, कई बार ऊपर की जेब में रखी रहती है और हम सब जगह देख लेते हैं, तब भी अपने को पता नहीं पड़ती। जेब में हाथ भी डाल लेते हैं, फिर भी वह चाबी पकड़ में नहीं आती। ऐसा इसलिए होता है कि हम केवल ज्ञान की प्रक्रिया से जुड़े रहते हैं, ध्यान की प्रक्रिया कम हो जाती है। जब हमारे अंदर इस प्रकार का भाव आ जाता है कि इस चीज को हम खोज रहे हैं तो यह ज्ञान की प्रक्रिया भी अपने आप में एक भार बन जाती है। वह भार हल्का हो जाता है अगर आप थोड़ी देर के लिए वो हड़बड़ाहट छोड़ दें। अगर आप हड़बड़ाहट जारी रखेंगे तो अभी तो स्कूटी की चाबी खोई है,

थोड़ी देर बाद आपका मोबाइल भी खो जाएगा। हड़बड़ाहट छोड़ने के लिए आपको केवल दो मिनट शांति से बैठ जाना है। आपको लगेगा कि मैं दो मिनट शांति से बैठूँगा, मैं दो मिनट में बहुत काम कर लेता, मेरे दो मिनट वेस्ट हो जाएँगे। ये भी एक बहुत बड़ा भ्रम है। जिस चीज से हमें शक्ति मिलती है, जिस चीज से हमें समाधान मिलता है, हम उसको टाइम वेस्ट समझते हैं। जिस चीज में हमें आकुलताएँ मिलती हैं उस चीज को हम अपना ज्ञान समझते हैं, उसे हम टाइम का यूज समझते हैं। जब भी आपसे कहा जाए कि आप शांत होकर बैठ जाओ, आप ध्यान करो कभी-कभी आपके मन में आता होगा कि ये टाइम वेस्ट जैसा काम चल रहा है। ऐसा आपको लगे तो समझना ये भी अपने मन का एक भ्रम है और इस भ्रम को भी हमें तोड़ना होगा। ध्यान में अपने को जो समाधान मिलेंगे वो समाधान आपको ज्ञान में कहीं नहीं मिलेंगे। जितने भी दुनिया की समस्याओं के समाधान हैं वो सब ध्यान से प्राप्त होते हैं। आपकी छोटी-छोटी सी समस्याओं के समाधान भी आपको ध्यान में मिल जाएँगे। आप केवल दो मिनट शांति से बैठ जाओ। एकदम से आपके दिमाग में क्लीक करेगा, अरे वह चाबी, जिसे हम ढूंढ रहे थे, वो तो हमने कहीं रखी नहीं, वो तो हमारी जेब में होनी चाहिए। हमने जेब में हाथ जरूर डाला लेकिन वह हाथ हमारी डायरी या पॉकेज तक ही गया और वह केवल हमारी ऊपर के ही नोट तक रह गया। हमने उस हाथ को भीतर तक नहीं डाला। आप देखेंगे कि वह चाबी उसी जेब के कोने में ही पड़ी हुई है। ये समाधान आपको ज्ञान से नहीं मिलेगा, थोड़ी देर जो रेस्टिंग पोजिशन आती है उससे मिलेगा।

समस्या का समाधान ध्यान से

एक छोटी-सी समस्या का समाधान भी हमें ध्यान से मिल रहा है और अपने जीवन की बड़ी-बड़ी समस्याओं का समाधान भी हमें ध्यान में ही मिलेगा। समस्या हमारे भीतर से उत्पन्न हुई और उन समस्याओं का समाधान हमारे भीतर ही मिलेगा। जहाँ से समस्याएँ उत्पन्न होती है वहीं पर समाधान होते हैं। हम समस्याओं में बाहर उलझ जाते हैं, इसलिए समाधानों में भी हम बाहर उलझ जाते हैं इसलिए समाधानों को हम खोज नहीं पाते। ध्यान एक ऐसी चीज है जिसके माध्यम से ज्ञान का भार कम हो जाता है। आपके लिए वो ज्ञान कितना भार बन जाता है जब आप किसी चीज को ढूंढना चाह रहे हो, वह चीज आपको मिल नहीं रही हो। कैसी हड़बड़ाहट होती है। मान

लो इसी ग्रंथ का श्लोक भी ढूंढने बैठ जाएँ। ये श्लोक हमने पहले कभी पढ़ाया था, उसमें यह भाव आया था। हम उसको ढूंढते जाएँ, ढूंढते जाएँ तो उसमें भी एक भार जैसा महसूस होने लग जाता है तो हम थक जाते हैं। ऐसा लगता है कि हमने बहुत समय खराब कर दिया ज्ञान में थकान उत्पन्न हो जाती है क्योंकि ज्ञान भार है। ध्यान में आराम उत्पन्न होता है क्योंकि ध्यान हमें भार रहित बना देता है। जीवन की हर समस्या का समाधान आपको ध्यान में मिलेगा। भार रहित आप महसूस करेंगे, चाहें वो शरीर का भार भी आप महसूस करेंगे, शरीर के भार से रहित वो भी ध्यान में होगा और मन के भार से भी रहित, तब अपने आपको महसूस करेंगे तो वो भी ध्यान में होगा।

जितनी भी प्रकार की अशुद्धियाँ हैं सब अशुद्धियों का निष्कासन भी ध्यान के माध्यम से होता है। मुनि महाराजों के लिए भी कहा है अगर आप ध्यान नहीं करोगे तो आपको कभी शुद्ध आत्मा का अनुभव नहीं होगा। शुद्ध आत्मा की अनुभूति हुए बिना आपके लिए मोक्ष जैसा कोई कार्य संपादित नहीं हो पाएगा। शुद्ध आत्मा की अनुभूति ध्यान में ही होती है, ज्ञान में नहीं होती है। शुद्ध आत्मा की चर्चा तो हम ज्ञान में कर सकते हैं लेकिन शुद्ध आत्मा की अनुभूति की दशा जो आएगी वो केवल ध्यान में आएगी इसलिए आप ध्यान के प्रति एकाग्र होएँ। जैन संस्कृति, श्रमण संस्कृति एक ध्यान की संस्कृति है। तीर्थंकर दीक्षा लेने के बाद ध्यान करते हैं। पूरी की पूरी संस्कृति, पूरा का पूरा आत्मा का विज्ञान इस ध्यान से जुड़ा हुआ है लेकिन हमें खेद उत्पन्न होता है जब जैन व्यक्ति भी ध्यान से ऊबता है और ध्यान से दूर भागता है। आज अजैनों के अंदर, विदेशी लोगों के अंदर जो श्रमण संस्कृति को नहीं जानते उन लोगों के अंदर ध्यान के प्रति इतना रुझान है कि वो एक-एक दिन के दो–दो दिन के ध्यान करने के लिए २५-२५ हजार की फीस पे करते हैं और एक ध्यान करते हैं। एक-एक दिन ध्यान के, दो-दो दिन ध्यान के लिए उस वातावरण में बैठते हैं। इधर जिस संस्कृति में हम जी रहे हैं वह पूरी ध्यान की संस्कृति है। ज्ञान की संस्कृति, आध्यात्मिक संस्कृति और उस आध्यात्मिक संस्कृति में रहते हुए भी हम अध्यात्म की केवल बातों ही बातों में मशगूल हो गए कि हमें दो मिनट भी आँख बंद करके बैठना नहीं आता। हमारे घुटने दर्द करते हैं, बेचैनी भीतर से होने लग जाती है। हमें कुछ भी नहीं सुहाता, हमें केवल चर्चा ही सुहाती है। ये हमारे उस अध्यात्म का अजीर्ण हो रहा है। हमें ध्यान की स्थिति में दो मिनट बैठना नहीं सुहा रहा है।

इसका मतलब है कि हम जिस आध्यात्मिक संस्कृति में जी रहे हैं उसका हमें कुछ भी भीतर

से अनुपान नहीं हो रहा है। उसका हमें भीतर से कोई भी आनंद नहीं आ रहा है। कितने ही ऐसे लोग हैं जो दो मिनट भी पालथी मारके आसन से बैठ नहीं पाते। जब उन्होंने बैठने का अभ्यास किया तो अब वो बैठने लगे। कमर में दर्द होता था, कमर के दर्द भी ठीक हो रहे हैं और भीतर से उन्हें एनर्जी मिल रही है। उसके माध्यम से उन्हें भी अंदर से ऐसा महसूस होता है कि हमारी शारीरिक शक्ति भी बढ़ती है, मानसिक शक्ति भी बढ़ती है। ये सब इस अध्यात्म के माध्यम से होता है। अगर आप देखोगे कि आपको कोई भी चित्र दिखाया जाए ध्यान का, अध्यात्म का तो वे सारे के सारे चित्र वैसे ही होते हैं जैसे भगवान् के चित्र होते हैं। आप देखो यह ध्यान के लिए मूर्ति बनाई, ये सब योगियों की अवस्था है, जो मुनि महाराज के बैठने की अवस्थाएँ हैं, भगवान् के बैठने की अवस्थाएँ हैं। ये सब ध्यान की अवस्थाएँ होती हैं और इन ध्यान की अवस्थाओं में अगर हम थोड़ी देर भी नहीं बैठ पाते हैं तो इसका मतलब है हम अपनी संस्कृति का कोई भी लाभ नहीं ले रहे हैं। दूसरे लोग लालायित हैं वह लाभ लेने के लिए। अनेक-अनेक प्रकार के प्रयास करते हैं लेकिन फिर भी उस सत्यता तक नहीं पहुँचते हैं। थोड़ा बहुत ऊपरी-ऊपरी जो आनंद आता है उसी में वो आनंदित हो लेते हैं लेकिन हम हर चीज का लाभ ले सकते हैं। अच्छे ढंग से सम्यग्ज्ञान अर्जित कर सकते हैं, सम्यग्ध्यान अर्जित कर सकते हैं। ये सब हमारे अंदर होना चाहिए लेकिन बड़े खेद की बात है कि हम अपना ये ज्ञान और ध्यान न स्वयं में अर्जित कर रहे हैं और न दूसरी इन पीढ़ियों को अर्जित करने के लिए दे रहे हैं। ये ज्ञान और ध्यान की चीज अगर हम दूसरों को देना सीख जाएँ तो हमारे बेटे-बेटियों के लिए इतनी बड़ी उपलब्धि होगी कि आप उन्हें दहेज में क्या देंगे, दूसरे घर में जाएँगे वो क्या लेकर के जाएँगे। अगर ये संस्कार लेकर के जाएँगे तो उन्हें कोई भी कभी भी परेशान नहीं कर सकता। कोई भी कभी भी उनके लिए दु:ख का ऐसा कारण नहीं बन सकता, जिससे वो न उबर पाए। ऐसी ज्ञान की और ध्यान की शक्तियाँ आपको इस संस्कृति में मिल रही हैं, मिलती हैं लेकिन हम इन चीजों से अछूते हैं। हम थोड़ा सा अपने अंदर उस संकल्प को बढ़ाएँ कि हमें अपनी अनुभूति गहरी करनी है। हमें अपने ध्यान की गहराइयों को और पाना है और हमें भीतर से अपने आपको अनुभूत करना है। इस अनुभूति के लिए अगर हमें कोई आलंबन मिल जाए तो ये हमारे लिए बहुत बड़ा सौभाग्य है।

श्लोक–९५

यत्रैवाहितधीः पुंसः श्रद्धा तत्रैव जायते।
यत्रैव जायते श्रद्धा चित्तं तत्रैव लीयते।।९५।।

स्वामी! जहाँ मनुज बुद्धि लगी रही है, होती नितान्त उसकी रुचि भी वहीं है।
होती यदा रुचि जहाँ अयि भव्य! मित्र, होता सुलीन मन है वह नित्य तत्र।।९५।।

आचार्य कहते हैं जो जीव सभी शास्त्रों को जान भी लेते हैं और अनेक प्रकार के तप आदि को ही धारण करते हैं उनके लिए भी अपनी आत्मा में लीन होना नहीं हो पाता। आत्मा में लीन होने के लिए आत्मा की ही श्रद्धा करना जरूरी होता है। उसके लिए यहाँ पर कहा जा रहा है कि हम अपनी बुद्धि को जहाँ पर प्रयुक्त करेंगे, उसी विषय में हमारी श्रद्धा भक्ति चली जाती है। जहाँ हमारा दिमाग चलेगा, जहाँ हमारी बुद्धि चलेगी उसी विषय में हमारी श्रद्धा भी बनेगी, आस्था भी बनेगी और जहाँ-जहाँ पर हमारी श्रद्धा बनेगी उसी-उसी विषय में हमारा चित्त भी लीन होता चला जाता है। तीन चीजें हो गई, एक तो अपनी बुद्धि चलना अर्थात् हमारे अंदर विचारों की परिणति होना, दूसरी उस बुद्धि के साथ-साथ श्रद्धा तत्त्व उत्पन्न होना और तीसरी श्रद्धा के साथ-साथ चित्त की लीनता होना। इन तीन चीजों से ही आत्मा का विकास होता है। अगर बुद्धि में सही ज्ञान चल रहा है और बुद्धि का झुकाव आत्मा या परमात्मा की ओर है तो वह बुद्धि धीरे-धीरे आत्मा और परमात्मा दोनों के प्रति श्रद्धा को उपलब्ध हो जाती है। ज्ञान होने से श्रद्धा हो जाती है ऐसा नहीं कहते। ज्ञान होने के बाद में अगर हमारी रुचि वहाँ पर है तो हम बार-बार उसी विषय के बारे में सोचेंगे, चिंतन करेंगे, मनन करेंगे। ये हमारी भी श्रद्धा को बताने वाली चीज होती है।

ज्ञान से श्रद्धा हो ही निश्चित नहीं

मान के चलो आपको णमोकार मंत्र का ज्ञान है। सब लोग जानते हैं। बचपन से पढ़ाया जाता है णमोकार मंत्र को। लेकिन णमोकार मंत्र के साथ उस णमोकार मंत्र में हमारी श्रद्धा है। ये सबके लिए नहीं कहा जा सकता क्योंकि ज्ञान होने से श्रद्धा हो गई ऐसा जरूरी नहीं लेकिन श्रद्धा जब

भी होगी तो वह ज्ञान के साथ ही होगी। इसलिये ज्ञान आवश्यक होता है और ज्ञान उस श्रद्धा की ओर ले जाता है। यही ज्ञान का सबसे बड़ा कारण है। णमोकार मंत्र को हमने सुना, जाना, पढ़ा और पढ़ने के बाद में यदि हमारी उसके प्रति श्रद्धा नहीं बनी तो वह ज्ञान का फल नहीं हुआ। जो हमने ज्ञान किया णमोकार मंत्र का, उसका फल हमको नहीं मिला। इसलिए आचार्य कहते हैं कि अपनी बुद्धि को हम इस ढंग से जोड़ें उस ज्ञान के साथ में कि वह ज्ञान हमारे लिए श्रद्धा के रूप में परिणत होता चला जायेगा और जब श्रद्धा होगी तो श्रद्धा का नाम ही सम्यग्दर्शन हैं। अगर अपने आत्मतत्त्व के प्रति या पंच परमेष्ठी के प्रति अच्छी श्रद्धा का भाव उत्पन्न हो जाएगा तो आपके अंदर वो सम्यग्दर्शन का गुण प्रकट हो जाएगा। उसी गुण को प्रकट करने के लिए आचार्य कहते हैं अपने ज्ञान को श्रद्धा के रूप में ढालो। ज्ञान अलग चीज है और श्रद्धा अलग चीज है। ज्ञान तो हमें रटा भी दिया जाता है। अनेक प्रकार की जानकारियों से ज्ञान अर्जित हो जाता है लेकिन श्रद्धा अर्जित नहीं हो जाती। हम पंच परमेष्ठी के बारे में सुनते हैं। णमो अरिहंताणं में अरिहंत भगवान् आते हैं। सिद्धाणम् में सिद्ध भगवान् आते हैं। आयरियाणम् में आचार्य परमेष्ठी आ जाते हैं। उपाध्याय परमेष्ठी आ गए, साधु परमेष्ठी आ गए लेकिन उनके प्रति जो श्रद्धा का भाव बनना चाहिए वो हमारे इस ज्ञान से नहीं बन पाता। जब भी हमारे लिए वह समय मिले, हम उस ज्ञान का उपयोग करें।

णमोकार मंत्र का जाप पुण्यवर्धक

णमोकार मंत्र के लिए आचार्य कहते हैं अपवित्र: पवित्रो वा सुस्थितो दु:स्थितोऽपि वा। ध्यायेत्पंच– नमस्कारं, सर्वपापै: प्रमुच्यते।। चाहे आप पवित्र अपवित्र स्थिति में हो, चाहे सुस्थित चित्त में हो या दु:स्थित चित्त में हो। सुस्थित का मतलब आपका चित्त अच्छा है, दु:स्थित का मतलब आपका चित्त लग नहीं रहा, मन आपका अच्छा नहीं है, आपके विचारों में बड़ा उथल-पुथल चल रहा है। किसी भी स्थिति में आप अगर पंच नमस्कार मंत्र का जाप करते हैं तो आप पापों से छूटते रहते हैं। ये हमारे लिए ज्ञान हो गया। अब इस ज्ञान को कभी हमने बचपन में धारण किया हो और हमने कभी सुन लिया। बाद में हमने इस ज्ञान को कभी रिमाइंड भी नहीं किया। कभी इसके बारे में सोचा नहीं। हमारे अंदर उस भाव के प्रति कभी भी अपनी बुद्धि पहुँच नहीं सकती और अपने चित्त में उसके प्रति श्रद्धा उत्पन्न हो नहीं सकती। अपवित्र का मतलब ये नहीं समझना कि हम गंदी जगह पर बैठे हो। अपवित्र का मतलब यह है कि शरीर को अशुचि कहा गया है। आप शरीर के साथ एकत्व भाव को धारण किए हुए हो। ये भी आपकी अपवित्र अवस्था

है। पवित्र अवस्था का मतलब जब आप शरीर से अपने मन को हटाकर के केवल अपनी आत्मा के निकट आने के लिए चिंतन में लीन हो तो उस अवस्था में भी णमोकार का चिंतन करना। इसका मतलब है कि आपका मन अच्छा लगा है तो भी उसको णमोकार में लगाओ। अगर आपका मन अच्छा नहीं है तो भी णमोकार से ही मन को अच्छा बनाओ क्योंकि णमोकार के माध्यम से पाप कर्म की निर्जरा होती है। जब आप पाप कर्मों की अपने अंदर निर्जरा करेंगे, पापों का अभाव होगा, आपके मन में विशुद्धि के भाव अपने आप प्रकट होंगे। मन के अंदर हड़बड़ाहट, बेचैनी, अनेक प्रकार के क्लेश ये सब संक्लेश परिणामों के कारण से उत्पन्न होते हैं। आचार्य कहते हैं कि णमोकार मंत्र पढ़ने से आत्मा में विशुद्धि बढ़ती है। जब आत्मा में विशुद्ध बढ़ेगी तो मन के अंदर भी उसकी विशुद्धि का प्रभाव पड़ेगा। मन आपका अपने आप बिल्कुल शांत और संयमित हो जाएगा। भीतर जब ये प्रक्रिया शुरू हो जाती है तो अपने आप मन के ऊपर और शरीर के ऊपर उसका प्रभाव पड़ने लग जाता है। आत्मा में कर्मों का क्षय होने की जब प्रक्रिया होती है तो मन के अंदर भी संक्लेश का क्षय होगा। आर्त रौद्र ध्यान में भी कमी आएगी। बाहर से शरीर पर भी उसका प्रभाव पड़ेगा। ये भीतर से प्रक्रिया शुरू करने का एक कार्य जो होता है वह इस णमोकार मंत्र के माध्यम से शुरू हो जाता है।

णमोकार मंत्र जाप से निर्जरा

हमने पढ़ लिया कि णमोकार मंत्र से सब प्रकार के पापों से हम छूट जाते हैं या पापों का क्षय हो जाता है लेकिन आप स्वयं अपने मन में विचार करें कि क्या गहराई से हमारे अंदर इस प्रकार का श्रद्धा भाव बनता है। जब भी हमें कभी पाप का उदय आता है, पाप के उदय से मतलब हमारे मन में किसी भी प्रकार का संक्लेश चल रहा है, हमारे घर में किसी भी प्रकार की गड़बड़ियाँ चल रही हैं, हमारे शरीर में गड़बड़ियाँ चल रही है, हमारे किसी भी प्रकार के कार्य अच्छे नहीं बन रहे हैं। हम ये सब जानते हुए भी कि ये पाप के उदय से चल रहा है। इतना तो हम जान लेते हैं लेकिन इसके आगे हमें जो कदम बढ़ाना चाहिए। इस णमोकार मंत्र के जाप करने से णमोकार मंत्र के प्रभाव से हम सभी पापों से छूट जाते हैं। ये हमें उस समय पर याद आए जिस समय पर हमारे मन में वह पाप भाव चल रहा हो या हमारे मन में उस पाप के उदय का आभास हो रहा हो कि इस पाप के उदय के कारण से ये कार्य हमारे मन में आ रहा है इसलिए इससे बचने के लिए क्या करना। और कोई उपाय नहीं ढूंढते हुये आपके लिए इतना बड़ा उपाय मिला हुआ है जिसके माध्यम से सभी प्रकार के पाप छूटते हैं। केवलज्ञान तक की प्राप्ति हो जाती है। कर्मों की

निर्जरा, महाव्रतों के साथ भी जो जीव रहते हैं उनके लिए भी कर्म की निर्जरा करने के लिए, आचार्य कहते हैं कि णमोकार मंत्र का जाप करके, कर्म की निर्जरा करो। बड़े-बड़े मुनि महाराज ध्यान में इसी णमोकार मंत्र की आराधना करते हैं और इस णमोकार मंत्र का इतना प्रभाव है कि कोई भी कार्य किया जा सकता है। स्वाध्याय करेंगे तो स्वाध्याय से पहले णमोकार मंत्र का जाप, पूर्ण हो गया तो णमोकार मंत्रों का जाप। आहार ग्रहण कर रहे हैं उससे पहले णमोकार मंत्र का जाप, आहार पूर्ण हो गया णमोकार मंत्र का जाप। कहीं गमन कर रहे हैं, गमन प्रारंभ किया णमोकार मंत्र का जाप, गमन पूर्ण हो गया, णमोकार मंत्र का जाप। प्रतिक्रमण कर रहे हैं बीच-बीच में णमोकार मंत्र का जाप, फिर भक्ति, णमोकार मंत्र का जाप फिर भक्ति। ये णमोकार मंत्र इतना समाया हुआ है श्रमणों की चर्या में कि उस श्रमण के लिए भी जो सर्व प्रकार से असंख्यात कर्म की निर्जरा अपने व्रतों के माध्यम से हमेशा करते हैं उन्हें भी णमोकार मंत्र का आलंबन लेना होता है। आप विचार करो कि श्रावक होकर के हमें इस णमोकार मंत्र के अलावा और कुछ सोचना ही नहीं चाहिए।

सहज प्राप्ति

बात ये होती है कि जो चीज हमारे लिये बड़ी सरलता से सामान्य रूप से उपलब्ध हो जाती है, हम उसका महत्त्व आंकना कम कर देते हैं। चारों ओर हवा बह रही है। हवा का महत्त्व अभी आपको समझ में नहीं आएगा लेकिन जब आपके फेफड़े काम करना बंद कर देंगे। जब आपके लिए हवा ग्रहण करने में तकलीफ होगी, तब आपको समझ में आएगा कि इस हवा का क्या महत्त्व है। दूषित हवा से जब आपको रोग हो जाएँगे तब आपको समझ में आएगा कि स्वच्छ हवा का क्या महत्त्व है। जो चीज सब जगह उपलब्ध है हम उसको कभी भी महत्त्व नहीं देते। यही कारण है कि हमारे अंदर पंच परमेष्ठी के प्रति श्रद्धा के भाव में भी कमी आ चुकी है क्योंकि णमोकार मंत्र का महत्त्व हम धीरे-धीरे भुलाते चले जा रहे हैं। हमें अन्य मंत्रों की आवश्यकता पड़ने लगी है। हम कई बार यह बात सुन लेते हैं, महाराज कौनसा मंत्र जाप करें जिससे हमारे कर्मों में कुछ कमी आ जाए, कौनसा ऐसा मंत्र जाप करें जिससे हमारे काम बनने लग जाएँ। आपको पिछले समय में जो मंत्रों की जाप कराई है हमने बताया नहीं कि उन मंत्रों के क्या-क्या लाभ है और अभी भी नहीं बताना चाहते क्योंकि बताने से हमारा भाव वहाँ चला जाता है। लेकिन हमारी या सब पंच परमेष्ठी की ये भावना है कि सब जीव सुखी हों। मान लो एक ये भावना है कि सब जीव सुखी हों। हमें यह भी मालूम है कि पंच नमस्कार मंत्र को पहला मंगल माना गया है और मंगल का अर्थ है जो हमारे पापों को गलाए उसे मंगल कहते हैं। अब इससे हमारा मंगल होना है, इससे हमें सब

प्रकार के सुख मिलना हैं तो सब प्रकार के सुखों में पुत्र का, पुत्री की, व्यापार का, संपत्ति का, मन की शांति का, घर की शांति का, कौनसा सुख बचा है बताओ। जब ये भाव आ गया कि सब प्रकार के सुख इसमें मिलते हैं तो आपको अलग-अलग हर चीज गिनाने की जरूरत नहीं है। अगर आप शार्ट में इस चीज को समझ जाएँ तो आप एक समझदार श्रावक कहलायेंगे और अगर आप शॉर्ट में इस चीज को न समझें तो फिर ये आपकी समझदारी की कमी कहलाएगी और उसी चीज को हम बार-बार बोलें तो हमारा ध्यान उसी ओर चला जाता है। इस चीज का प्रभाव जो हमारी आत्मा पर पड़ना चाहिए वो फिर नहीं पड़ पाता क्योंकि अगर हमने आपसे कह दिया ये मंत्र का जाप आपको संपत्ति दिलाने, आपके व्यापार की वृद्धि करने वाला है तो आप उस मंत्र को पढ़ते-पढ़ते यही सोचेंगे आज तो हमारी दुकान अच्छी चलेगी, आज तो हमें अच्छा नफा होगा, आज तो अच्छे ग्राहक हमारी दुकान में आयेंगे ये मेंटिलिटी बन जाएगी। इस मेंटेलिटी से आपके लिए जो पुण्य लगना चाहिए, जो आपके कर्मो की निर्जरा होना चाहिए, जो विशुद्धि आपकी बढ़नी चाहिए वो नहीं बढ़ पाएगी क्योंकि आपका मन उस भाव में नहीं लगा जिस भाव में हम लगाना चाह रहे हैं। इसलिए हम इन चीजों को बार–बार ज्यादा नहीं बोलना चाहते कि आपको इससे क्या–क्या लाभ मिलेगा। हमने आपके लिए सब मंत्रों का जाप कराया है। इससे पुत्र की प्राप्ति हो, जिससे संपत्ति मिले, जिससे सब प्रकार की शांति हो, सुख हो लेकिन ये नहीं बताया कि किस मंत्र से क्या होगा। आप करो, आपको हर प्रकार से लाभ होगा। लेकिन अगर आप भीतर से श्रद्धा से करेंगे तो आपके मन में वह शांति और समृद्धि अपने आप समझ में आएगी।

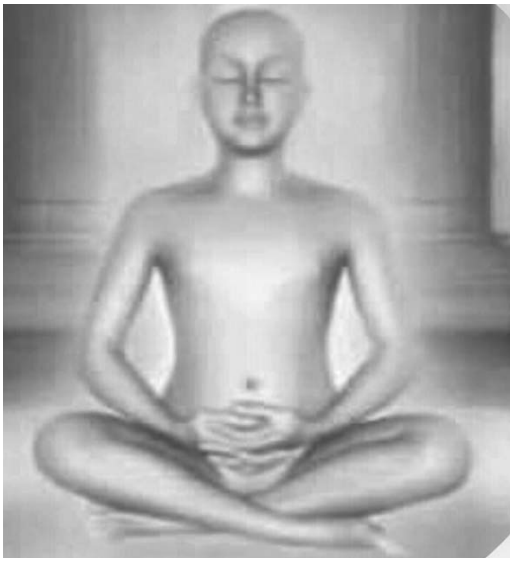
सबसे बड़ी चीज है श्रद्धा तत्त्व, जो जितनी श्रद्धा भाव से इस णमोकार मंत्र का या जिनवाणी के किसी भी वाक्य का आलंबन लेकर के उसको मंत्र बनाकर के जो उसकी आराधना करता है उसको उतनी ही अधिक लाभों की प्राप्ति होती है। इसलिए आचार्य कहते हैं जहाँ पर हमारी बार–बार बुद्धि लगे वहीं पर हमारी बार–बार श्रद्धा उत्पन्न होगी। अगर आपको बार–बार दु:ख उत्पन्न होते हैं या किसी भी प्रकार का क्लेश है तो अपनी बुद्धि को बार–बार णमोकार मंत्र में लगाना। अगर वहाँ अपने आप से सहजता में बुद्धि लग रही है तो समझ लेना आपका णमोकार मंत्र पर श्रद्धान है। जहाँ आपकी श्रद्धा बनती चली जाएगी, चित्त आपका उसमें इतना लीन हो जाएगा कि आप अपने दु:खों को भूल जाएँगे। हमें कोई दु:ख है कि नहीं है ये भी आपके लिए अपने आप महसूस होने लगेगा। इतना चित्त जब आनंद में लीन हो जाएगा तो बाहर के दु:ख आपके लिए कोई महत्त्व नहीं रखेंगे। इसी को कहते हैं भीतर से भरना। चित्त को लीन करने के लिए इस प्रकार की श्रद्धा रखना और इसी श्रद्धा से जब हम णमोकार मंत्र का जाप करते हैं तो उसका ध्यान करते हैं तो हमें लाभ होते हैं।

श्लोक–९६

यत्रानाहितधीः पुंसः श्रद्धा तस्मान्निवर्तते।
यस्मान्निवर्तते श्रद्धा कुतश्चित्तस्य तल्लयः।।९६।।

स्वामी! जहाँ मनुज बुद्धि लगी नहीं हैं, होती वहाँ रुचि कभी उसकी नहीं है।
होती तथा रुचि नहीं सहसा जहाँ है, होता सुलीन मन ना वह भी वहाँ है।।९६।।

आचार्य कह रहे हैं कि जहाँ हमारी बुद्धि नहीं लगती वहाँ हमारी रुचि भी प्रकट नहीं होती। कष्ट के समय पर हमारी बुद्धि अगर णमोकार में नहीं लगती तो णमोकार में हमारी रुचि भी नहीं बढ़ती और अगर रुचि नहीं बढ़ती तो उसमें चित्त हमारा लीन कैसे हो सकता है। जब तक चित्त की लीनता नहीं होगी तब तक हमारे अंदर वो आस्था की दृढ़ता बनेगी नहीं और हमारे अंदर वह आनंद की प्राप्ति होगी नहीं। इसलिए अपने चित्त को लीन करते हैं, उसी णमोकार मंत्र में भावों के साथ, श्रद्धा के साथ उस णमोकार मंत्र की आराधना करने की इस प्रक्रिया को अपन पुनः स्मरण में लाते हैं।



श्लोक–९७

भिन्नात्मानमुपास्यात्मा परो भवति तादृशः।
वर्तिर्दीपं यथोपास्य भिन्ना भवति तादृशी।।९७।।

छद्मस्थ भव्य जिसको नहिं भोग भाता, सिद्धात्म भक्ति करके वह मुक्ति जाता।
बत्ती यथा अलग होकर दीप से भी, होती अहो! द्युतिमयी उस संग से ही।।९७।।

आचार्य कह रहे हैं कि जैसे बाती दीपक से अलग होकर भी दीपक रूप हो जाती है ऐसे ही अरिहंत भगवान् की उपासना करके आत्मा उन जैसा ही बन सकती है। परमेष्ठी ध्यान से ही विशुद्ध अवस्था को प्राप्त करते हैं।

ध्यान

अर्हं ये एक बीजाक्षर है, जिसके माध्यम से हम णमोकार के मंत्र के संक्षिप्त रूप को देखते हैं। ओम् यह एक बीजाक्षर है और अर्हं यह एक बीजाक्षर है। जिस तरह से ओम् में पंच परमेष्ठी निहित है, उसी तरह से अर्हं में भी पंच परमेष्ठी निहित है। हम एक ही शक्ति को भिन्न-भिन्न नामों से पुकारते हैं। आ से आदिनाथ, म से महावीर। जो आदिनाथ और महावीर के बीच में रहे वो अर्हं के बीच में रहता है। इसकी व्याख्या थोड़ी सी और विस्तारित करते हैं।

अ माने ब्रह्मा होता है, म माने महेश होता है और जब हम ब्रह्मा और महेश के बीच में आ जाते हैं तो ब्रह्मा, विष्णु, महेश हमें तीनों मिल जाते हैं। ये अर्हं भी ब्रह्मा, विष्णु, महेश यानि पूरी सृष्टि का संचालक है। जैसे ओम् में अ ब्रह्मा का प्रतीक होता है, म महेश का प्रतीक होता है उसी प्रकार से इस अर्हं में भी अ ब्रह्मा का प्रतीक है और ब्रह्म अपनी चेतना शक्ति की उस महाशक्ति को कहा जाता है जिसके माध्यम से हम स्वयं ब्रह्म स्वरूप को प्राप्त कर लेते हैं। ओम् और अर्हं में भी ये शुरुआत अ से होती है और म पे उसका अंत हो जाता है। हम देखें इस णमो अरिहंताणम्

का अ और णमो लोए सव्वसाहूणं, णम् तो एक व्यक्तित्व के रूप में लगा रहता है। साहू का ह देखें तो अ से ह तक की यात्रा। ये अ से ह तक की यात्रा यानि की पूरे के पूरे अक्षरों को समाहित कर लेना अर्थात् पूरे के पूरे विश्व के ज्ञान को अपनी आत्मा में समाहित कर लेना क्योंकि वर्णमाला अ से शुरू होती है और ह पर ही समाप्त हो जाती है। इसलिए ये पूरी की पूरी द्वादशांग जिनवाणी का सार होती है। अर्हं ज्ञान है, अगर हम इसको और देखें तो एक और महाशक्ति के रूप में कहा जाता है अल्लाह। यह अल्लाह भी इसी महाशक्ति में समाया हुआ है। अनेक-अनेक महाशक्तियों के नाम हम किसी भी अक्षर से बोल सकते हैं। जिसका कभी क्षरण नहीं हो उसका नाम ही अक्षर होता है इसलिए ये अविनाशी होता है। अक्षर को कोई बनाता नहीं है और उस अक्षर का हम अगर आलंबन लेते हैं तो हमें वो अविनाशी शाश्वत सत्य को प्राप्त करा देता है और हमें उस सत्य से मिला देता है जो अक्षर है अविनाशी है। इस अर्हं योग में उस णमोकार मंत्र की शक्तियाँ हैं, थोड़ा सा हम भीतर से महसूस करेंगे।



श्लोक–९८

उपास्यात्मानमेवात्मा जायते परमोऽथवा।
मथित्वाऽऽत्मानमात्मैव जायतेऽग्निर्यथा तरुः।।९८।।

जो आत्म ध्यान करता दिनरैन त्यागी, होता वही परम आतम वीतरागी।
संघर्ष से विपिन में स्वयमेव वृक्ष, होता यथा अनल है अयि भव्य दक्ष!।।९८।।

दो प्रकार की उपासना होती है। एक अभेद उपासना कहलाती है, एक भेद उपासना कहलाती है। इसी को संसार में अन्य दर्शनों में अद्वैत की उपासना और द्वैत की उपासना कहा जाता है। जब तक हम अपने आपमें द्वैत का भाव रखते हैं, हमें अपने अलावा कोई और भी दिखाई देता है तब तक वह द्वैत की उपासना कहलाती है। जब हमारे सामने से दूसरा गायब हो जाता है, हम केवल अपने ही द्वारा अपने ही आत्मा में अपने लिए ही अपनी उपासना करते हैं तो वो अद्वैत की उपासना कहलाती है। इसे हम कह सकते हैं– भेद से अभेद की यात्रा, एक विशेष से सामान्य की यात्रा। इसी यात्रा में आचार्य पूज्यपाद महाराज यहाँ कहते हैं कि अपनी आत्मा की, अपनी आत्मा के द्वारा इस ढंग से उपासना करो कि वह आत्मा थोड़ी सी मथ जाए। मथना जानते हो। जब आप दही से छाछ बना रहे हो तो उस समय एक मथने की प्रक्रिया होती है। डोरी को ढीली छोड़ना और डोरी को अपनी ओर खींचना। एक तरफ खींचना और एक तरफ छोड़ना, एक तरफ ग्रहण करना और बीच में एक डंडा लगा हुआ होता है। उसके माध्यम से मथने की प्रक्रिया निरंतर उस पदार्थ के अंदर चलती रहती है। उस मथने की क्रिया में जो वस्तु मथित होती है। उसमें से कुछ ऐसी चीजें निकल कर आती हैं जो उसके अंदर है लेकिन हमें दिखाई नहीं देती। दूध के अंदर भी वह मंथन हो सकता है। छाछ के अंदर भी और मंथन होते-होते ऐसे उसमें से कण निकल कर आने लगते है जिसे हम नवनीत कहते हैं। उन कणों में अलग गुणवत्ता एवं सुगंधी अलग रहेगी। उन कणों का कार्य अलग रहेगा। उसकी तासीर अलग रहेगी। वही मंथन की क्रिया अगर हम छोड़ देते हैं

और उसको हम करते नहीं हैं तो वह चीज वैसी की वैसी बनी रह जाती है और उसमें कोई भी गुणवत्ता निकल कर नहीं आ पाती।

शरीर, मन, आत्मा

आचार्य कहते हैं– आपके पास में तीन चीजें हैं, एक हमारा शरीर है, एक हमारा मन है और एक उस मन से भी परे आत्मा है। इन तीनों के बीचोंबीच में मन है, उस मन के माध्यम से शरीर का भी संचालन होता है और मन के माध्यम से आत्मा की भी क्रियाएँ होती हैं। मन के माध्यम से जब शरीर का संचालन होता है तो मन शरीर के साथ जुड़ जाता है और मन के माध्यम से आत्मा की क्रियाएँ होती हैं तो मन आत्मा में डूब जाता है। उस मन के अंदर एक ऐसा ज्ञान उत्पन्न होता है कि वह मन आत्मा को भी संचालित करे और शरीर को भी संचालित करे और उन दोनों के बीच में रहकर के ऐसा मंथन करता रहे जिस मंथन के माध्यम से कुछ सार निकल कर आए। अगर मन शरीर का मंथन करेगा तो शरीर में से कुछ सार निकलेगा। शरीर में तो जो हो रहा है, वह होता ही रहेगा, थोड़ा बहुत एडजेस्टमेंट हो सकता है। आप रोगों से मुक्त रह सकते हो। आपके लिए मानसिक तनावों से मुक्ति मिल जाएगी लेकिन सार तो उसी में से निकलेगा जिसका अस्तित्व सारभौमिक हो और जिसके अस्तित्व के साथ में उसके अंदर की गुणवत्ता प्रकट हो। ये प्रक्रिया अगर चलेगी तभी उस मन के अंदर ऐसी भावना आएगी कि हमें सार शरीर में से नहीं निकालना, वह आत्मा में से ही निकलेगा क्योंकि शरीर तो कुछ समय तक आपके साथ रहकर छूट जाएगा। शरीर के गुण धर्म आप सब जानते हैं लेकिन आत्मा के गुण धर्मो को हमने नहीं देखा, नहीं जाना और आत्मा के गुण धर्मो का मंथन नहीं किया। इसलिए अगर आत्मा का मंथन होगा तो उसमें से कुछ सार निकलेगा। ज्ञान भावनाएँ हमारे अंदर उत्पन्न होने वाले विचार ये सब मन के पास इस आत्मा के द्वारा ही पहुँचते हैं।

आत्मा में भावों का जैसा समन्वय होता है उसी प्रकार से वह भाव मन के पास पहुँचते हैं। मन अन्य भावों में अभ्यस्त होते-होते एक ऐसी स्थिति में आ जाता हैं कि वह मन बिल्कुल आत्मा के निकट हो जाता है। आचार्य कहते हैं कि वह मन, आत्मा में धीरे-धीरे डुबकी लगाने लगता है। इसे बोलते हैं अंतर यात्रा– अंतर जगत की ओर जाना, मन का आत्मा की ओर झुकना। उस मन का आत्मा में लगे हुए दोषों को **निष्कासन** करने के लिए उसका **मंथन** करना और **चिंतन** भी करना। चिंतन एक ज्ञान की परिणति है और मंथन एक उसकी क्रियात्मक परिणति है। ज्ञान की परिणति के साथ जब क्रियात्मक परिणति रह जाती है, उस समय जो सारभूत तत्त्व निकलता है,

उसी को आचार्य कहते हैं **''आत्मानुभव''**। आपको अपनी ही आत्मा की शुद्धता से जो आत्मा का अनुभव होगा वह आत्मानुभव ही आपका सबसे बड़ा मंथन है। उस मंथन को करने के लिए आप हमेशा तैयार रहें क्योंकि आपने अपने इस अनादिकाल के संसार चक्र में सब कुछ मंथन किया है, केवल इसी का मंथन नहीं हुआ है।

दृढ़ इच्छाशक्ति

आचार्य कुन्दकुन्द देव कहते हैं कि देखो हम तुम्हें जिस ओर ले जाना चाह रहे हैं वहाँ तुम्हारी गति तब होगी जब पहले तुम अपने मन में विश्वास कर लो। ये जान लो कि हम जो कर रहे हैं उसमें कोई सार नहीं है और हम जो बताने वाले हैं उसमें सार है। हमने आपके सामने सब कुछ रख दिया– मथानी रख दी, व्यवहार और निश्चय की डोरियाँ रख दीं। आपके सामने अच्छा दही भी रखा हुआ है। आपसे कहा जा रहा है कि आपको इसका मंथन करना है और इससे सार निकालना है। लेकिन आपकी दृष्टि में ये है कि मंथन का हम कष्ट क्यों उठाएँ। दही का ही सेवन कर लिया जाए। पहले उसी का आनंद ले लें। जो आपने दही का आनंद ले लिया तो फिर आपको नवनीत और घृत तक की यात्रा नहीं मिल पाएगी। आचार्य कुन्दकुन्द देव जब समयसार जैसा महान ग्रंथ प्रारंभ करते हुए चेतावनी देते हैं कि पहले अपने मन में एक विचार कर लो, तुम्हारा इंटरेस्ट जिन इंद्रिय के विषयों में लग रहा है, जिन काम-भोग की कथाओं में लग रहा है, वे सब तुम पहले अनंत बार कर चुके हो। ऐसी कोई कथा नहीं है जिसको तुमने सुना नहीं हो। ऐसे कोई इंद्रिय के विषय नहीं हैं जो तुम्हारे पहले परिचय में नहीं आए हो, जिनको तुमने भोगा नहीं हो ये पहले अपने मन के अंदर दृढ़ निश्चय कर लोगे तो जब हम तुम्हें बताएँगे उसे तुम ग्रहण कर पाओगे। हम तुम्हें ले जा रहे हैं उस एकत्व आत्मा की ओर, उस आत्मा के सारभूत पदार्थ की ओर, उस पदार्थ की ओर जाने का तुम्हारा मन तभी मानेगा जब पहले दृढ़निश्चय कर लो कि ये जो सब हमारे मन में है, यह तो कई बार हुआ है, अब हमें नया करना है। जैसे रोज-रोज नए खाना खाने की इच्छा होती है, नए-नए वस्त्र पहनने की इच्छा होती है, नए-नए त्योहारों पर हमें नए-नए उत्सव मनाने की इच्छा होती है, ऐसे ही आचार्य कहते हैं कि वह नए-नए भाव उत्पन्न करने की इच्छा करो।

हर साल दीपावली आती है, हर साल होली भी आती है, हर साल आप नए-नए वस्त्रों को

खरीदते हैं, आभूषणों को खरीदते हैं। हर साल आप अपने घर में डेंटिंग पेंटिंग करते हैं लेकिन फिर भी दीपावली आते-आते ऐसा लगने लग जाता है कि पेंट बहुत पुराना हो गया है। हर साल करते हैं लेकिन आपके अंदर ऐसा लगने लगता है कि हमने अभी कुछ किया ही नहीं है। अब दीपावली आ रही है तो ऐसा लग रहा है कि पहली बार ही अपनी जिंदगी की दीपावली आ रही है। अगर अब त्योहार आ रहा है तो ऐसा लग रहा है कि जैसे हमें त्योहार में ही सब कुछ मुनाफा होने वाला है। सारा बिजनेस, पूरी जिंदगी का इसी साल चलने वाला है। ये सब क्यों होता है? हमारी आत्मा की अंदर मोह के कारण से जिन चीजों को हम ग्रहण करते हैं, उन चीजों को ग्रहण करते-करते वो आत्मा कभी थकती नहीं है और मोह के कारण से वे चीजें पुनः-पुनः ग्रहण करने की वो इच्छा करती है। इसी को बोलते हैं– परपरिणति में उलझते चले जाना और ये अभ्यास उस आत्मा का अनादि से पड़ा हुआ है। इसलिए हर दीपावली उसे सुहावनी लगती है और हर त्योहार ऐसा लगता है जैसे जीवन में पहली बार आया हो चाहे भले ही उस त्योहार के लिए, उस दीपावली के लिए हमें महाराज का प्रवचन छोड़ना पड़े तो कोई बात नहीं, हमें क्लास छोड़नी पड़े कोई बात नहीं लेकिन दीपावली पर पुताई और सफाई नहीं छूटनी चाहिये, भले ही हमारे मन की अभी तक कोई सफाई हुई हो या नहीं हुई हो। एक भजन मैं पहले बचपन में सुना करता था।

"बैठ अकेला दो घड़ी तो तू भगवत के गुण गाया कर,
मन मंदिर में ऐ जिया तू झाड़ू रोज लगाया कर।
सोने में तूने रैन बिताई, दिन भर करता पाप रहा।
इसी तरह बर्बाद जिंदगी करता अपने आप रहा।
छोड़ कुसंगत को तू हर दम सत् संगति में आया कर।
मन मंदिर में ऐ जिया तू झाड़ू रोज लगाया कर।"

एक दीपावली तुम मनाने जा रहे हो और एक दीपावली हम तुम्हारी मनवाने जा रहे हैं। हमने जीवन में सब कुछ किया है लेकिन जीवन को गहराई से कभी देखा नहीं। यूँ ही इस शरीर के चलते जाने के साथ में जीवन का चलता जाना यह तो सामान्य बात है लेकिन जीवन को गहराई से देखना, अपनी इंद्रियों को बंद करके अपने अंदर की अनुभूति के साथ में उस जीवन को पहचानना कि जीवन की शुरुआत कहाँ से होती है, प्राण कहाँ है, आत्मा कहाँ है, उस की अनुभूति और उसकी गहराइयाँ कैसी हैं। ये जब तक हमारे ज्ञान में जिज्ञासा का विषय नहीं बनेगी, तब तक हमारे अंदर कोई विशेष

परिवर्तन नहीं आ सकता। ये परिवर्तन अगर आता है तो वह थोड़ा सा अपने अंदर एक ध्यान की प्रक्रिया करने से आता है। अपने अंदर के मनोभावों को बिल्कुल शांत करके जब मन से परे हो जाते हैं तो उस समय में हमें जो अनुभूति होती है वह अनुभूति हमें कहीं न कहीं उस आत्मा को झुलाने के लिए कारण बन जाती है। आत्मा का स्पर्शन कराने के लिए कारण बन जाती है और उस आत्मा के एकत्व विभक्त का भी ज्ञान कराने का भी कारण बन जाती है।

आत्म मंथन

हम उस अनुभूति को करने के लिए लालायित हो, मन के अंदर हमेशा ये भाव रखें, सुबह से शाम तक हम विचारों की गंदगी ही पैदा करते रहते हैं और मन हमेशा-हमेशा उन विचारों की गंदगी के अंधकार से भरा हुआ है। थोड़ा सा हम रोशनी को देखें। दीपावली की लाइटों की रोशनी तो बहुत बार देख चुके हों। भीतर अंतर आत्मा की रोशनी इसके अंदर वह ज्योति जल रही है। ऐसी जल रही है कि अनंतकाल में कितनी बार इस आत्मा ने कितने शरीरों में रहकर कितना ज्ञान, कितना दर्शन का संचार किया है लेकिन आत्मा के अंदर ज्ञान और दर्शन का भंडार कभी खाली नहीं हुआ है। जानने व देखने की शक्ति उस आत्मा की ऐसी स्वाभाविक शक्ति है कि हर पर्याय में उसने इस शक्ति का उपयोग किया लेकिन कभी भी वह इस शक्ति से रिक्त न हुआ है और न आगे इस शक्ति से रिक्त होगा। ऐसी उस स्वाभाविक शक्ति को पहचानने का माद्दा हमारे अंदर आ जाता है तो आचार्य कहते हैं कि हम अपनी आत्मा को मथेंगे और मंथन से नवनीत निकलता है। बिना मंथन के नवनीत कभी भी उस दही से नहीं निकल सकता। वो दही आपको खट्टा लगेगा, भारी लगेगा। आपके लिए अपच भी करा सकता है लेकिन जब आपके सामने वो नवनीत की सुगंधी फूटेगी तुम्हें आनंद आयेगा। नवनीत और घी, बहुत कम अंतर रहता है उस पर्याय के बीच में। अगर मोहल्ले में कहीं एक घर में घी बन रहा हो या उससे हलवा बन रहा हो तब कैसी सुगंधी फूटती है। पड़ोसी भी सोचने लग जाता है भाई यहाँ तो आज कुछ अच्छा बन रहा है। अपने आप आकर आपसे पूछता है। घी तो हमारे घर पर भी है, मगर वो सुगंधी नहीं देता। भैया शुद्धता से इस घी को बनाया गया है और शुद्ध घी में सुगंधी फूटती ही है। अशुद्ध घी में कभी सुगंधी नहीं आएगी। वो शुद्ध आत्मा का सार तत्त्व है। हम उस तत्त्व की ओर अपने आपको ले चलें, मथें।

श्लोक–९९

इतीदं भावयेन्नित्यमवाचांगोचरं पदम्।
स्वत एव तदाप्नोति यतो नावर्तते पुनः।।९९।।

देखो! विशुद्ध पद को निज में सही यों, ध्याओ उसे वचन गोचर भी नहीं जो।
पाओ अतः परम पावन मोक्ष–धाम, आना नहीं इधर लौट वहीं विराम।।९९।।

आचार्य कहते हैं, उस पद की भावना निरंतर करना है जो पद वचनों के अगोचर है। जिस पद को हम वचनों के माध्यम से कह नहीं सकते। वे पंच परमेष्ठी के पद और अपनी आत्मा का पद ये पद वचनों के अगोचर है क्योंकि इनका संबंध आत्मा से रहता है और पाँचों परमेष्ठी का वर्णन जो करने में आता है, वो ऊपर-ऊपर का होता है। अरिहंत परमेष्ठी के ३४ अतिशय पढ़ेंगे, अष्ठप्रातिहार्य गिनाएँगे, अनंतचतुष्टय की बात कर लेंगे लेकिन ये सबसे परे वह अरिहंत अवस्था होती है, शब्दों से जो नहीं कही जा सकती। सिद्ध भगवान् का थोड़ा सा गुणगान उनके आठ गुणों के माध्यम से कर लेते हैं। वे गुण भी हमारे ज्ञान में नहीं आ पाते क्योंकि वह भी वचनों के अगोचर है। इधर आचार्य, उपाध्याय और साधु परमेष्ठी के गुण भी सब उनके क्रियात्मक गुण हैं लेकिन उन गुणों के साथ में वे जिस आत्मा की साधना करते हैं उस आत्मा तक हमारा कोई भी शब्द नहीं पहुँच पाता। आत्मपद शब्दातीत है और उस शब्दातीत आत्मपद को हमने यहाँ समझाने का प्रयास किया। यहाँ हम उसके लिए भावना करने के लिए निरंतर कह रहे हैं। इससे आप उस पद को प्राप्त कर लोगे जिससे पुनः लौटना नहीं होता है, वो सिद्ध पद है, जिसे हम परमात्म पद की उपलब्धि कहते हैं। उस पद को प्राप्त करने के बाद फिर वहाँ से लौटना नहीं होता और वह पद अविचल अविनश्वर स्थिर हो जाता है। णमोकार मंत्र के माध्यम से भी उन भावनाओं को हमने अपने अंदर परिपुष्ट किया।

रत्नत्रय ही मोक्षमार्ग

जब आपका संबंध पंच परमेष्ठी से जुड़ता है, अरिहंत सिद्ध तो अपने लिए अत्यंत परोक्ष है। आचार्य, उपाध्याय साधु, परमेष्ठी इनसे जब अपना संबंध जुड़ता है तो उनसे भी हमको एक शक्ति मिलती है। एक गति मिलती है और उनके माध्यम से हम आगे बढ़ने की एक हिम्मत कर पाते हैं। उनके माध्यम से अपने अंदर एक ऐसी ऊर्जा प्राप्त होती है, जिससे हम स्वयं समझ सकते हैं कि जो अरिहंत और जिस सिद्धपद की हमें प्राप्ति करनी है उस पद की प्राप्ति करने का रास्ता इसी तरह से होकर जाता है। लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए उससे पहले हमें उस रास्ते को भी देखना पड़ता है। मोक्ष में जाने का रास्ता एक ही है। बाहर से हमें कितनी विभिन्नताएँ दिख सकती हैं। ये आचार्य बैठे हैं, ये उपाध्याय बैठे हैं, ये साधु बैठे हैं। बाहर कोई मोक्ष मार्ग नहीं है। मोक्ष का जो मार्ग है वहाँ पर कोई भिन्नता नहीं है, वहाँ पर सब एकता है। सबकी आत्मा में रत्नत्रय है और वो सब रत्नत्रय की आराधना कर रहे हैं। वो रत्नत्रय ही मोक्ष का मार्ग है। वो एक ही रास्ते से सबको जाना पड़ता है, चाहे आप आज तैयारी करो, चाहे अगले जन्म में करना, चाहे चार जन्म के बाद करना। अगर कहीं भी मन के अंदर ये भावना आई है कि हमें संसार के दु:खों से मुक्ति मिले, हमें कर्म के बंधनों से मुक्ति मिले, हमारा संसार से यह जन्म-मरण का चक्र छूट जाये तो आपको इसी रास्ते से ही गुजरना होगा। देर सबेर जब भी आपका मन बने, आपके लिए बिल्कुल छूट दे रखी है। किसी भी तीर्थंकरों ने आपको बांधा नहीं, सब तीर्थंकर बस रास्ता बनाकर के चले गए। कदम के निशा बनाकर चले गए। अब तुम्हें उन कदमों पर चलना है। आपको स्वयं अपने कदम आगे उठाना है। आप कितना भी भटक लो, कहीं भी रह लो, दुनिया में किसी भी प्रकार के विकल्प कर लो, किसी से कितने भी संबंध जोड़ लो अगर आपको संसार के दु:खों से मुक्ति मिलेगी तो इसी रास्ते से होकर मिलेगी क्योंकि बाहर के रास्ते अलग-अलग दिखाई दे सकते हैं लेकिन भीतर का रास्ता एक ही है। आत्मा की आराधना का रास्ता, तरीका एक ही है और उस आत्मा की आराधना करने के लिए आपको थोड़ा सा यत्न- प्रयत्न जरूर करना पड़ेगा। बिना प्रयत्न के आपको ये मोक्ष का रास्ता नहीं मिलेगा।

श्लोक– १००

अयत्नसाध्यं निर्वाणं चित्तत्त्वं भूतजं यदि।
अन्यथा योगतस्तस्मान्न दुःखं योगिनां क्वचित्।।१००।।

रे आत्म तत्त्व यदि भौतिक ही यहाँ हो, तो मोक्ष, यत्न बिन ही सहसा अहा! हो।
ऐसा न हो, तब सदा तप से सुमुक्ति, योगी दुखी न, जब जागरती सवशक्ति।।१००।।

निर्वाण बिना प्रयत्न के कभी भी संभव नहीं है क्योंकि जिनकी रुचि केवल भौतिक पदार्थों में लगी हुई है जो केवल भौतिक शरीर तक ही अपना विचार रखते हैं, उनके लिए ये निर्वाण अयत्न साध्य हो सकता है। उन्हें लगता है जब तक शरीर है तब तक अपना जीवन है और शरीर के बाद कुछ नहीं है, इसलिए शरीर का छूट जाना ही निर्वाण है, ऐसा भी लोग कह देते हैं कि अपनी आत्म ज्योति का इस शरीर से बाहर निकल जाने का नाम ही निर्वाण है। लेकिन आचार्य कहते हैं निर्वाण ऐसे नहीं होता। इस भौतिक शरीर से इस प्रकार मुक्ति नहीं मिलती। निर्वाण के लिए इस भौतिक शरीर को छोड़ने की प्रक्रिया है, उस प्रक्रिया को हमें करना है और उसके करने के लिए एक योग करना। योग का मतलब अपने मन–वचन–काय को अपनी आत्मा से जोड़ना। अगर अपने मन-वचन-काय, अपने शरीर से ही जुड़े रहेंगे तो आपको कभी भी दुःख से मुक्ति नहीं मिलेगी। योगियों को दुःख से मुक्ति मिलती है क्योंकि वो शरीर के स्तर से ऊपर उठ जाते हैं। उनके मन के अंदर जो दुःख की अवधारणा रहती है वो उस दुःख की अवधारणा को ही छोड़ देते हैं और उनके लिए दुःख जैसी कोई चीज नहीं होती। धीरे-धीरे योगियों का स्तर इस रूप में पहुँच जाता है कि उनके मन में दुःख क्या है ये कोई चीज ही नहीं होती।

कर्म

आप एक विचार करो– दुःख भी जो होता है वह हमारी कल्पना का होता है। हमने जो मान

लिया उस मान्यता में कहीं कोई विखंडन आ जाता है तो वह हमारे लिए दु:ख बन गया। आज हमें भोजन नहीं मिला तो हम दु:खी हो जाएँगे। ये हमारी मान्यता में, हमारे विचार में गहरा बैठा हुआ है। आपके विचार में यह बैठा हुआ है कि हमें भोजन मिल नहीं पाया। हमें भोजन से सुख मिलना था और अगर हमें भोजन से सुख नहीं प्राप्त हुआ तो यह हमारे लिए दु:ख का कारण होगा। ये तो आपकी बात हो गई। अब जो योगी होते हैं उनके अंदर भोजन के अभाव होने पर भी दु:ख की कल्पना नहीं आती क्योंकि वह भोजन से सुख माँगते नहीं और भोजन के नहीं मिलने पर भी दु:खी नहीं होते। उनके सामने उससे भी परे उससे भी बढ़कर के एक चीज होती है। उन्हें मालूम है कि हमें जो कुछ भी मिल रहा है वो हमारे कर्म के कारण से मिल रहा है। अगर उस कर्म में व्यवधान आ गया तो इसका मतलब है कि वह कर्म हमारा फल देकर के चला गया। बाहरी क्रिया में हमें ये देखने में आया कि हमें भोजन नहीं मिला मगर उससे भी भीतर खुशी की बात है कि उस कर्म की निर्जरा हो गई। जो अंतराय कर्म हमारे अंदर बैठा था उस कर्म की निर्जरा हो गई। अगर भोजन का लाभ नहीं हुआ तो कोई बात नहीं क्योंकि वह आत्म साधना में और सहायक होगा। भोजन के अभाव में भी वह आत्म साधना करेगा। उसके अंदर एक खुशी का भाव उत्पन्न हो जाता है। अलाभ में भी लाभ का भाव होना। भोजन शरीर के लिए थोड़ी सी संतुष्टि देने वाला था, नहीं मिला कोई बात नहीं लेकिन उसमें लाभ क्या मिला? आज हम क्षुधा परिषह जीतेंगे ये सबसे बड़ा लाभ है। हमारे अंतराय कर्म का क्षय हो गया। हम अपनी असाता वेदनीय कर्म को जीतेंगे तो ये जो लाभ अंदर से मिलता है, इस लाभ के कारण से योगी को दु:ख से ऊपर उठने की एक मानसिकता बन जाती है।

आपके मन में जो भी दु:ख आता है वो आपकी केवल मानसिकता के कारण आता है। इस मानसिकता की पूर्ति नहीं हुई तो आप झटपटाने लग जाते हों। आपको उस समय पर यह ज्ञात रहे कि हो भी सकता है नहीं भी हो सकता है तो आपकी मानसिकता उसी रूप में एडजस्ट हो जाएगी। जैसे मान लो आप भोजन करने बैठे। अगर आपके लिए ये मन हो कि आज हम अंतराय के साथ भोजन करेंगे। जैसे कभी-कभी व्रती लोगों के लिए आप देखते होंगे कि उन्हें अंतराय हो गया। आप सोचते होंगे कि हमको तो अंतराय नहीं होता है, इनको अंतराय क्यों हो जाता है। आप जब उस नियम के साथ बैठोगे तो आपके लिए भी वह सावधानी से भोजन करने में आएगा और नियम होगा तो कर्म आपकी भी परीक्षा लेगा। कर्म आपके लिए भी सामने आएगा पर जब नियम

ही नहीं है तो वो कर्म भी उदय में नहीं आता जैसा चल रहा होता है वैसा चलता रहता है। अगर आपके दिमाग में यह मानसिकता हो कि आज भोजन में अगर कोई अंतराय आ जाएगा तो हम भोजन छोड़ देंगे, करेंगे नहीं तो देखो आपके लिए भी कर्म आपकी परीक्षा करने के लिए आ जाएगा। कर्म का उदय उसी कारण से निकलेगा अन्यथा वो कर्म जो भीतर बैठा है वो बैठा ही रहेगा। वो तभी निकलेगा जब इस प्रकार का आप उसके साथ में अभ्यास करोगे। अगर आपने अभ्यास नहीं किया तो कर्म आपका और बंधन को प्राप्त होता चला जाएगा और वो आपकी मानसिकता को बाँधता रहेगा। जैसे ही हमने ये महसूस किया हमें ये कर्म का अभाव हो गया तो उसमें हमें खुशी भी हो सकती है। अगर हमें कर्म का ज्ञान नहीं होगा तो दु:ख से पुन: दु:ख ही बढ़ेगा। इसलिए अंतराय करना उन्हीं के लिए कहा जाता है, जिनके मन में व्रतों की आस्था, आत्मा की आस्था दृढ़ पड़ जाती है। जिनके अंदर व्रतों की आस्था, आत्मा की आस्था दृढ़ नहीं है वे कभी भी इस अंतराय कर्म को सहन नहीं कर पाते और उनके लिए वह अंतराय कर्म आत्मा में निरंतर बना ही रहेगा। वो जब अपनी इच्छा से उदय में आएगा तब आपको चाहते हुए भी भोजन नहीं करने देगा। अगर आपने नियम ले लिया कि हम अष्टमी या चतुर्दशी को अगर कोई अंतराय आ जाएगा तो उस भोजन को छोड़ देंगे। आपने भोजन किया, अंतराय आ गया अगर बाईचांस तो वह अंतराय कर्म आपका झड़ कर के निकल गया। आप उससे मुक्त हो गए। आप सोचो कि यह तो हमने जबरदस्ती कर लिया दु:ख का काम। ये अगर आप जबरदस्ती नहीं करेंगे तो वह कर्म जो आत्मा में बंधा हुआ है वह जब अपनी शक्ति के साथ उदय में आएगा तो वह जब आप खाने बैठोगे वह आपको भोजन करने नहीं देगा। आपके लिए गैस ट्रबल करेगा, वह आपके गले में रोग उत्पन्न कर देगा, वह आपके शरीर में डायबिटीज उत्पन्न कर देगा। तब वह कर्म आपके सामने उदय में आएगा।

दो तरीकों से कर्मों का झरना होता है। एक तो बुद्धिपूर्वक, ज्ञानपूर्वक हम कर्मों को जला लें तो उसमें फायदा रहता है क्योंकि हमारा ज्ञान उस समय पर काम कर रहा होता है। वह कर्म अपना फल देकर के चला जाता है तो उससे हमें ज्यादा दु:ख नहीं होता, हमें खुशी होगी। देखो कभी भी हमें भोजन में अंतराय नहीं दिखता था बाल नहीं दिखते थे। आज ये नियम लेकर बैठे, आज ही हमको बाल दिख गए तो आपके लिए कहीं न कहीं वह खुशी होगी कि जो कर्म का बंध था उसकी निर्जरा हो जाएगी। आपको उससे कष्ट कम होगा। कर्म का बंध पुन: कम होगा। जब वह

अपनी शक्ति से निकलकर आएगा आप उस समय आसक्ति में पड़े होंगे और वह अपनी शक्ति दिखाएगा वह आपको खाते हुए भी खाने नहीं देगा। दो चीजें हैं। कर्मों को निकालने की या तो हम बुद्धिपूर्वक, ज्ञानपूर्वक थोड़ी सी तपस्या करते हुए अपनी शक्ति को बढ़ाते हुए कर्म निकालते हैं या फिर कर्म अपनी व्यवस्था खुद करेगा क्योंकि वह छोड़ेगा नहीं। वह जिस स्थिति में बंध गया है उस स्थिति में आपको लाकर के आपके लिए अंतराय उत्पन्न कर देगा। वह किसी रोग के माध्यम से निकलेगा, किसी कष्ट के माध्यम से निकलेगा, कोई व्यवधान देकर निकलेगा। जैसे दीवाली चल रही है, घर में खूब मिठाई बनी है। उसी समय पर कहीं आपको बुखार आ गया, जुकाम हो गया, खाँसी हो गई। आपके लिए जितना भी कुछ दो दिन का माहौल था वो सब बीमारी में चला गया। ये भी आपके अंतराय कर्म का उदय है। आपने उस अंतराय कर्म को पहले नहीं भगाया, इसलिए वह उसी समय पर आएगा जिस समय पर वह देख रहा है कि आपकी आसक्ति इसमें बढ़ रही है और वह आपके लिए व्यवधान का कारण बन जाएगा।

परीक्षा

ये कर्म का सिद्धांत आप समझो। जो कुछ भी हमारे जीवन में सामने आता है, वह इस कर्म के कारण से आता रहता है। अगर हमारे सामने कोई व्यवधान भी आते हैं तो इसी कर्म के कारण से व्यवधान आते रहते हैं। अब उस व्यवधान के समय पर मान लो आपको बुखार आ गया। भगवान् न करें कभी आए लेकिन आ गया। रोगों को हम स्वयं कई बार बुला लेते हैं और ये रोग इस ढंग से आ गए और उस समय पर अगर आपने उसको समता के साथ में सह लिया। ये विचार करके कि इस कर्म ने हमारे लिए अंतराय डाला लेकिन ये वस्तुत: अंतराय कर्म का अभाव हो रहा है। ऐसा सोचते हुए अगर आपने समता भाव से वो समय निकाल लिया तो हो सकता है, अगली दीवाली पर आपके लिए ऐसे कर्म का उदय पुन: न आए। अगर वहीं पर आप रोते रहे, तड़पते रहे, सोचते रहे, देखो घर में सब लोग मीठा-मीठा खा रहे हैं, अच्छे-अच्छे पकवान बन रहे हैं और हम बिस्तर पर पड़े हैं तो वो कर्म आपके लिए और बंधेगा और वह अगली दीपावली पर या अगले मिष्ठान के खाने के समय में वो पुन: फिर बाधक बन जाएगा। ये कर्म का सिद्धांत है। इस कर्म के सिद्धांत को अगर आप समझ लोगे तो आप कर्मों से मुक्ति

पाने के लिए अभ्यास करने लग जाओगे। आप डर कर बैठोगे कि आज अपन अंतराय का पालन करते हुए भोजन करेंगे या आज हम दो बार भोजन नहीं करेंगे केवल एक आसन करेंगे। जब कर्म अपने आप से निकलना होगा तो वो ऐसे ही निकलेगा। जैसे शरीर में कहीं कोई मवाद पड़ जाता है, फोड़ा हो जाता है। अगर हम उसको एक बार ढंग से निकाल लें तो एक बार ही कष्ट होगा और पूरा का पूरा निकल जाएगा।

कभी आपको फोड़ा हुआ है, हमें तो बहुत अच्छा अनुभव है। बचपन में जो होते रहते हैं वो तो सब भूल जाते हैं। मुनि दीक्षा के बाद में ऐसा बालतोड़ हुआ जिसके कारण से हम खड़े भी नहीं हो सकते। पूरे पैर में इतना भारीपन कि उसके कारण से आहार के लिए भी आधा घंटा खड़े नहीं रह सकते। इतना ज्यादा दर्द और पीड़ा कि पूरे शरीर में बुखार तक आ गया। अगर बालतोड़ हो गया तो पहले उसको पकने दो, पकने दो, पकने दो। सबसे ज्यादा कर्म झरते हैं तब हम कोई तपस्या अंगीकार कर लेते हैं और तपस्या के बाद में लगभग एक वर्ष तक सबसे ज्यादा कर्म झरते हैं। जैसे आप कोई नियम लोगे उस नियम के लगभग एक वर्ष तक आपकी सबसे ज्यादा परीक्षाएँ होंगी, सबसे ज्यादा कष्ट होंगे। दीक्षा लेने के बाद में पहला चातुर्मास जब सागर भाग्योदय में था तो इतने कष्ट थे कि हमें खुद ही नहीं पता कि हमने चातुर्मास कहाँ किया। पहले बुखार आता रहा। फिर बाद में बालतोड़ हो गया। आयुर्वेदिक के डॉक्टर थे उन्होंने नहीं माना। रात में उन्होंने जबरदस्ती उसको दबा दिया, वो कच्चा था उससे रातभर बुखार रहा। सुबह आचार्य महाराज को पता पड़ा कि ऐसा-ऐसा हो गया। उन्होंने कहा कि आपने ऐसा करवाया क्यों। जब मैंने कहा मना करते-करते वो नहीं माने तो मैं क्या करूँ। अब आचार्य महाराज कहते हैं अब उसको छेड़ना नहीं, अब उसको पकने दो। अब पकने, पकने में एक स्थिति ऐसी बन गई कि पाटे से नीचे पैर उठाकर नहीं रख सकते। अब वो फोड़ने लायक हो गया तो फिर उसको दबाकर उसमें से पस और कील निकलती है। अंदर से जब तक वो कील न निकले तब तक वह भीतर से ठीक नहीं हो सकता। अगर हम उसको ऊपर-ऊपर से साफ करते रहें, भीतर से जो होना होता है, होता रहता है। उसकी इस प्रक्रिया को वह डॉक्टर जानता है। एक बार कष्ट सहना पड़ेगा। एक बार जब वह भीतर से निकल जाएगी तभी भीतर से सूखेगा। यही क्रिया अपने कर्म और अपनी आत्मा के साथ रहती है। जो भी हमको सुख मिलते हैं, हम उनको भोगते रहते हैं इसलिए व्रत, संयम के दु:खो से डरते रहते हैं। बिना वजह के कष्ट उठाओ तो ऊपर-ऊपर

से हम लेप कर रहे हैं। भीतर से कर्म बंधा होता है और ये कर्म जब भीतर से निकलेगा तो एक बार आपको कष्ट होगा। एक बार कष्ट के साथ निकल गया तो उसके बाद में फिर वह हमेशा के लिए आपको कर्म से राहत मिल जाएगी। इसलिए कर्म को निकालने का भी यही तरीका है, जो फोड़े के अंदर से मवाद निकालने का तरीका होता है। थोड़ा सा कष्ट तो होता है लेकिन एक बार सफाई हो जाती है तो फिर अपने आप वह सफाई होती चली जाती है। भीतर से रिकवरी अपने आप होती चली जाती है।

ऐसे ही हमें अपने मानसिक विचार जो हमारे चित्त के विकल्प है। उनको भी दूर करने के लिए और हमें थोड़ा सा अपने अंदर आने के लिए कष्ट होता है। ध्यान दें किसी का मन नहीं लगता। कुछ नहीं करो, तुम केवल बैठे रहो। केवल सुनते रहो आँख बंद करके। जो दिख रहा है देखते रहो। जो सजगता में आ रहा है, सजगता से बस उसके साक्षी बनो। आप अगर भीतर अपने अंतरंग की चित्त वृत्तियों को कभी भी रोक सकेंगे तो इसी अभ्यास से रोक सकेंगे। मानव के सुधार का ही एक तरीका है वो अपनी किसी भी प्रकार की आदतों में अपने स्वभाव में अगर परिवर्तन ला सकता है तो वह इस प्रकार के ध्यान और योग करने से ही ला सकता है। दुनिया में कोई भी ऐसा डॉक्टर नहीं है जो आपके क्रोध को कंट्रोल कर सकें। आपके चित्त में उठने वाले विकल्पों को बचा सकें। आपके अंदर जो मानसिक तनाव उत्पन्न होते हैं उससे आपको बचा सकें। बेहोश करने की दवाई तो दे देगा लेकिन जैसे ही आप उस दवाई के असर से दूर होंगे। पुन: आपके लिए यही चिंता, वही सब व्याधियाँ उत्पन्न होने लगेगी। इसलिए सबसे बड़ी चीज होती है अगर आपको किसी रोग से मुक्ति पानी है, रोग का इलाज करना है तो सबसे पहले अपने माइंड को ट्रीट करो। अगर आपका माइंड ट्रीट हो जाएगा तो अपने आप उस क्रोध पर कंट्रोल हो जाएगा। ऐसे कई मानसिक चीजें होती हैं जो हमारे लिए परेशानी का कारण बनती है। बिना वजह की चिंताएँ भी आदमी को घेरे रहती हैं। इस सब चिंताओं पर कंट्रोल, मनोवृत्तियों पर कंट्रोल तभी होता है जब हमारा मन कुछ शक्ति से भरा हुआ हो। ध्यान के माध्यम से वो शक्ति मिलती है जिससे हमारा मन सबल बनता है। उसके माध्यम से जब मन के अंदर नकारात्मक विचारों का प्रभाव कम होने लग जाता है तो मन स्वस्थता की ओर ढलने लग जाता है।

जाप

ध्यान और जाप, ये अनेक प्रकार के मंत्रों के उच्चारण, ये सब हमारी मानसिक शांति के बहुत बड़े लाभदायक पहलू हैं और इन पहलुओं से हम हमेशा से वंचित रहें। हम जो अपने मन से करते हैं वह तो बिल्कुल ही हमारे लिए करने में नहीं आता। आपसे कोई जाप जपने को कहा जाए, आप जाप करते-करते निंद्रा में डूब जाएँगे क्योंकि उस जाप का आपको अभ्यास नहीं है। उस जाप में जो तरंगें उत्पन्न होनी चाहिए वो तरंगें आप उत्पन्न अकेले कर नहीं सकते इसलिए कभी-कभी समूह में जो जाप की जाती है, उस जाप से आपके अंदर जो परिवर्तन आते हैं वे परिवर्तन कभी अकेले करने से नहीं आएँगे। समूह में जाप करने से जो वातावरण बनता है और उस वातावरण में तरंगें हमारे लिए टकराती हैं तो हमारी मानसिकता में अपने आप एक सकारात्मक परिवर्तन, एक ऊर्जा और अपने अंदर एक विशुद्धि का भाव उत्पन्न स्वयं हो जाता है, वह प्रयास करने से भी हम अकेले करते रहेंगे तो नहीं होता। इसलिए कुछ काम ऐसे होते हैं जो सामूहिक पहले किए जाते हैं, बाद में व्यक्तिगत किए जाते हैं। जैसे जप, जप को पहले सामूहिक करो। सामूहिक जप की ऊर्जा को जब आप महसूस करने लगते हैं। तब अकेले में जप करोगे तो जप आपके लिए लाभदायक होगा और आपका जप करने में मन लगेगा और अगर आप पहले से ही जप करने बैठ गए तो आपको नींद के अलावा कुछ नहीं होगा। माला कहीं होगी, मन कहीं होगा, मंत्र कहीं होगा, तीनों चीजें अलग-अलग चलेगी। माला और मंत्र, इन तीनों की समायोजना का नाम ही जप है। जप एक ज्ञान की निकटतम प्रक्रिया है, जिसको जप में आनंद आ गया, जिसका जप में मन लग गया वो धीरे-धीरे ध्यान में भी उतर जाता है। जप हमारी मानसिकता को विशुद्ध बनाता है, मन को ऊर्जा से भरता है इसलिए सामूहिक अनुष्ठान करें। अलग से कुछ करने के लिए अलग से आयोजन करने पड़ते हैं। यहाँ रोजाना ही विधान चल रहा है। ये जप की साधना भी अपने लिए अपनी मानसिकता को प्रबल बनाने की साधना है।

श्लोक–१०१

स्वप्ने दृष्टे विनष्टेऽपि न नाशोऽस्ति यथात्मनः।
तथा जागरदृष्टेऽपि विपर्यासाविशेषतः।।१०१।।

होता यथा मरण यद्यपि स्वप्न में है, तो भी न नाश निज का परमार्थ से है।
स्वामी! तथा मरण हो जब आयु अन्त, पै देह ही बदलता, नित मैं अनन्त।।१०१।।

आचार्य पूज्यपाद महाराज एक आध्यात्मिक महाराज थे और उन्होंने कुछ ऐसे ग्रंथों की संयोजना की जिसके माध्यम से श्रावक और श्रमण दोनों ही अध्यात्म से लाभान्वित हो जाते हैं। इस ग्रंथ में निरंतर जो हमें प्रेरणा दी जा रही है कि हम अपनी देह से आत्मा को भिन्न समझकर के एक ऐसा विज्ञान अपने अंदर उत्पन्न करें जो विज्ञान हमें इस देह की नश्वरता का आभास कराता रहे और आत्मा की शाश्वत सत्ता का भी निरंतर आभास कराता रहे। आचार्य महाराज कहते हैं जैसे स्वप्न में किसी पदार्थ को देखने पर वह पदार्थ उस स्वप्न के साथ नष्ट हो जाता है। स्वप्न के नष्ट होने पर पदार्थ जरूर नष्ट हो जाता है पर देखने वाला नष्ट नहीं होता। उसी तरह से जब हमारे अंदर आत्मा और शरीर का एक विज्ञान उत्पन्न हो जाता है तो उस आत्मा के अंदर जो अभी तक स्वप्न दशा चल रही थी कि आत्मा और शरीर दोनों एक हैं और मोह के कारण से वह आत्मा को शरीरमय मानता था, उसका वह स्वप्न विनष्ट हो जाता है। उस स्वप्न विनष्ट होने पर भी वह यह नहीं सोचता कि अब हमारे पास में कुछ बचा है क्योंकि स्वप्न देखने वाला स्वप्नदृष्टा वह आत्मा तो अभी भी अनुभव में आता है। उसी तरह से उस आत्मा का निरंतर इस रूप में ये अनुभव करना कि वह आत्मा शरीर से भिन्न होते हुए भी अपने अस्तित्व को बनाए रखता है। आत्मा का वह अस्तित्व जो अनंत रूप में है, वह कभी भी छूटता नहीं, मिटता नहीं, अंत जो होता है वो इस शरीर का होता है। शरीर के अंत हो जाने से संसार का अंत नहीं होता क्योंकि संसार और कोई पदार्थ नहीं है, हमारी आत्मा के अंदर देह की आसक्ति

से उत्पन्न हुई ममता का नाम ही संसार है। इस ममत्व भाव को जैसे-जैसे वह छोड़ता चला जाता है। अपने आपको यह समझाना है कि हम अभी तक अज्ञानता से अनेक प्रकार के स्वप्नों में पड़े थे। उन स्वप्नों से हमें मुक्ति मिली और हम उस आत्मा के अनंत स्वभाव की ओर अपने आपको इंगित कर लेंगे।

परिवर्तन

सबसे बड़ा डर अगर हम देखें तो मरण का डर होता है और इस ग्रंथ में इस बात को बताया गया है कि आप मरने से न डरें। मरण का मतलब होता है केवल अपनी पर्याय को छोड़ना और जहाँ हम पर्याय के साथ द्रव्य को भी देखते हैं तो हमें पर्याय की नश्वरता का ज्ञान और द्रव्य की शाश्वतता का ज्ञान भी अपने आप होने लग जाता है। पर्याय का मतलब है परिणत होना और परिणत होना शब्द ही अपने आप में कहता है कि हमारे अंदर परिवर्तन होना आवश्यक है। दुनिया का ऐसा कोई पदार्थ आपको मालूम है जिसमें परिवर्तन न होता हो, ऐसी कोई वस्तु है जिसमें कभी परिवर्तन नहीं हुआ हो। दुनिया में ऐसा कोई पदार्थ नहीं जिसमें परिवर्तन न हो और जो परिवर्तन से डरता है वो कभी नया काम कर नहीं सकता। जब भी आपको नया काम करना होता है, नया बिजनेस करना होता है, नई सर्विस में जाना होता है तो आप सोचते हों कि हम बहुत बड़ा परिवर्तन ला रहे हैं। वो परिवर्तन कौन ला पाता है जिसके अंदर कुछ हिम्मत होती है, आत्मविश्वास होता है। आत्मविश्वास से और हिम्मत के साथ ही आप एक बिजनेस छोड़ने का और दूसरा बिजनेस करने का मन बना पाते हो। कोई भी सर्विस छोड़कर के दूसरी सर्विस करने की जो हिम्मत की आवश्यकता होती है वह हिम्मत ही आपके जीवन में परिवर्तन लाती है और उस परिवर्तन से आप एक नयापन महसूस करेंगे। परिवर्तन नहीं होगा तो नयापन भी नहीं आएगा। हम नयापन तो चाहते हैं लेकिन परिवर्तन से डरते हैं यह हमारी एक मानसिकता है जो गहरी बैठी रहती है।

हम नयापन तो चाहते हैं कि हमें रोजाना कुछ नया-नया भाव मिले। रोजाना नया एहसास हो। रोजाना नया-नया सुख मिले लेकिन परिवर्तन से डरते हैं क्योंकि परिवर्तन एक बहुत बड़ी रिस्क का काम होता है। जो चला आ रहा है भैया उसको चलने दो, डिस्टर्ब मत करो। जो

बिजनेस चल रहा है उसे चलने दो। हमें लगता भी है कि हम कुछ नया करेंगे तो कुछ नया पा लेंगे लेकिन हमारे अंदर ऐसी स्थिति बन जाती है कि जिस ढंग से अपना जीवन चल रहा है चलने दो, नई रिस्क नहीं लेंगे तो हमारे लिए नए खतरे पैदा हो जाएँगे। इस परिवर्तन से हम बचते हैं लेकिन परिवर्तन कहीं न कहीं हमें करना ही पड़ता है और हम नहीं भी चाहते तो भी परिवर्तन हमारे अंदर आता ही आता है। हमारे सामने किसी न किसी रूप में परिवर्तन आते ही रहते हैं। कुछ नहीं है तो हमारा शरीर ही हमारे सामने परिवर्तित होकर आता रहता है। हम उसके बीच में वह भेद विज्ञान नहीं देख पाते कि कब परिवर्तित हो गया लेकिन परिवर्तन तो चल ही रहा है। इसे कहते हैं यह चेंज अपरिवर्तनीय है। परिवर्तन भी अपरिवर्तनीय है। इस चेंज को हम कभी भी रोक नहीं सकते हैं और इसमें जो अपने आप को ढालता चला जाता है। वह उससे अपने मन में खेद खिन्न नहीं होता। हमारे दिमाग में सबसे ज्यादा परेशानी तब आती है, जब हमें सत्य मालूम तो है लेकिन हम उस सत्य को स्वीकार नहीं कर पाते। हम सबको मालूम है परिवर्तन होगा तो शरीर का भी परिवर्तन होगा और उस परिवर्तन के साथ में जो हमारे अंदर परिवर्तन आएगा हम जानते हुए भी उसे स्वीकार नहीं कर पाते। हर कोई व्यक्ति जानता है मरण होना निश्चित है लेकिन मरण के समय पर यह ध्यान रह जाना कि मरण होना निश्चित है, ये नहीं हो पाता। जब मरण नहीं है तब तो ध्यान रहेगा कि मरण होना निश्चित है लेकिन जिस समय में मरण की स्थिति हो उस समय में ये याद आए कि मरण होना निश्चित है इसलिए हमें डरना नहीं है। अपने आप में ये ज्ञान उस समय में उत्पन्न होना, अपने लिए एक बहुत बड़े परिवर्तन का कारण बन जाता है।

संसार का परावर्तन एक संसार का परिवर्तन कहलाता है। परावर्तन याने बार-बार। बार-बार उन्हीं-उन्हीं चीजों को ग्रहण करना और उन्हीं-उन्हीं चीजों को छोड़ना ये परावर्तन कहलाता है। इस परिवर्तन में चेंज आना, इससे ऊपर उठना, ये केवल मरण के समय में ही होता है। आप लोग इतना सुनने के बाद में भी उस मरण के समय को याद नहीं रख पाते। दुनिया में भी कई प्रकार के लोग रहते हैं, सब कुछ न कुछ धमाल करते रहते हैं लेकिन उस धमाल के बीच में भी वह अपनी आत्मा को याद कर लेता है, ये एक बहुत बड़ी चीज होती है।

मधु राजा का वैराग्य

जब रामचंद्रजी वनवास से लौटकर आ गए। अयोध्या के राजा बनने के बाद में जितने भी उनके भाई थे उनके लिए उन्होंने अलग-अलग राज्य दे दिया लेकिन शत्रुघ्न के मन में एक विचार आया कि केवल हमें मथुरा का ही राज्य चाहिए। राम ने पूछा मथुरा के राज्य में ऐसी क्या विशेषता है। बोले पता नहीं, हमारा मन होता है कि हमें केवल मथुरा का राज्य चाहिए। कभी-कभी ऐसे भी भाव आते हैं। उस भाव का भी कारण उस स्थान से कुछ न कुछ पूर्व का लगाव रहता है। जैसे राज्य बाँटे जाते हैं, उसी तरह से आचार्य महाराज कभी-कभी चातुर्मास बाँटते हैं और ऑफर देते हैं कि आप यहाँ भी जा सकते हों, आप वहाँ भी जा सकते हों लेकिन भीतर से कहीं न कहीं कुछ न कुछ मन में किसी न किसी संयोग के, संस्कार के कारण से ऐसी लगाव की भावना उत्पन्न हो जाती होगी। ये भी अपने आप में कहीं न कहीं उस स्थान के पूर्व के संयोग की बात होगी। लोग बदलते रहते हैं आप कभी किस रूप में हम कभी किसी रूप में रहे हों लेकिन कभी-कभी एक स्थान का भी संयोग बन जाता है जिस स्थान के आसपास उस व्यक्ति का आना-जाना, रहना, खाना-पीना, उठना चलता रहता है। ये सभी कुछ न कुछ उस पुराने संस्कार की देन होती है। शत्रुघ्न ने राज्य माँगा और रामचंद्रजी ने कह दिया– ठीक है आपको मथुरा का राज्य चाहिए, ले लो। लेकिन मथुरा में पहले से ही एक राजा राज्य कर रहा है और उसका नाम है मधु राजा। शत्रुघ्न कहते हैं राजा-राजा के ऊपर चढ़ाई करता है, आक्रमण करता है और उसको जीतकर के अपने राज्य में शामिल कर लेता है। मधु राजा को भी हम जीत लेंगे। रामचंद्रजी कहते हैं वह राजा बहुत बलवान् है। उसको जीतना बहुत कठिन है क्योंकि उसके पास में दैवीय शक्तियाँ हैं। शत्रुघ्न कहते हैं कि नहीं, आपके आशीर्वाद से बढ़कर के, आपकी कृपा से बढ़कर के दुनिया में कोई शक्ति नहीं है और हम उस मधुराजा को भी जीत लेंगे। आप बस केवल अपनी अनुमति प्रदान करो। रामचंद्रजी कहते हैं ठीक है आपकी इच्छा है जो मन चाहा जहाँ आपको राज्य करना है वहाँ राज्य करो। शत्रुघ्न चल देते हैं रास्ते में उन्हें पता पड़ता है कि मधुराजा अपने ही राज्य के बाहर एक स्थान पर अपनी रानियों के साथ आनंद मना रहा है और उस समय उसे राज्य से पूर्ण अवकाश है। शत्रुघ्न सोचते हैं देखो ये इतना अच्छा मौका है और इस समय पर वह दैवीय अस्त्र भी

वह अपने राज्य में रख आया है और उसके पास में कुछ भी नहीं है। उसी समय पर वो मथुरा राज्य पर आक्रमण कर देते हैं और उसको अपने कब्जे में कर लेते हैं। जब मधुराजा को पता पड़ता है, तब वह युद्धस्थल पर आकर टकराता हैं। मधुराजा सोचता है हमारा दैवीय अस्त्र तक जाने का रास्ता बंद हो गया है। शत्रुघ्न और मधुराजा के बीच में युद्ध होते-होते ऐसी स्थिति बन जाती है कि वह मधुराजा बिल्कुल छलनी–छलनी हो जाता है। शरीर उसका बाणों से छिद जाता है, बिंध जाता है। तब वह विचार करता है कि अब हमारा मरण निश्चित है और उस समय पर वह हाथी पर बैठकर युद्ध करते हुये सोच रहा है मरण निश्चित है।

मरण को भी एक स्वप्न की तरह देखना। हम थोड़ी देर उस स्वप्न के साथ अपने आपको एकाकार करते हैं और जैसे ही आँख खुलती है और स्वप्न उड़ जाता है और हम सोचते हैं कि वह क्षण कहाँ चला गया। स्वप्न की तरह ही हमें यह मृत्यु का आभास होना चाहिए। मृत्यु और जन्म के बीच में अगर कुछ स्थिति बनती है तो केवल इस स्वप्न की तरह ही बनती है। एक स्वप्न जो हम खुली आँखों से देखते हैं और एक स्वप्न हम बंद आँखों से देखते हैं। बंद आँखों से देखने वाला स्वप्न रात्रि का स्वप्न कहलाता है और जो खुली आँखों से स्वप्न देखते हैं वो क्या है! सामने मृत्यु है और उस मृत्यु और जन्म के बीच में केवल स्वप्न जैसा ही अंतर होता है क्योंकि आत्मा मृत्यु के साथ में इस शरीर को छोड़कर के नया जन्म धारण करेगी तो वैसे ही आश्चर्य चकित होगी– हम कहाँ आ गए, ये कौनसा हमें जन्म मिल गया क्योंकि आत्मा का तो अभाव होना नहीं और वो स्वप्न छूटने की तरह उसके अंदर एक आभास होना है। ये आभास अगर हमारे दिमाग में बना रहे, अगर हम रण में भी हो तो भी हम मरने से नहीं डरेंगे। राजा मधु हाथी पर बैठा-बैठा विचार करता है– जीवन अब निश्चित रूप से जाने वाला है। शत्रुघ्न की विजय हो रही है। दैवीय अस्त्र अब हमारे पास है नहीं। इसलिए मरना निश्चित है लेकिन उसे एक ख्याल आ जाता है कि मरते-मरते हम और कुछ भी कर सकते हैं और वो वहीं हाथी पर बैठे-बैठे अपने राजसी वस्त्रों को छोड़ देता है। अपने हार मुकुट फेंक देता है। हाथी पर बैठे-बैठे ही उसके मन में विचार आ जाता है– मैं इस शरीर को छोड़ दूँगा। ये शरीर मुझे छोड़े इससे पहले मैं ही इस शरीर को छोड़ दूँगा। वो शरीर को छोड़ने के लिए वहीं पर अपने ही मन में सब परिग्रह का त्याग करके और केश लोंच करने की प्रक्रिया वह हाथी पर बैठे-बैठे ही करना प्रारंभ कर देता है। कितनी बड़ी चीज होगी। कहाँ एक

राजा कुछ घंटों पहले अपनी रानियों में आसक्त था। कुछ घंटों बाद वह युद्ध करने लगा और कुछ क्षण पहले वो अपने ही हाथों से केशलोंच हाथी पर बैठे-बैठे करने लगा। ये कहलाती है क्षत्रियों की पराक्रमता। ये कहलाती है वीरोचित धर्म और इसी को कहते हैं अपने अंदर आत्म जाग्रति को बनाए रखना।

समाधिमरण

हम जीवन भर सब कुछ सुनने के बाद भी इन चीजों से अछूते रह जाते हैं। इन चीजों में हमें अपना जितना अनुदान देना होता है हम नहीं दे पाते। अंत-अंत समय में हमारे अंदर जाग्रति का भाव नहीं रहता। बस वही सबसे बड़ी हमारे साथ दुखद घटना कहलाती है। मरण के समय पर भी, रण में होते हुए भी हमारे अंदर इतना दृष्टांत याद आ जाए। इस दृष्टांत को यदि मृत्यु के समय सुना दिया जाए तो जमा हुआ खून आपका थोड़ा सा ढीला हो सकता है। फ्लो उसका बढ़ जाएगा। इन्हीं दृष्टांतों के माध्यम से ही मरण के समय आदमी के अंदर भी एक उत्साह की भावना उत्पन्न हो जाती है और वो स्वयं इस प्रकार के समाधि मरण को, सल्लेखना मरण को अंगीकार कर लेता है। इस ढंग से जब हम जीवन जीते हैं तो वह जीवन हमें मृत्यु भी अच्छी कराता है और जिसकी मृत्यु अच्छी होगी उसका अगला जन्म भी अच्छा होगा। जीवन ऐसे जियो कि कुत्ते की मौत मरना न पड़े और मरण ऐसा करो कि आगे हमें फिर दरिद्र आदि पर्यायों में जन्म लेना न पड़े। जीवन इतना अच्छा जियो कि मरण अच्छा हो और मरण इतना अच्छा हो कि अगला जन्म हमारा अपने आप अच्छा हो जाए। ये जीवन और मरण के बीच की प्रक्रिया को हम इस तरह से संयोजित कर लेते हैं तो आपको इस संसार में रहते-रहते धीरे-धीरे मुक्ति मिल रही है और वो मुक्ति मिलती चली जाती है। मुक्ति कभी अचानक से नहीं आती। संसार के दु:खों से मुक्ति हमें प्रत्यन करने से धीरे-धीरे मिलती है। वो प्रयत्न जारी रहना चाहिए। प्रयत्न अगर छूट गया तो आचार्य कहते हैं आपका अभ्यास छूट जाएगा और अभ्यास छूट गया तो आपके अंदर जो शक्ति है उस शक्ति का आप कभी भी उपयोग कर नहीं पाओगे। प्रयत्न हमेशा करना है। वही शरीर है, वही आत्मा है लेकिन जब हम थोड़ा सा प्रयत्न करते हैं, उसी शरीर के उन्हीं अंगों पर हम थोड़ा सा ध्यान लगाने का प्रयत्न करते हैं, उसी स्थान पर जब हम अपनी

ही श्वास को जोर से फेंकते हैं, उसी स्थान पर जब हम मंत्र का ध्यान करते हैं तो हमारा शरीर कितना भारी हो जाता है और कितना हल्का हो जाता है ये भी हम महसूस कर सकते हैं।

प्रयत्न के माध्यम से हमारे शरीर में परिवर्तन आते हैं। प्रयत्न के माध्यम से हमारी मानसिकता में परिवर्तन आते हैं और प्रयत्न के माध्यम से ही हम आध्यात्मिक रूप में अपने अंदर स्वयं एक प्रक्रिया के रूप में ढलते चले जाते हैं। ये सब प्रयत्न से होता है। इसलिए हमेशा प्रयत्न करो और अगर प्रयत्न में कुछ परिवर्तन आए तो उस परिवर्तन को भी स्वीकार करने का यत्न करो। उसको स्वीकार करने का अपने मन में एक भाव बनाकर रखो कि हम किसी भी प्रकार का परिवर्तन अपने अंदर महसूस कर रहे हैं तो उसको स्वीकार करना है और जो बाहरी परिवर्तन हो रहा है उसको भी स्वीकार करना है। आखिर किससे लड़ोगे। मान लो आप युवा अवस्था से वृद्धावस्था में चले गए। परिवर्तन हुआ अब इस परिवर्तन के लिए किससे लड़ोगे। इस परिवर्तन के लिए किसको आप बुरा कहोगे। आप नहीं चाहते कि हमारे अंदर बुढ़ापा आए, आप नहीं चाहते कि हमारे अंदर रोग हो लेकिन सब कुछ होता चला जाता है और उस परिवर्तन को हम आत्मसात् करते चले जाते हैं। ऐसी-ऐसी बीमारियाँ आती हैं जिनका हम नाम सुनने से डरते हैं लेकिन जब वही बीमारियाँ हमारे अंदर शरीर में हो जाती हैं तो हम उसके अभ्यस्त होते चले जाते हैं। दूसरे के लिए अगर हम सुने देखे तो हमें आश्चर्य होता है और जब वही बीमारी हमारे अंदर आ जाती है तो हम उसके अभ्यस्त बन जाते हैं। मानें हम कहीं न कहीं उस परिवर्तन को स्वीकारते चले जाते हैं और उस परिवर्तन में अगर एक बड़ा परिवर्तन लाना चाहते हैं तो हमें भीतर से कुछ निरंतर ऐसे अभ्यास करते रहना पड़ेगा। वह अभ्यास चाहे हम आपके लिए कराना छोड़ दे तो भी आपको करना है और जब तक हम कराएँ तब तक तो करना ही है। छोड़ने के बाद अगर आप करोगे तो आपके अंदर से भीतर से अपने आप जो परिवर्तन आएगा वो परिवर्तन आपको जो सुख-शांति देगा वह बाहर के किसी भी परिवर्तन से आपको मिलने वाली नहीं है। इसलिए अपनी अंतरंग में आत्मा के परिवर्तन के प्रति जागरूक होना आवश्यक है। उसी जागरूकता के लिए उस अभ्यास को थोड़ा सा बढ़ाए णमोकार मंत्र की आराधना के साथ।

श्लोक–१०२

अदुःखभावितं ज्ञानं क्षीयते दुःखसन्निधौ।
तस्माद्यथाबलं दुःखैरात्मानं भावयेन्मुनिः।।१०२।।

जो कायक्लेश बिन अर्जित आत्म ज्ञान, शीतादि कष्ट जब हो द्रुत नश्यमान।
कायानुसार सब ही नित कायक्लेश, योगी सहे सतत वे धर नग्न भेष।।१०२।।

आचार्यजी कहते हैं हम जो भी ज्ञान अर्जित करते हैं उस ज्ञान के साथ-साथ कुछ हमें दुःख की भी भावना करना चाहिए। अगर आपने किसी ज्ञान की भावना दुःख के साथ नहीं की। अगर दुःख के समय पर आपने ज्ञान की भावना नहीं की और अगर दुःख के साथ आपने ज्ञान अर्जित नहीं किया तो वह ज्ञान आपका कोई काम का नहीं। सुख से जो ज्ञान अर्जित किया जाता है और सुख में जो ज्ञान अर्जित किया जाता है वो कोई काम का नहीं होता। दुःख के साथ जो ज्ञान हम अर्जित करते हैं वो ज्ञान काम में आता है। दुनिया से उल्टा चलता है जैन दर्शन लेकिन शाश्वत सुख की प्राप्ति करने के लिए छोटे-छोटे से दुःख सहन करने की हमें आदत डालना है। जिस समय पर हमें दुःखों की प्राप्ति होती है उस समय पर ही हमें ज्ञान की भावना करना है। वह ज्ञान ही हमारे काम में आता है जो ज्ञान दुःख के साथ भावित हुआ हो। भावित माने अपनी आत्मा में उस दुःख के साथ में उस ज्ञान की भावना की गई हो, वो ज्ञान ही तुम्हारे लिए परलोक में काम आएगा और सुख से जो ज्ञान हमने अर्जित किया उस ज्ञान का कोई भी साधन परलोक में ले जाने के लिए नहीं बनता है। इसलिए आचार्य कहते हैं जो ज्ञान हमने दुःख के साथ नहीं अर्जित किया वह ज्ञान 'झीयते' माने क्षय को प्राप्त हो जाता है, नष्ट हो जाता है। सुख से प्राप्त किया ज्ञान दुःख आने पर छूट जाता है, विस्मरण हो जाता है किन्तु कष्ट साध्य ज्ञान सहज से विस्मरण नहीं होता, भूलता नहीं, याद रहता है। 'दुःख का सान्निध्य तो आपको कभी न कभी मिलेगा ही और

आपने जो थोड़े समय के लिए सुख मिला उसमें जो ज्ञान अर्जित किया वो ज्ञान आपका काम नहीं आएगा जब आपके लिए दु:ख का सान्निध्य मिलेगा। इसलिए दु:ख की इच्छा न करते हुए भी दु:ख के समय में ज्ञान की भावना करने की इच्छा जरूर करना। दु:ख कोई नहीं चाहता फिर भी दु:ख आता है और दु:ख जब आता है तो उस दु:ख आने के समय पर ज्ञान अपना काम करे इसीलिए आचार्य कहते हैं-

यथा बलम् दुखेई आत्मानम् भावेन मुनी-

जितना अपने शरीर में बल है उस बल के साथ में यथा बल, यथा शक्ति के साथ बोलते हैं। यथा शक्ति तप, यथा शक्ति त्याग, यथा शक्ति आत्मा की भावना ये यथा शक्ति होना चाहिए। जितना आप के शरीर में बल है, उस बल के अनुसार अपनी आत्मा की भावना करो। हम अभी तक शरीर की भावना करते आए, विषयों की चाहत की इच्छा करते आए। जब आपके लिए आत्मा की भावना करने में आएगा तो वो विषयों की चाह अपने आप छूटेगी। इसलिए आचार्य कहते हैं कि हमेशा दु:खों के समय पर आत्मा की भावना करो। जब हमारे लिए दु:ख आए तो हमारे लिए एक बहुत अच्छा समय आया है। ऐसा सोचो। जब हमारे लिए दु:ख आए तो हमें एक अवसर मिला है। उस समय पर हम ज्ञान से अपनी आत्मा की भावना करेंगे और वह आत्मा की भावना ही यदि हमारे लिए काम में आएगी, भवों भवों तक। जो सुख से अर्जित हुआ ज्ञान है वो सब छूट जाएगा। जैसे ही आपकी पर्याय बदलेगी। सब भूल जाओगे अगले जन्म में, कुछ नहीं याद रहेगा। न समाधि तंत्र, न णमोकार मंत्र कुछ नहीं याद रहेगा लेकिन कष्ट के समय में जो आपने णमोकार मंत्र याद किया है, कष्ट के समय में जो आपने भावना की है, कष्ट के समय पर जिस किसी भी पद का स्मरण किया है वो आपके साथ में जाएगा। ये ध्यान में रखना है। इसलिए आचार्य कहते हैं अंत समय में मरण करते समय पर कितना भी कष्ट हो लेकिन णमोकार मंत्र को नहीं भूलना। एक पद का ही अगर स्मरण रह जाता है, एक पद की भी भीतर से भावना बनी रहती है तो वो पद ही हमारे लिए परलोक में सहायक बन जाता है। उसी पद के स्मरण से दुर्गतियों से आपका बचना हो जाएगा और आपको अच्छी गति की प्राप्ति होगी। उस गति में भी सभी प्रकार के सुख मिलेंगे। केवल इस पद का आपको स्मरण रह जाएगा।

आचार्य कहते हैं जब आपके लिए सुख है तब भी इस ज्ञान की भावना करो। जब दु:ख

आए तो और ज्यादा करो। दु:ख आए तो आप चिल्लाते हो डॉक्टर के पास ले चलो। ये दवाई दे दो, वो दवाई ले आओ। कभी इस डॉक्टर को बदल दो, कभी उस डॉक्टर के पास चलो। कम से कम पेशेंट को बिल्कुल शांत रहना चाहिए। आपके घर में आपकी चिंता करने वाले सब लोग रहते हैं। आप इतने निश्चिंत हों जाओ कि हमें अपनी चिंता नहीं करना। हमारे घर के लोग जहाँ ले जाएँगे, डॉक्टर के पास, हमें फिक्र नहीं करना। आप अपनी तरफ से अपना सुझाव नहीं दो। हमें बैंगलोर ले चलो कि हमें इंदौर ले चलो, हमें अहमदाबाद ले चलो, हम अपनी तरफ से नहीं बोलेंगे। जो जहाँ ले जाए तुम्हारे रिश्तेदार, तुम्हारे सगे-संबंधी वहाँ चले जाना। लेकिन अपने मन में ये शांति का भाव रखो कि हमारे लिए सबसे बड़ी चीज जो हमने अपने जीवन में सीखा है वो है णमोकार का मंत्र, णमोकार का ध्यान, णमोकार के पदों का स्मरण। डॉक्टर भी अगर कह दे अब हम आपके लिए कुछ नहीं कर सकते हैं। आपको अब भगवान् के सहारे छोड़ दिया जाता है तो आप क्या करोगे। ऐसी भी स्थिति बनती है ना। उस स्थिति में आपके लिए सबसे बड़ा सहारा होगा। ये जो हम अभ्यास कर रहे हैं जब भीतर से थोड़ी सी हमारी चेतना बनी रहेगी तो हमें ये अभ्यास याद आएगा। अगर आपने थोड़े-थोड़े से दु:ख के समय पर ये अभ्यास को बना कर रखा तब तो आप बड़े-बड़े दु:खों को भी जीत लेंगे और उस समय पर भी ये अभ्यास काम में आएगा, जो आप आँख बंद करके महसूस करते हैं। यहाँ ओम् लिखा है, यहाँ अर्हम् लिखा है। ये सब अपनी आत्मा की भावना है। पंच परमेष्ठी की भावना यानि आत्मा की भावना। एक णमोकार मंत्र में केवल अक्षर चाहे वो ओम् हो, चाहे ह्रीं हो, चाहे अर्हम् हो या केवल अरिहंत हो या सिद्ध हो। दो अक्षर का भी एक मंत्र है सिद्ध। केवल एक अक्षर का मंत्र ॐ। जब शरीर से निकले और वो अक्षर हमें याद रह जाए या हमारे स्मरण में आ जाए तो समझ लेना तुम्हारे लिए देव गति निश्चित है। कोई भी तुम्हारे लिए नरक और तिर्यंच आदि पर्याय में नहीं पहुँचा सकता।

इतना आत्मा के अंदर ये पुण्य भाव उत्पन्न हो जाते हैं और एक बार अगर इस प्रकार से प्राण निकलते हैं शरीर से तो उस जीव को दु:ख मिलता ही नहीं संसार में, देव गति में रहेगा, सुख से रहेगा। मनुष्य गति में आएगा। वहाँ भी सुख से रहेगा। दु:ख देने वाले दूसरे लोग तो आएँगे सामने लेकिन आपको दु:ख नहीं दे पाएँगे। आपने सुना है प्रद्युम्न कुमार श्रीकृष्ण के पुत्र थे। जन्म होने के बाद ही उन्हें कहीं से कहीं ले जाया गया। उनका अपहरण

हो गया। अपहरण होने के बाद में जिसके यहाँ पर वो रहे, वहाँ सुख से रहे। कोई बात नहीं। बच्चे को क्या मालूम कौन हमारे माँ, कौन हमारे पिता, जो पालन- पोषण करें वही माँ, वही पिता। उन्हें कोई दु:ख नहीं। उनको जहाँ ले जाया गया वहाँ सुख से हैं और वहीं पर कुछ ऐसे लोग उत्पन्न हो गए, जो उनको परेशान करने लगे। उनके साथ मित्रता भी रखते। गहरी नदी में उसको उतार देते हैं। उन्हें वहाँ पर कोई भी परेशानी नहीं होती। उल्टा वहाँ से कुछ न कुछ और खजाना निकालकर लेकर आ जाते हैं। दोस्त देखते रह जाते हैं। अरे हमने तो इसे मारने के लिए नदी में उतारा था और ये वहाँ से खजाना लेकर के आ गया। उस गुफा में भेज देंगे, जिस गुफा में जानवर हो। वहाँ से निकलकर आ जाएँगे। दु:ख देने वाले दु:ख देंगे लेकिन अपने को दु:ख नहीं मिलेगा क्योंकि अपना एक बार बस इस ढंग से प्राण निकले, जिस ढंग से आचार्य कह रहे हैं अरिहंत, सिद्ध, ओम्, अर्हम् कुछ भी याद रह जाए। णमोकार के बीजाक्षरों का अगर आपको अभ्यास बना रहेगा तो ये अभ्यास आपके लिए मरण समय में काम आएगा। सब लोग मरण के समय में मुनि महाराज के पास तो पहुँच नहीं सकते हो। मरण के समय किसी भी हाल में रहो लेकिन अपने अंदर ये ध्यान रखो कि हम इस मंत्र को न भूलें और इस णमोकार की आराधना को विस्मृत न करें। ये हमारे ध्यान में रहेगा तो आचार्य कहते हैं आपका सुख कहीं नहीं गया। जो होना है वो तो होगा ही लेकिन भीतर से इसका अपने अंदर विश्वास रखो।

तपस्या करके तो स्वर्ग कई लोग प्राप्त कर लेते है। व्रत, नियम, संयम का पालन करके भी स्वर्ग कई लोग प्राप्त कर लेते हैं लेकिन ध्यान के साथ में स्वर्ग को जो प्राप्त करता है उसके लिए शाश्वत सुख अवश्य मिलता है। शाश्वत सुख माने सिद्धों का सुख। अपनी आत्मा का अव्याबाध सुख। ऐसा कहा गया तो हम तपस्या करना छोड़ दें तो क्या व्रत, नियम, संयम लेना छोड़ दें। इसका अर्थ ये है कि व्रत, नियम, संयम, तप में जो कर्म की निर्जरा होती है उससे भी कहीं अधिक निर्जरा ध्यान करने से होती है। आत्मा के ऊपर जो संस्कार व्रत, नियम, तप, संयम से पड़ता है, उससे भी ज्यादा आत्मा के ऊपर जो संस्कार पड़ता है, वो ध्यान के द्वारा पड़ता है इसलिए तप में भी सबसे बड़ा तप है ध्यान का तप। आपसे सबसे बड़ी तपस्या कराई जा रही है। कम नहीं समझना अपने आपको। ये समझना कि तपस्या का सारभूत ध्यान है उसको हम कर रहे हैं जो स्वाध्याय से भी बढ़कर है। स्वाध्याय को भी तप कहा है, ध्यान

को भी तप कहा है लेकिन ध्यान अंतिम तप है। मान लो आपने स्वाध्याय से ज्ञान अर्जित कर लिया। अब उस ज्ञान की अगर भावना नहीं की, उस ध्यान के माध्यम से तो वह ज्ञान आपके कभी भी कोई काम आने वाला नहीं है। ध्यान के द्वारा जिसने अपने कर्मों की निर्जरा की, ध्यान के द्वारा जिसने अपने आत्मा की भावना की उसकी वो भावना शाश्वत हो गई। वो अंकित हो गई, उसकी आत्मा पर वो टंकोत्कीर्ण हो गई। टंकोत्कीर्ण माने टांकी से जैसे किसी चीज को ऊकेर दिया जाता है तो वह हमेशा उस पर बनी रहती हैं, आकृति, ऐसी ही ध्यान के समय में अगर हमने अपने टंकोत्कीर्ण ज्ञायक स्वभाव की भावना की या ध्यान के समय पर हमने पंच परमेष्ठी की भावना की तो वो हमारे लिए टंकोत्कीर्ण हो गई। स्वाध्याय से कभी टंकोत्कीर्ण नहीं होगी। कितनी बार आप कहोगे हमारा स्वभाव ज्ञायक है। उससे वो आत्मा के ऊपर कोई असर नहीं पड़ेगा। असर तब पड़ेगा जब आप ध्यान में उस ज्ञायक स्वभाव को अपनी आत्मा पर अंकित करेंगे।

इसलिए आचार्य कहते हैं- स्वर्ग तो मिलना निश्चित है क्योंकि पंचम काल में तो मोक्ष होना नहीं,स्वर्ग ही मिलना है। श्रावक भी स्वर्ग में जाएगा और मुनि महाराज भी स्वर्ग में जाएँगे। तपस्या करने वाले भी स्वर्ग में जाएँगे और बिना तपस्या करने वाले भी स्वर्ग में जाएँगे। ज्ञान रखने वाले भी स्वर्ग में जाएँगे और ध्यान करने वाले भी स्वर्ग में जाएँगे लेकिन एक अंतर जरूर होगा जिन्होंने ध्यान के माध्यम से स्वर्ग की प्राप्ति की है तो उन्हें नियम से परलोक में आगे आने वाले समय में उस शाश्वत सुख की प्राप्ति होगी। ये यहाँ पर बताया जा रहा है। सबसे बड़ी महत्ता ध्यान की है। उससे आप डरते हो। कई बार ऐसा लगता होगा। महाराज क्या एक दम से ध्यान में बैठ जाते हैं, बिल्कुल सिर घूमने लग जाता है। हम हैं कि नहीं यही पता नहीं रहता। उसी का नाम ध्यान है। जब आप बिल्कुल निश्चिंत हो जाते हैं, चिंता मुक्त हो जाते हैं और उस समय पर आपको अपने भी शरीर का ख्याल नहीं रहता, इसी का नाम ध्यान है। उस ध्यान के समय पर हम जिन मंत्रों का आलंबन लेते हैं, जिन क्रियाओं का आलंबन लेते हैं वो सब हमारे लिए एकाग्र करने वाली क्रियाएँ होती हैं वो सब हमारे चित्त पर असर डालती है। इसलिए आचार्य कहते हैं- सबसे ज्यादा महत्ता ध्यान की है। ध्यानयोग, योग माने जुड़ना ध्यान से अपनी आत्मा में जुड़ना। ध्यान के माध्यम से अपनी आत्मा के निकट पहुँचना, ध्यान के माध्यम से उन णमोकार के पदों का स्मरण करना।

ये ध्यान योग करते-करते जिनको स्वर्ग मिलेगा तो उन्हें स्वर्ग में भी सुख मिलेगा और जब वो स्वर्ग से मनुष्य पर्याय प्राप्त करेंगे तो वो ही बड़े-बड़े सेठ बनेंगे, चक्रवर्ती बनेंगे, बड़े-बड़े राजा बनेंगे, इस ध्यान के द्वारा अर्जित किए गए पुण्य के कारण से और पाप की निर्जरा करने के कारण से।

आपके लिए बहुत बड़ा अनुष्ठान निरंतर चल रहा है। जप भी चल रहा है, ध्यान भी चल रहा है। ज्ञान भी चल रहा है और आपके इस अनुष्ठान के माध्यम से आपके कर्मों की खूब निर्जरा हो रही है। खूब आपको पुण्यबंध हो रहा है। थोड़ा बहुत हमको भी हो रहा होगा। कराने वाले को भी कुछ मिलता होगा, हमें नहीं भी मिले तो कोई बात नहीं लेकिन आपके सुख में कहीं कोई कमी न आए। ये बराबर ख्याल रहता है और इसीलिए इस प्रकार के जो कार्य भले ही आप लोगों के लिए थोड़ा सा कठिन है। कठिन लगे मगर जरूर करें। पूरा समाधि तंत्र पढ़ने के बाद में सार ये निकल रहा है कि दु:ख से हमको डरना नहीं और अगर दु:ख के समय पर हमारे लिए ये धर्म–ध्यान की कोई बात आ जाए, दु:ख के समय पर हमारे लिए आत्मा की भावना करने की कोई बात आ जाए तो ये हमारे लिए और उस सबसे बड़ी सौभाग्य की बात है इसलिए हमें दु:ख से डरना नहीं। ये मेंटीलिटी भी अगर आपकी बन जाएगी वो भी आपके लिए बहुत बड़ी उपलब्धि हो जाएगी क्योंकि दु:ख के समय पर भी हम आत्मा की भावना करेंगे तो वह दु:ख हमारे लिए सहयोगी हो गया वरना सुख में कौन करता है।

कबीरदास ने कहा है सुख में सुमिरन सब करें, दु:ख में करें न कोय। जो दु:ख में सुमिरन करे तो दु:ख काहे का होय। देखो थोड़ा सा बदल गया भाव। सुख में तो सब करते रहते हैं भगवान्, दु:ख में करे न कोय। ये बात यहीं से मिलती है। दु:ख में कोई भगवान् की भावना नहीं करता। अगर आप दु:ख में भगवान् की, दु:ख में अपनी आत्मा की भावना करें तो आपके लिए वो जो दु:ख आगे मिलने वाला है वो कभी प्राप्त न हो। दु:ख के संस्कारों का क्षय इसी ध्यान के माध्यम से होता है।

श्लोक–१०३

प्रयत्नादात्मनो वायुरिच्छाद्वेषप्रवर्तितात्।
वायोः शरीरयन्त्राणि वर्तन्ते स्वेषु कर्मसु।।१०३।।

विद्वेष राग करता यह ज्यों हि जीव, त्यों हि चले पवन भी तन में अतीव।
औ वायु से सकल अङ्ग उपांग सारे, होते स्वकार्य रत नौकर से बिचारे।।१०३।।

आचार्य कहते हैं आत्मा अपने स्वभाव से भिन्न है, शरीर का स्वभाव भिन्न है और बीच में जिस मन का संयोग रहता है उसका स्वभाव भी भिन्न हैं। इन तीनों की भिन्नता होते हुए भी एकांत रूप से इन्हें भिन्न नहीं मानना। स्वरूप की अपेक्षा से ये तीनों में भिन्नता है किंतु संसारी दशा में जब ये तीनों एक साथ रहते हैं तो इसी से तीनों का संचालन चलता है। आत्मा का संचालन भी शरीर से चलता है और शरीर का संचालन भी आत्मा से चलता है। जब तक आपका ये शरीर है, तभी तक आत्मा इस शरीर में है। शरीर को आपने मिटा डाला तो आत्मा भी इस शरीर से चली जाएगी। जब तक आत्मा है तभी तक इस शरीर का संचालन चल रहा है। इसलिए आत्मा का संचालन भी शरीर से है और शरीर का संचालन भी आत्मा से है। आत्मा और शरीर के बीच में जो प्रक्रिया होती है उस प्रक्रिया को यहाँ पर एक संबंध के तरीके से बताया गया है कि सबसे पहले आत्मा के अंदर कुछ प्रयत्न उत्पन्न होते हैं। प्रयत्न का अर्थ होता है कुछ प्रयास। ये प्रयत्न अपनी आत्मा के अंदर कोई इच्छा या द्वेष के रूप में उत्पन्न होते है यानि आत्मा में किसी भी काम को करने की या तो इच्छा उत्पन्न होगी या उस काम से दूर हटने के लिए द्वेष की उत्पत्ति होगी। ये इच्छा और द्वेष की प्रवृत्ति होने से ही आत्मा के अंदर एक प्रयत्न उत्पन्न होता है। सबसे पहले करंट जो शुरू होती है वो आत्मा के अंदर इच्छा भाव की उत्पत्ति होने से। कोई भी काम आप करते हैं, आपको शरीर के साथ में कार्य दिखाई देता है लेकिन इच्छा तो आत्मा की होती है। आप यहाँ बैठे हैं, शरीर बैठा है कि

आत्मा की इच्छा से बैठे हो। बोलो, आत्मा की इच्छा होगी तो ही आप यहाँ बैठे हों। आप उठने का भाव करते हो, हमें यहाँ से उठना है। कैसे उठेगे। आत्मा इच्छा करेगी कि हमें शरीर को यहाँ से उठाना है।

आपको भोजन करने का भाव होता है? कैसे होगा? शरीर के अंदर उस आत्मा की इच्छा का प्रयत्न सबसे पहले उत्पन्न होता है। ये नहीं समझना कि शरीर भोजन कर रहा है। आत्मा कुछ नहीं कर रही है। शरीर तो भोजन कर रहा है लेकिन आत्मा इच्छा कर रही है। राग की प्रणाली, इच्छा की प्रणाली और वो इच्छा का प्रयत्न हुए बिना आपके मुँह में कोई जबरदस्ती भोजन डाल नहीं सकता। अगर मुँह में आपके किसी ने भोजन रख भी दिया तो भीतर तक कौन ले जाएगा, गले के नीचे कौन उतारेगा। वो आत्मा की इच्छा के बिना भोजन गले के नीचे नहीं उतरेगा।

इसलिए आचार्य कहते हैं जो प्रयत्न भीतर से होता है, वो प्रयत्न आत्मा का है। हम सुन रहे हैं। यह सुनने का भी एक प्रयत्न है? देखना भी एक प्रयत्न है। जब हमें देखना है तो आँखें खोलनी पड़ेगी। सुनना है तो कान लगाने पड़ेंगे। ये शरीर का प्रयत्न बाद में उत्पन्न होता है। पहले आत्मा का प्रयत्न उत्पन्न हो जाता है। वो यहाँ बता रहे हैं कि आप लोग एकांत रूप से ऐसा नहीं मान लेना कि आत्मा और शरीर बिल्कुल अलग-अलग हैं। यहाँ शरीर है, यहाँ आत्माएँ हैं। उससे एकांत की अवधारणाएँ बन जाएँ इसलिए यहाँ पर उस एकांत की स्थापना करने के लिए आचार्य अंत में एक श्लोक देते हैं। स्वभाव से तो सबके स्वभाव भिन्न-भिन्न हैं। शरीर का स्वभाव पुद्गल रूप हैं जड़ रूप हैं, आत्मा का स्वभाव चेतन रूप है। स्वभाव से भिन्नता होते हुए भी ये सब चीजें आपस में इस ढंग से जुड़ी हुई है कि एक के संचालन से दूसरे का संचालन चलता है और एक चीज में डिफेक्ट आता है तो दूसरी चीज में भी आ जाता है। आपके शरीर में रोग होगा तो आपका मन रुग्ण हो जाएगा और मन रुग्ण हो जाएगा तो आत्मा में भी निराशा उत्पन्न हो जाएगी। अगर आपकी आत्मा में हताशा या निराशा उत्पन्न हो गई तो वो निराशा भी शरीर में आ करके शरीर के अंदर रोग उत्पन्न कर देगी। दोनों चीजें ध्यान रखना। शरीर के अंदर रोग उत्पन्न होने से भी आत्मा के ऊपर प्रभाव पड़ता है और आत्मा के अंदर इस प्रकार की निराशा या हताशा उत्पन्न हो जाने से भी शरीर के अंदर रोग उत्पन्न हो जाते है। ये दो प्रकार से शरीर और आत्मा का संचालन चलता है।

आचार्य देव कहते हैं कि सबसे पहले आत्मा का प्रयत्न इच्छा के रूप में, द्वेष के रूप में होता है। दो चीजें इसलिए रखी हैं या तो हम किसी काम को करना चाहते हैं या नहीं करना चाहते तो करने की इच्छा और नहीं करने रूप द्वेष की प्रवृत्ति ये दोनों ही इस संसारी आत्मा के अंदर निरंतर चलती रहती है। इसी से आत्मा के अंदर एक वायु उत्पन्न होती है। इच्छा और द्वेष की प्रवृत्ति से आत्मा के शरीर में एक वायु उत्पन्न होती है। वायु जानते हो, शरीर में पूरा संचालन वायु से ही होता है। शरीर में रक्त का घूमना, जो शरीर में बनने वाले तत्त्व हैं, उन तत्त्व का अपने-अपने स्थान पर पहुँचना ये सब वायु के माध्यम से होता है और वायु के माध्यम से इस शरीर में सब क्रियाएँ होती हैं। भोजन को लेना, पाचन होना, निगलना सब कुछ वायु के माध्यम से ही होता है। पूरा संचालन, पूरा शरीर वायु तत्त्व के ऊपर निर्भर है। उसी को यहाँ पर लिखा है कि हमारी इच्छा और द्वेष की प्रवृत्ति के कारण से शरीर में एक वायु उत्पन्न होती है और उस वायु से ये शरीर रूपी यंत्र का या इस मशीन का काम अपने-अपने अंगों में संचालित हो जाता है। ये शरीर अपने-अपने कर्मों में वर्तन करने लग जाता है। इसको कब, कौनसी, कहाँ, कैसी क्रिया करनी है, ये उस आत्मा की इच्छा से उत्पन्न हुई वायु के माध्यम से शरीर में क्रिया होती है। इस शरीर और आत्मा का विज्ञान यहाँ अंत में बता दिया गया है। आप जैसी इच्छाएँ करेंगे, वैसी ही शरीर में वायु का प्रकोप होगा और वायु का संचालन होगा। अगर आप द्वेष भाव करेंगे, आपके अंदर निराशा उत्पन्न होगी तो शरीर में भी इस प्रकार के रोग उत्पन्न होंगे कि वे शरीर के लिए हानिकारक बन जाएँगे। आपकी आत्मा में क्रोध उत्पन्न होगा तो शरीर में भी आग उत्पन्न होगा, वो अमाशय आदि जो कोमल अंग होते हैं उनको जला देती हैं। एक पेप्टीक अल्सर होता है, जिनके अंदर क्रोध ज्यादा रहता है, दबा हुआ रहता है, व्यक्त नहीं कर पाते या भीतर से ईर्ष्या रहती है, उसकी अभिव्यक्ति नहीं कर पाते तो वे अल्सर के रूप में अभिव्यक्त हो जाती है। ये शरीर का और आत्मा का, ऐसा विज्ञान है। आत्मा के अंदर कोई भी भाव उत्पन्न होता है तो वो शरीर पर इफेक्ट डालता है। अगर आप अच्छे शांति के भाव आत्मा में रखेंगे, सौम्य साम्य भाव रखेंगे तो शरीर में भी सौम्यता आएगी, साम्यता आएगी। आत्मा के अंदर कषाय भाव होंगे तो शरीर के अंदर भी इस प्रकार की रोगात्मक परिणति बनने लग जाती है।

हमारा शरीर रूपी यंत्र इस आत्मा के माध्यम से चल रहा है इसलिए आत्मा ड्राइवर है और शरीर उसको चलाने के लिए एक यंत्र है। यूँ कह लें आत्मा मालिक है और शरीर उसका नौकर है। हमारा शरीर हमारा नौकर है कि हमारी आत्मा हमारा नौकर है, ये अपने को थोड़ा सा विचार करना है। वस्तुत: आत्मा मालिक है, शरीर नौकर है लेकिन आदमी की स्थिति ऐसी बन गई है कि आत्मा नौकर हो गया है तथा ये शरीर उसका मालिक बन गया है। शरीर को जब जो चाहिए आत्मा के लिए उसे देना पड़ता है। शरीर माँग करता है तो आत्मा उसकी पूर्ति कर रही है। आत्मा अपने अनुसार शरीर नहीं चला रही है शरीर अपने अनुसार आत्मा को चला रहा है। शरीर के अंदर इच्छाएँ इस प्रकार से जन्म लेती हैं कि वो आत्मा को शरीर की इच्छा का दास बनना पड़ता है। अहितकारी चीजों का भी सेवन करता है। हमें आदत पड़ गई है अच्छा-अच्छा खाने की, मीठा-मीठा खाने की, स्वादिष्ट खाने की, आत्मा को वैसा उस शरीर को खिलाना पड़ता है। आत्मा नहीं खा रही है लेकिन वो शरीर को खिलाती है। शरीर में स्वाद आ रहा है, आत्मा को स्वाद लेना पड़ता है। शरीर के लिए वो आत्मा संचालित होती है और वो जब आत्मा मालिक बन जाती है, तब आत्मा कहती है शरीर तुझे जैसा दे रही हूँ वैसा ले ले, बीच में बोलने का नहीं। तब आत्मा उस शरीर को चलाती है किंतु जब वो आत्मा दास बन जाती है तो वो सामने रखी हुई चीज को देखकर के लालच करती है। आत्मा इस शरीर के लिए और उसे अभ्यास पड़ा है मोह के कारण से ऐसा करती है कि हाँ इन चीजों से ही हमें अच्छा लगेगा। इनमें ही हमें सुख मिलेगा तो वह आत्मा शरीर का दास बन जाता है। शरीर का मालिक नहीं रहा। अपनी आत्मा को मालिक बनाना और शरीर को दास बनाना है। ये दोनों भाव आपके अंदर तभी आएँगे, जब ये समझें कि आत्मा शरीर को चलाने वाला मालिक है और शरीर इसको चलाने के लिए नौकर के समान है।

श्लोक–१०४

तान्यात्मनि समारोप्य साक्षाण्यास्तेऽसुखं जडः।
त्यक्त्वाऽऽरोपं पुनर्विद्वान् प्राप्नोति परमं पदम्।।१०४।।

निस्सार दैहिक विवर्त समूह को भी, 'आत्मा' कहे अबुध लोक सदा प्रमोही।
स्वामी! वशी सुबुध तो पर को विसार, होते सुशीघ्र दुख पूर्ण–भवाब्धिपार।।१०४।।

अंत में उपसंहार करते हुए बताए देते हैं कि आत्मा की तीन प्रकार की स्थितियाँ हैं बहिरात्मा, अंतरात्मा और परमात्मा। जो आत्मा और शरीर को एक मानकर के ही चलता है और आत्मा को भूल करके शरीर को अपना सब कुछ मानता है वह बहिरात्मा कहलाती है। उसकी आत्मा बहिररूप इस शरीर में इतनी एकत्व को प्राप्त है कि वह आत्मा अपने अस्तित्व का ख्याल नहीं रखते हुए केवल शरीर को ही अपना सब कुछ मानता है, उसे कहते हैं बहिरात्मा। अंतरात्मा जैसे कि अपना ये शब्द है अंतर, अंतर डाल दो आत्मा के अंदर, अंतरात्मा बन जाओगे। अंतर का मतलब एक बीच में भेद डाल दो, अंतर माने जिसने अपनी देह और आत्मा के बीच में भेद डाल दिया हो। भेद रेखा जिसने अपनी बुद्धि में खींच ली हो, उसका नाम है अंतरात्मा। परमात्मा वो जिसने देह से अपनी सभी वृत्तियाँ छुड़ाकर के केवल अपने ही आत्म स्वरूप में रमण कर के अपनी आत्म स्व रूप की प्राप्ति कर ली हो, उसका नाम है परमात्मा। ये तीनों आत्माएँ, तीनों दशाएँ हमारे अंदर हैं और हमारे विचारों पर निर्भर है। हम बहिरात्मा है कि अंतरात्मा है, पहले ये विचार करना है। पहले ये नहीं सोच लेना कि हम परमात्मा हैं। पहले हम बहिरात्मा है कि अंतरात्मा। अगर बहिरात्मा है तो आपके लिए हमेशा देह में ही सुख-दुःख और देह में ही एकत्व बुद्धि रहेगी। अंतरात्मा है तो हम समझेंगे कि आत्मा का ज्ञान, दर्शन स्वभाव अलग है और शरीर का ये सात धातुओं के रूप में परिणमन होने का स्वभाव अलग है। इन दोनों के बीच में जब भेद रेखा आ जाती है तो हम उस शरीर को अपने ढंग से संचालित करने लगते हैं। जो मोही होते हैं वो शरीर में ही आत्मा

को आरोपित कर देते हैं और जो निर्मोही होते हैं वे आत्मा को अलग और शरीर को अलग अनुभव में लाते हैं इसी का नाम है अंतरात्मा। अंतर माने भेद डाल दो आत्मा के अंदर कि शरीर अलग है और आत्मा का स्वभाव अलग है। ये जिसमें भेद ज्ञान आ गया उसी का नाम है अंतरात्मा। वही अंतरात्मा जब शरीर से हट करके मोह को पूरा छोड़कर के केवल ज्ञान प्राप्त कर लेता है तो वह कहलाता है परमात्मा।

वो परमात्मा दो प्रकार का होता है। एक सकल परमात्मा और एक निकल परमात्मा। सकल का मतलब जो शरीर से सहित हो उसे सकल परमात्मा कहते हैं, अरिहंत भगवान् जब शरीर से रहित हो गए वो निकल परमात्मा माने सिद्ध भगवान् कहलाते है। ऐसे पंच परमेष्ठी के अंदर अंतरात्माओं का समावेश है और परमात्माओं का समावेश है, बहिरात्माओं का समावेश नहीं है। पंच परमेष्ठी में अंतरात्मा और परमात्मा होती है। अंतरात्माओं में भी तीन भेद हैं। एक जघन्य अंतरात्मा, एक मध्यम अंतरात्मा और एक उत्तम अंतरात्मा। जघन्य अंतरात्मा उसे कहते हैं जिसे आत्मा और शरीर का भेद विज्ञान तो हो गया लेकिन व्रत, नियम, संयम में आगे नहीं हो पाया, उसका नाम है जघन्य अंतरात्मा। जो घर में रहते हुए भी अपना व्रत, विनय, नियम, संयम को धारण कर लेता है वो मध्यम अंतरात्मा की श्रेणी में आ जाता है। मुनि महाराज ध्यान अवस्था में लीन होते हैं तो वह उत्कृष्ट अंतरात्मा कहलाते हैं। जब वही मुनि महाराज ध्यान से रहित हो जाते हैं तो वह मध्यम अंतरात्मा के रूप में भी आ जाते हैं। पंच परमेष्ठी में मध्यम अंतर आत्मा, उत्कृष्ट अंतरात्मा और सकल परमात्मा और निकल परमात्मा आ जाते हैं। पंच परमेष्ठी में अरहंत सिद्ध हो तो हो गए परमात्मा। बाकी के आचार्य एवं साधु परमेष्ठी हो गए अंतरात्मा। अंतरात्मा में भी मध्यम और उत्कृष्ट दोनों होते हैं, जिनको इस प्रकार का समाधि तंत्र सुनते-सुनते याद हो गया वो अपने आपको समझ सकते हैं कि जघन्य अंतरात्माएँ हैं और जिन्हें कोई फर्क नहीं पड़ा, चातुर्मास होने को जा रहा है, कोई मतलब नहीं रहा तो वो समझ लेना वो बहिरात्मा यानि बाहर है। बुरा नहीं मानना, वस्तु स्थिति ऐसी ही है।

श्लोक–१०५

मुक्त्वा परत्र परबुद्धिमहंधियञ्च, संसारदुःखजननीं जननाद्विमुक्तः।
ज्योतिर्मयं सुखमुपैति परात्मनिष्ठस्तन्मार्गमेतदधिगम्य समाधितन्त्रम्।।१०५।।

जो भी समाधि स्तुति को पढ़ आत्म, वेद 'मैं और शरीर' इनमें कुछ भी न भेद।
ऐसा विचार तजते बन अन्तरात्मा, पाते निजीय सुख को, बनते महात्मा।।१०५।।

आचार्य कह रहे हैं जो इस समाधि तंत्र को जो पढ़ता है और आत्मा और शरीर के भेद को जान जाता है वह अंतरात्मा कहलाता है और वही अंतरात्मा धीरे-धीरे अपने जब निजी सुख को प्राप्त कर लेता है तो वही महाआत्मा, महात्मा कहलाने लगता है। उस आत्मा के सुख को प्राप्त कराने वाला यह मार्ग जो समाधि तंत्र के माध्यम से बताया गया। इसके द्वारा जीव संसार से छूटकर ज्ञान ज्योतिर्मय सुख को प्राप्त कर लेता है।

पर पदार्थों में अहम् बुद्धि को जो धारण करता है वह संसार में दु:ख को प्राप्त होता है। पर पदार्थों में ये मैं हूँ, ये मेरे हैं, मैं इनका हूँ, इस प्रकार की अहम् बुद्धि के कारण से ही दु:ख होता है और ये अहम् बुद्धि छूटने में नहीं आती। इसी अहम् बुद्धि को छोड़ने का जो पुरुषार्थ करता है वो अहंकार से भी छूट जाता है और ममकार से भी छूट जाता है और धीरे-धीरे अपनी उत्कृष्ट आत्मा में लीन होता हुआ संसार से छूटकर के ज्योतिर्मय केवल ज्ञानमय आत्मा का सुख प्राप्त कर लेता है। इस प्रकार पहले अपने अंदर के उस अहंकार और ममकार को तोड़ना। आपको बताया गया था जब णमो अरिहंताणम् में जो णमो बोलते हैं तो णमो के माध्यम से अहंकार और ममकार दोनों टूटते हैं, ण माने नकारात्मक प्रवृत्ति, अ माने उसके साथ में जुड़ा हुआ अहंकार और म माने ममकार। ये सब नकारात्मक प्रवृत्ति छोड़कर और ममकार को तोड़कर के जो 'ओ' माने अपनी ऊर्जा को ऊर्ध्वारोहण कर देता है अपनी आत्मा की शक्ति को ऊपर उठा देता है उसका नाम है 'णमो'। णमो अरिहंताणम् के माध्यम से अहंकार और ममकार को तोड़ा जाता है। इन मंत्रों की शक्ति के माध्यम से अपने अंदर वो आत्म शक्ति प्राप्त की जाती है, जिससे हम इस राग द्वेष की प्रणाली को, अहम् बुद्धि और ममकार बुद्धि को छोड़ सकते हैं और अपनी आत्मिक शक्ति को थोड़ा सा अनुभूत कर सकते हैं। ये सब इन्हीं शक्तियों के माध्यम से होता है, इसलिए आज आपके लिए ये समाधि तंत्र ग्रंथ जो चल रहा था, ये पूर्ण हो गया। णमो अरिहंताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आइरियाणं, णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्वसाहूणं।

ध्यान



''अर्हं क्रिया''

आप पंच परमेष्ठी की आराधना करने का श्रद्धा के साथ भाव बनाएँ, मन के अंदर णमोकार के अक्षरों को ध्यान में लाएँ। अपने दोनों हाथों को केवल ज्ञान मुद्रा के साथ लेकर सहज बैठ जाएँ। श्वास पर एक बार ध्यान रखकर इस णमोकार मंत्र को पढ़ें, भावों के साथ, श्रद्धा के साथ, गहरी श्वास लेते हुए पहला पद, उसके अक्षरों को ध्यान में रखते हुए पढ़ें।

गहरी श्वास लेते हुए। णमो अरिहताणं, श्वास छोड़ते हुए णमो सिद्धाणम्, गहरी श्वास लेते हुए णमो आइरियाणं, श्वास को थोड़ी देर रोकते हैं। धीरे-धीरे श्वास को छोड़ें। णमो उवज्झायाणं, गहरी श्वास लेते हुए णमो लोए, श्वास छोड़ते हुए सव्वसाहूणम्।

अपने दोनों हाथों को सिर के ऊपर इस मुद्रा में रखें, महसूस करें। थोड़ा सा दो सेंटीमीटर ऊपर हाथ रखें। आपको महसूस होगा पंच परमेष्ठी की शक्ति, उनका ज्ञान उनकी विशुद्धि आपके पूरे शरीर में प्रवेश कर रही है। आपका मन ऊर्जा से भर रहा है। हृदय पवित्र हो रहा है। आत्मा पापों से मुक्त हो रही है। अपने अंदर इसी मुद्रा में एक बार जोर से ओम् से अर्हं तक की यात्रा को बीजाक्षरों के साथ करेंगे।

ओम्.... ह्रीं.... श्रीं.... अर्हं.... नमः (३)

सहज भाव से बैठ जाएँ। दोनों हाथों को ज्ञान मुद्रा में लेकर कमर सीधी रखें। अपने भीतर होने वाले कंपनों पर ध्यान दें। ओम् को अपने नाभि स्थान पर स्थापित करें। अपने अंदर मन में आँखों को बंद करते हुए गहराई से उसको नाभि स्थान पर रखें। अर्हं को अपने मस्तिष्क के सामने जहाँ दोनों भौयें मिलती हैं, जिसे हम आज्ञा चक्र कहते हैं। अर्हं के अक्षरों को जहाँ हम तिलक लगाते हैं उसी स्थान पर अपने माथे के बीचोंबीच में लिखा हुआ देखें। अर्हं अक्षरों को गहराई से देखें। सफेद प्रकाश में आपको यह अक्षर अपने अंतर्मन से दिखाई देंगे। ये ज्ञान केंद्र है, आज्ञा चक्र है, इसकी मूल आकृति 'ॐ' ऊ के ऊपर एक चंद्रबिंदु और उसमें से एक ज्योति निकलती दिखाई दे रही है। यह उस सिद्ध भगवान् तक की यात्रा का प्रतीक है। हम सब मनुष्यों की संरचना

एक जैसी है। शरीर के अंदर ये चक्र और उनकी मूल आकृति एक जैसी है। सभी की उस आज्ञा चक्र की मूल आकृति उस ऊ के ऊपर रखे हुए दीपक की ज्योति के समान है व दीपक की ज्योति सिद्ध भगवान् का प्रतीक है। अर्हं ये शब्द हमें सिद्धत्व से मिलाता है। आत्मा की पूर्ण शक्ति से आत्माओं को सिद्ध बनाता है। आत्मा को भगवान् बनाता है। उस अर्हं की उस शक्ति को अपने मस्तिष्क से, उस आज्ञा चक्र से पूरे शरीर के अंदर प्रवेश होता हुआ देखें। उस अर्हं की शक्ति को उसके प्रकाश को थोड़ा सा बड़ा करके देखें।

अ.... र्.... ह.... म्

मस्तिष्क के ऊपर अर्हं के अक्षरों का प्रकाश देखें, जो प्रकाश हर एक के शरीर में धीरे-धीरे बढ़ रहा है। आँखों से होता हुआ, गले से होता हुआ, कंधे से उतरता हुआ अर्हं का प्रकाश धीरे-धीरे पूरे शरीर में फैल रहा है। अपने मूल आधार की शक्ति को उसका आज्ञा चक्र कहते हैं। नाभि से उस शक्ति का प्रभाव और बढ़ाते हुए जोर से उस अर्हं की शक्ति को अपने अंदर महसूस करें। शब्द की ध्वनि के माध्यम से वह शक्ति पर उसका प्रकाश पड़ता है। सभी एक साथ उस गति को उच्चारित करें।

अ.... र्.... ह.... म्

प्रकाश कंधे से होते हुए बाहों में फैला है। हाथ ऊर्जा से भर गए हैं। इधर हृदय से होते हुए पीठ, पेट, नीचे के सभी स्थानों से होते हुए, घुटनों से होते हुए पंजों तक अर्हं का प्रकाश फैला हुआ है। सिर के ऊपरी भाग से पूरा शरीर अर्हंमय हो गया है। उस प्रकाश ने हमारे पूरे शरीर की नकारात्मक ऊर्जा को, अंधकार को बाहर फेंक दिया है। आदमी बाहर के प्रकाश को देखता है। भीतर का प्रकाश नहीं देखता। आदमी बहिर्मुखी वृत्ति से बाहर जगत में जीता है। अंतर्मुखी शक्ति को नहीं देखता। अंतर जगत का आनंद नहीं लेता इसलिए उसको जीवन जीने का आनंद नहीं आता। जीवन एक संगीत है, एक लय है और लय में बाहर और भीतर दोनों का आनंद होता है। अगर हम केवल बाहर ही बाहर जीते रहे और भीतर का आनंद नहीं लिया तो लयबद्धता जीवन में नहीं आ सकती। जीवन बाहर से कितना ही भरते चले जाओ, अगर भीतर से मन खाली है तो कभी भी तृप्ति महसूस नहीं होगी। ये अर्हं का प्रकाश हमें तृप्ति दे रहा है। महसूस करें, भीतर से हम प्रकाश से भर रहे हैं। हमारे अंदर अर्हं की ऊर्जा, अर्हं की शक्ति निरंतर बढ़ रही है। अंतरंग के प्रकाश से मेरा मन प्रकाशित है। भीतर से हम अपने आपको बहुत संतुष्ट महसूस कर रहे हैं।

अपनी आत्मा, अपना मन, अपना शरीर सब कुछ एकमेक हो चुका है। (अवर बॉडी टेंस टू पास्ट, अवर माइंड टेंस टू फ्यूचर, बट योगा कम्पाइंड देम इन प्रेजेंट) हमारी बुद्धि भविष्य को देखती है। शरीर भूतकाल का प्रतीक है और ये अर्हं का ध्यान हमें वर्तमान से जोड़ता है। अपने आपको अनुभूत करें। भीतर से भरें।

उस तीव्र अनुभूति से जुड़ें जिसको पाने के बाद कुछ पाना न रह जाए। अपने अंदर उस प्रकाश को बढ़ता हुआ देखें। वह अर्हं जिसका प्रकाश पूरे मस्तिष्क से होते हुए पूरे शरीर में फैल रहा है। भीतर से आनंदित होते हुए, चित्त को प्रसन्न रखते हुए, अपने मुख पर प्रसन्नता लाते हुए, आँखों को बंद रखते हुए महसूस करें।

तू ऊपर से सब भरता रहा पर भीतर से तो खाली है
ऐसा कुछ निश्चित करना है, मन को भीतर से भरना है,
तो अर्हं योग को करना है।
पानी में डूबे कलशे का, जब तक मुख उल्टा रहता है
पानी है चारों ओर मगर, भीतर से खाली रहता है
पानी से भरा आए बाहर, मुख को बस सीधा करना है
तो अर्हं योग को करना है
तू ऊपर से सब भरता रहा पर भीतर...
मछली पानी में प्यासी है, मन में क्यों भरी उदासी है,
जो दास बने धन के तन के, उनकी मति जग में दासी है
जो दास बना वो मालिक था, मालिक चेतन को बनना है
तो अर्हं योग को करना है
खिलते हुए कोमल पौधे को, पानी ऊपर से देता रहा
मुरझाता हुआ धीरे-धीरे, खुशबू अपनी वो खोता रहा
फिर से वह पौधा खिल जाए, जड़ में जल सिंचन करना है-२
तो अर्हं योग को करना है-
तन की तृष्णा मन की तृष्णा, पूरी करते-करते आया
धन वैभव पद सम्मान सभी पाया पर मन खाली पाया

भीतर से तृप्त ये चेतन हो, चेतन में तृप्ति भरना है
तो अर्हं योग को करना है
तेरा तन यह एक मंदिर है, जिसमें मन सुंदर वेदी है
गंदे मन रोगी तन में तो, मूरत न प्रभु की देखी है!
तुझको प्रभु का दर्शन होगा-२ बस तन मन सुंदर करना है
तो अर्हं योग को करना है
तू ऊपर से सब भरता रहा पर भीतर से तो खाली है
ऐसा कुछ निश्चित करना है, मन को भीतर से भरना है
तो अर्हं योग को करना है

अर्हं का प्रकाश आपके पूरे शरीर मे फैला हुआ है, जो शांति, जो अनुभूति की लगन, जो अपने मन को दिव्य प्रकाश का अनुभव हुआ है वो इस अर्हं की देन है। पंच परमेष्ठी की वह महान शक्तियों की कृपा है, जिससे हम भीतर परम शांति महसूस कर रहे हैं। ओम् परम शांति अर्हं, ओम् परम शांति अर्हं, ओम् परम शांति अर्हं। अपने दोनों हाथों को हल्का सा मलकर अपनी आँखों पर लगायें।



ध्यान– १

कमर को सीधा करके चुस्त-दुरुस्त होकर सुखासन में बैठें, कमर व गर्दन सीधी रखें। अपने दोनों हाथों को दोनों घुटनों पर रख लें। इस प्रक्रिया को अपना कर आप लंबे समय तक रोगों से बच सकते हैं। आप इस प्रक्रिया को इतना अभ्यास में लें आएँ कि घर पर सभी सदस्य, बच्चों सहित इसे अच्छे ढंग से कर सकें। शांत होकर आँखें बंद करके बैठें। गर्दन व रीढ़ की हड्डी एकदम सीधी दिखाई देनी चाहिए। आप श्वासोच्छवास को लेना व गिनना सीखें। सबसे पहले मन को लगाने के लिए और अपने अंदर एक प्राणशक्ति जगाने के लिए 'ओम्' का उच्चारण करते हैं।

ओऽऽऽम णमो अरिहंताणम् णमो सिद्धाणं

णमो आयरियाणं णमो उवज्झायाणं णमो लोए सव्वसाहूणं

गहरी श्वास अपने अंदर लेने का प्रयास करें। प्रक्रिया को निरंतर जारी रखें। श्वास को गहराई से लेना और छोड़ना है, लेना-छोड़ना, लेना-छोड़ना, लेना-छोड़ना ९ बार करें। बहुत गहराई से श्वास नाभि तक पहुँचे, सीने को बाहर निकालते हुए, मुख प्रसन्न, दूसरों की चिंता ना करें। आवाज हमें सुनाई पड़नी चाहिए।

आँखें बंद रखें। शांत बैठें। अपने शरीर में होने वाले स्पंदन को महसूस करेंगे। कोई चिंता नहीं, कोई विकल्प नहीं। परम शांत भाव। आत्मा का इंद्रियों से कोई संबंध नहीं। प्राण शक्ति मेरी श्वास है, मेरी आत्मा है। प्राण शक्ति मेरी आत्मा उस श्वास को उत्पन्न करती है। आत्मा प्राण शक्ति से जुड़ी हुई है महसूस करेंगे। गहराई के साथ पुन: एक श्वास लेंगे। लेते हुए- णमो अरिहंताणं, छोड़ते हुए- णमो सिद्धाणं, लेते हुए- णमो आइरियाणं, छोड़ते हुए- णमो उवज्झायाणं, लेते हुए- णमो लोए, छोड़ते हुए- सव्वसाहूणं

आप णमोकार को अपनी श्वास पर रखें। णमोकार के अक्षर हम श्वास के माध्यम से ग्रहण कर रहे हैं। हम बोलें नहीं क्योंकि सुनने योग्य जो ध्वनि होती है उससे कई गुना अधिक प्रभावशाली नहीं सुनने योग्य ध्वनि होती है। हम अपने अंदर उस नहीं सुनने योग्य ध्वनि को सुनने का प्रयास करें। केवल भावनात्मक रूप से श्वास को ग्रहण करते हुए बिना बोले णमो अरिहंताणं छोड़ें व मन में णमो सिद्धाणं लेते हुए मौन णमो अरिहंताणं। छोड़ें व मन में णमो सिद्धाणं, लेते हुए मौन णमो आइरियाणं, छोड़ें मन में- णमो उवज्झायाणं, लेते हुए णमो लोए, छोड़ते हुए मन में सव्वसाहूणं।

बहुत तीव्र भावों के साथ मन लगाकर णमोकार का उच्चारण करेंगे। जितना ज्यादा मन सहित होकर के ध्यान करेंगे उतना ज्यादा हमें शरीर में निरोगता, क्रोध आदि भावों का अभाव, अपनी मन की शक्ति का परिचय बहुत गहराई के साथ होगा।

३ बार णमोकार मंत्र मौन से श्वासोच्छवास के साथ करें।

आँखें बंद रखें। शांत बैठें। कोई भी आवाज हमें बाहर सुनाई पड़ रही है उससे अपने मन में किसी भी प्रकार का व्यवधान महसूस नहीं करेंगे। अपने मन में उस आवाज से प्रसन्नता महसूस करेंगे। हर वह आवाज हमें अच्छी लग रही है। चाहे वह मोटर साइकिल की आवाज हो, चाहे वह किसी व्यक्ति की आवाज हो, हमें हर आवाज आनंद दे रही है। हम महसूस करें अपने मन को प्रसन्न रखें, अपने चेहरे पर हल्की प्रसन्नता बनाए रखें। किसी भी प्रकार का कोई तनाव नहीं। शरीर को ढीला छोड़ दें। शांत बैठें। जो भी आवाज महसूस हो रही है उससे हमें कोई चिड़चिड़ाहट नहीं, सिर्फ सुनते रहें....। कोई कुछ भी बोले, हमें अच्छा लग रहा है। हम महसूस करें, कोई हमारे सामने बहुत तेजी से चिल्ला रहा है, बहुत गुस्से में है। आक्रामक मुद्रा को लिए हुए हमें गालियाँ दे रहा है। हम बिल्कुल शांत बैठे हैं। मन में मुस्कुरा रहे हैं, चेहरे पर प्रसन्नता है। महसूस करें कि कोई आपके लिए बहुत बुरा कह रहा है। आपको कुछ भी बुरा नहीं लग रहा है। बहुत आनंद में आप बैठे हैं क्योंकि मैं इंद्रियों से परे हूँ। आवाज तो केवल मेरे कान सुनते हैं। शब्द मेरे मन तक पहुँचते हैं लेकिन मेरी आत्मा किसी भी शब्द को अपने पास नहीं रखती। मेरी आत्मा जो मैं महसूस कर रहा हूँ, जो मैं अनुभव कर रहा हूँ वही आनंद स्वरूप मैं आत्मा हूँ, जो पूरे शरीर में करंट की तरह चैतन्य धारा को लिए हुए है। पूरे शरीर में वह ज्ञानधारा फैली हुई है। चेतना का प्रभाव पूरे शरीर में फैला हुआ है। कोई भी इंद्रिय मेरी उस चेतना को छू नहीं सकती। किसी की गाली मेरी चेतना को स्पर्श नहीं कर सकती। कोई भी रूप मेरी चेतना में दिख नहीं सकता। कोई भी रस मेरी चेतना में आ नहीं सकता। मैं अनंत शक्ति का आनंदमय पुंज स्त्रोत हूँ। मैं हर आवाज को सुन रहा हूँ। मुझे किसी से कोई चिड़चिड़ाहट नहीं, चाहे कोई मेरे ऊपर कितना ही चिल्लाए, मेरा मन बहुत शांत, परम आनंद केवल ज्ञानमय ज्योतिपुंज में अपने आपको अनुभव कर रहा हूँ। मैं केवल आत्मा हूँ जो मैं अपनी आत्मा से देख रहा हूँ। बस वही मैं हूँ। इंद्रियों से मैंने जो भी देखा वो मैं नहीं हूँ। मैं जो अपनी आत्मा से जान रहा हूँ वही मैं हूँ। इंद्रियों से जो मैंने जाना वह मैं नहीं हूँ। शांत बैठे रहें....। किसी के खाँसने की आवाज, किसी के बोलने की आवाज। मेरा मन किसी को भी रोकने का नहीं कर रहा। मैं किसी को भी रोकना नहीं चाहता। कोई कितना भी बोले, चिल्लाए, आवाज करे मुझे शांत बैठे रहना है। मेरा मन शांत होगा तो शक्तिमय होगा। महसूस करें कोई भी हमारे ऊपर चिल्ला रहा है। हम उसकी आवाज, उसकी गाली सुन रहे हैं लेकिन मेरे मन में किसी भी

प्रकार की खेद-खिन्नता नहीं है। मेरा मन परम शांत, निर्विकार, आनंदमय है। गहरी सांस लें। णमो अरिहंताणं, बहुत तेजी से जोर से बोलें णमो सिद्धाणं णमो आइरियाणं णमो उवज्झायाणं णमो लोए सव्वसाहूणं- ३ बार

मन को शांत रखें, आँखें बंद। अक्षरों पर ध्यान रखें क्योंकि अक्षर मंत्र होते हैं। बहुत बड़ी शक्ति होते हैं। इस णमोकार का बहुत बड़ा विज्ञान है। 'ण' 'मो' ये दो अक्षर इतने शक्तिमान हैं कि 'ण' हमारे अहंकार को दूर करता है और 'मो' हमारे ममकार को दूर करता है। 'ण' हमेशा मूलधन्य जो सिर का ऊपरी भाग है वहाँ पर उसका निवास होता है। जब भी हम 'ण' का उच्चारण करते हैं वह मूलधन्य स्थान से बोलने में आता है। 'ण' की ध्वनि को हम अपने सिर में गुंजायमान करें। जब हम प्रारंभ का 'ण' बोलें तो वह 'ण' हमारी नाभि पर स्थित हो। जब हम 'णं' बोले तो वह 'णं' हमारे सिर के ऊपर भाग पर स्थित हुआ दिखाई दे। हम इस णमोकार की प्रक्रिया को धीरे-धीरे आगे बढ़ा रहे हैं।

णमोकार के विज्ञान को हम धीरे-धीरे महसूस करेंगे। णं को गुंजायमान करेंगे। णं जब बोलें तब हमें लगे कि हमारे सिर के ऊपरी भाग पर हम भीतर से चोट कर रहे हैं। वह णं हमारे मस्तिष्क के सभी विकारों को दूर करता है। माइग्रेन, ब्रेन हेमरेज, दिमाग की पीड़ाएँ, मानसिक तनाव, नींद नहीं आना आदि बीमारियों की बहुत बड़ी इलाज पद्धति है। अपनी खोपड़ी में णं, णं, णं की आवाज बहुत तेजी से घुमाएँ।

णमो अरिहंताणं। णं बोले तो ऊपर हमें जोर लगे।

णमो सिद्धाणं। णमो आइरियाणं। णमो उवज्झायाणं। णमो लोए सव्वसाहूणं। णं....

दिमाग के कंपनों को महसूस करेंगे। शांत बैठें। आँखें बंद रखें।

गहरी श्वास। नाभि पर ण और सिर के ऊपरी भाग में णं णं णं, बस इतना ध्यान रखें।

जिन्हें मस्तिष्क संबंधी पीड़ाएँ हों वे सुबह-शाम ३० बार इस णं का उच्चारण करें वो एक महीने में सब प्रकार की मस्तिष्क संबंधी बीमारियों से मुक्त हो सकता है। ये निरंतर अभ्यास से प्राप्त होने वाली चीज है। नींद नहीं आना, सिरदर्द, आलस रहना दूर हो जाएगा।

णमोकार मंत्र-९ बार 'णं' पर ध्यान देते हुए।

अपने दोनों हाथों को अपनी आँख पर लगाएँगे और कान को अपनी अंगुली से बंद करेंगे। इसी पोजिशन पर जो आपको रंग दिखाई दे रहे हैं उन रंगों को देखेंगे। देखते रहें। बहुत बड़ा रासायनिक परिवर्तन आपके शरीर में हो रहा है। जब हमें लगने लगे कोई भी ऊर्जा का परिवर्तन नहीं हो रहा है। हाथ नीचे ले आएँ। आँख धीरे से खोलें। सामने देखें।

ध्यान– २

णमोकार मंत्र एवं पंच नमस्कार मुद्रा के पश्चात् एक दीर्घ ओऽऽऽऽम का उच्चारण करेंगे। ओऽऽऽऽम....। गहरी साँस लें और गहरी साँस लेंगे। २७ श्वासोच्छवास के साथ हम णमोकार मंत्र पढ़ेंगे। दीर्घ श्वास लेते णमो अरिहंताणं, श्वास छोड़ते हुए णमो सिद्धाणं। लेते हुए णमो आइरियाणं, छोड़ते हुए णमो उवज्झायाणं, लेते हुए णमो लोए, छोड़ते हुए सव्वसाहूणं....।

आँखें बंद रखें, मन को शांत, शरीर को ढीला, आत्मा का ज्ञान महसूस करें। किसी भी आवाज से कोई चिड़चिड़ाहट महसूस ना करें। जो भी हो रहा है उसको स्वीकार करें। जो भी सुनने में आ रहा है उसे प्रसन्नता से स्वीकार करें। मन को प्रसन्न बनाएँ। हल्की सी चेहरे पर मुस्कुराहट रखें....। बंद आँखों से जो हमें बाहर प्रकाश अनुभव में आ रहा है वह हमारी आत्मा का प्रकाश है महसूस करें...। जहाँ रीढ़ की हड्डी समाप्त होती है उस मूलाधार चक्र पर ण ण ण इस ध्वनि को देखें। उसी के चार अंगुल ऊपर मो लिखा हुआ है। उन दोनों चक्रों पर 'ण' और 'मो' का उच्चारण करें। ण मो, ण मो, ण मो। उसी के ऊपर नाभि चक्र है जो शक्ति का केंद्र कहलाता है। इस नाभि से शरीर की ७२००० शिराएँ जुड़ी रहती हैं। इस शक्ति पर अपना ध्यान लगाएँ। नाभि पर 'अ' लिखा है सफेद रंग में, धवल रंग पूर्णत: चूने के समान सफेद। 'अ' अक्षर हम अंतर्मन से उस नाभि के ऊपर लिखें... हृदय स्थान जो आनंद का केंद्र है। उस स्थान पर 'रि' लिखा है। हृदय स्थान पर 'र' छोटी 'इ' की मात्रा के साथ उसी धवल रंग में सफेद प्रकाश के साथ, उस प्रकाश को महसूस करें। जो प्रकाश हमें बाहर दिखाई दे रहा है उसे हम उस अक्षर के साथ आत्मसात करता हुआ देखें। दोनों अक्षर हमें स्पष्ट दिखाई दे रहे हैं। 'अ' 'रि'। णमो नकारात्मक ऊर्जा को सकारात्मक बनाने वाला। ण को म में मिल जाने के ऊपर णं के रूप में अंतिम परिणति को हम मूलधन में शिरा स्थान तक पहुँचाएँगे। अरि अरि दीर्घ उच्चारण करेंगे। अरीऽऽऽ अरीऽऽऽ अरीऽऽऽऽ माने हमारे अंतरंग के शत्रु आत्मा में बहुत गहराई से बैठे विकारी भाव, ईर्ष्या के भाव, काम, क्रोध, अहंकार के भाव जो गहराई से हमारी आत्मा में जन्मों-जन्मों से बैठे हैं उन अरि को,

उन शत्रुओं को हम नष्ट करेंगे। अरि को हनन करने वाले अरिहंत कहलाते हैं। हम उन्हीं अरिहंत के अक्षरों का ध्यान कर रहे हैं। 'अ' नाभि केंद्र पर है, 'रि' हृदय केंद्र पर है, कंठ के बीचोंबीच 'ह' अक्षर लिखा हुआ है और उस पर बिंदी लगी हुई है। वह भी सफेद प्रकाश में, दूधिया रंग में सफेद खड़िया से लिखा 'हं' दिखाई दे रहा है। अ रि हं। अपनी दोनों भौंहों के बीच में 'ता' को लिखा देखेंगे, जहाँ हमारी दोनों भौंहें मिलती हैं मस्तिष्क के बीचोंबीच में 'ता' वह भी सफेद रंग में है। बिल्कुल स्पष्ट हमें अपने अंतर्मन से दिखाई दे रहा है। हम अपने अंतर्मन से उस 'ता' को लिखें। हमारे शत्रुओं को नष्ट करने वाले, हमारे क्रोध, मान, काय, मत्सर आदि विकारों का हनन करने वाले ये अरिहंत है। हम उन्हीं की शरण में हैं। चारों ही अक्षर अपने चारों केंद्रों पर देखें। ण मो की तरफ ध्यान ना दें। केवल नाभि केंद्र पर 'अ', हृदय केंद्र पर 'रि', कंठ पर 'हं' और मस्तिष्क के सामने के भाग पर 'ता' लिखा हुआ है। हम जोर से उच्चारण करके इन अक्षरों को और शक्ति प्रदान करें। जितना हम बोलें उतना ही उच्चारण करें। अ रि हं ता ५ बार।

जिन-जिन स्थानों पर हमने अ रि हं ता लिखा है, उन स्थानों पर जोर डालते हुए एक-एक स्थान पर ध्यान रखते हुए बहुत आराम से पढ़ेंगे।

अ रि हं ता, अ रि हं ता, अ रि हं ता महसूस करें वे चारों ही अक्षर, चारों ही केंद्र पर हमें बिल्कुल सफेद रंग में स्पष्ट दिख रहे हैं। पहले से ज्यादा हमारे अंतरंग में वह प्रकाश फैल रहा है। पूरे शरीर में इन्हीं अक्षरों में प्रकाश, सफेद रंग के अक्षर। पूरे शरीर के अंदर जितना हम इन अक्षरों को इन शक्ति केंद्रों पर, आनंद केंद्रों पर, विशुद्धि केंद्र पर और आज्ञा केंद्र पर महसूस करेंगे हमारे केंद्र उतना मजबूत बनेंगे। इस अरिहंत के ध्यान से शरीर में रोग-प्रतिरोधक शक्ति उत्पन्न होती है। किसी भी प्रकार के रोगों के लिए अंतरंग से ये शक्ति उन रोगों को बाहर फेंकती है। उन रोगों को शरीर में टिकने नहीं देती। अ रि हं ता, अ रि हं ता, अ रि हं ता-९ बार। मस्तिष्क के ऊपर णं लिखा है वह भी सफेद लिखा है। उस णं को हम सफेद प्रकाश में सफेद अक्षरों में देख रहे हैं। एक-एक अक्षर बीजाक्षर कहलाता है। अनंत शक्ति को धारण करने वाला एक-एक अक्षर किसी न किसी तत्व का प्रतिनिधित्व करता है। हमारे शरीर के सभी रोगों को दूर करने वाला मन को शक्ति देने वाले, इन बीजाक्षरों को चित्त की एकाग्रता के साथ सफेद प्रकाश में अनुभव करे....। नाभि के नीचे णमो लिखा है वहाँ से गति प्रारंभ करें। कंपन प्रारंभ

करें। ण मो अ रि हं ता णं-२। नाभि के नीचे जो ऊर्जा है उसे उर्ध्वमुखी बनाने के लिए अपने मन का प्रयास उस दीर्घ श्वास के साथ उन अक्षरों के साथ महसूस करें। ण मो अ रि हं ता णं- ५ स्थानों का ध्यान रखेंगे। ण मो मूलाधार केंद्र व उसी के ४ अंगुल ऊपर स्वाधिष्ठान केंद्र पर, 'अ' नाभि पर लिखा है, 'रि' हृदय पर लिखा है, 'हं' कंठ पर लिखा है, 'ता' दोनों भृकुटियों के बीच है और णं सबसे ऊपरी भाग पर लिखा है। हमारे शरीर में सात ही चक्र होते हैं। णमो अरिहंताणं में सात ही अक्षर हैं। इन सात चक्रों में पाँच चक्र हमारे शरीर के लिए आवश्यक है। ५ चक्र हमारे ध्यान के लिए आवश्यक हैं। इन पाँच चक्रों पर हमने अरिहंताणं के पाँच अक्षरों को लिखा है। णमो हमारी नकारात्मक ऊर्जा को मारने का साधन है। पूरे शरीर के केंद्रों पर हम सफेद प्रकाश देख रहे हैं। इन अक्षरों का प्रकाश पूरे शरीर में फैलता देख रहे हैं। सफेद रंग का प्रकाश पूरे शरीर में व्याप्त हो रहा है।

ण मो अ रि हं ता णं-२ – ९ बार

पूरे शरीर में जो भी स्पंदन, जो भी क्रियाएँ हो रही हैं उन्हें महसूस करें। चित्त को बिल्कुल शांत बनाकर रखें। सारे विकार अंधकार के रूप में थे, वो प्रकाश से बाहर निकल गए। अज्ञान का अंधकार दूर हो चुका है। पूरे शरीर में आत्मा का ज्ञान प्रकाश फैला हुआ है। आत्मा का ज्ञान आत्मा के साथ एकमेव है। जैसे किसी तार में विद्युतधारा बहती है वैसे आत्मा की वह ज्ञान धारा पूरे शरीर में प्रवाहित है। हम महसूस कर रहे हैं शरीर का उस ज्ञानधारा से कोई संबंध नहीं है। वचनों का उस ज्ञान धारा से कोई संबंध नहीं है। मेरे चित्त का, मेरे मन का उस ज्ञान आत्मा से कोई संबंध नहीं है। तीनों बाहर की चीजें हैं- शरीर, मन और वचन। वह हमें बाहर ही दिखाई दे रहे हैं।

हम आत्मा को आत्मा के रूप में जान रहे हैं, महसूस कर रहे हैं। प्रकाश को पूरे शरीर में और बढ़ता हुआ देख रहे हैं....। बहुत गहराई से इस मन की शांति को अनुभव में लाएँ। मेरा मन किसी भी बात से आहत नहीं है। मुझे किसी भी दूसरे आदमी से कोई परेशानी नहीं है। मैं केवल प्रकाशमय, ज्ञानमय सबसे भिन्न हूँ, निर्विकार, निर्विकल्प, सबसे पृथक आत्मा हूँ, आत्मा हूँ, आत्मा हूँ। मेरी आँखों में उसी आत्मा का प्रकाश, मेरी नाक, मेरा गला, मेरा हृदय, नाभिचक्र, मूलाधार चक्र, घुटने, पैर, पंजे, भुजा, हाथ, अंगुलियों में वही प्रकाश भरा हुआ है। पूरी रीढ़ की हड्डी में वह अरिहंतों का प्रकाश उन्हीं अक्षरों का प्रकाश

घुल रहा है।

ण मो अ रि हं ता णंऽऽऽऽऽ

णं के साथ बहुत दीर्घ कंपन अपने मस्तिष्क में करेंगे। बहुत दीर्घता के साथ इस णमोकार के अंतिम अक्षर णं को अपने सिर के ऊपरी भाग में बहुत गुंजायमान होता देखेंगे।

ण मो अ रि हं ता णंऽऽऽऽऽ

एक बार अरिहंत की मुद्रा में इसका दीर्घ उच्चारण, हाथों को जोड़कर, कान के साथ अपनी भुजाओं को चिपकाते बहुत दीर्घता के साथ।

ण मो अ रि हं ता णं-३

हाथ ऊपर रखकर ही महसूस करेंगे। अरिहंतों की शक्ति पूरे वायुमंडल में भरी हुई है। हमारे हाथ उस शक्ति को कैच करने के लिए एंटीना है और हमारे अंदर मन की जो शक्ति है, अरिहंत के अक्षर हैं वह सब उस विद्युत धारा को पकड़ने के लिए स्विच के समान है। पूरी शक्ति अरिहंतों की हमारे शरीर में प्रवेश कर रही है।

ण मो अ रि हं ता णं-३

सामान्य मुद्रा में आएँगे। इस अरिहंत मुद्रा का बहुत बड़ा लाभ मन के अंदर निर्मलता उत्पन्न करना है, शरीर को स्फूर्तिमय बनाना, स्मरण शक्ति को बढ़ाना और सबसे बड़ा लाभ शरीर की पाचन क्षमता को बराबर बनाकर रखना। जो लोग शरीर में मोटापन महसूस करते हैं, उस मोटाई को घटाने के लिए ये मुद्रा बहुत लाभदायक है। आप अपने घर पर एक मिनट से प्रारंभ करके १० मिनट तक इस मुद्रा का अगर सुबह और शाम अभ्यास करें। आपके लिए सब कुछ खाने के बाद में भी शरीर की मोटाई नहीं बढ़ेगी। स्मरण शक्ति बढ़ेगी। शरीर में स्फूर्ति व ऊर्जा का संचार होता रहेगा। आप इस प्रयोग को निरंतर करें। अपने हाथों को थोड़ा घिसकर आँखों पर लगाएँ। शांत व प्रसन्न भाव से सामने की ओर देखें। अगर आपकी उठने की इच्छा न हो तो बैठे रहें। बोलिए पंचपरमेष्ठी भगवान की जय।

ध्यान– ३

णमोकार मंत्र। पंच नमस्कार मुद्रा। ओऽऽम

सामान्य स्थिति में, कमर सीधी, बहुत आराम के साथ हाथ को घुटनों पर रखकर बैठें। किसी भी प्रकार का हाथों में, पैरों में तनाव नहीं। आँख को हल्का सा बंद करें। अपनी श्वास पर ध्यान दें। गहरी श्वास लें, नाभि तक वह श्वास पहुँचाएँ, मन को प्रसन्न रखें। चेहरे पर मुस्कुराहट लाएँ जैसी भगवान जिनेंद्र देव के चेहरे पर होती है। भगवान जिनेंद्र देव की मुद्रा के समान अपनी खुद की मुद्रा हो। गहरी श्वास लें, नाभि तक पहुँचाएँ। रीढ़ की हड्डी के समाप्त होने के स्थान से मूलाधार जहाँ हमारा शरीर टिका हुआ है। उस स्थान से नाभि के नीचे उस मूल स्थान पर ण ण ण शब्द का कंपन करें और महसूस करें। उसी के ४ अंगुल ऊपर स्वाधिष्ठान चक्र पर मो को लिखा देखें। जितनी भी नकारात्मक शक्ति है वह सब नाभि के नीचे रहती है। उस नकारात्मक ऊर्जा को णमो के माध्यम से बाहर फेंकें, उसका ऊर्ध्वारोहण करने के लिए जोर से बोलेंगे- ण मो, ण मो, ण मो

नाभि चक्र पर ध्यान दें। नाभि केंद्र जहाँ पर 'लो' लिखा हुआ है। लकार उसके ऊपर ओ की मात्रा और हम उस लो को हरे रंग में लिखा हुआ महसूस करें। अपने मन से उस ल को नाभि पर बनाएँ। हरे-हरे पत्तों की आभा से, हरे-हरे वृक्षों के रंग से उस 'ल' को नाभि स्थान पर रचें और उस 'ल' के ऊपर 'ओ' की मात्रा को भी अपने मन की आँखों से खींचें। नाभि केंद्र पर 'लो' हमने लिख दिया। उसके ऊपर थोड़ा सा चार अंगुल ऊपर उदर के भाग पर 'ए' लिखा हुआ है। वह भी हरे रंग में हमने अपने मन से उस 'ए' को लिखा। महसूस करें। एकाग्रता को बना कर रखें। णमो लोए, णमो लोए, लो नाभि कमर पर, ए उदर के ऊपरी भाग, उसी की सीध में रीढ़ की हड्डी के ऊपर की ओर जहाँ हृदय स्थान है वहाँ पर ऊपर 'स' लिखा है हरे रंग में। उसी के ऊपर कंठ स्थान पर व लिखा है। उसके आगे छोटा व भी जुड़ा हुआ है। वह भी हरे रंग से हमने लिख दिया। अपने कंठ स्थान से भीतरी भाग की ओर जो रीढ़ की हड्डी से जुड़ता है। 'साहू' अपने दोनों ओठों पर लिखेंगे। दोनों होंठ मिले हुए रहें जैसे भगवान के मिलते हैं। उन दोनों होंठों के

बीच में 'सा' लिखा हुआ है, हरे रंग में महसूस करें और ऊपर जहाँ अपनी दोनों भृकुटियाँ मिलती हैं, नाक का ऊपरी भाग, भौंहों के मिलने का स्थान वहाँ पर 'हु' लिखा देखें। स्वयं 'हु' की रचना करें। 'हं' लिखें उसके नीचे 'उ' की मात्रा बनाएँ। हरे रंग में लिखा देखें। मस्तिष्क के सामने, दोनों भौंहों के बीच में। सबसे ऊपर मस्तिष्क के ऊपर जैसे भगवान की मूर्ति में सिर के ऊपरी भाग पर हल्की सी चोटि ऐसा ही महसूस करें कि हमारे सिर के ऊपर हल्की सी चोटि है। उसी के ऊपर सिर के भीतर 'णं' लिखा हुआ है। वह शीर्ष स्थान जहाँ णं लिखा है। पूरे शरीर में हरे रंग के अक्षरों का सद्भाव है। हरे रंग के अक्षर पूरे शरीर में फैले हुए हैं। फिर से ध्यान दें, एक-एक अक्षर पर

ण मो लो नाभि पर, ए उदर पर, स हृदय पर, व्वा कंठ पर, सा होंठ पर, हु ज्ञान केंद्र पर, णं सिर के ऊपरी भाग में।

ण मो लो ए स व्व सा हु णं-३

पूरी रीढ़ की हड्डी के ऊपर इन अक्षरों के प्रकाश को फैलता हुआ देखें। हरे रंग का वह प्रकाश मानो सारी की सारी हरियाली हमारे शरीर में समा गई। उस हरे रंग के आकृति के अक्षरों में भरकर मणि के प्रकाश में वह हरे रंग की मूर्ति का वह दिव्य प्रकाश महसूस करें। उस प्रकाश को बढ़ाकर के रखें।

ण मो लो ए स व्व सा हू णंऽऽ

सबसे सुंदर स्थान पूरे शरीर में हृदय स्थान है और मुख का स्थान है। हृदय पर 'स' लिखा है और दोनों होंठों पर 'सा' लिखा है। ध्यान दें हरा रंग समृद्धि का सूचक है। हरा रंग शांति का सूचक है। पूरा शरीर शांति और समृद्धि से भरा हुआ है। स और सा हृदय का 'स' सकारात्मक ऊर्जा, सकारात्मक भाव प्रेषित कर रहा है। किसी के प्रति कोई घृणा का भाव नहीं है, समता, समत्व, सकुशलता, समृद्धि है। मुख से साधुता, सामायिक, साम्यभाव है। जो हृदय में पवित्र भाव उठे हम उन्हीं को बोले। जो हृदय में नकारात्मक भाव उठे हम उन्हें कभी भी होंठों पर ना लाएँ। महसूस करें, हमारा हृदय सकारात्मक विचारों से, समता से, सद्चरित्र से, सम्भाव से सब जीवों के प्रति सम्भाव से भरा हुआ है। साधुता हमारे मुख पर आ चुकी है। हम अपने मुख से कभी भी असाधु वचन नहीं बोलेंगे। हमारा मुख हमारे होंठ **'सा'** अक्षर से सिल गए हैं। **'सा'** अक्षर का प्रकाश हरा प्रकाश हृदय में और **'सा'** का प्रकाश होंठों में। ध्यान दें वायुमंडल में ब्रह्मांड में जितनी

भी साधुता, जितनी भी सौम्यता, साम्यता वह सब हमारे हृदय द्वार से प्रवेश कर रही है। ब्रह्मांड की शक्ति को हम अपने हृदय से उठने का प्रयास करें। महसूस करें, बाहर का सारा का सारा प्रकाश, बाहर की सारी शुद्ध तरंगें हमारे पूरे शरीर में प्रवेश कर रही हैं। हृदय पवित्र होता है, सज्जनता, सहृदयता इन गुणों का विकास होता है। **'सा'** अक्षर के प्रकाश में हमारा हृदय सज्जनता, सहृदयता से सप्रेम भाव के साथ पूरे जगत के प्राणियों के प्रति समभाव रखता है।

ण मो लो ए स व्व सा हू णं-३

साधुता हमारे जीवन में प्रवेश कर रही है। सज्जनता हमारे हृदय में प्रवेश कर चुकी है। समभाव हमारे हृदय का आभूषण बन चुका है। सप्रेम भाव से सहित हमारा हृदय हो चुका है। किसी के प्रति घृणा नहीं, क्रोध नहीं, गुस्सा नहीं। मैं साधुता के भाव को स्वीकार करता हूँ। हमारे सामने अंतर्मन की आँखों से ही देखेंगे, आँखें बंद ही रखेंगे।

तीन साधु हमारे सामने आकर के खड़े हो गए हैं। हृदय में विचार उत्पन्न होता है कि घर में एक स्त्री है, उसने घर के बाहर निकलकर के देखा कि तीन साधु उसके सामने खड़े हैं। उसके मन में विचार आता है कि इन साधुओं को घर के अंदर प्रवेश कराया जाए। उसने निवेदन किया, साधुओं ने मना किया। आप घर में अकेली हैं इसलिए हम घर में प्रवेश नहीं कर सकते। थोड़ी देर बाद उस स्त्री का पति घर में आ गया। पति के आने के बाद स्त्री ने पुनः साधुओं से निवेदन किया। आप हमारे घर में प्रवेश करें। तीन साधु सामने खड़े थे। साधुओं ने कहा पहले आप अपने पति से पूछ लें। किस साधु को पहले प्रवेश कराएँ। हम एक-एक करके घर में प्रवेश करते हैं। पहले साधु का नाम समृद्धि है, दूसरे साधु का नाम सफलता है और तीसरे साधु का नाम सप्रेम भाव है। स्त्री घर में गई, अपने पति से पूछा कौन से साधु को पहले प्रवेश कराना। पति ने कहा, सबसे पहले हमें समृद्धि की जरूरत है। बहुत धन की जरूरत है। स्त्री ने कहा अगर हम सफलता को पहले बुला लेंगे तो समृद्धि अपने आप आ जाएगी। पति कहता है समृद्धि होगी तो हमें सफलता के लिए कोई प्रयास नहीं करना पड़ेगा। हमें समृद्धि चाहिए। स्त्री कहती है समृद्धि आने के बाद भी हमें और भी कुछ सफल होने के लिए करना पड़ेगा इसलिए सफलता चाहिए। दोनों के बीच में बात उलझ जाती है। दोनों ने अपनी-अपनी जिद नहीं छोड़ी और यह मन बनाया कि हम दोनों साधुओं को पहले लेकर के आते हैं। समृद्धि और सफलता- पति और पत्नी घर के दरवाजे से बाहर पहुँचे, साधु तीनों खड़े थे। पत्नी ने कहा पहले घर में समृद्धि व सफलता प्रवेश करें। तीनों

साधु उसकी बात को सुनकर के आगे बढ़ गए। पति-पत्नी वहीं खड़े के खड़े रह गए। वे साधु बहुत दूर चले गए। पति-पत्नी दोनों दौड़ते हुए उनके पीछे जा रहे हैं। आपने हमारे घर पर प्रवेश क्यों नहीं किया। उन तीनों साधुओं में से एक साधु ने उत्तर दिया। हमारा नियम है जिस घर में सबसे पहले सप्रेम साधु को बुलाया जाता है वहाँ पर हम धन-समृद्धि और सफलता के साथ अपने आप प्रवेश कर जाते हैं। दोनों पति-पत्नी वापस लौट गए और वे तीनों साधु बहुत दूर निकल गए। जिसके हृदय प्रेम से खाली हैं उसके हृदय में न कभी समृद्धि का साधु प्रवेश करता है न कभी सफलता का साधु प्रवेश करता है। घर पर आई समृद्धि व सफलता प्रेम के अभाव में वापस चली जाती है। आज मेरा हृदय सब जीवों के प्रति प्रेम भाव से भर रहा है। साधु के समान सज्जनता, समता, सप्रेम भाव महसूस कर रहा हूँ।

ण मो लो ए स व्व सा हू णं

जितने भी नकारात्मक भाव नाभि से नीचे बह रहे थे, उन सबको लोए सव्वसाहूणं के प्रकाश में णं तक पहुँचाना उस 'ण' की ऊर्जा को मारकर के उस म को ण के भीतर णं के रूप में समाहित कर देना। ण से णं तक की यात्रा को पूर्ण कर लेना साधुता को प्राप्त हो जाना है। ण से णं तक की यात्रा दुर्जनता से सज्जनता की यात्रा, असाधु से साधु की यात्रा। लोक के सभी साधुओं के चरणों में अपने हृदय को समर्पित करते हुए नम्र भावों के साथ उन्हीं जैसी साधुता को प्राप्त करने के लिए

ण मो लो ए स व्व सा हू णंऽऽऽ

णं की ध्वनि से अपने मस्तिष्क को गुंजायमान करें।

ण मो लो ए स व्व सा हू णं

सब जीवों के प्रति समभाव, कोई भी मेरा विरोधी नहीं, दुश्मन नहीं, बैरी नहीं। सब जीवों के प्रति मेरा साम्यभाव। मेरे पूरे शरीर में हरे प्रकाश के साथ समता का भाव प्रवेश कर रहा है। ढाई द्वीप के अंदर तीन कम नौ करोड़ मुनिराज हैं उन सबको हम, उन सबके भावों को हम, उन सबकी समता को हम अपने अंदर के णमो लोएसव्वसाहूणं की शक्ति से खीचेंगे। हे साधु परमेष्ठी जहाँ कहीं भी आप अपने रत्नत्रय स्वरूप आत्मा में शांत भाव से लीन हैं वह समता का भाव वह सामायिक चारित्र का भाव मुझे भी प्राप्त हो। अपने हृदय, अपनी नाभि, अपने कंठ, अपने मस्तिष्क उन सब अक्षरों के प्रकाश से उन सब शक्ति को खीचें जो ढाई द्वीप के अंदर तीन कम नौ करोड़

मुनि महाराज निरंतर छोड़ते रहते हैं। आज उस शक्ति को हम खीचेंगे अपने मन की शुद्धता से, पवित्रता से।

ण मो लो ए स व्व सा हू णं-२

ऐसे-ऐसे मुनिराज, ऐसे-ऐसे साधु जिनके शरीर को स्पर्श करने वाली हवा भी अगर हमारे पास तक आ जाए, हमारा शरीर कितना ही रूग्ण हो, कोढ़ हो गया हो उस हवा के स्पर्श से हमारा शरीर कामदेव के समान सुंदर बन जाता है। उन साधुओं की ऋद्धियों की, उन शक्तियों की चारों ओर तरंगे लहरा रही हैं, हम उनको खीचें, समर्पण के भावों से, प्रेम के भावों से, समता के भावों से, साधुता के भावों से। अपने हृदय को और सज्जनता के भावों से भरें। साधु के प्रति समर्पण का भाव रखते हुये

ण मो लो ए स व्व सा हू णं-२

एक बार पुन: उसी साधु मुद्रा में अपने आपको पहुँचाएँ। पूर्ण समर्पण के भावों से भरते हुए उसी साधु मुद्रा में पहुँचे।

ण मो लो ए स व्व सा हू णं।

इस धरती पर तीन कम नौ करोड़ मुनिराज हैं। पूरा ढाई द्वीप उन मुनिराजों की पवित्र धूलि से, पवित्र चरणों से पवित्र है। हम एक साथ तीन कम नौ करोड़ मुनि महाराज के चरणों को देख रहे हैं और एक साथ अंतर्मन से उनको नमोस्तु करते हैं, उनकी आत्मा को छूते हैं।

ण मो लो ए स व्व सा हू णं-३

सामान्य स्थिति में बैठें। ....पूरा शरीर ऊर्जा से भर रहा है महसूस करें। पूरे ध्यान का सार इस अंतिम घड़ी में है। पूरे शरीर में साधु की ऊर्जा भर रही है। आँखें बंद रखकर बाहर की ऊर्जा को अपने शरीर में आत्मसात होता हुआ देखें। ....दोनों हाथ को जोड़ कर अपनी आँखों पर लगाएँ। धीरे से आँखें खोलें। लोक के सर्व साधुओं को मेरा नमस्कार हो। मुझे भी समता की प्राप्ति हो। मेरा हृदय सबके प्रति प्रेम भाव से भरा हो।

महावीर भगवान की जय।

ध्यान–४

णमोकार मंत्र एवं पंच नमस्कार मुद्रा के पश्चात् आँखों को बंद रखेंगे। बाहर की आवाज को सुनने का प्रयास करेंगे। महसूस करें, अंतर्मन में बाहर की किसी भी आवाज से कोई फर्क नहीं पड़ रहा है। किसी भी आवाज से हमें कोई चिड़चिड़ाहट नहीं हो रही है। हर आवाज हम आत्मसात कर रहे हैं। हमें सब कुछ अच्छा लग रहा है। जो भी है सब अच्छा है। मैं प्रसन्न हूँ, पंच परमेष्ठी की शरण में हूँ। पाँचों ही परमेष्ठी की आभा सारे विश्व को देखते हुए भी, जानते हुए भी अपने स्वभाव में लीन हैं। हमें भी उसी स्वभाव में लीनता, उसी स्वभाव में आनंद, उसी स्वभाव में शांति, उसी स्वभाव में निर्विकल्पता महसूस हो रही है। हमारी आत्मा साक्षी बनकर के आवाज को केवल सुन रहा है। अपनी आँखों में जो प्रकाश लग रहा है उसको देख रहा है। अपने मन में जो विचार आ रहा है उसको भी साक्षी बनकर के जान रहा है। सब कुछ स्वीकार करते हुए, सब कुछ अपनाते हुए अपने चित्त को परम शांत आनंदित महसूस करें। चेहरे की प्रसन्नता भी सहज रूप में बनी रहे। रीढ़ की हड्डी जहाँ समाप्त होती है मूलाधार चक्र के पास 'ण' लिखा है उसी के चार अंगुल ऊपर 'मो' लिखा है। उस नकारात्मक ऊर्जा को मारने के लिए 'णमो' बहुत बड़ा अस्त्र है। अपने बैठने वाले उस स्थान को भीतर की ओर संकुचित करते हुए **'ण मो'** इन अक्षरों को गति प्रदान करें। ण मो, ण मो, ण मो, ण मो, ण मो, ण मो।

जहाँ हमारा शरीर टिका है उस मूलाधार चक्र को ऊपर की ओर खीचें। ण मो, ण मो। नाभि चक्र पर **'आ'** लिखा है। जहाँ हमारा शक्ति का केंद्र है। उस नाभि चक्र पर अपने अंतर्मन से **'इ'** लिखें। ऊपर अपना मन उस कंठ स्थान पर लाएँ। उस कंठ पर **'रि'** लिखें। र पर इ की मात्रा **'रि'**। ऊपर आएँ, जहाँ अपनी दोनों भौंहें मिलती हैं। नाक की हड्डी जहाँ से प्रारंभ होती है। उस ज्ञान केंद्र पर **'या'** लिखें अंतर्मन से लिखें। अपने मूलधन सिर के ऊपर सबसे ऊँचे स्थान पर **'णं'** लिखें। एक बार प्रत्येक अक्षर को ध्यान में लाते हुए अपने मन को मूलाधार से ऊपर सहस्रार चक्र तक स्पर्श करें।

ण मो आ इ रि या णं-२

बंद आँखों से भी हमें बाहर प्रकाश महसूस होता है। उस प्रकाश को भीतर की ओर ले जाएँ और सुनहरे अक्षरों को स्वर्णिम अक्षरों को अपने भीतर देखें। हमने जो अक्षर लिखे थे उनमें हमने गहरा पीला रंग भर दिया है और वे सब अक्षर हमें स्वर्ण के समान पीले रंग के दिखाई दे रहे हैं। नाभि पर **'आ'**, हृदय पर **'इ'**, कंठ में **'रि'**, मस्तिष्क पर **'या'** और सिर के ऊपरी भाग में **'णं'** गहरे पीले रंग में ये सभी अक्षर हैं।

ण मो आ इ रि या णं-२

महसूस करें हम आचार्य परमेष्ठी की शरण में हैं। पूरा शरीर उन आचार्य परमेष्ठी की किरणों से पवित्र हो रहा है। शरीर के सभी केंद्रों पर लिखे हुए अक्षरों का प्रकाश रीढ़ की हड्डी की ओर भी जा रहा है और बाहर की ओर भी आ रहा है।

आ इ रि या णं

पूरा शरीर सुनहरे रंग से भर गया है। स्वर्णिम आभा, स्वर्णिम कांति। आचार्यों के ये स्वर्णिम अक्षर मंगलता के प्रतीक होते हैं, पवित्रता के प्रतीक होते हैं। पीला रंग पवित्रता का सूचक है, मंगलता का सूचक है। हमारे शरीर के सभी केंद्र मंगलमय पवित्र हो गए हैं।

ण मो आ इ रि या णं

हमारे समक्ष अंतर्मन में बंद आँखों से देखेंगे। आचार्य महाराज की तस्वीर हृदय स्थल पर उभर रही है। बहुत ही स्पष्ट हमें उनका दर्शन हो रहा है। हम उनके पास में बैठे हैं, थोड़ी ही देर में गुरु महाराज ने तीन शिष्यों को बुलाया और कहा आप लोग अपनी-अपनी साधना करने के लिए अपने-अपने इच्छित स्थान पर चले जाएँ और बारह वर्ष के बाद इसी स्थान पर लौटकर के आना। तीनों शिष्य अपनी-अपनी साधना करने चले गए और १२ वर्ष बाद लौटकर के आए। नदी के किनारे तीनों शिष्य बैठे हैं। उनमें से एक शिष्य दूसरे से पूछता है आपने बारह साल में क्या उपलब्ध किया, क्या सिद्धि प्राप्त की। पहला व्यक्ति कहता है- मैंने १२ वर्ष में निरंतर आराधना और साधना से आकाश में उड़ना सीख लिया। वह पक्षियों की तरह आकाश में उड़कर दिखाता है। अंतर्मन से देखें नदी का किनारा। दूसरा शिष्य कहता है- तुमने आसमान में उड़ना सीखा। हमने पानी पर चलना सीख लिया। वह नदी के पानी पर ऐसे चलकर दिखा रहा है जैसे हम जमीन पर चलते हैं। थोड़ी ही देर में दोनों आपस में झगड़ने लगते हैं। एक कहता है आकाश में उड़ना कठिन है, दूसरा कहता है पानी पर चलना कठिन है। तीसरा शिष्य वहीं बैठा है आत्म

आराधना में डूबा हुआ शांत भाव से। १२ वर्ष के बाद भी वह केवल गुरु भक्ति में डूबा है। एक ही उच्चारण करता है।

ण मो आ इ रि या णं-३

दोनों का झगड़ा वह अपनी बंद आँखों से देख रहा है। अंतर्मन में केवल णमो आइरियाणं का ध्यान चल रहा है। वह दोनों शिष्य उसे देखते हैं और झगड़ते-झगड़ते उसके पास आ जाते हैं। उसको झकझोरते हैं। वह अपनी आँखें नहीं खोलता वह उससे गुस्सा करते हैं, चिल्लाते हैं। पूछते हैं तूने १२ वर्ष में क्या सीखा। वो फिर भी आँखें नहीं खोलता, कोई उत्तर नहीं, कोई प्रतिक्रिया नहीं। वे दोनों साधु उस तीसरे साधु पर और गुस्सा करते हैं कि तूने १२ वर्ष में क्या सीखा, मुझे बता। कौनसी सिद्धि प्राप्त हुई मुझे दिखा। वह कुछ नहीं बोलता। आँखें बंद हैं और चेहरे पर प्रसन्नता है। भीतर एक ध्वनि है।

ण मो आ इ रि या णं।

उसी समय पर गुरु महाराज वहाँ पहुँच जाते हैं। देखते हैं तीनों शिष्य १२ वर्ष के बाद आए हैं। पूछते हैं क्या सिद्ध कर लिया। पहला वाला तुरंत उड़ के दिखाता है। दूसरा वाला पानी पर चलकर दिखाता है और तीसरा केवल गुरु के चरणों को पकड़ लेता है। मेरी लाज आप बचाना, मुझे न पानी में तैरना आया न चलना आया। मुझे न हवा में उड़ना आया। मैंने केवल आपके चरणों का ध्यान किया और अपने मन को पवित्र बनाया। गुरु महाराज पहले शिष्य से कहते हैं तूने जो सीखा वह काम तो एक पक्षी भी कर लेता है, तेरी सिद्धि उस पक्षी से ज्यादा नहीं है। दूसरे शिष्य से कहा कि तूने जो सीखा वह एक मछली भी कर लेती है, तेरी सिद्धि उस मछली से ज्यादा नहीं है। इसको देख, तुम दोनों के क्रोध को, तुम दोनों के गुस्से को कितने प्रसन्न भाव से बिना प्रतिक्रिया के ये सहता रहा, जो ये कर रहा है उसका नाम आत्मसिद्धि है। उस आत्मसिद्धि के लिए बारह वर्ष नहीं बारह हजार वर्ष भी लग जाएँ तो कम हैं। आत्मसिद्धि से बढ़कर कोई सिद्धि नहीं और वह शिष्य गुरु महाराज के चरणों में बैठा है। दोनों शिष्यों को अपनी अज्ञानता का बोध होता है और शांत शिष्य को देखकर उनके मन में भी भाव आता है।

ण मो आ इ रि या णं-२

मन की पवित्रता को महसूस करें। दुनिया को कुछ नहीं दिखाना। स्वयं को देखो, स्वयं को जानो। जो तुम्हें भीतर महसूस हो रहा है बस वही तुम हो। तुम्हारा शरीर तुम्हारा नहीं है। जो तुम्हें

संवेदन में आ रहा है, वह ज्ञान आत्मा ही तुम हो। जितनी देर तुम उस ज्ञान आत्मा को देखोगे, शरीर को भिन्न देखोगे, तुम्हारे अंदर आनंद ठहरता जाएगा।

श्वास को सामान्य रखो। जैसी भी श्वास जहाँ तक जा रही है जाने दो। शरीर को सहज छोड़ दो। मन की प्रसन्नता बनाकर रखो। पूरे शरीर को हमने छोड़ दिया फिर भी मैं अपने आपको महसूस कर रहा हूँ।

आचार्य पूज्यपाद महाराज ये भी कहते हैं कि मुझे कोई जान नहीं सकता, मैं किसी को अपने बारे में बता नहीं सकता। जो मैं महसूस कर रहा हूँ, अनुभव कर रहा हूँ वह प्रकाश की तरंग, प्रकाशमय आत्म ज्योति कोई भी देख नहीं सकता। कोई भी जान नहीं सकता। भीतर ही भीतर इतना आनंद महसूस करो, इतनी शांति महसूस करो बाहर की कोई भी आवाज हमारे लिए क्लेश का कारण ना बने। हम सिर्फ उसको सुन रहे हैं, कोई प्रतिक्रिया नहीं कर रहे हैं। हम अपने आप में हैं।

केवल एक आत्मा

ण मो आ इ रि या णं

इस **'णं'** के उच्चारण से अपने सिर के अंदर ध्वनि को भर दो। इतनी जोर से **'णमो आइरियाणं'** का उच्चारण करना कि अपनी अधोगामिनी ऊर्जा उर्ध्वगामिनी बनें। सभी चक्रों पर सभी अक्षरों पर वह सुनहरा प्रकाश और ज्यादा खिलता हुआ दिखाई दे और **'णं'** हमारे मस्तिष्क में गूंजे।

ण मो आ इ रि या णं-२

पूरी ताकत लगा करके **'णं'** को अपने मस्तिष्क में गुंजायमान करें। सभी चक्रों की शक्ति अपने मस्तिष्क के ऊपरी भाग में पहुँचाएँ। णमो आइरियाणं

दोनों हाथ आँखों के पास लाएँ। आँखों पर रखें। धीरे से अपनी आँखें खोलें। स्वर्णिम प्रकाश से श्वेत प्रकाश को देखें। धीरे-धीरे देखें। अंतर जगत से ब्राह्य जगत में आएँ। इस अंतरंग की शांति को दिनभर आज महसूस करेंगे। कोई भी हमें परेशान करने वाला नहीं है। कोई भी हमें दुखी करने वाला नहीं है। मैं एक शांत चित्त आत्मा हूँ। इसी आनंद को आज दिनभर महसूस करेंगे।

ध्यान–५

अपने शरीर की अनुकूलता के लिए अरिहंत और सिद्ध की मुद्राएँ बहुत लाभदायक हैं। अपने 'अंतर' तक पहुँचने के लिए एक अर्हं क्रिया की जाती है। आप अर्हं शब्द से परिचित होंगे। अ र्ह म्। उस अर्हं क्रिया में जो हम अपने हाथ जोड़े हुए हैं, अपनी अंगुलियों को एक दूसरे के ऊपर थोड़ा-सा जोर डालेंगे और इसी मुद्रा में अपनी हथेलियों को भी एक-दूसरे से दबाएँगे। जोर से अपने हृदय के पास रखते हुए अपने ही हाथों को दबाएँ और जोर से दबाएँ। गहरी श्वास लेते हुए अपने हाथों पर जो हथेलियाँ हैं उन पर 'अर्हं' लिखा हुआ देखें और ये महसूस करें कि वह अर्हं की शक्ति हमारे दोनों हाथों से पूरे शरीर के अंदर प्रवेश कर रही है।

ओम् ह्रीं श्रीं अर्हं नम:-५

अपने दोनों हाथों की हथेलियों को 'अर्हं' की शक्ति से भरा हुआ महसूस करें कि हमारे हाथ के बीचोंबीच में 'अर्हं' लिखा हुआ है। दोनों हाथ मिले हुए हैं और शक्ति का आदान-प्रदान पूरे शरीर में हो रहा है। उन्हीं हाथों को अपनी आँखों पर लगाएँ और अंधकार जो हमारी आँखों के सामने है उसी में परिवर्तित होने वाली उन तरंगों को देखने का प्रयास करें। जो हमें हाथ लगाने के बाद दिखाई दे रहा है। हम उसी में गहराई से देखें। 'अर्हं' को लिखा हुआ देखें। जैसा भी हमें नीला, काला, सफेद सामने वातावरण दिखाई दे रहा है उसी में हम अर्हं लिखें। सफेद रंग में 'अर्हं' हम देख रहे हैं। वह 'अर्हं' की ध्वनि जिसका अभी हमने उच्चारण किया वह अक्षर हमारी आँखों के सामने है। आँखें बंद हैं लेकिन फिर भी हमें वो अक्षर दिखाई दे रहे हैं।

ॐ ह्रीं श्रीं अर्हं नम:

आँखों को बंद रखेंगे, हथेलियों को आँखों के ऊपर लगाकर रखेंगे। उस अंधेरे में 'अर्हं' लिखा हुआ सफेद प्रकाश के साथ 'अ र्हं' केवल दो अक्षर अपने अंतर्मन की आँखों से लिखकर अपने सामने देखेंगे और उस प्रकाश को बढ़ाएँगे 'अर्हं' की ध्वनि के साथ।

हमारे साथ ही बोलेंगे अ र्ह म् ऽऽऽऽ

'अर्हं' की आकृति बनी है। सफेद अक्षरों में वह 'अर्हं' हमें लिखा हुआ दिखाई दे रहा है। हमारी आँखों से वह सफेद प्रकाश निकल रहा है, 'अर्हं' का प्रकाश हमारी आँखों में भी प्रवेश

कर रहा है।

अ र्ह म् ऽऽऽ-३

थोड़ा सा ध्यान दें। आगे की क्रिया आपको इन्हीं हाथों को अपने कान के पास लगाना है। पहले सुनें, जब आप दोनों हाथों को अपने कान के पास लगाएँ। अपने भीतर 'रम' की गूँज को सुनेंगे। जैसे रेलगाड़ी की आवाज आती है, वैसे ही भीतर से उस आवाज को सुनेंगे और उसमें 'अर्हं' उस ध्वनि के साथ स्वयं आपको सुनाई पड़ेगा। दोनों कानों पर अपने वो हाथ लगा कर अपनी ही उस आवाज को सुनें। सामान्य मुद्रा में बैठें एवं आँखें बंद रखेंगे।

इस 'अर्हं' की आवाज को आप सुनने का प्रयास करेंगे। भीतर से 'अर्हं' की ध्वनि

अ ऽऽ र ऽऽ ह ऽऽ म्

गहरी श्वास लें, शरीर को सहज बिना अकड़न के ढीला छोड़ दें। जागृति रखें, मन को प्रसन्न रखें, चेहरे पर प्रसन्नता लाएँ। रीढ़ को सीधी रखें। 'अर्हं' में अरिहंत परमात्मा, सिद्ध परमात्मा, साधु आत्मा सभी कुछ समाए हैं। अरिहंत तीर्थंकरों के नाम 'अ' से लेकर 'ह' तक के इन सब अक्षरों में समाए रहते हैं। वर्णमाला का सबसे पहला अक्षर अ होता है और सबसे अंतिम अक्षर **'ह'** होता है। बाकी के जो अक्षर बनते हैं वो सब मिलकर बनते हैं। मूल अक्षर अ से लेकर ह तक होते हैं जिसमें पूरी द्वादशांग जिनवाणी का सार समाया रहता है। यह 'अर्हं' पूरी द्वादशांग जिनवाणी का सार है। इस अर्हं को अपने मस्तिष्क के ऊपरी भाग पर लिखें। इस अर्हं को अपने मस्तिष्क के ऊपरी भाग पर लिखें। सफेद खड़िया से लिखें, चूने से लिखें, दूधिया रंग से लिखें। 'अर्हं' और एक प्रकाश की किरण उस मस्तिष्क से पूरे शरीर में फैलती हुई देखें।

तीर्थंकरों के नाम मन को पवित्र करते हैं। शरीर को पवित्र करते हैं। तीर्थंकरों के नाम में इतनी शक्ति होती है कि वे मंगलकारी होते हैं। अपने घुटने के पास ऋषभ लिखा हुआ देखें 'ऋ ष भ'। जाँघों की ओर आते हुए 'अ जि त'। अपने कमर से पीछे के भाग पर रीढ़ की हड्डी के दाईं ओर पर 'संभव', कंधे तक 'संभव' नाम को देखें। कंधे से ऊपरी भाग व गर्दन से होते हुए 'अभिनंदन'। दूसरे घुटने से उस घुटने के ऊपर 'सुमति' और अपनी बाईं जाँघ के ऊपर 'पद्म प्रभु', बाईं ओर अपनी पीठ के पीछे रीढ़ की हड्डी के बाईं ओर 'सुपार्श्वनाथ'। कंधे के ऊपर सिर के ऊपरी भाग तक 'चंद्रप्रभु', अपने दाईं ओर के हाथ के ऊपर 'पुष्पदंत' लिखा हुआ देखें। उस सफेद प्रकाश में इन सब नामों को लिखा हुआ देखें। हाथ के ऊपर कोहनी तक 'शीतलनाथ', कोहनी से ऊपर

कंधे तक 'श्रेयांसनाथ', कंधे से ऊपर सिर के ऊपरी भाग तक 'वासुपूज्य', बाएँ हाथ पर 'विमलनाथ' कोहनी के भाग तक, हथेली के ऊपर से कोहनी तक 'अनंतनाथ', कोहनी से ऊपर कंधे तक 'धर्मनाथ' और कंधे से सिर के ऊपरी भाग तक 'शांतिनाथ'। बाईं तरफ के कान के ऊपर 'कुंथुनाथ' और दाएँ कान के ऊपर 'अरहनाथ'। नाभिचक्र पर 'मल्लिनाथ', हृदय चक्र पर 'मुनि सुव्रत', कंठ पर 'नमिनाथ'। दोनों होंठों के बीच के भाग पर 'नेमिनाथ', मस्तिष्क पर अर्हं के ऊपर 'पार्श्वनाथ और सिर के ऊपरी भाग पर 'महावीर'। हमारा पूरा शरीर चौबीस भगवान् के पवित्र नामों से मंगलमय हो गया है। सुरक्षा कवच पूरे शरीर के ऊपर तैयार हो गया। असीम शक्ति से अपने आपको भरा हुआ महसूस करें।

ऋषभ, अजित, संभव, अभिनंदन, सुमति, पद्म, सुपार्श्व, चंद्रप्रभु, पुष्पदंत, शीतल, श्रेयांसनाथ, वासुपूज्य, विमल, अनंत, धर्मनाथ, शांतिनाथ, कुन्थुनाथ, अरहनाथ, नाभिचक्र पर मल्लि, हृदय चक्र पर मुनि सुव्रत, कंठ पर नमिनाथ, होंठों पर नेमिनाथ, मस्तक पर पार्श्वनाथ और सिर के ऊपरी भाग पर महावीर। इन सब शक्तियों का स्रोत दोनों भौंहों के बीच में लिखा हुआ वह 'अर्हं' जिसका प्रकाश हमारे शरीर में भीतर की ओर फैल रहा है। उस 'अर्हं' के प्रकाश में ये सभी अरिहंतों का नाम में स्पष्ट दिखाई दे रहा है। पूरे शरीर में 'अर्हं' का प्रकाश चौबीस तीर्थंकरों के पवित्र नाम का ग्रहण करने से शरीर मंगलमय होता है, मन मंगलमय होता है, जीवन मंगलमय होता है। हम धन्य हैं।

इस पंचमकाल के अंत में चतुर्थ काल के सभी चौबीस तीर्थंकरों के हो जाने के बाद हम उन चौबीस तीर्थंकरों के नाम जो हो चुके, उनका स्मरण करके अपना जीवन मंगलमय बनाते हैं। भरत चक्रवर्ती युग के आदि में भगवान् आदिनाथ के समक्ष होते हुए भी २४ तीर्थंकरों के नाम का स्मरण करता था। उसे २४ तीर्थंकरों के नाम इतने प्रिय थे कि जब वह राजमहल में प्रवेश करता था तब उसने अपने २४ दरवाजों के ऊपर २४ घंटे लटकाए थे। उन घंटों की ध्वनि से एक-एक तीर्थंकर को नमस्कार करता हुआ वह अपने घर के अंदर प्रवेश करता था। हर एक घंटे की नाद में वह एक तीर्थंकर को स्मरण करता था। अंतर्दृष्टि आत्मा पूर्व काल में हुए, हो रहे, होंगे, सभी तीर्थंकरों को, उनके नाम को मंगल के रूप में स्वीकार करता है। अपने शरीर को २४ नामों से युक्त, मंगल भावों से युक्त, शांत भावों से युक्त निरंतर देखने का अभ्यास करें।

अ ऽऽ र्हं ऽऽ म्

अपने उस प्रकाश को जो अर्हं के रूप में ज्ञान केंद्र पर लिखा हुआ है, उसको निरंतर देखें। उसी प्रकाश में २४ तीर्थंकरों के नाम को देखें। बाहर की कोई भी आवाज, बाहर का कोई भी विकल्प अपने मन में परेशानी का कारण ना बनने दें। बड़ी श्रद्धा, बड़ी भक्ति के भाव के साथ

ऋषभ अजित संभव अभिनंदन सुमति पद्म सुपार्श्व जिनराय
चंद, पुहुप, शीतल, श्रेयांस जिन, वासुपूज्य पूजित सुरराय।
विमल अनंत धर्म जस उज्ज्वल, शांति, कुंथु, अरह, मल्लि मनाय
मुनि सुव्रत, नमि, नेमि, पार्श्व जिन, वर्धमान पद शीश नवाय।।

महसूस करें भगवान् आदिनाथ के चरण। मन से उस कैलाश पर्वत पर पहुँचे जहाँ पर उन आदिनाथ भगवान् को मोक्ष हुआ। मन की गति से बढ़कर दुनिया में किसी भी पदार्थ की गति नहीं, न सत्य की, ना प्रकाश की। मन से चंपापुरी पहुँचे, वासुपूज्य भगवान् लाल रंग की वह महाकाया जिसको छोड़कर वे सिद्धालय में विराजमान हो गए। वह उनका मोक्ष स्थान, भगवान् का नाम पवित्र है। वह जहाँ से मोक्ष गए वह स्थान पवित्र है। उसके नाम का उच्चारण भी अपने लिए मंगलकारी है। भगवान् नेमिनाथ उस गिरनार पर्वत की पाँचवीं टोंक के ऊपर नीलवर्ण की महाकाया के साथ खड़े हुए हैं और देखते ही देखते उनका शरीर कपूर की भाँति उड़ गया, विलीन हो गया। भगवान् सिद्धालय में, उनकी आत्मा अजर-अमर हो गई। वह उर्जयंत पर्वत सबके लिए मंगलकारी है। भगवान् महावीर स्वामी उस पद्म सरोवर के तालाब के ऊपर बीचोंबीच में स्वर्णिम आभा को लिए हुए सात हाथ की वह काया, हमारे मन ने जैसे ही उनको देखा, उनकी काया को भी हमने अपने सामने-सामने विलीन होते देखा। कपूर की भाँति उड़ते हुए देखा, वह भी सिद्ध गति में हमेशा के लिए विराजमान हो गए। वह सम्मेद शिखर, बीस तीर्थंकरों की वह पवित्र भूमि, चारों ओर हम देख रहे हैं ऊँची-ऊँची पहाड़ियाँ, यात्रीगण धीरे-धीरे चलते हुए उस सम्मेद शिखर की चोटी पर पहुँच रहे हैं और हम सबसे पहले वहाँ पर पहुँच गए। ललितकूट पर भगवान् चंद्रप्रभु की टोंक पर हम बैठे हैं। पूरा दृश्य देख रहे हैं। इतनी ऊँचाई पर बैठने के बाद वहाँ हमें कोई भी विकल्प नहीं रहता। निर्विकल्प, निर्विचार, चारों ओर जंगल ही जंगल, चारों ओर शांति ही शांति। सम्मेद शिखर की उन पहाड़ियों पर अंतर्मन से हम पार्श्वनाथ भगवान् की टोंक पर पहुँच गए। उनके चरण ऊपर भी बने हैं, नीचे भी बने हैं। जहाँ से वो मोक्ष गए वह चरण, उनके पीछे साक्षात देवों के द्वारा पूजित उन चरणों की हम वंदना कर रहे हैं।

अपने हाथ से उन पार्श्वनाथ भगवान् के उन चरणों को स्पर्श कर रहे हैं। चौबीस तीर्थंकरों की ये मंगल भूमियाँ, सिद्ध भूमियाँ, आत्मा के लिए मंगलकारी हैं। वहीं पार्श्वनाथ भगवान् की टोंक पर बैठ जाओ, थोड़ी देर के लिए रुक जाओ। अपने दोनों हाथों को अपनी आँख के पास तक लाओ। पूरे शरीर को शक्तिमान महसूस करते हुए अर्हं से भरे हुए उन हाथों को अपने शरीर से स्पर्श करो। शरीर के रोगों का निष्कासन आपके द्वारा, आपकी शांति से होगा। अपनी आँखों को सामने धीरे से खोलें और एक मंगलगान णमोकार मंत्र की शक्ति का-

णमोकार मय सारा जीवन बना लो।
महामंत्र से चेतना को सजा लो
णमोकार के पंचपरमेष्ठी प्यारे
भरे शुद्ध भावों से जग में है न्यारे
महामंत्र की शक्ति निज में मिला लो
णमोकार्मय सारा जीवन बना लो
महामंत्र की शक्ति से चेतना को सजा लो
रहे ज्ञान ही ज्ञान में मेरा ध्यान
महामंत्र सब दुख हर ले महान
सभी हो सुखी और सब का भला हो
णमोकार्मय सारा जीवन बना लो
न तन में हो रोग ना मन में अशांति
हो सारे जहाँ में परम शांति शांति
परम शांति अर्हम् सभी को मिला लो
महामंत्र से चेतना को सजा लो
णमोकार्मय सारा जीवन बना लो
महामंत्र से चेतना को सजा लो
ओम शांति-३

अपनी आँखें खोलकर सावधान होकर बैठ जाएँ।

ध्यान–६

अगर ध्यान की प्रक्रिया निरंतर चलेगी तो किसी ओर आलंबन के बिना केवल शब्द की शक्ति के माध्यम से हम जीवन में बहुत बड़े–बड़े परिवर्तन ला सकते हैं। णमोकार मंत्र के माध्यम से सर्वप्रथम हम इस णमोकार मंत्र का उच्चारण करके इस परिसर को मंगलमय बनाएँ और ऊर्जावान बनाएँ। जितने भी लोग यहाँ बैठते हैं, कोई भी ये विकल्प ना करें कि हमें ध्यान करना आता है या नहीं आता। इस विचार को छोड़ दो। सबको ध्यान करना आता है क्योंकि सबके पास में मन है। आप केवल यहाँ पर बैठे रहो जो भी आपके लिए विचार आए, उस विचार से आप जुड़ते जाओगे। अगर आप हमारे साथ चलोगे तब तो हम आपको बहुत ऊँचा ले जाएँगे और अगर आप हमारे साथ नहीं भी चल पाए और आप केवल आँख बंद करके बैठे रहोगे तो आपको लगेगा हम जहाँ थे वहाँ से बहुत ऊपर उठ गए। इतना आपको महसूस होगा। इसलिए कभी भी ये मत सोचना कि हमें ध्यान करना आता नहीं या हम ध्यान नहीं कर पाते। हमको ध्यान लगता नहीं, ये विकल्प आप छोड़ दो। जितना मन लगेगा वह आपके लिए आगे की वृद्धि का कारण बनेगा, चाहे वो छोटा बच्चा हो, चाहे वो बूढ़ा आदमी हो, चाहे वो जवान व्यक्ति हो। सबके लिए इस प्रक्रिया में सहज रूप से गुजरना है और बिल्कुल शांत भाव से इस वातावरण का आनंद लेना है।

णमो अरिहंताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आइरियाणं, णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्वसाहूणं

जोर से एक बार णमोकार की ध्वनि करेंगे जिसमें पंच परमेष्ठी निहित होते हैं। ओम यह अनादि मूलमंत्र है। इस मेल के अंदर पंचपरमेष्ठी की शक्तियाँ और उनकी विशुद्धियाँ निहित है। इस ओम के माध्यम से हमारी ध्यान की यात्रा प्रारंभ होती है। इसलिए ये 'ओम्' ध्यान के मंत्रों का मूलमंत्र माना जाता है। 'अर्हं' ध्यान का अंतिम सारभूत तत्व है। मूल के बाद जैसे फल लगते हैं उसकी सुगंधी फैलती है और उन फलों से हम आनंदित होते हैं ऐसे ही 'अर्हं' ये भी 'ओम्' की तरह एक बीजाक्षर मंत्र है जिसकी महिमा पूर्व ऋषियों ने, आचार्यों ने, मनीषियों ने और मुनियों ने बहुत गाई है। उस 'अर्हं' को भी हम ध्यान में लाएँगे और 'ओम्' को भी ध्यान में लाएँगे। सर्वप्रथम ओंकार का उच्चारण। कमर को सीधी रखें। ओमऽऽऽऽ–३ ॐ ह्रीं अर्हं नमः–३

पंच नमस्कार मुद्रायें करें– ५–५ बार।

ॐ ह्रीं श्रीं अर्हं नमः – १८ बार।

श्वासोच्छवास से णमोकार मंत्र– ९ बार।

नाभि पर 'ओम्' को लिखें, नाभि पर 'उ' बनाकर अपने ही अंतर्मन से उसके पीछे मात्रा निकालकर उसके ऊपर एक चंद्रबिंदी बनाएँ। ओम अपनी नाभि के ऊपर लिखें। मन को प्रसन्न रखें। चेहरे पर हल्की सी प्रसन्नता लाएँ। बहुत रिलेक्स के साथ नाभि पर 'ओम', हृदय स्थान पर 'ह्रीं' बनाएँ। कंठ स्थान पर आएँ, 'श्रीं' लिखें जैसे हम अपने घर की दीवारों पर 'श्रीं' लिखें, अपने कंठ पर भी 'चंद्रबिंदु' बनाएँ। बिल्कुल स्पष्ट लिखा हुआ हमें दिख रहा है और ऊपर चले जहाँ हमारी दोनों भौंहें मिलती हैं, नासिका की उत्पत्ति का स्थान, दोनों भौंहों के बीच में जो जगह है उसे ज्ञान केंद्र कहते हैं। वहाँ पर 'अर्हं' लिखना है। अपने अंतर्मन से 'अ' बनाकर 'ह' बनाकर उसके ऊपर 'र' बनाएँ, उसी के अंदर चंद्रबिंदु बना दें, फिर 'म' बना लें।

अंतर्मन से पूरे शरीर का निरीक्षण करें। 'अर्हं' पर ध्यान दें। श्वेत प्रकाश से प्रकाशित वह 'अर्हं' बहुत बड़ा बीजाक्षर मंत्र है। उस 'अर्हं' में बहुत शक्ति है। तीनों लोकों में उससे बड़ा गतिमान और कोई भी अक्षर नहीं है। सबको अपने वश में करने वाला वह 'अर्हं' किसी भी देव–देवता से डरने वाला नहीं है। इस 'अर्हं' बीजाक्षर का जो ध्यान करता है उसे दुनिया में किसी भी शत्रु से कोई भय नहीं रहता। देवता उसके चरणों में नमस्कार करते हैं। भूत–प्रेत उससे कोसों दूर भागते हैं। इस 'अर्हं' को अपने ज्ञान केंद्र पर प्रकाशमान होता हुआ देखें। सफेद प्रकाश से भरा हुआ वह 'अर्हं' के दो अक्षर हैं केवल। ऊपर 'र' की मात्रा और चंद्रबिंदु। इस 'अर्हं' की बहुत गति है। इस 'अर्हं' को अपनी आँखों की पलकों के ऊपर रखें। कभी सीधी आँख की पलक के ऊपर, कभी बाईं आँख की पलक के ऊपर, कभी अपनी नासिका के दोनों छिद्रों से अपने मुख में प्रवेश होता हुआ देखें। 'अर्हं' ये गतिमान हो रहा है। हमारे तालू स्थान पर मुँह के अंदर जहाँ जीभ अपने अंदर टकराती है, वहाँ 'अर्हं' पहुँचा है। कंठ स्थान पर 'अर्हं'। गहरी श्वास लें। हृदय स्थल तक इस 'अर्हं' को पहुँचाएँ और गहरी श्वास लें, नाभि स्थान तक इस 'अर्हं' को पहुँचाएँ। इस 'अर्हं' को रोक पाना बहुत कठिन है। अपने शरीर के अंदर इस अर्हं को अपनी रीढ़ की हड्डी के पिछले भाग तक घुमाएँ।

वह 'अर्हं' शरीर से बाहर निकल गया है। बहुत दूर तक उसकी गति जैसे हम कोई टॉर्च को बहुत दूर तक फेंकते हैं। उसका प्रकाश आकाश तक हमें दिखाई देता है। दूर तक उसकी बिंदुएँ हमें दिखाई देती हैं। ऐसे ये 'अर्हं' बहुत दूर, एक क्षण में ये कैलाश पर्वत पहुँच गया। अगले ही क्षण में ये चम्पापुरी पहुँच गया। 'अर्हं' घूमता हुआ देखें। इसकी गति बहुत तीव्र है। इस 'अर्हं' को

वश में करना दुनिया की समस्त शक्तियों को वश में कर लेना है। अगले ही क्षण में सम्मेद शिखर की पार्श्वनाथ टोंक पर इस 'अर्हं' को देखें। जैसे लाइट जब हम दूर फेंकते हैं तो उसकी केवल किरणें, कुछ बिंदुएँ दिखाई देती हैं। ऐसे ही लाल बिंदु के रूप में, सफेद बिंदु के रूप में 'अर्हं'। एक ही क्षण में ये सुमेरू पर्वत पर पहुँच जाता है। एक ही क्षण में ये हिमालय पर्वत पर आ गया। एक ही क्षण में ये अमेरिका पहुँच गया। अगले ही क्षण में ये विदेह क्षेत्र पहुँच गया। इस 'अर्हं' की गति को देखें अंतर्मन से। चारों ओर से 'अर्हं' कभी पाताल लोक में पहुँच गया। नरक की सप्तम भूमि तक पहुँच गया। एक ही क्षण में ये सौधर्म स्वर्ग के विमान में प्रवेश कर गया।

'अर्हं' घूम रहा है पूरे तीन लोक में निर्बाध रूप से। यह 'अर्हं' चंद्रमा के विमान से टकरा गया और चंद्रमा के विमान के ऊपर भौंरे की तरह मंडरा रहा है, 'अर्हं' देखें। चंद्रमा के विमान से स्पर्धा कर रहा है। चंद्रमा का प्रकाश इस 'अर्हं' के प्रकाश से फीका पड़ रहा है। इस 'अर्हं' के अंदर की शक्ति निरंतर बढ़ती जा रही है। इसका प्रकाश, इसका तेज बढ़ रहा है। चंद्रमा के विमान से ये टकरा रहा है। चंद्रमा के प्रकाश को इसने फीका कर दिया। अगले ही क्षण में ये सूर्य के विमान से टकराने लगा। सूर्य के विमान के सामने घूम रहा है। सूर्य के विमान की आभा, उसका तेज उसके तेज से परास्त हो रहा है। अगले ही क्षण में यह विदेह क्षेत्र में तीर्थंकर सीमंधर भगवान् के चरणों में पहुँच जाता है। इस 'अर्हं' की गति समझ नहीं पड़ती। अगले ही क्षण में ये कुलाचल पर्वतों पर कुलांचे भरने लग जाता है। मानसोत्तर पर्वत पर पहुँच गया। असंख्यात द्वीप समुद्रों को लांघता हुआ चला जा रहा है। एक के बाद एक द्वीप, एक के बाद एक समुद्र, एक के बाद एक द्वीप एवं समुद्र 'अर्हं' उन सब को पार करता असंख्यात द्वीप समुद्रों को पार कर गया। सबको लांघता हुआ अंत में स्वयं स्वयंभूरमण समुद्र तक पहुँच गया। उसमें गहरा उतर गया और गहरा उतर गया, समुद्र की गहराई को इसने नाप लिया। अगले ही क्षण में बाहर निकल आया पुनः जम्बूद्वीप में आ गया। अगले ही क्षण में नंदीश्वर द्वीप पहुँच गया और नंदीश्वर के भगवान् के चरणों में बैठ गया।

भँवरे की तरह जैसे हम टॉर्च से प्रकाश की किरणों को बार–बार इधर–उधर पहुँचाते हैं। ऐसे ही ये प्रकाशवान 'अर्हं' के अक्षर किसी के द्वारा रुकने वाले नहीं। हमारे मन से ये 'अर्हं' के अक्षर संचालित हो रहे हैं। वह 'अर्हं' नंदीश्वर की वंदना करके नंदीश्वर के भगवान् के देखकर लौट आया है। एक ही क्षण में ये बीना बारहा पहुँच गया। आचार्य गुरुदेव के चरणों में है 'अर्हं' के अक्षर। गुरु महाराज को पता नहीं है उनकी पूजा चल रही है और वे 'अर्हं' के अक्षर उनके चरणों

को स्पर्श करके चला आया। उनके पूरे शरीर को छू लिया और गुरु महाराज अपने ही ध्यान में रहते हैं। वह 'अर्हं' का अक्षर निर्बाध रूप से घूम रहा है। नंदनवन में पहुँच गया, वहाँ पर ऋद्धिधारी मुनि महाराज के चरणों में घूम गया, उनके मुख में प्रवेश कर गया। उनकी श्वास से उनकी नाक में प्रवेश कर गया और उनके हृदय से उनकी नाक में प्रवेश कर गया और उनके हृदय में प्रवेश कर गया, उनकी नाभि तक पहुँच गया। वह 'अर्हं' चारों ओर निर्बाध रूप से घूम रहा है। वह घूमते–घूमते घूमते–घूमते सर्वार्थसिद्धि विमान तक पहुँच गया एक क्षण में। सबसे ऊपर ऊर्ध्वलोक का विमान जिसके आगे और कोई किसी का संसार नहीं, सर्वार्थसिद्धि से ऊपर आ गया अंतिम सिद्धशिला के पास पहुँच गया वह 'अर्हं'। देख रहा है 'अर्हं' में सब दिखाई दे रहा है। 'अर्हं' सिद्ध भगवान् की अवगाहना में अवगाहित हो रहा है। अनंत अनंत सिद्ध भगवान् पूरे ढ़ाई द्वीप की सीमा के अंदर अनंत अनंत संख्या में दिखाई दे रहे है। इस कोने से कभी उस कोने में, उस कोने से इस कोने में, चारों ओर 'अर्हं' के अक्षर घूम रहे हैं। जहाँ तुम्हारा मन करें उन 'अर्हं' के अक्षरों को ले जाओ, घूमाओ–फिराओ उसको। कितना ज्ञान है तुम्हारा, कितना जानते हो तुम। घुमाओ उन अक्षरों को, उस 'अर्हं' को, कल्पना करो पाताल लोक में तुम कितना गहरा उतर सकते हो। कल्पना करो हवाई जहाज से तुम कितनी ऊँचाइयाँ छू सकते हो। अंतरिक्ष को पार करके भी तुम कितना जा सकते हो। तीन लोक के अंदर तुम्हारा विहार कहाँ तक हो सकता है। कोने–कोने तक उस 'अर्हं' को पहुँचाओ। इतना गतिमान इतना शक्तिमान, इतना सूक्ष्म पर्याय से परिणत हुआ है। 'अर्हं' एक क्षण में हमारे मस्तिष्क के ऊपरी भाग में पुन: विराजित हो गया, जहाँ से निकला था। देखो उसको कितना प्रकाश से भरा हुआ है। उस 'अर्हं' को अपने सिर के ऊपरी भाग पर घूमता हुआ देखो, अपने दोनों कानों में घूमता हुआ देखो। अपनी नाक की नासा के छिद्रों से अपने मुख में प्रवेश करता हुआ देखो। उस 'अर्हं' को अपने घुटनों के ऊपर घूमता हुआ देखो, टिकाओ, रोको, जितना टिकेगा उसकी शक्ति भीतर के सब रोगों को दूर कर देती है। घुटनों पर वह 'अर्हं' घूम रहा है। रीढ़ की हड्डी के पिछले भाग पर उस 'अर्हं' को घूमता हुआ देखो। मेरूदंड की एक–एक गुरियों के ऊपर क्रम–क्रम से वह 'अर्हं अर्हं अर्हं' के अक्षर ऊपर चढ़ रहे हैं। गर्दन में उस 'अर्हं' को विराजमान देखो। उसकी अंगुलियों में हाथ की हथेलियों में उस 'अर्हं' को घूमता हुआ देखो। पैर की अंगुलियों में उस 'अर्हं' को देखो। पूरे शरीर के किसी भी स्थान पर उस 'अर्हं' को देखो। 'अर्हं अर्हं अर्हं अर्हं' के प्रकाश को पूरे शरीर में देखो। उस 'अर्हं' को अपनी नासा के अग्रभाग पर बैठा हुआ देखो। यह वह ध्यान का अंतिम क्षण है। आप हल्की सी अपनी आँख उतनी खोलना

जिससे केवल आपकी नाक का अग्र भाग दिखाई दे। अपनी आँख से अपनी नाक का अग्रभाग देखना। केवल अपनी नासा की ओर देखना और कुछ नहीं देखना। उस पर 'अर्हं' बैठा हुआ है। उसके अक्षर प्रकाश से प्रकाशित हो रहे और वह नासिका के ऊपरी भाग में बैठा दिखाई दे रहा।

नासा के अग्र भाग पर दृष्टि रखना। ये वह अभ्यास है जिसके माध्यम से आप दुनिया के किसी भी व्यक्ति से अपनी बात मनवा सकते हैं। इस अर्हम् को इस स्थिति में देखने वाला जीव जो भी अपने मन के अंदर भावना करता है उसकी वह भावना पूर्ण होती है। इस 'अर्हं' को अपनी नासिका के, नाक के अग्रभाग पर अपनी आँखों से देखो। ये नासाग्र दृष्टि जो अरिहंत भगवान् की होती है वैसी ही बनाओ। बहुत देर तक नासिका के अग्रभाग को देखने के लिए ताकत ना बने तो आँखें बंद करना, खोलना नहीं। पुन: अभ्यास करो नासिका के अग्र भाग को देखते रहो। जिनको ये महसूस होता है कि हमारे घर में लोग हमारी बात नहीं मानते। उन्हें अपनी दृष्टि को नासाग्र करके ये अभ्यास को बढ़ाना। लोग आपकी बात मानेंगे, लोग आपको पसंद करेंगे, लोग आपको चाहेंगे जितना आपका ये अभ्यास बढ़ेगा आपको पॉजीटिव रिजल्ट मिलेंगे। आपके बच्चे भी आपकी बात मानेंगे। आपके घर के सभी सदस्य आपकी बात मानेंगे। इस नासाग्र दृष्टि पर 'अर्हं' का चिंतन शरीर की, मन की सभी नकारात्मक ऊर्जा को बाहर फेंकने का और सकारात्मक ऊर्जा को भीतर प्रवेश कराने का बहुत बड़ा समाधान है। एक बार पूरी ताकत के साथ सिर्फ 'अर्हं' का उच्चारण करेंगे। 'अर्हं' 'अ र्ह म्' पूरे शरीर में उस गूँज को गूँजता हुआ देखें। पूरे शरीर में 'अर्हम्, अर्हम्, अर्हम्' के अक्षरों को लिखा हुआ देखें। पूरे शरीर को शक्ति से भरा हुआ देखें। अपनी ही शक्ति से अपनी ही ऊर्जा से इस अर्हम् को पूरे शरीर में घूमता हुआ देखें।

अ र ह म् अ र ह म् अ र ह म्

प्रार्थना मुद्रा में आएँगे। बहुत आनंद के साथ अपने ही मन में आँखें बंद रखते हुए, मन को प्रसन्न रखते हुए, चेहरे पर प्रसन्नता लाते हुए महसूस करेंगे, आज हम बहुत आनंदित हैं। हमें दुनिया की सब खुशियाँ आज मिल गई हैं। हमारा साक्षात्कार णमोकार मंत्र से, पंच परमेष्ठी की शक्तियों से हुआ। आज का मेरा जीवन, मेरा जन्म धन्य हुआ। बहुत आनंद के साथ अपने ही भीतर आनंदित होते हुए अपने ही शरीर से थोड़ा-थोड़ा सा हिलते हुए जैसे आप जब आनंदित होते हैं अपने ही स्थान पर अपने ही शरीर को हिलाते हुए पढ़ेंगे।

णमोकार्मय सारा जीवन बना लो
महामंत्र से चेतना को सजा लो।

ध्यान–७

अर्हं क्रिया के पश्चात् आपके हाथ अर्हम् की शक्ति से भरे हुए हैं। उन हाथों को सबसे पहले अपने नेत्रों के पास ले जाएँ। आँखों पर थोड़ा सा दबाव डालते हुए उन हाथों को रखें। थोड़ा सा घुमाएँ केवल हथेलियों को। आपकी आँखों को बहुत काम मिलता है आराम बहुत कम मिलता है। जब से आप जागते हो तब से आँखें काम ही करती रहती हैं, देखती ही रहती हैं और वह थक जाती हैं। उनके लिए आराम बहुत जरूरी है। पाँच बार क्लॉक वाइज एवं ५ बार एंटी क्लॉक वाइज घुमाएँ। हथेली से ही हल्का सा प्रेस करें। अपनी आँखों को घुमाएँ, महसूस करते हुए 'अर्हं' की शक्ति भीतर आँखों की ज्योति को बढ़ा रही है। इस 'अर्हं' की शक्ति से हमारी नेत्र ज्योति सदा ज्योतिर्मय बनी रहे। 'अर्हं' की शक्ति नेत्रों के माध्यम से हमारे शरीर में प्रवेश कर रही है। आँख पर अपने हाथों पर रखकर के जो भी हमें महसूस हो रहा है उसको देखने का प्रयास करें, जैसी भी रंगों की आकृतियाँ, अणु-परमाणु का टूटन–बिखरन जो भी आपको दिख रहा है उसे देखते रहें। ये अदृश्य जगत आपको आँख बंद करके ही दिखाई देगा। इस अदृश्य जगत में ही ब्रह्मांड की सभी शक्तियाँ भ्रमण करती रहती हैं। उन्हीं शक्तियों को हम आत्मसात करने के लिए यह अर्हम् की प्रक्रिया अपनाते हैं। महसूस करें कि यदि वे रंग बदलते-बदलते स्थिर हो गए हो तो अपने हाथ की हथेलियों को अपने कान के पास लाएँ। हथेली से कान को दबाएँ, अंगुलियों से नहीं। भीतर से 'अर्हं' की गूँज बिना कुछ आवाज किए हुए सुनने का प्रयास करें। आपके भीतर 'अर्हं' की गूँज आ रही है, आप सुनें। जैसे चलती हुई रेलगाड़ी की गूँज होती है वैसी ही गूँज आपको 'अर्हं' की गूँज सुनाई पड़ेगी। आप उसको सुनें। आँखों को बंद रखें, धीरे-धीरे अपने कान को दबाएँ। थोड़ा सा खोलें फिर दबाएँ, फिर खोलें, फिर दबाएँ। कान के पास अपने हाथ को घुमाएँ। 'अर्हं' नेत्र इंद्रिय और कर्ण इंद्रिय से आपके शरीर में आपके मस्तिष्क में प्रवेश कर रहा है, ऐसा महसूस करें। अपने दोनों हाथों को ज्ञान मुद्रा के रूप में बनाएँ। अंगूठा व तर्जनी मिली हुई रहे। बाकी की तीनों अंगुलियाँ सीधी रखें। बड़े आराम के साथ अपने घुटनों पर अपने हाथ रख कर थोड़ा सा कमर को सीधा रखकर के बैठें। शरीर को ढीला छोड़ दें। कोई चिंता नहीं करें। किसी को नहीं

देखें। मन की एकाग्रता देखने से भंग होती है। अपनी आँखों को बिल्कुल बंद रखकर, कानों से भी कोई आवाज नहीं सुनते हुए मन की एकाग्रता, मन की शांति स्वयं अनुभूत करें। एक गहरी श्वास लें... छोड़ें... और गहरी श्वास लें... छोड़ें। णमो अरिहंताणं पढ़ते हुए गहरी श्वास लें... णमो सिद्धांणं पढ़ते हुए छोड़ दें। श्वास पर णमो आइरियाणं लिखा हुआ है ऐसा ग्रहण करते हुए भीतर ले जाएँ। णमो उवज्झायाणं श्वास को बाहर छोड़ दें।

श्वासोच्छवास से णमोकार मंत्र - ९ बार।

मन को स्पंदन रहित अनुभव करें। छोड़ दें उसको। वह णमोकार मंत्र के साथ चल रहा है आरोहण-अवरोहण। केवल अपनी श्वास पर अपना ध्यान रखें। णमोकार के वह अक्षर हम ग्रहण कर रहे हैं, छोड़ रहे हैं। इसके अलावा कोई स्पंदन हमारे अंदर मन में नहीं है।

अपने निकट आना है, अपने से प्रेम करना है, अपने को महसूस करना है। हम केवल इतने ही हैं जितना हम महसूस कर रहे हैं। हम केवल वही हैं जो हम अभी अनुभव कर रहे हैं। जो हमें अभी अनुभव हो रहा है बस वही मैं हूँ। शरीर साँप की केंचुली के समान है, छोड़ देता हूँ, पुन: बन जाता है। पुन: छोड़ देता हूँ पुन: बन जाता है। आत्मा के ऊपर ये शरीर का आवरण छूटता नहीं है, नहीं चाहते हुए भी आत्मा के ऊपर ये शरीर पुन: बन जाता है। मैं तो सिर्फ उतना ही हूँ जो अपने अंदर स्पंदन से रहित संवेदन कर रहा हूँ। मेरी आत्मा में अनेक कषायें बंधी हुई हैं, निकटता से देखें, अभी मुझे ना क्रोध है, ना मान है, ना माया है, ना लोभ है। जब मेरे मन का नहीं होता तो मेरी आत्मा कितना गुस्सा करती है। आँखें निकालता है मुँह फाड़ता है। दूसरे के क्रोध के उस मुख को याद करें जब किसी ने आपके ऊपर बहुत गुस्सा किया हो। उस चेहरे को याद करें जब आपके ऊपर किसी ने बहुत गुस्सा किया हो। आप महसूस करें वह आत्मा उस क्रोध के कारण अपने आपको भूल चुकी है पर कोई आपके ऊपर अभी भी क्रोध कर रहा है, कोई अभी भी आपको गुस्सा दिला रहा है लेकिन आप बिल्कुल शांत बैठे हैं। इस ब्रह्मांड के अंदर इस लोक के अंदर आत्मा का किसी भी आत्मा से कोई संबंध नहीं है। आत्मा किसी भी आत्मा से कहीं कोई संबंध रख नहीं सकती। शरीर से शरीर का संबंध, उन संबंधों में कमी आने पर क्रोध से पागल हो जाना, यही आत्मा का पतन है। यही आत्मा के चरित्र की हानि है। मैं ऐसा ही शांत हूँ जैसा अभी महसूस कर रहा हूँ। महसूस करें हम छोटी-सी बात पर कितना तेज बोलकर अपने बच्चे को मार देते हैं। जब

कोई घटना घटती है हम दूसरों पर कितना चिल्लाते हैं, क्या हमारे चिल्लाने से वह घटना रुक जाती है। आपके घर में प्रवेश करने पर बच्चा ऊपर से दौड़ता हुआ आ रहा था। रास्ते में फिसल गया। आप चिल्ला रहे थे। आपको पता पड़ा रास्ते में फर्श पर पानी पड़ा था। वह पानी अभी-अभी नौकरानी ने फैलाया, बच्चा उस पर फिसल गया, गिर गया, आपको बच्चे पर भी चिल्लाना आया, नौकरानी पर भी चिल्लाना आया। जो उस समय सामने आया, उसी पर चिल्लाना आया। महसूस करें जो होना था वो हो गया। हमें लगता है कि बच्चे को गिरना नहीं चाहिए। बच्चे को चोट लगनी नहीं चाहिए लेकिन आप ये ध्यान रखें, बिना चोटिल हुए, बिना गिरे हुए वह बच्चा आगे नहीं बढ़ सकता। उसकी चोट ने उसके गिरने ने भी उसको कुछ सिखाया है। वह स्वयं आगे से देखकर के चलेगा। जब आप फिर कभी घर में आओगे तब वह इतनी जल्दी नहीं दौड़ेगा, यह सीख उसको मिल चुकी है। तुम्हारे चिल्लाने से कुछ नहीं होता। जो होना होता है वही होता है। हम आकुलता करते हैं, खुद को परेशान करते हैं। खुद की कषायों से खुद ही लड़ते हैं और बाहर जब हमारा क्रोध प्रकट होता है तो सारा का सारा माहौल आतंकित दिखाई देता है। हम जितनी शांति से अभी बैठे हैं, घर पर भी, ऑफिस में भी हम इसी शांति का अनुभव करेंगे। कुछ भी होने वाला हो हमारे सामने-सामने कोई गिर जाए, मेरी ही असावधानी से यदि मेरा मोबाइल गिर जाए, हम किस पर क्रोध करते हैं। दूसरे की असावधानी से हम क्रोध करते हैं, अपनी असावधानी पर हम कभी गुस्सा नहीं करते। दूसरे को सुधारने की जिद अच्छी नहीं है।

आत्मावलोकन करें। आत्म निरीक्षण के बिना हम कभी भी अपनी कषायों को जीत नहीं सकते। अभी जितना मैं महसूस कर रहा हूँ, मैं बस उतना ही हूँ। आनंद, शांति, सुख, सब कुछ हमारे अंदर हैं। क्रोध हम सबको बिगाड़ देता है। हम दूसरे को सुधारने के लिए गुस्सा करते हैं। अपने मन की दूसरे से कराने के लिए गुस्सा करते हैं। किसी को क्या मालूम तुम्हारे मन में क्या है। तुम्हारे मन को जान लेने के बाद भी वह वैसा ही करे, ये भी जरूरी नहीं है। हमारे अधीन केवल हमारा स्वयं का परिणमन है जब हम अपने ही मन को अपने ही परिणमन को अपने ही अधीन अपने क्रोध को नहीं संभाल पाते तो हम दूसरों को क्या संभालेंगे। बच्चे से गुस्सा करना छोड़ दें। पत्नी से गुस्सा करना छोड़ दें, भाई से गुस्सा करना छोड़ दें। अपने मन को इतना स्पंदन रहित बनाएँ जो हो रहा है हम उसको सिर्फ देखें। हमारे अच्छे करने के

बाद भी बहुत कुछ बुरा हो जाता है। हमने बच्चे को घर से बाहर पढ़ने के लिए भेजा, वह जिस बस/टैक्सी में गया वहाँ से लौटकर के वापस किस रूप में आए, कुछ नहीं कह सकते। हमारा परिणमन केवल हमारे द्वारा अनुभूत होता है। दूसरे का परिणमन दूसरे के हाथ में है। हम उस आत्मा के रखवाले नहीं हैं। हम उस आत्मा के केवल लालन-पालन करने वाले हैं। हमें सिर्फ उसको बढ़ाना है, बढ़ते हुए देखना है वह जैसे भी बढ़े, चाहे गिरकर बढ़े, चाहे चोट खाकर बढ़े, उसे बढ़ने देना है। मन के क्रोध ने घर में कितनी बार अशांति फैलाई है। हमने कितनी बार घर के लोगों को परेशान किया है, कितनी बार अपनी माँ को रुलाया है, कितनी बार अपनी पत्नी को रुलाया है। कितनी बार अपने बच्चों को रुलाया है। जब वो नहीं माने तो उन्हें फिर मनाया है लेकिन हम अपने क्रोध को नहीं रोक पाए हैं। हमारी शांति इस क्रोध ने भंग की। इस शांति के साथ एक भी दिन हमारा गुजर जाए, मनुष्य जीवन सफल हो जाए। महसूस करें वह घटना जब आपके सामने बहुत आक्रोश के साथ उसने लड़ना प्रारंभ कर दिया हो, दो पागल कुत्तों की तरह एक भौंक रहा है दूसरा भी भौंक रहा है। हमने अपने मन को पशु बना दिया, कुत्ता बना दिया। मेरी आत्मा केवल ज्ञानमय है, ज्ञान शरीरी है। पूरे शरीर को क्रोध मय क्रोध शरीरी बना दिया। शरीर के खून को जलाया और पागलपन में हमने कोई हथियार उठाकर डंडा उठाकर किसी को मार डाला। पुलिस आई, हमको पकड़ कर ले गई। बदनामी हुई, जेल में पहुँचे, अपनी प्यारी पत्नी का घात हमने अपने हाथों से कर दिया। अपने मासूम से बच्चों का घात अपने क्रोध के कारण कर दिया। ये अज्ञानता कई बार हो चुकी है। ये एक पागलपन का झटका कई बार इस आत्मा को लगता है। हम आज भीतर से महसूस करें कि इस पागलपन के दौर से हम नहीं गुजरेंगे।

हम भीतर से संकल्पित हो, भीतर से महसूस करें, ऐसा पागलपन अब हम नहीं करेंगे। अपने मन में दोहराएँ। 'क्रोध मेरा स्वभाव नहीं, बोध मेरा स्वभाव है।' क्रोध मेरी दुर्गति है, बोध माने सम्यक ज्ञान मेरी सद्गति है। क्रोध मुझे दुख देता है। ज्ञान मुझे सुख देता है। हम क्रोध में नहीं बोध में जियेंगे। पागलपन में नहीं समझदारी में जियेंगे। गुस्सा आने के कारणों के होने पर भी हम गुस्सा नहीं करेंगे, मुस्कुराएँगे। अभी भी मुस्कराएँ, हम हमेशा ऐसे ही रहेंगे। क्रोध से प्रेम का विनाश होता है। क्रोध से रिश्ते बिगड़ जाते हैं। क्रोध से विवेक चला जाता है। हम प्रेममय हैं, प्रेम का अनुभव करें, प्रेम ही दूसरों को दें। प्रेम अमृत है, क्रोध जहर है। अपने घर के ही

लोगों को जहर देकर के हम कैसे सुखी हो सकते हैं। हम महूसस करें प्रेम हमारी संपदा है जिससे हमें सुख मिलता है। उसी से दूसरों को सुख मिलेगा। जिससे हमें दुख मिल रहा है उसी से दूसरों को भी दुख मिलेगा। कोई भी आप पर क्रोध करे, आप उसको चुपचाप सहन कर लें, कुछ नहीं होगा। शब्द कानों में पड़े हैं, निकल जाएँगे। शब्दों को केवल जानना, सुन लेना पर्याप्त है। उससे दिमाग में कोई भी नकारात्मक विचार आना यह हमारे ज्ञान का दुरुपयोग है। अपने ज्ञान को हमेशा तरोजाता महसूस करो। आत्मा अनंतकाल बीत चुका, क्रोध करती आ रही है। आत्मा को कभी भी शांति मिली नहीं और उसी संस्कार के कारण से आत्मा आज भी क्रोध करती है। यह कहना छोड़ दो तूने मेरी बात नहीं मानी। कोई किसी की नहीं मानता। बड़े-बड़े तीर्थंकर, चक्रवर्ती अपने पुण्य से जीते हैं। जब तक पुण्य रहता है तब तक सब मानते हैं। पुण्य के बिना, किए हुए धर्म के बिना कोई भी हमारी बात मानने वाला नहीं। जो हो उसको देखो, जानो। क्रोध जहर है, प्रेम अमृत है। क्रोध आग है, ज्ञान पराग है। ज्ञान से हमारा जीवन महकेगा। क्रोध से हमारा जीवन जलेगा। मन की ये शांति निरंतर बनाकर रखो। अभ्यास इस शांति की अनुभूति का करो। आत्मा चिरकाल से इन कषायों के कारण इस संसार में भ्रमण कर रहा है। परम शांति का अनुभव इसी परम शांति के अभ्यास से आएगा।

ओ ऽ ऽ ऽ म् शांति शांति ओ ऽ ऽ म्

ओ ऽ ऽ म् शां ऽ ऽ ति शां ऽ ऽ ति ओ ऽ ऽ म्

भीतर से पूर्ण शांतमय अपने मन को महसूस करें। आत्मा स्वभाव से शांत है। क्रोध का बारूद उस आत्मा के अंदर कर्म के रूप में भरा है। वह उस आत्मा को जलाता है। ओऽऽम् शांऽऽति शांऽऽति ओऽऽम्। दोनों हाथ जोड़ें

णमोकार मय सारा जीवन बना लो

ध्यान–८

मन को एकाग्र करें। शांत होकर बैठें। आसपास से आ रहे शब्द को केवल सुनकर के निकालना है। उसके अर्थ की ओर ना जाएँ। बाहर कोलाहल है, अशांति है। मन में परम शांति है। चित्त में कोई विचार नहीं। जो हो रहा है मैं बस उसको केवल देख रहा हूँ, जान रहा हूँ। न मैं किसी शब्द को पकडूँगा, ना मैं किसी विचार को पकडूँगा। न किसी तरंग को पकडूँगा, न किसी प्रकाश को पकडूँगा। पकड़ने की आदत छोड़ दें। सिर्फ जानें, देखें। अंतर्मन से जानें, अंतर्मन से देखें। जो भी स्पंदन शरीर में हो रहे हैं उनको केवल महसूस करें। न उन्हें बुरा समझें, न उन्हें अच्छा समझें। अपने मस्तक पर णमो लिखा हुआ देखें, जहाँ पर हम तिलक लगाते हैं वहीं पर 'णमो' लिखा हुआ है। सफेद रंग के प्रकाश में अपने सीधे कान के ऊपर 'अ' लिखा देखें। बायें कान पर 'रि' लिखा देखें। अपने होंठों के नीचे ठोड़ी के स्थान पर 'हं' लिखा हुआ देखें। गले के ऊपर 'ताणं' ये दो अक्षरों को लिखा देखें। पूरा मुख 'णमो अरिहंताणं' के अक्षरों से सुसज्जित हुआ है। उन अक्षरों पर ध्यान दें, उन्हीं अंगों पर ध्यान दें जहाँ पर हमने अंगविन्यास किया है।

ण मो अ रि हं ता णं

हमारा मुख कमल णमो अरिहंताणं के अक्षरों की आभा से प्रकाशमान है। उस प्रकाश को बढ़ता हुआ देखें।

ण मो अ रि हं ता णं

उस प्रकाश को उन अक्षरों को निरंतर ज्यादा प्रकाशमान होता देखें। अपने मन को उन्हीं-उन्हीं जगह पर ले जाएँ। उन्हीं अक्षरों पर उनकी जगह पर ध्यान दें। मेरी आत्मा पवित्र अक्षरमय हो गई है। णमो अरिहंताणं के प्रकाश में मेरा आत्मज्ञान प्रकट हो रहा है। मन को प्रसन्न रखें। बाहर की सब चीजें आती हैं, जाती हैं। आत्मा का ये ज्ञानधन कभी भी लुटता नहीं है, मिटता नहीं है। ज्ञान का खजाना भीतर महसूस करें। पूरी आत्मा ज्ञानमय है। बाहर का धन-पैसा, महल-अटारी सब जड़ है। आते हैं, जाते हैं मिट जाते हैं। हम भीतर से बहुत 'रिच' हैं। अपनी इस अंतरंग संपत्ति को देखें। ऐसा धन जो कभी भी घटने वाला नहीं। बाहर का सब कुछ छूट जाता है, छूटेगा वह अस्थायी है और ये हमारा ज्ञान स्वभाव स्थायी है। हम भीतर से प्रसन्न हो, हम आज जो अंतर्मन

से आत्मा की अनुभूति कर रहे हैं। ज्ञान स्वभाव में जो परम आनंद देख रहे हैं वह आत्मा मैं हूँ। शरीर में पुद्गल वर्गणाएँ अणु-परमाणु निरंतर आ रहे हैं, जा रहे हैं। उनसे हमारा कोई वास्ता नहीं, कोई प्रयोजन नहीं। आत्मा स्थायी है, मृत्यु से रहित है। शरीर अस्थायी है, मृत्यु से सहित है। शरीर में निरंतर अनंत-अनंत अणुओं का विखंडन हो रहा है, ग्रहण करना हो रहा है। आत्मा उस सब प्रक्रिया को केवल देख रही है, जान रही है। उसे देखने और जानने का आज आनंद आ रहा है। अपने अंतरंग समृद्धि को जितना हम महसूस करेंगे, देखेंगे, हमें अपनी आत्मा के अनंत गुणों में अनंत आनंद की अनुभूति होगी। मनुष्यता के लक्षण मनुष्यता के गुण, देवत्व के गुण और परमात्मत्व के गुण ये सब इस आत्मा के अंदर समाहित हैं। हमने किसके लिए क्या किया, क्या हम किसी को बना सकते हैं, क्या हम किसी को मिटा सकते हैं। क्या हम किसी को जिंदा कर सकते हैं, क्या हम मरते हुए को बचा सकते हैं, क्या हम किसी आत्मा को बना सकते हैं। मेरे बेटे, मेरी बेटियाँ सब अपनी-अपनी आत्म-शक्ति से बने हैं, मैंने नहीं बनाए हैं। सबकी आत्मा में ऐसा ही स्पंदन, ऐसा ही अनुभवन हो रहा है जैसा मैं आत्मा हूँ, ऐसी अनंत आत्माएँ संसार में हैं। किसका कब कहाँ जन्म होना है यह निश्चित है। किसका कब कहाँ मरण होना है यह निश्चित है। जो संयोग आज हमको मिले हैं वे भी निश्चित थे। जो वियोग हमसे हो गए हैं वह भी निश्चित थे। उन संयोग और वियोगों में आनंदित होना या दुखी होना ये हमारी अज्ञानता थी। मैं किसी को बना नहीं सकता, मैं किसी को मिटा नहीं सकता। जो हो रहा है उसको देखो, उसको महसूस करो। मन को प्रसन्न रखो। चेहरे को प्रसन्न रखो। इस अद्भुत आत्मज्ञान का आनंद लो।

जो हो सो हो, जो है सो है, हमको क्या? महसूस करो भीतर से हम किसी के लिए कुछ भी नहीं कर सकते। जो है सो है। जो है सो है। जो हो सो हो, जो है सो है।

हमको क्या, हमको क्या, हमको क्या।
जन्म सुनिश्चित, मरण सुनिश्चित....-२
कर्मों का फल मिलना निश्चित....-२
फिर संयोग वियोगों के क्षण....-२
घबड़ाने से क्या
जो हो सो है, जो है सो है
हमको क्या, हमको क्या, हमको क्या...

आत्मा का आनंद तुलना से परे है। तुलना आत्मा को छोड़कर हर चीज में होती है। शरीर

की, मकान की, दुकान की, पुत्र-पुत्री की। जो अस्थायी है हम उसकी तुलना करते हैं, जो स्थायी है उसकी तुलना हम किसी से नहीं करते।

पर तुलना से हँसना रोना...-२
सुखी दुखी यू क्षण-क्षण होना...-२
चेतन को इन क्षणिकाओं में
आखिर मिलता क्या
जो हो सो है, जो है सो है, हमको क्या...

महसूस करें हम केवल अपनी चेतना को परेशान करते हैं। इसके अलावा कुछ नहीं करते। अपने ज्ञान को बाहर की चीजों से, अपनी चेतना को बाहर की चीजों से परेशान करते हैं। चेतना के सुख का कभी आनंद नहीं लेते। जो पर है वो पर ही है। जो स्व है वो स्व ही है। मेरी चेतना न कभी किसी की हुई है न कभी होगी। किसी की चेतना न कभी अपनी थी न होगी। साक्षी भाव से सबको देखने, जानने का आनंद लें। चाहे शुभ कर्म का फल हो, चाहे अशुभ कर्म का फल हो। ये दोनों चेतना के स्वभाव हैं। मेरी आत्मा इन सबसे परे है। मेरा बेटा नहीं था, किसी का मर गया। पति किसी का हुआ, किसी का छोड़ गया। किसी की बेटियाँ ही हैं, किसी की संतान ही नहीं है। ये सब बाहर के शुभ-अशुभ कर्मों के फल हैं। चेतना इन सबसे पृथक है। हमने जबरदस्ती अपने आपको परेशान कर रखा है।

भाव मुक्त कर कर्म फलों से...२
लख चेतन निज ज्ञान बलो से...२
चेतन का परिणाम नहीं जो...२
उन भावों से क्या
जो हो सो हो, जो है सो है, हमको क्या-२
ये ही परम शांति है, ये ही परम आनंद है
ये ही परम ध्यान है, जहाँ सिद्ध विश्राम है
ध्यान में कुछ करना नहीं सिर्फ बैठे रहना।
विश्राम... आत्मा का आनंद है।

दोनों हाथों को आँखों पर लगाएँ। धीरे से आँख खोलकर महसूस करें। ओम परम शांति, ओम् परम शांति, ओम परम शांति।

ध्यान–९

णमोकार मंत्र, पंचनमस्कार मुद्रा, अर्हं क्रिया

अपने दोनों हाथों को अपने सिर के एक-दो इंच ऊपर रखें। महसूस करें पंचपरमेष्ठी का आशीर्वाद हमारे ऊपर पूर्ण रूप से बरस रहा है। अर्हं की शक्ति, पंचपरमेष्ठी की कृपा, सकारात्मक ऊर्जा मस्तिष्क के विकास के लिए हमारे शरीर में प्रवेश कर रही है। इसी मुद्रा में मन को प्रसन्न रखकर के बैठे।

ॐ ह्रीं श्रीं अर्हम् नमः - ९ बार। ज्ञान मुद्रा में बैठें।

'ओम्' को अपने नाभिचक्र पर स्थापित करें। अपने अंतर्मन की आँखों से 'ह्रीं' को हृदयस्थल पर एवं 'श्रीं' को गले में और अर्हं को अपने माथे के ऊपर मस्तिष्क पर सामने की ओर स्थापित करें। माथे पर अर्हं लिखा हुआ देखें। ये सभी बीजाक्षर णमोकार मंत्र से निकले हैं और वही समाहित हो जाते हैं। 'ओम्' में पंचपरमेष्ठी समाहित है। 'ह्रीं' में २४ तीर्थंकर समाहित है। 'श्रीं' में मुक्ति लक्ष्मी एवं अर्हम् में पंचपरमेष्ठी समाहित है। सभी बीजाक्षर उसी णमोकार मंत्र की शक्तियों के रूप में अलग-अलग हमारे सामने है। पंचपरमेष्ठी का ध्यान, उनका नाममात्र ही हमारी आत्मा को पवित्र करता है। इन बीजाक्षरों का अपने हृदय में ध्यान करने वाला योगी केवलज्ञान को प्राप्त कर लेता है। बड़े-बड़े ऋषि मुनि इन्हीं पंचपरमेष्ठियों का, बीजाक्षरों का, उनके नाम का उच्चारण करके अपने चित्त को एकाग्र करते हैं एवं पवित्र करते हैं। अपनी आत्मा का दर्शन इसी ध्यान से होता है। ध्यान की एकाग्रता के साथ में इन पंचपरमेष्ठी की आराधना के लिए जो मंत्र जाप होता है वह अद्भुत आश्चर्यकारी फलों को देने वाला होता है। अज्ञानीजन मोही प्राणी इन णमोकार मंत्र के एवं इन बीजाक्षरों के माध्यम से केवल अपनी लौकिक कामनाओं की पूर्ति करते हैं और ज्ञानी पुरुष अलौकिक भावनाओं की पूर्ति करते हैं, परमार्थ से जुड़ते हैं, लौकिक कामनाएँ उन्हें स्वयं अपने आप पूर्ण होती दिखाई देती है। गेहूँ की फसल की इच्छा करने वाला घास-फूस तो प्राप्त कर ही लेता है। ज्ञानी आत्मा गेहूँ की बाली की इच्छा करता है, घास-फूस की नहीं, वह अपने आप मिल जाती है। इसी तरह इन पवित्र पंचपरमेष्ठी की आराधना से हम परमार्थ की इच्छा करें। अपनी आत्मा को विशुद्ध बनाने की कामना करें। जब आत्मा विशुद्ध होगी, हमारे असाता वेदनीय अंतराय कर्म अपने आप क्षय को प्राप्त हो जाएँगे। जितने भी संयोग-वियोग- रोग, अनेक प्रकार की व्यापार की कामनाएँ ये सब इस मंत्र से मिलती है लेकिन ज्ञानी पुरुष कभी भी लौकिक कामनाओं के लिये मंत्र की जाप नहीं करते। हम सब ज्ञानी बने। उत्कृष्ट भावना करें, जघन्य/निष्कृष्ट चीजें अपने आप मिल जाएगी।

ॐ ह्रीं श्रीं अर्हं नमः - ३ बार।

मन को प्रसन्न रखें, आँखें बंद रखें। अर्हं पर मस्तिष्क पर ध्यान केंद्रित करें। माथे पर जो अर्हं लिखा है उसके प्रकाश को देखें। उसी अर्हं के प्रकाश से हमें कुछ ओर दिखाई दे रहा है। उसी अर्हं के प्रकाश में देखें। 'अर्हद्' यह शब्द भी उसी प्रकाश से निकल रहा है। यह अरिहंत भगवान् का प्रतीक है। उसी प्रकाश में आगे देखें, वहाँ लिखा है 'सिद्ध'। और आगे देखें वहाँ 'सिद्धाचार्य' लिखा है। अपने अंतर्मन से इन अक्षरों को देखते जाएँ। उपाध्याय का 'उ', 'य' के अंत में जुड़ गया और ओ की मात्रा बन गई। पूरा पद बन गया। 'अर्हद्सिद्धाचार्योपाध्याय'। उसी के आगे सर्व साधुभ्यो नमः। यह षोडश अक्षरीय विद्या कहलाती है। सोलह अक्षर का ये मंत्र है 'अर्हद् सिद्धाचार्योपाध्याय सर्व साधुभ्यो नमः'- २७ बार।

ढ़ाई द्वीप में बीस तीर्थंकर अरिहंत भगवान् विराजमान हैं। हम उनके निकट में हैं और दर्शन कर रहे हैं। साक्षात अरिहंत भगवान् को हम अपने ध्यान में देख रहे हैं। अनंत-अनंत सिद्ध परमेष्ठी भगवान् हमारे ध्यान में आएँ। ढ़ाई द्वीप में विराजमान आचार्य परमेष्ठी, उपाध्याय परमेष्ठी, साधु परमेष्ठी अनेक-अनेक ऋद्धिधारी मुनीश्वर इस महामंत्र के उच्चारण से हमें शक्ति प्रदान कर रहे हैं। पाँचों ही परमेष्ठी से अपने मन को जोड़ें। अर्हद् बोलें, तीर्थंकर सामने आ जाएँ। सिद्ध बोले सिद्ध भगवान् सामने आ जाएँ। आचार्य, उपाध्याय, साधु पूरे मध्य लोक में विराजमान एक साथ हम सब की आराधना करें।

'अर्हद् सिद्धाचार्योपाध्याय सर्व साधुभ्यो नमः' - १८ बार।

हमारी आत्मा अरिहंतों की आत्मा में, सिद्धों की आत्मा में, आचार्य, उपाध्याय, साधुओं की आत्मा में समाहित हो रही है। पाँचों ही परमेष्ठी हमारे ध्यान में विचरण कर रही है। सिद्ध भगवान् तक हमारे शब्द पहुँच चुके हैं। अनंत-अनंत सिद्धात्माओं में हमारे शब्द व्याप्त हो रहे हैं।

'अर्हद् सिद्धाचार्योपाध्याय सर्व साधुभ्यो नमः' - ९ बार।

पंचपरमेष्ठी की परम शांति महसूस करें। सोलह अक्षर वाले षोडश अक्षरी विद्या को आपने १०८ बार पढ़ लिया है। भीतर आनंद महसूस करें। असीम ऊर्जा से भरे हुए अपने पूरे शरीर को बहुत हल्के रूप में महसूस करें। शरीर बिल्कुल ढीला छोड़ दें। आप अपने वजन को भूल गए हैं, अर्हं इसके अलावा मुझे कुछ नहीं दिखाई दे रहा है। अर्हं अर्हं अर्हं। परम शांति अर्हम्।

प्रार्थना मुद्रा में आएँ।

णमोकार मय सारा जीवन बना लो।

महामंत्र से चेतना को सजा लो।

ध्यान–१०

पंचनमस्कार मंत्र व अर्हं क्रिया करें। बाहर से पंच परमेष्ठी की शक्ति, अर्हम् की शक्ति श्वास के माध्यम से अपने भीतर पहुँचाएँ। गहरी श्वास लें। नाभि तक वह श्वास पहुँचे। नाभि तक स्पंदन हो। हम भीतर से नाभि केंद्र पर जोर डालें। वह पूरे शरीर का शक्ति केंद्र है। बहत्तर हजार नाड़ियों का संचालन इस नाभि केंद्र से होता है। शरीर में अनेक रोगों की उत्पत्ति इसी नाभि केंद्र के मुरझा जाने से होती है। कैंसर, ट्यूमर जैसी बीमारियाँ इसीलिए होती हैं कि हमारे पूरे शरीर में शक्ति का प्रवाह बराबर नहीं होता। जैसे किसी पानी की पाइप लाइन में बीच में कोई कचरा आ जाने से जल प्रवाह बाधित होता है उसी तरह से हमारे शरीर में फैली हुई नाड़ियों में, शिराओं में, नसों में हमारी ग्रहण की हुई श्वास की शक्तियों का प्रवाह जब बराबर नहीं होता तो कैंसर- ट्यूमर जैसे अनेक रोग उत्पन्न होते हैं। नाभि पर ध्यान को केंद्रित करते हुए गहरी श्वास लेकर ओम को नाभि केंद्र पर स्थापित करें। महसूस करें नाभि के पास जो स्पंदन हो रहा है, श्वास के साथ अपने पेट को हिलता हुआ देखें। ध्यान नाभि पर रखें। एक बार गहरी श्वास लेकर पूरे शरीर की उन नसों को खोल दें। अपने बैठने के स्थान से जोर लगाते हुए एक बार ओम का ऐसा उच्चारण करें जिससे पूरे शरीर के अंदर नकारात्मक ऊर्जा का प्रवाह बाहर फिंक जाए। ओऽऽऽऽम्ऽऽऽ गहरी श्वास लें। शक्तिशाली वायु को हम ग्रहण कर रहे हैं। शुद्ध ऊर्जा को हम ग्रहण कर रहे हैं। दूषित वायु को हम बाहर फेंक रहे हैं। ओऽऽऽऽम्ऽऽऽऽ। हृदय स्थान पर ध्यान लगाकर 'ह्रीं' का अपने अंतर्मन से सफेद धवल रंग से निर्माण करें। पीली हल्दी से मंगलकारी 'श्रीं' को गले के भीतर स्थापित करें। गहरे लाल रंग के साथ पूरे अर्हं को जिसे हम अभी तक सफेद देखते थे उसे अपने मस्तिष्क पर देखें। सिंदूर की तरह, रक्त की तरह गहरे लाल रंग में अर्हं देखें।

ॐ ह्रीं श्रीं अर्हं नम:

उसी-उसी स्थान पर ध्यान देते हुए गहरी श्वास के साथ मंत्र बोलें।

लाल रंग का अर्हं ध्यान करें। लाल रंग आत्म विश्वास व आत्मशक्ति बढ़ाता है। मन के अंदर उत्साह व उमंग पैदा करता है। इस लाल रंग में अर्हं को ध्याने वाला कभी भी तनाव की स्थिति में डिप्रेशन की स्थिति में नहीं जाता। लाल रंग में अर्हं का ध्यान करने वाला हिमोग्लोबीन के रोगों से ग्रस्त नहीं होता। जितना बने, जैसे बने, अपनी शक्ति भावना के साथ बहुत गहरे लाल

रंग में अर्हं का ध्यान करें। आज का अभ्यास कल काम आएगा। अर्हं से शरीर में नई ऊर्जा का संचार होता है जिनको कफ की, अस्थमा की बीमारी होती है, जिन्हें ज्यादा नींद आती है वे इस अर्हं को लाल रंग में ध्यान में लाएँ। मस्तिष्क के ऊपर दो अक्षर लाल रंग में चमकते हुए।

ॐ ह्रीं श्रीं अर्हं नमः ..... ९ बार

जहाँ हवाई जहाज चलते हैं, उससे भी ऊपर मेरा आत्मा पहुँच गया है। इस दुनिया को एक नजर में मैं देख रहा हूँ। सब कुछ ऐसा दिख रहा है जैसे किसी बड़े कागज पर हमने बिंदु के निशान लगा दिए हैं। मैं सबको देख रहा हूँ कोई मुझे नहीं देख रहा। बहुत ऊपर उठकर इस संसार से मैं इस दुनिया को देख रहा हूँ। बंद आँखों से मुझे बहुत अच्छा दिखाई दे रहा है। मेरी ये देखने की शक्ति मेरे अंदर ही थी। मैं अपने को भी देख रहा हूँ और दुनिया को भी देख रहा हूँ। अनेक देश, अनेक नगर, अनेक पहाड़ियाँ, अनेक जंगल हर कहीं पर कोई ना कोई स्त्री-पुरुष, पशु-पक्षी विचरण कर रहे हैं। दूर से देख रहा हूँ सब बिंदु एक दूसरे की ओर जा रहे हो, ऐसा हमें दिखाई दे रहा है।

सब कुछ करके भी इस दुनिया में कोई कुछ नहीं कर रहा। जो मैं देख रहा हूँ जो मैं कर रहा हूँ, जो मैं जान रहा हूँ वह अद्‌भुत है। पुद्‌गल- पुद्‌गल पर प्रभाव डालता है। मैं चेतना हूँ, मैं आत्मा हूँ। दुनिया के सभी जड़ पदार्थों से पूर्णतः पृथक हूँ। मैं सिर्फ आत्मा हूँ, सिर्फ आत्मा हूँ, पूरी तरह ज्ञान से भरा हुआ हूँ। दूसरी चीजों से अप्रभावित हूँ। मेरा शरीर, मेरा ज्ञान, मेरी बुद्धि अन्य चीजों से प्रभावित हो सकती है परंतु मेरी आत्मा किसी भी अन्य चीज से प्रभावित नहीं होता क्योंकि पुद्‌गल-पुद्‌गल को प्रभावित करता है। मैं पुद्‌गल नहीं हूँ मैं आत्मा हूँ। पुद्‌गल से पुद्‌गल प्रभावित होगा। शरीर प्रभावित होगा, बुद्धि प्रभावित होगी लेकिन मेरी आत्मा कभी नहीं प्रभावित होगी। चेतना, संवेदना, ज्ञान जितना मैं महसूस कर रहा हूँ, वही है। बाकी सब ज्ञान शून्य है, जड़ है, पुद्‌गल है। मेरा शरीर मेरी चेतना को रहने का एक घर है। हड्‌डियाँ, नसों का जाल, मांस, खून, खाल, वात-पित्त-कफ, मल-मूत्र इसके अलावा इस शरीर में कुछ नहीं है। मैं इस शरीर से अलग हूँ, पृथक हूँ। तनाव हमारे शरीर में रहता है, आत्मा में नहीं। किसी भी प्रकार का स्ट्रेस, मस्तिष्क का विषय है, मेरी आत्मा मस्तिष्क से भी अलग है। मन से अलग है। मैं मन में दूसरे के लिए बुरा सोचता हूँ, दूसरे को मारने का भाव करता हूँ, दूसरे को परेशान करने का भाव करता हूँ। ये मेरा आत्मा का भाव नहीं मन का दुर्विचार है। आत्मा मन से पृथक है। इस दुर्विचार से उत्पन्न हुई तरंगें आत्मा में कर्मबंध करती हैं। मैं चैतन्य आत्मा होकर भी दूसरे से दुर्भाव रखता हूँ, यह मेरा अज्ञान है। मेरा काम तो सिर्फ ज्ञान ही ज्ञान है इसके अलावा कुछ नहीं। मेरे अंदर दूसरों के प्रति प्रेम ही प्रेम है और कुछ नहीं। घृणा, ईर्ष्या, दुर्भाव यह हमारे मन की नकारात्मक शक्तियों का हमारी आत्मा पर बड़ा प्रभाव है। इनको फेंक दो। अंतरंग की ज्ञान शक्ति को महसूस करो, सुख को महसूस करो। जो मेरा नहीं है, उसे मैंने क्यों अपनाया। मैं तो शांति हूँ, परम शांत स्वभाव वाला हूँ किसी की आत्मा को मैं अशांत

ध्यान–११

मन को श्वास पर टिकाएँ। श्वास के ग्रहण के साथ णमोकार के अक्षरों को ग्रहण कर रहे हैं, छोड़ रहे हैं। नाभि से नीचे मूलाधार चक्र एवं उसी के चार अंगुल ऊपर स्वाधिष्ठान चक्र होता है। वहाँ पर 'ण' 'मो' ये दो अक्षरों को लिखा हुआ देखें। ण मो ण मो ण मो ण मो, नाभि पर 'उ', हृदय पर 'व', कंठ स्थान पर 'ज्झा', मस्तिष्क के सामने दोनों भौंहों के बीच में 'या' और सिर के सबसे ऊपरी भाग पर 'णं' लिखा हुआ देखें।

ण मो उ वा ज्झा या णं – ३ बार।

महसूस करें गहरे नीले रंग में ये अक्षर हमारे सभी केंद्रों में लिखे हुए हैं।

उपाध्याय परमेष्ठी की शरण में हैं। गहरे नीले रंग में सभी अक्षर हमें शरीर के केंद्रों पर दिखाई दे रहे हैं। ये नीला रंग शांति का प्रतीक है। अनेक उद्वेगों से आक्रांत चित्त को नीले रंग में शांति मिलती है। नीला रंग आसमान का प्रतीक है। उदार और उदात्त भावनाएँ इस रंग में णमो उवज्झायाणं का ध्यान करने से अपने मन में आती हैं।

चारों ओर नीला–नीला प्रकाश, उपाध्याय के सभी अक्षर नीले रंग में, उपाध्याय परमेष्ठी की शरण में हम हैं। आकाश की तरह जितना ज्ञान विशाल होता है, जिनके अंदर सब जीवों के प्रति उदार और उदात्त भावनाओं का विकास होता है हम उन्हीं उपाध्याय परमेष्ठी का स्मरण कर रहे हैं। हे भगवन्, मुझे भी आपकी तरह कुछ ज्ञान मिले, मेरा भी ज्ञान उदार एवं उदात्त बने।

हमारी भावनाएँ हमारे विचार सब जीवों के प्रति उदार हो, समान हो। उपाध्याय परमेष्ठी कहते हैं। अपने भावों की विशुद्धि एवं भावों की पवित्रता निरंतर बनाकर के रखो। जो भी हम भोजन ग्रहण करते हैं वह हमारे भावों में परिवर्तित हो जाता है। उस भोजन को ग्रहण करते समय जैसी हमारी आसक्ति, कषाय, मूर्च्छा, मोह रहता है वैसे ही आत्मा के अंदर संस्कार पड़ जाते हैं, हम भविष्य में वैसा ही बन जाते हैं। भावों को पवित्र बनाने के लिए उपाध्याय परमेष्ठी हमें ज्ञान दे रहे हैं, हम महसूस करें उस ज्ञान को आत्मसात करें। उपाध्याय परमेष्ठी हमें ज्ञान दे रहे है कि तुम जो भी भोजन करो उसमें भी सात्विकता हो और अपने भावों में भी हो। भोजन भी शुद्ध है और अपने भाव भी शुद्ध हो तो तुम्हारा परिणमन, तुम्हारी आत्मा के अंदर कर्म के बंध बहुत कम होंगे। हृदय

पवित्र होगा। कई बार हम होटलों में जाते हैं, उन विशेष व्यंजनों को खाते हैं जिनमें हमारी आत्मा आक्रामक रूप से जुड़ जाती है, हिंसात्मक भावों के साथ जुड़ जाती है। कोई भी वस्तु चाहे वो बाहर से शुद्ध भी हो, अगर हमारी कल्पना में हमारे भावों में गलत रूप में ग्रहण करने से आती है तो भी हमारी आत्मा में उसका कषाय का बंध हो जाता है। कल्पना करो कि आप किसी रेस्टोरेंट में भोजन करने के लिए गए, आपके सामने कबाब रख दिया गया, वेटर ने कहा जैन साब घबराएँ नहीं ये प्योर वेज है, नॉनवेज नहीं है। आप अपने मन में अपने भावों का आकलन करें, क्या करेंगे। नॉनवेज होते हुए आप उसको नहीं खाते पर वेज होते हुए यदि आपका उसे खाने का भाव होता है तो समझना मन कबाब ही खा रहा है क्योंकि उपाध्याय परमेष्ठी कहते हैं ये मन जितना भी पाप करता है सब भावों से ही करता है। यदि आप गेहूँ की रोटी को हॉटडाग समझकर खाएँगे तब आपकी आत्मा की परिणति जो हिंसा के साथ जुड़ी हुई है वह बंध जाती है। आत्मा ने आत्मा को ही बाँध लिया। आप बाहर से भले ही अपने आपको कहें कि हम वेज खाते हैं लेकिन आपके अंदर वह कषाय हिंसात्मक भावों से आपकी आत्मा को बाँध रहे हैं। भावनाएँ भीतर कुछ और हैं और बाहर कुछ और हैं। उपाध्याय परमेष्ठी कहते हैं ये भाव प्रधान धर्म है। तुम्हारे भावों में यदि बर्गर खाने का भाव है। बर्गर मतलब ही होता है जो गो माँस से बनता है। किसी भी प्रकार के वह माँस के टुकड़े खाने का भाव यदि तुम्हारे अंदर किसी भी रूप में आता है। चाहे वह वेज वस्तु हो, कोई सब्जी के टुकड़े हो अगर तुम उनको लाल–लाल भुन–भुन करके अपने सामने रख करके, उन्हें बर्गर या कबाब के रूप में खाते हो तो ध्यान रखना तुम्हारे अंदर की वह हिंसात्मक परिणति गई नहीं। आत्मा अभी भी भाव हिंसा कर रही है, जिसकी वजह से उस आत्मा को जन्म और मरण उन्हीं पर्यायों में करने होते हैं जिन पर्यायों में वह भाव हिंसा का फल भोगती है। गाय के माँस में आसक्ति होगी गाय बनोगे। यह संसार का चक्र कोई भगवान् नहीं चलाता। आत्मा स्वयं ही अपना जन्म और स्वयं ही अपने मरण का हकदार होती है। मछली के माँस में आसक्ति होगी मछली बन जाओगे आदि आदि।

उपाध्याय परमेष्ठी समझाते हैं अपने ज्ञान को विशाल बनाओ। किसी भी जीव का माँस मत खाओ। किसी भी जीव को मरा हुआ मत देखो, ना मारो, ना माँस खाओ। तुम मनुष्य हो अपने भीतर मनुष्यता के भाव जगाओ। मानव हो मानवता के भाव जगाओ। भीतर का हिंसा परिणाम किसी भी पर्याय में छूटता नहीं। मुर्गा बन जाओगे, मुर्गी बन जाओगे तो तुम ही कुछ मार–मार के

खाओगे। एक चींटी लट को पकड़ लेती है। वह छोटी सी लट तड़पती रहती है। वह चींटियाँ भी उस लट को मार डालती हैं, उसे चुभा–चुभा कर उसके प्राण ले लेती है क्योंकि माँसाहार की प्रवृत्ति हिंसा के संस्कार आत्मा में अनादि से पड़े हुए हैं। जैसा हरे रंग का पत्ता होता है ऐसी ही एक हरे रंग की लट और वहीं पर हरे रंग के (पत्तों के) बहुत सारे टुकड़े पड़े हुए हैं। मैंने देखा चींटियाँ लट को पकड़ रही है, मेरे मन में दया का भाव आया। मैंने उस लट के ऊपर 'पिच्छि' रखी, चींटियाँ भाग गई। देखा, वह हरे रंग की छोटी सी लट मर चुकी थी। मेरे मन में विचार आया ये लट पत्ते की तरह दिखाई दे रही है लेकिन चींटियाँ आस–पास जितने भी पत्ते हैं उन्हें नहीं पकड़ रही हैं, उस लट को ही पकड़ रही हैं। चींटियों को भी ये ज्ञान होता है कि ये माँस है और उनके अंदर भी उस माँस के प्रति आसक्ति होने के कारण वे उस पत्ते को ग्रहण नहीं करती, वे उस माँस की लट को बार–बार आ– आकर पकड़ लेती है, उसको बार–बार अपने बिल की ओर ले जाती है। हे मनुष्य, माँस की आसक्ति तेरे अंदर भीतर पड़ी हुई है। अगर तू उसे किसी भी रूप में पूरा करता है तो तू भीतर से माँसाहारी है। जैन होकर के भी तू माँसाहारी हो सकता है। कबाब किसी भी रूप में खाया जाए वह कबाब ही कहलाएगा। शराब की बोतल में अगर दूध भी पियोगे और शराब की दुकान पर भी जाकर पियोगे तो शराबी ही कहलाओगे। उपाध्याय परमेष्ठी समझाते हैं कि अब भावों को देखो। तुम्हारी आत्मा को पतित बनाने वाला कोई दूसरा भगवान् नहीं और तुम्हारी आत्मा को पावन बनाने वाला भी कोई भगवान् नहीं, तुम खुद अपने हकदार हो। जैसे भाव करोगे वैसा ही फल पाओगे। चाहे अपनी रिश्तेदारी में कोई रिसेप्शन हो या दूसरों के हो जिसको जो करना है वो करे, लेकिन अपने मन में ये भाव रखो कि हम कभी भी बर्गर, कबाब, सेंडविच, हॉटडाग आदि का किसी भी रूप में सेवन नहीं करेंगे। चाहे वे वेज हो या चाहे नॉनवेज हो। अपनी आत्मा को हिंसा से बचाओ। भाव हिंसा से बचाओ ये सबसे बड़ी हिंसा है। ज्ञान की विशालता विचारों की विशालता से आती है। किसी भी जीव का माँस नहीं खाने का विचार जिसके अंदर होता है वही महापुरुष होता है वही पवित्र आत्मा होता है। किसी भी जीव का माँस उसकी कल्पना किसी भी रूप में खाने के लिए अगर मन में आती है तो समझना अभी हमारी माँसाहारी वृत्ति भीतर से गई नहीं है। एक चींटी भी माँसाहार कर रही है। मैं देखकर के दंग रह गया। अनेक हरे–हरे रंग के पत्ते के टुकड़े, कलियाँ वहाँ पड़ी हैं लेकिन कोई भी चींटी उसको खींच नहीं रही है लेकिन 'लट' को खींच रही है। मरी हुई लट को भी वो चींटियाँ खींच–खींचकर

अपने बिल की ओर ले जाती है, ये बताता है कि आत्मा के अंदर हिंसा की परिणति अनादि से छूटी नहीं, हिंसा के संस्कार मिटे नहीं और ऐसे ही आदमी पुन: उसी हिंसा के परिणामों से बकरा, मुर्गा, मुर्गी, गाय और धीरे–धीरे चींटी–लट के रूप में बदलते चले जाते हैं।

हमारी आत्मा ही हमारा गुरु है, आचार्य पूज्यपाद महाराज कह रहे हैं। अपनी आत्मा का उत्थान और पतन दोनों हमारे हाथ में है। बाहरी विलासिताएँ, रिसेप्शन, पार्टियाँ हमारी आत्मा को तिर्यंच बनने से, पशु बनने से बचा नहीं पाएँगी। थोड़ी देर के वे व्यवहार जन्म–जन्म के लिए हमें दुख देने के कारण बन जाएँगे। थोड़ी देर का वह व्यवहार निभाना हमारे लिए कई भवों तक परेशानी का कारण बन जाएगा। मनुष्य मनुष्य बना रहे, बहुत अच्छी बात है, शैतान न बनें। मनुष्य का जन्म मनुष्यता से भी ऊपर उठकर देवत्व की प्राप्ति करने के लिए होता है। उपाध्याय परमेष्ठी समझाते हैं हे मनुष्य अपने भावों को परखों, अपने भावों पर ध्यान दो। जो भी तुम खा रहे हो उसी से तुम्हारे मस्तिष्क में विचारों का निर्माण होता है इसलिए भोजन करते समय न हाथ में कांटे हो, ना थाली में ऐसा भोजन हो जिसमें माँस की कल्पना हो। लकड़ी में कबाब को फंसाकर के काँटों में किसी पीस को फंसाकर के खाते हो तो तुम्हारे अंदर हिंसात्मक परिणति आती है। आत्मा बंध रही है तुम्हारे इन भावों से। अपने मन को संभालो। इस संसार में तुम्हें कोई भी स्वर्ग पहुँचाने वाला नहीं, कोई भी तुम्हें बचाने वाला नहीं, केवल तुम्हारा अपना ही भाव तुम्हें बचाएगा, वही रक्षा करेगा।

ण मो उ व ज्झा या णं

बहुत गहरे नीले रंग में उन उपाध्याय परमेष्ठी से अपने पूरे शरीर को आप्लावित होता हुआ देखते हुए गहराई के साथ जोर से उनका स्मरण करके उनके उपकार को याद रखें। आज हमें उपाध्याय परमेष्ठी ने बहुत बड़ा ज्ञान दिया।

णमो उवज्झायाणं – ९ बार।

बहुत तेजी से उच्चारण करें। चारों ओर नीला–नीला प्रकाश फैल जाए। चारों ओर विश्व के अंदर शांति का भाव फैल जाए। मनुष्य अपने अंदर के हिंसात्मक विचारों को छोड़ दें। ऐसी पवित्र भावना के साथ अपनी शक्ति को पूरे ब्रह्मांड के साथ फैलाएँ।

णऽऽमो उऽऽवऽऽज्झाऽऽयाऽऽणं – ३ बार।

णमोकारमय सारा जीवन बना लो।

ध्यान–१२

नाभि केंद्र को संकुचित करके शक्ति लगाकर सिर के ऊपरी भाग तक पहुँचाने का प्रयास करें।

मूलाधार चक्र को संकुचित करके अपनी शक्ति को और ऊपर की ओर बढ़ाएँ। सहज भाव से बैठें। ज्ञान मुद्रा में बैठें। अक्षरों की शक्ति असीम होती है। अक्षर अविनाशी होते हैं, सनातन होते हैं, अनादि अनंत होते हैं। वर्णमाला के प्रत्येक अक्षर जिनवाणी के अक्षर हैं। नाभि स्थान पर वर्णमाला का पहला अक्षर 'अ' स्थापित करें। 'अ' का आकार अपने अंतर्मन से नाभि पर बनाएँ। सफेद रंग का 'अ' बना है। सिर के ऊपरी भाग पर 'सि' मस्तिष्क पर लाल रंग से लिखा है। कंठ स्थान पर 'आ' लिखें। पीले हल्दी के रंग में है। वह रंग भी महसूस करें। कार की डीपर लाइट, लाल रंग की लाइट, हरे रंग की लाइट वाहनों में, चौराहे पर दिखाई देती है। 'उ' को हृदय स्थान पर नीले रंग में देखें। होंठों पर बीचोंबीच पर 'सा' हरे रंग में लिखा है।

'अ सि आ उ सा'

ये पंचपरमेष्ठियों की शक्ति का बहुत बड़ा बीजाक्षर मंत्र है। ध्यान के साथ जो इन मंत्र की शक्तियों को देखता है उस पर सब ग्रह–नक्षत्रों की बाधाएँ, राहु–केतु के दुर्योग कोई भी प्रभाव नहीं डालते। ध्यान के साथ इन पंचपरमेष्ठियों का जो स्मरण इन बीजाक्षरों के माध्यम से करता है उसे सब प्रकार के कालसर्प आदि भयंकर डराने वाली बाधाएँ आदि से मुक्ति मिलती है।

'अऽऽ सिऽऽ आऽऽ उऽऽ साऽऽ' – २७ बार।

उन–उन स्थानों पर अपना मन ले जाएँगे। रंगों का भी ध्यान करें।

किसी भी प्रकार की कलषुताएँ, दुर्भावनाएँ, दुर्विचार हमारे मन में टिकते ही नहीं। पंचपरमेष्ठी के ये अक्षर हमारे मन को, हमारी बुद्धि को, हमारे हृदय को निरंतर शुद्ध बना रहे हैं, महसूस करें। क्रोध, मान, ईर्ष्या, लोभ, अहंकार सभी को ये प्रकाश दूर कर रहा है। मेरी आत्मा कषायों से मुक्त हो रही है। पाँच अक्षर परमेष्ठी के, आत्मा के पाँच पवित्र गुणों से हमें मिला रहे हैं। पाँचवीं गति–सिद्ध गति से हमारा परिचय करा रहे हैं। शरीर के बिना हम केवल प्रकाश ही प्रकाश महसूस कर रहे हैं। पाँचों ही अक्षरों की शक्तियाँ आत्मा को विशुद्ध बना रही है। आत्मा, आत्मा में ही, आत्मा के लिए भावना कर रही है। मेरी आत्मा, मैं आत्मा, मेरी परम शांति, मेरे अंदर सहायी है। अंतर्मन से महसूस करें, सारे सुख, सारी शांति हमें अनुभव में आ रही हैं। कषायें, इच्छाएँ सब मर चुकी हैं। परम शांत, परम वीतराग, निर्विकार मेरी आत्मा। यही मैं हूँ, जो महसूस कर रहा हूँ। मैं आत्मा जिसमें कोई विकृति नहीं, वह मैं आत्मा हूँ।

अ सि आ उ सा नमः – ३ बार।

णमोकार मय सारा जीवन बना लो।

ध्यान–१३

ज्ञान मुद्रा में बैठें, महसूस करें हमने शरीर को छोड़ दिया, मन में भावना करें मैंने शरीर को छोड़ दिया, बिल्कुल रिलेक्स रहें, गहरी श्वास लेते हुए श्वासोच्छवास से णमोकार मंत्र।

सहज अपनी श्वास को देखें। ध्यान एक ऐसी क्रिया है जिसमें अपने किसी भी अंग पर जोर नहीं डालें। दिखाई दे तो ठीक नहीं दिखाई दे तो ठीक। जैसा सुन रहे हैं वैसा हो पाए तो ठीक, नहीं हो पाए तो ठीक क्योंकि ध्यान सहज होता है। इस बात से बिल्कुल भी परेशान न हो कि हमसे ये होता नहीं, हमें ये रंग दिखाई नहीं दे रहे, हमें ये अक्षर दिखाई नहीं दे रहे। आप बिल्कुल निश्चिंत रहें जितना भी आपको दिख रहा है वह पर्याप्त है। अपनी श्वासों को सहज देखें, अपने अंतर्मन से। बस इतना ही महसूस करें कि बाहर मैं नहीं हूँ, मैं भीतर ही हूँ और बहुत भीतर हूँ। ध्यान एक गुफा की तरह होता है। अपार जंगल के बीच में कहीं एक गुफा बनी हुई होती है, उस गुफा में अंधकार रहता है और हम उसमें चले जा रहे हैं, चले जा रहे हैं, चले जा रहे हैं। ऐसे ही ध्यान बाहर से घूमकर भीतर की ओर गुफा में बहुत भीतर बहुत भीतर हमें ले जाता है। गहराई से महसूस करें। जो मैं महसूस कर रहा हूँ बस इतना ही मैं हूँ। वही मैं हूँ, मेरा अस्तित्व सिर्फ इतना ही है जितना मैं अपने आपको महसूस कर रहा हूँ। वही ज्ञान है क्योंकि आत्मा ज्ञानमय है। ज्ञान ज्ञान को ही महसूस कर रहा है। ज्ञान के अलावा हमें और कुछ अनुभव में नहीं आ सकता। जितना आत्मा है उतना ही ज्ञान है और जितना ज्ञान है वही आत्मा है। जितना हमें संवेदन हो रहा है बस उतना ही मैं हूँ। बाहर जो था वो सब मेरा नहीं था, मेरा नहीं है, मैंने उसे छोड़ दिया। वह मुझसे छूटा था, छूटा है, छूट गया। मैं केवल इतना ही हूँ, मेरा अस्तित्व, मेरा व्यक्तित्व मेरी संवेदना में समाया है। आत्मा, ज्ञान, संवेदना, प्रकाश सब कुछ मैं अनुभव कर रहा हूँ यही परम तृप्ति है। इस तृप्ति को भीतर से और गहराई से जितना आप महसूस करेंगे उतना हम भीतर से तृप्त होंगे। भीतर से आनंद उत्पन्न होगा। अरिहंत भगवान् का वह आत्मा अनंत सुख अनंत आनंद के साथ। सिद्ध भगवान् की अनंत आत्माएँ अनंत सुख अनंत आनंद के साथ। इतना सुख, इतना आनंद अनंत काल में भी वह तृप्ति नहीं होती। वे उस आनंद को पीते ही रहते हैं, पाते ही रहते हैं।

सिद्धाणं के अक्षरों को उच्चारित करें। महसूस करें सिद्ध भगवान् से हमारा संबंध जुड़ गया है। उनका आनंद, उनका सुख हमारे अंदर झर–झर–झर–झर रहा है। आनंदित हो भीतर हो, मन को चेहरे को प्रसन्न रखें। जैसे हम आनंदित होकर किसी को देखते हैं तब हमारे अंदर उसको ग्रहण करने की ललक उत्पन्न होती है। ऐसे ही आनंद के साथ सिद्धों के उस सुख को, सिद्धों के उस झरते हुए आनंद को ग्रहण करें। भीतर से हिल जाएँ, घुल जाएँ, अपने आनंद में बह जाएँ।

ये शांति के क्षण, ये आनंद के क्षण आपको फिर नहीं मिलेंगे। इन्हें महसूस करें। अपने दोनों हाथ जोड़ें, भीतर से आनंदित होते हुए प्रार्थना करें।

ध्यान–१४

श्वासोच्छवास से णमोकार मंत्र – ९ बार।
अब हम एक–एक पद की मुख्यता से आराधना करेंगे। प्रत्येक पद में कोई ना कोई तत्व समाहित है। णमो अरिहंताणं से आकाश तत्त्व की प्राप्ति होती है। आकाश तत्व की कमी से मस्तिष्क संबंधी रोग उत्पन्न होते हैं क्योंकि आकाश तत्त्व का स्थान मस्तिष्क है। आधा सिर दर्द, माइग्रेन, पेरालिसिस, मेनेजाइटिस, नींद नहीं आना, डायबिटीज, नर्वस सिस्टम डिस्टर्व होना, मौसम के परिवर्तन से बहुत जल्दी सर्दी–खाँसी–जुकाम होना, ये सब आकाश तत्त्व की विशेष रूप से प्राप्ति कराता है। मानसिक रूप से क्रोध की शांति, आवेग की शांति और अध्यात्मिक रूप से शुद्ध भावों की प्राप्ति अशुभ लेश्या का अभाव, शुभ भावों की सद्भावना होती है। तीनों प्राप्तियाँ एक साथ होती है। दोनों भौंवों के बीच में एक छोटे से कमल की स्थापना करते हुए देखें। उस कमल के (एक–एक पत्ते) ऊपर एक–एक अक्षर लिखे हुए हैं।

ण मो अ रि हं ता णं

महसूस करें वह कमल आठ पंखुड़ियों का था। एक–एक पंखुड़ी पर हमने एक–एक अक्षर लिख दिया। ण मो अ रि हं ता णं। एक पंखुड़ी जो खाली है उस पर ओम् लिखना है। अब पूरे मंत्र को हम अष्टद्लीय पत्तों के साथ देखें।

ण मो अ रि हं ता णं – ३ बार।

दोनों भौंहों के बीच में एक ज्ञान केंद्र होता है उस पर एक छोटे से कमल में सफेद अक्षरों में णमो अरिहंताणं को देखें। जो दिख रहा है, जैसा दिख रहा है, जितना दिख रहा है उतना देखें। किसी भी प्रकार की मन में चिंता, विकल्प ना लाएँ। शरीर के भीतर से, नाभि केंद्र से होते हुए, हृदय केंद्र से होते हुए, कंठ से होते हुए उस मस्तक के ऊपरी भाग तक णमो अरिहंताणं की गूँज हम भीतर ही भीतर करेंगे।

ण मो अ रि हं ता णं – ३ बार।

उस ज्ञान केंद्र पर बना हुआ वह कमल और ज्यादा प्रकाशवान हो रहा है। जैसे–जैसे हम

भीतर से णमो अरिहंताणं को गूँजते हुए ऊपर पहुँचाएँगे। वह केंद्र बिंदु पर स्थापित कमल और उसके अक्षर दोनों बढ़ते चले जाएँगे। भीतर से उच्चारण करें।

ण मो अ रि हं ता णं – १८ बार।

महसूस करें प्रकाश हिलता दिखाई दे रहा है, पूरा मस्तिष्क हिलता हुआ दिखाई दे रहा है। मस्तिष्क संबंधी रोग, डायबिटीज आदि दूर होंगे।

ये एक–एक अक्षर अनंत शक्ति को लिए हुए बीजाक्षर कहलाते हैं। सभी प्रकार की शक्तियाँ, तत्त्व इन अक्षरों में निहित है। सांसों को सहज बनाकर के रखें। केवल मस्तिष्क के प्रकाश पर ध्यान दें। अपने मस्तिष्क के ऊपर छोटी सी अरिहंत भगवान् की प्रतिमा को ध्यान में लाएँ। जो भी प्रतिमा आपके ध्यान में हो, मन में हो उसे मस्तिष्क के ऊपरी भाग में देखें। उन अरिहंत भगवान् की प्रतिमा का प्रकाश, सफेद रंग के महावीर भगवान्... पूरा मस्तिष्क के ऊपर दूधिया रंग, धवल वर्ण, चंद्रमा के समान सफेद प्रकाश फैला हुआ है। पूरे शरीर में वह प्रकाश फैल रहा है। मन आनंदित है भीतर से पूरे मन को लग रहा है कि दूसरी दुनिया में प्रवेश मिल गया है, ऐसा आनंद महसूस करें। भगवान् अरिहंत की सफेद आकार की प्रतिमा को देखकर के महसूस करें। सफेद रंग की दूधिया प्रतिमा को ध्यान में लाएँ। मस्तिष्क पर व पूरे शरीर में वह प्रकाश फैल रहा है। चेहरे पर प्रसन्नता लाएँ। खूब प्रसन्न होएँ। दोनों हाथों को जोड़ें। भीतर से आनंदित होते हुए, शरीर को हिलाते हुए प्रार्थना।

णमोकारमय सारा जीवन बना लो।

केवल हम अपने आपको महसूस कर रहे हैं। मैं एक हूँ। मेरा आत्मा अकेला है। मेरा आत्मा एक है, अकेला है। अपने अंतर्मन से देखें सबका आत्मा एक है, अकेला है। जैसे हम एक आत्मा है वैसे ही दुनिया में अनंत जीव है वे सब एक–एक, अलग–अलग आत्माएँ हैं। जैसा हम महसूस कर रहे हैं अनुभव कर रहे है वैसा ही सभी आत्माएँ अपना अपना अनुभव, अपना–अपना ज्ञान, अपना–अपना भाव महसूस कर रहे हैं। मैं एक हूँ। आत्मा एक है, अकेला है। सबका आत्मा अकेला है एक है ऐसी एक–एक– एक–एक–एक अनंत आत्माएँ इस संसार में हैं। जहाँ हम अपने आपको महसूस कर रहे हैं, वहीं पर अनंत और आत्माएँ उसी स्थान पर है। उनका अनुभव हमको नहीं, हमारा अनुभव उनको नहीं। मेरी आत्मा एक है, सबकी आत्मा एक है। ज्ञान सबका एक है। अनुभूति सबकी एक है। सुख सबका एक है। आत्मा कभी मिटती नहीं, शाश्वत है, वह कभी जलती नहीं,

बंटती नहीं। मेरी अनुभूति ज्ञान से कभी छूटती नहीं। पूरे शरीर में जो ज्ञान संवेदना महसूस कर रही हूँ वह मैं एक शाश्वत आत्मा हूँ।

'एगो मे सासदो अप्पा –३ बार

एक मेरी शाश्वत आत्मा है। गहराई से महसूस करें। मैं केवल एक आत्मा हूँ। शाश्वत हूँ, इसके अलावा और कुछ नहीं। भीतर से गहराई से ऐसा महसूस करें जैसे पहले मुझे ये ज्ञान नहीं मिला। पहली बार इतनी गहराई से हम अपने आपको महसूस कर रहे हैं, अनुभूत कर रहे हैं। अपने आपको पकड़े, अपने आपको पकड़े, अपने आपको पकड़े। आनंदित हो जैसे मुझे कोई बहुत पुरानी भूली हुई चीज मिल गई है। कोई गुमी हुई बहुत पुरानी चीज मिल गई हो। कोई गुमी हुई बहुत पुरानी निधि मिल गई हो। जैसे मुझे लाख करोड़ रुपए मिलने पर प्रसन्नता होती है। ऐसी प्रसन्नता अपने अंदर लाएँ। महसूस करें मुझे कुछ नया मिला जो मुझे अभी तक नहीं मिला। मेरी आत्मा सिद्ध आत्मा है। मैं सिद्धों की तरह एक हूँ, शाश्वत हूँ। मेरी आत्मा सिद्धात्मा है, मैं अपनी ही आत्मा को नमस्कार करके सिद्धों को नमस्कार कर रहा हूँ। मैं सिद्धों को नमस्कार करके अपनी आत्मा को नमस्कार कर रहा हूँ। अक्षय–अनंत ज्ञान को धारण करने वाले 'तस्मै सिद्धात्मने नमः' – ९ बार

ण मो सि द्धा णं – ९बार

लाल रंग के प्रकाश के साथ पूरे शरीर में गूँज महसूस करें। आपका पूरा शरीर ऊर्जा से भरा हुआ है। आपके पास में इतनी शक्ति है कि अगर किसी समय पर आप किसी भी रोगी के लिए हाथ थप्पड़ के रूप में मार देंगे तो उसका रोग ठीक हो जाएगा। अपने ही घुटनों पर अगर आप को दर्द है, वहाँ पर उस ऊर्जा को पहुँचा दें, अपने ही घुटनों को मारें। पीठ पर मारें। अपनी भुजाओं को अपने ही हाथों से मारें। दूसरे की पीठ पर भी मार सकते हैं। पूरे जगत में शांति हो, अपनी ऊर्जा को अपने ही हाथों से लुटा दें बाहर की ओर। अपने शरीर को हल्का महसूस करें। प्रार्थना।

ध्यान–१५

णमो अरिहंताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आयरियाणं, णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्वसाहूणं।

पंच परमेष्ठी को स्मरण करते हुए भावपूर्वक हम पंच परमेष्ठी के प्रति श्रद्धा भाव उत्पन्न करें। अरिहंत परमात्मा, अरिहंत परमेष्ठी जो भी हम उनका स्वरूप जानते हैं, उस स्वरूप को ध्यान में लाएँ। सिद्ध परमेष्ठी जहाँ है, जिस स्वरूप में है हम उनको श्रद्धा से अपने ज्ञान का विषय, ध्यान का विषय बनाएँ। आचार्य परमेष्ठी जगत के हितकारी उनको अपने ध्यान का विषय बनाएँ। उपाध्याय परमेष्ठी ज्ञान के दाता उनको हम अपने ध्यान का विषय बनाएँ। साधु परमेष्ठी अपनी आत्मा का कल्याण करने वाले निरंतर आत्मसाधना में रहने वाले उनको हम अपने ध्यान का विषय बनाएँ। पंच परमेष्ठी के प्रति जितनी हमारी श्रद्धा होगी, उतना ही हमें मानसिक, शारीरिक और आध्यात्मिक लाभ प्राप्त होगा। बिना श्रद्धा के, बिना आस्था के किसी भी लाभ की इच्छा नहीं करना। जिन्हें आध्यात्मिक लाभ की इच्छा होती है, उन्हें बाकी के सब लाभ स्वयं प्राप्त हो जाते हैं इसलिए उस आध्यात्मिक लाभ को ही मुख्य दृष्टि में रखना। उसी को आत्मिक स्वस्थ्यता कहते हैं। आत्मा जब स्वस्थ होने लग जाती है तो शारीरिक स्वास्थ्य अपने आप बनने लग जाता है। हम उसी आध्यात्मिक पद्धति को अपनाते हुए, सर्वप्रथम अरिहंत मुद्रा का ध्यान करें।

गहरी सांस लेकर के पाँच बार णमो अरिहंताणं को पूर्ण श्रद्धा के साथ करें। प्रार्थना मुद्रा में आएँ।

णमो सिद्धाणं

दोनों हाथों को सामने रखकर सिद्ध शिला की आकृति बनाएँ। थोड़ा सा उंगलियाँ ऊपर की ओर उठी रखें। थोड़ी सी अंजुली आकार में एक-एक तीर्थंकर को एक-एक पोर पर रखा हुआ देखें। ऋषभ, अजित, संभव, अभिनंदन, सुमति, पद्म, सुपार्श्व, चंद्रप्रभु पुष्पदंत, शीतल, श्रेयांश, वासुपूज्य, विमल, अनंत, धर्म, शांति, कुन्थु, अरह, मल्लि, मुनिसुव्रत, नमि, नेमि, पार्श्व, वर्धमान, २४ तीर्थंकरों का स्मरण करके अपने हाथों को प्रार्थना मुद्रा में लाएँ। णमो आयरियाणं। ज्ञान मुद्रा के साथ हाथों को ऐसे ऊपर की ओर करें। दोनों अंगूठे और उंगलियों को मिलाकर ऊपर की ओर हथेलियाँ करें। पाँच बार गहरी सांस लेकर णमो आयरियाणं का स्मरण करें। प्रार्थना मुद्रा में आएँ।

णमो उवज्झायाणं

दोनों हाथ सामने और आगे की ओर निकालते हुए थोड़ा सा जोर डालें। पाँच बार णमो उवज्झायाणं का स्मरण करें। गहरी सांस लेते हुए प्रार्थना मुद्रा में आएँ।

णमो लोए सव्वसाहूणं

पाँच बार इस मंत्र का स्मरण करते हुए प्रार्थना मुद्रा में आएँ। एक बार पुन:

णमो अरिहंताणं प्रार्थना मुद्रा

णमो सिद्धाणं, प्रार्थना मुद्रा

णमो आयरियाणं ज्ञान मुद्रा के साथ हथेलियाँ ऊपर। प्रार्थना मुद्रा, णमो उवज्झायाणं ऊर्जा को वितरित करें, जो हमारे पास निगेटिव है उसको दूर करने के लिए अपने पंजों को हिलाकर ढोलकनुमा बजाएँ। केवल पंजों को जोर से हिलाएँ पंखे की तरह। जो ऊर्जा हमारे साथ हो चुकी है उसको अपने पास ग्रहण करने के लिए तबलानुमा बजाएँ। प्रार्थना मुद्रा में आएँ।

णमो लोए सव्वसाहूणं

प्रार्थना मुद्रा में आएँ। अपनी दोनों हाथों की हथेलियों पर अर्हम् लिखें। अपनी ही उंगली से अपने ही हाथों की हथेलियों पर अर्हम् लिखें। दोनों हाथों को मिलाएँ। जोर से दबाएँ, हथेलियों को आपस में जोर से दबाएँ। महसूस करें अर्हम् की शक्ति हमारे हाथों में प्रवेश कर रही है। पूरे शरीर में प्रवेश कर रही है। अर्हम् के अक्षरों की ऊर्जा दोनों हथेलियों में प्राप्त हो रही है। ऊर्जा से हमारे हाथ भरे हुए हैं। उंगलियों पर हमने २४ तीर्थंकरों के नाम को स्मरण किया। हाथ की हथेलियों को, अर्हम् के अक्षरों से अंकित किया। हमारे हाथ पंच परमेष्ठी की शक्ति से, विशुद्ध आत्मा की शक्ति से भरे हुए हैं। अपने दोनों हाथों को अपनी आँखों पर लगाएँ। महसूस करें, रंग परिवर्तन के साथ। प्रकाश परिवर्तन के साथ में, अर्हम् की आकृति दिखाई दे रही है। अर्हम् की ज्योति हमारे नेत्रों में प्रवेश कर रही है। हमारी नेत्र ज्योति बढ़ रही है। मन की शांति बढ़ रही है। पवित्र ऊर्जा, सकारात्मक शक्ति नेत्रों के माध्यम से मस्तिष्क तक पहुँचती है और वो विचार उत्पन्न करती है। आप अपने अंदर उस वैचारिक शक्ति को शुद्ध कर रहे हैं। अर्हम् की उस प्रकाश से अपनी आँखों को, अपने दिमाग को पवित्र कर रहे हैं। हल्का सा अपनी आँखों को वहीं पर मलें। हल्का सा अपनी हथेलियों को रोटेट करें, क्लॉकवाइज एन्टी क्लॉकवाइज। दिनभर हमारी आँखें खुली रहती हैं, थक जाती हैं उन्हें विश्राम की बहुत जरूरत होती है। अपनी हथेलियों को कान के ऊपर रखें। भीतर की गूँज सुनें। महसूस करें भीतर अर्हम् की गूँज उत्पन्न हो रही है। हल्का-हल्का कान को

दबाएँ। अब हथेलियों को अपने चेहरे के ऊपर रखें। मन को प्रसन्न रखें। चेहरे को प्रसन्न रखें। भगवान् जिनेन्द्र देव की तरह चेहरे को प्रसन्न रखें। महसूस करें अर्हम् की ऊष्मा से हमारा चेहरा प्रकाशमान हो रहा है। हमारा हृदय पवित्र हो रहा है। अपने दोनों हाथों को सिर के ऊपर टच नहीं करते हुए हल्का सा एक सेंटीमीटर ऊपर रखकर के दोनों हाथों को ये महसूस करें पंच परमेष्ठी की कृपा, उनकी ऊर्जा, हमारे शरीर में मस्तिष्क से होते हुए पूरे शरीर में प्रवेश कर रही है। पंच परमेष्ठी का भरपूर आशीर्वाद हमको मिल रहा है। २४ तीर्थंकर भगवान्, पंच परपेष्ठी की कृपा, हमारी आत्मा, शरीर और मन सबको कवलित (प्रसन्न) कर रही है। ध्यान मुद्रा और अंदर सहज बैठ जाएँ। कमर को सीधा रखें। अंगूठे और तर्जनी को मिलाकर तीनों उंगलियों को सीधा बना लें। सहज भाव से बैठें। गर्दन को सीधा रखें। आँखें बंद रखें। गहरी सांस लें। श्वांस को णमोकार के अक्षरों के साथ देखें। मन से आँखें बंद करके और प्रसन्नता के साथ णमो अरिहंताणं के अक्षरों को ग्रहण करते हुए थोड़ी देर रुककर णमो सिद्धाणं के अक्षरों के साथ श्वांस को छोड़ते हुए णमो आयरियाणं के अक्षरों को पुन: गहरी श्वांस लेते हुए गहरी श्वांस ले। पेट में गहरी श्वांस थोड़ी देर रोकें। पेट फूल जाए, नाभि के पास स्पंदन हो श्वांस छोड़ते हुए णमो उवज्झायाणं के अक्षरों को धीरे-धीरे क्रम-क्रम से देखें। पुन: गहरी श्वांस लेते हुए णमो लोए के अक्षरों को ग्रहण करें। थोड़ी देर श्वांस को रोकें। नाभि के पास श्वांस को घूमने दें। धीरे–धीरे सव्वसाहूणं के अक्षरों को श्वांस से बाहर निकालें। सहज प्रक्रिया से गुजरें। एक बार पुन: अपने मन से भीतर के श्रद्धा के भावों से गहरी श्वांस के साथ पुन: णमोकार मंत्र इसी तरह बोले। श्वांस इस तरह से लें कि महसूस करें श्वांस नाभि तक पहुँच रही है। गहरी श्वांस गले से स्पर्श करती हुई हृदय से होती हुई अपने नाभि तक पहुँचाएँ। नासिका से लेते हुए अपने आपको अंतर्मन से देखें। गले से होती हुई वह श्वांस नाभि तक पहुँच रही हैं। आपको गले में ठंडापन महसूस होगा और वह श्वांस आपकी थाइराइड की सभी प्रॉब्लम दूर करेगा। एसीडीटी इस प्रक्रिया से दूर होगी। गैस ट्रबल इस प्रक्रिया से दूर होंगे। गहरी श्वांस चारों ओर परम शांति अर्हम् का वातावरण है। णमोकार की ऊर्जा से पूरा वातावरण भरा हुआ है। उस शक्ति को भीतर ग्रहण करें। णमोकार के अक्षरों को भीतर ग्रहण करें। चारों ओर उस पवित्र वातावरण को और शक्तिमान बनाएँ।

ओम्... ह्रीं.... श्रीं.... अर्हम्.... नम:

पुन: और पवित्र भावों के साथ पूरे वातावरण को मंगलमय ऊर्जा के साथ भर दें।

ओम्... ह्रीं.... श्रीं.... अर्हम्.... नम:

महसूस करें शरीर में उस ऊर्जा को ग्रहण करने की क्षमता बढ़ गई है। अपने आप शरीर का प्रत्येक कण-कण पवित्रता से भर रहा है। बीजाक्षरों की यह ध्वनि न केवल शरीर को पवित्र करती है, मन को विकारों से मुक्त करती है। मन को भी पवित्र करती है। अपने मन में किसी भी प्रकार का क्रोध, मान, लोभ, मद, मोह किसी भी प्रकार का ये विकारी भाव मन के अंदर उत्पन्न न होने दें। मन को पवित्रता की ओर ले जाएँ। विचारों को बिल्कुल शांत। ... शरीर और मन की पवित्रता के बाद आत्मा के स्तर तक पहुँचने के लिए हमें उन पवित्र अक्षरों का आलंबन लेना होता है। जिनकी शक्तियों से आत्मीय शक्तियाँ प्रकट होती हैं। जैसे निरंतर अपने हाथ को रगड़ने से अपने हाथ गरम हो जाते हैं। ऐसे ही इन बीजाक्षरों का, मंत्रों का उच्चारण करने से जो मन के अंदर ऊष्मा उत्पन्न होती है वही आत्मा के अंदर कर्म क्षय का कारण होती है। आत्मा के कर्मों को जगाती है। ओम् को नाभि पर देखें, ह्रीं को हृदय पर देखें, श्रीं को कंठ स्थान पर देखें, अर्हम् अपने मस्तिष्क के ऊपर चमकता हुआ देखें, प्रकाशवान्।

ओम्... ह्रीं.... श्रीं.... अर्हम्.... नमः

न बहुत उच्च स्वर में और न बहुत मंदता के साथ भीतर-भीतर मध्यम स्वर में एक मंत्र का जाप करेंगे, जो मंत्र आत्मा का ध्यान कराने के लिए सहायक है।

'ओम् ह्रीं अर्हं सिद्ध अयोगकेवली स्वाहाः' न बहुत तेजी से, न बहुत धीरे महसूस करें, मन के अंदर बहुत शांति से जाप करें।

ओम् ह्रीं अर्हम् सिद्ध अयोगकेवली स्वाहाः (७)

महसूस करेंगे पवित्र अक्षरों पर हमारा ध्यान पूरी तरह से लगा हुआ है। स्वाहाः के माध्यम से मन में मंगलता उत्पन्न होती है, पाप दूर होते हैं, हम अपने ही आत्मा में एक यज्ञ कर रहे हैं, हवन कर रहे हैं, जिसमें अपने पापों को जला रहे हैं। दुर्विचारों को जला रहे हैं और ये मंत्र अर्हं सिद्ध अयोगकेवली ये हमारे लिए घृत/घी के समान है। इन्हीं के द्वारा अग्नि में अपनी आत्मा के पापों को आहुत करना है।

ओम् ह्रीं अर्हम् सिद्ध अयोगकेवली स्वाहाः (९)

ध्यान करें अर्हम् के अक्षरों का प्रकाशमान है हमारे मस्तिष्क के ऊपर, उन्हीं में अर्हम, सिद्ध, अयोगकेवली समाए हुए हैं। उसी अर्हम् का प्रकाश इन अक्षरों के रूप में परिवर्तित हो गया। उसी अर्हम् से अक्षर निकले हैं, ये मंत्र निकला है।

ओम् ह्रीं अर्हम् सिद्ध अयोगकेवली स्वाहाः (९)

इन अक्षरों को, मंत्र के अक्षरों को देखते रहे, मन ही मन में, आँख बंद करके इन अक्षरों का चिंतन करें, महसूस करें। हम भीतर ही भीतर होंठों को हिलाए बिना, मुँह को हिलाए बिना, जिव्हा को हिलाए बिना हम ये जाप कर रहे हैं। ये मानसिक जाप बहुत लाभदायक होता है। मन ही मन में इसी मंत्र का चिंतन करें। केवल सुनेंगे मन के स्तर पर, महसूस करेंगे हम बोल नहीं रहे हैं। हम अपनी जिव्हा को अपने तालू से लगाते हैं ताकि वो जिव्हा चलने न पाए, हिलने न पाए, जिव्हा को तालू से लगाकर ध्यान करने से ब्रह्मांड की पवित्र शक्तियाँ आत्मा के स्तर पर ग्रहण की जाती है। भीतर ही भीतर जाप करें। हम बोलें, आप केवल सुनें। जिव्हा को अपने ऊपरी तालू से लगाए रखते हैं।

ओम् ह्रीं अर्हं सिद्ध अयोगकेवली स्वाहा:

केवल अक्षरों पर ध्यान दें।

ओम् ह्रीं अर्हं सिद्ध अयोगकेवली स्वाहा: (७)

पूरे शरीर में अक्षरों को कंपायतीत होते हुए देखें। तरंगायीत होता हुआ देखें, महसूस करें। भीतर मन शांति के समुद्र में डुबकी लगा रहा है। आँखें बंद हैं, कानों से जो सुनाई पड़ रहा है उससे कोई फर्क नहीं पड़ रहा, आत्मा की गहरी शांति भीतर है, उसकी तीव्र अनुभूति हमें महसूस हो रही है। सिद्ध भगवान् ऐसी ही परम शांति के साथ सदैव आनंद मग्न रहते हैं। ज्ञान ज्योति, परम शांति, परम आनंद आत्मा के स्तर पर उन्हें हमेशा अनुभूत होता है। वही अनुभूति हम कर रहे हैं। अरिहंत भगवान् की आत्मा में भी वही अनुभूति है। केवल शांत, सुख, आनंद, ज्ञान ये सब अनुभव की चीजें हैं।

ओम् ह्रीं अर्हं सिद्ध अयोगकेवली स्वाहा: (३)

मस्तिष्क पर अर्हं के प्रकाश में देखें। अरिहंत भगवान् का वो प्रकाश हमारे मस्तिष्क को पवित्र कर रहा है और हम उनके चरणों में बैठे हैं। बहुत दूर से वो दिव्य प्रकाश आ रहा है। हमारे मस्तिष्क के ऊपरी भाग पर वो अर्हं में परिवर्तित हो रहा है।

ओम् ह्रीं अर्हं सिद्ध अयोगकेवली स्वाहा: (११)

भीतरी ऊर्जा को और बढ़ाएँ, प्रकाश को और प्रकाशमान होता देखें।

ओम् ह्रीं अर्हं सिद्ध अयोगकेवली स्वाहा:

आप लोग स्वाहा: बहुत जोर से बोलेंगे। इससे अपनी आत्मा के अंदर चिपके हुए पाप निकल जाएँ।

ओम् ह्रीं अर्ह सिद्ध अयोगकेवली स्वाहा:

ऐसा महसूस करेंगे कि जैसे हम बहुत बड़ा यज्ञ कर रहे हैं। होम कर रहे हैं। अपने पापों को इसमें होम कर रहे हैं।

ओम् ह्रीं अर्हं सिद्ध अयोगकेवली स्वाहा: (५)

और जोर से अपनी सांसों को बाहर फेंकते हुए स्वाहा: को बोलेंगे।

ओम् ह्रीं अर्हं सिद्ध अयोगकेवली स्वाहा: (२)

और जोर से अपनी सांसों को बाहर फेंके।

ओम् ह्रीं सिद्ध अर्हं अयोगकेवली स्वाहा:

और ताकत लगाकर के सांसों को बाहर फेंके। जितना ज्यादा श्वांसों को आप बाहर फेकेंगे, भीतर की प्रदूषित वायु फेफड़ों में जमी हुई है। मानसिक विकार जो आत्मा में जमे हुए हैं वो सब बाहर फेंके जा रहे हैं।

ओम् ह्रीं अर्हं सिद्ध अयोगकेवली स्वाहा: (७)

महसूस करें आपके स्वाहा के अक्षर जो बाहर निकल रहे हैं, वो सब वातावरण की नकारात्मक ऊर्जा को मिटाते हुए अर्हम् सिद्ध के अक्षरों को विदेह क्षेत्र तक ले जा रहे हैं और ये अयोगकेवली के अक्षर तीनों लोक के अंदर विचरण कर रहे हैं। आप पूरी शक्ति लगाकर इन तीनों लोक के अंदर इन पवित्रता को भरने का साहस करें।

ओम् ह्रीं अर्हं सिद्ध अयोगकेवली स्वाहा: (२४)

केवल प्रकाश ही प्रकाश, शांति ही शांति महसूस करें। शरीर में, मन में होने वाले कंपनों के साक्षी बनें। महसूस करें पूरे शरीर में, मन में एक रासायनिक प्रक्रिया चल रही है। अणुओं का, परमाणुओं का निरंतर विखंडन–संयोजन चल रहा है, जैसे हम अपने आपको अपने में पाते जा रहे हैं।

दोनों हाथ जोड़कर आनंदित होते हुए पूरे शरीर को हिलाएँ। अभी आँख नहीं खोलें, आनंदित हो भीतर ही भीतर, केवल हाथ जोड़ लें।

णमोकार मय सारा जीवन बना लो

महा मंत्र से चेतना को सजा लो...

आपके हाथ असीम शक्ति से भरे हुए हैं।

ध्यान– १६

एक नाभि केंद्र है, एक हृदय केंद्र हैं, एक कंठ पर केद्र है और एक अपने मस्तिष्क के बीचोंबीच में केंद्र है, जिसे अपन भौंहों के बीच का स्थान कहते हैं और एक सबसे ऊपर का केंद्र है। इन केंद्रों का ध्यान रखते हुए आज एक नई प्रक्रिया से गुजरेंगे। आप अपनी आँखें बंद कर लें।

साँस को गहरा ले नाभि पर, नाभि चक्र पर।

'णमो लोए सव्वसाहूणं'

ये अक्षर हमारे नाभि चक्र पर लिखे हुए हैं। शरीर में नाभि से ऊपर के केंद्र बिंदु यदि ऊर्जावान् हैं तो शरीर में कभी रोग नहीं हो सकते। मन में कभी दुर्भाव उत्पन्न नहीं हो सकते। सबसे पहले शरीर का शक्ति केंद्र ये नाभि बिंदु माना जाता है। ली हुई साँस, छोड़ी हुई साँस इसका प्रवाह केंद्र बिंदु से होकर के जाता है। इसी केंद्र पर नाभि के स्थान पर।

'णमो लोए सव्वसाहूणं' के अक्षरों को एक साथ झुंड में उन अक्षरों को एक साथ स्थापित होता हुआ देखें। एक साथ वह अक्षर 'ण मो लो ए स व्व सा हू णम्' ये अक्षर नाभि के आसपास घूम रहे हैं। नाभि के पास जो वायु घूमती है, उसी के कारण से नाभि को नाभि चक्र के रूप में कहा जाता है। वस्तुत: ऐसे चक्र शरीर में नहीं होते। केवल वायु के मिलने के स्थान के कारण से उसे चक्र कहा जाता है। उस स्थान पर जहाँ हमारी ग्रहण की हुई वायु और पहले से शरीर में समाहित वायु जब मिलती है तो उस वायु में कुछ दूषण उत्पन्न हो जाते हैं, जिसके कारण से पेट संबधी रोग होते हैं। उस नाभि चक्र की शुद्धि के लिए।

'ण मो लोए सव्व सा हू णम्' इन्हीं अक्षरों को ध्यान से देखें। नाभि के आसपास अपनी श्वास के साथ में जो हम ग्रहण कर रहे हैं, छोड़ रहे हैं उसके साथ उन अक्षरों का वहाँ पर भ्रमण हो रहा है। इन अक्षरों को अपनी श्वास के साथ बाहर फेंकना है बहुत तेजी के साथ फेंकना है।

'ण' श्वास को बाहर फेंके, एक-एक अक्षर के साथ 'मो' आप केवल श्वास फेंके। हम अक्षरों पर ध्वनि कर रहे हैं। 'लो ए स व्व सा हू णम्'। पुन: गहरी श्वास ले नाभि पर जोर डालते हुए उस श्वास के साथ इन अक्षरों को अपनी नाभि से तेज श्वास के साथ पुन: बाहर की ओर फेंके।

'ण मो लो ए स व्व सा हू णम्'

पुन: गहरी श्वास ले। नाभि चक्र की शुद्धि के लिए एक बार पुन:

'ण मो लो ए स व्व सा हू णम्'

नाभि से ऊपर हृदय स्थान होता है। उस हृदय स्थान पर भी हमारी श्वास जो हम ग्रहण करते हैं और छोड़ते हैं। एक चक्र बनाती है उस श्वांस में और उस चक्र के आसपास रहने वाली सभी वायु में जब दूषण उत्पन्न हो जाते हैं तो हृदय संबंधी रोग उत्पन्न होते हैं। उस हृदय स्थान पर

'ण मो ऊ व ज्झा या णम्'

इन अक्षरों को देखें 'ण मो उ व ज्झा या णम्'

अपने हृदय स्थान पर एक श्वास ऐसी लें, जिसका स्पर्शन हृदय पर हो। हृदय पर उसका आघात समझ में आए और इस हृदय स्थान की शुद्धि के लिए एक-एक अक्षर को पूरे जोर के साथ हृदय से उस वायु को श्वांस से बाहर रखेंगे।

'ण मो ऊ व ज्झा या णम्'

महसूस करें व अक्षर हमारे शरीर के आसपास वातावरण में भी बिखर रहे हैं। गहरी साँस लेकर के देखते हैं व अक्षर हमारे हृदय स्थान पर है। पुन: एक बार

'ण मो उ व ज्झा या णम्'

पुन: गहरी श्वास लें। उन अक्षरों को अपने हृदय स्थान पर ध्यान देना है।

'ण मो उ व ज्झा या णम्'

हृदय स्थान से ऊपर कंठ स्थानों पर इस कंठ के भीतरी भाग में उस वायु का प्रवाह चलता है। इसे विशुद्धि चक्र कहा जाता है। उस स्थान पर

ण मो आ इ रि या णाम्

इन अक्षरों को उगता हुआ देखें। ध्यान दें, अपने ही अंदर मन से

ण मो आ इ रि या णम्

एक श्वास ऐसी लें, जो अपने गले को स्पर्श करती हो, जिसका श्वांस का स्पर्शन गले के पास कंठ में महसूस हो रहा हो। गले को छूती हुई श्वास को ग्रहण करें और गले के आसपास घूमते हुए अक्षरों को श्वास के साथ बाहर फेंके

ण मो आ इ रि या णम्

पुन: एक बार श्वास खोलें। गले तक स्पर्श करते हुए श्वास को छोड़ें। गले के साथ गले पर जोर डालते हुए

ण मो आ इ रि या णम्

पुन: एक श्वास लें।

ण मो आ इ रि या णम्

गले के ऊपरी भाग पर उसी के ठीक ऊपर जहाँ अपनी दोनों भौंवें मिलती हैं, उसी के अंदर भीतर भाग पर उसी सीध में रीढ़ की हड्डी के भीतर की ओर अपना ध्यान ले जाएँ और वहाँ पर

ण मो अ रि ह न्ता णम्

इन अक्षरों को घूमता हुआ देखें। अपनी श्वास को अपनी आँखों के पास अपनी साँस को अपने मस्तिष्क के पास पहुँचाएँ। वहाँ पर हल्का सा जोर डालें और अक्षरों को बाहर फेंके

ण मो अ रि ह न्ता णम्

श्वास को ऊपर की ओर लें। महसूस करें व श्वांस नाक, कान, मुख के पास में और उस केंद्र बिंदु को ध्यान में रखें जो रीढ़ की हड्डी की सीध में है। मस्तिष्क के भीतरी भाग में हैं।

ण मो अ रि ह न्ता णम्

पुन: एक बार उस श्वास को ऊपर की ओर ले जाएँ। उन अक्षरों को पुन: ध्यान में लाएँ

ण मो अ रि ह न्ता णम्

अपने सिर के ऊपरी भाग पर अपना ध्यान ले जाएँ। सिर का ऊपरी भाग, सबसे ऊपर का भाग अपना सिर जहाँ समाप्त होता है। उसके ठीक नीचे की त्वचा में, त्वचा के ठीक नीचे का भाग

ण मो सि द्धा णम्

ये अक्षर को सिर के, मस्तिष्क के कपाल के ऊपरी भाग में श्वास को अपने दिमाग के अंदर उस कपाल के ऊपरी भाग पर ले जाएँ और अक्षरों को साँस के द्वारा बाहर फेंके

ण मो सि द्धा णम्

पुन: एक बार श्वास को ऊपर की ओर ग्रहण करें।

ण मो सि द्धा णम्

पुन: एक बार श्वास को ऊपर ले जाकर

ण मो सि द्धा णम्

पाँचों ही चक्रों पर, स्थानों पर संवेदन महसूस करें। अपनी साँस को वहाँ-वहाँ ले जाकर के अपने मन को वहाँ-वहाँ ले जाकर क्रम-क्रम से अपने मन को नाभि स्थान से हृदय स्थान पर, हृदय स्थान से कंठ स्थान तक, कंठ से ज्ञान चक्र पर और ज्ञान चक्र से सबसे ऊपरी दर्शन चक्र

की ओर ले जाएँ।

णमोकार के अक्षरों से ये पाँचों ही स्थान शुद्ध हो रहे हैं। णमोकार के अक्षरों से ये पाँचों ही स्थान पवित्र हो रहे हैं। इन पाँचों ही स्थान पर हमें बहुत स्वच्छ निर्मल प्रकाश अनुभव में आ रहा है। जिस पद को बोले हमारा ध्यान उसी स्थान पर जाए। नाभि पर

णमो लोए सव्वसाहूणम्

हृदय पर णमो आइरियाणम्

मस्तिष्क पर णमो अरिहंताणम्

सिर के ऊपरी भाग पर णमो सिद्धाणम्

अपने मन को इन्हीं पाँच पदों के साथ पाँच स्थानों पर जैसा पद का उच्चारण किया जाए, उसी के अनुरूप उस पद पर उस स्थान पर अपना मन ले जाएँ और अक्षरों को केवल उस स्थान पर देखें।

ण मो अ रि ह न्ता णम्

कंठ में णमो आइरिआणम्

नाभि पर णमो लोए सव्वसाहूणम्

हृदय के ऊपर णमो उवज्झायाणाम्

सिर के ऊपर ण मो सि द्धा णं

ये पाँचों ही स्थानों पर वह प्रकाश वो शक्ति घूम रही है। उस शक्ति को पाँचों ही स्थान पर एक-एक करके चारों ओर प्रत्येक केंद्र पर शक्ति को घुमाएँ। उन-उन स्थानों को याद रखें, जिन स्थानों पर जिन पदों को हमने रेखांकित किया है स्थापित किया है–

णमो सिद्धाणम्

णमो आइरियाणम्

णमो अरिहंताणम्

णमो उवज्झायाणम्

णमो लोए सव्वसाहूणम्

केवल अंतर मन से इन पाँचों ही स्थानों पर, पाँचों ही अक्षरों को, पाँचों ही पदों के अक्षरों को देखें।

दोनों हाथों को जोड़ लें, मन को प्रसन्न रखते हुए भीतर से आनंदित होते हुए।

णमोकार मय सारा जीवन बना लो

ध्यान–१७

अपने शरीर का सबसे बड़ा शक्ति केंद्र अपना **नाभि केंद्र** है, जहाँ पर अपनी श्वास जो तीन प्रकार की नाड़ियों में बहती है, वो सब आकर के मिलती हैं, उस शक्ति केंद्र को सबसे पहले हमें जाग्रत करना चाहिए, मजबूत बनाना चाहिए। नाभि पर श्वास का ध्यान करना, पाचन तंत्र संबंधी सभी बीमारियों को दूर करता है। नाभि केंद्र पर 'णमो लोए सव्वसाहूणम्' के अक्षरों का ध्यान करना पाचन तंत्र संबंधी, पेट संबंधी सभी बीमारियों से मुक्ति दिलाता है। ये सबसे बड़ा शक्ति केंद्र है हमारे शरीर का। इसे सूर्य का स्थान भी कहा जाता है क्योंकि यहाँ पर बहुत गर्मी रहती है, आग रहती है जिसे जठाराग्नि कहते हैं। इसका नियंत्रण भी इसी नाभि चक्र से होता है, जितने भी शरीर में पाचक रस बनते हैं, शरीर को शक्ति देते हैं वो नाभि से ही संतुलित होते हैं इसलिए इस नाभि चक्र को प्रतिदिन की भाँति हमें शोधन की जरूरत है। हम 'णमो लोए सव्वसाहूणम्' के अक्षरों को **हरे** रंग में उसी नाभि के आसपास ण मो लो ए स व्व सा हू ण म् घूम रहे हैं और तेजी से घूमता हुआ उन अक्षरों को देखें। स्पंदन अपनी श्वास के माध्यम से उस नाभि पर बढ़ाएँ, हर ली जाने वाली साँस हमारी नाभि तक पहुँच रही है, ऐसा स्पंदन अपने हर श्वास में महसूस करें। कोई भी श्वास केवल ऊपर से होकर नहीं जा रही है, उच्छवांस के साथ एक अक्षर को बाहर फेंकेंगे। 'ण मो' भीतर से श्वास इस तरीके से बाहर फेंके कि नाभि पर भीतर की ओर संकुचन हो जोर पड़े। 'णमो लोए सव्व सा हू ण म्' पुनः एक बार 'ण मो लो ए स व्व सा हू णम्' पुनः एक बार 'ण मो लो ए स व्व सा हू णम्'।

सहज श्वास की प्रक्रिया को देखें। कोई आयाम नहीं करें। श्वास जैसी जा रही है उसे देखें। हृदय स्थान पर अपना मन लाएँ। नीले रंग में 'णमो उ व ज्झा या णम्' के अक्षरों को ध्यान में करें। **नीले** प्रकाश में व अक्षर **हृदय** के आसपास प्रकाशित हो रहे हैं। आपके चारों ओर सब प्रकार के प्रकाश हैं। आप जो भी अपने अंतर मन से ग्रहण करेंगे वह प्रकाश आपको दिखाई देंगे। जो दिख रहा है वह बिल्कुल सही दिख रहा है। आप बिल्कुल परेशान न हों, केवल नीले रंग को स्मरण में लाते हुए उन अक्षरों को ध्यान करें।

'ण मो उ व ज्झा या णम्'

हृदय की पवित्रता, हृदय की शुद्धि। ये उपाध्याय परमेष्ठी के अक्षरों से हृदय की पवित्रता के बिना हमारा जीवन आगे बढ़ नहीं सकता। हृदय की पवित्रता के बिना हमें जीवन में आनंद नहीं आ सकता इसलिए इस हृदय को आनंद केंद्र कहते हैं, जो भी आनंद होता है। वह इस हृदय में समाया है। महसूस करें। इन अक्षरों के अंदर कितना आनंद है। ये अक्षर नीले प्रकाश से हमारे हृदय में घूम रहे हैं। इस आनंद को हम और बढ़ाएँ। पूरे ब्रह्मांड में बिखेर दें।

ण मो उ व ज्झा या ण म्

ण मो उ व ज्झा या ण म्

इस आनंद को हमने ब्रह्मांड में बिखेरा है। यही आनंद हमारे पास लौटकर के आएगा, जो हम देते हैं वही हमारे पास लौटकर के आता है। अगर हमें लगता है कि हमें कोई दुख दे रहा है। विश्वास रखना वो दुख तुमने उसको दिया है इस सत्य को स्वीकार करो। हृदय से स्वीकार करो, जो कुछ भी हम कर रहे हैं वही हमारे पास लौटकर के आयेगा। जो कुछ भी हम दे रहे हैं वही हमारे पास लौटकर के आएगा। जो कुछ हम पा रहे हैं वह हमारा ही दिया हुआ है। संयोग, योग, दुख, सुख, रोग, शोक सब कुछ हमारा ही दिया हुआ। हमारे पास लौटकर के आता है। ये सांसारिक चक्र बहुत बड़ा है। इस हृदय से कुछ अच्छा उत्सर्जित करो, पवित्र भावनाओं को उत्सर्जित करो। अगर तुम्हें सुख चाहिए तो सबके लिए सुख की भावना उत्सर्जित करो। णमो उवज्झायाणम् के अक्षर को पूरे ब्रह्मांड में अपनी शक्ति के साथ फेंको कि हे भगवान् ये सुख सबको मिले, जो सुख हमें अभी मिल रहा है।

ण मो उ व ज्झा या णम्

ण मो उ व ज्झा या णम्

हमारा हृदय आकाश के समान विशाल हो जाए। हर चीज को स्वीकार करने की इस हृदय में क्षमता उत्पन्न हो जाए। उपाध्याय परमेष्ठी के ज्ञान की विशालता हमारे हृदय में समा जाए। ये शक्ति हमारे हृदय की शक्ति से इन अक्षरों के माध्यम से हमें प्राप्त हो रही हैं और ऊपर बढ़ते हैं नाभि के ऊपर हृदय चक्र के भी ऊपर **कंठ** के पास भीतर की ओर रीढ़ की हड्डी से भी भीतर की ओर चक्र है जिसे **विशुद्धि चक्र** कहते हैं। आचार्य परमेष्ठी के स्वर्ण अक्षरों को, **पीले** अक्षरों को इस चक्र के पास घूमता हुआ देखें।

ण मो आ इ रि या णम्

पीला रंग मंगलता का प्रतीक, शुभ भावों का प्रतीक। पीला रंग कल्याण भाव का प्रतीक और ऐसे स्वर्णिम अक्षरों के साथ हम आचार्य परमेष्ठी के उन अक्षरों का ध्यान करते हुए विशुद्धि भाव को बढ़ा रहे हैं। पाप गलित हो रहे हैं। विशुद्धि बढ़ रही है। उस विशुद्धि को हम पूरे ब्रह्मांड में उत्सर्जित करें ताकि विशुद्धि का लाभ सबको मिले। ये प्राण ऊर्जा सबके लिए लाभदायक है। हमारे भाव दूसरों को प्रभावित करते हैं, दूसरे के भाव हमको प्रभावित करते हैं। हम विशुद्ध भावों से इस ब्रह्मांड के अंदर उन शक्तियों को फेंकें।

ण मो आ इ रि या णम् ...

चारों ओर पीलिमा स्वर्णिम आभा महसूस करें।

ण मो आ इ रि या णम् ...

सर्वत्र मंगल हो। सभी के पापों का क्षय हो। सभी की आत्मा विशुद्ध हो।

ण मो आ इ रि या णम् ...

हृदय, आनंद से भरा है, कंठ विशुद्धि से भरा है। **ज्ञान केंद्र,** दोनों भौहों के बीचोंबीच में जहाँ हम तिलक लगाते हैं उसी के भीतरी भाग की ओर उसी सीध में रीढ़ की हड्डी की सीध में वह ज्ञान केंद्र है, जहाँ **सफेद** अक्षरों में पवित्र विशुद्ध निर्मलता हमारी मस्तिष्क के अंदर उस ज्ञान केंद्र के चारों ओर

ण मो अ रि ह न्ता णम्

अक्षरों के साथ बिखरा हुआ है। केवल ज्ञान सूर्य का प्रकाश उन अरिहंतों के अक्षरों से हमें महसूस हो रहा है। कितना प्रकाश होगा केवल ज्ञान की ज्योति में जिसमें पूरा विश्व दिखाई देता है। वह ज्ञान स्वरूप वह ज्ञान ज्योति ही परम परमात्मा, सकल परमात्मा, उत्कृष्ट आत्मा है। उस ज्ञान ज्योति को इस छोटे से प्रकाश के साथ आप अनुभवों में लाएँ। जैसा मेरा मन, जैसा मेरा ज्ञान प्रकाश से भरा हुआ है। सबका ज्ञान इसी प्रकाश से भर जाए, सबकी आत्मा केवल ज्ञानमय बन जाए। सबके अंदर वह ज्ञान ज्योति प्रकट हो जाए। प्रकाश बढ़ता चला जा रहा है।

ण मो अ रि ह न्ता णम्

श्वास को उसी ज्ञान केंद्र के पास पहुँचाएँ। वहीं से श्वास पर जोर डालते हुए उसे बाहर की ओर फेंकता हुआ महसूस करें।

णमो अरिहंताणम् के अक्षरों का प्रकाश पूरे ब्रह्मांड में फैलता हुआ महसूस करें।

ण मो अ रि ह न्ता णम् (२)

एक-एक अक्षर हजारों-हजारों सूर्य के प्रकाश से भरा हुआ है। अपने **मस्तिष्क** के आसपास, नेत्रों के आसपास कंपन महसूस करें। वह शक्तियाँ जो हमें भीतर ग्रहण करती हुई दिखाई दे रही हैं जो कम्पन महसूस हो रहे हैं वह हमारे अज्ञान को बाहर फेंक रहा है। अंधकार को बाहर फेंक रहा है, ज्ञान का प्रकाश हमारे अंदर आ रहा है। केवल प्रकाश ही प्रकाश हमको दिख रहा है। हमें अपने मुख की आकृति भी नहीं समझ में आ रही है। केवल प्रकाश ही प्रकाश पूरे मुख के आसपास दिख रहा है। हम ज्ञान ज्योर्तिमय है। नाक, कान, मुख, सब हमसे गायब हो गए हैं। केवल प्रकाश ही प्रकाश देख रहे हैं। उस ज्ञान केंद्र पर केवल प्रकाश को देखें और अपने सिर के ऊपरी भाग पर जहाँ अनेक नसों का जाल बिछा हुआ है, जहाँ से हमारे अंदर विचार उत्पन्न होकर के पूरे ब्रह्मांड को तरंगायित करते हैं व सबसे ऊपर सिद्ध भगवान् का केंद्र सिद्ध केंद्र जहाँ पर हर सिद्धियाँ जाकर के समाप्त हो जाती है, वहाँ हम अपनी श्वास को पहुँचाएँ। वहाँ पहुँचने के बाद व श्वास भी हर कार्य को सिद्ध करने में सक्षम हो जाती है व **सिद्ध केंद्र** है, सिद्ध भगवान् सभी प्रकार की सिद्धियों का स्थान लाल रंग के साथ उन अक्षरों को देखें। रक्त का प्रभाव पूरे मस्तिष्क के भीतर सब नसों के अंदर **लाल रंग** के साथ उसी रंग में ये लाल सूर्य के समान।

ण मो सि ध दा णम्

श्वास को मस्तिष्क के ऊपरी भाग तक ले जाएँ और उच्छवास के साथ उन णमो सिद्धाणम् के अक्षरों को पूरे ब्रह्मांड में फेंके ताकि सभी को सिद्धत्व की प्राप्ति हो।

ण मो सि ध दा णम् ण मो सि ध दा णम् ण मो सि ध दा णम्

सूर्य का लाल प्रकाश, लालिमा अपने पूरे मस्तिष्क में महसूस करें। चारों ओर वो लाल ही लाल फैली हुई है। णमो सिद्धाणम् के लाल अक्षर पूरे शरीर में पाँचों ही प्रकार के प्रकाश को मिला हुआ देखें, जिसे हम इंद्र धनुष में देखते हैं। हम भूले नहीं व नीला रंग उसके ऊपर व पीला, हरा रंग सबसे पहले नाभि केंद्र पर उसके ऊपर नीला, उसके ऊपर पीले रंग का प्रकाश फिर सफेद रंग का, फिर लाल रंग का प्रकाश। सभी प्रकार के प्रकाश हमें दिखाई दे रहे हैं। पूरे शरीर के आसपास पाँचों ही प्रकाशों की पट्टियाँ, रंग चक्र के रूप में घूम रहे हैं। पूरा शरीर णमोकार मंत्रमय हो गया है। पूरा शरीर णमोकार के प्रकाश से प्रकाशमान है। मन के ऊपर उस प्रकाश का बहुत

प्रभाव छाया हुआ है। आत्मा पापों से विशुद्ध होती चली जा रही है। पंच परमेष्ठी के उस प्रकाश को पूरे शरीर में अपने मूलाधार चक्र से लेकर ऊपर के सिद्ध चक्र तक महसूस करें।

ण मो लो ए स व्व सा हू णम्
ण मो उ व ज्झा या णम्
ण मो आ इ रि या णम्
ण मो अ रि ह न्ता णम्
ण मो सि द्धा णम्
पुन: ऊपर से नीचे की ओर
ण मो सि द्धा णम्
ण मो अ रि ह न्ता णम्
ण मो आ इ रि या णम्
ण मो उ व ज्झा या णम्
ण मो लो ए स व्व सा हू णम्

पंच परमेष्ठी मय आपका पूरा शरीर और आत्मा हो चुका है। ओम् णमोकार मय, अर्हं णमोकार मय सब कुछ इसी में समाया हुआ है। परम शांति, परम आनंद की दशा आत्मा के अंदर शक्ति का प्रकटन। हमारा जीवन इसी अंतरंग 'इनर स्ट्रेंथ' के साथ चलता है। इसी इनर एनर्जी के साथ चलता है। अगर ये एनर्जी अंदर है तो जीवन बाहर चल रहा है। ये ऊर्जा, ये प्राण शक्ति जिस दिन क्षय हो जाएगी। ये जीवन छूट जाएगा। इस जीवन को संतुलित बनाएँ, हृदय के आवेगो पर नियंत्रण रखें। स्वभाव को पहचानें। हमारा स्वभाव कषाय करना नहीं है, हमारा स्वभाव किसी से प्रतिस्पर्धा नहीं है। हम अपने आप में पूर्ण हैं। अनंत शक्तिमान हैं। हम अपनी ही शक्ति को उद्घाटित करें। किसी से स्पर्धा ना करें। किसी से ईर्ष्या ना करें। हम अपने आपको पूर्ण महसूस करें। हम जो हैं वो पूर्ण है। ज्ञान और सुख से पूर्ण हैं। दोनों हाथों को जोड़ लें। आँख बंद रखें। भीतर से आनंदित होते हुए प्रार्थना।

ध्यान–१८

नाभि स्थान पर गहरी श्वास लेकर णमो लोए सव्वसाहूणम् के अक्षरों को जो हम अभ्यास में ला रहे हैं, उसी को कुछ विशेषता के साथ दोहराएँगे।

हरे रंग के उन अक्षरों को णमो लोए सव्वसाहूणम् के अक्षरों को अपनी नाभि के आसपास घूमता हुआ देखें। ये नाभि चक्र पूरे शरीर के पाचन तंत्र को संभालता है। पूरे शरीर के अंदर शक्ति प्रवाहित करता है। इस नाभि तंत्र से सभी नाड़ियाँ जुड़ी रहती हैं। सभी शिराएँ जुड़ी रहती हैं। प्रत्येक नाड़ी में, प्रत्येक शिराएँ हैं, प्रत्येक धमनी है, णमो लोए सव्वसाहूणम् के प्रकाश को पहुँचाएँ। ओम्कार एक शब्द इसके साथ और जोड़ें

ओम्.... णमो.... लोए.... सव्व.... साहू.... णम् – ३ बार।

शक्ति केंद्र को मजबूत बनाया। अपने हृदय स्थान पर आएँ, जिसे आनंद केंद्र कहते हैं। उस हृदय स्थान के अंतरंग भाग में बहुत सूक्ष्म आठ पंखुड़ियों का एक कमल बना हुआ है। बहुत सूक्ष्म कमल है जो केवल हमें अपने अंतर मन से दिखाई दे सकता है उस कमल के पास इन अक्षरों को ओम णमो उवज्झायाणं के अक्षरों को देखें, घूमते हुए देखें। णमो उवज्झायाणं की एक–एक अक्षर को उस कमल के ऊपर बिठाएँ। ओम के साथ बिठाएँ। आठ अक्षर का यह मंत्र, आठ अक्षर का ये पद, आठ अक्षर का आपका कमल दल, एक–एक कमल के पत्ते पर महसूस करें। भीतर नीले रंग में णमो उवज्झायाणं के अक्षर कमल के ऊपर लिखे हुए हैं। ध्यान को सूक्ष्मता की ओर ले जाएँ। बहुत छोटे से उस कमल को स्पंदित करेंगे।

ओम्.... णमो.... उव्व.... झाया.... णम् – ३ बार।

भावना करें मेरे पापों का क्षय हो। मेरी आत्मा के सभी कर्मों का क्षय हो। मेरी आत्मा के कलमष भावों की शांति हो। णमो उवज्झायाणं के इन मंत्रों के साथ मेरी आत्मा के अंदर जितनी भी हिंसा आदि पाँच पापों से बंधे हुए पाप बैठे हैं वो सब क्षय को प्राप्त हो।

निरंतर आत्मा में से पाप विगलित हो रहे हैं।

ओम् णमो उवज्झायाणं

ज्ञान जैसे बढ़ता है, पाप वैसे–वैसे विगलित हो रहे हैं। कर्मों का आत्मा से संबंध छूट रहा है। र्निममत्व भाव बढ़ रहा है। किसी भी प्रकार की हमारे अंदर कोई लालसा नहीं है। हम केवल अपने ज्ञान को महसूस कर रहे हैं। उस ज्ञान ज्योति, ज्ञान प्रकाश में हम नीले–नीले अक्षरों को

देखते हैं।

ओम्.... णमो.... उ... वज्.... झा.... या.... णम् .... – ३ बार।

अपने मन को कंठ स्थान पर लाए। णमो आइरियाणम् के अक्षरों को महसूस करें। आपके अंदर, आपकी मस्तिष्क में वह प्रकाश की आभा एकदम बदल गई। पीले रंग के स्वर्णिम अक्षरों में जैसा भी आपको दिख रहा है, आप उसे सत्य मानकर स्वीकार करें। बहुत सहज भाव के साथ, केवल अपनी श्रद्धा को बढ़ाते हुए एक–एक अक्षर पर ध्यान दें।

ण मो आ य रि या ण म्

आपको लगेगा एक–एक अक्षर से प्रकाश फूट रहा है व पीली–पीली स्वर्णिम आभा चारों ओर दिखाई दे रही है। कंठ स्थान पर विशुद्धि का केंद्र, आचार्यों के उपदेश से हमारे अंदर विशुद्धि बढ़ती है। उनके दर्शन से हमारे अंदर विशुद्धि बढ़ती है। विशुद्धि केंद्र जब बलिभूत हो जाता है, बलवान हो जाता है। पूरे शरीर के अंदर पूरे आत्मा के अंदर ये शुद्ध–शुद्ध शुद्ध भावों को उत्पन्न करता है। मंगल हमारे अंदर है।

ण मो आ इ रि या ण म् – ३ बार।

आचार्यों के उपदेश से हमारे आत्मतत्व की श्रद्धा बढ़ रही है। णमोकार मंत्र की श्रद्धा बढ़ रही है, जो आचार्य अपने शिष्यों को दीक्षा देते समय उन्हें संस्कारित करते समय इसी णमोकार मंत्र के पदों का उच्चारण करते हैं, वही पदों को हम ग्रहण कर रहे हैं व आचार्य परमेष्ठी दीक्षा दे रहे हैं। संस्कार दे रहे हैं। संस्कार के साथ जो मंत्र पढ़ रहे हैं, उन मंत्रों को हम ग्रहण कर रहे हैं। गणधर परमेष्ठी भगवान् के समोशरण में बैठकर के इसी णमो आइरियाणम् का उच्चारण करते हैं। स्वयं आचार्य पद पर प्रतिष्ठित होते हुए भी वह आचार्यों को नमस्कार करते हैं क्योंकि दूसरे की विशुद्धि को ग्रहण करना, अपनी शुद्धि की ओर बढ़ाना, यही हमारा परम धर्म है।

ओम् णमो आइरियाणम् – ३ बार।

सारी शक्ति, सारा ध्यान कंठ स्थान पर रखें। श्वास को ग्रहण करें। कंठ से स्पर्श होकर के जाए। महसूस करें वह श्वास कंठ पर स्पर्श करें। कंठ पर जोर डालकर के उस श्वास को ग्रहण करते हुए वहीं पर अपने उन णमो आइरियाणम् के अक्षरों को प्रकाशमान होता हुआ देखें।

ओ म् ण मो आ इ रि या ण म्

जहाँ कहीं पर भी इस भरत क्षेत्र में पूरे जम्बू द्वीप में ढाई दिन में जहाँ कहीं पर भी आचार्य परमेष्ठी विराजमान हैं। हमारी ये ध्वनि उनकी आत्मा को स्पर्श कर रही है। हमारी ये ध्वनि उनके चरणों का स्पर्श कर रही है। महसूस करें। हमारे भाव उनके पास तक पहुँच रहे हैं। उनकी विशुद्धि को हम ग्रहण कर रहे हैं। उनकी आत्मा में जो कर्म की निर्जरा से विशुद्धि उत्पन्न हो रही है, उसको

हम पा रहे हैं जो सम्यक्दर्शन, सम्यक्ज्ञान और सम्यक्चारित्र की निरंतर आराधना आत्मा में चल रही है हम उसे स्पर्श कर रहे हैं।

ओम् णमो आइरियाणम्

अपने मन को उस स्थान पर विशुद्ध भाव से भरकर रखे। हम भूल चुके हैं पाप क्या होते हैं, हम भूल चुके हैं पुण्य क्या होता है। हम केवल शुद्ध, शुद्ध, शुद्ध आत्मा को समझ रहे हैं। अनुभव में ला रहे हैं। केवल आत्मा की शुद्धि हम ग्रहण कर रहे हैं। जहाँ किसी प्रकार का कोई संक्लेश नहीं, केवल वह ज्ञान स्वभाव, ज्ञान ज्योति व स्वर्णिम आभा जो अरिहंतों के अंदर प्रकट है वही हम अपने अंदर महसूस कर रहे हैं।

ओम् णमो आइरियाणम्

हे भगवन हमारे चारित्र मोहनीय कर्म का क्षय हो। हमें आपके जैसे सम्यक्चारित्र की प्राप्ति हो, ढाई द्वीप में जहाँ कहीं भी आचार्य परमेष्ठी विराजमान है। वह हमारे चारित्र मोहनी कर्म का क्षय करें। हमारे भावों की विशुद्धि बढ़े। हम असंयम से संयम की ओर आएँ। बहुत जोर के साथ। अपनी आइरियाणम् के अक्षरों को गुंजायमान करें। ढाई दिन के अंदर जहाँ कहीं पर भी आचार्य परमेष्ठी बैठे हो वो तरंगित हो जाए और हमें वहीं से आशीष दें।

ओम्.... णमो.... आइरि.... याणम्.....

आशीष मिल चुका है। परम शांति, परम संयम भाव की हमें उपलब्धि हो रही है। सामायिक का भाव बन रहा है। सब जीवों के प्रति क्षमा भाव, प्रेम का भाव हमारे अंदर उत्पन्न हो रहा है। किसी भी जीव से हमारा कषाय भाव नहीं, द्वेष भाव नहीं, क्रोध भाव नहीं यही सामायिक स्वभाव है। सब जीवों के प्रति समता धारण करना आचार्य परमेष्ठी हमें उपदेश दे रहे हैं, वत्स सामायिक इसी को कहते हैं। यही चारित्र है, यही सामायिक हमारा स्वभाव है, जहाँ पर सभी जीवों के प्रति समता भाव हो। संयम के प्रति सद्भावना हो, आर्त ध्यान, रौद्र ध्यान का अभाव हो। केवल धर्म ध्यान की विशुद्धि के भाव हो। ओम् णमो आइरियाणम्।

सब जीवों को क्षमा कर दो। सबके प्रति समता का भाव हो। संसार का कोई भी जीव हमारा द्वेषी नहीं है। संसार में कोई भी हमसे ईर्ष्या नहीं करता है। अगर आप ये महसूस करते हैं कि कोई हमारा बुरा कर रहा है, कोई ईर्ष्या करता है तो ये आपकी गलती है। आप सबके प्रति समता का भाव रखो। सब जीव आपके प्रति समता का भाव रखेंगे। आप जैसा भाव करेंगे वैसा ही सब जीव आपके प्रति भाव करेंगे। आप सबसे क्षमा करेंगे। सब जीव आपको क्षमा कर देंगे। आप सबसे प्रेम रखेंगे। सब आपको प्रेम करेंगे। अपने मन में किसी के प्रति दुर्भाव नहीं रखो। भूल जाओ कोई

हमारा बुरा करने वाला है। भूल जाओ कोई हमसे ईर्ष्या करता है। ये भाव छोड़ दो कि कोई हमारा बुरा कर सकता है, कोई हमारा बुरा नहीं कर सकता। आचार्य कहते हैं तुम अपने अंदर समता भाव के साथ में उस जीव के लिए समता भाव रखो। उस जीव को क्षमा करो। अपने अंदर से पहले उस ईर्ष्या भाव को विसर्जित कर दो। आचार्य परमेष्ठी ने हमें आशीर्वाद दिया है। हमारा वह क्रोध भाव, ईर्ष्या भाव, द्वेष भाव छूट गया है। महसूस करें भीतर से भावों के साथ भावना करें। हमारा किसी भी जीव के प्रति द्वेष नहीं, ईर्ष्या नहीं, कोई मेरा बुरा करने वाला नहीं। मेरा मन आज बहुत समर्थ हो गया है। महसूस करें सब जीवों के प्रति एक समान भाव अपने अंदर लाएँ। अपने मन को और थोड़ा सा ऊपर की ओर ले जाए। जहाँ हम तिलक लगाते हैं, बिंदी लगाते हैं उसकी भीतरी भाग में इसी नाभि, हृदय, कंठ की सीध में रीढ़ की हड्डी के अंदर की ओर एक और केंद्र बिंदु है जिसे ऐश्वर्य केंद्र कहते हैं। सभी प्रकार के ऐश्वर्य की प्राप्ति इसी केंद्र के ध्यान करने से अर्जित होती है। लोग आपकी बात नहीं मानते, बच्चे आपकी बात नहीं मानते। आपकी आज्ञा आपके लोग नहीं मानते। इसी केंद्र पर अपना ध्यान अर्जित करें, जो भी ऐश्वर्य मिलेंगे इसी केंद्र से मिलेंगे। यहाँ पर णमो अरिहंताणम् के अक्षर हैं, सफेद रंग के धवल प्रकाश में जैसे चंद्रमा की चाँदनी धवल होती है। ऐसे वह सफेद चंद्रमा के प्रकाश से प्रकाशित उन णमो अरिहंताणम् के अक्षरों को अपनी शक्ति को ऊपर की ओर ले जाएँ, श्वास को ऊपर की ओर ले जाए।

ओम् णमो अरिहंताणम्....

उसी ऐश्वर्य केंद्र पर अपना ध्यान रखें। ज्ञान का ऐश्वर्य, सुख का ऐश्वर्य, आज्ञा का ऐश्वर्य सब कुछ यहीं से मिलेगा। उन णमो अरिहंताणम् के अक्षरों में अपनी श्रद्धा के साथ उन अक्षरों में अपने मन को डुबो दें।

ओम् णमो अरिहंताणम्....

ढाई द्वीप के अंदर असंख्यात चंद्रमा के विमान है। उनके अंदर बहुत बड़े–बड़े जिनबिम्ब बने हुए हैं। अरिहंत प्रतिमाएँ वहाँ पर बनी हुई है। उस चंद्रमा की धवल आभा में अपने उन णमो अरिहंताणम् के अक्षरों को उस चंद्रमा के विमानों के अंदर विराजमान उन अरिहंत भगवान् के पास तक ले जाएँ। इतनी श्रद्धा, इतनी भाव वंदना, इतनी शक्ति बढ़ाएँ कि हमारी वह ध्वनि उन अरिहंत भगवान् को स्पर्श करें, जो चंद्रमा के विमानों में विराजमान हैं, अपनी शक्ति का उर्ध्वारोहण करें।

ओम् णमो अरिहंताणम्....

अभी तो आपकी ध्वनि सुमेरू पर्वत तक भी नहीं पहुँची। अभी आपकी ध्वनि कुलाचल पर्वत तक भी नहीं पहुँची। अभी तो आपकी ध्वनि मंदसौर से बाहर भी नहीं पहुँची और जोर से उस ध्वनि का उर्ध्वारोहण करें पवित्र भावों से भावना करें। चंद्रमा के विमानों में रहने वाले जिनबिम्बों

को हमारी ध्वनि स्पर्श कर रही है। हम अपने भावों के साथ उन भगवान् के चरण कमलों को छू रहे हैं।

ओम् णमो अरिहंताणम्....

प्रकाश ऐश्वर्य का बढ़ रहा है। णमो अरिहंताणम् के एक–एक अक्षर में प्रकाश फूटता हुआ दिख रहा है। अपने मस्तिष्क के ऊपरी भाग पर णमो अरिहंताणम् का प्रकाश बिखरा हुआ है और ऊपर की ओर चलें। सबसे ऊपर सिर का ऊपरी भाग जिसे सिद्ध केंद्र कहते हैं। सभी प्रकार की सिद्धियाँ यहाँ जाकर के समाप्त हो जाती है। सभी प्रकार की सिद्धियाँ यहीं से प्रारंभ होती है। सभी प्रकार की सिद्धियों का उद्भव स्थान, यह सिद्ध केंद्र जो सिर के सबसे ऊपरी भाग में है, लाल रंग में है णमो सिद्धाणम् के अक्षरों को स्मरण में लाएँ।

ओम् णमो सिद्धाणम्....

जब आत्मा इस शरीर से बाहर निकलती है। अगर वह इस ब्रह्मकेंद्र से, सिद्ध केंद्र से बाहर निकलती है तो आचार्य कहते हैं वे जीव नियम से पूर्ण गति को प्राप्त होता है। ऊपर के स्वर्गों में उत्पन्न होता है और जब इसका मोक्ष होता है तब भी इसकी आत्मा इस शरीर में से इसी केंद्र से बाहर निकलती है, जितनी भी सिद्धियाँ होती हैं वह सब इसी केंद्र से ध्यान लगाने से होती है।

ओम् णमो सिद्धाणम्

लाल रंग के अक्षरों में उस कपाल के अंदर, पूरी खोपड़ी के अंदर वह लाल रंग के अक्षरों को घूमता हुआ देखें। सिद्धाणम् णमो, णमो सिद्धाणम् , सिद्धाणम् ण मो, णमो सिद्धाणम्

ओम् णमो सिद्धाणम्

भावना करें हे प्रभु, हे सिद्ध भगवन इस आत्मा का, इस शरीर से जब भी निगर्मन हो, निकलना हो ये इसी केंद्र से होकर के, आत्मा का गमन हो। इस आत्मा का उर्ध्वारोहण हो। ये आत्मा उर्ध्व गति की ओर गमन करें। अपनी पूरी शक्ति को उस उर्ध्व गति के केंद्र की ओर लगाकर।

ओम् णमो सिद्धाणम्....

ये आत्मा कहीं तिर्यक गतियों में न जाएँ। अधोगति में न जाए। ये आत्मा केवल सिद्ध गति को प्राप्त हो। इस आत्मा के लिए इस संसार में अब कहीं और नहीं भटकना। अपनी शक्ति, अपनी श्रद्धा, अपनी भावना सब कुछ उस उर्ध्व गति को प्राप्त करने के लिए लगाना। पूरे ब्रह्मांड के अंदर ये तरंगें भर दो कि हमें कोई भी शक्तियाँ कहीं ना खींचें। हमारी आत्मा केवल उर्ध्व गति को गमन करें।

णमोकार मंत्र– ९ बार।

ध्यान–१९

केवल श्वास को देखें... शरीर के ऊपरी भाग पर सिर के भी ऊपरी भाग पर अर्हम् का प्रकाश फैला हुआ है। अर्हम् के अक्षर लिखे हुए हैं और अर्हम् के अक्षरों को हम निरंतर देख रहे हैं। हमारी आँखों के ऊपर, मस्तिष्क के ऊपर, पूरे कपाल के अंदर अर्हम्, अर्हम् अर्हम् अर्हम् का प्रकाश। वही अक्षर उन्हीं की गूँज अर्हम्। एक साथ उस अर्हम् की गूँज से अपने सिर के ऊपरी भाग को भरें दोहराए अ....र्हम, अर्हम् के वो अक्षर अ ह ऊपर र की मात्रा अंदर चंद्र बिंदु वो प्रकाशमान बीजाक्षर। चंद्र बिंदु से लाल ज्योति निकल रही है। महसूस करें उस लाल ज्योति के प्रकाश को जो मेरे अंदर बढ़ रहा है। जैसे दीपक की ज्योति लाल ज्योति होती है। वैसे ही वह लाल ज्योति/प्रकाश ऊपर की ओर नहीं जा रहा वो प्रकाश हमारी अस्थिरता के कारण से हिल रहा है और वो ज्योति हवा के कारण अस्थिरता के कारण बार-बार नीचे लिखे हुए 'अ' और 'ह' अक्षरों से टकरा रही है। उस ज्योति को हवा रहित निश्चल बनाना है 'अ' और 'ह' अक्षरों से वह ज्योति बार-बार स्पर्श कर रही है। उन 'अ' और 'ह' अक्षरों को वह ऊष्मावान कर रही है। उस ज्योति के कारण धीरे-धीरे 'अ' और 'ह' अक्षर दिखना बंद हो गए हैं। ऊपर का बिंदु भी दिखना बंद हो गया है। उस अर्हम् के प्रकाश में अर्हम् विलीन हो रहा है। ये वही अहम् है जो शरीर और आत्मा को एकत्व बुद्धि के साथ जोड़े रखता है, इसी अहम् के कारण ये आत्मा संसार के सब कार्यों को करते हुए थकता नहीं है। अपनी ऊर्जा, अपनी शक्ति संसार के कारणों में ही लगाता है। इस ऊर्जा का प्रभाव बाहर से भीतर की ओर करना है। अहम् के नाश के बिना अर्हम् की शक्ति का उद्घाटन नहीं हो सकता। देखें केवल प्रकाश की वो ज्योति जलती हुई रह गई है। अहम् विलीन हो रहा है। अर्हम् के साथ बहुत अंधकार था वह भी विलीन हो रहा है। उस अर्हम् के उस चंद्रबिंदु के प्रकाश में से केवल उस चंद्रमा के अंदर से वो ज्योति निकल रही है। सिद्धशिला की आकृति बनती चली जा रही है जैसे-जैसे अहम् विलिन हो रहा होता जा रहा है वैसे-वैसे वे सिद्धशिला की भी आकृति और ज्यादा स्पष्ट होती चली जा रही है। अपनी सारी शक्ति से उस सिद्धशिला की आकृति को अर्द्ध चंद्रमाकार, उस चंद्र बिंदु की

आकृति को और बढ़ाए, उस अर्हम् की गूँज से उस प्रकाश को और बढ़ाएँ और अहम् पूरा का पूरा विलीन हो जाए– नष्ट हो जाए।

अ... र... ह.... म...। महसूस करें सभी अक्षर विलीन हो गए हैं। केवल सिद्ध शिला की अर्द्धचंद्राकार आकृति रह गई है। हमारे मस्तिष्क के आसपास प्रकाश ही प्रकाश है। अदृश्य आत्मा की अनुभूति, अदृश्य आत्मा का प्रकाश है। हमारे पूरे मस्तिष्क में सिद्धशिला के ऊपर छाया हुआ हमारा अहम्, उस अर्हम् में विलीन हो गया। अंधकार प्रकाश में विलीन हो गया। सिद्ध भगवान् उस आकृति के ऊपर हमें दिखाई दे रहे हैं। केवल वह अर्द्धचंद्राकार लाल ज्योति उसी अर्द्धचंद्राकार आकृति के अंदर कुछ अक्षर लिखे हुए हमें दिखाई दे रहे हैं।

ण मो सिद्धाणम्। उस अर्द्धचंद्राकार आकृति के अंदर लिखे हुए उन अक्षरों को देखें। अपनी आत्म ज्योति को इन अक्षरों में समर्पित करें। णमो सिद्धाणम्। महसूस करें व प्रकाश निरंतर भीतर ही भीतर बढ़ता चला जा रहा है। अदृश्य आत्माएँ हमारे अदृश्य मन से ही दिख सकती हैं, आँखों से नहीं। हम उस सिद्धशिला की आकृति के ऊपर अनेक सिद्धों की आकृतियाँ देख रहे हैं। उन सिद्ध आत्माओं की केवल हमें आकृतियाँ दिखाई दे रही हैं। हम उन आकृतियों को एक प्रकाश में प्रकाश की तरह विलीन होता हुआ देख रहे हैं। जैसे एक प्रकाश में कई प्रकाश मिलते चले जाते हैं। ऐसी ही इन सिद्धों में एक सिद्ध आत्मा में कई सिद्ध आकृतियाँ मिली हुई हैं। एक के भीतर एक, एक के भीतर एक, एक के भीतर एक, एक में वो अनंत-अनंत सिद्धों की आकृतियाँ समाई हुई हैं। जैसे हम किसी गुफा में प्रवेश करते चले जा रहे हैं। ऐसे ही हम उन दृश्य आत्माओं के भीतर चलते चले जा रहे हैं, चलते चले जा रहे हैं। उसका कोई अंत हमें दिखाई नहीं दे रहा। हमारी यात्रा निरंतर चल रही है। एक के बाद एक आकृति एक के बाद एक आकृति हम उन एक सिद्धों को भी पूर्ण रूप से नमस्कार नहीं कर पा रहे, जहाँ पर एक सिद्ध भगवान् की आकृति है। वहीं पर अनेक सिद्ध, अनंत सिद्ध विराजमान हैं। हम एक साथ इन पदों के स्मरण के साथ उन अनंत सिद्ध आत्माओं को नमस्कार भाव के साथ करें। आज हमें ये क्षण केवल इसी समय मिला है, जब हम अनंत सिद्धों की आकृति को देख रहे हैं। उनको भाव के साथ नमस्कार करें। हम उच्च स्वर में एक साथ बोलेंगे णमो: सिद्धाण्म्।

एक सिद्ध भगवान् के अंदर से अनेक-अनेक आकृतियाँ जैसे उभरती हुई चली जा रही

हो। एक के भीतर से एक, एक के भीतर से एक, ऐसे वे आकृतियाँ उभरती हुई दिखाई दे रही है। णमो सिद्धाणम् के अक्षरों की ध्वनि से वह तरंगायित होती चली जा रही है और तरंगें जिस तरह से तालाब में एक के बाद एक निकलती चली जाती है। ऐसे ही एक के बाद एक हमें अनंत तरंगें व आकृतियों के रूप में उसे दिखाई दे रही है। मन को आह्लादित करें। आज हम अनंत सिद्ध भगवानों की आकृतियों को एक साथ देख रहे हैं। सिद्ध भगवान् को अपनी आत्मा की ज्योति से स्पष्ट अनुभव में ला रहे हैं। अहम् के मिटने पर ही अर्हम् स्वरूप उन आत्माओं से हमारा मिलन हुआ है ये अर्हम् बीजाक्षर पर अनंत अनंत सिद्ध परमेष्ठी का पाचक है। ये हमें उन अनंत सिद्ध आत्माओं का दर्शन करा रहा है। उस अर्हम् को याद करें। उस णमो सिद्धाणम् के पद से उन अनंत सिद्धों के प्रति अपनी श्रद्धा के भाव बनाए। मेरा परिणमन ऐसा ही सूक्ष्म हो, अबाधित हो, प्रकाशमय हो, अदृश्य हो। मेरा परिणमन शाश्वत हो, स्वाभाविक हो, णमो सिद्धांणम्... णमो सिद्धाणम् ... अपनी पूरी शक्ति उसी सिद्ध आकृतियों को उभारने में, उसी सिद्ध शिला की आकृतियों में बने हुए उस चंद्र बिंदुओं के प्रकाश को बढ़ाने में अपनी पूरी ऊर्जा अपना पूरा ध्यान उस सिर के ऊपरी भाग की ओर लगाएँ जितने भी वैभाविक विचार है, वो सब नष्ट हो रहे हैं। णमो सिद्धाणम् के अक्षरों से आत्मा की स्वभाविक शक्तियाँ उद्भूत हो रही है। कषाये, मिथ्यात्व विनष्ट हो रहा है पूरी शक्ति के साथ उन सिद्धों को स्पर्श करें णमो सिद्धाणम्.... परम शांति का वातावरण चारों ओर है। मैं मंत्र हूँ कि शरीर हूँ, मैं भूल चुका हूँ। बस जो प्रकाश दिखाई दे रहा है उस प्रकाश में ही मैं विलीन हो रहा हूँ। मैं सिद्धमय शुद्ध आत्मा बनता चला जा रहा हूँ। दोनों हाथों को जोड़ लें, आँखों को बंद रखें। भीतर से मन को बहुत प्रसन्न बनाए, आज हमने सिद्धों की आकृतियाँ देखीं। सिद्धों के स्वभाव का अदृश्य रूप का दर्शन किया णमो सिद्धाणम्....। प्रार्थना।

ध्यान– २०

एक नए मंत्र को अपने मन के अंदर स्थापित करें। ओम् ह्रीं स्वर्हम। अर्हम् में जुड़ जाने से स्वर्हम बन जाता है। णमो-णमो अरिहंताणाम् ह्रीं नमः। इस मंत्र को सामूहिक रूप से एकाग्रता के साथ इसका जाप करेंगे। एक लय में करेंगे। **ओम् ह्रीं स्वर्हम् णमोः-णमोः अरिहंताणाम् ह्रीं नमः।** ओम् ह्रीं स्वर्हम् णमो: णमो: अरहिंताणाम् ह्रीं नमः। ओम् ह्रीं स्वर्हम् णमो: णमो: अरिहताणाम् ह्रीं नमः। ओम् ह्रीं स्वर्हम् णमो णमो अरिहंताणाम् ह्रीं नमः। इस मंत्र को मुख से उच्चारित करें। मन में न जपें क्योंकि मन में जाप तब होता है जब उस मंत्र का प्रभाव हमारे मन में पड़ने लगा हो। पहले उस मंत्र को मुख से होश और जोश के साथ उच्चारित किया जाता है। इसे वेकिरी जाप मंत्र की विधि कहते हैं। इस विधि से एक लय में जब हम पूर्ण मंत्र को पढ़ते हैं तो उसका प्रभाव अपने ऊपर और विश्व की समस्त आत्माओं के ऊपर पड़ता है।



ध्यान– २१

णमो अरिहंताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आइरियाणं,
णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्वसाहूणं

पंच परमेष्ठी के भावों को अपने मन में स्मरण करते हुए हम इतने अभ्यस्त होते चले जा रहे हैं कि जिस णमोकार मंत्र को पढ़ने से एक माह पूर्व हमें कोई संवेदन नहीं होता था वही णमोकार मंत्र आज हम जब पढ़ते हैं तो हमारा मन अपने आप सहज और शांत अवस्था में आने लगता है। यह उस अभ्यास का फल है जिससे हमारे मन के अंदर निरंतर णमोकार मंत्र के प्रति श्रद्धा बढ़ रही है और हमारी आत्मा और मन के अंदर अद्‌भुत परिवर्तन हो रहे हैं। पंच परमेष्ठी को पंच नमस्कार मुद्रा के साथ में स्मरण करें। मुद्राएँ अपनी मानसिक अभिव्यक्ति का प्रतीक होती है और मुद्राओं के माध्यम से हम उन शक्तियों से जुड़ने का एक बहुत बड़ा साधन अपने अंदर निर्मित कर लेते हैं। घर पर इन मुद्राओं के समय को बढ़ाएँ। इससे आपको शारीरिक, मानसिक, आध्यात्मिक तीनों प्रकार के लाभ होंगे।

केवल अपनी श्वास के साथ उन-उन स्थानों पर ध्यान देते हुए परिवर्तन, संवेदन महसूस करें। गहराई के साथ महसूस करें। अपने मन को भावनात्मक रूप से उस-उस स्थान से जोड़ें। मेरे पूरे शरीर में रक्त का प्रभाव, ऊर्जा का प्रभाव बिना किसी अवरोध के प्रत्येक धमनी में, नसों में हो रहा है। ऊर्जा का प्रवाह सभी ऊतकों में हो रहा है। पूरा शरीर इस नाभि की ऊर्जा से केंद्रित हो करके पूरे शरीर में वह ऊर्जा प्रभावित हो रही है। किसी भी स्थान पर जब यह ऊर्जा का प्रवाह अवरुद्ध हो जाता है तो उसी स्थान पर वह दर्द, रोग, कैंसर, गठियाबाद ऐसे अनेक रोग उत्पन्न होते हैं। अपनी नाभि पर अपना मन रखें। एकाग्र करें। ओम् के साथ, हृदय पर अपना मन रखें। एकाग्र करें। **ह्रीं** के साथ हृदय से रक्त शुद्धि पूरे शरीर के अंदर रक्त का संचालन, स्वेत रक्त कणिकाएँ, लाल रक्त कणिकाएँ सब कुछ बराबर मात्रा में इसी ह्रीं के साथ अपने मन को हृदय पर रखें। एकाग्र करें। वहाँ के संवेदनों को एहसास में लाएँ। कंठ पर अपना ध्यान लाएँ। केवल कंठ के भीतरी भाग पर अपना ध्यान लाएँ। केवल कंठ के भीतरी भाग पर अपना ध्यान रखें। उसमें **ह्रीं श्रीं** लिखा हुआ है। थाइराइड्स से पूरे शरीर का संबंध रहता है। थाइराइड्स इसी कंठ के भाग में

रहती है। शरीर के सभी भाग एक-दूसरे से जुड़े हुए रहते हैं। एक में अवरोध उत्पन्न होता है। पूरे शरीर में अवरोध उत्पन्न हो जाता है। इस अवरोध को दूर करते हुए अपने मन को अपने माथे के ऊपर अर्हम् के प्रकाश से जोड़ें। मन का शरीर से और विचारों के साथ एकमेक होने पर मन को भी प्रसन्नता होती है और शरीर भी स्वस्थ होता है। आत्मा निश्चिंत हो जाती है। निर्विकल्प हो जाती है। आत्मा जब इस मन और शरीर को स्वस्थ बना लेती है तो आत्मा निश्चिंत हो जाती है। आत्मा को चिंता तभी होती है जब मन में दुर्विचार आते हैं और शरीर रोग सहित होता है।

महसूस करो पूरे शरीर की निरोगता, मन की निश्चिंतता के साथ मेरा आत्मा बिल्कुल निश्चिंत है, निर्विकल्प है। आत्मा सब प्रकार के विचारों से मुक्त है। आत्मा अपने शरीर को मन को बिल्कुल अपने-अपने स्थान पर अलग-अलग देख रहा है। जैसे किसी माँ का कोई बेटा जब अच्छा कार्य करने में संलग्न हो जाता है, माँ निश्चिंत हो जाती है। ऐसी ही मेरी आत्मा मन से और शरीर से निश्चिंत है। दोनों को भिन्न-भिन्न देख रही है। शरीर अलग है। शरीर का काम भिन्न है। मन का काम भिन्न है। आत्मा केवल उस शरीर और मन का संचालक था, अब उसने उस संचालन बुद्धि को छोड़ दिया क्योंकि शरीर और मन अच्छा काम करने लगे। आत्मा निश्चिंत है। आत्मा अब अपना ही संवेदन कर रही है। अपने ही ज्ञान, अपने ही दर्शन, अपने ही शुभ गुणों को आत्मा अपने ही संवेदन में ला रही है। आत्मा की आत्मिक शक्ति प्रकट हो रही है। कर्मों का प्रभाव उस शक्ति से दूर हो रहा है। जब आत्मा, आत्मा को ही देखने जानने लग जाती है। कर्म बहुत डर जाते हैं और दूर भाग जाते हैं। अपनी आत्मा से ही अपनी आत्मा का एकत्व बनाए, शरीर और मन को अब छोड़ दें। विचार में अब बस आत्मा का प्रकाश, आत्मा की ज्योति, आत्मा का संवेदन रहे। जहाँ-जहाँ पर हमें कुछ भी महसूस हो रहा है दर्द, सुख-दुःख वे सब केवल आत्मा का संवेदन है। वहाँ-वहाँ पर हमारी आत्मा है इसलिए संवेदन हो रहा है। केवल आत्मा को देखें, दुःख को नहीं देखें। उस दर्द को नहीं देखें, उस आत्मा के संवेदन को महसूस करें। आत्मा सब प्रकार के दर्दों से मुक्त है। अपना अनुभव, अपना संवेदन, अपना आनंद इस शरीर और मन के आनंद से बहुत परे है...। गहराई महसूस करें। जितना गहरा संवेदन होगा, उतना ही मन अंदर से तृप्त होगा। आत्मा निराकुल होगी। आनंदित होगी। सहज आनंद उत्पन्न होगा। दोनों हाथ जोड़ लें- णमोकार। प्रार्थना

ध्यान– २२

ॐ... अर्हं.... नमः – ९ बार

मस्तिष्क के अंदर होने वाले स्पंदनों को ध्यान से देखें। सजगता से अनुभव करें। मस्तिष्क पर माथे पर, सामने की ओर **ह्रां** बीजाक्षर लिखा हुआ है। र लिखने के बाद एक छोटी बिंदी ऊपर लगी है। अपने माथे पर देखें। इन बीजाक्षरों से जिनेंद्र भगवान् की प्रतिमाओं को अंकित किया जाता है। ये बीजाक्षर इतने पवित्र है। हमारा शरीर आत्मा ये बीजाक्षरों के अंकन से पवित्र हो रहा है। **ह्रीं** को अपने सिर के ऊपरी भाग पर यहाँ सिर के ऊपरी भाग पर बाल मिलते हैं वहाँ पर **ह्रीं** को स्थापित करें। **ह्रीं** को अपने सिर के ऊपर लिखा हुआ देखें। कंठ पर **ह्रूं** लिखा हुआ देखें। **ह्रू** उसके ऊपर छोटी बिंदी कंठ के स्थान पर हमने **ह्रूं** लिख दिया है। हृदय स्थान पर भीतर की ओर **ह्रौं** लिखे ह्र बनाने के बाद उस पर औ की मात्रा एक छोटी सी बिंदी और नाभि स्थान पर **ह्र** बनाने के बाद दो बिंदियाँ सामने जिसे विसर्ग कहते हैं **ह्रः**। **ह्रां** बीजाक्षर अरिहंत का प्रतीक है, जो हमने दोनों भौंओं के बीच में माथे पर लिखा है। **ह्रीं** ये सिद्ध भगवान् का प्रतीक जो हमने सिर के ऊपरी भाग पर लिखा। **ह्रूं** ये आचार्य परमेष्ठी का प्रतीक है, जिसे हमने कंठ पर लिखा। **ह्रौं** उपाध्याय परमेष्ठी का प्रतीक है जिसे हमने हृदय पर लिखा। **ह्रः** ये साधु परमेष्ठी का प्रतीक है जिसे हमने नाभि पर लिखा है। एक-एक अक्षर को उसी बीजाक्षर के साथ उसी स्थान पर लिखा हुआ देखेंगे। अरिहंत का अ, सिद्ध का सि, आचार्य का आ, उपाध्याय का उ और साधु का सा, नमः ओम् ह्रां, ह्रीं, ह्रूं, ह्रौं, ह्रः, अ, सि, आ, उ, सा, नमः।

एक-एक स्थान पर ध्यान देते हुए भीतर से आनंदित होते हुए बिल्कुल निर्विकल्प होते हुए जैसा आपको दिख रहा है वैसा ही सही है। यह मानते हुए ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः अ सि आ उ सा नमः (१५ बार)

अपने मन को इस मंत्र बीजाक्षरों के साथ एकाकार करें। मन को और कहीं न लगाकर के इन पाँच केंद्रों पर अपने मन को लगाएँ और यहीं पर मन को घुमाएँ, मन इन बीजाक्षरों की शक्ति से भर रहा है। मन के अंदर बीजाक्षरों का प्रभाव पड़ रहा है। मन के अंदर से दुर्विचार, दुर्भावनाएँ हमारे उच्चारण से बाहर फिक रही है। मन के अंदर सब विचारों का प्रकाश भरता चला जा रहा है। ऐसा भाव रखते हुए (३ बार) ओम् ह्रां, ह्रीं, ह्रूं, ह्रौं, ह्रः, अ, सि, आ, उ, सा, नमः।

एक-एक अक्षर पर ध्यान देकर के उच्चारण करें।

ओम् ह्रां, ह्रीं, ह्रूं, ह्रौं, ह्रः, अ, सि, आ, उ, सा, नमः। (६ बार) महसूस करें

इन-इन बीजाक्षरों का प्रकाश आपके शरीर में किसी भी स्थान पर नहीं है कि जो शरीर के बीचोंबीच में शुद्ध स्थान रहता है। शुद्ध स्थान पर बीजाक्षरों का प्रकाश है। रीड़ की हड्डी के अंदर, सामने के भाव से पीछे की ओर, बीचोंबीच में, एक क्रम में नाभि से लेकर के ऊपर सिर के ऊपर भाग तक बीजाक्षरों का प्रकाश इनका प्रभाव हमारे प्रत्येक केंद्र को ऊर्जावान् बना रहा है। ध्यान के माध्यम से हमारी एकाग्रता बढ़ रही है। जैसे-जैसे एकाग्रता बढ़ती है उन बीजाक्षरों की शक्तियाँ और ज्यादा प्रस्फुटित होती चली जाती है।

ओम् ह्रां, ह्रीं... (१८ बार) मन को भीतर से शक्तिमान महसूस करें।

प्रत्येक शक्ति केंद्र पर ऊर्जा का स्त्रोत बराबर बढ़ रहा है। आँख बंद करते हुए उन-उन स्थानों पर अपना मन लगाकर के भीतर से आनंदित होते हुए जैसे हमारे अंदर भीतर से कोई आनंद का स्त्रोत फूट रहा है, ऐसा महसूस करते हुए भीतर से इन्हीं-इन्हीं अक्षरों पर अपनी पूरी श्रद्धा लगाते हुए इस मंत्र को पुनः और आनंद के साथ पड़ें।

ओम् ह्रां, ह्रीं... (५२ बार)

केवल मन ही मन में होंठों को हिलाएँ बिना इस मंत्र को पड़ेंगे। बिल्कुल मानसिक शांति के साथ मन के भीतर ही भीतर मुँह हिलाएँ बिना होंठों को हिलाए बिना केवल जो हम पढ़ रहे हैं, उसको सुनते हुए मन ही मन में अपने जीभ को अपने तालू पर लगाते हैं जिससे वो हिले नहीं।

ओम् ह्रां, ह्रीं... (१ बार)

जीभ को तालू पर लगाएँ। ऊपर की ओर जीभ को स्पर्श करके तालू के ऊपर लगाएँ।

ॐ ह्रां ह्रीं... (८ बार)

मन को उन्हीं-उन्हीं पाँच स्थानों पर सहज भाव में आरोहण अवरोहण कराएँ व ऐश्वर्य केंद्र दोनों भृकुटियों के बीच, सिद्ध केंद्र ऊपर, कंठ–विशुद्धी केंद्र पर, हृदय–आनंद केंद्र पर और नाभि–शक्ति केंद्र पर पाँच स्थानों पर अपने मन को शांति के साथ... अपनी सांस पर ध्यान दें। ये सहज चल रही हैं उसी सहज सांस पर अपना ध्यान थोड़ी देर के लिए केंद्रित करें। बिल्कुल सहज अपने आपको महसूस करें। शरीर को ढीला छोड़ दें। सांस को सहेज ले कोई जोर नहीं, भीतर से शांति महसूस करें...। शक्ति महसूस करें। दोनों हाथों को जोड़ लें।

णमोकार मय में सारा जीवन बना लो...
महा मंत्र को चेतना से सजा लो...